राष्ट्रीयता
और
समाजवाद

राष्ट्रीयता और समाजवाद

लेखक
आचार्य नरेन्द्रदेव

वाराणसी
ज्ञानमण्डल लिमिटेड

प्रथमावृत्ति : वसन्तपञ्चमी संवत् २००६
पुनर्मुद्रित : गणतन्त्रदिवस संवत् २०३०

मूल्य २५)

प्रकाशक : ज्ञानमण्डल लिमिटेड, वाराणसी—१
मुद्रक : ओम् प्रकाश कपूर, ज्ञानमण्डल लिमिटेड, वाराणसी—१ ७१६३-३०

समर्पण-पत्र

काशी-विद्यापीठके सभी सहयोगियों और विद्यार्थियों

को

सस्नेह अर्पित

नरेन्द्रदेव

विषय-सूची

पृष्ठ

पहला अध्याय

राष्ट्रीय आन्दोलनका इतिहास
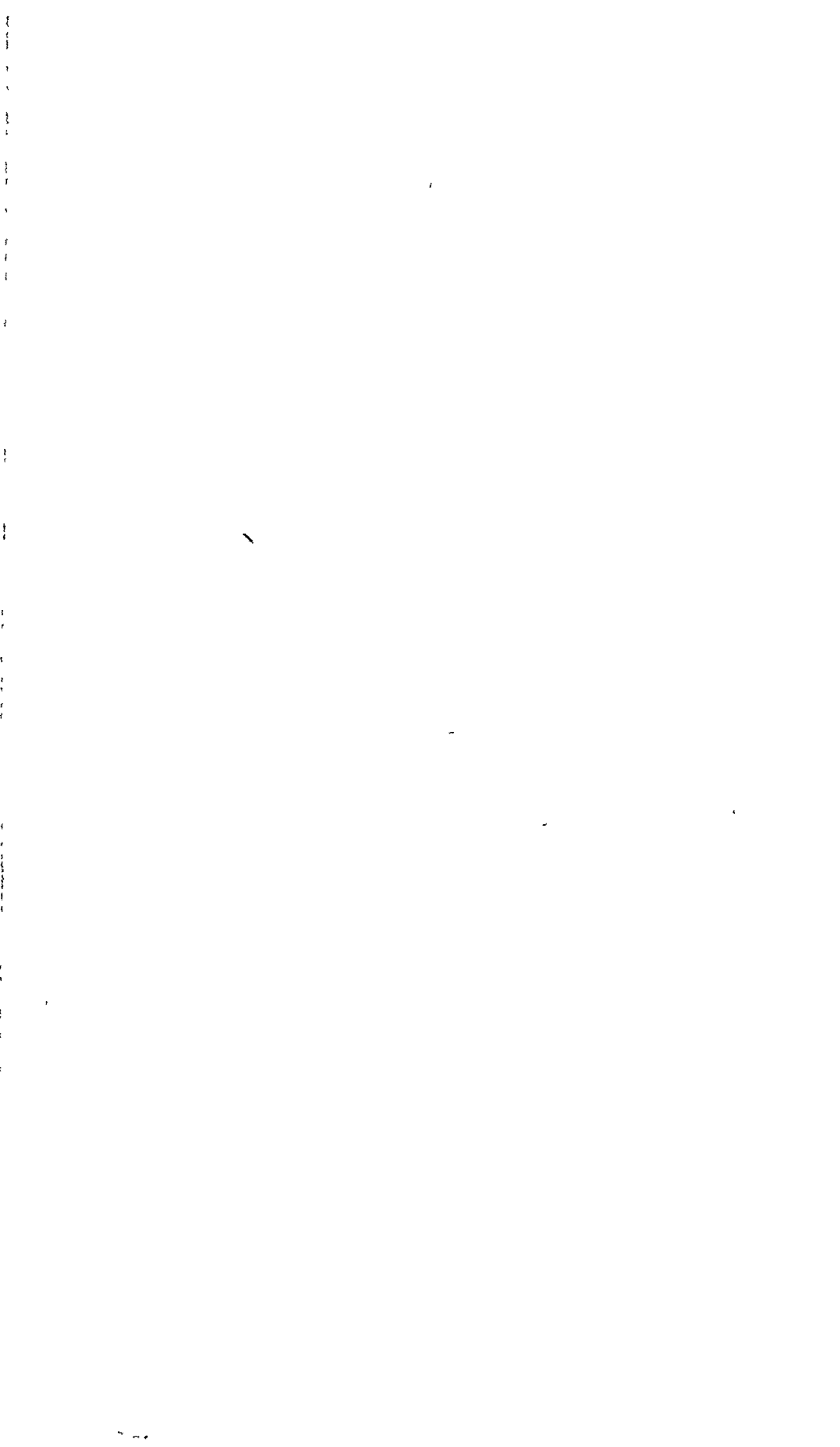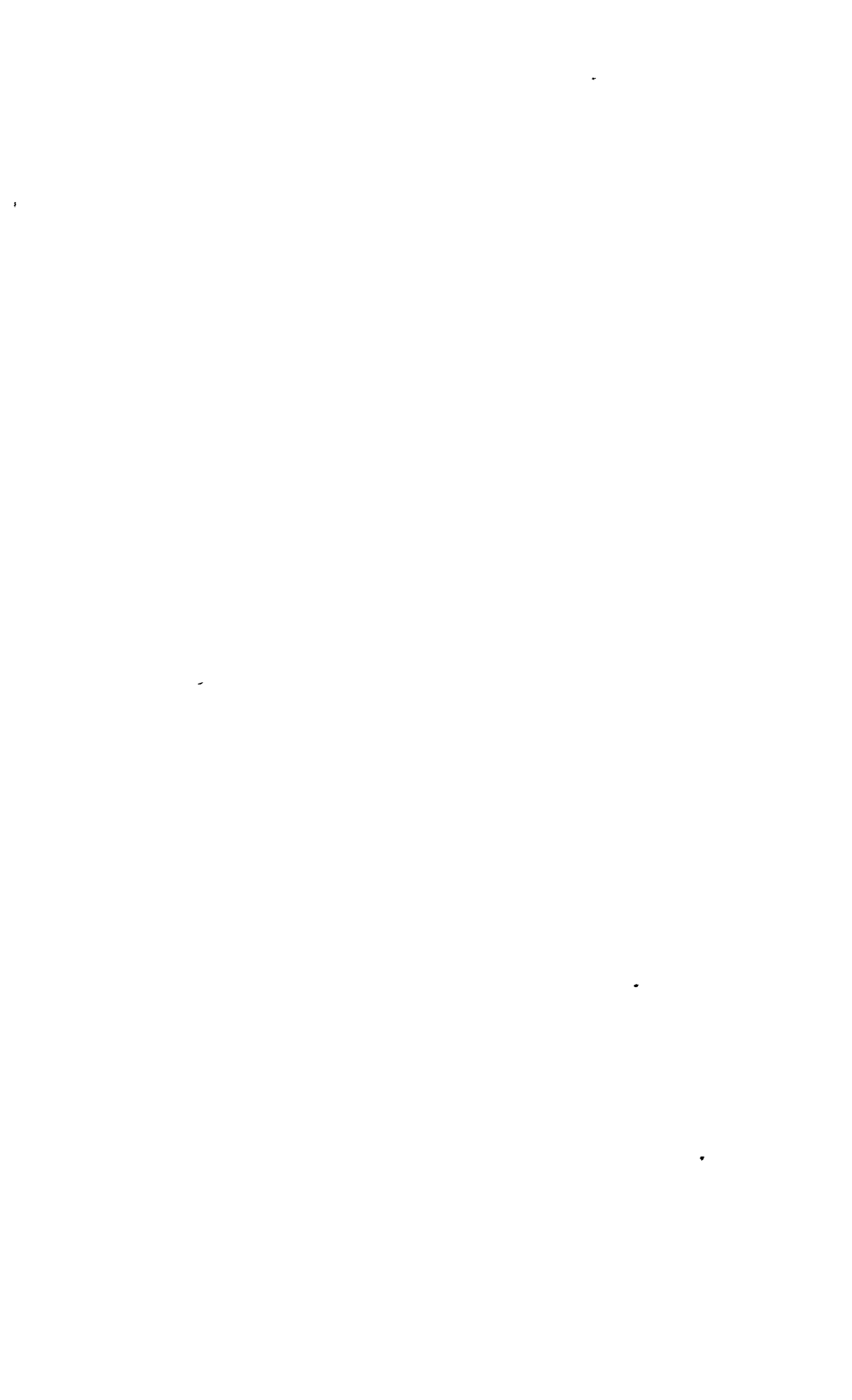
पहला अध्याय

भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलनका इतिहास

बहुत प्राचीनकालसे भारतवर्षसे विदेशोसे व्यापार हुआ करता था। यह व्यापार स्थल-मार्ग और जल-मार्ग दोनोसे होता था। इन मार्गोपर एकाधिकार प्राप्त करनेके लिए विविध राष्ट्रोमे समय-समयपर संघर्ष हुआ करता था। जब इस्लामका उदय हुआ और अरब, फारस, मिस्र और मध्य एशियाके विविध देशोमे इस्लामका प्रसार हुआ, तब धीरे-धीरे इन मार्गोपर मुसलमानोका अधिकार हो गया और भारतका व्यापार अरब-निवासियोके हाथमे चला गया। अफ्रीकाके पूर्वी किनारेसे लेकर चीन-समुद्रतक समुद्र-तटपर अरब व्यापारियोकी कोठियाँ स्थापित हो गयी। यूरोपमे भारतका जो माल जाता था वह इटलीके दो नगर—जिनोआ और वेनिससे जाता था। ये नगर भारतीय व्यापारसे मालामाल हो गये। वे भारतका माल कुस्तुन्तुनियाकी मण्डीमे खरीदते थे। इन नगरोकी धन-समृद्धिको देखकर यूरोपके अन्य राष्ट्रोको भारतीय व्यापारसे लाभ उठानेकी प्रबल इच्छा उत्पन्न हुई, पर व्यापारके मार्गोपर मुसलमान राष्ट्रोका अधिकार होनेके कारण वे अपनी इस इच्छाकी पूर्तिमे सफल न हो सके। बहुत प्राचीनकालसे यूरोपके लोगोका अनुमान था कि अफ्रीका होकर भारतवर्षतक समुद्र-द्वारा पहुँचनेका कोई-न-कोई मार्ग अवश्य है। चौदहवी शताब्दीमे यूरोपमे एक नये युगका प्रारम्भ हुआ। नये-नये भौगोलिक प्रदेशोकी खोज आरम्भ हुई। कोलम्बसने सन् १४९२ ईसवीमे अमेरिकाका पता लगाया और यह प्रमाणित कर दिया कि अटलाण्टिकके उस पार भी भूमि है। पुर्तगालकी ओरसे बहुत दिनोसे भारतवर्षके आनेके मार्गका पता लगाया जा रहा था। अन्तमे, अनेक वर्षोके प्रयासके अनन्तर सन् १४९८ ई० मे वास्को-डिगामा शुभाशा अन्तरीपको पार कर अफ्रीकाके पूर्वी किनारेपर आया; और वहाँसे एक गुजराती नियामकको लेकर मालाबारमे कालीकट पहुँचा। पुर्तगालवासियोने धीरे-धीरे पूर्वीय व्यापारको अरबके व्यापारियोसे छीन लिया। इस व्यापारसे पुर्तगालकी बहुत श्री-वृद्धि हुई। देखा-देखी डच, अंग्रेज और फ्रासीसियोने भी भारतसे व्यापार करना शुरू किया। इन विदेशी व्यापारियोमे भारतके लिए आपसमे प्रतिद्वन्द्विता चलती थी और इनमेसे हर एकका यह इरादा था कि दूसरोको हटाकर अपना अक्षुण्ण अधिकार स्थापित करे। व्यापारकी रक्षा तथा वृद्धिके लिए इनको यह आवश्यक प्रतीत हुआ कि अपनी राजनीतिक सत्ता कायम करे। यह सघर्ष बहुत दिनोतक चलता रहा और अंग्रेजोने अपने प्रतिद्वन्द्वियोपर विजय प्राप्त की और सन् १७६३ के बादसे उनका कोई प्रबल प्रतिद्वन्द्वी नही रह गया। इस बीचमे अंग्रेजोने कुछ प्रदेश भी हस्तगत कर लिये थे और बङ्गाल, बिहार, उड़ीसा और कर्नाटकमे जो नवाब राज्य करते थे वे अंग्रेजोके

हाथकी कठपुतली थे। उनपर यह वात अच्छी तरह जाहिर हो गयी थी कि अंग्रेजोंका विरोध करनेसे वे पदच्युत कर दिये जायँगे।

यह विदेशी व्यापारी भारतसे मसाला, मोती, जवाहिरात, हाथीदाँतकी वनी चीजें, ढाकेकी मलमल और आवेरवाँ, मुर्शिदावादका रेशम, लखनऊकी छीट, अहमदावादके दुपट्टे, नील आदि पदार्थ ले जाया करते थे और वहाँसे शीशेका सामान, मखमल, साटन और लोहेके औजार भारतवर्षमे वेचनेके लिए लाते थे। हमे इस ऐतिहासिक तथ्यको नही भूलना चाहिये कि भारतमे व्रिटिशसत्ताका आरम्भ एक व्यापारिक कम्पनीकी स्थापनासे हुआ। अंग्रेजोकी राजनीतिक महत्त्वाकांक्षा तथा चेष्टा भी इसी व्यापारकी रक्षा और वृद्धिके लिए हुई थी। आज भारतवर्षमे अंग्रेजोकी वहुत वड़ी पूँजी लगी हुई है। पिछले पचास-साठ वर्षोमे इस पूँजीमे वहुत तेजीके साथ वृद्धि हुई है। ६३४ विदेशी कम्पनियाँ भारतमे इस समय कारोवार कर रही है। इनकी वसूल हुई पूँजी लगभग साढे सात खर्व रुपया है और ५१६४ कम्पनियाँ ऐसी है जिनकी रजिस्ट्री भारतमे हुई है और जिनकी पूंजी ३ खर्व रुपया है। इनमेसे अधिकतर अग्रेजी कम्पनियाँ है। इङ्गलैण्डसे जो माल विदेशोको जाता है उसका दशमाश प्रतिवर्ष भारतवर्ष आता है। वस्त्र और लोहेके व्यवसाय ही इङ्गलैण्डके प्रधान व्यवसाय है और व्रिटिश राजनीतिमें इनका प्रभाव सवसे अधिक है। भारतपर इङ्गलैण्डका अधिकार वनाये रखनेमे इन व्यवसायोका सवसे वडा स्वार्थ है; क्योकि जो माल ये वाहर रवाना करते है उसके लगभग पञ्चमाशकी खपत भारतवर्षमे होती है। भारतका जो माल विलायत जाता है उसकी कीमत भी कुछ कम नही है। इङ्गलैण्ड प्रतिवर्ष चाय, जूट, रुई, तेलहन, ऊन और चमडा भारतसे खरीदता है। यदि केवल चायका विचार किया जाय तो ३६ करोड़ रुपया होगा। इन वातोपर विचार करनेसे यह स्पष्ट है कि ज्यो-ज्यो इङ्गलैण्डका भारतमे आर्थिक लाभ वढ़ता जाता है, त्यो-त्यो उसका राजनीतिक स्वार्थ भी वढ़ता जाता है।

उन्नीसवी शताव्दीके पहले इङ्गलैण्डका भारतपर वहुत कम अधिकार था और पश्चिमी सभ्यता तथा सस्थाओका प्रभाव यहाँ नहीके वरावर था। सन १७५० से पूर्व इङ्गलैण्डमें औद्योगिक क्रान्ति भी नही आरम्भ हुई थी। उसके पहले भारतवर्षकी तरह इङ्गलैण्ड भी एक कृपि-प्रधान देश था। उस समय इङ्गलैण्डको आजकी तरह अपने मालके लिए विदेशोमे वाजारकी खोज नही करनी पड़ती थी। उस समय गमनागमनकी सुविधाएँ न होनेके कारण सिर्फ हल्की-हल्की चीजे ही वाहर भेजी जा सकती थी। भारतवर्षसे जो व्यापार उस समय विदेशोसे होता था, उससे भारतको कोई आर्थिक क्षति भी नही थी। सन् १७६५मे जव ईस्ट इण्डिया कम्पनीको मुगल वादशाह शाहआलमसे वंगाल, विहार और उडीसाकी दीवानी प्राप्त हुई, तवसे वह इन प्रान्तोमे जमीनका वन्दोवस्त और मालगुजारी वसूल करने लगी। इस प्रकार सवसे पहले अग्रेजोने यहाँकी मालगुजारीकी प्रथामे हेर-फेर किया। इसको छोड़कर किसी पुरानी संस्थामें किसी प्रकारका भी परिवर्त्तन नही किया गया। उस समय पत्रव्यवहारकी भापा फारसी थी। कम्पनीके नौकर देशी राजाओसे फारसीमे ही पत्र-व्यवहार करते थे। फौजदारी अदालतोमे क़ाजी और मौलवी

मुसलमानी कानूनके अनुसार अपना निर्णय देते थे। दीवानीकी अदालतोंमें धर्म-शास्त्र और शरहके अनुसार पण्डितो और मौलवियोकी सलाहसे अग्रेज कलेक्टर मुकदमोका फैसला करते थे। जब ईस्टइण्डिया कम्पनीने शिक्षापर कुछ व्यय करनेका निश्चय किया, तो उनका पहला निर्णय अरबी, फारसी और संस्कृत-शिक्षाके पक्षमे ही हुआ। बनारसमे संस्कृत कालेज और कलकत्तेमे कलकत्ता मदरसाकी स्थापना की गयी। पण्डितो और मौलवियोको पुरस्कार देकर प्राचीन पुस्तकोके मुद्रित कराने और नवीन पुस्तकोके लिखानेका आयोजन किया गया। उस समय ईसाइयोको कम्पनीके राजमे अपने धर्मके प्रचार करनेकी स्वतन्त्रता नही प्राप्त थी। बिना कम्पनीसे लाइसेन्स प्राप्त किये कोई अंग्रेज न भारतवर्षमे आकर बस सकता था और न जायदाद खरीद सकता था। कम्पनीके अफसरोका कहना था कि यदि यहाँ अंग्रेजोको बसनेकी आम इजाजत दे दी जायगी तो उससे विद्रोहकी आशङ्का है, क्योकि विदेशियोके भारतीय धर्म और रस्म-रिवाजसे भलीभाँति परिचित न होनेके कारण इस बातका बहुत भय है कि वे भारतीयोके भावोका उचित आदर न करेंगे। देशकी पुरानी प्रथाके अनुसार कम्पनी अपने राज्यके हिन्दू और मुसलमान धर्म-स्थानोका प्रबन्ध और निरीक्षण करती थी। मन्दिर, मस्जिद, इमामबाड़े और खानकाहके आय-व्ययका हिसाब रखना, इमारतोकी मरम्मत कराना और पूजाका प्रबन्ध, यह सब कम्पनीके जिम्मे था। अठारहवी शताब्दीके अन्तसे ही इङ्गलैण्डके पादरियोने इस व्यवस्थाका विरोध करना शुरू किया। उनका कहना था कि ईसाई होनेके नाते कम्पनी विधर्मियोके धर्म-स्थानोका प्रबन्ध अपने हाथमे नही ले सकती। वे इस बातकी भी कोशिश कर रहे थे कि ईसाईधर्मके प्रचारमे कम्पनीकी ओरसे कोई बाधा नही होनी चाहिये। उस समय देशी ईसाइयोकी अवस्था बहुत शोचनीय थी। यदि कोई हिन्दू या मुसलमान ईसाई हो जाता था तो उसका अपनी जायदाद और बीबी एवम् बच्चोपर कोई हक नही रह जाता था। मद्रासके अहातेमे देशी ईसाइयोको बडी-बड़ी नौकरियाँ नही मिल सकती थी। इनको भी हिन्दुओके धार्मिक-कृत्योके लिए टैक्स देना पड़ता था। जगन्नाथजीका रथ खीचनेके लिए रथ-यात्राके अवसरपर जो लोग बेगारमे पकड़े जाते थे उनमे कभी-कभी ईसाई भी होते थे। यदि वे इस बेगारसे इन्कार करते थे तो उनको बेत लगाये जाते थे। इङ्गलैण्डके पादरियोका कहना था कि ईसाइयोको उनके धार्मिक विश्वासके प्रतिकूल किसी कामके करनेके लिए विवश नही करना चाहिये और यदि उनके साथ कोई रिआयत नही की जा सकती तो कमसे कम उनके साथ वही व्यवहार होना चाहिये जो अन्य धर्मावलम्बियोके साथ होता है। धीरे-धीरे इस दलका प्रभाव बढने लगा और अन्तमे ईसाई पादरियोकी माँगोको बहुत कुछ अशमे पूरा करना पड़ा। कानून बनाकर यह नियम कर दिया गया कि जो कोई धर्म-परिवर्त्तन करेगा उसको उसके फलस्वरूप अपनी जायदादसे हाथ नही धोना पड़ेगा। ईसाइयोको धर्म-प्रचारकी भी स्वतन्त्रता मिल गयी। अब राज-दरबारकी भाषा अग्रेजी हो गयी और अग्रेजी शिक्षाको प्रोत्साहन देनेका निश्चय हुआ। धर्म-शास्त्र और शरहका अग्रेजीमे अनुवाद किया गया और एक 'ला कमीशन' नियुक्त कर एक नया दण्ड-विधान और अन्य नये कानून तैयार

व्यवसायोके लिए जो पदार्थ विशेष रूपसे उपयोगी है उनकी पैदावार संसारके जिस किसी भू-भागमे प्रचुरतासे होती है उस भू-भागपर आधिपत्य प्राप्त करनेके लिए ये औद्योगिक राष्ट्र प्रयत्न करते है। यह बात प्रसिद्ध ही है कि कोयला, लोहा और तेलके कारण कितने ही गुट बने है और कितने ही युद्ध हुए है। उद्योग-व्यवसायकी वृद्धिका एक फल यह भी हुआ है कि प्रत्येक राष्ट्रकी पूंजी बहुत अधिक बढ गयी है। यह पूंजी यहाँतक बढ़ गयी है कि उसके एक भागको अपने ही देशमे बहुत मुनाफेके साथ नही लगाया जा सकता। जो पूंजी यदि फ्रासमे नयी रेलोके निर्माणमे लगायी जाय तो मुश्किलसे दो या तीन प्रतिशत मुनाफा मिलेगा, उसी पूंजीको यदि नये देशोमे लगाया जाय तो १० से २० प्रतिशत तक मुनाफा मिल सकता है। यही कारण है कि औद्योगिक राष्ट्रोकी बहुत बड़ी पूंजी विदेशोमे लगी हुई है।

इन विविध आर्थिक कारणोसे साम्राज्यवादका जन्म हुआ और उसी साम्राज्यवादका विरोध करनेके लिए भारत तथा एशियाके अन्य देशोमे राष्ट्रीयताका जन्म हुआ। चूंकि भारतका अंग्रेजी शिक्षित समुदाय ही अग्रेजी साहित्यके द्वारा यूरोपकी विचारधारा और इतिहाससे सबसे पहले परिचित हुआ था, इसलिए इसी वर्गने राष्ट्रीय आन्दोलनका सूत्रपात किया। जहाँ अंग्रेजी शिक्षाके आरम्भ होनेके पहले जमीन्दार और अच्छे और ऊँचे खानदानके लोग—जैसे नवाब और सरदार—समाजका नेतृत्व करते थे, वहाँ अंग्रेजी-शिक्षाके प्रतापसे धीरे-धीरे मध्यम श्रेणीके अग्रेजी शिक्षित वर्गका प्रभाव बढ़ने लगा। यद्यपि कुछ अग्रेज शासकोने मध्यम श्रेणीके बढते हुए प्रभावको रोकनेका प्रयत्न किया; तथापि वे प्रवाहके विरुद्ध जानेमे असफल हुए। पुराने खानदानोका प्रभाव दिनोदिन घटता गया और धीरे-धीरे मध्यम श्रेणीके लोगोने समाजका नेतृत्व ग्रहण करना शुरू किया।

जहाँ अग्रेजी शिक्षाका अधिक प्रचार था वहाँ भारतीयोकी समितियाँ कायम होने लगी। इन समितियोका उद्देश्य जनताकी शिकायतोको दूर करानेके लिए समय-समयपर सरकारको प्रार्थना-पत्र देना था। लोकमतको शिक्षित करनेके लिए इनकी स्थापना नही हुई थी। सन् १८५१ में कलकत्तेमे 'ब्रिटिश-इण्डियन-एसोसियेशन' और सन् १८५३में 'बम्बई-एसोसियेशन' और 'मद्रास-एसोसियेशन'की स्थापना हुई। सन् १८७० मे पूना-सार्वजनिक सभा कायम हुई। सन् १८७६ मे कलकत्तेमे श्री सुरेन्द्रनाथ बनर्जी और श्री आनन्दमोहन बोसके उद्योगसे 'इण्डियन एसोसियेशन' कायम हुआ। सन् १८८४ मे 'मद्रास एसोसियेशन'का स्थान महाजन-सभाने लिया। 'बम्बई एसोसियेशन' कुछ वर्ष काम करके बन्द हो गया था; परन्तु सन् १८८५ मे श्री बदरुद्दीन तैयबजी, श्री फिरोजशाह मेहता और श्री काशीनाथ त्र्यम्बक तैलङ्गके प्रयत्नसे 'बम्बई प्रेसीडेन्सी एसोसियेशन'के नामसे उसका फिरसे उद्धार हुआ। 'इण्डियन एसोसियेशन' और 'ब्रिटिश इण्डियन एसोसियेशन'के उद्देश्योमें बडा अन्तर था। 'इण्डियन एसोसियेशन' लोकमतकी शिक्षापर बहुत जोर देता था। इसके संस्थापकोने इङ्गलैण्डमे शिक्षा प्राप्त की थी और वहाँ रहकर उन्होने राजनीतिक आन्दोलनके महत्त्वको भलीभाँति समझ लिया था। वे सरकारके पास आवेदन-पत्र भेजकर ही सन्तुष्ट नही रहते थे। वे भारतमे वैध उपायो द्वारा औप-

निवेशिक स्वराज्यकी स्थापना चाहते थे। वे अंग्रेजी शासनके अनेक लाभोको स्वीकार करते थे और पक्के राजभक्त थे। वे इस वातको मुक्तकण्ठसे स्वीकार करते थे कि अभी भारतीयोंको स्वराज्यकी योग्यता प्राप्त नही हुई है, पर उनका कहना था कि सरकारका यह कर्तव्य है कि धीरे-धीरे शिक्षाका प्रचार कर भारतीयोको अधिकार दे और उन्हे इस वातके योग्य वनाया जाय कि वे अपने देशका शासन स्वयं कर सके। भारतीय सरकारकी नेकनीयतीपर भी आरम्भमे उनको कोई शक नही था। उनका यह भी खयाल था कि इङ्गलैण्डमे भी भारतके लिए आन्दोलन करना अत्यावश्यक है। वगालके कई जिलोमे तथा उत्तरी भारतकी कई जगहोमे 'इण्डियन एसोसियेशन' की शाखाएँ स्थापित की गयी। इङ्गलैण्डमे समय-समयपर डेपुटेशन भेजनेका भी प्रयत्न किया गया। श्री सुरेन्द्रनाथ वनर्जीपर मेजिनीके लेखोंका वहुत प्रभाव पड़ा था। इटलीकी स्वाधीनताका प्रश्न उनके समयमे एक जीता-जागता प्रश्न था। भारतीय एकताका विचार भी उन्होने मेजिनीसे ही सीखा था। भारतके भिन्न-भिन्न प्रान्तोके वीच स्नेह-सम्वन्ध स्थापित करनेका उन्होने उद्योग किया था। वम्वई, पूना और मद्रासकी संस्थाएँ प्रान्तीय थी, लेकिन 'इण्डियन एसोसियेशन' का कार्य केवल वङ्गालप्रान्तमे ही सीमित न था। 'इण्डियन एसोसियेशन' समस्त भारतके लिए एक राजनीतिक सस्थाकी स्थापना करना चाहता था। सन् १८८३ के दिसम्वर मासमें एसोसियेशनकी ओरसे कलकत्तेमे पहली राष्ट्रीय कान्फरेन्स की गयी थी जिसमे मद्रास, वम्वई और संयुक्तप्रान्तके प्रतिनिधि भी सम्मिलित हुए थे और यदि सन् १८८५ में ह्यूम और उनके मित्रोने काग्रेसकी स्थापनाका स्वतन्त्र निश्चय न किया होता तो भी सुरेन्द्रनाथ वनर्जीके उद्योगसे अखिल भारतीय राजनीतिक संस्थाकी प्रतिष्ठा होना निश्चित था। वनर्जीने मेजिनीसे यह भी सीखा था कि विना अपूर्व त्यागके कोई देश स्वाधीन नही हो सकता और देशके नवयुवकोसे ही अपूर्व त्यागकी आशा हो सकती है, क्योकि उनका हृदय जीवनकी कठोरता और कर्कशतासे कलुषित नही हो जाता है और वे आदर्शके लिए अपना सर्वस्व त्याग करनेके लिए भी उद्यत किये जा सकते है। जिस प्रकार मेजिनीने 'यंग इटली' नामक संस्थाकी स्थापना की थी उसी प्रकार वनर्जी महाशयने कलकत्तेमे विद्यार्थियोका एक सघ स्थापित किया। लोकमतको शिक्षित करनेके लिए उन्होने अग्रेजीमे 'वङ्गाली' नामक सामाचार-पत्र भी निकाला। 'इण्डियन एसोसियेशन' भारतीयोके अधिकारोकी रक्षाका निरन्तर प्रयत्न करता था। हमको यह वात ध्यानमे रखनी चाहिये कि ये सव राजनीतिक संस्थाएँ अग्रेजी शिक्षित मध्यम श्रेणीके लोगोकी ही थी। इसलिए वे प्राय: ऐसे ही प्रश्नोको लेकर आन्दोलन किया करती थी जिनका मध्यम श्रेणीके लोगोके स्वार्थ और लाभसे सम्वन्ध था।

जव लार्ड सेलसवरीने सिविल सर्विसकी परीक्षाके लिए २१ वर्षसे घटाकर १९ वर्षकी उम्रका नियम कर दिया तव इस नियमका इन सव संस्थाओने समान रूपसे विरोध किया। यह पहला ही अवसर था जव यह स्पष्ट हो गया कि अव भारतमे एक ऐसे वर्गका प्रादुर्भाव हो गया है जिसकी आकाक्षाएँ, जिसकी भावनाएँ एवम् जिसके विचार एक ही प्रकारके है। लार्ड लिटनके शासन-कालमे जव सन् १८७८ मे, 'वर्नाक्यूलर प्रेस एक्ट' पास हुआ

था, तव उसका भी एक स्वरसे विरोध किया गया। 'इण्डियन एसोसियेशन'ने इस सम्वन्धमे पार्लमेण्टको एक प्रार्थना-पत्र दिया था जिसको ग्लैडस्टनने पार्लमेंटमे पेश किया। पार्लमेण्टमे इस सम्बन्धमें वाद-विवाद हुआ, परन्तु ग्लैडस्टनका प्रस्ताव स्वीकृत नही हुआ। अफगान युद्धके सम्बन्धमे लिटनकी नीतिकी इङ्गलैण्डमें वहुत टीका-टिप्पणी हुई। इस प्रकार इङ्गलैण्डनिवासियोने भारतीय प्रश्नोमे दिलचस्पी लेना शुरू किया। भारत-सम्बन्धी तरह-तरहके प्रश्नोपर पार्लमेण्टमें वाद-विवाद होने लगा। ग्लैडस्टनने, जो कि लिवरल दलका नेता था, भारतीयोंका पक्ष लिया। लिवरल दल आयर्लैण्डके साथ सहानुभूति रखता था और उसकी सहायतासे ही आयर्लैण्डके कई कानून रद्द किये गये थे। इससे भारतीयोको यह आशा हो चली थी कि लिवरल दल भारतीयोंकी सहायता करेगा और जव इङ्गलैण्डके शासनकी वाग-डोर उसके हाथमें आयगी तो भारतके साथ न्याय किया जायगा। सन् १८८० मे जव लिवरल मंत्रिमण्डल शासनारूढ हुआ, तव भारतीयोने सन्तोष प्रकट किया। आरम्भमे भारतीय नेता कंजर्वेटिव और लिवरल दलमे कोई विवेक नही करते थे। वे इङ्गलैण्डके सव दलोसे समान रूपसे सहायता प्राप्त करनेकी चेष्टा करते थे। लेकिन जव उन्होने यह देखा कि लिवरल दल कंजर्वेटिव दलकी अपेक्षा अधिक उदार है और आयर्लैण्डके साथ न्याय करना चाहता है तो उनको लिवरल दलसे सहानुभूति प्राप्त करनेकी अधिक आशा वँधी।

जिस प्रकार वगालमे आनन्दमोहन वोस और सुरेन्द्रनाथ वनर्जी प्रधान कार्यकर्ता थे उसी प्रकार वम्वई प्रान्तमे फिरोज शाह मेहता, काशीनाथ तैलङ्ग, वदरुद्दीन तैयवजी, चन्दावरकर और वाचा आदि सज्जन प्रमुख कार्यकर्ता थे। श्री दादाभाई नौरोजी इनके नेता थे। दादाभाई नौरोजीके उद्योगसे इङ्गलैण्डमे 'ईस्ट इण्डिया एसोसियेशन' नामकी संस्था सन् १८६७ ईसवीमे कायम की गयी थी। उसी समय उन्होने वहाँ 'लन्दन इण्डिया सोसाइटी'के नामसे एक संस्था खोली। विद्यार्थी-अवस्थामे फिरोज शाह मेहता इस सस्थामे सम्मिलित हुए थे। इस समय हिन्दुस्तानकी गरीवीका प्रश्न एक विकट रूप धारण कर रहा था। भारतवर्षमे इस समय वार-वार अकाल पड़ते थे। सन् १८६८-६९ मे राजपूतानेमे, १८७३-७४ मे वङ्गाल और विहार प्रान्तमे, १८७६ से ७८ तक मद्रास और वम्वई प्रान्तमे अकाल पड़े। कई जगह किसानोके वलवे भी हो गये। इसलिए देशके नेताओका ध्यान भारतकी गरीवीके प्रश्नकी ओर आकृष्ट हुआ। दादाभाई नौरोजीने इस गरीवीके कारणोका अध्ययन किया और ग्रन्थ एवम् लेख लिखकर शिक्षित जनताका ध्यान इस ओर आकृष्ट किया।

हम ऊपर कह चुके है कि सन् १८८५ मे ह्यूमके उद्योगसे कांग्रेसकी स्थापना हुई थी। सन् १८८४ के दिसम्वर मासमे अडयार (मद्रास)मे थियासोफिकल सोसाइटीका वार्षिक अधिवेशन हुआ था। इस अधिवेशनमे भिन्न-भिन्न प्रान्तोके प्रतिनिधि तथा थियासोफिकल सोसाइटीसे सहानुभूति रखनेवाले मित्र एकत्रित हुए थे। इनमे सुरेन्द्रनाथ वनर्जी, काशीनाथ त्र्यम्वक तैलग और दादाभाई नौरोजीके नाम विशेषरूपसे उल्लेखनीय हैं। इन लोगोंने देशके सुधारके लिए एक राजनीतिक सस्था स्थापित करनेका विचार निश्चित किया

और एक गश्ती चिट्ठी इस आशयकी घुमायी कि इण्डियन नेशनल यूनियनकी कान्फरेन्स सन् १८८५के दिसम्बरमे पूनेमे होगी तथा सब प्रान्तोके अंग्रेजी पढ़े राजनीतिज्ञ प्रतिनिधि-रूपसे इस कान्फरेन्समे सम्मिलित हो सकेगे। यह कान्फरेन्स दो उद्देश्योको दृष्टिमे रखकर बुलायी गयी थी। पहला उद्देश्य भिन्न-भिन्न प्रान्तोके कार्यकर्ताओमें परिचय करानेका था। दूसरा उद्देश्य यह था कि अगले वर्षका राजनीतिक कार्य-क्रम स्थिर किया जाय। ह्यूम साहब कांग्रेसके पिता कहे जाते है। ये पहले इण्डियन सिविल सर्विसके एक सदस्य थे। इन्होने सिपाही-विद्रोहका जमाना देखा था। बार-बार अकाल पड़नेसे और अफगान-युद्धके कारण जनतामे अशान्ति बढ रही थी। उस समय रूस एशियामे इङ्गलैण्डका एक जबर्दस्त प्रतिपक्षी समझा जाता था। द्वितीय अफगान युद्धके छिड़नेपर बाज़ारोमे तरह-तरहकी अफवाहे फैलने लगी। लोग जावजा कहने लगे कि रूस भारतवर्षपर आक्रमण करेगा। वे रूसको इतना शक्तिशाली समझते थे कि यदि इङ्गलैण्ड और रूसके बीच कोई युद्ध छिड़ा तो उसमे रूस इङ्गलैण्डको हरा देगा। ह्यूम साहब साधुओसे अक्सर मिला करते थे और उनको इस बातका पता चला कि लोगोकी अशान्ति बढ़ रही है और उनको इसकी आशंका हुई कि कही सिपाही-विद्रोहकी पुनरावृत्ति न हो जाय। इसलिए उन्होने इस बातकी आवश्यकता समझी कि कुछ ऐसा प्रबन्ध होना चाहिये जिससे सरकारको जनताके हृद्गत भावोका पता चलता रहे और जनताकी अशान्ति विद्रोहका रूप न धारण कर वैध आन्दोलनका रूप धारण करे। इस कार्यके लिए उन्होने अंग्रेजी शिक्षित वर्गको उपयुक्त समझा; क्योकि वे समझते थे कि अंग्रेजी शिक्षितवर्ग ही एक ऐसी शृङ्खला है जो इङ्गलैण्ड और भारतके सम्बन्धको सुदृढ कर सकती है और वे यह भी जानते थे कि विदेशी शासक और अपढ जनताके बीच दुभाषियेका काम भी यही वर्ग कर सकता है। सन् १८८८ मे इलाहाबादकी कांग्रेसके अवसरपर ह्यूम महाशयने एक वक्तृतामे यह कहा था कि कांग्रेसका एक उद्देश्य यह भी है कि लोगोंकी मनोवृत्तिको इस प्रकार बदल दे जिसमे वह वाद-विवाद द्वारा पार्लमेण्टकी शैलीके अनुसार अपने देशका प्रबन्ध करना सीखे। इससे स्पष्ट है कि ह्यूम साहबने कांग्रेसकी स्थापनाको इङ्गलैण्डके स्वार्थके लिए ही आवश्यक समझा था। उनका यह खयाल बहुत ठीक था। अंग्रेजी-शिक्षाके प्रभावकी चर्चा करते हुए ट्रैविलियन अपनी पुस्तकमे लिखता है—'संयुक्तप्रान्त और बंगालके ऊँची श्रेणीके लोगोके राजनीतिक विचारोमे मैंने एक बडा भारी अन्तर पाया है। संयुक्तप्रान्तमे, जहाँ अंग्रेजी-शिक्षाका अभी आरम्भ ही हुआ है, लोग केवल एक ही प्रकारसे अर्थात् अंग्रेजोंको निकालनेसे ही अपनी राजनीतिक अवस्थाका सुधार सम्भव समझते है। इसके विपरीत बंगालमे, जहाँ अंग्रेजी-शिक्षाका काफी प्रसार हो चुका है, लोग किसी-न-किसी रूपकी प्रतिनिधि-सत्तात्मक शासन-प्रणालीको ही अपना आदर्श समझते हैं। इसमे सन्देह नही कि दोनो प्रकारसे अंग्रेजी राज्यका अन्त होना निश्चित है। लेकिन दोनो प्रकारोमे यह एक बडा अन्तर है कि जहाँ एक प्रकारमे हमारी सरकारका तत्काल ही अन्त करना अभीष्ट है वहाँ दूसरे प्रकारमे इस बातको स्वीकार कर लिया जाता है कि बहुत दिनोतक हमारे शासनकी आवश्यकता बनी रहेगी और ज्यो-ज्यो

जनता अपनेमें शासनकी योग्यता प्रतिपादित करती जायगी त्यों-त्यों अधिकाधिक अधिकार उसको प्राप्त होते जायँगे।'[1] ह्यू म साहबने गवर्नर-जनरल लार्ड डफरिनसे भी इस सम्बन्धमें सलाह की और उनकी अनुमति प्राप्त की। इङ्गलैण्डमे पेशनयाफ्ता एंग्लो-इण्डियनोंसे भी मशविरा किया गया और सबका आशीर्वाद लेकर इस कार्यका सूत्रपात हुआ। लार्ड डफरिनका खयाल था कि इस प्रकार बढते हुए असन्तोषको रोककर कुछ वर्षोंके बाद इस संस्थाको बन्द कर देगे।

हैजेके प्रकोपके कारण पहला अधिवेशन पूनेमें न होकर बम्बईमें श्री उमेशचन्द्र बनर्जीकी अध्यक्षतामें हुआ। संस्थाका नाम 'इण्डियन नेशनल कांग्रेस' रखा गया। इस अधिवेशनमे ७२ प्रतिनिधि उपस्थित थे। कई सरकारी अहलकार भी सलाह-मशविरेके लिए मौजूद थे, यद्यपि सरकारी नौकर होनेकी वजहसे वे प्रतिनिधिकी हैसियतमे काररवाईमें भाग नहीं ले सकते थे। उस समय सरकारी नौकरोंके लिए दर्शकरूपसे ऐसे अधिवेशनोंमें सम्मिलित होनेकी मनाही न थी। सन् १८८६ मे जो कांग्रेस कलकत्तेमे हुई थी उसके प्रतिनिधियोंको लार्ड डफरिनने दावत भी दी थी।

आरम्भमे कांग्रेसका उद्देश्य शुद्ध राजनीतिक न था। वह सब प्रकारके सुधारके लिए उद्योग करना चाहती थी। लेकिन सन् १८८६ की कांग्रेसमे दादाभाई नौरोजीने सभापतिकी हैसियतसे इस बातकी घोषणा की कि कांग्रेस एक शुद्ध राजनीतिक संस्था है और उसको उन सामाजिक प्रश्नोंसे कोई सम्बन्ध नही है जिनके बारेमे मतभेद पाया जाता है। ज्यो-ज्यो कांग्रेसका प्रभाव शिक्षित-समुदायमें बढ़ने लगा और प्रचार-कार्यका विस्तार होने लगा त्यो-त्यो सरकारका विरोध भी आरम्भ होने लगा। सन् १८८८ मे जब कांग्रेसका अधिवेशन प्रयागमे हुआ था तब अधिकारीवर्गके विरोधके कारण स्थानके मिलनेमें प्रबन्धकोंको बहुत दिक्कत उठानी पड़ी थी। मुसलमानोंको कांग्रेससे अलग रखनेकी कोशिश भी इसी समय शुरू हुई। मुसलमानोंके नेता सय्यद अहमद खाँ मुसलमानोंको राजनीतिसे अलग रखना चाहते थे। इसके कई कारण थे। पहले तो वे सरकारको अपने सम्प्रदायका विरोधी नही बनाना चाहते थे। सिपाही-विद्रोहके पश्चात् सरकार मुसलमानोंसे बहुत नाराज थी, क्योंकि उन्होंने इस विद्रोहमे अच्छा खासा हिस्सा लिया था। मुसलमानोंने अंग्रेजी-शिक्षासे लाभ नही उठाया, क्योंकि उनका खयाल था कि उनके लड़के यदि अंग्रेजी स्कूलोंमे पढ़ने जायँगे तो नास्तिक बन जायँगे। अंग्रेजी-शिक्षासे विमुख रहनेका दूसरा कारण यह था कि इन अंग्रेजी स्कूलोंमे धार्मिक शिक्षाका कोई प्रबन्ध न था और अध्यापक प्रायः हिन्दू या ईसाई होते थे। बाज लोगोंका यह भी खयाल था कि शरहके अनुसार अंग्रेजी-शिक्षा प्राप्त करना मना है। उनकी यह भी धारणा थी कि अंग्रेजी-शिक्षासे कोई लाभ नही है और उससे उनका नैतिक अधःपतन ही होगा। अंग्रेजी न पढ़नेके कारण मुसलमानोंको सरकारी नौकरियाँ नही मिलती थीं। बहुतोंकी जमीन्दारियाँ जब्त कर ली गयी थीं। मुगल सल्तनतके नष्ट हो जानेके कारण उनको फौजमें अब ऊँचे-ऊँचे

१. On Education of the People of India (1838). पृष्ठ २००

ओहदे भी नही मिलते थे। एक प्रकारसे मुसलमानोकी आर्थिक अवस्था इस समय बहुत हीन हो गयी थी। हिन्दुओने अंग्रेजी-शिक्षासे पूरा लाभ उठाया और इसलिए सरकारी नौकरियाँ विशेषकर उनको ही मिलती थी। सन् १८२३ मे वहावियोने सिक्खोके खिलाफ जिहादकी घोषणा की थी। इससे अंग्रेजोका यह खयाल हुआ कि मुसलमान-धर्म विधर्मियोके विरुद्ध जिहाद करनेकी शिक्षा देता है। सय्यद अहमद खाँ सरकारी मुलाजिम रह चुके थे। इन्होने कई पुस्तके लिखकर इस बातके दिखलानेकी कोशिश की कि सिपाही-विद्रोहमे मुसलमानोने हिन्दुओकी अपेक्षा अधिक हिस्सा नही लिया था और उस समय भी बहुतसे मुसलमानोने सरकारकी सहायता की थी। उन्होने यह भी दिखलाया कि इस्लाम विधर्मी राजाओके प्रति भी राजभक्त रहनेकी शिक्षा देता है और जिहाद केवल ऐसे राजाके विरुद्ध ही घोषित किया जा सकता है जिसके राज्यमे मुसलमानोको धार्मिक स्वतन्त्रता प्राप्त न हो। उन्होने मुसलमानोको अंग्रेजी शिक्षाके लिए प्रोत्साहित किया। अंग्रेजोकी भी इस समय यही धारणा हो रही थी कि मुसलमानोके विरोधके परिहारका यदि कोई उपाय है तो यही है कि उनको अंग्रेजी शिक्षा प्राप्त करनेके लिए तैयार किया जाय। सैयदअहमद खाँने अलीगढमे 'मोहमडन एंग्लो ओरिएण्टल कालेज'की स्थापना की जहाँ और विषयोके साथ-साथ इस्लाम धर्मकी शिक्षाका भी प्रबन्ध किया गया था। लार्ड नार्थ ब्रुकने इस सस्थाको दस हजार रुपया दानमे दिया और लार्ड लिटनने सन् १८७७ मे शिलान्यास-सस्कार किया। सैयद अहमद खाँका कहना था कि मुसलमानोको अपनी सारी शक्ति शिक्षाके कार्यमे लगा देनी चाहिये। उनका खयाल था कि जबतक मुसलमान शिक्षित नही हो जाते तबतक वे काग्रेसके आन्दोलनके फलस्वरूप जो अधिकार उनके देशवासियोको प्राप्त होगे उनसे लाभ नही उठा सकेगे। इसके अतिरिक्त कांग्रेसमें सम्मिलित होनेसे सरकार भी मुसलमानोसे नाराज होगी। इन विविध कारणोसे उन्होने मुसलमानोको काग्रेसमे शरीक होनेसे रोका।

उस समयके काग्रेसके नेता ब्रिटिश सरकारकी नेकनीयतीपर विश्वास रखते थे और उनका यह खयाल था कि ज्यो-ज्यो भारतीय अपनेमे योग्यता प्रतिपादित करते जायँगे त्यों-त्यो सरकार उनके न्यायोचित अधिकार उनको प्रदान करती जायगी। उनका विश्वास था कि भारतमे अंग्रेजोका आगमन इतिहासकी एक आकस्मिक घटना नही है; बल्कि भारतके कल्याणके लिए ही ईश्वरकी प्रेरणासे इस जातिका यहाँ आगमन हुआ है। ब्रिटिश शासन उनकी दृष्टिमे एक अच्छा शासन था। इसने देशमे शान्ति स्थापित की थी और उनको यह आशा थी कि अंग्रेजी शिक्षाके प्रचारसे देशका अन्धकार दूर होगा। वह अपने समाजकी दुर्बलताको अच्छी तरह पहचानते थे। वह देखते थे कि भारतीय अशिक्षित है और उनमे अनेक सामाजिक कुरीतियाँ पायी जाती है। उनका विचार था कि भारतवासी अभी इस योग्य नही है कि अपने देशका राज्य-प्रबन्ध स्वय कर सकें। ह्यूम महाशयने अपनी इलाहाबादकी वक्तृतामें कहा था कि हमसे यह कहा जाता है कि काग्रेसके लोग शासनकी बागडोर अपने हाथमे लेना चाहते है, पर सच्ची बात यह है कि काग्रेसवाले ही सबसे ज्यादा इस बातको पहचानते है कि भारतीय किसी प्रकार भी शासन

करनेकी योग्यता अभी नही रखते और इसीलिए वे भारत और इङ्गलैण्डके सम्बन्धको दृढ़ बनानेके लिए परम उत्सुक हैं। काग्रेसके नेताओको राजभक्त होनेका बड़ा गर्व था। लार्ड लिटनके समयमे जब 'वर्नाक्युलर प्रेस ऐक्ट' पास हुआ था तब बनर्जी महाशयने यह कहकर उसका विरोध किया था कि इससे भारतीयोकी राजभक्तिपर धब्बा लगता है। उन्होने रानी विक्टोरिया तथा इङ्गलैण्डके राजनीतिज्ञोंके सन्देश और वक्तृताओसे उद्धरण देकर इस बातको प्रमाणित करनेकी चेष्टा की थी कि भारतीयोंकी राजभक्ति असन्दिग्ध है। ब्रिटिश शासकोकी घोषणाओपर उनका बड़ा विश्वास था और वे सदा अपने समर्थनमे इनको पेश किया करते थे। धीरे-धीरे उनकी मोह-निद्रा टूटने लगी और वे वास्तविक स्थितिको समझने लगे। लार्ड रिपनके शासनकालके ठीक बाद ही काग्रेसका जन्म हुआ था। लार्ड रिपन एक लोकप्रिय शासक थे। भारतीयोका पक्ष लेकर वह अंग्रेजोमे बहुत बदनाम हो गये थे। स्थानीय स्वायत्त-शासनकी नीव उन्होने डाली थी। कांग्रेसकी स्थापनामें लार्ड डफरिनकी भी सम्मति थी। एक अंग्रेज महाशयने ही काग्रेसको जन्म दिया था। जिस स्थितिमें काग्रेसकी स्थापना हुई वह अंग्रेजोंके बहुत अनुकूल थी। सरकारकी सहानुभूतिको देखकर उनको सहज ही विश्वास होता था कि भारतीय सरकार शिक्षित समुदायके उद्देश्योसे सहानुभूति रखती है। जब इलबर्ट बिलका घोर विरोध एंग्लो-इण्डियन समुदायने किया तो भारतमे रहनेवाले अंग्रेज व्यापारी और सम्पादकोसे उनको कोई आशा न रही। आगे चलकर जब सरकारने काग्रेसका विरोध करना शुरू किया तब उनकी यह भी धारणा होने लगी कि भारतीय सरकारसे हमको न्यायकी आशा न रखनी चाहिये। काग्रेस प्रतिवर्ष जिन प्रस्तावोको पास करती थी उनका कोई भी प्रभाव भारतीय सरकारपर नही पड़ता था। उनकी एक साधारण मॉंग भी पूरी न की जाती थी। काग्रेस चाहती थी कि फौजका खर्च घटा दिया जाय, भारतकी गरीबीके कारणोका अनुसन्धान किया जाय, भारतमे भी सिविल सर्विसकी परीक्षाका प्रबन्ध हो, नमक-कर घटाया जाय, व्यवस्थापक सभाओके सदस्योकी सख्यामे वृद्धि की जाय, नाम-जदगीके साथ-साथ चुनावका क्रम भी चलाया जाय और इन सभाओंके सदस्योको सरकारसे प्रश्न पूछने तथा बजटपर वाद-विवाद करनेका अधिकार दिया जाय। चूँकि वे एँग्लो-इण्डियनोको भारतवासियोका विरोधी समझते थे, इसलिए कांग्रेसने यह भी प्रस्ताव किया कि इण्डिया-कौंसिल तोड दी जाय, पर इन प्रस्तावोमेसे एक भी प्रस्ताव स्वीकृत न हुआ। सन् १८९२ के पहले शासन-सम्बन्धी सुधार भी नही हुए थे और सन् १८९२ मे जो सुधार किये गये थे वह काग्रेसकी मॉंगसे कही कम थे। भारतीय सरकारके रवैयेको देखकर सन् १८८९ मे काग्रेसके नेताओने यह निश्चय किया कि इङ्गलैण्डमे बड़े पैमानेपर आन्दोलन करना चाहिये। इङ्गलैण्ड-निवासियोसे उनको न्यायकी आशा थी। सन् १८८९ मे इङ्गलैण्डमे काग्रेसकी ब्रिटिश कमेटी कायम की गयी। बादको 'इण्डिया पार्ले-मेण्टरी कमेटी'का संगठन किया गया और 'इण्डिया' नामक पत्र प्रकाशित किया गया। लेकिन धीरे-धीरे कुछ लोग इस विचारके होने लगे कि केवल वक्तृताओ और प्रस्तावोसे कुछ होनेका नही है। धीरे-धीरे ब्रिटिश सरकारपरसे विश्वास उठने लगा और इस ध्रुव

सत्यका उदय होने लगा कि जो अपने पैरोंपर नही खडा होता उसकी ईश्वर भी सहायता नही करता। लार्ड कर्जनके शासनकालमे कई ऐसी घटनाएँ हुई जिनसे इस विचारके लोगोकी संख्यामे तेजीके साथ वृद्धि होने लगी। कर्जनके समयमे भारत महामारी तथा अकालसे कई वार पीडित हुआ था। जनताकी आर्थिक दशा भी शोचनीय थी। गल्लोके मँहगे हो जानेसे नौकरी पेशा लोग कष्टमे थे। जनताकी अशान्ति बढती जाती थी। सरकारको विवश होकर आर्थिक अवस्थाकी जाँच करानी पडी और अकालके समय कई प्रकारसे सहायता पहुँचानेके सम्बन्धमे नियम भी वनाने पडे। सन् १९०१ में कृषि-विभाग खोला गया और सन् १९०४ मे सहयोग समितिका कानून पास हुआ, पर इन छोटे-छोटे सुधारोसे कोई विशेष लाभ नही पहुँचा। यह सुधार मौलिक नही थे। काग्रेसका इस सम्वन्धमे कुछ और ही मन्तव्य था। काग्रेसका कहना था कि जवतक वन्दोवस्त हर जगह स्थायी नही हो जाता और इङ्गलैण्डको जो धन भारतसे जाता है उसका जाना वन्द नही होता तवतक भारतवर्षकी गरीवी दूर नही हो सकती। आज हम इस वातको अच्छी तरह समझ सकते है कि काग्रेसने उस समय भारतकी गरीवी दूर करनेके जो उपाय उचित समझे थे उनसे उद्देश्यकी सफलता नही हो सकती थी। इन उपायोको प्रयोगमे लानेसे अधिकतर जमीन्दार और मध्यम श्रेणीके लोगोको ही फायदा पहुँच सकता था। इससे उनकी मनोवृत्तिका पता अवश्य चलता है। सन् १९०१ से काग्रेस औद्योगिक शिक्षापर भी जोर देने लगी। सन् १९०१ मे प्रथम बार काग्रेसके साथ-साथ एक प्रदर्शिनी भी हुई थी।

लार्ड कर्जन उच्च कोटिकी शिक्षापर सरकारी नियन्त्रण चाहते थे। उस समय विश्वविद्यालयोके सिनेट और सिण्डिकेटमे भारतीयोका अच्छा प्रभाव था। वह इन संस्थाओका पुनः सगठन कर उनके प्रभावको घटाना चाहते थे। सन् १९०४मे 'यूनि-वर्सिटीज ऐक्ट' पासकर ऐसी व्यवस्था की गयी जिससे गरीवोके लिए ऊँची शिक्षाका प्राप्त करना कठिन हो गया। सिण्डिकेटके अधिकार नियमित कर दिये गये। शिक्षा-संस्थाओके कडे निरीक्षणका प्रवन्ध किया गया। शिक्षा-विभागके डाइरेक्टर-जनरलकी नयी जगह कायम की गयी। भारतीयोकी यही धारणा हुई कि सरकार इन उपायोद्वारा विश्वविद्यालयोकी स्वतन्त्रता छीनना चाहती है और उनको सरकारी विभागमे परिणत करना चाहती है। इस कानूनसे अग्रेजी शिक्षितवर्गमे वड़ा असन्तोप फैला; क्योकि उन्होने इस विधानका यह अर्थ लगाया कि सरकार उनके वढते हुए प्रभावको रोकना चाहती है। लार्ड लिटनकी तरह लार्ड कर्जन भी अग्रेजी शिक्षित भारतीयोको तिरस्कारकी दृष्टिसे देखते थे। कलकत्ता विश्वविद्यालयके पदवी-दान-समारम्भके अवसरपर लार्ड कर्जनने चान्सलरकी हैसियतसे जो वक्तृता दी थी उसमे उन्होने भारतीय सभ्यतामे छिद्रान्वेषण किया था। उनका कथन था कि भारतीयोको सत्यका वैसा आग्रह नही है जैसा यूरोपियनोको होता है। एक प्रकारसे पूर्वी सभ्यतापर ही उन्होने आक्रमण किया था। इससे हिन्दुस्तानियोको वहुत चोट लगी और बहुत मानसिक क्लेश पहुँचा। सन् १९०५ में वग-विच्छेद कर कर्जनने मानो बढ़ती हुई अशान्तिकी आगमें पूर्णाहुति दी। सरकारका

कहना था कि शासनकी सुविधाकी दृष्टिसे ही बंगालके दो टुकड़े किये जाते हैं, पर बङ्गालियोंके विचारमे इसमे एक गहरा उद्देश्य छिपा हुआ था। उनका खयाल था कि इस प्रकार सरकार बङ्गालियोंकी शक्तिको क्षीण और कलकत्तेकी राजनीतिक प्रधानताको नष्ट करना चाहती है। पूर्वीय बगाल और आसामका एक नया प्रान्त बनाकर बंगाली मुसलमानोको सरकार यह दिखलाना चाहती थी कि उन्हींके लाभके लिए बंग-विच्छेद किया जा रहा है। बंगालियोंने इस निश्चयका घोर विरोध किया। पहले जगह-जगह सभा कर और आवेदनपत्र भेजकर सरकारको जनताके रोप और असन्तोपसे परिचित कराया। बंगालियोंने दृढ-सकल्प कर लिया कि हम बंगालका विच्छेद न होने देंगे। जब प्रार्थना और विनयसे काम न चला तो बंगाली नेताओंने स्वदेशी वस्तुओंके प्रचार और विलायती वस्तुओंके बहिष्कारका आन्दोलन आरम्भ किया। उन्होंने यह समझा कि अंग्रेजोका मुख्य स्वार्थ व्यापार है और जबतक इस स्वार्थपर आघात न पहुँचाया जायगा तबतक सरकार जनताकी प्रार्थनाको न सुनेगी। बंगालमे एक अपूर्व-जागृतिके चिह्न दिखलायी पड़ने लगे। 'वन्देमातरम्'के पवित्र शब्द हर जगह सुनायी देने लगे। स्वदेशी और बायकाटकी धूम मच गयी। काग्रेसने बगालके नेताओके इस निर्णयको स्वीकार किया और अन्य प्रान्तोने भी बगालके साथ सहानुभूति दिखलायी। इसी समय कांग्रेसमें एक नये दलकी प्रतिष्ठा हुई जिसे लोग गरम दलके नामसे पुकारने लगे। मिस्रमें भी राष्ट्रवादियोमे 'इन्तिहा पसन्द' नामक एक दल था। अंग्रेज सम्पादकोने शायद मिस्रकी देखा-देखी भारतीय दलोका ऐसा नामकरण किया था। इस समय काग्रेसमे नरम दलका आधिपत्य था। गरम दलके प्रमुख नेताओंमें लोकमान्य तिलक, श्री विपिनचन्द्र पाल, श्री अरविन्द घोष और लाला लाजपतराय थे। इस दलका प्रभाव बंगाल और महाराष्ट्रमें विशेष रूपसे था। धीरे-धीरे इस दलके अनुयायी बढने लगे। यह दल आत्म-निर्भरतामें विश्वास करता था। इस दलका कहना था कि अपने ही प्रयत्न और परिश्रमसे, न कि दूसरोपर आश्रित होकर, दासताके बन्धनसे कोई जाति मुक्त हो सकती है। राजनीतिके क्षेत्रमे जहाँ नरम दलका ध्येय औपनिवेशिक स्वराज्य था वहाँ गरम दलका ध्येय पूर्ण स्वतन्त्रता था। नरम दल वैध उपायोंद्वारा ही अपने उद्देश्योकी पूर्ति चाहता था। इसके विरुद्ध गरम दलका कहना था कि जो देश परतन्त्र है उसके पास कोई शासन-विधान नही है जो उसको मान्य हो सके। उनका यह कहना था कि प्रत्येक देशको इस बातका पूरा अधिकार है कि वह सब प्रकारके उपायोद्वारा अपनी स्वतन्त्रता अर्जित करे। पर भारतकी वर्तमान स्थितिको देखते हुए हमारे लिए यह उपयुक्त न होगा कि हम सरकारके कानूनको तोड़ें, पर समय आनेपर यदि हम ऐसा करें और हमको सफलता मिले तो इतिहास हमारे कार्योंकी प्रशंसा ही करेगा और इस कार्यके लिए हम दोपी न ठहराये जावेंगे। वह राष्ट्रीय आन्दोलनको एक आध्यात्मिक आन्दोलन समझते थे। उनको अपने देशवासियोंपर विश्वास था। वह समझते थे कि जातिकी सूत्रात्मा इस आन्दोलनद्वारा अपनेको परिपूर्ण करेगी। उनका विश्वास था कि दृढ संकल्प, आत्मत्याग और सङ्गठनद्वारा राष्ट्रका उत्थान अवश्यम्भावी है और किसी-न-किसी दिन इस अभागे देशमे भी स्वराज्यकी स्थापना होगी।

इस दलके कई नेता धार्मिक प्रवृत्तिके थे और वे अपने देशके उज्ज्वल भविष्यमे पूर्ण विश्वास रखते थे। उन्होने रचनात्मक कार्य आरम्भ कर दिया। देशी कारखाने जगह-जगह खुलने लगे। राष्ट्रीय पक्षके समाचार-पत्र प्रकाशित होने लगे और आन्दोलनने एक तीव्र रूप धारण किया। सन् १६०६ की कलकत्ता-कांग्रेसमें श्री दादाभाई नौरोजीने 'औपनिवेशक शासन' इन शब्दोका प्रयोग न कर पहले-पहल स्वराज शब्दका प्रयोग किया था। धीरे-धीरे यह एक मन्त्र हो गया। लोकमान्यका कहना था कि स्वराज्य हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है और हम उसको प्राप्त करेगे। इस समय एक ऐसी घटना हुई जिससे सारा संसार विशेषकर एशियाके देश प्रभावित हुए। ८ फरवरी, १६०४ को रूस-जापानका युद्ध आरम्भ हुआ। इस युद्धमे जापानने रूस ऐसे बलशाली यूरोपीय राष्ट्रको पराजित किया। अवतक वार-वार विताडित होनेके कारण एशियावासियोकी यह धारणा हो गयी थी कि वे यूरोपके राष्ट्रोका मुकाविला नही कर सकते। एशियाके करीव-करीव सव राष्ट्र यूरोपके साम्राज्यवादियोके आतकसे त्रस्त थे। जापान ऐसे छोटे देशने यूरोपके एक विशाल राष्ट्रपर विजय प्राप्त की – इस घटनाने भारत आदि देशोको अत्यन्त प्रभावित किया। एशियावासी यूरोपकी शक्तिका रहस्य समझ गये। उन्हे मालूम हुआ कि यदि हम भी यूरोपका अनुकरण कर शक्तिका संचय करे तो उससे अवश्य टक्कर ले सकते है। उनको अपने ऊपर विश्वास हुआ और मायाका परदा हट गया। इसी समयसे एशियाके पददलित और दुर्वल देशोमे राष्ट्रीयताकी एक नयी लहर प्रवाहित हुई और स्वाभिमानकी रेखा लक्षित होने लगी। चीनने अपने घरका सुधार करना शुरू किया। यूरोपीय पद्धतिके अनुसार सन् १६०५ मे सेनाकी शिक्षा आरम्भ हुई। नवीन शिक्षाका आयोजन किया गया। शासन-प्रणालीमे आवश्यक परिवर्तन करनेके विचारसे अमेरिका, जापान और यूरोपके देशोमे शासन-विधानोका अध्ययन करनेके लिए एक कमीशन नियुक्त हुआ। सन् १६०८ मे एक घोषणा की गयी कि ६ वर्षके उपरान्त प्रतिनिधि सत्तात्मक शासनकी स्थापना की जावेगी और इस वीचमें देशको इन सुधारोके लिए तैयार किया जायगा। सन् १६०६ मे फारसके शाहको शासन-विधान वदलना पड़ा जिसके अनुसार एक मजलिसकी स्थापना करनेकी घोषणा की गयी। इसको वहुतसे अधिकार दिये गये। फारसका राष्ट्रीय दल यूरोपीय शक्तियोसे अपने देशकी रक्षा करना चाहता था और शासनमें सुधार करनेकी उसकी उत्कट अभिलाषा थी। सन् १६०५मे रूसमे क्रान्ति हुई और जारको शासनमे सुधार और ड्यूमाकी स्थापना करनी पडी। सन् १६०८ मे तुर्क युवकोने तुर्कीमे एक क्रान्ति की जिसका फल यह हुआ कि सुलतान अव्दुल हमीद पदच्युत किये गये। जापान उस समय एशियाके दुर्वल राष्ट्रोका संरक्षक समझा जाता था। सव जगह शासन-सुधारकी चर्चा आरम्भ हो गयी। जहाँ स्वेच्छाचारी राजा थे वहाँ वैध शासनकी स्थापनाका उद्योग किया गया। यूरोपकी राष्ट्रीयताका सर्वत्र प्रचार होने लगा। विदेशियोसे अपने देशको वचानेकी भावना काम करने लगी। भारत भी इन व्यापक प्रभावोसे वच न सका। यहाँ भी इन नवीन विचारोका उपक्रम हुआ। क्षेत्र तैयार हो चुका था। जापानकी विजयसे देशभक्तोको

एक नवीन स्फूर्ति मिली । लोगोंके बुझे हुए दिल रोशन हो गये और जहाँ ग्लानि और निराशाका साम्राज्य था वहाँ आशाकी क्षीण रेखा दिखायी पड़ने लगी । स्वदेशीका प्रचार बढ़ने लगा । कलकत्तेके विद्यार्थियोंने विदेशी मालकी दूकानोंपर धरना देना आरम्भ किया । हर साल दुर्गापूजाके अवसरपर कलकत्तेके मारवाड़ी अगले वर्षके लिए मैंचेस्टरके एजेण्टोंसे लाखों रुपयोंका सौदा करते थे, पर सन् १९०५ में एक भी सौदा नहीं हुआ । विद्यार्थियोंको आन्दोलनसे पृथक् रखनेके लिए कार्लाइल सर्क्युलर निकाला गया । इस सर्क्युलरके अनुसार स्कूल और कालेजके विद्यार्थियोंको सूचित किया गया कि यदि वे दूकानोंपर धरना देंगे या राजनीतिक सभाओं या जलूसोंमें शरीक होंगे या वन्दे मातरम्का घोष करेंगे तो उनको दण्ड दिया जायगा । वन्देमातरम्का उच्चारण इतना गुरुतर अपराध समझा जाता था कि इसीके लिए रंगपुर स्कूलके सब विद्यार्थियोंपर जुर्माना किया गया था । जब विद्यार्थियोंने जुर्माना देनेसे इनकार किया तब वे स्कूलसे निकाल दिये गये । फल यह हुआ कि इस घटनाके लगभग एक सप्ताहके भीतर ही रंगपुरमें एक राष्ट्रीय विद्यालयकी स्थापना हो गयी । कार्लाइल सर्क्युलरके जवाबमें नेताओंने शिक्षा-कार्यको अपने हाथमें लेनेका विचार किया । कलकत्तेमें एक राष्ट्रीय महाविद्यालय खोला गया ।

किसी-किसी जिलेमें स्वदेशी और बहिष्कारका विशेष रूपसे प्रचार था । इस सम्बन्धमें बारीसालकी एक घटना उल्लेखनीय है । बारीसालमें श्री अश्विनीकुमार दत्तका बड़ा प्रभाव था । उनका प्रभाव जनतापर यहाँतक था कि बिना उनकी अनुमतिके किसीको बाजारमें एक गज भी विलायती कपड़ा नहीं मिल सकता था । एक बार सरकारी खजानेके अंग्रेज मैनेजरको कुछ विलायती कपड़ा खरीदनेकी जरूरत पड़ी । जब उनको बाजारमें कपड़ा न मिला तो उन्होंने पुलिस सुपरिंटेंडेंटकी सहायता चाही । पुलिसका प्रयत्न भी निष्फल हुआ । इसकी शिकायत जिला मजिस्ट्रेटसे की गयी । जिला मजिस्ट्रेटने पत्र लिखकर अश्विनी बाबूसे अनुमति देनेकी प्रार्थना की । अश्विनी बाबूकी अनुमतिसे दूकानदारने उस अंग्रेजके हाथ कपड़ा बेचना स्वीकार किया । अश्विनी बाबूका यह प्रभाव सरकारको बहुत अखरा । उस समय पूर्वी बंगाल और आसामके लेफ्टिनेंट गवर्नर फुलर साहब थे । यह राष्ट्रीय पक्षके लोगोंसे बहुत नाराज थे । एक बार जब यह ढाका गये थे तब वहाँके विद्यार्थियोंने उनके स्वागतका बहिष्कार किया था और यह शहरसे बाहर पिकनिकके लिए चले गये थे । जब उन्हें बारीसालकी स्थिति मालूम हुई तो वह फौरन लार्ड कर्जनसे मिलनेके लिए आगरेके लिए रवाना हुए । वहाँ लार्ड कर्जनसे परामर्श कर भविष्यकी नीति निर्धारित की गयी । आसामकी गुरखा मिलिटरी पुलिसको बारीसाल जानेका तारद्वारा आदेश दिया गया । जब फुलर साहब बारीसाल गये तब उन्होंने अश्विनी बाबू तथा उनके सहकारियोंका खुले तौरसे अपमान किया । सरकारको यह दिखलाना था कि जिन अश्विनी बाबूपर लोग इतना निर्भर करते हैं और जिनको वे अपना नेता मानते हैं उनकी सरकारकी निगाहमें कोई कीमत नहीं है और सरकारकी शक्तिके सामने वह एक तिनकेके बराबर हैं । इसी समय बारीसालमें कान्फरेंस हुई थी जिसमें

बङ्गालके बड़े-बड़े नेता सम्मिलित हुए थे । एक जुलूस निकाला गया था । जुलूसके लिए कोई आज्ञा नही ली गयी थी, पर राह चलतोको कोई तकलीफ न हो इस खयालसे आधी सडक खाली छोड दी गयी थी । पुलिसने जुलूसको तितर-वितर करनेके लिए जुलूसपर लाठी-प्रहार शुरु किया । किसीने बुजदिली नही दिखलायी । दृढताके साथ लोग इस प्रहारको सहन करते रहे । इस प्रकार सरकार उनका अपकर्ष न कर सकी । पूर्वी बगालके कुछ जिलोमे अदालतोका भी बहिष्कार किया गया था और पचायते कायम कर दी गयी थी । बगालके गरम दलके नेता 'बहिष्कार'का व्यापक अर्थ करते थे । बहिष्कारसे केवल विदेशी मालका बहिष्कार नही समझा जाता था । बहिष्कारका अर्थ था सरकारसे धीरे-धीरे अपना सम्बन्ध विच्छिन्न कर लेना । श्री विपिनचन्द्र पालने—जो उस समय राष्ट्रीयताके ऋषि समझे जाते थे—मद्रासके अपने एक व्याख्यानमे कहा था कि हम इस बातका प्रयत्न करेगे कि लोग धीरे-धीरे सरकारसे सहयोग करना छोड दे । उन्होने इसे स्वीकार किया कि यह सम्भव नही है कि सब लोग सरकारकी नौकरी छोड़ दे, पर बहिष्कारसे एक लाभ अवश्य होगा कि सरकारी नौकरोका आज जो असाधारण आदर और सम्मान है वह बहुत घट जायगा । उनका कहना था कि सरकारी नौकरोका सामाजिक बहिष्कार करके उनका प्रभुत्व नष्ट किया जा सकता है । पाल महाशय तो सरकारके मुकाबलेमे अपना स्वतन्त्र शासन-चक्र स्थापित करना चाहते थे । उनकी शिक्षा थी कि हमको गांवो और जिलोका सगठन करना चाहिये और अपने अन्दर शक्ति पैदा कर धीरे-धीरे उन सारी संस्थाओको स्थापित करना चाहिये जो आज सरकारद्वारा सचालित हो रही है । सरकारकी ओरसे दमन जोरोसे शुरु हो गया । आन्दोलनको दबानेके लिए कई नये कानून बनाये गये । १९०७ मे राजनीतिक सभाओको रोकनेके लिए एक कानून बनाया गया । इसी वर्ष लाला लाजपतराय और सरदार अजीतसिहको १८१८ के रेगुलेशन ३ के अनुसार देश-निर्वासनका दण्ड दिया गया । इस दमनके कारण देशमे विप्लवकारियोका एक दल भी पैदा हो गया । कई राजनीतिक हत्याएँ हुई । इसलिए सरकारने कई और कानून बनाये । समितियोको बन्द करनेके लिए और पड्यन्त्रके मुकद्दमोमे सरसरी फैसला करनेके लिए १९०८ मे 'क्रिमिनल ला अमेण्डमेण्ट एक्ट' पास हुआ । जुलाई १९०८ मे लोकमान्य तिलकको ६ वर्ष कारावासका दण्ड मिला और बगालके नौ प्रसिद्ध नेता दिसम्बर मासमे निर्वासित कर दिये गये । १९१० मे 'प्रेस एक्ट' पास करके प्रेसकी स्वतन्त्रता छीन ली गयी । इसके पहले ही १९०७ मे सूरतकी काग्रेसके अवसरपर नरम और गरम दलके बीच झगडा हो गया था । गरम दल काग्रेससे अलग हो गया । १९१६ तक नरम दलका काग्रेसपर एकाधिकार रहा । लोकमान्य १९१४ मे जब माण्डले जेलसे छूटकर वापस आये तो उन्होने दलका फिरसे सगठन किया और श्रीमती एनी बेसेण्टके उद्योगसे १९१६मे दोनो दलोमे एकता हो गयी ।

लार्ड कर्जनके उत्तराधिकारी लार्ड मिण्टो इस बातको अच्छी तरह समझते थे कि भारतवासियोको और अधिकार दिये बिना देशका असन्तोप दूर नही किया जा सकता । उन्होने १९०६ मे ही इस बातपर बहुत जोर दिया था कि सरकारको अपनी इच्छासे स्वयं

सुधारोकी सिफारिश करनी चाहिये और लोगोको इस वातके कहनेका अवसर नही देना चाहिये कि भारतीय सरकार केवल ब्रिटिश सरकारके दवावसे अथवा आन्दोलनके प्रभावसे विवश होकर ही कुछ करनेको तैयार होती है। इसीलिए उन्होने १६०६मे सुधारोंपर विचार करनेके लिए अपनी कौंसिलकी एक उपसमिति नियुक्त की थी। नया कानून १६०६ मे वना। इसके अनुसार प्रान्तीय व्यवस्थापक सभाओंमे ही गैर सरकारी सदस्योका वहुमत रखा गया। केन्द्रीय व्यवस्थापक सभापर सरकार अपना अक्षुण्ण अधिकार रखना चाहती थी। इसलिए केन्द्रीय व्यवस्थापक सभामे सरकारी सदस्योका ही वहुमत रखा गया। सुधारके सम्वन्धमे भारत-सरकारकी ओरसे प्रान्तीय सरकारोके पास जो सरकुलर भेजा गया था उसमे यह वात स्पष्ट कर दी गयी थी कि इस सुधार-योजनामें ब्रिटिश-अधिकार और प्रभुत्वके परित्याग करने या उसे कम करनेका कोई विचार नही है। इन व्यवस्थापक सभाओके सदस्योकी संख्यामे भी वृद्धि की गयी। सदस्योको विल और प्रस्ताव उपस्थित करनेका अधिकार मिला। वजटपर वाद-विवाद करनेका इन्हें पूरा मौका दिया गया, लेकिन इन सभाओको कोई वास्तविक अधिकार प्राप्त न थे। सरकार इनके स्वीकृत प्रस्तावोको भी रद्द कर सकती थी, इसलिए इन्हे एक प्रकारकी वाद-विवाद सभाएँ ही समझना चाहिये। यद्यपि इन सुधारोमे कुछ सार न था; तथापि नरम दलके नेताओने उस समय इन सुधारोकी वड़ी प्रशंसा की थी और उन्हे उदारतापूर्ण वतलाया था। इन सुधारोके द्वारा एक वात अवश्य हुई कि चार-पाँच भारतवासियोको भारत-सचिवकी इण्डिया-कौंसिल, गवर्नर-जनरल और प्रान्तकी कार्यकारिणी समितिकी सदस्यता मिली। यह स्पष्ट है कि इन सुधारोसे सामान्य जनताको कोई लाभ नही हुआ। कुछ सालके अनुभवके पश्चात् नरम दलके नेताओको भी ये सुधार अपर्याप्त प्रतीत हुए। इस नयी योजनाके वनाते समय सरकारने इस वातपर ध्यान रखा था कि अंग्रेजी शिक्षित हिन्दुओका प्रभाव घटाया जाय। भारतीय सरकारके जिस सर्कुलरका हमने ऊपर उल्लेख किया है उसमे यह कहा गया था कि सरकार ऐसे वर्गोको विशेषाधिकार देकर राजनीतिके क्षेत्रमें लाना चाहती है जो हर प्रकारके परिवर्त्तनसे घवराते है और जिनकी यह कोशिश रहती है कि वर्तमान परिस्थिति सदाके लिए अपरिवर्त्तित रूपसे कायम रहे। इस दृष्टिसे उसने यह आदेश दिया कि सुधारकी कोई योजना वर्त्तमान समयकी आवश्यकताओको पूरा नही कर सकती जवतक कि उसमें वड़े जमीन्दार, व्यापारी और व्यवसायियोके उचित प्रतिनिधित्वकी व्यवस्था न की जाय। मुसलमान प्राय कांग्रेससे अलग रहे और वे राजभक्त समझे जाते थे। इस समय मुसलमान अपनी जातिमे शिक्षाका प्रचार करनेमे संलग्न थे। १८८६मे 'मोहमडन एजुकेशनल कान्फरेन्स'का आरम्भ हुआ जिसका अधिवेशन वर्पमे एक वार हुआ करता था। उनकी कोई राजनीतिक संस्था न थी। लार्ड मिण्टो मुसलमानोंको विशेष प्रतिनिधित्व देना चाहता था। लार्ड मिण्टोके संकेतपर ही १६०६ मे सर आगा खांके नेतृत्वमे मुसलमानोका एक डेपुटेशन मिण्टोसे मिला था। मौलाना मुहम्मदअलीने कोकोनाडा कांग्रेसके अवसरपर सभापतिकी हैसियतसे जो भापण किया था उसमे इस रहस्यको खोला था। मार्ले साहवने भी अपने सस्मरणोमें

इसका उल्लेख किया है। लार्ड मिण्टोने मुसलमानोको आश्वासन दिलाया कि नये शासन-विधानमे मुसलमानोके स्वत्त्वोकी रक्षाका पूरा-पूरा ध्यान रखा जायगा और पृथक् निर्वाचनद्वारा अपनी सख्यासे अधिक प्रतिनिधि चुननेका अधिकार उनको दिया जायगा। १९०६ मे ही लार्ड मिण्टोके प्रोत्साहनसे मुस्लिम लीगकी स्थापना हुई। इसका उद्देश्य भारतमे वसनेवाली अन्य जातियोके साथ स्नेह-भाव रखते हुए अपनी जातिके स्वत्त्वोकी रक्षा करना था। लीगके उद्देश्योमे मुसलमानोकी राजभक्तिकी घोपणा की गयी थी। इस प्रकार पृथक् निर्वाचनकी प्रथाका आरम्भ हुआ। इससे साम्प्रदायिक भावोको उत्तेजना मिली और मुसलमानोकी देखा-देखी १९०९ मे पंजावमे प्रान्तीय हिन्दू-सभाकी स्थापना हुई और यह निश्चय हुआ कि अगले वर्ष अखिल भारतवर्षीय हिन्दू-सभाका आयोजन किया जाय। मुस्लिम लीगके अधिवेशनोकी काररवाईको देखनेसे यह प्रत्यक्ष है कि मुसलमानो-मे साम्प्रदायिक भावनाकी वृद्धि होती चली गयी और वे हिन्दुओकी शक्ति और प्रभावको कम करनेके उपाय सोचने लगे। उदाहरणके लिए सन् १९१० मे मुस्लिम लीगने यह प्रस्ताव किया कि अगली मनुष्य-गणनामे अछूतोको हिन्दू न लिखा जाय। उनका तर्क यह था कि अछूतोको हिन्दुओमे सम्मिलित करनेसे अछूतोका काफी नुकसान होता है। उनकी शिक्षाकी कोई व्यवस्था नही की जाती और हिन्दू निर्वाचन-क्षेत्रमेसे वे अपने सच्चे प्रतिनिधियोको भी नही चुनवा सकते। इसके अतिरिक्त मुसलमानोका भी नुकसान होता है; क्योकि इस प्रकार हिन्दुओको अपनी संख्यासे अधिक प्रतिनिधित्व मिल जाता है। उन्होने इस आशयका एक प्रार्थना-पत्र भी सरकारकी सेवामे भेजा, पर हिन्दुओके घोर विरोधके कारण उनका आशय पूरा न हो सका। आगे चलकर कुछ ऐसी घटनाएँ उपस्थित हुईं जिनके कारण मुसलमानोके भाव धीरे-धीरे सरकारके प्रतिकूल होने लगे। कांग्रेस इस समय निस्तेज हो गयी थी और दमनके कारण राष्ट्रीय आन्दोलनकी गति मन्द पड़ गयी थी। गरम दलके प्रमुख नेता और कार्यकर्त्ता या तो जेलमें वन्द कर दिये गये थे या समयको अनुकूल न समझकर विदेश चले गये थे। इसलिए सरकारको इस समय हिन्दुओसे कोई भय न था; तथापि वङ्गालके हिन्दुओके असन्तोषको दूर करनेके लिए १९११ मे वङ्ग-भङ्ग रद्द कर दिया गया। इससे मुसलमानोकी आँखे खुली। वे अव धीरे-धीरे समझने लगे कि केवल हिन्दुओको दुर्वल करनेके अभिप्रायसे ही सरकारने मुसलमानोसे मित्रता वढायी थी। वङ्ग-भङ्गके समय मुसलमानोसे कहा गया था कि तुम्हारे लाभके लिए ही वगालके दो टुकड़े किये जाते हैं। पूर्वी वङ्गाल और आसामके प्रान्तमे मुसलमानोकी जन-सख्या हिन्दुओसे अधिक थी। ढाका इसकी राजधानी थी। अंग्रेजोकी हुकूमतके पहले वगालकी राजधानी मुर्शिदावाद थी और ढाका उसका एक प्रसिद्ध नगर था। उनकी पुरानी स्मृतियाँ जागृत हो गयी थी और उनको यह आशा वँध गयी थी कि अपने जातीय विकासके लिए उनको उचित क्षेत्र मिल गया है, पर वङ्ग-भङ्गके रद्द होनेसे इस आशापर पानी फिर गया। इसलिए मुसलमान सरकारसे वहुत असन्तुष्ट थे। इधर यूरोपमे सन् १९१२–१३ मे तुर्कीका ईसाई ताकतोसे युद्ध छिड़ गया। यह युद्ध वालकन-युद्धके नामसे इतिहासमे प्रसिद्ध है। यह युद्ध मुसलमान और

ईसाइयोका युद्ध था । इस युद्धमे ब्रिटिश सरकारने ईसाइयोका साथ दिया । हिन्दुस्तानके मुसलमानोकी सहानुभूति स्वभावत तुर्कीसे थी ; क्योकि तुर्कीका सुलतान संसारके मुसलमानोका खलीफा था और तुर्की इस्लामकी तलवार समझा जाता था । हिन्दुस्तानके मुसलमानोंने जखमी तुर्कोंकी सेवाके लिए बहुत-सा धन एकत्र किया और एक मिशन भी कुस्तुन्तुनिया भेजा । यहाँ वे तुर्कीके राष्ट्रवादी युवकोंके सम्पर्कमे आये । सन् १९०८ मे तुर्कीमे क्रान्ति हुई थी । इस क्रान्तिके नेता वे राष्ट्रवादी युवक तुर्क थे जिन्होंने फ्रांस या इङ्गलैण्डमे शिक्षा पायी थी । हिन्दुस्तानी मिशनके सदस्योंने इनसे यह सबक सीखा कि ब्रिटिश परराष्ट्र-नीतिका एक उद्देश्य इस्लामकी ताकतको कमजोर करना है । उन्होंने यह बतलाया कि अंग्रेजोके कारण मुसलमानोकी अवस्था बहुत शोचनीय हो गयी है । मिस्र अंग्रेजोके कब्जेमे है । फारसके सम्बन्धमे अंग्रेजोने रूससे समझौता कर लिया है कि उत्तरी फारसमे रूसका और दक्षिणी फारसमे अंग्रेजोंका प्रभाव रहेगा । मरक्कोके सम्बन्धमे भी अंग्रेजोंने फ्रांससे तस्फिया कर लिया है । अबतक हिन्दुस्तानके मुसलमानोका खयाल था कि इङ्गलैण्ड तुर्कीका मित्र है, क्योकि सन् १८५४ और १८७७ मे इङ्गलैण्डने रूसके विरुद्ध उसकी सहायता की थी, लेकिन सन् १९१२–१३ मे जो व्यवहार इङ्गलैण्डने तुर्कीके साथ किया उससे इनकी यह धारणा दूर हो गयी । उस समय इस्लाम-जगत्‌मे एक जागृति हो रही थी और सब मुसलमानोको एक सूत्रमे ग्रथित कर देनेकी चेष्टा की जा रही थी । इस आन्दोलनको 'पान इस्लामिजम' कहते हैं । यूरोपके राष्ट्रोंके आक्रमणसे इस्लामकी रक्षा करनेके लिए ही इस आन्दोलनका जन्म हुआ था । सय्यद जमालुद्दीन अफगानी इस आन्दोलनका जन्मदाता समझा जाता है । इसका जन्म सन् १८३८ में हुआ था । इसका बाल्यकाल अफगानिस्तानमें व्यतीत हुआ । बुखारामें इसने शिक्षा प्राप्त की । वह अपने समयमें इस्लाम-जगत्‌का एक प्रसिद्ध दार्शनिक और पण्डित समझा जाता था । उसने कुछ दिनोतक कैरोके अलअजहर नामक विश्वविद्यालयमे अध्यापकका काम किया था । मिस्रके नवयुवकोपर उसका बहुत बडा प्रभाव था । उसने नवयुवकोंमे राष्ट्रीयताका प्रचार किया । उसके धार्मिक विचार बड़े उदार थे । वह शासन और धर्ममे सुधार करनेका पक्षपाती था । अरबीपाशा, जिसने सन् १८८२ मे विदेशियोके विरुद्ध मिस्रमे आन्दोलन किया था, जमालुद्दीनका भक्त था । अधिकारिवर्ग जमालुद्दीनपर शक करता था । इसलिए सन् १८७९ मे वह मिस्रसे निकाल दिया गया । वह कुछ समयतक भारतवर्षमे भी रहा । फारसके शाह नसीरुद्दीनके निमन्त्रणपर वह फारस गया । वहाँ भी उसने प्रभावशाली लोगोमे नवीन विचार फैलाये । जमालुद्दीनकी सलाहसे तुर्कीके सुलतान अब्दुल हमीदने खिलाफतकी सस्थाका पुनरुज्जीवन किया और इस प्रकार यूरोपीय शक्तियोके विरुद्ध इस्लाम-जगत्‌की सहानुभूति प्राप्त की । खिलाफतका पुराना गौरव नष्ट हो गया था । अब्दुल हमीदने इसके गौरवको फिरसे प्रतिष्ठित कर अपनी शक्ति बढायी । सुलतानके दूत जगह-जगह खिलाफतका प्रचार करते फिरते थे । धीरे-धीरे सुलतान खलीफा स्वीकार किये जाने लगे और मुसलमान तुर्कीको इस्लामकी तलवार समझने लगे । जमालुद्दीन सन् १८९२में कुस्तुन्तुनियामे बस गया और वहीं

सन् १८९७ में उसकी मृत्यु हुई। मिस्र, फारस और तुर्कीमे जो जागृति हुई उसकी आधार शिला रखनेवाला जमालुद्दीन ही समझा जाता है। सन् १९१२-१३ के वालकन युद्धने भारतमे भी 'पान इस्लामिज्मके' भावको प्रवल कर दिया। इस आन्दोलनका मुख्य अभिप्राय ही यूरोपीय जातियोका विरोध करना था। भारतके जो मुसलमान इस आन्दोलनसे प्रभावित हुए, वे अंग्रेजोके भी विरोधी हो गये। इन लोगोने मुसलिम लीगपर कब्जा कर लिया और उसकी नीति वदल दी। आरम्भमे लीगकी स्थापना कांग्रेसका विरोध करनेके लिए हुई थी। सरकारका उद्देश्य इस वातको दिखलाना था कि मुसलमान केवल कांग्रेससे अलग ही नही है, वल्कि गवर्नमेंटके साथ है। मुसलिम लीगने अवतक राजनीतिक सुधारोके लिए कोई उद्योग नही किया था, पर सन् १९१३ मे लीगका उद्देश्य औपनिवेशिक स्वराज्यकी प्राप्ति हो गया। हिन्दू-मुसलमानोकी मैत्री वढने लगी। कांग्रेस और लीगके वार्षिक अधिवेशन एक ही स्थानपर होने लगे। मुसलमान भी समझने लगे कि यदि हिन्दू-मुसलमान एक साथ मिलकर कार्य करे तो देशकी राजनीतिक उन्नति सुगमतासे हो सकती है। सर आगा खाँ सभापतिके पदसे अलग हो गये और लीगमे उन्नत विचारके लोगोका प्रभुत्व हो गया। सन् १९१५ मे गोखले और फीरोजशाहकी मृत्युसे नरम दलकी शक्ति क्षीण हो गयी। सन् १९१६ मे नरम दल और गरम दलमे मेल हो गया और लखनऊमे दोनो दलोका संयुक्त अधिवेशन हुआ। धीरे-धीरे कांग्रेसमें गरम दलका प्रभाव वढने लगा। सन् १९१६ में लोकमान्य तिलक और श्रीमती एनीवेसेण्ट-ने अपने-अपने होमरूल लीगकी स्थापना की। देशमे एक व्यापक आन्दोलन आरम्भ हो गया। सन् १९१४ मे योरोपीय महासमरका आरम्भ हुआ था। इसके कारण देशमें वहुत अशान्ति थी। विप्लववादियोके आन्दोलनकी भी गति तीव्र हो गयी थी। जर्मनी-की सहायतासे विप्लववादी इङ्गलैण्डके शासनको नष्ट करना चाहते थे। अमेरिकाकी गदर पार्टीकी ओरसे भेजे हुए वहुत-से सिख विप्लव करनेके लिए भारत आये। वङ्गाल और पंजावमे जगह-जगह राजनीतिक डकैतियाँ और हत्याएँ होने लगी। क्रान्तिका दिन भी निश्चित हो गया। २१ फरवरी सन् १९१५को एक ही समय कई स्थानोमे विप्लव होना निश्चित हुआ था, पर सरकारको इसका पता चल जानेसे यह योजना असफल रही। सन् १९१५ मे सरकारने विप्लवका दमन करनेके लिए 'डिफेंस आफ इण्डिया ऐक्ट' पास किया और इसके अनुसार वहुतसे विप्लवकारी नजरवन्द कर लिये गये। होमरूलका आन्दोलन देहातोमे भी फैलने लगा। सन् १९१७ में श्रीमती ऐनीवेसेण्ट नजरवन्द कर ली गयी। लखनऊ कांग्रेसके पहले ही वडी व्यवस्थापक सभाके १९ सदस्योने सुधारकी एक योजना प्रकाशित की थी। सन् १९१६मे कांग्रेस और मुसलिम लीगकी ओरसे एक संयुक्त मॉंग पेश की गयी। इसी अवसरपर हिन्दू-मुसलमानोने प्रतिनिधित्वके सम्वन्धमे एक समझौता कर लिया था जिसके अनुसार हिन्दुओने कई प्रान्तोमे मुसलमानोको उनकी संख्यासे कही अधिक प्रतिनिधित्व देना स्वीकार किया था। यह समझौता 'लखनऊ पैक्ट'के नामसे प्रसिद्ध है। अमेरिकाको युद्धमे सम्मिलित करनेके लिए और भारतीयोको आश्वासन देनेके लिए भारत-सचिव माटेगूको २० अगस्त सन् १९१७ को पार्लमेटमें एक

वक्तव्य देना पड़ा। इस वक्तव्यमें उन्होंने यह घोषित किया कि भारतको ब्रिटिश साम्राज्य-के अन्तर्गत क्रमशः दायित्वपूर्ण शासन प्रदान करना ब्रिटिश नीतिका उद्देश्य है। इस यात्रामे कितने विश्रामस्थान होगे, इसका निर्णय करनेका अधिकार ब्रिटिश गवर्नमेंटके अधीन रहेगा। अंग्रेजोकी ओरसे यह कहा जाता था कि वे सत्य, न्याय और संसारकी स्वतन्त्रताके लिए लड रहे हैं। ब्रिटिश सरकार इस युद्धमें अमेरिकाको अपने पक्षमें करना चाहती थी। सयुक्तराष्ट्र अमेरिकाके प्रेसीडेंट उडरो विल्सन उदार विचारके एक व्यक्ति थे। वह छोटे राष्ट्रोंकी स्वतन्त्रताकी रक्षा करना चाहते थे और उनका यह विचार था कि ऐसे उपायोंको काममें लाना चाहिये जिसमें युद्ध सदाके लिए बन्द हो जावें और राष्ट्र अपने झगड़ोंका निपटारा तलवारसे न कर किसी ऐसी पंचायत द्वारा करावें जिसका निर्णय सबको मान्य हो। यदि अंग्रेज केवल इनकी मौखिक घोषणा करते रहते कि वह छोटे राष्ट्रोकी स्वतन्त्रताके लिए लड़ रहे हैं और अपने ही साम्राज्यके अधीन देशोके साथ न्यायका व्यवहार न करते तो उनको कौन सच्चा मानता। उन्हें ससारको विश्वास दिलाना था कि वह इस नीतिको जहाँतक उनका सम्बन्ध है कार्यान्वित करनेके लिए तैयार हैं। सन् १९१८मे मांटेगू साहब भारतवर्ष आये और सबसे परामर्श कर उन्होंने एक रिपोर्ट प्रकाशित की।

इस रिपोर्टके आधारपर सन् १९१९में पार्लमेंटने एक कानून बनाया। इसके द्वारा भारतीय व्यवस्थापक सभाके सदस्योंकी संख्यामे वृद्धि की गयी। सब व्यवस्थापक सभाओंमे गैर-सरकारी चुने हुए सदस्योंका बहुमत हो गया। पार्लमेण्टका भारतीय शासनपर जो नियंत्रण था वह कुछ ढीला कर दिया गया। भारतीयोंको कुछ और ऊँचे पद प्रदान किये गये। एक खास बात यह हुई कि प्रान्तीय शासन दो भागोमे विभक्त कर दिया गया। कुछ विषय सरकारके अधीन रखे गये। इन्हें सुरक्षित विषय कहते हैं। कुछ विषयोंका कार्य-भार भारतीय मन्त्रियोंके सुपुर्द किया गया। इन विषयोंको हस्तान्तरित-विषय कहते है। गैर-सरकारी निर्वाचित सदस्योंमेसे ही मन्त्रियोका लिया जाना निश्चित हुआ। ऐसे शासनको द्विचक्र शासन (डायरकी)की संज्ञा दी गयी है। केन्द्रीय शासनमे ऐसा कोई विभाग नही किया गया। इस नवीन योजनाकी कल्पनाके मूलमें यह विचार काम करता हे कि जहाँतक प्रान्तके शासनका सम्बन्ध हे भारतवासियोंको छोटा हिस्सेदार बनाना चाहिये। सुधारकी इस योजनाके साथ-साथ हमको सरकारकी इस समयकी औद्योगिक नीतिपर भी विचार करना चाहिये। आलोचना करनेपर हमको यह मालूम होगा कि राजनीति तथा उद्योगके क्षेत्रमे समान रूपसे एक ही विचार काम कर रहा था। जिस प्रकार बड़े-बडे मारवाडी व्यापारियोंके मुनीम अपने मालिकके कारोबारमे कभी-कभी छोटे-मोटे हिस्सेदार भी हो जाते हैं वैसे ही यूरोपीय युद्धके आरम्भ होनेके बाद सरकारने यह निश्चय किया कि हिन्दुस्तानियोंको सरकारी कारोबारमे छोटा-मोटा हिस्सेदार बना देना चाहिये। सन् १९१६मे होमरूलका जो आन्दोलन आरम्भ हुआ उसके पहले ही बिना किसी दबावके लार्ड हार्डिजने सन् १९१५मे अपने एक खरीतेमे भारत-मंत्रीको यह लिखा था कि यह बात अधिकाधिक स्पष्ट होती जाती है कि युद्धके

पश्चात् भारतके उद्योग-व्यवसायको उन्नत करनेके लिए किसी एक निश्चित नीतिका अनुसरण करना पड़ेगा। उस समय भारतवासी एक स्वरसे सरकारसे इस औद्योगिक उन्नतिके लिए पूरी सहायता चाहेगे। वाइसरायकी इस सिफारिशपर ब्रिटिश सरकारने सन् १९१६ मे 'इण्डियन इण्डस्ट्रियल कमीशन' को नियुक्त किया और उसको आदेश दिया कि वह इस बातकी जॉच करे कि भारतके उद्योग-व्यवसायकी उन्नतिके लिए देशमे कौन-कौन साधन उपलब्ध है और किन-किन बातोके करनेकी आवश्यकता है। इस कमीशनने सन् १९१८ मे अपनी रिपोर्ट पेश की और सरकारसे सिफारिश की कि सरकारका कर्त्तव्य है कि वह देशके उद्योग-व्यवसायकी उन्नतिके लिए पूरा उद्योग करे। उन्होने यह भी सिफारिश की कि नये उपायोका प्रयोगकर कृपिकी उन्नति करनी चाहिये और प्राथमिक शिक्षा सर्वसाधारणके लिए अनिवार्य कर देनी चाहिये। हम ऊपर कह चुके है कि पहले सरकारकी नीति यह थी कि भारत कृपिप्रधान देश बना रहे, पर यूरोपीय युद्धके कारण इस नीतिमे परिवर्त्तन हुआ। इस नीति-परिवर्त्तनके अन्य भी कई कारण थे। ब्रिटिश सरकारने यह देखा कि युद्धकी अवस्थामे भारत साम्राज्यकी रक्षामे तभी विशेष रूपसे सहायक हो सकेगा जब उसके उद्योग-व्यवसायकी काफी उन्नति की जायेगी। इङ्गलैण्डके पूंजीपतियोके लाभके लिए भी भारतके उद्योगोकी वृद्धि करना आवश्यक था। व्यापार-व्यवसायके क्षेत्रमे इङ्गलैण्डका वह पुराना एकाधिकार अब नही रहा था। कई नये राष्ट्र उससे प्रतियोगिता करने लग गये थे। सयुक्तराष्ट्र अमेरिका, जर्मनो और जापानकी प्रतिस्पर्द्धासे इङ्गलैण्डको भारी क्षति पहुँची और एशियाके देशोके कई बाजार उसके हाथसे धीरे-धीरे निकलने लगे। यूरोपीय महासमरमे सलग्न रहनेके कारण इङ्गलैण्ड अपने व्यापारकी रक्षाके लिए कोई प्रबन्ध न कर सका। इस समय वह विदेश भेजनेके लिए माल तैयार न कर ज्यादातर युद्धकी सामग्री तैयार करनेमे लगा हुआ था। इङ्गलैण्ड-की इस परिस्थितिसे सयुक्तराष्ट्र अमेरिका और जापानने अच्छा लाभ उठाया। युद्धकी समाप्तिपर इङ्गलैण्डकी पूंजी घट गयी थी और औद्योगिक उन्नति इस दर्जेतक पहुँच गयी थी कि पूंजी अच्छे मुनाफेके साथ देशमे लगायी भी नही जा सकती थी। इसलिए उनको इस बातकी आवश्यकता प्रतीत हुई कि ऐसे देशोमे अपनी पूंजी लगाये जहाँ कि मजदूरी सस्ती हो, कच्चा माल भी बहुतायतसे मिल सके और एक जगहसे दूसरी जगह माल लाने-ले जानेका खर्च भी बर्दाश्त न करना पडे। इसलिए ब्रिटिश व्यवसायियोको इसी प्रकार सहायता पहुँचायी जा सकती थी कि औद्योगिक नीतिका अवलम्बनकर ब्रिटिश पूंजी-पतियोको भारतमे पूंजी लगानेके लिए प्रोत्साहित किया जाय। भारतमे सब प्रकारकी सुविधाएँ उपलब्ध थी और यह आशा की जाती थी कि इस प्रकार ब्रिटिश पूंजीपति अपने व्यापारकी फिरसे प्रतिष्ठाकर अपनी अवस्थाको उन्नत करनेमे समर्थ होगे। भारतीय सरकारने यह भी निश्चय किया कि उसके विविध विभागोके लिए जिस-जिस सामग्रीकी आवश्यकता हो वह जहाँतक सम्भव हो भारतमे ही खरीदी जाय। इस निश्चयसे भी ब्रिटिश पूंजीपति भारतमे नये-नये व्यवसाय खोलनेको प्रोत्साहित हुए। युद्धके समाप्त होनेके बाद ही कई लोहे और फौलादके कारखाने खुल गये। धीरे-धीरे भारतमे बहुत-सी

अंग्रेजी कम्पनियोंकी रजिस्ट्री हो गयी और वे अपना कारोबार करने लगीं। सन् १९२१में 'फिस्कल कमीशन'की नियुक्ति की गयी। इस कमीशनने यह सिफारिश की कि भारतीय सरकारको संरक्षणकी नीतिका प्रयोग करना चाहिये और एक स्थायी 'टैरिफ बोर्ड' इस अभिप्रायसे स्थापित करना चाहिये कि वह समय-समयपर इस बातका विचार करे कि भारतके किन विशेष व्यवसायोंको संरक्षणकी आवश्यकता है। कमीशनने यह भी सिफारिश की कि विदेशी पूँजीके भारतके व्यवसायमें लगनेमें कोई बाधा न उपस्थित की जाय और जो चुङ्गी हिन्दुस्तानके कपड़ेके व्यवसायपर लगती है वह हटा दी जाय। सन् १९२३में भारतीय सरकारने संरक्षणकी नीतिको बहुत कुछ अंशमें स्वीकार कर लिया। 'टैरिफ बोर्ड'की स्थापना की गयी और सन् १९२४में लोहे और फौलादके व्यवसायको संरक्षण दिया गया। इस नीति-परिवर्त्तनका एक कारण यह भी था कि सरकारके लिए अब यह आवश्यक हो गया था कि वह भारतवर्षके पूँजीपति, बड़े व्यवसायी और मध्यम श्रेणीके लोगोंका सहयोग प्राप्त करे। यूरोपीय युद्धसे सामान्य लोगोंमें अपूर्व जागृति हो गयी थी। भारतकी जनता पहलेकी तरह अब निष्क्रिय और निश्चेष्ट नहीं रह गयी थी। उसका आर्थिक क्लेश बहुत बढ़ गया था। अशान्ति और विद्रोहके चिह्न स्पष्ट दिखलायी पड़ते थे। युद्धके पहले भारतीय सरकारके प्रधान विरोधी मध्यम श्रेणीके लोग ही थे। जमींदार, बड़े-बड़े व्यवसायी प्रायः राजभक्त थे और सामान्य जनताको अपने अधिकारोंका ज्ञान न था। उस समय मध्यम श्रेणीके लोगोंको दबाना कोई ऐसा कठिन कार्य न था, लेकिन युद्धके पश्चात् जब लोक-जागृति हुई तब सरकारको अपनी रक्षाके लिए मध्यम श्रेणीके लोगोंको सन्तुष्ट करना आवश्यक हो गया। इसीलिए द्विचक्र-शासनकी नीति अपनायी गयी। इस नीतिसे सरकारका प्रत्यक्ष लाभ था। जहाँतक औद्योगिक क्षेत्रमें इस नीतिके अनुसार कार्य करनेका सम्बन्ध है इसका आरम्भ सरकारकी ओरसे स्वतः ही हुआ। इससे व्यवसायी और व्यापारियोंका वर्ग सन्तुष्ट हो गया। मध्यम श्रेणीके लोग बहुत दिनोंसे इस बातकी कोशिश कर रहे थे कि भारत-सरकार देशी व्यवसाय और उद्योगकी उन्नतिके लिए संरक्षणका अवलम्बन करे। अब उनके मनकी बात पूरी हो गयी। शासन-क्षेत्रमें भी उनको हिस्सेदार बनाकर सरकारने नरम दलको कांग्रेससे अलग करके अपने साथ मिला लिया। कांग्रेसका गरम दल इन सुधारोंसे सन्तुष्ट न था। वह इनको अपर्याप्त और निस्सार समझता था। नरम दलके लोग सुधारकी योजनाको काममें लानेके पक्षमें थे। कांग्रेसकी नीतिसे वे सहमत न थे। कांग्रेसपर इस समय गरम दलके लोगोंका प्रभुत्व हो गया था। इसलिए नरम दलके लोगोंने कांग्रेसका परित्याग किया। श्रीमती बेसेण्टका प्रभाव भी कम हो गया और वे भी कांग्रेससे अलग होकर नरम दलमें सम्मिलित हो गयी। नरम दलके लोगोंने अपनी एक अलग संस्था कायम की जिसे 'लिबरल फेडरेशन' कहते हैं।

जिस प्रकार शासनके क्षेत्रमें हिन्दुस्तानियोंको कुछ हिस्सा दिया गया उसी प्रकार ब्रिटिश पूंजीपतियोंकी भी यही इच्छा थी कि जो व्यवसाय वे भारतवर्षमें करें उसमें भारतीय पूंजीपतियोंका भी सहयोग हो। इस साझेके कारोबारसे उनको कई लाभ थे। पहला

लाभ तो यह था कि ऐसा करनेसे कारोवारका वास्तविक स्वरूप प्रकट नही होता। दूसरा लाभ यह था कि इस प्रकार भारतके पूँजीपतियोमे एक ऐसा वर्ग पैदा हो जायगा जिसका स्वार्थ ब्रिटिश पूँजीपतियोके स्वार्थसे घनिष्ठ सम्वन्ध रखेगा। 'फिस्कल कमीशन'के सदस्योने अपनी रिपोर्टमे एक सिफारिश यह भी की थी कि सरकार उन्ही कम्पनियोको विशेष रिआयते दे जिनकी रजिस्ट्री भारतमे हुई हो एवं जिसके प्रवन्धमे भारतीयोका हाथ हो। भारतीय पूँजीपतियोका सहयोग प्राप्त करके ही ब्रिटिश व्यवसायी इस सिफा-रिशसे फायदा उठा सकते थे। इङ्गलैण्डके प्रसिद्ध पत्र 'इकानोमिस्ट'ने सन १९२४में लिखा था कि एक नियन्त्रणमे भारतीय और ब्रिटिश पूँजीकी सहायतासे व्यवसायोकी प्रतिष्ठा करनेसे वहुत वडे लाभ होगे। भारतके औद्योगिक विकासमे 'डायरकी'की मजिल उतनी ही अनिवार्य है जितनी कि शासनके क्षेत्रमे। जूटकी मिलोमे इस समय जो पूँजी लगी है उसका आधेसे ज्यादा हिस्सा हिन्दुस्तानियोका है। तव भी अग्रेजोका पुराना नियन्त्रण ज्यो-का-त्यो मौजूद है; क्योकि हिन्दुस्तानी अपने मुनाफेसे सन्तुष्ट है। उनको प्रवन्धमे हिस्सा लेनेकी कोई ख्वाहिश नही है।' ऊपरके विवेचनसे यह स्पष्ट हो गया होगा कि साम्राज्यवादकी नवीन आवश्यकताओके विचारसे ही भारत-सरकारकी नीतियोमे परिवर्त्तन हुआ। इस नीतिको एक अशमे सफलता भी प्राप्त हुई; क्योकि हम देखते है कि असहयोग आन्दोलनके समय भारतके वडे-वडे व्यापारी, व्यवसायी और नरम दलके लोग केवल आन्दोलनसे पृथक् ही नही रहे वल्कि आन्दोलनके दवानेमे सरकारको सहायता करते रहे।

हम ऊपर कह चुके है कि यूरोपीय युद्धके समय विप्लवको कुचलनेके लिए 'डिफेन्स ऑफ इण्डिया ऐक्ट' पास हुआ था और इस कानूनकी सहायतासे वहुतसे नवयुवक नजरवन्द कर लिये गये थे। युद्धके समाप्त होनेपर इस कानूनकी अवधि भी समाप्त होनेवाली थी। तदनन्तर सरकारको इन नजरवन्दोको छोड देना आवश्यक होता। सरकारका ख्याल था कि साधारण कानून विप्लवके दवानेके लिए काफी नही है, इसलिए सरकारने सन् १९१८मे 'रौलेट कमीशन' नियुक्त किया। कमीशनने षडयन्त्रोकी जाँच की और विप्लवके दवानेके लिए नये कानूनके वनानेकी सिफारिश की। कमीशनकी रिपोर्टके आधारपर सरकारने सन् १९१९मे वडी व्यवस्थापक सभामे दो विल पेश किये, जो काले कानूनके नामसे प्रसिद्ध हुए। गैर-सरकारी सदस्योने एकमत होकर और व्यवस्थापक सभाके वाहरके सव दल और विचारके लोगोने इनका समान रूपसे विरोध किया, पर सरकारने इस विरोधकी परवाह न की और अन्तमे १८ मार्चको ये विल पास हो गये। इस समय महात्मा गान्धीने इन कानूनो तथा अन्य कानूनोको तोडनेके लिए एक कमेटी नियुक्त की। महात्माजीने लोगोसे सत्याग्रहकी प्रतिज्ञा ली और ३० मार्चको हड़ताल करनेकी अपील की। इस हडतालको वहुत सफलता मिली और इसने यह प्रमाणित कर दिया कि साधारण जनतामे अपूर्व जागृति हो गयी है। इस समय भारतके मुसलमान भी खिलाफतके विषयमे वहुत चिन्तित थे। यूरोपीय महासमरमे तुर्की जर्मनीका मित्र था। युद्धमे जर्मनीके हारनेके कारण भारतके मुसलमान तुर्कीके भविष्यके विषयमे वहुत आकुल हो रहे थे। उनकी यह विशेष रूपसे इच्छा थी कि जजीरतुल अरव खलीफाकी अधीनतामे

ही रहे और वहाँ गैर-मुसलिम शक्तिका अधिकार या प्रभाव न होने पावे। खिलाफतकी रक्षाके लिए खिलाफत नामकी सस्था स्थापित की गयी। सरकारने मुसलमानोको आश्वासन दिलाया कि तुर्कीके साथ कोई अन्याय नही किया जायगा और मुसलमानोके धार्मिक विचारोंका आदर किया जायगा; लेकिन मुसलमानोको इससे सन्तोष नही हुआ; इसलिए मुसलमानोने भी ३० तारीखको हडताल मनायी और हिन्दुओका पूरा साथ दिया।

यो तो महात्माजी युद्धके आरम्भ होनेके बाद ही दक्षिण अफ्रीकामे लौट आये थे, लेकिन अबतक वह भारतकी राजनीतिमे कोई विशेष भाग नही लेते थे। श्री गोपालकृष्ण गोखलेकी सलाहसे, जिनसे उनका बडा स्नेह था, वे एक सालतक देशकी स्थितिका अध्ययन करते रहे। उसके बाद भी वे प्रायः सामाजिक सुधारके कामोंमे ही लगे रहे। कांग्रेसके अधिवेशनोमे वह सम्मिलित अवश्य होते थे, लेकिन दक्षिण अफ्रीका सम्बन्धी प्रस्तावको छोड़कर वे प्रायः अन्य प्रस्तावोपर भाषण नही करते थे। उस समय सरकार उनका बहुत आदर करती थी। सन् १६१५मे उनको 'कैसर-ए-हिन्द' स्वर्ण-पदक प्रदान किया गया। युद्धके समय महात्माजीने सरकारकी सहायता भी की थी। सन् १६१८मे महात्माजीने अपने वक्तव्यमे कहा था कि युद्धमे सरकारकी सहायता करना स्वराज्य पानेका सबसे सीधा और सरल उपाय है और गुजरातके लोगोसे फौजके लिए सैनिक देनेकी भी अपील की थी। सुधारोके सम्बन्धमें भी उनकी ऐसी कोई बुरी राय न थी। सत्याग्रहका प्रयोग वह पहले भी कर चुके थे। दक्षिण अफ्रीकामें भारतवासियोपर जो अत्याचार होते थे, उनका विरोध करनेके लिए महात्माजीने सत्याग्रह शुरू किया था और इसमें उन्हे सफलता भी मिली थी। बहुत पहले ही वह टाल्सटाय, थोरो और रस्किनकी विचार-धारासे प्रभावित हो चुके थे। पाश्चात्य सभ्यताके वह विरोधी थे। सत्य और अहिंसाको ही वह भारतीय सभ्यताका सार समझते थे और इसीलिए उनका यह विचार था कि भारत ही यूरोपके व्यथित हृदयको शान्ति पहुँचा सकता है।

सत्याग्रही शस्त्र या पाशविक बलका प्रयोग नही करता, पर इसका यह अर्थ नही है कि वह निश्चेष्ट और निष्क्रिय है। वह पाशविक शक्तिका मुकाबला करनेके लिए आध्यात्मिक शक्तिका प्रयोग करता है। भयरहित हो वह सब प्रकारके कष्टोको सहन करता है। वह दृढ़-संकल्पका होता है और अन्तमें अपने प्रतिपक्षीपर विजय प्राप्त करता है। प्राचीन कालमें धर्मके उपदेशकोने भी सत्य और अहिंसाकी शिक्षा दी थी। भगवान् बुद्धका कहना था कि वैर वैरसे शान्त नही होता। क्राइस्टकी शिक्षा थी कि यदि कोई तुम्हारे एक गालपर चपत लगाये तो दूसरा गाल भी सामने कर दो। पर व्यक्तिगत जीवनमें ही इन सिद्धान्तोको कार्य-रूपमें विरले ही परिणत करते थे। सामाजिक जीवनमे यह सिद्धान्त व्यवहारमें नही आते थे। महात्माजीने सत्याग्रहके सिद्धान्त और उसकी रण-पद्धतिका पूर्ण विकासकर प्रयोगोद्वारा यह सिद्ध कर दिया कि राजनीतिक क्षेत्रमे भी इसका उपयोग सफलताके साथ हो सकता है। उनका यह दावा है कि इसी सिद्धान्तके स्वीकार करनेसे जातियोका पारस्परिक वैमनस्य दूर हो सकता है और संसारमे सच्ची शान्ति स्थापित हो सकती है।

'सत्यमेव जयते नानृतम्', 'यतो धर्मस्ततो जय.' अर्थात् सत्य ही अन्तमे विजयी होता है और जहाँ धर्म है वही जय है—ऐसी अनेक उक्तियाँ अपने पुराने ग्रन्थोमें पायी जाती हैं। इस प्रकार शास्त्र भी सत्य और धर्मको सफलताकी कसौटीपर ही कसता है। यदि सत्य और अहिंसाके पालनसे केवल आध्यात्मिक उन्नति ही होती हो और जीवनके दैनिक व्यवहार-मे उनका कुछ उपयोग न हो तो धर्म और सत्यपर लोगोकी आस्था कायम नही रह सकती। महात्माजीने सत्याग्रहकी पद्धतिका विकास कर और जीवनमे उसका सफलताके साथ प्रयोगकर यह स्पष्ट दिखला दिया है कि सत्याग्रह एक सुन्दर कल्पना मात्र नही है जिसकी साधना केवल साधु-महात्मा कर सकते हैं, किन्तु यह सर्वसाधारणके लिए सुलभ और हर प्रकारसे व्यवहार्य है।

रौलट ऐक्टका विरोध करनेके लिए महात्माजीने इस नवीन रणनीतिका उपयोग किया था और इससे उनको सफलता भी प्राप्त हुई, क्योंकि यद्यपि ये कानून व्यवस्थापक सभासे पास हो चुके थे, तथापि सरकार इनको कार्य-रूपमे परिणत करनेकी हिम्मत न कर सकी। भारतवासियोने इस नये अस्त्रका प्रयोग पहली ही बार किया था। उनके लिए यह एक नया अनुभव था। इसलिए कई जगह सत्याग्रह आन्दोलन अहिंसात्मक न रह सका। अहमदावाद और अमृतसरमे वलवे हो गये। फौजकी सहायतासे सरकारने विद्रोहको शान्त किया। गाधीजीने सत्याग्रह आन्दोलनको स्थगित कर दिया और शान्तिकी स्थापनामे सरकारकी हर तरहसे सहायता की। पजाव एक फौजी सूवा समझा जाता है। इसलिए वहाँकी सरकार राजनीतिक आन्दोलनोसे सदा भयभीत और त्रस्त रहा करती है और इन आन्दोलनोके कुचलनेके लिए तरह-तरहके उपायोसे काम लिया करती है। वलवेके शान्त हो जानेके वाद भी पजावमे फौजी कानून जारी किया गया। १३ अप्रैल १९१९को जलियाँवाला वागका हत्याकाण्ड हुआ। इस घटनाके दो दिन पश्चात् सम्पूर्ण पञ्जाबमे फौजी कानून जारी कर दिया गया। अमृतसर, गुजराँवाला, कसूर और पञ्जावके कई स्थानोमे प्रजापर नाना-भाँतिके अत्याचार किये गये। लोगोकी जायदादे जब्त की गयी, नेताओको हर तरहसे अपमानित और जलील किया गया, लोगोको डराने और धमकानेकी गरजसे मध्ययुगकी अनेक अजीव-अजीव सजाओसे काम लिया गया। डायरने अमृतसरकी गलियोमे लोगोको पेटके वल चलाया। जव ये खबरे अन्य प्रान्तोमे पहुँची तो देशभरमे तहलका मच गया। लोकमतको क्षुब्ध देखकर लगभग छः महीने वाद सरकारने इन घटनाओकी जाँच करानेके लिए हण्टर कमीशनकी नियुक्ति की। इधर काग्रेस कमेटीने भी अपनी जाँच शुरू की। १९२०मे अखिल भारतवर्षीय काग्रेस-कमेटीने सर माइकेल ओडायरके ऊपर पार्लमेण्टमे अभियोग चलानेका निश्चय किया और भारतके तत्कालीन वायसरायको इङ्गलैण्ड वापस वुला लेने तथा ऐसे सव अहलकारोको अपने पदसे अलग करने एवम् उनको दण्ड देनेका अनुरोध किया, जिनके विरुद्ध काग्रेसकी जाँच-कमेटीके पास पर्याप्त प्रमाण उपस्थित थे। सरकारने काग्रेसकी माँगपर कुछ ध्यान नही दिया; वल्कि वहुतसे अग्रेज डायरके कार्योकी स्तुति करने लगे और उसकी सहायताके लिए आपसमे चन्दाकर उन्होने कुछ धन भी एकत्र किया। सरकारकी इस नीतिको देखकर

और अंग्रेजोंकी मनोवृत्तिका परिचय पाकर महात्माजीके विचार यहाँके विदेशी शासनके बारेमे एकदम बदल गये। वे एक कट्टर सहयोगीसे कट्टर विरोधी हो गये। बोअर युद्ध तथा जुलू-विद्रोहके समय महात्माजीने अंग्रेजोकी सहायता की थी। यूरोपीय महायुद्धके समय फौजमे भर्ती होकर ब्रिटिश साम्राज्यकी रक्षा करनेके लिए लोगोंको प्रोत्साहित किया था। १९१९ की अमृतसर-कांग्रेसमे सुधार-योजनाको कांग्रेस-द्वारा स्वीकार करानेके लिए उन्होंने बहुत परिश्रम किया था, पर जब सरकारने अपने कृत्योंके लिए पश्चात्ताप नहीं किया और अपने मुलाजिमोको उनके किये हुए अत्याचारोंके लिए उचित दण्ड नहीं दिया बल्कि हर प्रकारसे प्रजाके विरुद्ध उन्हींका पक्ष लिया तब गांधीजीकी यह धारणा हो गयी कि यह एक शैतानी हुकूमत है और इससे सहयोग करना महापाप है। इङ्गलैण्डने भारतीय मुसलमानोंके साथ भी विश्वासघात किया। युद्धके समय भारतीय मुसलमानोंको अपने साथ रखनेके लिए इङ्गलैण्डके प्रधान सचिवने यह वचन दिया था कि मुसलमानोंके धार्मिक विचारोंका खयाल रखा जायगा और तुर्कीके साथ न्याय होगा। यूरोपीय युद्ध ११ नवम्बर १९१८ को स्थगित हुआ था। २८ जून १९१९ को जर्मनीके साथ वर्सायिकी सन्धि हुई और यद्यपि तुर्कोंने सेव्रे (Sevre)के सन्धि-पत्रपर १० अगस्त १९२०को हस्ताक्षर किया था; तथापि इस सन्धिकी शर्ते हिन्दुस्तानमे इससे बहुत पहले मालूम हो गयी थी। सब तुर्कोंने भी इस सन्धिको स्वीकार नहीं किया था। मुस्तफा कमाल-पाशाके नेतृत्वमे तुर्कोंका एक दल इस सन्धिका विरोध करनेकी तैयारीमें लगा था। इस सन्धिके अनुसार तुर्कीको मिस्र, अरब, मेसेपोटामिया, पेलेस्टाइन और सीरियापरसे अपना अधिकार उठा लेना पड़ा था। सन्धिकी शर्तोको सुनकर हिन्दुस्तानके मुसलमान बहुत विह्वल हो गये थे; क्योंकि उनको इस सन्धिसे इस बातकी आशका हो गयी कि खिलाफतका गौरव और प्रभाव नष्ट हो जायगा और जजीरतुल अरबपर ईसाइयोंका नियन्त्रण हो जायगा। अखिल भारतवर्षीय कांग्रेस कमेटीकी जो बैठक ३०, ३१ मई १९२०को बनारसमे हुई थी उसने इस बातका निश्चय किया कि असहयोगकी नीतिपर विचार करनेके लिए कलकत्तेमे कांग्रेसका विशेष अधिवेशन किया जाय। पूर्व इसके कि कांग्रेसने असहयोग-की नीतिको स्वीकार किया, केन्द्रीय खिलाफत समितिने इस नीतिका निश्चय कर लिया था। सितम्बर सन् १९२०मे कांग्रेसका जो विशेष अधिवेशन हुआ उसने अहिंसात्मक असहयोगकी नीतिको स्वीकार किया और इस सिद्धान्तके अनुसार अपना एक नया कार्यक्रम प्रस्तुत किया। खिताबोंका छोड़ना, सरकारी स्कूल और कालेज तथा सरकारसे सहायता पानेवाले या इसके नियन्त्रणको स्वीकार करनेवाले स्कूल और कालेजोसे अपने लड़कोको निकाल लेना, राष्ट्रीय विद्यालयोंको स्थापित करना, सरकारी अदालतोंका बहिष्कार और पचायतोंकी स्थापना, नयी कौंसिलों और विदेशी मालका बहिष्कार—इस कार्य-क्रमके प्रधान अङ्ग थे। नागपुरकी कांग्रेसमे असहयोगका प्रस्ताव दुहराया गया और कांग्रेसका फिरसे सगठन किया गया। सब उचित और शान्तिमय उपायो द्वारा स्वराज्यकी प्राप्ति, कांग्रेसका ध्येय बनाया गया। लोकमान्यकी स्मृतिमे 'स्वराज्य फण्ड' कायम किया गया और कांग्रेसके कार्यक्रमको अच्छी तरह चलानेके लिए प्रान्तीय कांग्रेस कमेटियोको

आदेश दिया गया कि वे अपने-अपने प्रान्तमे स्वयसेवकोका सगठन करे। ३१ मार्च और १ अप्रैल १९२१को अखिलभारतवर्षीय काग्रेस-कमेटीकी जो वैठक वेजवाड़ामे हुई थी उसने आगामी ३० जूनतक 'तिलक स्वराज्य फण्ड'के लिए एक करोड़ रुपया एकत्र करने, एक करोड़ काग्रेसके सदस्य वनाने और कम-से-कम वीस लाख चर्खोंके चालू करानेका निश्चय किया। इस कार्यक्रमको वहुत अंशोमे पूराकर काग्रेसने अपनी सम्पूर्ण शक्तिको विदेशी वस्त्रके वहिष्कार एव खादीके प्रचारमे लगा दिया। ५ नवम्बर १९२१को अखिल भारतवर्षीय काग्रेस-कमेटीने प्रान्तोको अपनी जिम्मेदारीपर अपनी इच्छाके अनुसार किसी रूपमे सत्याग्रह आरम्भ करनेका अधिकार कुछ शर्तोंके साथ दे दिया। असहयोग आन्दोलन लोक-प्रिय हो गया और काग्रेसकी वढती हुई शक्तिको देखकर सरकार व्याकुल हो उठी।

इस अपूर्व जागृतिके कई कारण थे। जलियाँवाला वागके हत्याकाण्डके कारण सरकारकी न्याय-प्रियतापरसे लोगोका विश्वास उठ गया था। हिन्दुस्तानके मुसलमान भी इस समय सरकारसे वहुत अप्रसन्न थे। युद्धके समय उनके साथ जो वादे किये गये थे सरकारने उनमेसे एकका भी लिहाज नही किया। केवल तुर्कीका साम्राज्य ही छिन्न-भिन्न नही कर दिया गया था, किन्तु कई मुस्लिम देशोपर ब्रिटिश सरकार अपने नियन्त्रणको सुदृढ करने एवं अपने अधिकारोका विस्तार करनेकी चेष्टा कर रही थी। अरव उसके नियन्त्रणमे था। इराक और पेलेस्टाइनपर राष्ट्र-सघकी ओरसे उसको शासनका अधिकार (मेण्डेट) मिल चुका था। रूसके फारससे अलग हो जानेके कारण इङ्गलैण्ड सारे फारसपर अपना अधिकार जमाना चाहता था। इसके अतिरिक्त नवम्बर १९१७मे रूसमे जो क्रान्ति हुई थी उसका समस्त एशियापर प्रभाव पडा। इस क्रान्तिके फल-स्वरूप रूसमे एक नवीन शासन-पद्धतिका उपक्रम हुआ। रूसकी राज्यक्रान्तिका प्रमुख नेता लेनिन था। वह पूंजीवादका कट्टर विरोधी था और शासन-यन्त्रपर श्रम-जीवियोका आधिपत्य कायम करना चाहता था। उसने अपने देशमे एक नवीन समाजकी प्रतिष्ठा की। यूरोपके पूंजीवादी राष्ट्रोने वोलशेविक रूसका विरोध किया और दुनियामे उसको वदनाम करनेकी हर तरहसे कोशिश की। उन्होने रूससे हर तरहका सम्वन्ध हटा लिया और उसके विरोधियोकी हर तरहसे सहायता की। १९२०मे वोलशेविक रूसको अपने प्रतिपक्षियोपर विजय मिली और अवसर पाकर लेनिनने साम्राज्यवादका विरोध करनेके लिए एशियाके देशोके साथ सोवियत-सरकारका व्यापारिक एवम् राजनीतिक सम्वन्ध स्थापित किया। एशिया और अफ्रीकाके राष्ट्रीय आन्दोलनोकी सहायता करना रूसने अपना कर्त्तव्य समझा, क्योकि इन्ही महाद्वीपोके विविध देशोके आर्थिक जीवनपर प्रभुत्व पाकर यूरोपके पूंजीवादी राष्ट्रोने अपनी शक्तिको वढाया था। उसने वुखारा, चीन, फारस, तुर्की और अफगानिस्तानके साथ १९२१मे सन्धियाँ कर मित्रता स्थापित की। जो अधिकार जारके शासनकालमे एशियाके विविध देशोमे रूसको प्राप्त थे उनका उसने अपनी इच्छासे परित्याग कर दिया। इसका एशियावासियोपर वहुत अच्छा प्रभाव पड़ा। उसने न केवल एशियाके राष्ट्रोकी स्वतन्त्रताको ही स्वीकार किया प्रत्युत उनकी स्वतन्त्रताकी रक्षा करनेका भी वचन दिया। साम्राज्यवादका विरोध करनेके लिए

उसने एक जबर्दस्त सघ स्थापित किया। जापानको भी इस संघमे सम्मिलित करनेकी उसने चेष्टा की और आरम्भमें उसको इस प्रयत्नमे सफलता भी प्राप्त हुई। साम्राज्य-वादसे छुटकारा दिलानेके लिए रूसने चीनकी भी अच्छी सहायता की। एशियाके लोगोमे भ्रातृभाव स्थापित करने तथा साम्राज्यवादकी भीषणता बतलानेके लिए उसने समय-समयपर कान्फरेन्सोका आयोजन किया। इन विविध चेष्टाओका यह फल हुआ कि १९२०के बादसे ही ग्रेट ब्रिटेनका प्रभाव एशियामे वहुत कम होने लगा। अफगानि-स्तानने स्वतन्त्रता प्राप्त की। १९२१में फारसमे राज्य-क्रान्ति हो गयी। तुर्कोने अपनी तलवारके जोरसे २४ जुलाई १९२३को लोसानकी कान्फरेन्समे सेवूरेकी अपमान-जनक सन्धिको वदलवा दिया। अगोरामे प्रजातन्त्र शासनकी स्थापना हुई। रूसकी राज्य-क्रान्तिका सवसे वडा फल यह हुआ कि साम्यवादकी विचारधारासे एशियाके देश प्रभावित होने लगे। साम्यवादके सिद्धान्तोके अनुसार मजदूर-आन्दोलनका नये ढगसे सङ्गठन शुरू हो गया। मजदूर और किसान राजनीतिमे ज्यादा दिलचस्पी लेने लगे। साम्राज्यवादका विरोध करनेके लिए एशियाके राष्ट्रोका एक संघ स्थापित करनेकी चेष्टा हुई। 'पेन एशियाटिक लीग' नामकी सस्था कायम की गयी जिसका प्रथम अधिवेशन तोकियो (जापान)मे हुआ। देशबन्धु चित्तरजनदास भी ऐसा ही एक सघ स्थापित करना चाहते थे और उनकी यह इच्छा थी कि उसका एक अधिवेशन भारतमे किया जाय, परन्तु वे अपने इस विचारको कार्यमे परिणत न कर सके।

युद्धके कारण यूरोपीय सभ्यताके प्रति जो आदरका भाव था वह भी जाता रहा। जब एशियाके लोगोने देखा कि यूरोपके राष्ट्र अपने झगड़ोको शान्ति-पूर्वक नही तय कर सकते और अपने स्वार्थ-लाभके लिए लाखो मनुष्योंकी हत्या करनेसे नही हिचकते तथा एक दूसरेका संहार करनेके लिए विज्ञानका दुरुपयोग करते है तव उनको यूरोपकी भौतिक सभ्यताके प्रति घृणा हो गयी। इस युद्धमे यूरोपीय राष्ट्रोको उपनिवेशोसे काली सेनाको भी बुलाना पड़ा था। अग्रेजी और फ्रांसीसी सिपाहियोके साथ हिन्दुस्तानी सिपाही फ्रांसके कई मैदानोमे जर्मनोसे लडे थे।

हम ऊपर कह चुके है कि अखिल भारतवर्षीय कांग्रेस-कमेटीने अपनी जिम्मेदारीपर सत्याग्रह शुरू करनेकी इजाजत दे दी थी। सरकारकी दमन-नीतिने वहुत जल्द कुछ प्रान्तोको आत्म-रक्षामे सत्याग्रह आरम्भ करनेके लिए विवश किया। वर्किग कमेटीने यह निश्चय किया था कि जिस दिन प्रिस आव वेल्स भारत आयेगे उस दिन सम्पूर्ण भारतवर्षमें हड़ताल रहेगी और प्रान्तीय कमेटियाँ अपने-अपने प्रान्तमें वहिष्कारका प्रवन्ध करेगी। इस निश्चयके अनुसार प्रिस आव वेल्स जहाँ-जहाँ गये वहाँ-वहाँ उनका वहिष्कार किया गया। वहिष्कारकी सफलता को देखकर सरकार आपेसे वाहर हो गयी। प्रिस आव वेल्सके भारत आनेकी वात पहले भी कई वार उठी थी, पर वहिष्कारकी वजहसे उनका आना स्थगित कर दिया गया था। लार्ड रीडिगने इस बार वहुत आग्रहके साथ अपनी जिम्मेवारीपर उनको भारत वुलाया था। उनका यह खयाल न था कि वहिष्कारको इतनी सफलता मिलेगी। अपने मनसूवोको सफल होते न देखकर उनके क्रोधका

पारावार न रहा और उन्होंने कांग्रेसके संगठनको छिन्न-भिन्न करनेका निश्चय किया। इस समय कांग्रेसका एक स्वयसेवक दल था। इसीके द्वारा काग्रेसका कार्य होता था। सरकारने काग्रेसके स्वयसेवक दलको गैर-कानूनी करार दे दिया। जो अपनेको काग्रेसका स्वयंसेवक कहता था या जो पुलिसकी नजरोमे कांग्रेसका स्वयसेवक समझा जाता था उसे पुलिस गिरफ्तार कर लेती थी। जिन-जिन शहरोमे प्रिस आव वेल्सका जाना हुआ वहाँ वहुत वड़ी सख्यामे काग्रेसके कार्यकर्त्ताओ और स्वयंसेवकोकी गिरफ्तारियाँ हुई। सयुक्त-प्रान्त और वंगालके वहुतसे नेता कैद कर लिये गये। सरकारका दमन-चक्र वड़े जोरोसे चलने लगा। इससे काग्रेसको आत्मरक्षामे सत्याग्रह करनेका एक अच्छा अवसर मिल गया। अहमदावादकी काग्रेस (सन् १९२१)ने लोगोसे अपील किया कि वे स्वयसेवक-दलोमे सम्मिलित होकर सरकारकी चुनौतीको स्वीकार करे और खामोशीके साथ अपनेको गिरफ्तार करा दे। काग्रेसने इस कार्यको प्रधानता दी और यह भी निश्चय किया कि यदि आवश्यकता हो तो कांग्रेसके अन्य कार्य स्थगित कर दिये जायँ। काग्रेसने अन्य प्रकारके सत्याग्रहकी तैयारी करनेकी भी सलाह दी। महात्माजीको अखिल भारतवर्षीय काग्रेस कमेटीके समस्त अधिकार दे दिये गये। महात्माजीने सवसे पहले वारडोली ताल्लुकेमे सामूहिक रूपसे सत्याग्रह आरम्भ करनेका विचार किया था। वारडोली ताल्लुकेके लोग तैयारीमे लगे हुए थे, लेकिन चौरीचौराकी घटनाके कारण महात्माजीको सत्याग्रहका विचार कुछ समयके लिए स्थगित कर देना पड़ा। ११–१२ फरवरी १९२२को वारडोलीमें वर्किंग कमेटीकी जो वैठक हुई थी उसने काग्रेस कमेटियोको आदेश दिया कि वे सरकारी आज्ञाका विरोध करनेके लिए स्वयसेवकोके जुलूस न निकाले और सभाएँ न करे और जवतक देशमे शान्ति और अहिसाका वायुमण्डल फिरसे स्थापित नही हो जाता तवतक केवल रचनात्मक कार्यमे ही संलग्न रहे। काग्रेसको यह सूचना मिली थी कि कही-कही रैयत जमीदारको लगान नही दे रही है। इसलिए वर्किंग कमेटीने काग्रेस-कार्यकर्त्ताओको यह सलाह दी कि वे किसानोको इत्तला कर दे कि जमीदारोको लगान अदा न करना कांग्रेसके प्रस्तावोके विरुद्ध है। वर्किङ्ग-कमेटीने जमीदारोको भी इत्मीनान दिलाया कि काग्रेस उनके जायज हकोपर किसी प्रकारका आक्रमण करना नही चाहती। सयुक्त-प्रान्तके जमीदारोको आश्वासन दिलानेके लिए यह प्रस्ताव स्वीकृत हुआ था। अवधके करीव-करीव हर जिलेमे किसान-सभाओका अच्छा संगटन हो गया था। वे भी वारडोली की भाँति लगान-वन्दीका आन्दोलन शुरू करना चाहते थे। काग्रेसके नेताओने एक वर्षके भीतर स्वराज्य स्थापित करनेका वादा किया था। वह वर्ष भी वीत गया। वाज-वाज किसान यह समझने लगे कि स्वराज्यकी स्थापना होनेपर हमको लगान न देना पडेगा, लेकिन महात्माजी जमीदार और किसानकी लड़ाई नही चाहते थे। वे देशकी सारी ताकतको सरकारके खिलाफ लगाना चाहते थे। वे केवल ऐसे ही स्थानोमे लगान-वन्दी शुरू करनेकी इजाजत देनेको तैयार थे जहाँके किसान सरकारको वराह-रास्त लगान अदा करते थे। लेकिन जव उनको खवर लगी कि सयुक्तप्रान्तमे जगह-जगह किसानोने लगान देना वन्द कर दिया है और चौरीचौराके हत्याकाण्डसे उनको निश्चय हो गया कि

सामूहिक रूपमें या व्यक्तिगत रूपसे सत्याग्रह करनेके लिए उपयुक्त वायुमण्डलका अभाव है, तो उन्होंने सत्याग्रह आरम्भ करनेका विचार स्थगित कर दिया। बारडोलीके इस निश्चयसे कांग्रेसको बहुत धक्का पहुँचा। लोगोंकी आशाएँ भग्न हो गयीं। चारों ओर निराशा और निरुत्साहके चिह्न दिखलायी पड़ने लगे। अखिल भारतवर्षीय कांग्रेस कमेटीने अपने दिल्लीके अधिवेशनमें २४-२५ फरवरी १९२२को कुछ आवश्यक संशोधनोंके साथ बारडोलीके प्रस्तावको स्वीकार किया। वैयक्तिक रूपमें सत्याग्रह आरम्भ करनेका अधिकार प्रान्तोंको दे दिया गया और यह भी निश्चय किया गया कि विदेशी वस्त्रकी दूकानोंपर शान्तिमय धरना दिया जा सकता है। बारडोलीके निश्चयसे बहुतसे लोगोंका यह विचार हो गया था कि कांग्रेसने सदाके लिए सामूहिक सत्याग्रहका विचार स्थगित कर दिया है। इसलिए अखिल भारतवर्षीय कांग्रेस कमेटीने अपना यह विचार प्रकट किया कि कांग्रेसने असहयोगके मूल कार्यक्रमको सदाके लिए स्थगित नहीं कर दिया है और यह आशा प्रकट की कि यदि कांग्रेसके कार्यकर्त्ता अनन्यमनस्क होकर रचनात्मक कार्यक्रमको सफल बनानेकी चेष्टा करें तो सामूहिक सत्याग्रहके लिए भी उपयुक्त वायुमण्डल पैदा किया जा सकता है। इस निश्चयके कुछ दिनों बाद ही महात्माजी गिरफ्तार कर लिये गये और १८ मार्चको उन्हें ६ वर्षके कारावासका दण्ड दे दिया गया। सरकारकी दमन-नीतिके कारण लोग यह चाहते थे कि किसी न किसी रूपमें सत्याग्रह आरम्भ करनेकी आज्ञा दी जाय, इसलिए इस विषयपर विचार करनेके लिए कांग्रेस कमेटीकी एक बैठक जूनमें लखनऊमें हुई थी। कमेटीने सभापतिको यह अधिकार दिया कि वे कुछ सज्जनोंको देशमें घूमकर देशकी स्थितिके सम्बन्धमें अपनी रिपोर्ट देनेके लिए नियुक्त करें। सत्याग्रहके प्रश्नको अगली बैठकके लिए स्थगित कर दिया। नवम्बरकी बैठकमें रिपोर्टपर विचारकर कमेटीने निश्चय किया कि देश इस समय सामान्य रूपमें सामूहिक सत्याग्रह आरम्भ करनेकी योग्यता नहीं रखता; किन्तु यह बात ध्यानमें रखते हुए कि ऐसी अवस्था उपस्थित हो सकती है जब परिछिन्न रूपमें सामूहिक सत्याग्रहकी आवश्यकता पड़े और लोग उसके लिए तैयार भी हों, कमेटी प्रान्तीय कमेटियोंको अपनी जिम्मेवारीपर ऐसे सत्याग्रहके आरम्भ करनेका अधिकार देती है यदि वे सब शर्तें पूरी की गयी हों जिनका उल्लेख कमेटीके पूर्व-निश्चयोंमें किया जा चुका है। इस समय कमेटीके विचारार्थ यह प्रश्न भी उपस्थित किया गया था कि कांग्रेसके सदस्योंको कौंसिलके अगले चुनावमें भाग लेना चाहिये या नहीं, पर कमेटीने इसका निश्चय गया-कांग्रेसपर छोड़ दिया। इस समय कांग्रेसमें दो दल हो गये थे। एक दलका यह मत था कि कौंसिलोंमें जाकर प्रतिबन्ध-नीतिका निरन्तर अनुसरणकर कौंसिलोंके कार्यको बन्द कर देना चाहिये। यह दल इस कार्य-प्रणालीको असहयोगका एक रूप समझता था। इस दलके प्रमुख नेता देशबन्धु चित्तरंजनदास और पण्डित मोतीलाल नेहरू थे। इस दलमें वे सब लोग शामिल थे जो कौंसिलोंके बहिष्कारके शुरूसे ही पक्षमें न थे। स्वयं देशबन्धुने नागपुरकी कांग्रेसमें अहिंसात्मक असहयोगके कार्यक्रमका विरोध किया था। विशेषकर वे कौंसिलोंके बहिष्कारके पक्षमें न थे। यह सच है कि वे कौंसिलोंमें जाकर सरकारसे सहयोग करना नहीं चाहते थे, पर उनका

यह खयाल था कि कौसिलोपर कब्जा कर हम सरकारके शासन-यन्त्रको बहुत-कुछ बेकार कर सकते है। लोकमान्यके अनुयायी भी कौसिलोके बहिष्कारके विरुद्ध थे। लेकिन काग्रेसके बहुमतके आगे इन सब सज्जनोको उस समय सिर झुकाना पड़ा था। बारडोलीके निश्चयके उपरान्त ऐसे सब सज्जनोकी यह धारणा हो गयी कि असहयोगके कार्यक्रममे परिवर्तन करनेकी आवश्यकता है। डाक्टर मुजे असहयोगके कार्यक्रमको अव्यावहारिक समझते थे। श्री विट्ठलभाई पटेल इस बातको नही स्वीकार करते थे कि सामूहिक रूपमे सत्याग्रह आरम्भ करनेके लिए कभी भी उपयुक्त वायुमण्डल हो सकता है। दूसरा दल महात्माजीके अनुयायियोका था। अहिंसात्मक असहयोगके कार्यक्रममे इनका पूरा विश्वास था। इसके प्रमुख नेता श्री राजगोपालाचारी, श्री वल्लभभाई पटेल आदि थे। गया-काग्रेसमे श्री राजगोपालाचारीके दलका बहुमत था। इसलिए गया-काग्रेसने कौसिलोके बहिष्कारका निश्चय किया और कांग्रेसके कार्यकर्त्ताओसे अनुरोध किया कि वे कम-से-कम ५०,००० स्वयंसेवक भर्त्ती करे और काग्रेसके संगठनको सुदृढकर सत्याग्रह आरम्भ करनेके लिए जिस तैयारीकी आवश्यकता है उसको पूरा करे। गया-काग्रेसने सरकारी शिक्षा-संस्थाओ और अदालतोके बहिष्कारको भी कायम रखा। कांग्रेसके सभापति देशबन्धु दास काग्रेसके इन निश्चयोसे सहमत न थे। इसलिए उन्होने सभापतित्वसे त्यागपत्र दे दिया। कांग्रेसमे एक पक्ष ऐसा भी था जो आपसके इन झगड़ोको पसन्द नही करता था और दोनो दलोमे किसी प्रकारका समझौता करानेकी कोशिशमे लगा था। इस आपसके झगड़ेके कारण काग्रेसका कार्य अस्त-व्यस्त हो गया था। काग्रेसके नेताओमे मत-भेद होनेके कारण साधारण जनता सम्भ्रान्त हो गयी थी। लोग अपना कर्तव्य निर्धारित करनेमे अपनेको असमर्थ पाते थे, इसलिए उनकी यह स्वाभाविक इच्छा थी कि नेताओका यह परस्परका झगड़ा शान्त हो जाय। अखिल भारतवर्षीय काग्रेस-कमेटीने मई सन् १९२३की बैठकमे यह निश्चय किया कि कौसिलोके बहिष्कार सम्बन्धी प्रस्तावके अनुसार वोटरोमे किसी प्रकारके प्रचारका कार्य न किया जाय। इस निश्चयके होनेपर वर्किङ्ग कमेटीके छः सदस्योने त्यागपत्र दे दिया। कमेटीने इन सज्जनोसे अपने त्यागपत्र-पर फिरसे विचार करनेका आग्रह किया, पर जब उन्होने ऐसा करनेमे अपनी असमर्थता प्रकट की तो कमेटीको त्याग-पत्रोको स्वीकार करना पडा। कौसिलोके बहिष्कारके प्रश्नपर विचार करनेके लिए काग्रेसका एक विशेष अधिवेशन दिल्लीमे आमन्त्रित किया गया। इस अधिवेशनमे कौसिलोके बहिष्कारका प्रस्ताव स्थगित कर दिया गया और काग्रेसके सदस्योको कौसिलोके निर्वाचनमे खडे होने तथा मत देनेकी स्वतन्त्रता दे दी गयी। देशबन्धु दासके नेतृत्वमे सन् १९२३मे स्वराज्य-पार्टीकी स्थापना हुई और इस पार्टीकी ओरसे चुनावके लिए उम्मेदवार खडे किये गये।

चुनावके पहले स्वराज्य-दलने एक कार्यक्रम प्रकाशित कर अपनी नीतिकी घोषणा की थी। बिना विलम्बके पूर्ण औपनिवेशिक स्वराज्य प्राप्त करना स्वराज्य-दलका तात्कालिक उद्देश्य था। इस उद्देश्यका स्पष्टीकरण करते हुए कार्यक्रममे यह बतलाया गया था कि देशकी अवस्थाके अनुकूल शासन-विधान बनानेका अधिकार तथा वर्तमान शासन-

यन्त्रपर कार्य-साधक नियन्त्रण प्राप्त करना ही पूर्ण औपनिवेशिक स्वराज्य प्राप्त करना है। व्यवस्थापक-सभा सम्बन्धी कार्यके विषयमे स्वराज्य दलने अपनी यह नीति निश्चित की कि चुनावके उपरान्त स्वराज्य-दलके सदस्य व्यवस्थापक सभामे सरकारके सामने राष्ट्रकी माँग पेश करेगे और यदि सरकारने सन्तोषप्रद उत्तर न दिया और जनताके पूर्वोक्त अधिकारको स्वीकार न किया तो स्वराज्य-दल, बहुमत होनेकी अवस्थामें व्यवस्थापक-सभाओद्वारा शासनके कार्यको असम्भव बनानेके लिए अविश्रान्त और सतत प्रतिबन्धकी नीतिका अनुसरण करेगा। बडी व्यवस्थापक-सभाके लिए केवल ४३ स्वराज्य-दलके सदस्य चुने जा सके। बर्मासे जो सदस्य चुने गये थे उनको स्वराज्य-दलके साथ सहयोग करनेका आदेश दिया गया था। इस प्रकार स्वराज्य-दलकी सख्या ४६ समझी जा सकती है। बहुमत न होनेके कारण उनको इण्डिपेण्डेण्ट-दलसे सयोग करना पडा और इस सयुक्त दलका नाम नेशनलिस्ट-पार्टी रखा गया। नेशनलिस्ट-पार्टीने यह निश्चय किया कि राष्ट्रीय माँग पेश की जाय और यदि तीन-चौथाई सदस्योकी रायमे सरकारका उत्तर सन्तोष-प्रद न हो तो उस अवस्थामे नेशनलिस्ट-पार्टी प्रतिबन्धकी नीतिका अनुसरण करनेके लिए बाध्य होगी। इस निश्चयके अनुसार १८ फरवरी १९२४को नेशनलिस्ट-पार्टीकी ओरसे राष्ट्रकी माँग पेश की गयी। यह प्रस्ताव बहुमतसे पास हो गया। इस प्रस्तावद्वारा सपरिषद गवर्नर जनरलसे सिफारिश की गयी कि वह दायित्वपूर्ण शासन स्थापित करनेके लिए गवर्नमेण्ट आव इण्डिया ऐक्टमे आवश्यक परिवर्तन करावे और इस उद्देश्यकी पूर्तिके लिए जल्दसे जल्द एक गोलमेज-कान्फरेन्स भारतका शासन-विधान तैयार करनेके लिए आमन्त्रित करे और नयी व्यवस्थापक सभाकी स्वीकृति लेकर कानून बनानेके लिए ब्रिटिश पार्लमेण्टके सामने इस शासन-विधानको पेश करे। सरकारने कोई उत्तर न दिया और उसका व्यवहार भी सन्तोष-प्रद न पाया गया। इसलिए प्रतिबन्ध-नीतिका आरम्भ किया गया। बजटकी कई मदे और फाइनेस बिल नामजूर किये गये। लेकिन इण्डिपेण्डेण्ट पार्टीके सदस्य समान रूपसे निरन्तर प्रतिबन्धकी नीतिका अनुसरण करनेके लिए तैयार न थे। इसलिए स्वराज्य-दल उसका सहयोग न पाकर अपनी नीतिको पूर्णरूपसे कार्यान्वित न कर सका।

यद्यपि १९२३मे परिवर्तनवादी और अपरिवर्तनवादी इन दोनो दलोमे एक प्रकारका समझौता हो गया था, तथापि ये दोनो दल एक दूसरेके साथ मिलकर कार्य करनेको तैयार न थे। काग्रेसका रचनात्मक कार्य भी इस आपसके झगडेके कारण ठीक-ठीक नही हो सकता था। इधर जगह-जगह हिन्दू-मुसलमानोके झगडे भी शुरू हो गये थे। असहयोग आन्दोलनके समय मालाबारमे जो मोपला-विद्रोह हुआ था उस अवसरपर मुसलमानोने कुछ हिन्दुओको जबरदस्ती मुसलमान बना लिया था। इस घटनासे हिन्दू बहुत व्याकुल हो गये। हिन्दुओने आत्म-रक्षाके लिए सङ्गठनका आन्दोलन शुरू किया। स्वामी श्रद्धानन्दजीने इसी समय हजारो मलकानोकी शुद्धि बड़े धूम-धामसे की। इस शुद्धि और सङ्गठनके आन्दोलनके कारण हिन्दू-मुसलमानका झगड़ा और भी बढ गया, क्योंकि मुसलमान खुद तबलीगका काम करते है, इसलिए वह सिद्धान्त-रूपेण शुद्धि-आन्दोलनका

विरोध नही कर सकते थे। उनका आक्षेप केवल यह था कि जिस प्रकारसे और जिस रूपमे शुद्धि-आन्दोलन चलाया जाता है वह अनुचित है। इसमे सन्देह नही कि एक बहुत बड़ी सख्यामे मल्कानोको हिन्दू बनते देखकर मुसलमानोंका उत्तेजित हो जाना एक स्वाभाविक बात थी, लेकिन इस उत्तेजनाका एक विशेष कारण भी था। इस्लाम-धर्मके अनुसार धर्म-परिवर्तन एक बहुत बडा अपराध समझा जाता है और इस अपराधके लिए मृत्यु दण्डका विधान किया गया है। साराश यह है कि विविध कारणोसे हिन्दू-मुसलमानोका वैमनस्य बढता ही गया। १९२४मे कोहाट और गुलबर्गाके भीषण दगे हुए। दोनो जातियोंके पापका प्रायश्चित करनेके लिए महात्माजीने २१ दिनका उपवास किया और दिल्लीमे एकता सम्मेलन किया गया, पर इसका कुछ भी फल न हुआ।

काग्रेसका प्रभाव दिन-ब-दिन घटता ही गया। इसलिए जब महात्माजी बीमारीके कारण जेलसे छोड दिये गये तब उन्होने काग्रेसके दोनो दलोमे एकता स्थापित करना सबसे आवश्यक काम समझा। इसीलिए उन्होने २२ मई १९२४को देशबन्धु और पं० मोतीलाल नेहरूके साथ एक समझौता किया, जिसके अनुसार काग्रेसकी ओरसे कौसिल-कार्य करनेका अधिकार स्वराज्य-पार्टीको दिया गया। इस समझौतेके करनेका एक और भी कारण था। उस समय बगालमें सरकारकी ओरसे जोरोसे दमन हो रहा था। आर्डिनेसद्वारा स्वराज्य-दलके सदस्य नजरबन्द कर लिये गये थे। यद्यपि सरकारका कहना था कि विप्लवको दबानेके लिए ही यह आर्डिनेस पास किया गया है, तथापि जनताकी यह धारणा थी कि बङ्गालकी स्वराज्य-पार्टीके विरुद्ध ही इस अस्त्रका प्रयोग किया जा रहा है। इसमे सन्देह नही कि असहयोग आन्दोलनके स्थगित हो जानेके कारण हिंसावादियोने अपना सगठन फिरसे शुरू कर दिया था, तथापि आर्डिनेसका प्रयोग केवल हिंसावादियोके विरुद्ध ही नही किया गया, बल्कि स्वराज्यदलके कई मान्य सदस्य भी नजरबन्द कर लिये गये। बगालमे स्वराज्यदलकी अच्छी प्रतिष्ठा थी। कलकत्ता कारपोरेशन उनके अधिकारमे था और बगाल-कौसिलमे अन्य दलोका सहयोग पाकर उन्होने एक प्रबल विरोधी दल खडा कर दिया था। महात्माजी इस दमनका विरोध करनेके लिए भी काग्रेसके दोनो दलोंको आपसमे मिलाना चाहते थे। वह देशके विविध राजनीतिक दलोको भी काग्रेसमे सम्मिलित करनेकी चेष्टामे लगे थे। इसी विचारसे उन्होने इस समझौतेमे विदेशी वस्त्रके बहिष्कारको छोडकर असहयोगके अन्य कार्य-क्रमको स्थगित करनेकी काग्रेससे सिफारिश की। बेलगांव काग्रेसने इस समझौतेको मजूर किया। इस समझौतेके बाद ही स्वराज्य-दलने अपनी नीति और कार्यक्रममे परिवर्तन किया। निरन्तर अविश्रान्त प्रतिबन्धनकी नीतिके स्थानमे पार्टीने यह निश्चय किया कि वह ऐसे रूपमे प्रतिबन्धकी नीतिसे काम लेगी जिसको वह समय-समयपर निश्चित करती रहेगी। राष्ट्रके उद्योग-व्यवसायकी उन्नतिके लिए, सरकारकी अर्थ शोषणकी नीतिका विरोध करनेके लिए तथा मजदूरोके अधिकारोकी रक्षाके लिए प्रस्ताव या बिल पेश करना तथा अन्य आवश्यक कार्य करना स्वराज्य पार्टीके कार्य-क्रमका एक प्रधान अंग हो गया। इस कार्यक्रमके अनुसार जब व्यवस्थापक सभामे सरकारकी ओरसे फौलादके व्यवसायको सरक्षण देनेके लिए एक

बिल पेश किया गया, तब स्वराज्य-पार्टीके सदस्योंने सिलेक्ट कमेटीकी सदस्यता भी स्वीकार की और बिलके पास होनेमे सरकारकी सहायता की । अगस्त सन् १६४२मे देशबन्धु दासने एक वक्तव्य प्रकाशित किया । इसमें उन्होने स्वराज्य पार्टीकी मांगका इस प्रकार निरूपण किया था—

"सबसे पहले सब प्रान्तोंको स्वाधीनता मिल जानी चाहिये । केन्द्रीय शासनपर भी कुछ नियंत्रण मिलना चाहिये । बडी व्यवस्थापक सभापर भी जनताके प्रतिनिधियोंका कुछ न कुछ नियंत्रण होना आवश्यक है । इस नियंत्रणका क्या परिणाम होगा इसका निर्णय गोलमेज परिषद्द्वारा हो सकता है ।" अपने वक्तव्यमे आगे चलकर यह कहते हैं कि "बगालमे विप्लवका आन्दोलन भीषण रूप धारण करता जाता है । उसकी गम्भीरताका सरकारको अन्दाज नही है । उसका दबाना भी रोज-ब-रोज मुश्किल होता जाता है । मै आशा करता हूँ कि ग्रेट ब्रिटेन और भारतवर्ष मेरे बताये हुए मार्गपर चलेंगे और आपसमें समझौता कर लेंगे, क्योकि यदि स्वराज्य-दलका आन्दोलन विफल हुआ तो उस अवस्थामे कठोरसे कठोर दमन भी बढ़ती हुई हिंसा और अराजकताका मुकाबिला करनेमे समर्थ न होगा । अधिकारिवर्ग इस बातको नहीं समझता कि स्वराज्य-दलके आन्दोलनके असफल होनेपर लोगोंका विश्वास वैध उपायोपरसे उठ जायगा और वह निराश होकर हिंसा और अराजकताके मार्गके अनुगामी हो जायँगे ।"

मध्य-प्रदेशकी कौंसिलोमे स्वराज्य-दलका बहुमत था और बंगालमे स्वराज्य-दल एक शक्तिशाली दल था जो थोड़ेसे सदस्योंके सहयोगसे बहुमत प्राप्त कर सकता था, इसलिए उन्होने प्रतिबन्धकी नीतिसे पूरी तौरसे काम लिया और उसका फल यह हुआ कि गवर्नरोने कौंसिलोको अनिश्चित कालके लिए विसर्जित कर दिया और अपने विशेषाधिकारसे शासनका कार्य करने लगे । अन्य प्रान्तोमे स्वराज्य-दलका बहुमत न था, इसलिए वहाँ प्रतिबन्धकी नीतिसे काम नही लिया जा सकता था । १६२५मे बड़ी व्यवस्थापक-सभामे इण्डिपेण्डेण्ट पार्टीके लोग धीरे-धीरे नेशनलिस्ट पार्टीसे अलग हो गये और इन्होंने अपना अलग दल बना लिया । इसलिए वहाँ भी प्रतिबन्धकी नीतिका प्रयोग न हो सका । अप्रैल १६२५मे भारत-सचिव लार्ड बर्कन हेडने भारतके सम्बन्धमें एक वक्तृता दी थी जिसमें उन्होने समझौतेकी सम्भावनाकी ओर संकेत किया था । इसी समय बङ्गालके गवर्नर लार्ड लिटन और देशबन्धुमे कुछ समझौतेकी बातचीत हो रही थी और उस समय यह अफवाह उडी थी कि बङ्गालकी स्वराज्य-पार्टी कुछ शर्तोंके मंजूर हो जानेपर प्रतिबन्धकी नीतिका परित्याग करेगी और अपना मन्त्रि-मण्डल बनाकर सरकारके साथ सहयोग करेगी । हम यह नही कह सकते कि इस अफवाहमे कहाँ तक तथ्य था, पर इसमें सन्देह नही कि लार्ड लिटन और देशबन्धुके बीच समझौतेकी बातचीत चल रही थी । पर जून १६२५मे देशबन्धुकी अकस्मात् मृत्यु हो गयी, इस कारण बातचीतका कोई फल न हुआ । भारत-सचिवने अपनी वक्तृतामे इस बातको स्पष्ट कर दिया था कि सरकारके साथ सहयोग करनेपर ही भारतवासियोको और अधिकार दिये जा सकते है तथा उसने नेताओको एक शासन विधान तैयार करनेके लिए कहा जिसपर

गम्भीरतासे विचार किया जा सके। २० अगस्त १९१७की घोषणामे भी यह उल्लेख पाया जाता है कि सुधारोको सफल बनानेमे जिस परिमाणमे भारतवासी सहयोग देगे उसी परिमाणमे दायित्व-पूर्ण शासनके सचालनकी योग्यता समझी जायगी। असहयोग आन्दोलनके बाद सहयोगके लिए सरकारका इतना आग्रह करना स्वाभाविक था। बंगालकी प्रान्तीय कान्फरेन्सका जो अधिवेशन मई १९२५ में फरीदपुरमे हुआ था, उसमे सभापतिकी हैसियतसे देशबन्धुने स्वराज्य-पार्टीकी नीतिका स्पष्टीकरण किया था और सम्मानपूर्वक सन्धिके लिए अपनी उत्सुकता प्रकट की थी। ब्रिटिश-साम्राज्यके भीतर रहनेके उन्होने अनेक लाभ बताये थे। साम्राज्यकी कल्पना उनकी दृष्टिमें एक आध्यात्मिक महत्व रखती थी। उनका कहना था कि यदि साम्राज्यके भीतर रहकर भारतवर्षको आत्मानुभूति और आत्मविकासके लिए पूरा अवसर प्राप्त हो तो इससे भारतका ही नहीं, किन्तु समस्त ससारका कल्याण होगा। पं० मोतीलाल नेहरूने स्कीन कमेटीकी सदस्यता और विट्ठलभाई पटेलने बडी व्यवस्थापक सभाके सभापतिका पद स्वीकार किया। पद स्वीकार करते समय श्री पटेलने अपनी वक्तृतामे कहा था कि "स्वराज्य दलके लोगोके सम्बन्धमे प्राय: यह कहा जाता है कि ये केवल छिद्रान्वेषी हैं और दूसरोकी आलोचना करना ही जानते है। हमारा कर्त्तव्य है कि हम दिखला दे कि हम रचनात्मक कार्य करनेकी भी योग्यता रखते है।"

सुधारकी जाँच करनेके लिए सरकारने १९२४मे जो कमेटी नियुक्त की थी, उसकी रिपोर्टपर बडी व्यवस्थापक सभामे १९२५मे वादविवाद हुआ। इस कमेटीके अधिकतर सदस्योने १९१९के गवर्नमेण्ट आव् इण्डिया ऐक्टकी परिधिके भीतर ही कुछ सामान्य सुधार देनेकी सिफारिश की थी। इसका विरोध करनेके लिए स्वराज्य-दलने इस अवसरपर अपनी राष्ट्रीय माँगके प्रस्तावको दुहराना आवश्यक समझा और सितम्बर १९२५मे इण्डिपेण्डेण्ट पार्टीके सदस्योकी सहायतासे राष्ट्रीय माँगके प्रस्तावको परिवर्तित रूपमे पास कराया। इस प्रस्तावमें शासन-योजनाकी एक रूप-रेखा मात्र दे दी गयी थी और यह सिफारिश की गयी थी कि किसी कन्वेशन या गोलमेज कान्फरेन्स अथवा किसी अन्य उपयुक्त सस्थाद्वारा इस योजनापर विचार कराया जाय। १९२४ और १९२५की माँगमे बहुत अन्तर पाया जाता है। १९२४ के प्रस्तावमे शासन-विधान बनानेके लिए गोलमेज परिषद आमन्त्रित करनेकी सिफारिश की गयी थी, पर १९२५के प्रस्तावमे यह बात आवश्यक नही रखी गयी। यदि सरकार रायल कमीशनद्वारा प्रस्तावित योजनाकी जाँच करावे तो इसमे स्वराज्य दलको कोई आपत्ति न होगी। जहाँ १९२४ के प्रस्तावके अनुसार गोलमेज कान्फरेन्सको अपनी इच्छाके अनुकूल किसी शासन-विधानकी सिफारिश करनेकी स्वतन्त्रता प्राप्त होती, वहाँ १९२५की माँगमे एक सकुचित शासन-योजनाका प्रस्ताव किया गया।

इस प्रकार हम देखते हैं कि विविध कारणोसे स्वराज्य-पार्टीको अपनी पुरानी नीतिका धीरे-धीरे बहुत कुछ अंशमें परित्याग करना पडा। उनको अपनी माँग भी घटानी पड़ी और यह दावा भी छोड़ना पड़ा कि कौसिलके भीतर रहकर सरकारसे असहयोग करनेके

लिए ही हम कौसिलमे गये हैं। १९२५की कांग्रेसने स्वराज्य-पार्टीके कार्य-क्रमको अपना लिया और प्रान्तीय कांग्रेस-कमेटियोकी कार्य-कारिणी-समितियोको अगले चुनावके लिए उम्मेदवार खड़ा करनेका अधिकार दिया। कांग्रेसने १८ फरवरी १९२४ की राष्ट्रीय माँगको भी अङ्गीकार किया।[1] और इस सम्बन्धमे यह निश्चय किया कि वडी व्यवस्थापक-सभाकी स्वराज्य-पार्टी शीघ्रसे शीघ्र सरकारको अपना अन्तिम निर्णय देनेके लिए आमन्त्रित करे और यदि अगली फरवरीके अन्ततक सरकार अपना निर्णय न वतावे या सरकारका निर्णय सन्तोष-प्रद न पाया जाय, तो उस अवस्थामे स्वराज्य दलके सदस्य कौसिलोका परित्याग कर दे। कांग्रेसने अखिल भारतवर्षीय कांग्रेस कमेटीको कौन्सिल-सम्बन्धी कार्य-क्रम वनानेका अधिकार दिया। इस निश्चयके अनुसार अखिल-भारतवर्षीय कांग्रेस कमेटीने दिल्लीकी बैठकमे (६, ७ मार्च १९२६) नीचे लिखा कार्यक्रम स्वीकार किया—

१. जवतक कि सरकार राष्ट्रीय माँगका सन्तोषप्रद उत्तर नही देती तवतक ऐसे किसी पदको स्वीकार न करना जिसका देना या न देना सरकार के अधीन हो।

२. जवतक सरकारका उत्तर सन्तोषप्रद नही होता तवतक वजटको नामंजूर करना।

३. ऐसे सब कानूनोको नामंजूर करना जिनके द्वारा नौकरशाही अपनी शक्तिको मजवूत करना चाहती है।

४. व्यवस्थापक-सभाओमे ऐसे सब प्रस्ताव और विल पेश करना या उनका समर्थन करना जो राष्ट्रीय जीवनके विकास तथा देशकी आर्थिक, औद्योगिक और व्यावसायिक उन्नतिके लिए आवश्यक हो।

५. जमीदारोके स्वत्वोका उचित विचार करते हुए उपयुक्त कानूनद्वारा किसानोकी अवस्थाको उन्नत करनेका प्रयत्न करना।

६. सामान्यत: मजदूरोके अधिकारोंकी रक्षा करना और जमीदार किसान तथा पूँजीपति और मजदूरके पारस्परिक सम्वन्धका समाधान करना।

स्वराज्य-पार्टीके कुछ सदस्य पद स्वीकार करनेके पक्षमे थे। ऐसे लोग धीरे-धीरे स्वराज्य-दलको छोड़ने लगे। इन लोगोने अपना एक नया दल वना लिया। उसका नाम रेस्पांसिविस्ट कोआपरेशन पार्टी रखा गया। चुनावके समय कांग्रेसकी प्रतिस्पर्धा करनेके लिए हिन्दू सभाके कुछ नेताओने इण्डिपेण्डेण्ट कांग्रेस पार्टी भी कायम की। इन दोनो विरोधी पार्टियोकी एक ही नीति थी। इस विरोधके कारण चुनावमे कांग्रेसको वहुत अच्छी सफलता न मिली।

सुधार-जॉच-कमेटीकी नियुक्तिके समयसे ही लोगोकी यह धारणा हो चली थी कि कुछ न कुछ सुधार अवश्य दिये जायँगे। इसी विचारसे डाक्टर वेसेटने १९२५मे कामन-वेल्थ आव् इण्डिया विल तैयार किया। मुस्लिम लीग फिरसे जिन्दा की गयी और नये

---

[1] यह नोट करनेकी वात है कि कांग्रेसके प्रस्तावमे सितम्वर १९२५ की राष्ट्रीय माँगका उल्लेख नही है।

शासन-विधानमें मुसलमानोका क्या स्थान होगा, इस विषयपर विचार किया गया। काग्रेसने सरकारकी बेरुखीको देखकर शक्तिको हर तरहसे बढ़ानेका सकल्प किया। स्वराज्य-पार्टीके समझौतेके लिए उद्यत होनेपर भी तथा सहयोगका वचन देनेपर भी जब सरकारने राष्ट्रीय माँगकी सर्वथा उपेक्षा की और इस प्रकार राष्ट्रका अपमान किया तो कांग्रेसने हिन्दू-मुसलिम तथा सर्वदल एकता द्वारा राष्ट्रकी शक्तिको बढानेका निश्चय किया। गोहाटी काग्रेसने हिन्दू-मुस्लिम वैमनस्य दूर करनेके लिए उचित उपायोंके निर्धारित करनेका वर्किङ्ग कमेटीको आदेश किया। वर्किङ्ग कमेटीने हिन्दू-मुस्लिम एकता स्थापित करनेकी दृष्टिसे हिन्दू-मुस्लिम नेताओसे परामर्श कर एक रिपोर्ट तैयार की और अखिल भारतवर्षीय-काग्रेस कमेटीने मई १९२७में इस रिपोर्टको स्वीकार किया। नवीन शासन-विधानमे मुसलमानोका क्या स्थान होगा, इसी सम्बन्धमे यह निश्चय हुआ था। गोवध तथा बाजेके प्रश्नपर विचार करनेके लिए कलकत्तेमे अक्तूबर १९२७मे एकता सम्मेलन हुआ था। इस सम्मेलनके निर्णयोंको काग्रेस कमेटीने कुछ संशोधनोके साथ स्वीकार किया। अखिल-भारतवर्षीय काग्रेस कमेटीने भिन्न-भिन्न राजनीतिक दलोंके नेताओं तथा केन्द्रीय और प्रान्तीय व्यवस्थापक सभाओंके निर्वाचित सदस्योसे परामर्श कर भारतके लिए एक शासन-विधान तैयार करनेके लिए आदेश किया था। जब कांग्रेस इन प्रयत्नोमें लगी थी, सरकारने सुधारोकी जाँच तथा भविष्यके लिए सिफारिश करनेकी गरजसे साइमन कमीशनकी नियुक्ति की। इस कमीशनमे एक भी भारतवासी नही रक्खा गया। इस कारण लिबरल दलके लोग असन्तुष्ट हो गये और उन्होने कमीशनके साथ असहयोग करनेका निश्चय किया। काग्रेस भी सरकारके इस निर्णयसे अप्रसन्न थी, क्योकि सरकारने राष्ट्रीय माँगकी अवहेलना की थी। राष्ट्रकी माँग गोलमेज परिषद्द्वारा शासन-विधान तैयार करानेकी थी, पर सरकारने गोलमेज कानफरेन्स आमन्त्रित न कर रायल कमीशन की नियुक्ति की थी। काग्रेसकी वर्किङ्ग कमेटीने नवम्बर १९३०मे इसलिए सब राजनीतिक दलोसे अपील की कि वह इस कमीशनसे असहयोग करे और उसके सामने न शहादत दे और न किसी ऐसी सिलेक्ट कमेटीकी सदस्यता स्वीकार करे जो इस कमीशनके सम्बन्धमे स्थापित की जावे। दिसम्बर मे कमीशनके बहिष्कारके सम्बन्धमें वर्किङ्ग कमेटीने कई सूचनाएँ निकाली। इस प्रकार बहुत वर्षोंके बाद भारतके विविध राजनीतिक दलोको एक साथ काम करनेका मौका मिला। साइमन कमीशनका सब दलोने विरोध किया। जिस दिन साइमन-कमीशनके सदस्योने भारत-भूमिपर पैर रखा उस दिन सारे भारतमे हडताल मनायी गयी। जहाँ-जहाँ साइमन कमीशनका पदार्पण हुआ वहाँ-वहाँ विरोधमे जुलूस निकाले गये और काले झण्डे दिखलाये गये। जिस प्रकार मिस्रियोने मिलकर कमीशनका बहिष्कार किया था उसी प्रकार भारतवासियोने साइमन कमीशनका बहिष्कार किया। पुलिसने जगह-जगह जुलूसोंपर लाठीका प्रहार किया। काग्रेसके प्रतिष्ठित नेता भी पुलिसके इस अमानुषिक अत्याचारसे न बच सके। लाहौरमे लाला लाजपतराय, तथा लखनऊमे पं० जवाहरलाल नेहरू और पं० गोविन्द वल्लभ पंत ऐसे बड़े नेताओपर भी पुलिसने लाठीका प्रहार किया। सरकारी

कर्मचारियोंके इन घृणित कृत्योके कारण लोगोको असाधारण रोष हुआ और नवयुवक प्रतिकारके लिए विक्षुब्ध हो गये। जहाँ भारतकी घरेलू परिस्थिति धीरे-धीरे सुधर रही थी और सब दलोमें सरकारके विरोध करनेका भाव जागृत हो रहा था, वहाँ एशियामे भी इस समय कुछ ऐसी बाते हुई जिनका प्रभाव भारतकी राजनीतिक स्थितिपर पड़ा और जिनसे स्वाधीनताके लिए आगे कदम बढानेके लिए भारतको प्रेरणा मिली। हम ऊपर कह चुके है कि सोवियट रूसने ब्रिटिश साम्राज्यवादका विरोध करनेके लिए एशियामें एक संघ बनाया था। सोवियट रूसकी इस नीतिके कारण ब्रिटिश सरकारका प्रभाव एशियामे बहुत घट गया। इस कारण १९२१में इङ्गलैण्ड रूसरो एक व्यापारिक सन्धि करनेके लिए विवश हुआ, पर यह सन्धि स्थायी न हो सकी। सन् १९२६में इङ्गलैण्टमें कोयलेकी खानके मजदूरोने एक हड़ताल की थी। सोवियट रूसकी ट्रेड यूनियनने इन मजदूरोकी सहायता की, इसलिए ब्रिटिश सरकार सोवियटके और भी अधिक विरुद्ध हो गयी। १९२६-२७में चीनमें एक क्रान्ति हुई थी। उस समय चीनियोंका भाव विशेष रूपसे इङ्गलैण्डके विरुद्ध था, ब्रिटिश मन्त्रिमण्डलने उस विरोधके लिए सोवियट रूसको उत्तरदायी ठहराया और २४ मई १९२७ को रूससे अपना सम्बन्ध विच्छिन्न कर लिया। इङ्गलैण्डने इस बातका प्रयत्न किया कि फ्रान्स और जर्मनी इस विषयमें उनका साथ दें। इङ्गलैण्डकी इस कार्य प्रणालीसे सोवियट रूसको और भी भय हुआ। उसने अपनी रक्षाके लिए १९२५मे तुर्कीके साथ और १९२६मे जर्मनी और अफगानिस्तानके साथ सन्धि की थी। इन सन्धियोके द्वारा इन राष्ट्रोने आपसमें यह निश्चय किया कि यदि कोई तीसरी शक्ति इनमेंसे किसीपर आक्रमण करेगी तो वह तटस्थ रहेगे और कोई किसी ऐसे सम्बन्धमे शरीक न होगा जिसका उद्देश्य उनमेंसे किसीके विरुद्ध आर्थिक अवरोध करनेका हो। यूरोपीय शक्तियोसे अपनी रक्षा करनेके लिए एशियाके राष्ट्रोमे आपसका मेल बढता जाता था और एशियाके राष्ट्र सोवियट रूसको अपना सच्चा मित्र और सहायक समझते थे। भारत भी साम्राज्यवादका विरोध करनेके लिए एशियाके अन्य राष्ट्रोंसे सहयोग करना चाहता था। गुलाम होनेके कारण यह सन्धि तो कर नही सकता था, पर वह इस बातकी घोषणा तो अवश्य कर सकता था कि वह ऐसे किसी युद्धमें ब्रिटिश सरकारका साथ देनेको तैयार नही है जिसका उद्देश्य साम्राज्यवादकी नीवको मजबूत करना हो। १९२७की मद्रासकी कांग्रेसने इस बातकी घोषणा की कि भारतवासी अपने पड़ोसियोके साथ शान्ति और प्रेमके साथ रहना चाहते है। उसका उनसे कोई झगडा नही है और ब्रिटिश सरकार अपनी सहायता करनेके लिए भारतवर्षको मजबूर नही कर सकती। भारतवासियोको इस बातका पूरा अधिकार प्राप्त है कि वह चाहे तो किसी युद्धमें योग दे या न दे। उस समय भारतकी उत्तर-पश्चिम सीमापर युद्धकी तैयारी हो रही थी। और आसामकी ओर एक फौजी प्रान्त बनानेका विचार हो रहा था। कांग्रेसने स्पष्ट कर दिया कि यदि सरकार कोई युद्ध छेड़ेगी तो भारतवासियोंका कर्तव्य होगा कि वे इस युद्धमे योग न दे।

क्रान्तिमे सफलता पानेपर चीनके लोगोको कांग्रेसने बधाई दी और उनको इस बातका

इत्मीनान दिलाया कि भारतवासी उनके साथ पूरी सहानुभूति रखते है । अपनी सहानुभूति दिखलानेके लिए काग्रेसने एक मेडिकल कमीशन भेजनेका भी निश्चय किया पर सरकारने इजाजत नही दी । चीनियोके विरुद्ध लड़नेके लिए भारतीय सरकारने कुछ हिन्दुस्तानी फौज चीन भेजी थी । काग्रेसने इसका विरोध किया और सरकारसे अनुरोध किया कि जो फौज या पुलिस हिन्दुस्तानसे चीन, फारस या मेसोपोटेमिया भेजी गयी हो वह वापस बुला ली जावे। यह सच है कि सरकारपर इन प्रस्तावोका कोई प्रभाव न पड़ा, पर कांग्रेसने संसारको दिखला दिया कि इन कार्योके लिए सरकार ही जिम्मेदार है और जनता नही चाहती कि दूसरोंकी स्वतन्त्रता अपहरण करनेमे भारतवासियोका कोई हाथ हो ।

ब्रिटिश साम्राज्यवादका विरोध करनेके विचारसे गोहाटी काग्रेसने प० जवाहरलाल नेहरूको ब्रुसेल्सके लिए अपना प्रतिनिधि निर्वाचित किया था। फरवरी १९२७मे ब्रुसेल्समें साम्राज्यवादका विरोध करनेके लिए एक "इटर नेशनल काग्रेस" हुई थी । इस काग्रेसमे चीन, मिस्र, फारस, सीरिया, अनाम, कोरिया, मरक्को, मेक्सिको आदि कई देशोसे प्रतिनिधि आये थे । प० जवाहरलाल भारतके प्रतिनिधि थे । पण्डितजीकी सिफारिशपर मद्रास-काग्रेस (१९२७)ने साम्राज्यवादका विरोध करनेके लिए साम्राज्य विरोधी सघ (Leaque against imperialism)से सहयोग करनेका निश्चय किया । मद्रासके अधिवेशनमे ही काग्रेसने पूर्ण स्वतन्त्रताको अपना ध्येय घोपित किया । इन विविध निश्चयोंके कारण ससारका ध्यान भारतकी ओर आकृष्ट हुआ । कलकत्तेकी काग्रेस (१९२८)के अवसरपर वाहरसे वहुतसे सन्देश आये । कलकत्तेके अधिवेशनमे काग्रेसने एक विदेशी विभाग (foreign department) खोलनेका निश्चय किया और अपना यह मत प्रकट किया कि साम्राज्यवादका विरोध करनेके लिए यह उचित मालूम होता है कि भारतवर्ष ऐसे सव देशोसे अपना सम्वन्ध स्थापित करे जो साम्राज्यवादका विरोध करना चाहते है । दूसरे प्रस्तावद्वारा वर्किङ्ग कमेटीको हिदायत की गयी कि वह सन् १९३०मे भारतमे 'पैन एशियाटिक फेडरेशन'का पहला अधिवेशन निमन्त्रित करे । मिस्र, सीरिया, पैलेस्टाइन और इराकको काग्रेसने सहानुभूति-का सन्देश भेजा और इन देशोको इस वातका विश्वास दिलाया कि भारत उनके साथ पूरी सहानुभूति रखता है ।

हम ऊपर कह चुके है कि अखिल भारतवर्षीय काग्रेस-कमेटीने अन्य राजनीतिक दलोके साथ मिलकर एक शासन-विधान तैयार करनेका निश्चय किया था । मद्रास काग्रेसने इस निश्चयको मजूर किया । वर्किङ्ग कमेटीने इस निश्चयके अनुसार सर्वदल सम्मेलनकी आयोजना की । विविध संस्थाओके प्रतिनिधि आमन्त्रित किये गये और सम्मेलनका एक अधिवेशन दिल्लीमे (फरवरी, १९२८), एक वम्वईमे (मई, १९२८) और एक लखनऊ (अगस्त, १९२८)मे हुआ । शासन-विधानका मसविदा तैयार करनेमें कई तरहकी कठिनाइयाँ प्रतीत हुई । इसलिए शासनविधानके सिद्धान्तोको स्थिर करनेके लिए एक कमेटी नियुक्त की गयी । इस कमेटीने एक रिपोर्ट तैयार की जो नेहरू रिपोर्टके नामसे प्रसिद्ध है । यह रिपोर्ट औपनिवेशिक स्वराज्यके आधारपर तैयार

हुई थी । इसलिए बहुतसे कांग्रेसके सदस्योंने इसपर यह आक्षेप किया कि यह स्वतन्त्रताके ध्येयके प्रतिकूल है । इस कारण कांग्रेसमें वाद-विवाद उत्पन्न हो गया । जो लोग कांग्रेसके ध्येयको नीचा नहीं करना चाहते थे उन्होंने स्वाधीनता संघ कायम किया । इस संघके केवल वे ही सदस्य हो सकते थे जो कांग्रेसके भी सदस्य थे । पूर्ण स्वतन्त्रताके उद्देश्यके साथ-साथ सामाजिक तथा आर्थिक समताके आधारपर भारतीय समाजका पुनर्निर्माण करना संघका उद्देश्य था । कलकत्ता-कांग्रेस (१९२८)के अवसरपर जब सर्वदल कमेटीकी रिपोर्ट स्वीकृतिके लिए पेश हुई तो बहुत वादविवाद हुआ, पर अन्तमें रिपोर्ट मंजूर की गयी और कांग्रेसने अपना यह निश्चय प्रकट किया कि यदि ब्रिटिश पार्लमेण्ट इस शासन-विधानको ज्योंकी त्यों ३१ दिसम्बर १९२९ तक मंजूर कर लेगी तो कांग्रेस इसे स्वीकार करेगी अन्यथा कांग्रेस अहिंसात्मक असहयोग आरम्भ कर देगी और देशको सलाह देगी कि वह टैक्स न अदा करे ।

१९२८ की सबसे अधिक महत्त्वकी घटना बारडोली सत्याग्रह थी । बारडोली ताल्लुकेके किसानोंका कहना था कि मालगुजारीकी तशखीस गलत है और उन्होंने फिरसे जाँच करनेकी सरकारसे प्रार्थना की । जब सरकारने इस साधारण प्रार्थनापर भी ध्यान न दिया तो किसानोंने श्री वल्लभभाई पटेलके नेतृत्वमें सत्याग्रह आरम्भ किया और मालगुजारी देना बन्द कर दिया । लोगोंकी जमीनें और मवेशी पानीके मोल नीलाम कर दिये गये और उनपर नाना प्रकारके अत्याचार किये गये, पर सत्याग्रही अपनी प्रतिज्ञापर अटल रहे । उनके अद्भुत संगठन, असीम धैर्य और त्यागको देखकर लोग चकित हो गये । अन्तमें सरकारको झुकना पड़ा और किसानोंकी माँग स्वीकार करनी पड़ी । सत्याग्रहकी इस रण-पद्धतिमें लोगोंका विश्वास बढ़ने लगा और भारतका स्थान संसारकी दृष्टिमें बहुत ऊँचा हो गया ।

नवयुवकोंमें भी इस वर्ष विशेष रूपसे जागृति हुई । युवक-संघ स्थापित किये गये । नवयुवकोंने बहिष्कारके प्रदर्शनोंमें अच्छा भाग लिया । बम्बई और बङ्गालमें युवकोंका अच्छा संगठन हो गया । इस वर्ष मजदूरोंमें भी बहुत हलचल रही । कई हड़तालें हुईं । बम्बईके मजदूरोंकी हड़ताल विशेष रूपसे उल्लेखनीय है । यह छः महीनेतक चलती रही । मजदूरोंने अपने संगठन और दृढ़ताका अच्छा सबूत दिया । सन् १९२९में भी मजदूरोंकी हड़तालें जारी रहीं । बङ्गालमें जूटमिलके लगभग ढाई लाख मजदूरोंने हड़ताल की, पर अच्छा संगठन न होनेके कारण इनको सफलता न मिली । बम्बईके मजदूरोंमें वर्गवादके सिद्धान्तका प्रचार हो रहा था । उनकी मनोवृत्ति बदलने लगी और एक वर्गमें मजदूरोंकी हुकूमत कायम करनेकी प्रवृत्ति पैदा हो गयी । २० मार्च सन् १९२९को बङ्गाल, बम्बई, पञ्जाब और संयुक्तप्रान्तके अनेक कार्य-कर्त्ता गिरफ्तार कर लिये गये और उनपर १२१-अ धाराके अनुसार षड्यन्त्रका अभियोग लगाया गया । यह मेरठ-षड्यन्त्रका मुकदमा अभीतक समाप्त नहीं हुआ है । सन् १९२९में लाहौर षड्यन्त्रका मामला भी चला । राजनीतिक कैदियोंके साथ बुरा व्यवहार होनेके कारण कुछ अभियुक्तोंने भूख-हड़ताल की । श्री जतीन्द्रनाथ दासकी इसीमें मृत्यु हुई । इसका

देशपर बहुत गहरा प्रभाव पड़ा और इस आत्माहुतिसे जनताका ध्यान राजनीतिक कैदियोंकी दुरवस्थाकी ओर आकृष्ट हुआ।

अन्तर्राष्ट्रीय जगत्मे काग्रेसका महत्व और प्रभाव बढ़ने लगा। लन्दन, न्यूयार्क, कोबे और गोआमे काग्रेस कमेटियाँ कायम हुई। काग्रेसके विदेशी विभागने भारतके बाहरकी संस्थाओसे सम्बन्ध स्थापित करना शुरू किया, पर डाकके रोके जानेके कारण इस कार्यमे बड़ी अड़चन पड़ी। सबकी निगाहे लाहौर काग्रेस (१९२९) पर थी। ३१ अक्तूबर, १९२९को लार्ड अरविनने एक वक्तव्य प्रकाशित किया, जिसमे उन्होने इस बातकी घोषणा की कि सरकारका ध्येय भारतमे औपनिवेशिक स्वराज्य स्थापित करना है, और इस बातकी सूचना दी कि लन्दनमे गोलमेज परिषद होगी जिसमे भारतके प्रतिनिधि आमन्त्रित किये जावेगे। इस वक्तव्यके सम्बन्धमे पार्लमेण्टमे जो वाद-विवाद हुआ था उस अवसरपर कुछ सदस्योंने वायसरायकी घोषणाको स्पष्ट कर देनेके लिए भारत-सचिवसे प्रार्थना की थी, पर भारत-सचिवने वक्तव्यका स्पष्टीकरण नही किया। इस वाद-विवादमे भाग लेते हुए मजदूर-दलके नेताओने जो भाषण किये थे उनका सारांश यही है कि यह वक्तव्य किसी नवीन नीतिका प्रख्यापन नही करता। २० अगस्त १९१७ की घोषणाके आशयके सम्बन्धमे कुछ लोगोको सन्देह हो गया था। उस सन्देहका निराकरण करनेके लिए ही वायसरायने यह वक्तव्य प्रकाशित किया है। वह केवल पुरानी नीतिका स्पष्टीकरण मात्र है। इस वाद-विवादसे वक्तव्यका मूल्य और भी कम हो गया। वक्तव्यका अर्थ ठीक-ठीक समझनेके लिए महात्माजी, पं० मोतीलाल नेहरू, डा० सप्रू, श्री विट्ठलभाई पटेल और श्री जिन्ना २३ सितम्बर १९२९को दिल्लीमे वायसरायसे मिले। इस मुलाकातमें महात्माजीने वायसरायसे यह आश्वासन चाहा कि ब्रिटिश मन्त्रिमण्डल औपनिवेशिक स्वराज्यकी योजनाका समर्थन करेगा। वायसरायने महात्माजीको किसी प्रकार आश्वासन नही दिया इसलिए इस मुलाकातका कोई नतीजा न निकला। अब काग्रेसके सामने कलकत्ता काग्रेसके प्रस्तावको कार्यान्वित करनेके सिवाय दूसरा कोई रास्ता नही रह गया। अत. लाहौरकी काग्रेसने यह निश्चय किया कि वर्तमान परिस्थितिमे प्रस्तावित गोलमेज परिषद्मे काग्रेसके प्रतिनिधियोके जानेसे कोई लाभ नही है, इसलिए कांग्रेस गतवर्षके निश्चयके अनुसार यह घोषित करती है कि काग्रेस विधान-पत्रकी धारा १ में वर्णित 'स्वराज्य' शब्दका अर्थ 'पूर्ण स्वाधीनता' होगा; काग्रेस यह भी घोषित करती है कि नेहरू कमेटीकी रिपोर्टकी पूरी योजना अब रद्द हो गयी और आशा करती है कि काग्रेसके सब सदस्य आगेसे पूर्ण-स्वाधीनता प्राप्त करनेके लिए अपनी सारी शक्ति लगायेगे। काग्रेसने व्यवस्थापक सभाओके बहिष्कार करनेका भी निश्चय किया और व्यवस्थापक सभाओके काग्रेसी सदस्योंको अपनी जगहसे हट जानेका आदेश दिया। कांग्रेसने रचनात्मक कार्यक्रमको उत्साहके साथ चलानेका राष्ट्रसे अनुरोध किया और भारतीय काग्रेस-कमेटीको यह अधिकार दिया कि जब वह उचित समझे तब सत्याग्रह आन्दोलनका आरम्भ करे। वर्किङ्ग कमेटीने २६ जनवरी सन् १९३०को पूर्ण स्वराज्य दिवस मनानेका निश्चय किया। इस निश्चयके अनुसार देशभरमे पूर्णस्वराज्य दिवस

बड़े समारोहके साथ मनाया गया। स्थान-स्थानपर सभाएँ की गयीं और वर्किङ्ग-कमेटी-द्वारा प्रकाशित घोषणा पढ़ी और दुहरायी गयी। भारतके बाहर भी जहाँ कहीं भारतवासी बसे हैं, वहाँ भी पूर्ण स्वराज्य दिवसका उत्सव मनाया गया। कांग्रेसके आदेशके अनुसार व्यवस्थापक सभाओंके १७२ सदस्योंने सदस्यतासे त्याग-पत्र दे दिया। फरवरी सन् १९३०मे वर्किङ्ग कमेटीकी एक बैठक साबरमतीमे हुई और उसके प्रस्तावानुसार सरकारके साथ सत्याग्रहके युद्धका आरम्भ हुआ। यह युद्ध अभीतक समाप्त नहीं हुआ है। सरकारके साथ कांग्रेसकी विरामसन्धि हो गयी है, लेकिन यदि आपसके समझौतेसे समस्या हल न हुई तो फिर युद्ध चलने लगेगा। सत्याग्रहके इस आन्दोलनका इतिहास लिखनेका समय अभी नहीं आया है, लेकिन इसके महत्त्वको देखते हुए और इतिहासके चित्रको यथावधि पूरा करनेके उद्देश्यसे आजतककी घटनाओंका सक्षेपमें नीचे उल्लेख किया जाता है। इस युद्धमे देशने अहिंसा और आत्म-बलिदानका अपूर्व परिचय दिया। कमसे कम अस्सी हजार आदमी जेलोमे गये और एक हजार मारे गये। स्त्रियोंका भाग विशेष उल्लेखनीय रहा, और बच्चोकी वानरसेना तो मशहूर ही हो गयी। बम्बईने भी सरकारके अनवरत होनेवाले प्रहारोंके सामने अटल रहकर अपनी वीरताका विशेष परिचय दिया। अस्तु, साबरमतीमे वर्किङ्ग कमेटीकी जिस बैठकका ऊपर जिक्र किया गया है उसमें सत्याग्रहके सम्बन्धमे जो प्रस्ताव स्वीकृत हुआ था उसका आशय इस प्रकार है :—

वर्किङ्ग कमेटीकी रायमें सत्याग्रह-आन्दोलनका आरम्भ और नियन्त्रण उन्हीं लोगोंके द्वारा होना चाहिये जिनकी अहिंसामे पूर्ण निष्ठा और श्रद्धा है और जो अहिंसाद्वारा ही पूर्ण स्वराज्यको प्राप्त करना चाहते हैं। और चूंकि कांग्रेसके संगठनमें ऐसे लोग भी पाये जाते हैं जो अहिंसाको नीतिके रूपमें ही स्वीकार करते हैं, इसलिए वर्किङ्ग कमेटी महात्माजी और उनके सहकारियोको इस बातका अधिकार देती है कि वे जब, जिस रूपमें और जिस प्रकारसे चाहें सत्याग्रह-आन्दोलन आरम्भ करें। वर्किङ्ग-कमेटी विश्वास करती है कि जब आन्दोलनका समारम्भ होगा तब कांग्रेसके सदस्य तथा दूसरे लोग सत्याग्रहियोंके साथ पूरा सहयोग करेंगे और उत्तेजना मिलनेपर भी पूर्ण रूपसे अहिंसात्मक बने रहेंगे। वर्किङ्ग कमेटी यह भी आशा करती है कि आन्दोलनके सार्वजनिक होनेकी अवस्थामे वे लोग जो सरकारके साथ सहयोग करते हैं या सरकारसे कुछ लाभ प्राप्त करते हैं वे सब सहयोग करना बन्द कर देंगे और उन लाभोका परित्याग कर स्वतन्त्रताके इस अन्तिम संग्राममें सम्मिलित हो जायँगे। वर्किङ्ग कमेटी विश्वास रखती है कि नेताओंके गिरफ्तार हो जानेपर जो लोग बच जायँगे उनमेंसे जिनमे आत्म-त्याग और देशसेवाका भाव होगा वे आन्दोलनका संचालन करेंगे।

सत्याग्रह आन्दोलन आरम्भ करनेके पूर्व महात्माजीने दूसरी मार्चको वायसरायके नाम एक पत्र भेजा। समझौतेका यह अन्तिम प्रयत्न था। इस पत्रमे महात्माजीने ब्रिटिश शासनकी बुराइयोका उल्लेख किया और यह निवेदन किया कि यदि वायसराय इन बुराइयोको दूर करनेका कोई इलाज नहीं निकालेंगे तो मैं अपने आश्रमके साथियोको लेकर नमक-सम्बन्धी कानून तोड़नेके लिए आश्रमसे बाहर निकलूंगा। वायसरायका

उत्तर सन्तोष-प्रद न था, इसलिए १२ मार्चको महात्माजीने लगभग ८० सत्याग्रही स्वयं-सेवकोंके साथ नमक-सम्बन्धी कानून तोड़नेके लिए डाँडी (यह सूरत जिलेमे समुद्र-तटपर एक स्थान है) की ओर प्रस्थान किया। रास्तेमे जहाँ-जहाँ महात्माजी रुकते थे वहाँ-वहाँ बहुत बड़ी-बडी सभाएँ होती थी। गॉवके मुखिया और पटेलोने राष्ट्रीय-आन्दोलनमे सम्मिलित होनेके लिए त्यागपत्र देना आरम्भ किया और इस दौरेसे गुजरातमे अपूर्व जागृति हो गयी। ६ अप्रैलको महात्माजीने डाँडीमे समुद्रके किनारे नमक-कानूनको भंग किया। २१ मार्चको अखिल भारतवर्षीय कांग्रेस कमेटीने यह निश्चय किया था कि जबतक महात्माजी डाँडी पहुँचकर नमक कानूनको नही तोडते तबतक प्रान्तीय कांग्रेस-कमेटियाँ अपने-अपने प्रान्तमें सत्याग्रह शुरू न करे। ६ अप्रैलको सत्याग्रह आरम्भ करनेका अधिकार समस्त देशको मिल गया। जगह-जगह नमक बनने लगा और बेचा जाने लगा। लोगोकी गिरफ्तारियाँ शुरू हो गयी। गुजरातमे कई जगह सामूहिक रूपसे नमक सत्याग्रह किया गया। ऐसे स्थानोमे जो समुद्रतटके करीब थे नमक सत्याग्रहकी विशेष सुविधा थी। पुलिसका अत्याचार शुरू हो गया। आणन्दमे सत्या-ग्रहियोंके शिविरपर रात्रिमे हमला किया गया और बेरहमीके साथ सत्याग्रही मारे गये। धुलेरामे नमक छीननेके लिए पुलिसवालोने सत्याग्रहियोके ऊपर अमानुषिक अत्याचार किये। इस प्रकारकी घटनाएँ सामान्य हो गयी। धीरे-धीरे यह आन्दोलन सब प्रान्तोमे फैल गया। नमक-सत्याग्रहके साथ-साथ मादक द्रव्य-निषेध तथा विदेशी वस्त्रके बहिष्कारका कार्य जोरोसे शुरु हुआ। जगह-जगह शराब और विदेशी वस्त्रकी दूकानोपर धरना दिया जाने लगा। रोजकी गिरफ्तारियोसे लोगोका जोश बढ़ने लगा। लोगोके बढते हुए जोशको देखकर पुलिसका अत्याचार भी बढने लगा। राष्ट्रके इस अपूर्व बलिदानको देखकर सारे ससारका ध्यान भारतकी ओर आकृष्ट हो गया। २३ अप्रैलको पेशावरमे बिना किसी प्रकारकी चेतावनी दिये हुए शान्त और निहत्थी जनतापर सशस्त्र मोटर गाड़ियाँ वेगसे दौडा दी गयी और बहुत देरतक भीड़पर गोलियोकी वर्षा जारी रही। लोग एक बडी सख्यामे मरे और घायल हुए। वर्किङ्ग कमेटीने १४ मईको श्री विट्ठलभाई पटेलके सभापतित्वमे पेशावर जाँच-कमेटी नियुक्त की। अधिकारियोने कमेटीके सदस्योको सीमाप्रान्तके भीतर जानेकी इजाजत नही दी, इसलिए कमेटीने रावलपिण्डीमे ही जाँचका काम शुरू किया और जब कमेटीकी रिपोर्ट प्रकाशित हुई तो सरकारने उसे जब्त कर लिया। २७ अप्रैलको वायसरायने प्रेस आर्डिनेंस पास किया। ५ मईको महात्माजी कराडीमे गिरफ्तार कर लिये गये, और यरवदा जेलमें अनिश्चित कालके लिए बन्द कर दिये गये। सत्याग्रहियोने वडाला और धरसानाके नमकके कारखानो-पर धावा बोल दिया। धरसानाके हमलेमे महात्मा गाधीके बहादुर सत्याग्रहियोने भाग लिया था। इन हमलोंमे पुलिसने सत्याग्रहियोपर लाठीका प्रहार किया था, लेकिन सत्याग्रहियोने वीरता और शान्तिके साथ उस अत्याचारका मुकाबला किया। वर्किङ्ग कमेटीने मईकी बैठकमे यह निश्चय किया कि करबन्दीके आन्दोलनके आरम्भ करनेका समय आ गया है और अपना यह मत प्रकट किया कि ऐसे प्रान्तोमे जहाँ रैयतवारी प्रथा

प्रचलित है, लगान-बन्दीका आन्दोलन शुरू होना चाहिये और बङ्गाल, विहार, उड़ीसामें चौकीदारी टैक्सका देना बन्द कर देना चाहिये। १५ मई सन् १९३०को शोलापुरमें मार्शल ला जारी किया गया। सीमाप्रान्तकी कांग्रेस-कमेटियाँ गैरकानूनी करार दी गयी। ३० मईको वायसरायने दो और आर्डिनेन्स जारी किये। ये आर्डिनेन्स शान्तिमय पिकेटिङ्ग, सरकारी अफसरोके सामाजिक बहिष्कार तथा करबन्दी आन्दोलनको रोकनेके लिए जारी किये गये थे। दिल्ली और लखनऊमे गोली चली। स्त्रियो और बच्चोंने भी आन्दोलनमे भाग लेना शुरू किया। गिरफ्तारी, तलाशी, जब्ती और लाठीप्रहार आम बाते हो गयी। पुलिसके इन अमानुषिक अत्याचारोके विरोधमे कौंसिलके नरमदलके अनेक सदस्योने भी इस्तीफा दे दिया। वर्किङ्ग कमेटीने जूनमें ब्रिटिश मालके बहिष्कारका आदेश किया। विदेशी वस्त्रके बहिष्कारमे कांग्रेसको बहुत सफलता मिली। गुजरातमे लगान-बन्दीका आन्दोलन शुरु हो गया और विहारमे चौकीदारी टैक्सके विरुद्ध सत्याग्रह शुरू हुआ। मध्यप्रान्त, वरार, कर्नाटक और महाराष्ट्रमे जगह-जगह जंगलका कानून भी तोडा गया।

२४ जूनको साइमन कमीशनकी सिफारिशे प्रकाशित हुई। इनसे किसी दलको भी सन्तोष न हुआ। सितम्बरमे साइमन कमीशनकी रिपोर्टके सम्बन्धमें भारतीय सरकारका खरीता प्रकाशित हुआ। भारतीय सरकारकी सिफारिशे साइमन कमीशनकी सिफारिशोंकी अपेक्षा अधिक उदार थी, पर इनको भी कोई दल स्वीकार करनेको तैयार न था। अगस्तमे दिल्लीके चीफ कमिश्नरने कांग्रेसकी वर्किङ्ग कमेटीको नाजायज करार दिया और डाक्टर अनसारी, पं० मदनमोहन मालवीय, श्री विट्ठलभाई पटेल, तथा वर्किङ्ग कमेटीके अन्य सदस्य, जो दिल्लीकी बैठकमे सम्मिलित होने आये थे, गिरफ्तार कर लिये गये। मद्रास, बम्बई, विहार, और पञ्जाबकी सरकारोंने भी वर्किङ्ग कमेटीको नाजायज करार दे दिया। सितम्बरमे पञ्जाब और दिल्लीकी सब कांग्रेस-कमेटियाँ नाजायज करार दी गयी। ऐसेम्बली और कौंसिल आव् स्टेटके कुछ सदस्योने १४ जुलाईको श्री जयकरको सरकार और कांग्रेसके बीच समझौता करानेके प्रयत्न करनेका अधिकार दिया। वायसरायकी अनुमतिसे सर सप्रू और श्री जयकर महात्माजी, प० मोतीलाल जी और प० जवाहरलालजीसे मिले, पर कोई समझौता न हो सका। १० अक्तूबरको वायसरायने एक आर्डिनेन्स जारी कर प्रान्तीय सरकारोको गैरकानूनी सस्थाओकी चल सम्पत्तिको जब्त करने तथा अचल सम्पत्तिपर कब्जा करनेका अधिकार दिया। जगह-जगह कांग्रेस-कमेटियाँ नाजायज करार दी जाने लगी और सरकार कांग्रेस-शिविरोपर कब्जा करने लगी।

१२ नवम्बरको महाराज जार्ज पञ्चमने गोलमेज परिषदका उद्घाटन किया। उस दिन सारे भारतवर्षमे हड़ताल रही। २३ दिसम्बरको वायसरायने दो और आर्डिनेन्स जारी किये। संयुक्तप्रान्तके कुछ जिलोमे भी लगानबन्दीका आन्दोलन शुरू किया गया। वारडोली और बोरसद ताल्लुकेके किसानोंने अपना घर-बार छोड़ दिया और पासके बड़ौदा राज्यमे चले गये। १९ जनवरी सन् १९३१को इङ्गलैण्डके प्रधान सचिवने अपने

वक्तव्यमें कांग्रेसका सहयोग प्राप्त करनेके लिए अपनी उत्सुकता प्रकट की। उनके आदेशसे वर्किङ्ग कमेटीके सब सदस्य छोड़ दिये गये। ५ मार्चको लार्ड अरविन और महात्मा गाधीके बीच समझौता हो गया। सब आर्डिनेस मंसूख कर दिये गये और सत्याग्रहियोके छोड़े जानेकी आज्ञा दी गयी। कांग्रेसने सत्याग्रह आन्दोलन स्थगित कर दिया, पर विदेशी वस्त्र और मादक द्रव्योकी दूकानोपर शान्तिमय धरना देनेका अधिकार सुरक्षित रखा। करॉचीकी कांग्रेसने विराम सन्धिका समर्थन किया और उसने महात्मा गाधीको गोलमेज परिषदके लिए अपना प्रतिनिधि नियुक्त किया और निश्चय किया कि उनके अतिरिक्त जिन अन्य सज्जनोको वर्किङ्ग कमेटी नियुक्त करेगी वे भी महात्माजीके नेतृत्वमे कांग्रेसका प्रतिनिधित्व करेगे। कांग्रेसने अपने प्रतिनिधियोको यह आदेश दिया कि वह गोलमेज परिषद्मे सेना, परराष्ट्रनीति, राष्ट्रीय आय-व्यय तथा आर्थिक नीतिके सम्बन्धमे नियन्त्रण प्राप्त करनेका उद्योग करे। भारतके सम्बन्धमे ब्रिटिश सरकारने जो लेन-देन किये हैं उनकी निष्पक्ष जॉच करा कर इसका निश्चय करावे कि इनमेसे भारत और इङ्गलैण्डको कितना-कितना देना है और भारत तथा इङ्गलैण्डका यह अधिकार स्वीकृत करावे कि इनमेंसे कोई भी जब चाहे तब एक दूसरेसे अपना सम्बन्ध विच्छिन्न कर सकता है। कांग्रेसने अपने प्रतिनिधियोको ऐसी तबदीलियोका अधिकार दिया जो भारत हितके लिए स्पष्ट रूपसे आवश्यक हो।

करॉची कांग्रेस (मार्च सन् १९३१)ने एक प्रस्ताव बड़े महत्वका स्वीकार किया है। यह नागरिकोके मौलिक अधिकार तथा आर्थिक व्यवस्थाके सम्बन्धमे है। मौलिक अधिकारोंका उल्लेख तो नेहरू-रिपोर्टमे भी पाया जाता है। अखिल-भारतवर्षीय कांग्रेस-कमेटीने मई सन् १९२९ मे अपनी यह राय अवश्य जाहिर की थी कि भारतवासियोकी गरीबी केवल विदेशियोकी अर्थशोषण नीतिके कारण ही नही है; बल्कि इस गरीबीके लिए समाजका आर्थिक सगठन भी बहुत कुछ अशमे उत्तरदायी है और अपना यह मत प्रकट किया था कि इस गरीबीको दूर करनेके लिए तथा जनताकी अवस्थाको सुधारनेके लिए यह आवश्यक है कि वर्त्तमान आर्थिक और सामाजिक संगठनमे क्रान्तिकारी परिवर्तन किये जायँ और विविध वर्गोमे जो घोर असमानता इस समय पायी जाती है वह दूर की जाय. तथापि इस विचारको कार्यान्वित करनेकी कोई चेष्टा नही की गयी थी। करॉची-कांग्रेसने अपना यह निश्चय प्रकट किया कि इस बातकी आवश्यकता है कि जनताके सामने यह बात स्पष्ट कर दी जाय कि जिस प्रकारके स्वराज्यकी कांग्रेस कल्पना करती है उसका जनताके लिए क्या अर्थ होगा। कांग्रेसकी राय है कि सच्ची राजनीतिक स्वतन्त्रता वही हो सकती है जिससे लाखो भूखो मरनेवालोको वास्तविक आर्थिक स्वतन्त्रता भी प्राप्त हो। इसलिए कांग्रेस घोषित करती है कि उसकी ओरसे जो कोई शासन-विधान स्वीकृत होगा उसमे उचित आर्थिक व्यवस्थाका भी प्रबन्ध किया जायगा। कांग्रेसने एक आर्थिक योजना स्वीकार की और उसमे उचित परिवर्तन, संशोधन या परिवर्धन करनेका अधिकार अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटीको दिया। वर्किङ्ग कमेटीने कतिपय सज्जनोकी एक उपसमिति इस कार्यके लिए बनायी। इस उपसमितिने २५ जून सन् १९३१ को अपनी

रिपोर्ट दी। बम्बई की बैठक (६–८ अगस्त)में इस रिपोर्टपर विचार किया गया और योजनाको अन्तिम स्वरूप दिया गया। हम इस प्रस्तावके मुख्य अंशको यहाँ अविकल उद्धृत करते हैं।

मौलिक अधिकार और कर्तव्य

१ (क) भारतके प्रत्येक नागरिकको स्वतन्त्र सम्मति प्रकट करने, स्वतन्त्रतापूर्वक परस्पर मिलने और सगठित होने तथा ऐसे कामोके लिए जो कानून और आचार-नीतिके विरोधी न हो, किसी स्थानपर शान्तिपूर्वक और विना हथियारके एकत्र होनेका अधिकार होगा।

(ख) भारतके प्रत्येक नागरिकको धार्मिक विश्वासकी स्वतन्त्रता तथा अपने धार्मिक कृत्योंके सम्पादनकी स्वतन्त्रता रहेगी, वशर्ते कि वे सार्वजनिक शान्ति और सदाचारमें वाधक न हो।

(ग) अल्प-संख्यक समुदाय तथा देशके विभिन्न भाषा-मूलक अशोकी संस्कृति, भाषा और लिपिकी रक्षा की जायगी।

(घ) भारतके सब नागरिक, धर्म, वर्ण, विश्वास या लिंगका विचार किये विना, कानूनकी दृष्टिमे समान समझे जायँगे।

(च) सरकारी नौकरियो, अधिकारके पदो या सम्मानके सम्वन्धमें तथा किसी व्यवसाय या पेशेके स्वीकार करनेके सम्वन्धमे अपने धर्म, वर्ण, विश्वास या लिंग-भेदके कारण कोई नागरिक अयोग्य न समझा जायगा।

(छ) ऐसे सब कुओ, सडको, स्कूलो और सार्वजनिक स्थानोके विषयमें सब नागरिको-का समान अधिकार और कर्तव्य होगा, जिनकी रक्षाका भार सरकारी या स्थानीय कोषपर हो या जिनका दानोत्सर्ग सार्वजनिक उपयोगके लिए किया गया हो।

(ज) इस सम्वन्धमे वने हुए नियमोके अनुसार हथियार रखने और उन्हें लेकर चलनेका प्रत्येक नागरिकको अधिकार होगा।

(झ) किसी भी व्यक्तिकी स्वतन्त्रता न छीनी जायगी और न उसके मकान या जायदादमें प्रवेश किया जायगा और वे न छीने और न जब्त किये जायँगे, सिवाय उस हालतके जब कि ऐसा करना कानूनके अनुसार हो।

(ट) सब धर्मोके विषयमे राज्य तटस्थ रहेगा।

(ठ) सब वालिग लोगोको मत देनेका अधिकार होगा।

(ड) राज्यकी ओरसे नि.शुल्क और अनिवार्य प्रारम्भिक शिक्षाका प्रवन्ध रहेगा।

(ढ) राज्यकी ओरसे खिताव नही दिये जायँगे।

(त) मृत्यु-दण्ड उठा लिया जावेगा।

(थ) भारतका प्रत्येक नागरिक भारतभरमे स्वच्छन्दताके साथ घूम सकता है और उसके किसी भागमे ठहर सकता है, वस सकता है, जायदाद हासिल कर सकता है और रोजगार या व्यापार कर सकता है। रक्षा और कानूनी कार्यवाहीके मामलेमे समस्त भारतमे समानता रहेगी।

श्रमजीवी

२. (क) आर्थिक सगठन न्यायके सिद्धान्तोके अनुकूल होगा जिसमे सबलोग अच्छे दर्जेका जीवन व्यतीत कर सके ।

(ख) उद्योग-धन्धोमे काम करनेवाले मजदूरोके हितोकी रक्षा राज्य करेगा और उन्हे उपयुक्त कानून तथा अन्य उपायोद्वारा पर्याप्त मजदूरी, काम करनेकी स्वास्थ्यकर परिस्थिति, परिश्रमके लिए परिमित घण्टे और मालिक और मजदूरोके झगड़ोको तय करनेके लिए उपयुक्त साधन प्राप्त करानेका बन्दोबस्त करेगा तथा वृद्धावस्था, बीमारी और बेकारीसे सहायता दिलानेका प्रबन्ध भी राज्यकी ओरसे होगा ।

३. गुलामी या गुलामीके समानकी अवस्थासे मजदूरोको स्वतन्त्र करना ।

४. स्त्री श्रमिकोकी रक्षा और प्रसवकालमे अवकाशका काफी प्रबन्ध रहेगा ।

५. पाठशालाओमे पढ़ने योग्य उम्रके बच्चोसे खानो और कारखानोमें काम न लिया जायगा ।

६. किसानों और मजदूरोको अपने हितोकी रक्षाके लिए सघ कायम करनेका अधिकार होगा ।

कर और व्यय

७. भूमि-करकी प्रणालीमे सुधार किया जायगा और वर्तमान लगान और मालगुजारी-में काफी कमी कर और अलाभकर भूमिका लगान कुछ कालके लिए बिलकुल माफ करके वर्तमान बोझको यथार्थ रूपमें हलका कर दिया जायगा । निर्धारित रकमसे जमीनकी अधिक आय होनेपर आय-कर भी लिया जायगा ।

८. एक निश्चित रकमसे अधिककी जायदादपर क्रमागत विरासत कर लिया जायगा ।

९. सेनाका खर्च इस समयकी अपेक्षा कमसे कम आधा कर दिया जायगा ।

१०. गैर फौजी महकमोका खर्च और उनके कर्मचारियोका वेतन बहुत घटा दिया जायगा । विशेषज्ञो या इसी प्रकारके अन्य कर्मचारियोको छोड़कर अन्य कर्मचारियोका वेतन ५००) रु० मासिकसे अधिक न होगा ।

११. भारतमें बननेवाले नमकपर कर न लगेगा ।

आर्थिक तथा सामाजिक योजना

१२. देशके वस्त्र-व्यवसायकी राज्य रक्षा करेगा और इस गरजसे विदेशी वस्त्र और विदेशी सूतका आना रोक देगा तथा अन्य आवश्यक उपायोको काममें लावेगा । विदेशी प्रतियोगितासे राज्य अन्य देशी व्यवसायोका भी सरक्षण करेगा ।

१३. औषधके कामके सिवा अन्य सब प्रकारके उपयोगके लिए मादक द्रव्योका सर्वथा निषेध रहेगा ।

१४. विनिमय तथा मुद्रा-नीतिका नियन्त्रण राष्ट्रके लाभके विचारसे होगा ।

१५. आधारभूत उद्योग-व्यवसाय विभाग, खान, रेल, जलमार्ग, जहाज तथा सार्वजनिक गमनागमनके अन्य साधनोपर राज्यका अधिकार होगा ।

१६. कर्जदार किसानोकी मदद की जायगी और अत्यधिक सूद लेनेकी हर प्रकारकी प्रथापर नियन्त्रण रहेगा ।

१७. नियमित सेनाके अतिरिक्त राष्ट्रकी रक्षाका अन्य साधन संगठित करनेके लिए राज्यकी ओरसे नागरिकोको सैनिक शिक्षा देनेका प्रवन्ध रहेगा ।

इस योजनाको स्वीकार कर कांग्रेसने अपने संगठनको सुदृढ वना लिया है । इससे कांग्रेसकी आधार-शिला मजवूत हो गयी है । साम्राज्यवादका सफलताके साथ विरोध करनेके लिए कांग्रेसको सर्वसाधारणकी सहानुभूति और सहायताकी परम आवश्यकता है और यह सहायता तभी प्राप्त हो सकती है जब जनताको यह विश्वास हो जाय कि नवीन प्रवन्धमे उसके सुखकी वृद्धि होगी । लोकतन्त्र और साम्यवादके इस युगमे कोई संस्था सर्वसाधारणकी आर्थिक उन्नतिकी उपेक्षा नही कर सकती । चीनकी राष्ट्रीय संस्था 'कुओमिन्तांग' ने आर्थिक योजनाकी घोषणा करके ही अपनी शक्तिको वढ़ाया था और १९२६-२७ मे सफलता प्राप्त की थी ।

कांग्रेसकी यह आर्थिक योजना तात्कालिक आवश्यकताओके ध्यानसे ही वनायी गयी है और सर्वाङ्ग पूर्ण नही है, तथापि हम आशा करते हैं कि भारतवासी अपनी स्थिति और आवश्यकताओके अनुकूल एक न एक दिन एक सुन्दर शासन-प्रणालीका अवश्य आविष्कार करेगे । कार्यका अवसर मिलनेपर भारतवासी भी रूसियोंकी तरह अपने घरकी अच्छी व्यवस्था करनेमे समर्थ होगे और अपने देशमे भी एक नये प्रकारके सामाजिक और आर्थिक सगठनकी अभिव्यक्ति होगी जो आज भारतवासियोमे अन्तर्हित है ।

हम ऊपर विराम सन्धिका जिक्र कर चुके हैं । सरकारने गाधी-अरविन समझौतेकी शर्तोका ठीक-ठीक पालन नही किया । इस प्रकार यह ख्याल हो रहा था कि शायद महात्माजी गोलमेजमे सम्मिलित न होगे । महात्माजीने न जानेका निश्चय भी कर लिया था, पर वायसरायसे वातचीत करनेके उपरान्त एक और समझौता हुआ जिसके कारण महात्माजीने लन्दन जाना स्वीकार किया । इस समय महात्माजी लन्दनमे हैं । उनका वहाँ वहुत स्वागत और सत्कार हो रहा है, पर इससे यह न समझना चाहिये कि उनको इस यात्रामे कोई सफलता मिलेगी। इगलैण्डके सव राजनीतिक दलोकी नीति भारतके लिए एकही सी है । इगलैण्डका मजदूर दल भी साम्राज्यवादकी भावनासे अछूता नही वचा है । हम आरम्भमें ही कह चुके हैं कि भारतमे इगलैण्डका आर्थिक लाभ दिन-व-दिन वढता जाता है और इस आर्थिक लाभकी रक्षाके लिए जिन अधिकारोको अपने हाथमें रखना आवश्यक होगा उन्हे व्रिटिश राजनीतिज्ञ कदापि न छोडेगे । व्रिटिश साम्राज्यमें भारतवर्षका वड़ा ऊँचा स्थान है। भारतको अपने कब्जेमे रखनेके लिए ही अंग्रेजोने फारस, मिस्र, अफगानिस्तान, वरमा, तिव्वत और मोसेपटेमियामें हस्तक्षेप किया । व्रिटिश साम्राज्यके अन्य स्वार्थोंकी रक्षाके लिए भी भारतपर अधिकार वनाये रखना आवश्यक है । अव भारतकी सेनाका प्रधान कार्य उत्तर-पश्चिमकी सीमाकी रक्षा करना नही रह गया है । उसका प्रधान कार्य व्रिटिश साम्राज्यके उन हितोकी रक्षा करना है जो चीन, फारस आदि देशोमे पाये जाते है, इसलिए व्रिटिश सरकार भारतकी सेनाको भारतीय

नियन्त्रणमे नही रखना चाहती। साइमन कमीशनकी रिपोर्टमे कहा गया है कि 'भारतकी रक्षाका प्रश्न केवल भारतसे ही सम्बन्ध नही रखता, ब्रिटेन भी इस प्रश्नमें दिलचस्पी रखता है। भारतकी सीमाओंकी रक्षाका प्रश्न समस्त साम्राज्यका प्रश्न है और इसलिए भारतीय सेनाका नियन्त्रण और संचालन ब्रिटिश सरकारद्वारा होना चाहिये।'

गोलमेज परिषद्का संगठन भी कार्यसाधक नही है। इसके प्रतिनिधि प्रजाकी ओरसे चुने नही गये है। भारत और इङ्गलैण्डके सब दल और विचारके लोग इसमे आमन्त्रित किये गये है और सर्वसम्मतिसे ही जो निश्चय होगे वही स्वीकार किये जायँगे। हम तो यह समझते है कि भारतका तभी निस्तार होगा जब कांग्रेस अपनेमे इतनी शक्ति पैदा कर लेगी कि ब्रिटिश सरकारको सर्वदल सम्मेलन न बुलाकर केवल कांग्रेसके प्रतिनिधियोसे ही समझौता करना पड़े।

जन-जागृतिका पुनर्जन्म

एशियाके पुनर्जागरणका इतिहास विश्व-इतिहासकी कुछ घटनाओसे जो एशिया-वासियोके लिए अत्यन्त महत्त्वपूर्ण थी अत्यधिक सम्बन्धित है। ऐसी सर्वप्रथम महान् घटना है १९०४–१९०५ का रूस-जापान युद्ध। इस घटनासे एशियावासियोंमे नव-जीवनका सचार होता है। उन्नीसवी शताब्दीके अन्तमे अत्यन्त कटु अनुभवोके पश्चात् एशियावासी इस निष्कर्षपर पहुँचे थे कि उनका पश्चिमी शक्तियोसे कोई मुकाबला नही। सैनिक कलामे पश्चिमी शक्तियाँ उनसे कही श्रेष्ठ है। उस समय एशियावासी अपना आत्मविश्वास सर्वथा खो चुके थे और विदेशियोका सामना करनेकी कल्पनातक उनके मनसे जाती रही थी। स्वयं हमारे देशमे १८५७के महान् विद्रोहके दमनके उपरान्त जनताके हृदयमें यह धारणा बद्धमूल हो चुकी थी कि ब्रिटिश सत्ताका विरोध करना व्यर्थ है। उसके आगे नतमस्तक होना ही उचित है। देशके जिन भागोमे विद्रोह हुआ था वहाँकी जनता अवश्य ही क्रुद्ध थी और उसके हृदयमे तीव्र असन्तोषकी ज्वाला धधक रही थी। उसे ब्रिटिश राजका आधिपत्य स्वीकार करनेमे निश्चय ही विलम्ब लगा परन्तु उसके हृदयमे भी पलभरके लिए भी ऐसी कल्पना नही उठी कि वह अपनी खोयी हुई स्वतन्त्रता पुन: प्राप्त कर सकेगी। परन्तु भारतके उन भागोमे, जहाँ विद्रोहकी आँच नही पहुँचने पायी थी और जहाँ सबसे पहले पश्चिमी संस्कृतिका प्रसार हुआ, एक ऐसा अंग्रेजीदाँ मध्यमवर्ग उठ खडा हुआ जिसके हृदयमे अंग्रेजी संस्कृति और अंग्रेजी संस्थाओंके प्रति विशेष प्रेम था और जिसकी यह प्रबल धारणा थी कि ईश्वरकी कृपासे ही भारतमें अंग्रेजी राज्य स्थापित हुआ है और उससे देशका कल्याण ही होगा।

भारतमे ब्रिटिश शासनका एक परिणाम यह हुआ कि यहाँका समृद्ध और वर्द्धमान व्यापारी सम्प्रदाय, जिसका कि देशपर भारी राजनीतिक प्रभाव था, सर्वथा नष्ट कर दिया गया। १८३३के चार्टर ऐक्टके जरिये कम्पनीकी व्यापार सम्बन्धी मानोपली

(एकाधिकार) समाप्त कर दी गयी और अंग्रेजोंको हिन्दुस्तानमे आनेकी खुली इजाजत दे दी गयी। इस प्रकार भारतमे विदेशी पूँजी लाने और लगानेकी छूट मिल गयी। इङ्गलैण्डकी मशीनोंसे बना माल धड़ाधड़ भारत आने लगा। भारतीय उद्योग यो ही बुरी दशामें थे; इस खुली प्रतिद्वन्द्विताने उनपर घातक प्रभाव डाला। ब्रिटिश शासनने अपनी निश्चित नीति बना ली कि भारतके उद्योगोको कोई प्रोत्साहन न दिया जाय और इसे उपनिवेश बनाकर रखा जाय, जहाँसे कच्चा माल लिया जाय और जहाँ इङ्गलैण्डका बना माल लाकर खपाया जाय। भारतको ब्रिटिश मालकी मंडी बना लिया जाय।

ब्रिटिश जमीदार वर्गके ढगपर बङ्गालमे एक नया जमीदार वर्ग भी खड़ा किया गया। देशकी जो पूँजी पहले उद्योग व्यापारमें लगी थी, वह अब जमीनमे लगायी जाने लगी। अब जो कोई व्यक्ति समाजमे अपनी प्रतिष्ठा बनाना चाहता था वह इस बातके लिए प्रयत्नशील होता कि वह जमीनका मालिक बने। इनमेंसे जो लोग अंग्रेजी पढे थे, वे ऐसे व्यवसायोकी ओर झुके जिनमें शिक्षित लोगोकी आवश्यकता थी। वे सरकारी नौकरी पानेके लिए प्रयत्नशील हो उठे। ये दोनो वर्ग नये बुर्जुआ वर्गके आधार बने। यही वह वर्ग था जिसे विदेशी शासनसे विशेष प्रेम था। जिस प्रकार बालक अपने बुजुर्गोंके आश्वासनोपर विश्वास कर लेता है उसी प्रकार यह वर्ग ब्रिटिश सरकारके आश्वासनोंपर पूर्णतः विश्वास करता था। प्रेसिडेन्सी नगरोमें राजनीतिक संस्थाओंको जन्म दिया गया और कुछ वर्षोंके उपरान्त कुछ प्रमुख नेताओने इस बातकी चेष्टा की कि शिक्षित भारतीयोंका एक अखिल भारतीय संघटन बनाया जाय। अवसर-प्राप्त सरकारी अफसर श्री ए० ओ० ह्यूम भी स्वतन्त्र रूपसे विचार करते-करते इसी निष्कर्षपर पहुँचे। खुफिया पुलिसकी गुप्त रिपोर्टोंद्वारा उन्हे ऐसा पता चला कि जनतामे असन्तोषकी भावना दिन दिन उग्रतर होती जा रही है और अनेक स्थानोके किसान विद्रोह करनेपर तुल-से गये है। ह्यूम साहब नही चाहते थे कि गदरकी पुनरावृत्ति हो। अन्तमें वे इसी निष्कर्षपर पहुँचे कि असन्तोष मिटानेका उपाय यही है कि उसे वैधानिक रूप दिया जाय और यह कार्य शिक्षित वर्गका संघटन करनेसे ही हो सकता है। श्री ह्यूमने इङ्गलैंडस्थित रिटायर्ड एंग्लोइण्डियनोंसे और तत्कालीन गवर्नर जनरल लार्ड डफरिनसे इस विषयमें परामर्श किया। ह्यूम साहबका विचार था कि प्रमुख भारतीय राजनीतिज्ञ वर्षमें एकबार मिलकर सामाजिक समस्याओपर विचार-विनिमय करें और परस्पर मैत्रीकी भावना दृढ़ करे। वे यह भी चाहते थे कि प्रान्तीय गवर्नर इस सभाकी अध्यक्षता करे जिससे सरकारी अधिकारियोंमें और लोकनेताओमे पारस्परिक सौहार्दकी वृद्धि हो। पर लार्ड डफरिनका मत इससे भिन्न था। उनका सुझाव था कि नया सगठन विरोधी पक्षका कार्य करे। श्री ह्यूम एवं प्रमुख राजनीतिज्ञोने यह प्रस्ताव स्वीकार कर लिया और इस प्रकार सन् १८८५ ई०मे भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेसका जन्म हुआ। १९१३मे श्री गोखलेने कहा था कि किसी भारतीयके लिए यह सम्भव नही था कि वह कांग्रेसको जन्म देता। कारण, राजनीतिक आन्दोलनके सम्बन्धमे इतना अधिक विश्वास था कि अधिकारी कभी भी ऐसी संस्थाका संघटन न होने देते।

इससे यह स्पष्ट है कि श्री ह्यूमने ब्रिटिश राज्यके हितमें ही कांग्रेसको स्थापित करनेका प्रयत्न किया। शासकोको जनताकी भावनाका ज्ञान नही था, वे प्राचीन परम्पराके अनुयायियोपर भी विश्वास नही कर सकते थे। अपने शासनको कायम रखनेके लिए वे उन नये शिक्षित युवकोकी ओर ही आशाभरी दृष्टि लगाये थे जिन्होने उनके अंग्रेजी स्कूलोमे पश्चिमी ढंगकी शिक्षा प्राप्त की थी।

हमारे शासकोने पूर्वीय और पश्चिमीय शिक्षा-पद्धतियोकी राजनीतिक प्रवृत्तियोंका बार-बार विश्लेषण किया और अन्तमे वे इसी निकर्षपर पहुँचे कि देशी शिक्षा-पद्धतिकी अपेक्षा पश्चिमी शिक्षा-पद्धति ही ब्रिटिश हितोके अधिक अनुकूल है।

सर चार्ल्स ट्रवेलियन अपनी पुस्तक 'आन दि एडुकेशन आव् दि पीपुल आव् इण्डिया' (१८३८)मे लिखते है—'भारतीयोको जबतक अपनी पूर्वस्वाधीनतापर विचार करनेका अवसर मिलता रहेगा तबतक अपनी स्थितिमे सुधार करनेका केवल एक ही उपाय उनकी समझमे आवेगा और वह होगा—सभी अग्रेजोको तत्काल देशसे निकाल बाहर करना। प्राचीन पद्धतिसे पले-पनपे भारतीय देशभक्तके हृदयमे इसके अतिरिक्त और किसी भावनाका उदय हो ही नही सकता। वह मान ही नही सकता कि इसके अतिरिक्त और भी कोई उपाय हो सकता है जिससे उसके देशकी गयी हुई प्रतिष्ठा और समृद्धि पुनः लौट सके। अन्य किसी उपायकी ओर उसका ध्यान आकृष्ट ही नही किया गया है। यूरोपियन विचार-धाराका प्रवेश करके ही इन राष्ट्रीय भावनाओको नयी दिशामे मोड़ा जा सकता है।' (पृष्ठ १९१)

एक अन्य स्थानपर आप लिखते है—"वर्तमान स्थितिको देखते हुए यही कहा जा सकता है कि इङ्गलैण्ड और भारत जैसे दो दूर देशोके बीच वर्तमान सम्बन्ध स्थायी नही रह सकता। भारतवासी तो अपनी गयी हुई स्वतन्त्रता लौटा ही लेगे। किसी भी तरहकी नीतिसे इसमे बाधा नही डाली जा सकती। पर इस स्थिततक पहुँचनेके दो मार्ग है—एक तो है क्रान्तिद्वारा और दूसरा है सुधारद्वारा। क्रान्तिका आन्दोलन आकस्मिक और भीषण है। सुधारका मार्ग मन्द गतिवाला और शान्त है। पहलेमे हमारी पतग एकबारगी ही कट जायगी, भारतवासियोसे हमारा पूर्णत. सम्बन्ध-विच्छेद हो जायगा, पर दूसरेमे पारस्परिक लाभ और सद्भावके आधारपर हमारा सहयोग स्थायी हो सकता है। पहले मार्गको बन्द करने और दूसरे मार्गपर अग्रसर होनेका हमारे पास एक ही उपाय है और वह यह कि हम भारतीयोको यूरोपियन सुधारोकी पद्धतिपर ले चले। उस ओर उनकी विशेष रुचि भी है। तब वे पुराने ढगकी स्वतन्त्रता प्राप्त करनेकी भावना और विचारका परित्याग कर देगे। उस स्थितिमे आकस्मिक क्रान्ति असम्भव होगी और तब निश्चित रूपसे भारतके साथ दीर्घकालतक हमारा वर्तमान सम्बन्ध दूसरी प्रकारसे बना रहेगा।" (पृष्ठ १९२–१९३)

यही वह प्रधान कारण था जिसकी वजहसे ऐसे समय, जबकि भारत एक संघर्षके भीतरसे होकर गुजर रहा था, शासकवर्ग शिक्षित भारतीयोकी एक सस्था स्थापित करनेमें सहायता कर रहा था और यह संस्था इसलिए थी कि भारतीय अपनी कठिनाइयाँ उसके

सम्मुख उपस्थित करके उन्हें दूर करायें। ऐसा अनुमान था कि शासकवर्ग द्वारा शिक्षित मध्यम श्रेणीको दी गयी इस मान्यतासे जनताकी दृष्टिमें उसका मान वढ जायगा और नेतृत्व प्राप्तिमे सहायता मिलेगी।

कांग्रेसने विना किसी स्पष्ट उद्देश्य अथवा निश्चित नीतिके ही अपना कार्य आरम्भ कर दिया। प्रथम अधिवेशनके अध्यक्षने काग्रेसके उद्देश्य वताते हुए कहा था कि "साम्राज्यके विभिन्न भागोके सच्चे कार्यकर्ताओके वीच पारस्परिक प्रेम एवं मैत्रीकी अभिवृद्धि और वर्तमान प्रमुख सामाजिक समस्याओपर भारतके शिक्षित सम्प्रदायका सुविचारित और अधिकृत मतसग्रह ही काग्रेसका उद्देश्य है।" राजनीतिक क्षेत्रमे अध्यक्षकी केवल इतनी ही माँग थी कि सरकारका आधार विस्तृत हो और शासनमें जनताको उचित प्रतिनिधित्व प्राप्त हो।

काग्रेस-नेता इस वातको वार वार दोहराते थे कि वे व्रिटिश साम्राज्यकी परम राजभक्त प्रजा है। यदि उनपर कभी ऐसा आरोप लगाया जाता था कि वे राजभक्त नही है तो वे विशेप रूपसे इस आरोपका खण्डन करते थे। पर काग्रेसने सामाजिक प्रश्नोपर कभी विचार नही किया। वह मुख्यत: राजनीतिक प्रश्नोपर ही विचार करती रही। उसकी माँगे उदार होती थी और अनुनय विनय और विरोधकी पद्धतिद्वारा ही वह उनकी पूर्त्तिकी आकांक्षा रखती थी। १८८७के मद्रास अधिवेशनमे कार्य संचालनके नियम स्थिर करनेके लिए एक कमेटी वनायी गयी। इस कमेटीने इस आशयका एक नियम वनानेकी सिफारिश की कि काग्रेसकी ओरसे प्रचारकार्यके लिए एक स्थायी समिति नियुक्त की जाय परन्तु उसे यह आदेश रहे कि वह सरकारकी कमियो और खामियोकी ओर जनताका ध्यान आकृष्ट करते हुए भी जनताको वताये कि भारतमे अंग्रेजी राज्यने कितना सुख और आनन्द-विखेरा है और अग्रेजलोग वहुत नेक इरादोसे भारतपर शासन कर रहे है। वादमे जब भारतीय नौकरशाहीपरसे उनका विश्वास जाता रहा तव भी अंग्रेजकी ईमानदारी और न्यायप्रियतामे उनका विश्वास अडिग वना रहा। १८८९मे कांग्रेसका यह उद्देश्य घोषित किया गया कि वह वैधानिक उपायोसे भारतीय जनताके हितोकी रक्षा करना चाहती है। सूरतमे काग्रेसके टुकड़े हो जानेके उपरान्त १९०८मे प्रयागमे एक सम्मेलन हुआ जिसमे कांग्रेसका उद्देश्य यह वताया गया कि वह वैधानिक उपायोसे औपनिवेशिक स्वराज्य प्राप्त करना चाहती है।

यह वस्तुत: वड़े आश्चर्यकी वात है कि भारतमे राजनीतिक जागृति अत्यन्त मन्द गतिसे हुई और औपनिवेशिक स्वराज्यका लक्ष्य स्थिर करनेमे काग्रेसको कोई २३ वर्ष लग गये। फिर भी काग्रेस व्रिटेनसे सम्वन्ध विच्छेद करनेके लिए प्रस्तुत न थी। पूर्ण स्वाधीनताका निश्चय करनेके लिए उसे और २१ वर्ष लग गये।

अन्य पराधीन देशोमे ऐसी वात वहुत कम देखनेमे आती है। चीनकी कूमिताग (प्रजा-पार्टी)का जन्म १८९० ई०के लगभग हुआ था। आरम्भमे वह वहुत छोटी पार्टी थी। न तो उसका कोई निश्चित कार्यक्रम ही था और न लोकतन्त्रात्मक आधार ही। पर मंचू शासनको समाप्त करनेका उसका लक्ष्य स्पष्ट था और उसने लक्ष्य प्राप्त करनेके

जो साधन स्थिर किये थे वे वैधानिक नही थे । जर्जर मंचूराज्यको उलटनेके लिए उसने सैनिकोंकी सहायता माँगी । उसने यह भूल अवश्य की कि इस वातको अच्छी तरह महसूस नहीं किया कि उसका भयंकर शत्रु विदेशी साम्राज्यवाद था और जवतक चीनकी जनता इस बातको महसूस नही कर पायी तवतक पूर्ण स्वाधीनता प्राप्त करनेके लिए प्रभावकर कार्यक्रमके साथ वह शुद्ध प्रजा-पार्टीकी स्थापना नही कर सकी । यह भी ध्यान देनेकी वात है कि सनयातसेन भी मंचू शासन और उसके अत्याचारोके विरुद्ध चीनके लोहा लेनेमे पश्चिमके लोकतन्त्रवादी देशोकी सहायता चाहते थे । वे ऐसा समझते थे कि उनका शत्रु घरमे ही है । उनके सरल हृदयमे ऐसी आशा थी कि विदेशी साम्राज्यवादी देश मंचू शासनके उलटनेमे सहायता करेगे । इस प्रकार भारतीय देशभक्त व्यर्थ ही अंग्रेजोपर विश्वास रखते थे यद्यपि भारत-स्थित गोरी नौकरशाहीसे न्याय पानेकी आशा उन्होने सर्वथा छोड दी थी ।

उन्नतिशील यूरोपियन संस्कृतिके संघर्पसे सभी जगह एक नये वर्गका जन्म हुआ । यह वर्ग पश्चिमकी उदार नीतिकी ओर आकृष्ट हुआ और अपनी मुक्तिके लिए यूरोपीय जनताकी ओर आशाभरी दृष्टिसे ताकने लगा । यूरोपीय ढगकी संस्थाएँ इसे रुचने लगी और विदेशियोकी सहायतासे और उनके सरक्षणमे वह उन सस्थाओको अपने देशमे भी स्थापित करनेके लिए प्रयत्नशील हो उठा ।

भारतमे शिक्षितवर्ग 'भारतीयकी अपेक्षा अग्रेज' वन गया जिस तरह इटालियनों या गालकी अपेक्षा रोमन वन गये थे ।' मुगल साम्राज्यकी समाप्तिपर देशके अनेक भागोमे जो क्रान्ति और अराजकता फैल गयी थी, उसे ब्रिटिश शासनने मिटा दिया था । अंग्रेजी राजमे लोगोको जान-मालकी सुरक्षा दिखायी पड़ने लगी । इस स्थितिका मूल कारण यही था ।

क्रान्तिकारी परिणामोसे युक्त कोई महान घटना ही शिक्षित वर्गकी इस मनोवृत्तिमे परिवर्तन पैदा कर सकती थी । १९०५ ई० मे एक ऐसी ही महान घटना घटी । जापानने रूसको पराजित कर दिया । इस घटनाने एशियावासियोमे महान जागृति उत्पन्न कर दी । इसे देखकर सवसे पहले उनके हृदयमे यह भावना उत्पन्न हुई कि उनके राष्ट्रीय चरित्रमें ऐसा कोई दोष नही है जो उनकी राजनीतिक प्रगतिमे रोड़ा अटका सके । विदेशी सत्ताके सम्मुख नतमस्तक होनेकी उनकी भाग्यवादी मनोवृत्ति मिटने लगी और राष्ट्रीय आत्मसम्मान एव मानवताके अधिकारोकी नयी भावना उनके हृदयमे जागृत होने लगी । उनकी जो भावना अभीतक मृतप्राय पड़ी थी, उसमे पुन॰ जीवनके चिह्न दृष्टिगत होने लगे । जनतामेसे ऐसे ऐसे वीर नेता उत्पन्न होने लगे जो अपनी राजनीतिक आकाक्षाओपर किसी भी प्रकारका प्रतिबन्ध लगानेके लिए प्रस्तुत न थे । वे इस वातको महसूस करने लगे कि भिक्षाके मार्गद्वारा भारत कभी भी अपने अधिकारोको प्राप्त करनेमे समर्थ नही हो सकता । वे इस निष्कर्पपर पहुँचे कि स्वावलम्वन द्वारा तथा शासकोंसे पृथक् अपना राष्ट्रीय संघटन करके ही भारत अपना लक्ष्य प्राप्त कर सकता है । वे निर्भीकतासे एवं स्पष्ट शब्दोंमें अपना मत प्रकट करने लगे । राजनीतिज्ञोकी भापामे घुमाफिराकर अपनी वात कहना

उन्हें पसन्द न था। ऐसी बातोंसे वे घृणा करते थे। जनताकी भावनामें, उनके अधिकारोंमें उनका दृढ विश्वास था और इसी विश्वासके बलपर वे अधिकारियोंसे लोहा लेनेको प्रस्तुत होते थे। उन्होंने राजनीतिक 'भिक्षा देहि' की पुरानी नीतिका परित्याग कर दिया। अपनी मुक्तिके लिए उन्होंने अधिकारियोंका मुँह ताकना बन्द कर दिया। इस नयी नीतिको कार्यान्वित करनेके लिए एक नये दलका सघटन किया गया। इस नयी विचार-धारावाले लोगोंकी यह निश्चित धारणा थी कि जनताकी संघटित शक्तिके द्वारा ही स्वतन्त्रता प्राप्त की जा सकती है और राजनीतिक स्वाधीनताके विना जनताका सामाजिक, तालीमी, आर्थिक एवं नैतिक अभ्युत्थान भी असम्भव है। इस नवीन विचारधाराके प्रवर्त्तकोंने जनताको शिक्षा दी कि वह स्वावलम्बनका मार्ग ग्रहण करे, स्वदेशीको अपनाये और विदेशी मालका वहिष्कार करे। वहिष्कारसे उनका तात्पर्य केवल ब्रिटिश मालका वहिष्कार करना ही न था, वल्कि यह भी था कि अंग्रेजोंसे शासन तथा अन्य सार्वजनिक क्रमोंके सभी क्षेत्रोंमें असहयोग किया जाय। इसके लिए इस दलने जनताको सलाह दी कि वह सभी खिताव छोड़ दे और सरकारी शिक्षण-संस्थाओं, अदालतों, कौंसिलों और स्थानीय सस्थाओंका पूर्ण वहिष्कार कर दे। जनताकी आर्थिक स्वाधीनताके लिए इस दलने इसे सलाह दी कि वह अपने देशी उद्योगोंको प्रोत्साहन दे और उनकी उन्नति करे। इस प्रकार वहिष्कार एक व्यापक राजनीतिक शस्त्र समझा गया। इस दलने वैधानिक सत्ताको सघटित करनेकी नीति भी निश्चित की और यह सिद्धान्त स्वीकार किया कि यदि नौकरशाही जनताके आत्मावलम्बनके मार्गमें वाधा उपस्थित करे तो निष्क्रिय प्रतिरोधकी नीति चलायी जाय। आवश्यकता होनेपर प्रतिरोधकी यह नीति आक्रामक भी हो सकती थी। इसके अतिरिक्त यह प्रतिरोध किन्हीं विशेष कठिनाइयोंको दूर करानेके लिए नहीं था, वल्कि एक स्वतन्त्र लोकतन्त्रात्मक सरकारकी स्थापना ही उसका लक्ष्य था। इस नये दलकी महत्ता इस वातमें है कि इसने वर्तमान राजनीतिके मूल सत्योंकी अनुभूति की। इस दलके हाथमें भारतकी राजनीति जव आयी तो उसने अपनी पुरानी पद्धतिका परित्याग कर दिया और इस प्रकार सर्वप्रथम उसकी ठोस वुनियाद पड़ी। पुराने राजनीतिज्ञोंका सारा राजनीतिक दृष्टिकोण ब्रिटिश इतिहासमें विद्यमान था और चूँकि उन्हें जनताकी शक्तिमें विश्वास न था तथा ब्रिटेनकी शक्तिकी भारी धाक उनपर वैठ चुकी थी इसलिए अपनी मुक्तिका पथ खोजनेमें वे सर्वथा असमर्थ थे। नये दलने ऐसी कितनी ही पुरानी धारणाओंको नष्ट कर डाला जिनमें कि हमारे उदार-दलीय नेता अव भी चिपटे पड़े थे।

१६०८ में कांग्रेस कन्वेन्शनने जो विधान निश्चित किया उसके सम्वन्धमें जो वादविवाद आरम्भ हुआ उससे नये और पुराने दलोंको अलग करनेवाला मतभेद स्पष्ट हो गया। नया दल चाहता था कि कांग्रेस लोकतन्त्रात्मक संस्था रहे। उसने लिखित विधानकी माँग उपस्थित की। परन्तु पुराना दल थोड़े ही व्यक्तियोंके हाथमें सत्ता वनाये रखनेके पक्षमें था। दोनों दलोंमें मतभेदका एक प्रश्न और था। वह यह कि आन्दोलन अपने उद्देश्य, लक्ष्य और भावनामें राष्ट्रीय और प्रगतिशील रहे अथवा अनुदार। स्वराज्यका वास्तविक रूप कैसा हो तथा निष्क्रिय प्रतिरोधकी नीति कैसी रहे—इस प्रकारके

प्रश्नोपर भी दोनों दलोमे मतभेद था। नया दल औपनिवेशिक स्वराज्यको भारतके लिए व्यावहारिक और अन्तिम लक्ष्य नही मानता था। श्रीअरविन्द घोषके शब्दोमें "काग्रेस कन्वेन्शनने ऐसा विधान स्वीकार किया जो सकुचित एकागी, अलोकतन्त्रात्मक था और इस ढगसे बना था कि उसमे जनताके प्रतिनिधियोका स्वतन्त्र निर्वाचन मर्यादित हो गया था।

"'नेशनलिस्ट' दल लोकतन्त्र, विधानवाद और प्रगतिका समर्थक था। 'माडरेट' दल जिसकी पुराने नेताओमे अगाध श्रद्धा थी उनके कार्योको भली प्रकार समझे बिना ही उनकी सहायता करता था। जो थोडेसे लोगोके शासन अधिनायक पद्धति और प्राय: प्रतिक्रियावादी अपरिवर्तनके पक्षमे थे।" (देशवासियोके नाम खुली चिट्ठी, १९०८)।

नये दलके सिद्धान्तों और विचारोकी चर्चा ऊपर की जा चुकी है। यह अपनेको 'नेशनलिस्ट' दल कहता था। यो सर्वसाधारण इसे गरम दल (एक्सट्रीमिस्ट) कहते थे। पूर्वी बङ्गालमे बहिष्कारके शस्त्रका कुछ व्यापक रूपमे प्रयोग किया गया और कुछ अशोमें उसे सफलता भी प्राप्त हुई। राष्ट्रीय स्कूल खोले गये, पञ्चायतोकी स्थापना की गयी और जनतामे स्वदेशीकी भावना प्रसारित की गयी। कानूनका साधारणत· आदर किया जाता था, इसलिए नही कि उसका भग करना अनुचित था वरन् इसलिए कि यह आन्दोलनकी आरम्भिक अवस्था थी। ऐसे समय कानून भग करना अबुद्धिमत्तापूर्ण एव असुविधाजनक होता। इस नयी विचारधाराका देशमे सर्वत्र स्वागत किया गया और बगालमे तो इसने जड़ ही पकड ली। आरम्भसे ही इसे सरकारी प्रहार सहन करना पड़ा, पर सूरतके विभाजनके उपरान्त तो सरकार इसपर बुरी तरह टूट पडी। उसका दमनचक्र पूरे वेगसे चलने लगा, नेता या तो गिरफ्तार कर लिये गये या वे स्वय निर्वासित हो गये। कांग्रेसकी नयी विचारधारा दलको अस्वीकार थी अत उसके सदस्य अनेक वर्षोतक काग्रेससे पृथक् रहे। इस कारण काग्रेसकी शक्तिकी बडी हानि हुई और जनतापरसे उसका प्रभाव बहुत कुछ जाता रहा। आन्दोलन छिपकर चलने लगा और देशमे कितने ही आतकवादी दल बन गये जिन्हे कि बम और तमचेकी पद्धतिमे ही विश्वास था। व्यक्तिगत साहस और अत्यधिक बलिदानके कितने ही उत्तम उदाहरण हमारे सम्मुख उपस्थित हुए परन्तु आतकवाद हमारे कष्टोकी रामबाण औषधि सावित न हो सका।

१९१६मे श्रीमती बेसेन्टके प्रयत्नसे दोनो पक्ष फिर मिल गये। यद्यपि 'नेशनलिस्ट' दल काग्रेसमे पुन लौट आया था पर एकताके लिए उसे अपने पुराने आदर्शोको बहुत कुछ ढीला कर देना पडा। अवश्य ही उसने शीघ्र ही अपना प्रभाव स्थापित कर लिया परन्तु दुर्भाग्यवश उसमे और पुराने उदार पन्थियोमे कोई विशेष अन्तर नही रह गया था। असहयोग आन्दोलनके दिनोम नये दलकी अनेक धारणाएँ कार्यरूपमे परिणत हुई। १९०६–१९०८मे जो प्रयोग छोटे पैमानेपर हुए थे वे १९२१–१९२२मे राष्ट्रव्यापी पैमानेपर किये गये। पर यह बात माननी पडेगी कि नेशनलिस्टदलकी विचारधाराने नीवका काम किया और उसीपर शुद्ध राष्ट्रीय आन्दोलन पुष्पित-पल्लवित हुआ।

कुछ लेखकोका ऐसा कहना है कि नया आन्दोलन कुछ अंशोमे प्रतिक्रियावादी

था। यद्यपि यह सही है कि इस नयी विचारधाराके प्रमुख प्रवर्तकोपर हिन्दू संस्कृतिका विशेष प्रभाव था, तथापि अपने लेखो और भाषणोमे वे सदैव ही पुरातन संस्कृतिके मूल तत्वोपर जोर देते थे। 'वन्देमातरम्' (१६०८) के एक अग्रलेखके इस अशसे यह बात स्पष्ट हो जायगी—"हमारी दार्शनिकता और भावुकताने हमारी पुरातन संस्कृति तथा विचारधाराको बहुत मर्यादित कर रखा है और ये सर्वांशमे नही तो अनेकांशमें हमारे पतनके लिए उत्तरदायी हैं। इन्हीके कारण हमने अपना प्राचीन एव गौरवशाली स्थान खो दिया है। यदि हम अब भी इसी मार्गपर चलते रहे तो हम अपनी पराधीनता और पतितावस्थाको और अधिक स्थायी बना लेगे।....अपनी इन्द्रियोको मारकर और बाहरी जगत्‌के सघर्पोसे अपनेको बचाकर हम आन्तरिक शान्ति प्राप्त करनेका दीर्घकालसे प्रयत्न करते आ रहे हैं।......एशियाके और मुख्यत. भारतीय सस्कृतिके पुनर्जागरणमें एशियाके और विशेषतः भारतके प्राचीन आध्यात्मिक आदर्शोको हमे समझ बूझकर घातक रुढियो और वास्तविकता-विरोधी बातोसे सर्वथा पृथक् कर देना होगा जिनसे वे आदर्श बुरी तरह गुथ गये है।" इन लोगोके हाथमे पड़कर वेदान्त एक शक्तिशाली दर्शन बन गया। लोकमान्यने गीतारहस्य लिखकर कर्मयोगकी महत्ता बतायी।

बहुतसे नेताओका दृष्टिकोण आधुनिक था। इस बातका ज्ञान उनकी रचनाओसे प्राप्त किया जा सकता है। कुछ प्रमुख उत्सवोका राजनीतिक उद्देश्योके लिए उपयोग किया गया, यह देखकर यह कहना ठीक नही कि सामाजिक और धार्मिक मामलोंमें वे प्रतिक्रियावादी थे। जनसमूहके भीतर राजनीतिक कार्य करनेके लिए राजनीतिक शिक्षणकी यह पद्धति अत्यन्त उत्तम समझी गयी। जनताकी राष्ट्रीय भावनाओको जागृत करनेके लिए राष्ट्रीय वीरोंकी जयन्तियाँ मनाना प्रारम्भ किया गया। निश्चय ही कोई व्यक्ति ऐसा कहनेका साहस न करेगा कि लोकमान्यने शिवाजी जयन्तीका जो श्रीगणेश किया उसमे उनके हृदयमें मरहठा साम्राज्य अथवा हिन्दूपद पादशाही स्थापित करनेकी कल्पना थी। सहवासकी आयु-सम्बन्धी बिलका उन्होने विरोध किया था। इस बातको उनके विरुद्ध प्रमाणके रूपमे उपस्थित करके कहा जाता है कि वे सामाजिक मामलोमे प्रतिक्रियावादी थे। बालिकाओंके विवाहकी आयुमे वृद्धि करनेके प्रश्नपर उन्हें उतनी आपत्ति न थीं, जितनी इस बातपर आपत्ति थी कि एक विदेशी जाति और संस्कृति, एक विदेशी सरकार भारतकी सामाजिक और धार्मिक संस्थाओं और प्रथाओमे हस्तक्षेप करे। उनका मुख्य कार्यक्षेत्र राजनीति था। वे ऐसे सामाजिक सुधारके आन्दोलन मे पड़ना नही चाहते थे जिससे सनातनधर्मी वर्गके भीतर राजनीतिक कार्य करनेमें कोई बाधा उपस्थित हो। वे कानूनद्वारा सामाजिक सुधार करानेके पक्षमे न थे। वे चाहते थे कि सामाजिक सुधार शिक्षा और प्रचारद्वारा हो। दलके अन्य नेताओपर इस प्रकारका आरोप नही लगाया जा सकता। वे कट्टर समाजसुधारक थे।

नये दलने विचारोके क्षेत्रमें सफल क्रान्ति की। हमारे राष्ट्रीय इतिहासमे उसे सम्मानजनक स्थान मिलना चाहिये। नेशलिस्ट दलको ही यह श्रेय प्राप्त है कि उसने राष्ट्रीय आन्दोलनको दृढ़ आधारपर स्थापित किया और सर्वप्रथम अपने लक्ष्य और उद्देश्य-

की स्पष्ट रूपसे व्याख्या की तथा यह भी स्पष्ट कर दिया कि अपने लक्ष्यकी प्राप्तिके लिए वह किन उपायोको ग्रहण करेगा। उसे इस बातका भी श्रेय प्राप्त है कि उसने आरम्भमें जिन नीति और कार्यक्रमका निश्चय किया था, विगत २५ वर्षके भीतर वह ज्योंका त्यों बना रहा। उसमे कुछ भी हेरफेर नही किया गया। समाजवादी विचारधाराने अवश्य ही इधर कुछ वर्षोसे काग्रेसनीतिको एक नया पूर्वीय जामा पहनाया है, पर वतमान युगमें सभी प्रगतिशील आन्दोलनोके लिए ऐसा स्वाभाविक है। नये युगकी मुख्य देन यह है कि उसने उन बातोको राष्ट्रव्यापी व्यावहारिक रूप प्रदान किया है जो बाते १९०६–१९०८ मे नेशनलिस्ट दलने करनेके लिए कही थी। राजनीतिक क्षेत्रमे गांधीजीकी मुख्य देन यह है कि उन्होने सघर्षके नये नये उपाय खोज निकाले और उन्हे व्यावहारिक रूप प्रदान किया, पर हमें यह स्मरण रखना चाहिये कि निष्क्रिय प्रतिरोधका विचार १९०६ मे ही कर लिया गया था और नयी नीतिका वह अनिवार्य अग माना गया था। सभी क्रान्तिकारी राष्ट्रीय आन्दोलनोके मूलमें स्वावलम्बन और आत्मनिर्णयकी शक्तिशाली नीति रहती है। तिलक, विपिनचन्द्रपाल और अरविन्द घोषके सबल नेतृत्वमें नेशनलिस्ट दलने ऐसी नीति निश्चित की और उसका पालन किया। इस प्रकार हम देखते है कि १९०५का वर्ष हमारे स्वातन्त्र्य आन्दोलनके इतिहासमे महत्वपूर्ण स्थान रखता है। इस वर्ष मृतप्राय जनतामे, जिसने अपनी शक्ति और स्वतन्त्रता खो दी थी, नवजीवनका संचार हुआ और इस क्रान्तिका श्रेय नेशनलिस्ट दलको है। उसीने जनताको नया मार्ग दिखाया और उसे ऐसी रामवाण औषधि प्रदान की जिससे वह खोयी हुई स्वधीनता पुनः प्राप्त कर सके।

दूसरा अध्याय

स्वतन्त्रता संघर्ष

दूसरा अध्याय

अभिभाषण[1]

बहनो और भाइयो,

आपने इस सम्मेलनका सभापति चुनकर मुझको जो आदर प्रदान किया है उसके लिए मैं आपका अत्यन्त कृतज्ञ हूँ। मैं अपनेको इस पदके लिए सर्वथा अयोग्य पाता हूँ। आजकलके जमानेमे राजनीतिक सस्थाओका सफल सचालन करना हँसी-खेल नही है। वह संस्थाएँ भी जिनके सम्मुख उँचे आदर्श हैं और जो तात्कालिक लाभकी उपेक्षा कर समाजके मौलिक हितोकी सिद्धिमे ही सतत प्रयत्नशील रहती है, ईर्ष्या, द्वेप और आपसकी दलवन्दीसे सर्वथा अछूती नही रह पाती। भलीसे भली सस्थाएँ भी इस रोगसे मुक्त नही हैं। गिरोहवन्दी, पदलोलुपता, अधिकारकी चाह यह ऐसी दुर्वलताएँ हैं जिनसे वचना वड़ोके लिए भी कभी-कभी दुष्कर हो जाता है। इन सब कठिनाइयोका धैर्य और साहसके साथ मुकावला करना और उनसे विचलित न होना, भिन्न-भिन्न व्यक्तियों और समुदायोको सन्तुष्ट रखना, विरोधियोके अनुचित प्रहारोको सहन करनेकी अपरिमित शक्ति रखना, मनोगत भावोको गुप्त रखनेमे कुशल होना और प्रत्येक परिस्थितिमें आशावान् वने रहना यह एक ऐसी कला है जिसका जानकार हरएक नही हो सकता और जो इस कलाको नही जानता वह साधारण रीतिसे राजनीतिक संस्थाओका सफल सूत्रधार नही वन पाता। मुझे खेदके साथ कहना पडता है कि इस कलाके सीखनेका मुझे जीवनमे अवसर नही मिला। एक अध्यापकका जीवन सरल और नीरस होता है। शिक्षाकी जीविका इसीलिए निर्दोष समझी जाती है और इस पेशेमे अधिकतर वे ही लोग आते है जो स्वभावसे शान्त और निस्पृह होते हैं। किन्तु राजनीतिक जीवनमे शान्ति कहाँ? वह तो राग-द्वपसे आपूर्ण है। वह जीवन साथ ही साथ इतना सरस और आकर्षक होता है कि लोग अन्य प्रकारसे दुखी होते हुए भी उसमे एक विशेप प्रकारके माधुर्यका रसास्वाद करते हैं।

अपने प्रान्तके काग्रेस कार्यमे भी मेरा ऐसा कोई स्थान नही रहा है जिसके कारण मैं समझूँ कि आपकी कृपादृष्टि मेरे ऊपर पड़ी। आपको शायद यह जानकर आश्चर्य होगा कि मै वरसोसे किसी नगर या जिला काग्रेस कमेटीका मेम्वर भी नही रहा हूँ। प्रान्तके संगठनसे मेरा कोई घनिष्ठ सम्वन्ध भी नही रहा है। फिर क्या कारण है कि मै आपकी कृपाका पात्र वना और आपने उचित समझा कि आप मुझको यह गौरव प्रदान करे? मै तो यही समझता हूँ कि आपने इस तरह उस शिक्षासस्थाके कार्यपर अपनी

---

१. युक्त प्रान्तीय राजनीतिक सम्मेलनके उन्नीसवे अधिवेशन (वरेली) मे सभापति पदसे दिया गया भापण।

पसन्दीदगीकी मुहर लगाना चाहा है जिसके प्रधानाध्यापकका कार्य मैं इधर कई सालसे कर रहा हूँ—मेरा मतलब काशी विद्यापीठसे है ।

जो विद्यार्थी इस शिक्षा-सस्थासे निकले हैं उनमेंसे अधिकांश राष्ट्रीय कार्यमे लगे हुए हैं और उन्होने स्वतन्त्रताके युद्धमें उचित भाग लेकर विद्यापीठके गौरवको देशमे वढाया है और उसकी कीर्तिको उज्ज्वल किया है । उनकी शिक्षा-दीक्षामे और उनको विद्या तथा आचरणसे सम्पन्न करनेमे मेरा भी हाथ रहा है और मुझे इसका गर्व है ।

मैं समझता हूँ कि जीवनकी अन्तिम घडियोमे मै जब अपने कामका हिसाब लगाऊँगा तव मुझे अपने जीवनका वह भाग जो विद्यापीठकी सेवामे व्यतीत हुआ है सबसे अधिक सन्तोषप्रद प्रतीत होगा । यही मेरी पूँजी है और इसी पूँजीके वलपर मेरा राजनीतिक व्यापार चलता है । मैं समझता हूँ कि इसी सबबसे मै आप महानुभावोके स्नेहका भाजन वन सका हूँ ।

यद्यपि मैं इस सम्मानके लिए आपका ऋणी हूँ तथापि मैं आपको इस चुनावके लिए मुवारकवाद नही दे सकता । यह जानते हुए भी कि मै इधर दो वर्षसे काफी अस्वस्थ रहता हूँ और किसी कठोर भारको वहन करनेमे असमर्थ हूँ आपने ऐसे असाधारण समयमे मुझको सम्मेलनका सभापति निर्वाचित किया है । देश और ससारके लिए यह एक अनोखा युग हे । उन्नति और प्रतिक्रियामे सव जगह संघर्ष चल रहा है । प्रतिक्रियागामी शक्तियाँ जो पतनोन्मुख हैं अपने अस्तित्वके लिए एक आखिरी कोशिश कर रही हैं । प्रगतिशील शक्तियाँ उनसे अपनी रक्षा करनेके लिए तथा अपने विकासके लिए सचेष्ट हैं । एक नवीन अभ्युदयके चिह्न सव ओर परिस्फुट हो रहे हैं । क्रान्तिकी लहर, कही द्रुत वेगसे, तो कही मन्द गतिसे, उद्वेलित हो रही है । इस समय प्रत्येक व्यक्तिका, जो मानव-समाजका कल्याण और अभ्युदय चाहता है, यह पुनीत-कर्तव्य है कि वह प्रतिक्रियाका विरोध करे और क्रान्तिका स्वागत कर उस नवीन सभ्यता-शालीनताकी मूलभित्तिकी स्थापनामे सहयोग करे जिसके आधारपर एक नये सामाजिक जीवनकी इमारत खड़ी की जानेवाली है । इस समय कोई भी कर्मी जो देशका सच्चा सिपाही है खामोश नही वैठ सकता और देशके आह्वानकी उपेक्षा नही कर सकता । आप समझ सकते हैं कि इस समय मेरी कितनी प्रवल इच्छा होगी कि मै अपने कर्तव्यका यथार्थ पालन करूँ किन्तु मनकी इच्छा मनमे ही रह जाती है और रुग्ण तथा क्षीण शरीर सकल्पको पूरा नही होने देता ।

ऐसी स्थितिमे मैं आपके निमन्त्रणको अस्वीकार करनेका दुस्साहस नही कर सकता था किन्तु आपको तो मुझे इस क़ठिनाईमें न डालना चाहिये था । यह आपकी गलती है कि मैं इस रुग्णावस्थामे इस आसनपर विठा दिया गया हूँ । मैं आशा करता हूँ कि आपमे कमसे कम इतनी वजादारी तो जरूर होगी कि आप अपनी गलतीको निभावेगे । मैं आपसे पहले ही अपनी कमजोरियाँ वता चुका हूँ । यह स्पष्ट है कि आपके सहयोगके विना मैं इस सम्मेलनका कार्य सुचारु रूपसे सम्पन्न न कर सकूँगा । मुझे आपके सहयोगकी जरूरत है और मुझे आशा है कि मेरी प्रार्थना व्यर्थ न जायगी ।

यह खुशीकी वात है कि पिछले कुछ महीनोमे हममेंसे हर एकने उस विद्वेषकी अग्निको

दवानेकी कोशिश की है जो हमारे दुर्भाग्यसे गत वर्ष अपने प्रान्तमे प्रज्वलित हो उठी थी। उस समय सारे देशके सामने हमको अपना सिर लज्जासे झुका लेना पड़ता था। बङ्गालको इससे अवश्य प्रसन्नता हुई थी कि देशमे उसका भी साथ देनेवाला पैदा हो गया है और वह अपने अकेलेपनके दु.खको थोडी देरके लिए भूल गया था। हमको अब भी काफी सतर्क रहनेकी जरूरत है, क्योकि कभी-कभी हम देखते हैं कि राखके ढेरको कुरेदनेकी कोशिश की जाती है। इसके अतिरिक्त द्वेपका बीज सर्वथा विदग्ध नही हुआ है। हमको द्वेपके कारणोका अन्वेपण करना चाहिये और यथासम्भव इस बातका प्रयत्न करना चाहिये कि हम अपने तुच्छ झगड़ोको भुला दे और परस्परके वैमनस्यको दूर कर दे। छोटी-छोटी बातोको हम महत्व देकर प्राय· बातका बतंगड बना देते है। मैं मानता हूँ कि छोटी-छोटी बाते हमेशा सारहीन नही होती और कभी-कभी उनकी उपेक्षा करते नही बन पडता। फिर भी आपसमे झगडनेका एक समय होता है और उस झगडनेकी भी एक मर्यादा होती है। हम काग्रेसवादियोको इस विषयमे सदा जागरूक और सतर्क रहनेकी जरूरत है, क्योकि हमारी सबसे बडी शक्ति और हमारा एकमात्र आधार हमारा सुव्यवस्थित सगठन ही है। हमारा सगठन जितना दृढ होगा, हम जितना अधिक एक अनुशासनके सूत्रमे अपनेको आबद्ध समझेगे उतना ही अधिक अपने विरोधियोपर विजय पानेमे हम समर्थ होगे। हम एक महान व्रतके व्रती हैं। हम केवल एक राजनीतिक दलके सदस्यकी ही हैसियत नही रखते, बल्कि हम देशकी परतन्त्रता दूर कर एक नूतन समाजकी नीव डालना चाहते है। हमारा काम केवल साम्राज्यवादके शोषणका ही अन्त करना नही है, बल्कि साथ-साथ देशके उन सभी वर्गोके शोपणका अन्त करना है जो आज जनताका शोपण कर रहे है। हम एक ऐसी नयी सभ्यताका निर्माण करना चाहते हैं जिसका मूल प्राचीन सभ्यतामे होगा, जिसका रूप-रंग देशी होगा, जिसमें पुरातन सभ्यताके उत्कृप्ट अश सुरक्षित रहेगे और साथ-साथ उसमे ऐसे नवीन अशोका भी समावेश होगा जो आज जगत्मे प्रगतिशील है और ससारके सामने एक नवीन आदर्श उपस्थित करना चाहते है।

हमारा कार्य इतना व्यापक है, हमारा उद्देश्य इतना ऊँचा और उत्कृष्ट है कि हम किसी प्रकार भी छोटी-छोटी बातोमे पडकर अपनी शक्तिका अपव्यय नही कर सकते। हमको तो उन बहुतसी बातोकी तरफ निगाह उठाकर भी नही देखना चाहिये जो आज हमको अपने मायाजालमे फाँसना चाहती है। हमको अपने विशाल लक्ष्यका ध्यानकर इन छोटी बातोसे मुँह मोड़ना पड़ेगा और अपने लोभका सवरण करना पड़ेगा।

यदि वास्तवमे हम अपने कार्यका ऐसा ही स्वरूप समझते है तो हमको उसके अनुरूप अपने आचरणको बनाना पड़ेगा। हमको अपना कार्य सुसम्पन्न करनेके लिए एक ऐसा सुसगठित दल तैयार करना होगा जिसके सदस्य अपने उद्देश्यों तथा अपनी कार्यप्रणालीका स्पष्ट ज्ञान रखते हो, जिसमे अनुशासन हो और जिसके नेता दूरदर्शी, कार्यकुशल और नवीन युगकी विशेपताओ और आवश्यकताओसे अभिज्ञ हो।

अपने घरको दुरुस्त करनेके लिए सबसे पहला काम जो हमे करना है वह आत्म-

समीक्षाका है। सब उन्नतिका मूल इसीमें निहित है। मनुष्यको अपने कार्यका सतत निरीक्षण करते रहना चाहिये। जहाँ भूल मालूम पड़े उसे सुधार लेना बुद्धिमानीका काम है। यह समझते रहना कि हमने कोई भूल नही की है आत्म-वंचना मात्र है। इस मनोवृत्तिसे उन्नतिका क्रम रुक जाता है। इसलिए हमको बारम्बार विचार करना चाहिये कि हमारी अबतककी चेष्टाएँ क्यो विफल हुई। यदि हमारी कार्य-प्रणालीमे कोई त्रुटि है तो उसे दूर करनेका उद्योग होना चाहिये। यदि सगठनमें कुछ परिवर्तन करना आवश्यक है तो उसके लिए तैयार हो जाना चाहिये।

हमको अपने सगठनको दृढ बनाना होगा। हमारे सगठनका आधार जितना ही विस्तृत होगा उतना ही अधिक यह शक्ति-सम्पन्न होगा। हमको साम्राज्यविरोधी सग्राममे किसान और मजदूरोको विपुल सख्यामे सम्मिलित करना होगा। इसी दृष्टिसे काग्रेसने गत अधिवेशनमे जनतासे सम्पर्क (मास कटैक्ट) स्थापित करनेका प्रस्ताव स्वीकार किया था। उसको कार्यान्वित करना हमारा काम है।

अबतक काग्रेसके सदस्य वर्षमे केवल एकबार प्रतिनिधियोके चुनावके लिए एकत्र होते है। उसी समय हम उनके सम्पर्कमे आते हैं। बाकी सालभर हमारा उनसे कोई सम्बन्ध नही रहता। हम उनमे चेतना उत्पन्न करनेकी कोई चेष्टा नही करते। उनके दैनिक जीवनसे हमारा कोई सम्बन्ध नही रहता। हमको चाहिये कि हम उनके दैनिक जीवनमे प्रवेश करे। उनके आर्थिक कष्टोको दूर करनेके लिए उन्हे सगठित करें तथा इस कार्यमे उनको हर प्रकारकी सहायता प्रदान करे। इसी तरह हम जनताके साथ गहरा सम्बन्ध स्थापित कर सकते है। जनताके दैनिक जीवनके आर्थिक सघर्पको साम्राज्य-विरोधी संग्रामसे सम्बन्धित करनेसे ही जनता राष्ट्रीय आन्दोलनमे सजीव भाग लेनेको तैयार हो सकती है। किसान और मजदूर यह देशके दो ऐसे बहुसख्यक वर्ग है जो इस सग्रामके प्रमुख सैनिक हैं। इनका सगठित होना अत्यन्त आवश्यक है। किसान और मजदूर अपनी-अपनी जमाअतमे ही संगठित हो सकते है। इनकी स्वतन्त्र सस्थाएँ होना आवश्यक है। प्रान्तमे जो किसान और मजदूर सघ मौजूद है उनके कार्यमे शरीक होना हमारा कर्तव्य है।

इन सस्थाओके साथ काग्रेसका प्रत्यक्ष सम्बन्ध होना चाहिये। मजदूर और किसान सघके सदस्योको काग्रेसमे अपने प्रतिनिधि भेजनेका अधिकार प्राप्त होना चाहिये; केवल इसलिए नही कि काग्रेसके सम्मुख उनका दृष्टिकोण रखा जा सके, वरन् इसलिए कि वह काग्रेसके निर्णयोको अधिकाधिक प्रभावित कर सकें। काग्रेसके सदस्यकी हैसियतसे नही, बल्कि अपनी सस्थाओके प्रतिनिधिकी हैसियतसे ही वह यह काम कर सकते है।

काग्रेसका कार्य सुचारु रूपसे चलानेके लिए हमको राष्ट्र-कर्मीसघ (नैशनल सर्विस) की आवश्यकता है। हमारे देशको ऐसे कार्यकर्ता चाहिये जो अपना सारा समय राजनीतिक कार्यमे व्यय करे। इनके बिना हमारा काम नही चल सकता। इसकी यदि सुव्यवस्था करनी है तो यह तभी सम्भव है जब हम उनकी जीविकाकी फिक्र करे। हमारे प्रान्तमे कई वर्षतक नैशनल सर्विसकी आयोजना थी, किन्तु कुछ समयसे अर्थाभावके कारण हमको

इस सर्विसको तोड देना पडा । मैं समझता हूँ कि यदि सम्भव हो तो हमको इसका प्रवन्ध छोटे या वड़े पैमानेपर फिरसे करना चाहिये । जो सज्जन इस सर्विसमे सम्मिलित किये जावे उनको निपुण कार्यकर्ता वनानेका आयोजन होना चाहिये । मैं समझता हूँ अवतक हमारा काम जिस तरहसे चलता रहा है वह सन्तोषप्रद नही है । पुराने 'फार्मूलो'के सहारे हमारा काम अव नही चल सकता । परिस्थितिमे महान् परिवर्तन हो गया है । उसीके अनुसार हमको कार्य-प्रणाली वदलनी होगी । इसमे सन्देह नही कि हमारे कार्यकर्ताओने असाधारण स्वार्थत्याग, अपूर्व लगन और सगठनकी योग्यताका अच्छा परिचय दिया है । किन्तु यह भी प्रत्यक्ष है कि वह समयानुकूल अपने कामके ढगमे परिवर्तन करनेकी क्षमता नहीं रखते । यह चोटीके कार्यकर्ताओका काम है कि वह निर्णय करे कि उनको किस किस दिशामे परिवर्तन करनेकी आवश्यकता प्रतीत होती है और इसे स्थिर करके इसकी शिक्षा दिलानेका प्रवन्ध करे । कार्यकर्ताओके मानसिक क्षितिजको भी वढानेकी जरुरत है । हमने उनको एक साँचेमे ढाल दिया है पर अव वह साँचा उतना उपयोगी नही रह गया है जितना कि पहले था । यह स्पष्ट है कि हमारे पुराने हथियार अव आगे उतने कारगर न रहेंगे । हमारे युद्धका रहस्य और प्रकार (टेकनिक) दूसरोने जान लिया है और उसके प्रतिकारका प्रकार भी स्थिर कर लिया है । हमारा आन्दोलन एक मजिल ऊपर उठ रहा है । इसके लक्षण स्पष्ट दीख पड़ते है । इतिहासकी आवश्यकता चाहती है कि राष्ट्रीय आन्दोलन एक उँचे स्तरमे प्रवेश करे । यह आवश्यकता पूरी होकर रहेगी चाहे यह कार्य हमारे द्वारा सिद्ध हो या अन्य संस्थाओ द्वारा । किसान और मजदूरोमे वर्ग-चेतना वढती जाती है । वस्तुस्थिति इसके अनुकूल है । इसको रोकनेके तरह तरहके उपाय हो रहे है । नये-नये कानून वनाये जाते हे । उनकी सस्थाएँ गैरकानूनी करार दी जाती हैं, उनके कार्यकर्ता जेलमे वन्द किये जा रहे हैं और उनके अखवारोसे जमानत तलव की जाती है । काग्रेस इन नवीन शक्तियोकी उपेक्षा नही कर सकती । इनसे सम्वन्ध जोड़ना और इनकी आकाक्षाओको अपनाना तथा उनकी पूर्तिके लिए उद्योग करना कांग्रेसके लिए आवश्यक हो गया है । यदि काग्रेस इस कार्यको नही करेगी तो वह पिछड जावेगी और इतिहास-निर्दिष्ट कार्य किसी अन्य सस्था द्वारा सम्पन्न होगा ।

यह हम ऊपर कह चुके हैं कि स्वतन्त्रताकी लडाईको आगे वढानेके लिए जनताका संगठन अत्यन्त आवश्यक हो गया है । क्या हम नही देखते है कि देशकी प्रतिक्रियागामी शक्तियाँ समाजके वह वर्ग जो जनताका शोपण करते हैं और अपने अस्तित्वके लिए विदेशी हुकूमतके आश्रित हैं, आज ब्रिटिश साम्राज्यवादकी छत्रछायामे अपनेको सगठित कर रहे है ? उन्नतिशील वर्गोकी वढती हुई शक्तिको रोकनेके लिए ही इस नवीन विधानका जन्म हुआ है । जहाँ १९१९ ई०के विधानका आशय भारतीय शासनमे तथा उद्योग-व्यवसायके क्षेत्रमे हिन्दुस्तानियोको एक छोटा-सा हिस्सेदार वनाकर सन्तुष्ट करना था वहाँ इस नये विधानका गूढ अभिप्राय देशकी सकल प्रतिक्रियागामी शक्तियोको राष्ट्रीयताके विरोधमे खडा करना हे । इस उद्देश्यको पूरा करनेके लिए शासकोकी ओरसे अथक प्रयत्न कई सालसे हो रहा है । उनकी यह कोशिश है कि नये विधानमे शासनकी वागडोर

उन वर्गोंके हाथमें रहे जो गवर्नमेंटके सहायक हैं। इसी दृष्टिसे संरक्षणोंके नियम बने हैं; इसी दृष्टिसे चुनावके निर्वाचन क्षेत्र बनाये गये हैं। इसी दृष्टिसे हरिजनोंको और ईसाइयोको सुरक्षित स्थान अथवा पृथक् प्रतिनिधित्व दिया गया है। इसी विचारसे अपने प्रान्तके देहाती क्षेत्रोंमें रगीन बक्सकी व्यवस्था नही की गयी है। इसी दृष्टिसे सार्वदेशीय व्यवस्थापक सभा (फेडरल लेजिसलेचर)के लिए अप्रत्यक्ष चुनावका प्रकार स्वीकृत हुआ है और देशी राज्योकी प्रजाको अपने चुने हुए प्रतिनिधि भेजनेका अधिकार नही दिया गया है।

सन् १९३२ मे ही अर्थात् नये विधानके मंजूर होनेके तीन वर्ष पूर्व ही इस प्रान्तके तत्कालीन गवर्नर सर मालकम हेली (अब लार्ड हेली) ने अपनी वक्तृताओमे यहाँके जमीदारो तथा व्यापारियोको सलाह दी थी कि वह अपना एक दल सगठित करे जो उनके हितोकी रक्षा करनेके लिए इन नये अधिकारोका उपयोग करे। इस सम्बन्धमे उन्होने गवर्नमेटकी नीतिको इन शब्दोमे स्पष्ट किया था—

"आपको एक दल सगठित करना होगा, जिसके पास एक कोष हो और जो उचित रूपसे अनुशासनके सूत्रमे परस्पर आबद्ध हो। जबतक यह संगठन प्रस्तुत नही हो जाता तबतक हम अधिकारी लोग छत्रको आपके लिए सुरक्षित रखनेका प्रयत्न कर सकते हैं। हम प्रचारद्वारा ऐसा वातावरण प्रस्तुत कर सकते हैं जिससे ऐसे दलकी सृष्टिमें सहायता मिले किन्तु हम दलकी सृष्टि नही कर सकते। यह काम दूसरोके करनेका है। मेरी अपील बडे और छोटे जमीदार, व्यापारी तथा विविध पेशेके लोगोसे है। हमारे सामने एक बड़ा खतरा है। केवल जायदादवाले लोगोको ही नही वरंच सब शान्तिप्रिय लोगोको इस खतरेसे बचनेके लिए सगठित हो जाना चाहिये।" एक दूसरी वक्तृतामे आप जमीदारोको चेतावनी देते है कि यदि नये अधिकार गलत हाथोंमे चले गये तो नये विधानसे न आप और न प्रान्त कुछ लाभ उठा सकेगा। यदि इसके बाद शासकोकी ओरसे यह कहा जाय कि हम निर्वाचनके मामलेमे तटस्थ है तो इस उक्तिपर कैसे विश्वास किया जा सकता है।

ज्यो-ज्यो वर्ग-चेतना बढ़ती जावेगी त्यो-त्यो मध्यम श्रेणीके लोग (अर्थात् बडे जमीदार, पूंजीपति आदि) विदेशी सत्ताके और नजदीक आते जावेगे। इसका कारण यह है कि इस श्रेणीके लोग विदेशी हुकूमतको तो किसी प्रकार सहन भी कर सकते है किन्तु जनसाधारणकी क्रान्तिको सफल होते नहीं देख सकते। यह अवस्था अपने देशमे उत्पन्न होती जाती है। ऐसे समय निम्न मध्यम वर्गके लोग किंकर्तव्यविमूढ हो जाते है। सामान्यत. वह मध्यम श्रेणीके प्रभाव और अधिकारसे विशेषरूपसे प्रभावित हुआ करते है। जनतापर सामान्य रूपसे उनका विश्वास नही रहता। वह उसके अपरिमित शक्ति-भडारसे अपरिचित हैं। जनताकी शक्तिका प्रदर्शन होनेपर भी वह सहसा इस बातपर विश्वास नही करते कि यह शक्ति टिकाऊ हो सकेगी। सच बात तो यह है कि जनता आज प्रगतिशील नेतृत्वको स्वीकार करनेके लिए तैयार है किन्तु हम आप ही आत्म-विश्वासकी कमीसे इन नवीन शक्तियोका स्वागत करनेमे अपनेको अशक्त पाते है।

मैं ऊपर कह चुका हूँ कि हमारा कार्य व्यापक है। इसलिए हम जीवनके किसी विभागकी भी उपेक्षा नही कर सकते। हमको प्रत्येक क्षेत्रमे कार्य करनेकी आवश्यकता है। प्रत्येक व्यक्ति अपने स्थानसे हमारे उद्देश्यकी पूर्तिमे थोड़ा वहुत सहायक अवश्य हो सकता है। अपने साहित्य की गतिविधिपर भी हमको सदा ध्यान रखना चाहिये। प्रगतिशील साहित्यके प्रस्तुत करनेमे हमको भी सहयोग करना चाहिये। नये समाजके गठनके कार्यमे साहित्यसे वड़ी सहायता मिल सकती है।

साहित्यिकोकी ओरसे यह आवाज उठायी जाती है कि राजनीतिज्ञ साहित्यपर भी अपना नियन्त्रण कायम करना चाहते हैं। ससारके साहित्यिकोका सदासे यह कायदा रहा है कि वह राजनीतिज्ञोके हस्तक्षेपका विरोध करते आये हैं। वह राजनीतिको सदासे ही तिरस्कारकी दृष्टिसे देखते आये है और राजनीतिज्ञोसे वह सदा सशंक रहते हैं। यह वात अकारण नही है। किन्तु जो लोग सामाजिक जीवनको ही वदलना चाहते हैं वह कैसे साहित्यकी उपेक्षा कर सकते हैं? साहित्यकी प्रत्येक कृति चाहे उसका स्वरूप और विषय कुछ भी क्यो न हो कुछ न कुछ राजनीतिक परिणाम अवश्य उत्पन्न करती है। यदि लेखक राजनीतिक परिस्थितिसे परिचित हो और वुद्धिपूर्वक लेखन-क्रियाको सम्पन्न करे तो उस क्रियाका परिणाम इच्छानुकूल हो सकता है। इससे हम अवश्य चाहेंगे कि हमारे साहित्यिक वर्तमान राजनीतिका ज्ञान प्राप्त करे। यदि वह जीवनसे सम्पर्क रखना चाहते हैं और एक सफल कलाकार वनना चाहते हैं तो इस युगमे जव वर्ग-सघर्ष प्रवल वेगसे चल रहा है वह कैसे अपनेको इससे अलग कर सकते हैं। जीवनकी कथा ही यह है। इसकी उपेक्षा नही की जा सकती। किन्तु हमारा अभिप्राय यह नही है कि हम साहित्यको किसी खास साँचेमे ढाले या उसका किसी प्रकार नियन्त्रण करे। हम यह भी नही चाहते कि उनकी कृतियोंका विषय शुद्ध राजनीतिक हो। स्टालिनके शव्दोमे हम एक अच्छे कलाकारको उसके क्षेत्रसे हटाकर एक रद्दी किस्मका हडताल करानेवाला मजदूर नेता नही वनाना चाहंते। वह कलाके द्वारा जितनी अच्छी सेवा कर सकता है उतनी राजनीतिके क्षेत्रमे प्रवेश करके नही कर सकता।

प्रान्तके साहित्यिकोसे मेरा नम्र निवेदन है कि वह जनताके लिए साहित्य प्रस्तुत करें। इस कार्यको सम्पन्न करनेके लिए सरल भाषाका प्रयोग करना आवश्यक होगा। चूँकि हमारे प्रान्तकी भाषाको राष्ट्रकी भाषा वननेका सौभाग्य प्राप्त हुआ है, इसलिए हमारे साहित्यका सारे देशपर प्रभाव पड़ना अनिवार्य है।

मैं आपसे निवेदन कर चुका हूँ कि जनताको आर्थिक कार्यक्रमके आधारपर संगठित करना हमारा मुख्य कार्य होना चाहिये। पहले हम प्रान्तके किसानोकी अवस्थापर विचार करेगे और इस वातके वतानेका प्रयत्न करेगे कि अवतक किसानोने अपने कष्टोको दूर करनेके लिए क्या किया है।

अपने प्रान्तकी जनसख्या लगभग ५ करोड़के है। गत ३० वर्षोमे यद्यपि हमारी जनसख्यामे अधिक वृद्धि नही हुई है, तथापि भूमिका वोझ निरन्तर वढ़ता ही जाता है। पिछले ३० वर्षोमें खेतीपर आश्रित रहनेवाली जनसंख्यामे ४० लाखकी वृद्धि हुई है।

यदि साथ-साथ इसी अनुपातमे खेतीके रकबेमे भी वृद्धि हुई होती तो वेकारीके वढनेका प्रसंग न उपस्थित होता, किन्तु दु खका विषय यह है कि भूमिके बोझमे वृद्धि होनेके साथ-साथ खेतीके रकबेमे उलटे कमी ही हुई है। इसका अनिवार्य परिणाम यह हुआ है कि प्रान्तके कितने ही अधिवासियोको अपनी रोजी कमानेके लिए भारतके अन्य प्रान्तो तथा विदेशोमे प्रति वर्ष जाना पडता है। ऐसे लोगोकी संख्या वरावर वढती जाती है।

दूसरा परिणाम यह हुआ है कि खेतोके टुकडे-टुकडे हो गये है। जोत टूटती जाती है और छोटे खेतोकी सख्यामे वृद्धि होती जाती है। खेती करना इस तरह लाभदायक नही रह जाता। ऐसे किसानोकी संख्या कुछ कम नही है जिनकी जोतका रकबा मुश्किलसे १ बीघेका दशाश होगा। अपने प्रान्तमे काश्तका रकवा ३॥ करोड एकड़ भूमि है। जनसख्यामेसे लगभग इतने ही लोग प्रधानतया अथवा अंशतः खेतीपर निर्भर करते है। इस प्रकार फी आदमी पीछे १ एकड भूमिका औसत पडता है। अन्य देशोसे यदि हम तुलना करे तो हमको मालूम होगा कि हमारे प्रान्तमे भूमिका औसत फी आदमी पीछे वहुत कम पडता है।

गत ३० वर्षमे लगानमे काफी वृद्धि हुई है। सन् १९३१ की मर्दुमशुमारीकी रिपोर्टके अनुसार जहाँ मालगुजारीमे केवल ७५ लाख रुपयेका इजाफा हुआ है वहाँ काश्तकारका लगान ६ करोड़ ६५ लाख वढ गया है। इधर लगानमे इजाफा हुआ है तो उधर पैदावारका खर्च भी वहुत ज्यादा वढ गया है। लगानकी रकममे नजरानेकी रकम भी जोड़ना चाहिये। फी एकड भूमि पीछे ५।॥) रु० नजराना देना पडता है।

इन विविध कारणोसे किसानकी गरीबी वढती जाती है। गरीवीके साथ-साथ उसका कर्ज भी वढता जाता है। सन् १९२९ मे प्रान्तीय लेनदेन जॉच-कमेटी (प्राविशल वैंकिङ्ग इक्वाइरी कमिटी)ने देहातोमे रहनेवाले लोगोंका कर्ज १२४ करोड रुपया कूता था। इस रकममेसे केवल २० करोडके करीव जमीदारोका कर्ज है, वाकी किसानोका। सन् १९२९ के वादसे कर्जकी रकम बढती ही जाती है।

लगभग ४० फी सदी किसान और छोटे जमीदार ऋणके असह्य वोझसे इतना अधिक दवे हुए है कि वह एक प्रकारसे महाजनोके गुलाम है। उनका ऋण जीवनभर उनके चुकाये न चुकेगा। यह ठीक है कि गवर्नमेंट ने इधर कानून वनाकर इस बोझको हलका करनेकी कोशिश की है, पर इस कानूनसे अधिक लाभ वड़े-वडे जमीदारोको ही पहुँचता है। जहाँ किसानका महाजन खुद उसका जमीदार है वहाँ इस कानूनसे किसानको कुछ भी मदद नही मिलती। जमीदार सौ तरीकेसे अपना कर्ज वसूल कर लेता है। इसके अतिरिक्त इस कानूनके वन जानेसे किसानको अव कर्ज नही मिलता। कौन महाजन इस कानूनके होते अव देहातमे लेन-देन करेगा? कर्जके विना किसानका काम नही चलता। वह सदा कर्जमे डूवा रहता है। इसीके आधारपर वह किसी प्रकार अपना काम चलाता रहता है। जवतक स्टेटकी ओरसे कम सूदपर किसानोको कर्ज देनेकी व्यवस्था न की जायगी तवतक इस प्रकारके कानूनोसे किसानोको विशेष लाभ नहीं पहुँच सकता। कोआपरेटिव सोसाइटीका काम अपने प्रान्तमे सर्वथा असफल रहा है।

हमारे प्रान्तके काश्तकारीके कानून भी बहुत खराब है। विशेषकर अवधमें किसानोकी अवस्था अत्यन्त दयनीय है। उनसे कई जगह गैर-कानूनी टैक्स भी लिये जाते हैं। हरी वेगारी और रसद देनेके अलावा उनको नाजायज अववाव भी देने पड़ते है। वेदखलीकी तलवार सदा सिरपर लटकती रहती है। पैदावारकी कीमत गिर जानेसे किसान एक अजव मुसीवतमे है। यद्यपि लगानमे तखफीफ की गयी है तिसपर भी किसानको इससे वहुत आसाइश नही हुई है। वहुत जगह तो जमीदारोने अपने किसानोकी यह रकम मुजरा भी नही दी है और उनसे पूरा लगान वसूल कर लिया है। इस रिआयतके होते हुए भी वहुतसे किसान अपना लगान अदा नही कर पाते हैं। नतीजा यह होता है कि वह वेदखल कर दिये जाते है या वेदखलीसे वचनेके लिए उनको कर्ज लेना पडता है।

विचारे किसानोने सन् १९२०-२१मे एक वृहत् आन्दोलन कर वड़ी मुश्किलसे अपनी एक माँग पूरी करा पायी थी। पहले अवधमे कोई किसान ७ वर्षसे अधिक खेतपर काविज़ रहनेका हकदार न था। ७ वर्ष वाद जमीदार जव चाहता था उनको वेदखल कर देता था। वेदखलीके खिलाफ तीव्र आन्दोलन होनेकी वजहसे गवर्नमेण्टने १९२२ ई०मे कानूनमे कुछ परिवर्तन किया था। उनका हीनहयाती हक मान लिया गया था, किन्तु दूसरे प्रकारसे वेदखल करनेकी कई धाराएँ कानूनमे वढा दी गयी थी। उदाहरणके लिए यदि किसान एक विस्वाभर भूमिपर भी जमीदारीका हक हासिल कर ले तो वह वेदखल हो सकता है। इसी तरह शिकमियोको जमीन उठानेके लिए भी उसकी वेदखली हो सकती है। जमीदार 'फार्म' खोलनेके लिए तथा अपनी सीरके लिए भी खेतसे वेदखल कर सकता है।

इस कारण इस कानूनसे यद्यपि कुछ लाभ किसानोका अवश्य हुआ, तथापि वेदखली वन्द न हो सकी। उसकी नयी मदे निकल आयी। किसानोकी पुकार (स्लोगन) आज भी वेदखली वन्द करानेकी है। वे कमसे कम कब्जेदारी चाहते है। उनके लगानका वोझ भी कम होना चाहिये। इस मन्दीके जमानेमे उनकी जोत विलकुल ही लाभप्रद नही रह गयी है। इस वर्ष तो वाढने किसानोको विलकुल तवाह कर दिया है। साधारण उपायोसे उनकी अवस्थामे सुधार होना असम्भव है। ग्रामोद्धारकी योजना सदा विफल रही है। जो रकम गवर्नमेण्टने इस कामके लिए मजूर की थी उसका वहुतसा भाग दफ्तरके खर्चमे ही लग गया। ज्यादातर काम दिखाऊ होता है। अधिकारियोको प्रसन्न करनेके लिए ही अधिकतर लोग इसमे थोडा-वहुत दिखावटी काम करते है। किसीको इस कामके लिए वह उत्साह नही है जो होना चाहिये। अव भविष्यमे इस मदके लिए सरकारसे और ग्राट भी न मिलेगा। इसके अतिरिक्त इस तरहकी योजनाएँ आँखमे धूल डालनेके लिए होती है। इन प्रयत्नोसे किसानोकी एक भी समस्या नही हल हो सकती। साँड़की नस्ल सुधारने और गायका दूध पीनेकी पुकार (स्लोगन) शाब्दिक मायाजाल (सोशलडेमागागी) के सिवाय कुछ नही है। किसानोकी मौलिक माँगोकी कथा तो दूर रही उनकी तात्कालिक माँगोमेसे एक भी माँग इस योजना द्वारा पूरी नही हो सकती। ग्रामोद्धारका जो महकमा खोला गया है उससे गवर्नमेण्टका एक नया सगठन

अवश्य तैयार हो गया है जो गवर्नमेण्टकी ओरसे गाँवोमे प्रचारका काम करता है। इसके द्वारा जमीदारोको आगामी निर्वाचनमे सहायता भी पहुँचायी जा सकती है।

अब प्रश्न यह है कि हमारे किसान और छोटे जमीदार अपनी मुसीबतसे छुटकारा किस प्रकार पा सकते है। छोटे जमीदारोंकी हालत भी इधर वहुत खराव हो गयी है। साढे छियासी फीसदीसे ज्यादा जमीदार १००)रु०से भी कम मालगुजारी सालमे देते है; ५६ फीसदी जमीदार २४)रु०से कम सालाना मालगुजारी देते है। २०३ जमीदार ऐसे होगे जो २००००)रु० या इससे अधिक मालगुजारी देते है; लगभग ६००के ऐसे जमीदार है जिनकी सालाना मालगुजारी ५०००)रु० या उससे अधिक है। अपने प्रान्तमे कुल लगभग २२ लाख जमीदार है। इनमेसे ८६½ फीसदी जमीदार किसानोके आन्दोलनमे सम्मिलित हो सकते है। किसान और छोटे जमीदारोको अपना एक दृढ सगठन वनाना चाहिये। जव वडे जमीदार सगठित हो रहे है तो कोई कारण नही है कि किसान अपना संगठन क्यो न वनावें। छोटे जमीदारोका हित वडे जमीदारोके साथ रहनेमे नही है। वह तो कहने भरके लिए ही जमीदार है। वहुतसे छोटे जमीदारोंके पास इतनी जमीन भी नही है कि वह अपने कुटुम्वका पालन-पोपण कर सके। उनकी जमीदारी इतनी छोटी है कि उससे उनको कोई लाभ नही होता। कर्जके वोझसे वह भी परेशान है।

सामन्तशाहीके युगमे जव समाजमे वड़े जमीदारोका आधिपत्य था किसान अपनेको खुली तौरपर सगठित नहीं कर सकते थे। उनको चुपचाप सव जुल्म वर्दाश्त कर लेना पडता था। जव अत्याचारकी मात्रा वहुत वढ जाती थी और आर्थिक कप्ट असह्य हो जाता था तो वह विद्रोह कर वैठते थे, किन्तु पशुबलके द्वारा वह जल्द दवा दिये जाते थे। इस प्रकार पुराने युगमे ससारमे सर्वत्र समय-समयपर किसानोके विद्रोह हुए है। जव वह वहुत वडी सख्यामे खेतसे वेदखल कर दिये जाते थे तो वह कभी-कभी गुप्त सभाएँ वनाकर अपनी रक्षाका आयोजन करते थे और जमीनपर कव्जा पानेके लिए जोर-जवर्दस्ती करते थे। कभी-कभी उनका विद्रोह सफल हो जाता था। किसानोका सवसे वडा विद्रोह चीनका 'टैंपिग' विद्रोह है। कई वर्षतक विद्रोही चीनके एक वहुत वड़े भागपर हुकूमत करते रहे और यदि विदेशी राज्य हस्तक्षेप न करते तो उनका राज्य स्थिर हो जाता।

जव पूंजीवादका युग आता है तव सामन्तोंकी सत्ता नष्ट होने लगती है, कमसे कम उनका अधिकार और प्रभाव स्टेटमे वहुत घट जाता है। किसानोको अपने सगठन कायम करनेका अधिकार मिल जाता है, यद्यपि वह इस अधिकारसे तवतक लाभ नही उठा सकते जवतक उनको शिक्षित वर्गका नेतृत्व प्राप्त नही होता। किसान सदा दूसरेके नेतृत्वमे ही आगे वढ सकते है। अपना नेतृत्व स्वय करनेकी उनमें क्षमता नही रहती। वह अपने भरोसे या तो विद्रोह कर सकते है या जमीदार और राज्यसे अनुनय-विनय कर सकते है। संगठन तथा प्रचारके तरीकेसे वह अनभिज्ञ है। जव शिक्षित समुदाय किसानोका सगठन करने लगता है तव वैध उपायोसे काम लेकर किसान अपनी उन्नति

करना आरम्भ करते हैं । साधारणतः किसान राजनीतिसे अलग रहते हैं । वह अपने आर्थिक प्रश्नोके लिए ही आन्दोलन करते हैं ।

सन् १९१८ मे प्रयागमे एक किसान-सभा कायम की गयी थी । यूरोपीय युद्धके वाद सारे एशियामे वेचैनी थी । युद्धमे विजय प्राप्त करनेके लिए मित्र-राष्ट्रोने आत्म-निर्णयके सिद्धान्तको स्वीकार किया था । प्रेसिडेट विलसनकी नीतिकी घोषणासे पददलित राष्ट्रोमे एक अपूर्व उत्साह था । उनकी आशाएँ ऊँची हो गयी थी । लडाईके जमानेमे गाँवके हजारो आदमी फौज और 'लेवरकोर' मे भरती हुए थे । युद्धमे भाग लेनेसे उनका मानसिक क्षितिज विस्तृत हो गया था । राजनीतिक सभाओका भी उनपर प्रभाव पड़ा था । लडाईके वाद गल्लेका निर्ख वहुत वढ गया था । इससे किसानकी अच्छी आमदनी हो गयी थी । ताल्लुकेदार इस आमदनीमे हिस्सा वँटाना चाहते थे । कानूनके अनुसार वह सात सालमे एक वार ही फी रुपया एक आना लगानमे इजाफा कर सकते थे । इसलिए उन्होंने वेदखलीके कानूनसे फायदा उठाकर किसानोको वेदखल करना शुरू किया और नजरानेमे गहरी रकम लेकर दूसरे काश्तकारोके साथ उस जमीनका वन्दोवस्त करना शुरू किया । अकसर जमीनके वन्दोवस्तके लिए वोली वोली जाती थी और जिस काश्तकारकी वोली सवसे ज्यादा होती थी उसको पट्टेपर जमीन दी जाती थी । वहुतसे किसान इस तरह वेदखल कर दिये गये । वहुतोको पट्टेके लिए महाजनसे ज्यादा सूदपर रुपया उधार लेना पड़ता था ।

नजरानेकी माँगसे किसान तग आ गये थे । प्रयागकी किसानसभाने किसानोको सङ्गठित करना शुरू किया । श्रीधर वलवन्त जोधपुरकर जो वावा रामचन्द्रके नामसे प्रसिद्ध हैं उस समय जौनपुर जिलेमे रहते थे और वहाँ से परतापगढ जिलेके किसानोमे प्रचार किया करते थे । सन् १९२० मे किसान सभाका कार्य तेजीसे वढने लगा । किसानोकी माँगे यह थी—(१) वेदखलीपर रोक; (२) दस्तूरसे ज्यादा अववाव न हो, (३) वेगारपर रोक, (४) जुर्मानोका वन्द होना, (५) गैर-कानूनी टैक्सोका वन्द होना । किसानोको प्रतिज्ञा लेनी पडती थी कि हम सदा शान्त रहेगे; गैरकानूनी टैक्स नही देगे; वेगार विना मजदूरी लिये न करेगे, पतई, भूसा, रसद वाजार-भावपर वेचेगे; नजराना न देगे चाहे वेदखल हो जायँ । वेदखल खेतको दूसरा कोई किसान न लेगा; लगान ठीक वक्तपर अदा करेगे । जवतक वेदखलीका कानून मसूख न होगा हम दम न लेगे । प्रत्येक किसानको १४ प्रतिज्ञाएँ लेनी पड़ती थी ।

परतापगढसे किसान आन्दोलन रायवरेली जिलेकी दक्षिणकी तहसीलोमे फैला । सन् १९२१ के आरम्भमे आन्दोलन पुष्ट हो गया था । किसानोकी सभाओमे हजारोकी भीड़ होती थी । हिन्दू-मुसलमान, पुरुष-स्त्री सव सम्मिलित थे । किसान आन्दोलन साम्प्रदायिक भेदभावसे सर्वथा मुक्त था । गवर्नमेण्ट और ताल्लुकेदार किसानोंकी जागृतिसे भयभीत हो गये थे । ७ जनवरी १९२१ को मुशीगञ्जमे गोली चली । इसमे कई किसान आहत हुए । गोलीकाण्डके वादसे रायवरेली आन्दोलन कुछ शिथिल पड़

गया । यह आन्दोलन उस समय अवधके कई जिलोंमें फैला हुआ था । किसानोंके दृढ संगठनको देखकर अवधके अधिकारियोंने लगान कानूनके बदलनेकी आवश्यकताको स्वीकार किया । नोटिस बेदखली रोक दी गयी और नया कानून बनाकर किसानोंको हीनहयातीका हक दिया गया । उस समय देशमे असहयोग आन्दोलन चल रहा था । गवर्नमेंट यह नही चाहती थी कि किसान उस आन्दोलनमें शरीक हों । इस मंशासे भी किसानोकी कुछ माँगे स्वीकार करना आवश्यक था । उनकी मुख्य मांग बेदखलीपर रोककी थी । जैसे ही यह माँग स्वीकृत हुई किसानोकी असहयोगमें दिलचस्पी कम हो गयी । कांग्रेस किसानोकी आर्थिक माँगोके लिए लडना नही चाहती थी, किन्तु अपने आन्दोलनमें उसका सहयोग प्राप्त करना अवश्य चाहती थी । धीरे-धीरे असहयोग आन्दोलन भी शिथिल पड़ गया । सन् १९१९ के अन्तमे हरदोई, खीरी, सीतापुर और लखनऊ जिलोमे 'एका आन्दोलन' के नामसे किसान आन्दोलन फिर आरम्भ हुआ । यह आन्दोलन ताल्लुकेदार और गवर्नमेण्टके अधिकारियोके विरुद्ध था । इन जिलोंके ताल्लुकेदार कागजमे दर्ज लगानसे कही अधिक वसूल करते थे । इसी कारण किसानोमे बेचैनी थी । किसानोका एक प्रसिद्ध नेता मदारी पासी था जिसके पकडनेमे अधिकारियोंको काफी तरद्दुद उठानी पडी थी । जब कभी किसानोका कोई स्वयंसेवक पकड़ा जाता था तो वह बड़ी संख्यामे इकट्ठा हो जाते थे और उसको छुडा लेते थे । इसके कई उदाहरण हमको मिलते हैं । किसानोंने दर्ज लगानसे अधिक देनेसे इनकार कर दिया । कई जगह ताल्लुकेदारके आदमियोसे मारपीट भी हो गयी ।

एका सभा दो प्रकारकी होती थी । एक तो शुद्ध आर्थिक और दूसरेमे साथ-साथ राजनीतिक कार्यक्रम भी रहता था । सभामे स्वराज, स्वदेशी और अदालतोके बहिष्कार सम्बन्धी प्रस्ताव पास होते थे । प० जनार्दन जोशी, जो उस समय रायबरेलीमें डिप्टी कलेक्टर थे, अपनी एक रिपोर्टमे लिखते हैं कि एक रियासतमे कागजमे दर्ज लगान ७७०००)रु० था, लेकिन ताल्लुकेदार अपनी रिआयासे ९५००) की फाजिल रकम वसूल करता था । दूसरी रियासतमे ३२०००) रु० के स्थानमे रिआयासे ४५०००) रु० वसूल किया जाता था । जोशीजी आगे चलकर लिखते हैं कि इसमे आश्चर्यकी क्या बात है यदि किसान इस सडी पद्धतिके विरुद्ध विद्रोह करता है । श्रीयुत कालसर आई. सी. एस. लिखते हैं कि एक रियासतमे लगानकी रकम १७००) रु० थी लेकिन रिआयासे ५७००) रु० वसूल किया जाता था । ऐसा अनुमान किया जाता है कि इन जिलोमे साधारणत. रिआयासे दर्ज लगानका डेवढा वसूल किया जाता था । किसानोके असन्तोषका एक और कारण भी था । जो भूसा अबवाबकी शक्लमे रिआयासे लिया जाता था उसका परिमाण निश्चित नही था । एक खाँची या एक गठरी देनेका रिवाज था । किन्तु खाँची और गठरीकी तौल नियत नही थी । एक मनसे लेकर ४ मनतक खाँचीकी तौल और २० से ४० सेरतक गठरीकी तौल समझी जाती थी । चूंकि उस समय भूसेकी कीमत बहुत बढ गयी थी, इसलिए किसानोको इतना भूसा देना और भी अखरता था । अबवाबके सम्बन्धमे कानून भी स्पष्ट न था । जगह-जगह किसानोकी पचायतें कायम हो गयी थी

और यह कभी-कभी फौजदारीके मामले भी देखती थी। मुलजिमोपर कभी-कभी जुर्माना भी होता था।

धीरे-धीरे अधिकारियोने इस आन्दोलनको दबाना शुरू किया। कुछ दिनो बाद किसान आन्दोलन बहुत दुर्बल पड़ गया। सन् १९३२ मे भी कांग्रेस कमेटीने लगानबन्दीका आन्दोलन शुरू किया। यह आन्दोलन इलाहाबाद और रायबरेलीमे अच्छी तरह चलता रहा, किन्तु अन्य जिलोमे यह ज़ोर न पकड सका। सन् १९३३ मे प्रयागमे केन्द्रीय किसान संघकी स्थापना की गयी। इसकी शाखाएँ भी कुछ जिलोमे खोली गयी, किन्तु व्यवस्थित रूपसे कुछ काम न हो सका। इधर अन्य प्रान्तोमे भी किसान आन्दोलनका सूत्रपात हुआ। बिहारमे किसानोका एक बडा मजबूत सगठन है। अखिल भारतवर्षीय किसान संघकी स्थापना हुई। उसका प्रथम अधिवेशन लखनऊमे गत अप्रैलमे हुआ था। काग्रेसके कार्यकर्ताओको चाहिये कि जिले-जिले किसान सघकी स्थापना करे और किसानोको उनकी आर्थिक माँगोके आधारपर सगठित करे।

मजदूरोका सगठन भी अपने प्रान्तमे यूरोपीय युद्धके बादसे ही आरम्भ होता है। युद्धके बाद देशभरमे मजदूरोमे काफी असन्तोष था। उस समय व्यवसायका बाजार गर्म था। मिल-मालिकोको खूब मुनाफा हो रहा था, किन्तु मजदूरोकी मजदूरी बहुत थोड़ी थी। मजदूरी बढानेके लिए देशभरमे हडताले हुई। इसी अवसरपर अपने प्रान्तमे तीन यूनियन कायम हुई—कानपूर मजदूर सभा, बी० एन० डब्लू० रेलवेमैन यूनियन और ओ० आर० रेलवे मैन यूनियन (इसका अब ई० आई० रेलवेमैन यूनियन नाम है)। सन् १९२७ से सगठनका काम बाकायदा शुरू हुआ। कानपुर-मजदूर सभाको श्री हरिहरनाथ शास्त्रीने स्वर्गीय पं० गणेशशकरजी विद्यार्थीकी सहायतासे सुसगठित किया। सभाने मजदूरोसे रुपया इकट्ठा कर अपना एक भवन निर्माण किया। सभाकी ओरसे पुस्तकालय, वाचनालय और डिसपेसरी खोली गयी और मजदूर सभा सेवासमितिकी स्थापना की गयी। यह सस्थाऐं आज भी वर्तमान है। सभाने 'मजदूर' नामका एक साप्ताहिक पत्र भी निकाला जिसका सम्पादन इस समय श्री राजाराम शास्त्री कर रहे है। सभाके उद्योगसे सन् १९२७ मे कानपुरमे 'आल इण्डिया ट्रेड यूनियन काग्रेस' का वार्षिक अधिवेशन हुआ। इसकी वजहसे अपने प्रान्तमे मजदूर आन्दोलनको बल मिला और १९२९ मे प्रथम प्रान्तीय सम्मेलन कानपुरमे पं० जवाहरलाल नेहरूके सभापतित्वमे हुआ। अबतक ५ प्रान्तीय सम्मेलन हो चुके है। प्रान्तीय ट्रेड यूनियन काग्रेस मजदूरोको सगठित करती है और उनके सग्राममे हिस्सा लेती है। गत ८—९ वर्षमे १० नयी यूनियन कायम हुई है। अपने प्रान्तमे मजदूर आन्दोलनका आरम्भ काग्रेसके सदस्योद्वारा हुआ है।

सन् १९३५मे अपने प्रान्तके कारखानोकी संख्या ५९७ और मजदूरोकी सख्या १३९२६० थी। फैक्टरी इन्सपेक्टरोकी इतनी कमी है कि सन् १९३४मे केवल ६२ कारखानोका एक बार मुआयना हो सका था। मजदूरोको अपने हितोकी रक्षाके लिए जगह-जगहपर मजदूर सघ स्थापित करने चाहिये। मिर्जापुर, आगरा, हाथरस, गोरखपुर

तथा मुरादाबाद आदि स्थानोंमें लाख, लोहा, चूडी, जूता, कपडा, शक्कर और बर्तन बनानेके व्यवसायमें हजारों मजदूर काम करते हैं। इनको सगठित करनेकी जरूरत है। योग्य कार्यकर्ताओंकी कमीसे मजदूर सगठनका काम बहुत आगे नही बढ रहा है। जो थोड़े बहुत कार्यकर्ता लगनसे मजदूरोंका संगठन करते भी हैं वह गवर्नमेंटके दमन-चक्रके चंगुलमें फँस जाते हैं। हडतालके समय दफा १४४का प्रयोग किया जाता है और मजदूरोंकी सभाएँ रोक दी जाती हैं। मजदूर कार्यकर्ताओंपर दफा १५३ और १२४ अ के मुकदमें चलाये जाते हैं। उनसे अकसर जमानते भी माँगी जाती हैं। मजदूरोंकी वर्ग-चेतना बढ़ती जाती है। उनके आन्दोलनसे हुकूमत घबराती है और उसको दबानेके लिए मिल-मालिकोंके सहयोगसे नाना प्रकारके उपायोंसे काम लेती है।

कांग्रेसके कार्यकर्ताओंको मजदूर-संगठनकी ओर अधिकाधिक ध्यान देना चाहिये और ट्रेड यूनियन कांग्रेसके कार्यकर्ताओंके साथ सहयोग करना चाहिये। इससे साम्राज्य-विरोधी मोरचा और भी दृढ होगा। सौभाग्यसे हमारे प्रान्तमें मजदूर कार्यकर्ताओंसे कांग्रेसवालोंका अच्छा सम्बन्ध है। चुनावके कार्यमें भी हमारा उनका सहयोग है। यदि हम इस आवश्यक कार्यकी ओर ध्यान दे तो बहुत जल्द एक अच्छा मजदूर संगठन खड़ा किया जा सकता है। क्षेत्र विस्तृत है। केवल योग्य कार्यकर्ताओंकी कमी है।

तीन वर्ष हुए बस्ती-गोरखपुरमें ईख संघकी स्थापना हुई थी। इसमें प्रधान रूपसे कांग्रेस कार्यकर्ता काम करते थे। वास्तवमें यह किसानोंका संगठन था। इधर इसका काम बहुत कुछ ढीला पड गया है। हमें ईख सघको फिरसे जगाना चाहिये। जहाँ-जहाँ शक्करकी मिलें हैं वहाँ-वहाँ ईख सघ कायम करना चाहिये। साथ-साथ शक्करके कारखानों के मजदूरोंको भी संगठित करना चाहिये।

हमारे सामने यही मुख्य काम है। जनताको सगठित करके ही हम राष्ट्रीय आन्दोलन-को पुष्ट कर सकते हैं। हमारी दृष्टिमें चुनावका काम गौण है। फिर यह काम चन्द महीनोंका ही है। फरवरीमें चुनाव समाप्त हो जायगा। हम अपनी लड़ाईको अधिक प्रभावशाली बनानेके लिए ही व्यवस्थापक सभाओंमें जा रहे हैं। हम इन सभाओंका उपयोग अपने प्रचार-कार्यके लिए करना चाहते हैं। हमारे आन्दोलनका यह एक और प्लैटफार्म होगा। चुनाव-सग्रामके समय जनताको राजनीतिक शिक्षा देनेका एक अच्छा मौका मिलता है। जनताको हमें नये अधिकारोंका खोखलापन बतला देना है। हमें उनको बतलाना है कि नये विधानके द्वारा जनताकी कोई समस्या नही हल हो सकती। मौलिक समस्याएँ तो स्वतन्त्र होनेपर हल हो सकती हैं। ब्रिटिश साम्राज्यवादका भारत-पर पंजा मजबूत करनेके लिए नये विधानमें संरक्षण सम्बन्धी कई नियम हैं। साम्राज्यके स्वार्थ सुरक्षित रखनेके लिए और ब्रिटिश साम्राज्यवादके सामाजिक आधारको सुदृढ़ बनानेके लिए इस विधानका निर्माण हुआ है, किन्तु जनताके हितोंकी सर्वथा उपेक्षा की गयी है। अधिकार-सम्पन्न वर्गोंके स्वार्थ भी सुरक्षित रहेंगे, क्योंकि वह साम्राज्यवादके सहायक हैं। विधानमें इसकी विशेष रूपसे व्यवस्था कर दी गयी है कि ऐसे वर्गों के

अधिकारोमे किसी प्रकारका संशोधन या परिवर्तन न हो सकेगा। किन्तु निरीह, अकिंचन किसानकी दरिद्रता दूर करनेका किसी प्रकारका आश्वासन नही दिया गया है।

हमको यह न भूलना चाहिये कि साम्राज्यवाद जनताका अर्थशोषण करके ही पनप सकता है। यूरोपके प्रत्येक राष्ट्रको आर्थिक संकटका मुकावला करना पड रहा है और इस संकटसे त्राण पानेके लिए वह अपने उपनिवेशोको और अधिक चूसता है। ऐसी अवस्थामे जनसाधारणकी चिन्ता कौन करता है ?

कांग्रेसने यह स्पष्ट कर दिया है कि वह विधानको रद करनेके लिए ही अपने प्रतिनिधि व्यवस्थापक सभामे भेज रही है। उसका उद्देश्य विधानको कार्यान्वित करना नही है, किन्तु उसका विरोध करना और अन्त करना है। कांग्रेसने अपनी चुनाव-घोषणामे साफ कह दिया है कि उसके मतमे व्यवस्थापक सभाओ द्वारा स्वतन्त्रता नही प्राप्त हो सकती और आदेश दिया है कि कांग्रेसके सदस्य इन सभाओका ऐसा उपयोग करे जिससे जनताकी शक्ति बढे और व्यवस्थापक सभाओके बाहर जो कार्य हो रहा है उसमे सहायता मिले तथा स्वतन्त्रता प्राप्त करनेके लिए जिस शक्तिकी आवश्यकता है उसका विकास हो। कांग्रेसने अपना एक कार्यक्रम भी जनताको यह बतलानेके लिए प्रकाशित किया है कि उसका लक्ष्य क्या है। इस प्रकार कांग्रेसने इसका संकेत कर दिया है कि जब कभी वह अधिकारसम्पन्न होगी तब वह क्या करेगी। कृषिसम्बन्धी प्रश्नोपर प्रान्तीय कमेटियाँ विचार कर रही है और शीघ्र ही कांग्रेसकी ओरसे एक कार्यक्रम प्रकाशित होगा जिसमें कृषिसम्बन्धी सब प्रश्नोका विचार होगा और उनके सम्बन्धमे कांग्रेसकी नीति निर्धारित की जावेगी। प्रान्तीय कमेटियोको यह भी अधिकार दिया गया है कि वे अपनी स्थानीय आवश्यकताओको देखते हुए यदि जरूरी समझे तो परिपूरकके रूपमे एक और घोषणा प्रकाशित कर दे। अपने प्रान्तकी कमेटी इस कार्यमे संलग्न है और आशा है कि वह प्रान्तके विशेष प्रश्नोके सम्बन्धमे भी अपनी नीति निर्वाचकोपर प्रकाशित कर देगी।

इस प्रकार हम देखेगे कि व्यवस्थापक सभाओकी ओर हमारा एक विशेष दृष्टिकोण है। इस सम्बन्धमे मन्त्रिपद ग्रहण करनेके प्रश्नपर विचार करना अनुचित न होगा। अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटीने इस प्रश्नपर अभीतक विचार नही किया है। उसने निश्चय किया है कि यह प्रश्न चुनावके बाद ही तय किया जाय, किन्तु यह प्रश्न फैजपुर कांग्रेसके सामने आनेवाला है, इसलिए इसके सम्बन्धमे मैं कुछ शब्द कह देना आवश्यक समझता हूँ। मेरा निवेदन है कि विधानको रद करनेकी नीतिको स्वीकार करके हम मन्त्रिपद ग्रहण करनेकी बात सोच भी नही सकते। इसका अर्थ होगा ब्रिटिश साम्राज्यवाद-से समझौता करना और विधानको काममे लाना।

कांग्रेससे देशको बहुत बड़ी आशा है और यदि हम बिना पूर्ण अधिकार प्राप्त किये मन्त्रिपद ग्रहण करेगे तो हम अपनी प्रतिज्ञाओको पूरा न कर सकेगे और हम देशके विश्वासपात्र न रह जायँगे। जनता भी इस धोखेमे पड़ जायगी कि इस नवीन विधानमे कुछ न कुछ तत्त्वकी बात अवश्य होगी, तभी तो कांग्रेसके लोग पदग्रहण कर रहे है।

पदग्रहण करके विधानको रद कराना तो दूर रहा हम साम्राज्यवादके अन्नमाल बन जायेंगे और देशकी मनोवृत्ति धीरे-धीरे वैध आन्दोलनके पक्षमे ढलने लगेगी।

आशा है हमारे प्रान्तके प्रतिनिधि फैजपुर काग्रेसके अधिवेशनमे देशको इस भावी खतरेसे बचानेका प्रयत्न करेंगे।

चुनावके क्षेत्रमे कांग्रेसका मुकाबला करनेके लिए गवर्नमेण्टने नेशनल एग्रीकल्चरल पार्टीको खडा किया है। मै ऊपर बता चुका हूँ कि किस तरह लार्ड हेलीकी कोशिशसे इस पार्टीका उस समय जन्म हुआ जब कि काग्रेस देशकी स्वाधीनताके लिए लड़ रही थी और काग्रेस कार्यकर्ता जेलोमें बन्द थे। मैदान खाली पाकर गवर्नमेण्टने बड़े-बड़े जमीदारों-को सगठित करनेका काम अपने हाथमे लिया। पार्टीके जो नियम आरम्भमे बने थे उनके अनुसार केवल बडे-बडे जमीदार ही दलके सदस्य हो सकते थे। नामसे लोगोंको यह धोखा हो सकता है कि यह किसानोंकी कोई पार्टी होगी, किन्तु ऐसा नहीं है। यह तो राजा और नवाबोकी पार्टी है। छोटे जमीदारोको भी इसमें कोई स्थान नही है तो किसानोका क्या कहना। अब जब चुनाव करीब आया तो गत जुलाईके महीनेमे पार्टीने अपने कुछ नियम बदल दिये। अब प्रत्येक व्यक्ति जो पार्टीके उद्देश्य स्वीकार करता है पार्टीका सदस्य हो सकता है। चुनावके कारण पार्टीने अपने प्रोग्राममे भी परिवर्तन किया है। चुनावके कारण अब पार्टीको इतना कहनेके लिए मजबूर होना पड़ा है कि वह नये विधानको अपर्याप्त और असन्तोषप्रद समझती है। जो कान्फरेस गर्मियोमे फर्रुखाबादमें हुई थी उसकी कार्यवाही देखनेसे मालूम होता है कि कान्फरेसने इतने महत्त्वके प्रश्नपर विचार ही नही किया था। अवध पार्टीके मन्त्रीने अपनी एक पुस्तिकामे नये विधानका समर्थन करते हुए यह लिखा है कि कोई भी विधान पूर्ण नही हो सकता, विधान तो विकासकी चीज है, यह विधान भी बदलेगा और यह बात हमारे रुखपर बहुत कुछ निर्भर करेगी। देशमे ऐग्रिकल्चरिस्ट पार्टी ही ऐसा एक दल है जिसको नये विधानका विरोध करनेका अब भी साहस नही होता। बलिहारी है चुनावकी जो इस प्रतिक्रियागामी दलको भी एक हलका कदम आगे बढानेको विवश करता है। अब कमसे कम यह इतना तो कहने लगा है कि हम इस नये विधानसे सन्तुष्ट नही है।

पार्टीके मैनिफेस्टोमे कहा गया है कि पार्टी मजदूरोकी अवस्थाको सुधारनेका यत्न करेगी।

यदि समझना हो कि पार्टीका इससे क्या आशय है तो पार्टीके मन्त्रीका वह परचा देखिये जो उन्होने 'वोटरोको नेक सलाह' इस शीर्षकसे प्रकाशित किया है। मन्त्रीजी बताते है कि हमारी 'नौजवान पार्टी'की ओर मजदूर और किसान खिचे आ रहे है। आगे आप कहते है कि हमारी पार्टी "मजदूरोको मेहनतसे काम करनेका आदी बनावेगी।" मन्त्रीजीकी रायमे मजदूर प्राय: आलसी और कमजोर होते है, जब मन्त्रीजीकी ऐसी मनोवृत्ति है तो इस दलसे मजदूरोको क्या आशा हो सकती है? ज्यादा अच्छा होता यदि पार्टी अपने मैनिफेस्टोमे इसकी घोषणा करती कि वह ऐसा कानून बनानेका प्रयत्न करेगी जिससे हरी, बेगारी और रसदकी प्रथा बन्द हो जायेगी और बड़े-बड़े जमीदार नाजायज

रकमे न वसूल कर सकेगे । किसानोके सम्वन्धमे इस घोपणामे केवल इतना ही कहा गया है कि पार्टी उचित लगान नियत कराने और जोतको स्थायी वनानेका उद्योग करेगी । इसके शब्द जान-बूझकर अस्पष्ट रखे गये है । मन्त्रीजीने एक जगह अपनी यह राय जाहिर की है कि पट्टेकी मीयाद कुछ वढाई जा सकती है । क्या पार्टी साफ-साफ नही कह सकती थी कि वह किसानोको कब्जेदारीका हक दिलानेकी कोशिश करेगी ? घोपणाका यह अश केवल उस आक्षेपका उत्तर देनेके लिए रखा गया है जो पार्टीके विरुद्ध प्राय· किया जाता है कि यह वडे-वडे जमीदारोकी पार्टी है । पार्टी शव्दाडम्बरसे काम लेना चाहती है, किन्तु हम उसको यह वतलाना चाहते है कि शव्दोसे कोई धोखेमे नही आ सकता । पार्टीमे कोई अनुशासन भी नही है और हो भी कैसे सकता है जव कि उसके सदस्य किसी सिद्धान्तके अधीन नही है । इसमे तनिक भी सन्देह नही कि यह पार्टी गवर्नमेण्टहाउस पार्टी है, यही उसका वास्तविक रूप है । असली रूपको छिपानेकी चाहे जितनी कोशिश क्यो न की जाय वह छिप नही सकता । अकवरका यह मिसरा पार्टीपर खूव चस्पा होता है—"उन्हीके मतलवकी कह रहा हू, जवान मेरी है वात उनकी । उन्हीकी महफिल सँवारता हूँ, चिराग मेरा है रात उनकी ।"

पार्टीका दावा है कि वह हिन्दू-मुसलिम झगडोसे पाकसाफ है । जवतक साम्प्रदायिकतासे काम चलता रहा तवतक इसके प्रमुख हिन्दू सभा और मुसलिम कान्फरेसके सर्वेसर्वा थे । अव जव आर्थिक प्रश्न जनताके सम्मुख आने लगे है और वर्ग-चेतना वढती जाती है, जमीदार वर्गको अपने वर्गके स्वार्थोके आधारपर अपना संगठन करना पडता है । अव भी पार्टीके कई सदस्य चुनावकी दृष्टिसे साम्प्रदायिक सस्थाओसे अपना सम्बन्ध वनाये रखना लाभदायक समझते है ।

संयुक्तप्रान्तकी हिन्दू सभा तो हिन्दू मन्त्रियोके हाथकी कठपुतली हो रही है । हिन्दू-हितोकी दुहाई देकर अपने लिए प्रधान मन्त्रित्वके पानेकी यह चेष्टा मात्र है । जिस हिन्दू-सभामे मन्त्रियोके एजेट और गवर्न्मेण्ट 'ह्विप' की तूती वोलती हो उसका आदर हिन्दू समाजमे कैसे हो सकता है ? जो सज्जन मालवीयजीके विरुद्ध अविश्वासका प्रस्ताव लानेकी धृष्टता दिखा सकते है वे किस मुँहसे हिन्दू हितोके कर्णधार वननेका दावा पेश करते है ? वह वताये कि उन्होने अवतक हिन्दू-हितोकी रक्षाके लिए क्या किया है ? और आज क्या कर रहे है ? क्या एक हिन्दूके प्रधान मन्त्री वन जानेसे ही हिन्दू-हित साधित हो जाते है ?

जनताको किसीके शाब्दिक मायाजालमे न फँसना चाहिये । आजकल हर जगह जनताको गुमराह करनेका प्रयत्न किया जा रहा है । जनताको इससे सावधान होनेकी जरूरत है ।

वास्तविकता यह है कि प्रान्तीय हिन्दू-सभा और नेशनल ऐग्रिकलचरिस्ट पार्टी प्रतिक्रियाके गढ है । इन सस्थाओके पीछे न त्याग है और न सेवाका भाव; केवल चुनावमे सफलता प्राप्त करनेके लिए ही यह सारा खेल रचा जा रहा है ।

केवल भारतमे ही नही वरञ्च सारे ससारमे उन्नति और प्रतिक्रियाके वीच आज

संघर्ष चल रहा है। प्रतिक्रियागामी शक्तियाँ सारे संसारमे संगठित हो रही हैं। प्रगतिशील शक्तियाँ एक सूत्रमे आवद्ध होकर उनसे मोर्चा ले रही हैं। यह दृश्य हर जगह देखनेमें आता है। इसका कारण यह है कि पूँजी-प्रथा विकासकी उस चरमसीमाको पहुँच गयी है जहाँ वह उत्पादनकी वृद्धिमे रुकावट डालती है। पूँजीप्रथाके आन्तरिक विरोधोको मिटाना पूँजी प्रथाकी सीमाके भीतर सम्भव नही है। पूँजीवादका वर्तमान रूप साम्राज्यवाद है। यह पूँजीवादकी आखिरी मजिल है। समाजकी भावी उन्नतिके लिए इस प्रथाका लोप होना आवश्यक है। मानव-समाजको दारुण परिणामसे बचानेका यही एकमात्र उपाय है। पूँजीवाद आज अपनी समस्याओको हल करनेमे अपनेको अयोग्य पाता है। पूँजीवादकी रक्षाके लिए अनेक प्रयोग किये जा रहे है, पर एकको भी सफलता नही मिल रही है। अर्थशास्त्रियोने यही समझ रखा है कि कृत्रिम उपायोसे वस्तुओकी कीमत बढानेसे और उत्पादनका नियन्त्रण करनेसे पूँजी-प्रथाकी रक्षा हो सकती है। उनका ख्याल है कि पूँजी-प्रथाकी रक्षाके लिए यह भी आवश्यक है कि एक निश्चित योजनाके अनुसार राष्ट्रके आर्थिक-जीवनका संगठन किया जावे, किन्तु अभीतक सब प्रयोग निष्फल प्रमाणित हुए हैं।

पूँजी-प्रथा आज अपनेको इस सकटकी अवस्थामे पाती है। उसे अपनी रक्षाका कोई मार्ग नही सूझ पडता। ससारका बाजार साम्राज्यवादी राष्ट्रोके लिए सकुचित होता जाता है और अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध अव्यवस्थित और अस्त-व्यस्त होते जाते हैं। राष्ट्रोकी प्रतिस्पर्धा फलस्वरूप भीषण होती जाती है और प्रत्येक राष्ट्र अपनी रक्षाके लिए अपनेको सुसज्जित कर रहा है। आपसमे होड-सी लग गयी है। इससे ससारकी आर्थिक पद्धति विनष्ट-सी हो रही है।

जब पूँजी-प्रथाका इस प्रकार ह्रास और सगठन होने लगता है तब वह एक प्रतिक्रियाकी पद्धति होकर ही रह सकती है। यही प्रतिक्रिया 'फैसिज्म' कहलाती है। पूँजी-प्रथाको जीवित रखनेकी यह अन्तिम चेष्टा है।

मजदूरोकी वर्ग-चेतना बढनेसे साम्राज्यवादका संकट और भी बढ जाता है। पूँजी-प्रथाके ह्रासके साथ-साथ अन्तर्राष्ट्रीय जगत्मे वर्गोका परस्पर सघर्ष भी बढता जाता है। पूँजीपति पार्लमेण्टके द्वारा शासन करनेमे अपनेको असमर्थ पाते है, इसलिए वह अधिनायकत्वकी शरण लेते है, मजदूरोके सगठनको छिन्न-भिन्न कर देते हैं और शासनके बर्बर तरीकोसे काम लेते हैं। विचारोको नियन्त्रित करनेके लिए तरह-तरहके कानून बनाते हैं। विद्यार्थियोसे ससारकी समस्याओका पक्षपातरहित अध्ययन करनेकी स्वतन्त्रता भी छीन ली जाती है। प्रचारके सब साधनोपर शासनका अधिकार रहता है और प्रत्येक प्रश्नपर शासनका जो मत है वही जनताके सामने पेश हो सकता है। अपने देशमे भी विचारोपर कठोर नियन्त्रण हो रहा है। अपने प्रान्तके इण्टरमीडियेट कालेजके विद्यार्थी किसी प्रकारकी सभा या संस्थामे बिना प्रिंसिपलकी आज्ञाके सम्मिलित नही हो सकते। इस सर्क्यूलरका अभिभावकोको विरोध करना चाहिये।

फैसिस्टकी वैदेशिक नीति भी शान्तिमय नहीं होती। वह युद्धकी नीतिका अवलम्बन

करते है । वह समझते है कि युद्धसे उनकी कठिनाइयाँ दूर हो जायँगी, किन्तु ऐसा होनेका नही । पिछले युद्धने ससारको दो टुकडोमे वाँट दिया है—सोवियट रूस तथा पूंजीवादी संसार । एक समाजवादका प्रतिनिधि है तो दूसरा पूँजीवादका । इस वँटवारेने ही समाजवाद वनाम पूँजीवादके प्रश्नको ससारका मुख्य प्रश्न वना दिया है । अगला युद्ध पूँजीवादको और भी दुर्वल कर देगा और समाजवादी दुनियाका क्षेत्र और भी अधिक विस्तृत हो जायगा । कई देशोमे पूँजीवादका अस्तित्व ही खतरेमे पड जायगा । यह स्थूल सत्य पूंजीवादी राष्ट्रोकी समझमे नही आता और वह एक विश्वव्यापी युद्धको सन्निकट लानेकी कोशिशमे लगे हुए है । युद्धके वादल चारो ओर मँडरा रहे है । जो राष्ट्र सम्पन्न और तृप्त है वह युद्धको टालनेके प्रयत्नमे है और जो अतृप्त है वह युद्धको छेडनेके मनमूवे वाँध रहे है । स्थिति काफी अनिश्चित और भयावह है । ससारकी प्रगतिशील शक्तियाँ यदि सम्मिलित चेष्टा करे तो वह इस युद्धको कुछ कालके लिए अवश्य टाल सकती है । सन् १९१४ की अपेक्षा ऐसी शक्तियाँ इस समय कही अधिक शक्तिशाली है । पहले तो सोवियट रूसका अस्तित्व ही प्रगतिशील शक्तियोको काफी प्रोत्साहन देनेवाला है । फिर आर्थिक सकटके कारण निम्न-मध्यम-श्रेणी तथा विविध पेशेके लोग और किसान भी आज दुखी है और वह अपने दुखोसे छुटकारा पानेके लिए अधिकाधिक मजदूरोके साथ सहयोग कर रहे है । इस प्रकार कई देशोमे सामान्य जनताके विविध समुदायोका एक सयुक्त मोर्चा वन गया है जो फैसिज्म और युद्धका विरोध कर रहा है । उपनिवेशोके अधिवासी भी साम्राज्यवादसे छुटकारा पानेके लिए स्वतन्त्रताके सग्राम-को आगे वढा रहे है । वह भी फैसिज्मके विरुद्ध है, क्योकि फैसिज्मसे उनको भी भय है । इटली अवीसीनियाके युद्धने इस वातको स्पष्ट कर दिया है । सव उपनिवेशोकी सहानुभूति इस युद्धमे उसी प्रकार अवीसीनियाके साथ थी जिस प्रकार सोवियट रूस और ससारकी मजदूर जमातकी । यह सव शक्तियाँ यदि सगठित हो जायँ और अपनी पूरी शक्ति लगा दें तो फैसिस्ट आक्रमण अव भी रोका जा सकता है । पहला काम इस आक्रमणका मुकावला करना है । यदि इस प्रयत्नमे प्रगतिशील शक्तियाँ सफल हुई तो उनको अपने उद्देश्य से पूरा करनेकी शक्ति प्राप्त हो सकेगी ।

आज फैसिस्ट आक्रमण स्पेनकी गवर्नमेटके विरुद्ध चल रहा है । फैसिस्ट राष्ट्र-विद्रोहियोकी सहायता कर रहे है किन्तु हस्तक्षेप न करनेकी नीतिके कारण गवर्नमेटको लडाईका सामान नही मिलता है । स्पेनकी जनता वडी वहादुरीके साथ शत्रुओका मुकावला कर रही है, पर अव तक गवर्नमेटको हारपर हार खानी पड़ी है । मैड्रिड शत्रुओके हाथ आनेवाला है । आश्चर्य है कि अवतक किस प्रकार वहाँकी गवर्नमेट पराजित नही हुई है । स्पेनके भाग्यके निपटारेपर वहुत कुछ निर्भर करता है । इस गृह-कलहका जो भी परिणाम हो इसमे सन्देह नही कि स्पेनकी जनताको कुचलना कोई सरल काम नही है ।

साथ-साथ उपनिवेशोमे क्रान्तिकी लहर उठ रही है । जो देश इटली अवीसीनियाके युद्धक्षेत्रके समीपके थे उन्होने अपनी स्वतन्त्रताके लिए एक प्रयत्न किया । मिस्रसे

अंग्रेजोंने मुसोलिनीके भयके कारण समझौता कर लिया। फिलिस्तीनमें पश्चात् विद्रोह हुआ जो सेना द्वारा दबा दिया गया। फ्रेंच सरकारको सीरिया और लेबनानकी स्वतन्त्रता कुछ शर्तोंके साथ स्वीकार करनेपर बाध्य होना पड़ा। अन्य देशोंमें भी असन्तोष फैल रहा है और अनुकूल परिस्थिति होनेपर वहाँ भी स्थिति बदलेगी।

हमको यह न समझना चाहिये कि हम अकेले हैं, जो शक्तियाँ आज फैसिज्मका विरोध कर रही हैं वह सब हमारे साथ हैं। जो पददलित राष्ट्र आज स्वतन्त्रताके लिए उद्योग कर रहे हैं वह भी हमारे साथ हैं। हमलोगोंका एक [illegible] मोर्चा है। अन्तर्राष्ट्रीय मजदूर जमात तथा वह समुदाय जो आज लोकतन्त्र अथवा स्वतन्त्रताके लिए लड़ रहे हैं हमारे सहयोगी हैं।

हम सब उस शक्तिके प्रतिनिधि हैं जिसका आज उत्थान हो रहा है और जिसका भविष्य उज्ज्वल है। यह हो सकता है कि हम अपनी दुर्बलता और भूलोंके कारण तत्काल सफलता न प्राप्त कर सकें और हमको अभी कुछ समयतक और प्रतीक्षा करना पड़े।

किन्तु यदि हम सतत उद्योग करते जायेंगे तो अन्तमें हमारी विजय निश्चित है।

आस्तीनके ये साँप !

कांग्रेसके पदग्रहणका एक भयानक किन्तु अनिवार्य परिणाम यह हुआ कि साम्प्रदायिक समस्याने अब पहलेसे कहीं अधिक गम्भीर रूप धारण कर लिया है। साधारण कांग्रेसजनों-की आशाके प्रतिकूल, आज मृतप्राय साम्प्रदायिक संस्थाओंमें जान आ गयी-सी दिखायी दे रही है। उनका संगठन और प्रचारका कार्य भी पहलेकी अपेक्षा सैकड़ों गुने तेज हो गया है। पहले जिन संस्थाओंमें चुनावके समय थोड़ी-सी चहल-पहल दिखायी दे जाती थी उनका साहस आज उस हदतक बढ़ गया है कि वे कांग्रेसका प्रतिद्वन्द्वी होनेका दम भरने और देशवासियोंका सच्चा प्रतिनिधि होनेका दावा पेश करने लगी हैं। इतना ही नहीं, इनके स्वरूपमें भी परिवर्तन हुआ है। अब ये साम्प्रदायिक संस्थाओंका चोला बदलकर राजनीतिक संस्थाएँ बन रही हैं। कलतक हिन्दू महासभा और मुस्लिमलीगका मुख्य कार्य हिन्दुओं और मुसलमानोंके धार्मिक और सांस्कृतिक अधिकारोंकी रक्षा करना समझा जाता था, अगर कांग्रेस इनके साथ समझौता कर लेती तो ये कांग्रेसके साथ राजनीतिक क्षेत्रमें कन्धेसे कन्धा भिड़ा कर चलनेको, या कमसे कम उसकी राहमें रोड़े न अटकानेको तैयार थीं, किन्तु आज हम देखते हैं कि कांग्रेससे इन संस्थाओंका विरोध केवल साम्प्रदायिक प्रश्नोंपर ही नहीं रह गया है। अब कांग्रेसके साथ उनका विरोध मौलिक है; विरोध उसकी विचारधारा और उसकी कार्य-प्रणालीसे है। आज इन संस्थाओंके कर्णधारोंके बीच पारस्परिक कटुता बहुत कम दिखायी पड़ती है, वे आपसमें न लड़कर अपने मुख्य और समान शत्रु कांग्रेससे लड़ रही हैं। कांग्रेसके खिलाफ साम्प्रदायिक संस्थाओंका संयुक्त मोर्चा जोर पकड़ रहा है। हिन्दू महासभा और मुस्लिमलीगकी ओरसे कांग्रेसको

यह कह कर कोसा जा रहा है कि वह शासन करनेके अयोग्य है वह धर्म और संस्कृतिकी रक्षा करनेमे असमर्थ है, उसके हाथसे शक्ति छीनकर सस्थाओके प्रतिनिधियोके हाथोमे, शक्ति देनेसे ही देशका भला हो सकता है।

जैसा कि हमने ऊपर कहा, साम्प्रदायिक समस्याका जटिल होना काग्रेसके पद-ग्रहणके बाद अनिवार्य था। नये शासन-विधानके लागू होनेके बाद देशकी स्थितिमे एक महत्त्वपूर्ण अन्तर हो गया है। आज सूबोमे हुकूमतकी बागडोर, राजनीतिक शक्ति, एक बड़े हदतक जनताके हाथमे आ गयी है। जनताके प्रतिनिधियोके रूपमे ८ सूबोमे काग्रेसी मन्त्रिमण्डल कायम है। परन्तु अपने साम्प्रदायिक स्वरूप, प्रतिगामी कार्यक्रम और साम्राज्यशाहीके समर्थनके कारण साम्प्रदायिक संस्थाओके नेताओको इस राज्यशक्तिमे उनके इच्छानुसार भाग नही मिल पाया और उनकी चाह उनके मनमे ही दबी रहकर खटक रही है। कहनेको हिन्दूसभा और मुस्लिमलीग आदि साम्प्रदायिक संस्थाओका उद्देश्य अपने सम्प्रदायके सर्वसाधारण लोगोकी भलाईके लिए प्रयत्न करना रहा है, पर यदि इन सस्थाओद्वारा किये जानेवाले कार्यपर ध्यान दें तो हमे पता चलेगा कि व्यवहार-रूपमें ये सस्थाएँ मुट्ठीभर सामन्तो, राजाओ, तालुकेदारों, जमीदारो और शहरके कुछ अनुदार मध्यम श्रेणीके लोगोकी सस्थाएँ रही है, जो कि धर्मके नामपर अपने वर्गका स्वार्थ-साधन करने, सरकारी नौकरियो और एसेम्बलीमे सीटें आदि प्राप्त करनेके काममे लायी जाती रही है। कांग्रेसके हाथमें शासन-शक्ति आ जानेसे ये वर्ग अपने राजनीतिक अधिकारोको छीना हुआ देखकर क्षुब्ध हो रहे हैं। राजनीतिक अधिकारोसे ये वचित थे ही साधारण जनता, किसानो, मजदूरोकी आर्थिक अवस्थामे सुधारके जो कानून पास हो रहे है उससे इनकी सुविधाओपर भी आघात पहुँच रहा है। फलस्वरूप इनका क्षोभ विद्रोहका रूप धारण कर रहा है। किसानोके आर्थिक भारको कम करनेवाले लगान और कर्जकी कमी वगैरहके कानून ज्यो-ज्यो पास होते जाते हैं और काग्रेसजन जिस अनुपातमे किसानो और मजदूरोकी आर्थिक मॉंगोके आधारपर उनका संगठन करते जाते है उसी अनुपातमे इन लोगोका काग्रेस-विरोध बढता जाता है और ज्यो-ज्यो इनकी आर्थिक सुविधाओपर आघात और जनतामे श्रेणी-चेतना बढती जायगी, त्यो-त्यो काग्रेसके प्रति इनका विरोध भी बढता जायगा।

साम्प्रदायिक नेताओमे जो क्षोभ पैदा हो गया उसकी वजहसे उन्होने खासकर मुसलिमलीगके नेताओने, ऐसा जहर उगलना शुरू कर दिया था जिसका लाजिमी नतीजा था कि जगह-जगह दगे हो जाते। अगर इन लोगोने जानबूझकर दगे नही कराये तो कमसे कम अपने उत्तेजनाजनक भाषणो और लेखो आदिके द्वारा ऐसा वायुमण्डल तो तैयार कर ही दिया था जिसमे दगे हो जाना लाजिमी हो गया था। दुर्भाग्यवश कांग्रेसके नेताओने दूरदर्शितासे काम लेकर पहलेसे ही दंगेको रोकनेकी तैयारी न की, मन्त्रिमण्डलोने दगोको रोकनेकी तैयारी न की और पुलिसने इन दगोको शान्त करनेमे आगे बढकर उचित तत्परता नहीं दिखायी। इसका नतीजा यह हुआ कि सम्प्रदायवादियोको यह कहकर काग्रेसको बदनाम करनेका मौका मिल गया कि काग्रेसी हुकूमत अमन-अमान बनाये रखनेमे

असमर्थ है। इन दंगोंकी वजहसे हिन्दुओ और मुसलमानों दोनोमे काग्रेसकी प्रतिष्ठाको धक्का लगा है। मुसलमान सम्प्रदायवादियोंकी करतूतो, साम्प्रदायिक देश-द्रोहियोकी चालो और काग्रेस मन्त्रिमण्डलोकी ढीली-ढाली नीति इन सबने मिलकर काग्रेसको हिन्दू जनतामे बदनाम किया।

हिन्दू-महासभामे एक अश ऐसे लोगोका था जो ब्रिटिश साम्राज्यशाहीसे लडकर देशमें हिन्दू राज्यकी स्थापनाका स्वप्न देखता है। आरम्भमे काग्रेस-मन्त्रिमण्डलोकी स्थापनासे यह वर्ग सन्तुष्ट था। काग्रेसमे हिन्दुओकी मुख्यता होनेके कारण इसका यह विश्वास हो चला था कि आगे चलकर देशमे हिन्दूराज्य कायम हो सकेगा। दंगोके अवसरपर काग्रेसी मन्त्रिमण्डलोद्वारा जो नीति बरती गयी उसकी वजहसे यह वर्ग भी निराश हो गया। हैदराबादके आन्दोलनमे काग्रेसने जिस प्रकार अपनेको अलग रखा और आन्दोलनको साम्प्रदायिक रूप धारण करने दिया उससे भी हिन्दू जनतामे काग्रेसके सम्बन्धमे गलतफहमी फैली और हिन्दू महासभाके प्रति सहानुभूति बढी।

मुस्लिमलीगकी प्रतिष्ठा बढने और मुसलमानोका उसपर सिक्का जमनेका एक कारण यह हुआ कि जिन प्रान्तोमे मुसलिम लीगसे अलग रहकर मुसलमानोंने चुनाव लडा था और मिनिस्ट्री कायम की थी, उन प्रान्तोमे उन्हे अपने नीचेकी जमीन खिसकती दिखायी दी। चूंकि ये प्रान्त चारो ओरसे काग्रेसी प्रान्तोसे घिरे हुए है, इसलिए उन प्रान्तोकी जनताकी अवस्थामे सुधार होते देख स्वभावत इन प्रान्तोकी जनतामे प्रतिगामी मिनिस्ट्रियो-के प्रति असन्तोष बढ चला। ऐसी हालतमे फजलुल हक और सिकन्दर हयात इस बातके लिए मजबूर हुए कि मुसलिम लीगमें सम्मिलित होकर काग्रेसी मन्त्रिमण्डलको बदनाम करे और मुसलमानोके मजहबी जजबातको उभाडकर अपने अस्तित्वको सुरक्षित रखे।

इस प्रकार ये साम्प्रदायिक सस्थाएँ अपना पुराना चोला बदलकर समाजके प्रतिगामी वर्गोकी ताकतोको सुरक्षित रखनेवाली समस्याएँ बन गयी है। अलग-अलग संगठन होनेपर भी आज इन सस्थाओका मौलिक स्वरूप एक ही हो गया है और भविष्यमे शीघ्र ऐसा समय आ सकता है जब कि अपने चेहरेपरसे साम्प्रदायिकताका नकाब उतारकर या उसे नाममात्रको ही कायम रखकर वे सस्थाएँ एक-दूसरेकी खुलेआम मदद करती नजर आये।

सम्प्रदायवादी संस्थाओके इस नये दृष्टिकोणपर यूरोपकी फैसिस्ट विचारधाराकी छाप है। फैसिस्ट राष्ट्रोकी ओरसे गुप्त और अर्ध-प्रकट रूपसे जो प्रचार जारी है उसपर भी इनका काफी असर पड़ा है। पूर्वीय जगतमे फैसिस्ट विचारधाराका प्रचार करने और लडाई छिडनेकी हालतमे इन राष्ट्रोका समर्थन फैसिस्ट-राष्ट्रोके पक्षमे प्राप्त करनेके लिए फैसिस्ट राष्ट्रोकी ओरसे कई वर्षोसे लगातार प्रयत्न हो रहे है और इस कार्यके लिए इन राष्ट्रोकी ओरसे काफी धन भी खर्च किया जाता है। इन लोगोने उन सभी देशोमे अपना जाल बिछा रखा है जिनपर या तो इनकी आँखे गडी हुई है और जिन्हें वह आगे चलकर हडप जानेके स्वप्न देख रहे हैं या जिन देशोमे नाजी-प्रचारद्वारा युद्धकी अवस्थामे ब्रिटेन, फ्रान्स और रूसको तंग किया जा सकता है। फिलिस्तीन और सीरियाके अरब-

आतंकवादियोको इटली और जर्मनीकी ओरसे शस्त्रास्त्रोकी मदद भी पर्याप्त मात्रामें दी गयी है। हिन्दुस्तानको फैसिस्ट राष्ट्रोने अपना विशेष कार्यक्षेत्र बनाया है। इनमेसे जापान और इटलीका प्रचार तो साधारण है, किन्तु जर्मनीका नाजी-प्रचार काफी बडे पैमानेपर हो रहा है। हिटलरके आर्य-जातिकी श्रेष्ठताके सिद्धान्तके नामपर हिन्दू युवकोको नाजी विचारधाराकी ओर आकर्षित किया जाता है। ऐसे हिन्दू महासभावादी युवकोपर इस प्रचारका काफी असर पड रहा है जो यह समझनेमे असमर्थ है कि फेसिज्म साम्राज्यवादका ही आगे बढा हुआ रूप है। जर्मनीका आर्य-जातिकी श्रेष्ठताका सिद्धान्त, स्वस्तिक चिह्न और ब्रिटेनका विरोध ऐसे युवकोके भ्रमको और भी पुष्ट करते है। मुसलमानोकी वीरताकी प्रशसा की जाती है और ब्रिटेनकी फिलिस्तीन और सीमान्त नीति लेकर उन्हे ब्रिटेनके खिलाफ उभाडा जाता है। मुसलमानोपर इस प्रचारका काफी असर पडा है। खाकसार आन्दोलन तो स्पष्टत· नाजी तरीकोपर चलाया जा रहा है। ब्रिटिश सरकारकी ओरसे इस प्रचारको रोकनेकी कोशिश इसलिए नही की जाती कि वह समझती है कि समाजवादका जो प्रचार यहाँ हो रहा है उसके असरको दूर करनेके लिए फैसिस्ट प्रचार आवश्यक है।

हमारे देशमे फैसिस्ट प्रचार इस प्रकार कुछ लोगोपर अपना असर कर रहा है इसमे आश्चर्यकी कोई बात नही। सच तो यह है कि पूंजीवादकी ह्रासावस्थाके इस जमानेमे सारी दुनिया ही दो खेमोमे बँट गयी है। एक ओर वे प्रगतिशील लोग है जो मौजूदा पूंजीवादी समाज-व्यवस्थाको हटाकर समाजवादी व्यवस्था कायम करना चाहते है, दूसरी ओर वे फैसिस्ट लोग है जो मौजूदा पूंजीवादी व्यवस्थाको ही सैनिक शासनके बलपर रखना चाहते है। हमारा देश अभी भी पराधीन है, इसलिए हमारे यहाँ ये दो भाग स्पष्ट रूपसे दिखायी नही देते। परन्तु इसमे सन्देह नही कि साम्प्रदायिक संस्थाओके नये स्वरूपमें हमे फैसिस्ट आन्दोलनके आरम्भका दर्शन होता है।

हमारे राष्ट्रीय आन्दोलनके लिए इस प्रकारकी प्रगति किस हदतक खतरनाक है और इस नये खतरेका किस तरह मुकाबला किया जाय इसपर हम फिर विचार करेंगे।[१]

पहले हम कह आये है कि साम्प्रदायिक संस्थाओके स्वरूपमे काग्रेस पदग्रहणके बाद, बुनियादी तबदीली हुई है। अब वे अपने सम्प्रदायकी जनताके धार्मिक और सास्कृतिक अधिकारोकी रक्षाके लिए ही आन्दोलन नही करती; धार्मिक-सस्थाओके स्थानपर वे राजनीतिक सस्थाएँ बन रही है। काग्रेससे उनका विरोध केवल साम्प्रदायिक समस्यापर न होकर उसकी मौलिक विचारधारा और कार्य-प्रणालीसे है। हिन्दू-महासभा और मुसलिम लीगका पुराना आपसी झगडा खत्म हो चला है और उनका मुख्य उद्देश्य काग्रेसका विरोध हो गया है। इन सस्थाओके द्वारा समाजके उन प्रतिगामी वर्गोके नेतृत्वमे एक सयुक्त मोर्चेका सगठन हो रहा है, जो काग्रेसके पदग्रहणके फलस्वरूप अपने राजनीतिक

१. 'सघर्ष' १३ अगस्त १९३९

अधिकारोसे वंचित हो गये है और जनताके आर्थिक भारको कम करनेके लिए बनाये जानेवाले कानूनो और किसान-मजदूरोमे बढ़ती हुई श्रेणी-चेतनाकी बदौलत जिनकी आर्थिक सुविधाओंपर आघात हो रहा है।

इन सस्थाओके प्रतिगामी नेतृत्व और दृष्टिकोणकी बदौलत हमे उनसे यह खतरा नही कि वे विस्तृत जनाधार (mass basis) वाली कांग्रेसकी प्रतिद्वन्द्वी संस्थाएँ बन सकेगी, किन्तु उनके द्वारा होनेवाले विरोधी प्रचारको रोकनेका प्रयत्न किया गया तो इसमे सन्देह नही कि वे हमारे राष्ट्रीय आन्दोलनको छिन्न-भिन्न करनेमे बहुत-कुछ अंशोमें सफल हो सकेंगी। प्रजातान्त्रिक तरीकोसे इन सस्थाओको काग्रेसके मुकाबलेमे बढनेकी कोई उम्मीद नही है, इसलिए उनकी ओरसे राष्ट्रीय आन्दोलनके बढते हुए प्रभावको रोकनेके लिए उतना जायज तरीकोका इस्तेमाल किया जायगा जो कि पश्चिमके फैसिस्टोद्वारा काममे लाया गया हे। इन संस्थाओद्वारा प्रजातन्त्रके विरुद्ध प्रचार आरम्भ कर दिया गया है। हालमे मि० जिन्नाने बम्बईके एक भाषणमे यह स्पष्ट कर दिया है कि प्रजातन्त्रमे उनका विश्वास नही है। हिन्दू-महासभाके पत्र भी लोकतन्त्र प्रणालीके विरुद्ध अधिकाधिक लिखने लगे है। काग्रेसके और देशमे फैली हुई प्रगतिशील विचारधाराके खिलाफ मिथ्या और भ्रमपूर्ण प्रचार करके, संगठित गुण्डाशाहीके तरीकोका इस्तेमाल करके और साम्प्रदायिक वैमनस्यको फैलाकर इनके द्वारा राष्ट्रीय आन्दोलनकी प्रगतिमे बाधाएँ डाली जायँगी। सबसे बडा खतरा इन साम्प्रदायिक दंगोंका ही है। अगर साम्प्रदायिक दगोंने भीषण रूप धारण किया और विभिन्न सम्प्रदायोमे आपसी मनमुटाव जोर पकडता गया तो ऐसी हालतमे, जैसा कि महात्मा गांधीने बार-बार जोर दिया है, राष्ट्रीय आन्दोलनको सफलतापूर्वक चलाना बहुत कठिन हो जायगा।

साम्प्रदायिक समस्याको हल करनेका पुराने समझौतेका तरीका बहुत अधूरा रहा है। इसके द्वारा केवल शिक्षित मध्यम श्रेणीकी समस्या हल होती थी; समझौतेकी बातचीतके जरिये उन्हे अपने तबकेके लिए एसेम्बलीमे सीटे और सरकारी नौकरियोमे हिस्सा हासिल करनेमे मदद मिलती रही है। चूँकि इस समस्याके बने रहनेसे इस तबकेका स्वार्थ-साधन होता था, इसलिए वह इसे मिटानेका सच्चे दिलसे प्रयत्न न करता था। लेकिन आजकी अवस्थामे तो पुराना तरीका सिर्फ अधूरा नही, बल्कि एकदम बेकार पड गया है। अब साम्प्रदायिक सस्थाओकी माँग सिर्फ सरकारी नौकरियो और हुकूमतोमें हिस्सा पाना ही नही है; आज उनकी माँग है कि जनताकी आर्थिक अवस्थामें सुधार करनेकी दृष्टिसे स्थिरस्वार्थ वर्गवालोकी जो आर्थिक सुविधाएँ छीनी जा रही है, वे बन्द कर दी जायँ, परन्तु इस मसलेपर कोई समझौता नही हो सकता। ऐसा करना जनताके साथ विश्वासघात करना होगा। आर्थिक प्रश्नोपर जमीदारों और पूँजीपतियोके साथ समझौता करके काग्रेस अपने क्रान्तिकारी स्वरूपको ही खो देगी।

अगर काग्रेस जनताके आर्थिक प्रश्नोको हल करने और चुनावके वादोको पूरा करनेकी ओर ध्यान देगी तो देहातोमे सम्प्रदायवादियोकी दाल नही गल सकती।

सम्प्रदायवादियोका जोर शहरोमें और कस्बोंमे रहनेवाली शिक्षित मध्यम श्रेणी तथा अशिक्षित आवारा श्रेणीको अगर कांग्रेसने अपनानेका प्रयत्न नही किया तो ये लोग इन प्रतिक्रियागामियोकी चालवाजीके शिकार होगे। ये ही वर्ग पश्चिममे भी फैसिस्ट आन्दोलनकी खास ताकत रहे है। इन वर्गोमे फैली हुई भीषण वेकारी इन वर्गोके नवयुवकोको सम्प्रदायवादियोके चंगुलमे फँसनेको मजबूर करेगी। अपनी अशिक्षाके कारण अपनी आर्थिक दुर्दशाके कारणोको न समझ सकने और जिन अवस्थाओमे वे काम करते है उनकी वदौलत उनमे आगामी चेतनाका विकास न होनेके कारण वे औरोके मुकावले आसानीसे गलतफहमीके शिकार वनाये जा सकते है। किसानोकी माँगोको लेकर तो कांग्रेस आन्दोलन करती आयी है, पर शहरके इन तवकोकी ओर अभीतक उसका ध्यान नही गया है। शहरोमे कांग्रेसका काम अवतक सिर्फ सभाएँ करके प्रस्ताव पास कर देना और मौके-बे-मौके जलूस निकाल देना भर ही है, लेकिन यह कार्यक्रम विलकुल ही अधूरा है। हमे शहरके उपर्युक्त वर्गोकी रोजमर्राकी आर्थिक माँगोको लेकर उनके लिए आन्दोलन करना होगा। तभी हम इनकी सक्रिय सहानुभूतिको अपने साथ ला सकेंगे, इनमे वास्तविक चेतनाका विकास कर सकेंगे और व्यवहार रूपमे यह सिद्ध करके दिखा सकेंगे कि आज जो साम्प्रदायिक नेता उनके हिमायती वन रहे है वे सच्चे सवालोके सामने आनेपर भाग खडे होते है और उनका वास्तविक उद्देश्य अपने वर्गका स्वार्थ-साधन है। साम्प्रदायिक उपद्रवोके समय शान्ति वनाये रखने तथा राष्ट्रीय आन्दोलनके कार्यको आगे वढानेके लिए हमे स्वयसेवकोका दल हर शहर और देहातमे कायम करना होगा। कितने ही नौजवान साम्प्रदायिक संस्थाओमे इसलिए भर्ती हो जाते है कि वहाँ वे स्वयं-सेवकसेनामे भर्ती होकर एक प्रकारका मानसिक सन्तोष प्राप्त करते है। ऐसे लोगोका भी हमे ध्यान रखना आवश्यक है।

अन्तमे, इस प्रसंगमे यह कहना भी वहुत आवश्यक है कि आजकी हालतमे जवकि स्थिरस्वार्थी वर्ग कांग्रेस विरोधी मोर्चेको सुदृढ कर रहे है, कांग्रेसकी भीतरी एकताको वनाये रखना हमारे लिए पहलेसे भी ज्यादा जरूरी हो गया है। विचारधारा तथा दृष्टिकोणकी विभिन्नता होनेपर भी कांग्रेसके भीतर सभी समूहोको कन्धेसे कन्धा भिडाकर चलना चाहिये। हमारी आपसी फूटसे हमारी राष्ट्रीय सस्था और राष्ट्रीय आन्दोलनकी ताकत कमजोर होगी, विरोधियोंको जनताको भ्रममे डाल रखने और उसे गलत रास्तेपर ले जानेमे सहायता मिलेगी। साथ ही हमारे भीतर स्वय अवसरवादको प्रोत्साहन मिलेगा। आजकल कांग्रेस जिस प्रकार वामपक्ष और दक्षिणपक्षका अखाडा-सा वना चाहती है उससे हमारा राष्ट्रीय आन्दोलन छिन्न-भिन्न हो जायगा और साम्राज्यशाहीसे सफल मोर्चेकी तैयारी एक अर्सेके लिए टल जायगी। श्री सुभाषचन्द्र वोसपर कार्य-समितिने अनुशासन-भग करनेके लिए जो कडी काररवाई की है उससे यही जान पडता है कि इस वढते हुए साम्प्रदायिक खतरेके नये स्वरूपकी ओर हमारे नेताओका ध्यान नही है। हम कांग्रेसके दक्षिण और वाम दोनो पक्षोके नेताओसे और खासकर गाधीजीसे यह अनुरोध करते है

कि वे ऐसी सूरत ढूंढ निकालें जिससे विचारधारा सम्बन्धी मतभेद रखते हुए भी कांग्रेसके भीतर सभी साम्राज्य विरोधी दल मिलकर काम कर सकें।[1]

कांग्रेसके सामने सवाल

विकास जीवनका लक्षण और स्वभाव है। प्रकृतिमें जहां कहीं भी जीवन है हम इस नियमको लागू पाते हैं। विकासका मार्ग जीवनके लिए संघर्षकी राहमें होता है। जीवनके लिए संघर्ष मनुष्य समाजमें अनेक प्रकारकी कशमकश और जद्दोजहद और संघर्ष मनुष्य-समाजके विकास और विस्तारके साथ विस्तृत रूप ग्रहण करते जाते हैं। कबीलोंकी शक्लसे वे जातीय और जातीय शक्लसे वे राष्ट्रीय संघर्ष हमारे सामने आते हैं। आज यूरोपमें जारी अन्तर्राष्ट्रीय संघर्ष भी एक बहुत बड़े परिमाणमें जीवनके लिए संघर्ष है; क्योंकि आधुनिक परिस्थितियोंमें जीवनके विकासके लिए मार्ग बन्द हो रहा है।

जीवनके लिए संघर्ष और विकास बहुत हदतक एक चीज है। जीवन-संघर्ष और विकासके लिए जरूरी है कि जीवनके मार्गमें जो बाधाएँ या प्रतिकूल अवस्थाएँ आयें उन्हें दूर किया जाय। गुलामी चाहे वह वैयक्तिक हो या राष्ट्रीय, जीवनके क्षेत्रको बहुत संकुचित कर देती है और गुलामीकी अवस्थामें जीवनका विकास न हो सकनेके कारण व्यक्ति और राष्ट्र मृत्युकी ओर चलने लगते हैं। मनुष्य और राष्ट्र मौतसे बचनेके लिए गुलामीके खिलाफ लड़ते हैं। गुलामीके खिलाफ लड़ना हमारा स्वभाव है।

सत्रहवीं अठारहवीं शताब्दीके अन्तर्राष्ट्रीय जीवन संघर्षका परिणाम यह हुआ कि हमारा देश विदेशी गुलामीमें फँस गया और हमारा राष्ट्रीय जीवन स्वाभाविक विकासके मार्गपर न चलकर विदेशी साम्राज्यको पुष्ट करनेका साधन बनने लगा। जीवनके स्वभाव और लक्षणके अनुसार यह जरूरी था कि हमारा देश इस गुलामीसे निजात पानेकी कोशिश करता। यह कोशिशें शुरू हुईं। कई शक्लोंमें यह कोशिशें हुईं। जिनका गवाह इतिहास है। इन सब कोशिशोंमें सबसे बड़ी कोशिश जो आज ५४ वर्षसे जारी है हमारी राष्ट्रीय कांग्रेस है।

कांग्रेसका जन्म

जिस समय कांग्रेसका जन्म हुआ, उस समय हमारा देश गुलामीकी सबसे दर्दनाक हालतमें था। उस समय स्पष्ट तौरपर आजादीकी बात सोचना, उसका सपना देखना भी हमारे लिए आसान नहीं था, परन्तु आजादी या जीवनकी इच्छा और प्रयत्न सूक्ष्म रूपसे या अप्रकट रूपसे कौमके दिलमें मौजूद था। यह प्रयत्न उस गहरी गुलामीमें एक संघटनके रूपमें प्रकट हुआ जिसका नाम पड़ा कांग्रेस। उस समय कांग्रेसका काम अधिकार

---

१. संघर्ष २० अगस्त, १९३९

माँगना नही, रिआयते माँगना था; उस समय काग्रेस आजादी नही, वल्कि नौकरियाँ माँगा करती थी। उस समय नाममात्रके अधिकारके रूपमे भी कोई ऐसी चीज हमलोगोके हाथमे नही थी जिसके लिए हमलोग आपसमे लड़ सकते।

काग्रेसका उस समयका उद्देश्य था विदेशी साम्राज्यकी मातहतीमे कुछ अधिकार या रिआयते माँगना। यह रिआयते थी विदेशी साम्राज्यकी मशीनरीमे कल पुर्जे वननेकी इच्छा या नौकरी पानेकी इच्छा। यदि हम सूक्ष्म रूपसे देखे तो इस नौकरी माँगनेकी इच्छामें भी आजादीकी एक कायर और सोयी हुई इच्छा थी।

आजादी नहीं नौकरियाँ

उस समय काग्रेसकी अपील थी—हम तुम्हारे गुलाम तो है, परन्तु हमे अपनी इच्छासे ही गुलामी करने दो। अपनी इच्छासे गुलामी करनेका या विदेशी साम्राज्यकी नौकरी करनेका अधिकार माँगनेकी योग्यता हमारे देशकी सर्वसाधारण जनतामे नही थी। इसके लिए वे ही लोग उपयुक्त थे और इसका स्वप्न वे ही लोग देख सकते थे जो विदेशी साम्राज्यकी शिक्षा-दीक्षा काफी हदतक प्राप्त कर चुके थे और विदेशी नौकरशाहीके सम्पर्कमे आते रहते थे। यह लोग थे हमारे उच्च शिक्षा-प्राप्त वडे लोग या वकील, डाक्टर, एडिटर, इत्यादि या कुछ वहुत वडे-वडे व्यापारी। इन लोगोने वहुत आजिजी और नम्रतासे एक आवाज उठायी—जिसे इनसे नीचे परन्तु सर्वसाधारणसे वहुत ऊँचे लोगो और श्रेणियोने सुना और इस आवाजमे कुछ अपनापन और कुछ अपने स्वार्थकी प्राप्तिकी गन्ध उन्होने पायी और वे लोग भी पतंगोकी तरह काग्रेसके आशाके प्रकाशके लैम्पके चारो ओर मँडराने लगे।

उस समय प्रतिवर्ष काग्रेस होती थी, परन्तु जनसाधारणको उसके अस्तित्वका भी ज्ञान नही था। उस समय काग्रेसकी राजनीति जनताकी राजनीति न थी। न जनता उसे समझती थी और न जनताको वह राजनीति समझानेकी जरूरत ही समझी जाती थी।

स्वराज्यका नारा

कांग्रेसकी यह आवाज और भावना आहिस्ता-आहिस्ता मध्यम श्रेणीतक पहुँची, जो कि विदेशी साम्राज्यकी उन रिआयतोसे सन्तुष्ट नही हो सकती थी, जिन्हे ऊँची श्रेणीके लोग माँग रहे थे और जो केवल गिनेचुने आदमियोके लिए ही हो सकती थी। यह मध्यम श्रेणीके नागरिकलोग रिआयतोकी अपेक्षा ऐसे अधिकार चाहते थे जिनके लिए शासनके अधिकारोकी जरूरत थी। इस श्रेणीके नेता वालगगाधर तिलक थे। उन्होने आकर अग्रेजोके हाथसे शासन माँगनेका प्रश्न उठाया और पहले-पहल 'स्वराज्य हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है' की आवाज उठायी।

इस आवाजने राष्ट्रके शरीरमे एक स्फूर्ति पैदा कर दी परन्तु यह आवाज भी जनसाधारणकी नही थी। यह आवाज थी जनताके उस अगकी, जो कार्यमे छोटे-मोटे भाग लेता आया था और विदेशी साम्राज्यके विधानमे वेवस हो गया था। जनताके

इस अगको हम मध्यम श्रेणी कह सकते है। इस आवाजकी जडमें राजनीतिक भावना और जोश था और उसने शहरोमे रहनेवाली मध्यम श्रेणीकी जनताको खूब स्पर्श किया, परन्तु ग्रामोके रहनेवाले किसानो और मजदूरोतक वह आवाज नही पहुँची।

इसके वाद काग्रेसमे गाधीयुग आया। उसका आरम्भ हुआ सन् १९१९ के रौलट ऐक्टके विरोधसे। रौलट ऐक्टके विरोधमे जो आन्दोलन उठा उसका ढग ऐसा था कि वह जनताकी चीज वनने लगा। गाँव-गाँव काग्रेसका प्रचार होने लगा और स्वराज्यकी माँग जनताके सम्मुख रखी गयी। किसानोसे वात करते समय, उनके सम्पर्कमें आनेसे, उनके दृष्टिकोणसे भी वहुत-सी वाते कही गयी; परन्तु यह आन्दोलन भी वास्तविक अर्थोंमे देशकी जनताका आन्दोलन न वन सका और इसकी वजह स्पष्ट थी कि जनताके रोजमर्राके जीवनसे इसका कोई सम्वन्ध न था।

आर्थिक प्रश्नोंकी चर्चा

कांग्रेसके मचसे सवसे प्रथम हमे सन् १९३० मे जनतासे सम्वन्ध रखनेवाले आर्थिक प्रश्नोकी चर्चा सुनायी देती हे और यह चर्चा उठी महात्माजीद्वारा लार्ड इरविनके सम्मुख रखी गयी माँगोके रूपमे। यह माँग थी लगानको कमसे कम ५० फीसदी कम कर देनेकी। इस माँगका कारण यही था कि किसानोकी आवाज अव काग्रेसतक आने लगी थी। आर्थिक प्रश्नोकी ओर काग्रेसका ध्यान इस समयसे वढने लगता हे। करांची काग्रेसमे और उसके वाद लखनऊ काग्रेसमे प० नेहरूने जनतासे सम्वन्ध रखनेवाले प्रश्नोको काग्रेसद्वारा हाथमे लेनेकी आवश्यकतापर जोर दिया। इसका कारण यह था कि इसके पहले वारडोली (गुजरात) और यू० पी० मे किसानोकी समस्या राजनीतिक क्षेत्रमे आकर हमारी राष्ट्रीय लडाईका मुख्य हथियार वन गयी थी। हमे यह समझना पड़ेगा कि आर्थिक प्रश्नोकी उपेक्षा करनेसे काग्रेसकी शक्ति जो उस समय वढ गयी थी, वैसी न वन पाती।

इसके वाद काग्रेसी सरकारोका जमाना आता है। चुनावमे काग्रेसकी सफलताका श्रेय वहुत हदतक हमारे चुनावके मैनीफेस्टो या प्रतिज्ञापत्र को है। इस प्रतिज्ञा-पत्रद्वारा काग्रेसने जनताके आर्थिक जीवनमे सुधारोकी आशा दिलाकर उनके जीवनके विकासके मार्गमे आनेवाली रुकावटोको हटानेका आश्वासन दिया। परिणाममे हम काग्रेसको किसानोके सम्वन्धमे कानून वनाते हुए देखते है, परन्तु इन फुटकर कानूनोसे कहाँतक सफलता हो सकती है?

यदि काग्रेसका उद्देश्य हमारे राष्ट्रको उसके जीवनके मार्गमे आनेवाली वाधाओसे मुक्त कर उसे वास्तवमे विकास और जीवनके पथकी ओर ले जाना है जिसमे कि देशकी जनता जीवनका अधिकार पा सके, तो यह काम कुछ राजनीतिक नारो 'स्लोगन्स' की माला जपनेसे पूर्ण नही हो सकता। 'पूर्ण स्वराज्य', 'साम्राज्यवादसे आजादी' इन सव नारोका तभी कुछ अर्थ हो सकता है जव हमारे सामने अपने समाजका ऐसा कोई रूप हो जिसमे जनता आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक क्षेत्रमें आत्मनिर्णयके अधिकारका

उपयोग कर सके, कांग्रेस किसी ऐसे रचनात्मक कार्यक्रमको देशके सामने प्रोग्रामके तौरपर रख सके और हमारे नेताओंके विचार इस विषयमें स्पष्ट हों। इसके बिना न तो कांग्रेस को और न तो कांग्रेस-सरकारको ही सफलता मिल सकेगी, उल्टे वे अपना प्रभाव खो बैठेंगे।

हमारे सामने आनेवाले आर्थिक प्रश्न दिन-प्रति-दिन गम्भीर होते जाते हैं और पुरानी सामाजिक व्यवस्था समाजकी अधिकांश जनताके जीवनको असम्भव बनाये दे रही है। इस समय यदि कांग्रेस देशकी समस्याओंको हल करनेका दावा करती है तो उसके लिए आवश्यक है कि एक नयी सामाजिक और आर्थिक व्यवस्थाका आदर्श छटपटाती हुई जनताके सामने रखे। पुरानी सामाजिक व्यवस्था जो कि अनुपयुक्त हो चुकी है यदि कांग्रेस उसीकी लीपापोतीमें लगी रहेगी, तो वह भी उस पुरानी व्यवस्थाकी ही तरह अनुपयुक्त हो जायगी। उसका नेतृत्व समाप्त हो जायगा।

अब केवल जेलखाने भर देनेकी नीतिसे ही काम नहीं चलेगा। जहाँ हमारा आन्दोलन पहुँच चुका है उससे आगे वह तभी बढ सकेगा जब हम जनताके जीवनको असम्भव बना देनेवाले प्रश्नोंको हाथमें लेंगे। हमें समाजमें मौजूदा श्रेणियोंकी स्थिति और मौजूदा व्यवस्थामें उनके हितोंके विरोधको समझकर उनका उपाय करना होगा और इस दृष्टिसे ही आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक क्षेत्रमें जनताका राज्य कायम करनेका कार्यक्रम लेकर चलना होगा।

यदि हम जनताकी शक्तिके बलपर साम्राज्यवादसे रिआयतें ऐंठकर उससे समझौता करना चाहते हैं तो एक बात है। उसके लिए हमारा मौजूदा कार्यक्रम ठीक हो सकता है, परन्तु यदि वास्तविक पूर्ण स्वतन्त्रता हमारा लक्ष्य है तो हमें जनताके हाथमें शक्ति देने और उसे अपनी आर्थिक समस्याएँ हल करनेका अधिकार देना होगा।

समयकी माँग

हमने शिक्षाके क्षेत्रमें एक कार्यक्रमकी बुनियाद रखी है। इसी प्रकार हमें आर्थिक क्षेत्रमें भी एक मौलिक और साहसपूर्ण परिवर्तनकी बुनियाद रखनी होगी। हमारे उद्योग व्यवसाय किस प्रकार चलेंगे, उनकी व्यवस्था और संगठन किस प्रकार होना चाहिये कि मेहनत करनेवाली जनता अपने परिश्रमका पूरा फल पा सके और उत्पत्ति (पैदावार) के साधनोंपर उसका अधिकार रहे, किस प्रकार जनतामें प्रत्येक व्यक्तिको एक बराबर आर्थिक सामाजिक और राजनीतिक अधिकार होंगे, किस प्रकार जनताकी सभी श्रेणियोंके व्यक्तियोंको सभी क्षेत्रोंमें जीविका प्राप्त करने, उन्नति और विकास करनेका समान अधिकार होगा। संक्षेपमें कहा जा सकता है कि हम समाजका संगठन किस प्रकार एक ऐसे आदर्शपर कर सकेंगे जिसमें बेकारी, भूख, शोषण अत्याचार आदि नहीं होंगे। ये हैं वास्तविक प्रश्न जिनका सम्बन्ध देशकी जनताके जीवनसे है और जिन्हें हल करनेकी ओर कांग्रेसको कदम बढाना चाहिये। यदि कांग्रेस इन प्रश्नोंको हाथमें लेनेसे कतरायेगी तो उसका अन्त हो जायगा।

आज हम कांग्रेसको अपने आन्दोलनके मार्गमें उस मंजिलपर खड़ा पाते हैं जहाँ

उसमें आगे वढनेकी इच्छा तो है परन्तु वह अपने-आपको उसके योग्य नही पाती । स्पष्ट शब्दोमे कहा जायगा कि वह आन्दोलनको आगे चलानेके लिए कोई हथियार नही खोज पाती । इस हथियार न खोज पानेका अर्थ वास्तवमें है उद्देश्य निश्चय न कर पाना ।

काग्रेसकी शक्ति है जनता; और जनता आज सोयी हुई नही वह सन्तुष्ट भी नही । जनता आज जितनी असन्तुष्ट और सचेत है, वैसी कभी नही थी । जनता अपनी समस्याओं-को लेकर व्याकुल है । यदि जनताकी इन समस्याओंको काग्रेस अपना लेती है तो वह जनताकी प्रतिनिधि रह सकेगी और जनताकी ये समस्याएँ उसका हथियार वन जायेंगी और इनका हल उसका उद्देश्य वन जायगा, परन्तु यदि काग्रेस इन सव महत्त्वपूर्ण समस्याओसे पल्ला खीचकर ही अपना अस्तित्व कायम रखना चाहेगी, तो विना ईंधनकी आगकी तरह वह जल्द ही बुझ जायगी ।

काग्रेसके भविष्य और अस्तित्वके वारेमे ये प्रश्न है जिनकी ओर हमारे नेताओंका ध्यान जाना चाहिये और इस समय आवश्यकता है कि काग्रेस एक ऐसी योजना तैयार करे, जिसमे इन प्रश्नोका स्पष्टीकरण हो और जनता उसे समझ सके ।[१]

समझौता विरोधी सम्मेलन

पाठकोको मालूम होगा कि श्री सुभापचन्द्र वोस रामगढमे समझौता विरोधी सम्मेलन करने जा रहे है । वर्किंग कमेटीने अपने हालके प्रस्तावमे यह वात साफ कर दिया है कि यह युद्ध साम्राज्यशाही युद्ध है और भारतवर्प पूर्ण स्वाधीनतासे कमकी कोई चीज स्वीकार नही कर सकता । वर्किंग कमेटीके इस प्रस्तावमे स्पष्ट शब्दोमे यह भी कह दिया गया है कि डोमिनियन स्टेट्स साम्राज्यान्तर्गत स्वराज्य भारतवर्षको लागू नही होता, क्योकि यह पद एक प्राचीन सभ्य जातिके उपयुक्त नही है और इससे भारतवर्ष कई तरहसे ब्रिटिश राजनीति और आर्थिक सगठनसे वँध जावेगा । उपर्युक्त प्रस्तावमे यह भी कहा गया है कि भारतवासियोको ही अपने भाग्यके निर्णय करनेका अधिकार है और वही स्वराज्य पंचायत (Constituent Assembly)के द्वारा अपना विधान तैयार कर सकते है और ससारके दूसरे देशोके साथ जैसा चाहे वैसा सम्वन्ध स्थापित कर सकते है । साधारण रीत्या यह आशा की जाती थी । इस प्रस्तावके पास होनेके वाद सुभापवावू समझौता विरोधी सम्मेलनकी निरर्थकता और अनावश्यकताको मान लेगे, किन्तु वात ऐसी नही हुई । वह अव भी यह कहनेसे वाज नही आते कि वर्किंग कमेटी ब्रिटिश गवर्नमेण्टसे समझौता कर लेगी । समझमे नही आता कि वर्किंग कमेटी क्या करे जिससे सुभाप वावूके सन्देहका निराकरण हो । किन्तु क्या वास्तवमे उनको अव भी शक है कि हमारे नेता अपने ही निर्णयके विरुद्ध आचरण करेगे अथवा केवल 'हाई कमाण्ड'के

१. सघर्प ३ दिसम्वर, १९३९

विरुद्ध अपना प्रचार करनेकी गरजसे ही यह वात कही जाती है। उनकी 'इस प्रकारकी भविष्यवाणी दो वार गलत साबित हो चुकी है। गत वर्ष त्रिपुरीके पहले उन्होने वर्किंग कमेटीपर फिडरेशन (सघ-शासन) के प्रश्नपर ब्रिटिश गवर्नमेण्टसे साजिश करनेका दोषारोपण किया था। जव आरोपको प्रमाणित करनेके लिए उनको चुनौती दी गयी तव उन्होने यह कहा कि उनका मतलव यह नही था कि वह स्वयं इस वातपर विश्वास करते है। इसी तरह वह युद्ध छिडनेके वाद कहते रहे कि काग्रेसके लोग वजारते नही छोड़ेंगे और जोककी तरह अपनी कुर्सियोमे चिपके रहेगे। यह भविष्यवाणी भी सच न निकली। खेदकी वात है कि सुभापवावू ऐसे उच्चकोटिके नेता अकारण ऐसी बाते वार-बार करते है। इसके लिए कोई आधार उनके पास नही है। वर्किंग कमेटीके हालके प्रस्तावके बाद तो इस मामलेमे तनिक भी सन्देह नही रह जाता। प्रस्तावके शव्द विलकुल साफ है। किसी किस्मकी गुजाइश वाकी नही रखी गयी है। फारवर्ड व्लाकके एक वड़े हिमायती प्रोफेसर रगाका कहना है कि वर्किंग कमेटीका हालका प्रस्ताव सुभापवावूकी एक वहुत वड़ी जीत है। इसका अर्थ यह है कि सुभापवावूके निरन्तर प्रचारके कारण ही वर्किंग कमेटीको इस तरहकी स्पष्टवादिताके लिए वाध्य होना पडा है। यदि यह ठीक है तो क्यो उस प्रस्तावपर अविश्वास प्रकट कर इस वडी जीतको हारमे परिवर्तित करनेकी चेष्टा की जा रही है।

समझौतेकी गुंजाइश नहीं

मेरा यह वरावर विचार रहा है कि समझौतेके लिए आज कोई गुँजाइश नही है। हो सकता है कि हमारे नेता डोमिनियन स्टेट्ससे सन्तुष्ट हो जाते, पर आजकी स्थितिमे मैं यह माननेको तैयार नही हूँ कि वह इससे कमपर भी समझौता कर लेते। आज काग्रेसकी शक्ति वहुत वढ गयी है। मन्त्रिपद छोडनेसे एक वैधानिक संकट उपस्थित हो गया है। शासन-विधानको स्थगित कर ब्रिटिश गवर्नमेण्ट संसारको यह धोखा नही दे सकती कि भारतमे शान्ति विराजती है और यहाँके लोग उसके शासनसे सन्तुष्ट है। फिर युद्धकी अवस्था है। ऐसे समय तटस्थ राष्ट्रोकी सहानुभूति और नैतिक सहायताका भी वड़ा महत्त्व हुआ करता है। तटस्थ राष्ट्र, जिनका स्वार्थ अटका नही है, किसी ऊँचे आदर्शके लिए ही किसी लडनेवाले राष्ट्रको अपनी नैतिक सहायता देनेपर तैयार हो सकते हैं। काग्रेसने अपने वक्तव्यद्वारा ससारके सम्मुख अपना दावा रखा है और ससारको वतानेकी चेष्टा की है कि यह युद्ध तभी नैतिक दृष्टिसे न्याययुक्त है जब ब्रिटिश गवर्नमेण्ट भारतवर्षकी स्वाधीनताको स्वीकार करे।[1]

---

1. The Congress must press the National Demand on the authorties and insist on his immediate fulfilment.... Let not our leaders who are now deliberating at Wardha ask for a whit less than what is our inherent birthright. If they are called on to negotiate let them do so honourably (Forward Bloc 9 Sept. 1939)

इन विविध कारणोसे काग्रेसके नेता आज किसी वातसे सन्तुष्ट नही हो सकते, किन्तु अग्रेजोपर भी ऐसा दवाव नही पडा है कि वह कोई वडी वात करनेके लिए तैयार हो जावे। दुनियाको वह दिखलाना अवश्य चाहते है कि अपनी ओरसे वह हिन्दुस्तानको सन्तुष्ट करनेके लिए हर तरहसे तैयार है। किन्तु काग्रेस भारतके अल्प समुदायोके साथ न्याय करनेको तैयार नही है और इसी कारण कोई निर्णय नही हो पाता। यही वजह है कि समझौतेकी चेष्टा दो वार विफल हो चुकी है और अव तो एक प्रकारसे इसके लिए दरवाजा ही वन्द हो गया है। समझौतेकी वातचीतके लिए भी गाधीजीको दोष दिया गया है। कहा जाता है कि वह दिल्ली-तीर्थ-यात्राके लिए वडे उत्सुक रहते है, पर यह वात कम लोग जानते होगे कि युद्धके आरम्भ होनेपर सुभाष वावूके पत्र 'फारवर्ड ब्लाक' ने ६ सितम्वरके अकमे अपने अग्रलेखमे वर्किङ्ग कमेटीसे अनुरोध किया कि वह राष्ट्रीय मॉगको अधिकारियोके सामने पेश करे और उसकी तात्कालिक पूर्ति पर जोर दे। इस लेखमे यह भी कहा गया था कि यदि हमारे नेता वातचीत करनेके लिए आमन्त्रित किये जावे तो वह निमन्त्रण स्वीकार करे, किन्तु सम्मानपूर्वक वातचीत करे।' एक वर्ष पहले मालदामे जो जिला राजनीतिक काफ्रेस हुई थी उसमे भी इस प्रकारकी वात कही गयी थी। यह स्पष्ट है कि सुभाष वावू वर्धाकी आल इण्डिया काग्रेस कमेटीकी वैठकतक अधिकारियोसे वातचीत करनेके विरुद्ध नही थे। उनकी शिकायत इतनी ही थी कि वर्किंग कमेटीने अपना वक्तव्य देनेमे देर कर दिया; वल्कि यदि यह कहा जाय कि यही उनका प्लैन था तो अनुचित न होगा। 'अल्टिमेटम' देनेकी योजनाके भी अन्तर्गत यही वात थी। फिर गाधीजीने वासरायके निमन्त्रणको स्वीकार कर कौन-सा अपराध किया? वह तो सुभाष वावूकी नीतिका ही अनुसरण कर रहे थे।

इसमे सन्देह नही कि काग्रेसमे ऐसे व्यक्ति है जो सघर्षको वचाना चाहते है और समझौतेके लिए उत्सुक है, उनकी चले तो वह छोटा-मोटा सौदा करके भी इस सकटका अन्त कर दे, किन्तु आजकी अवस्थामे ऐसे व्यक्तियोका समूह काग्रेसको वहुत प्रभावित नही कर सकता। वे काग्रेसमे समझौतेके प्रस्तावको लानेका भी साहस नही कर सकते। नेताओपर वह वरावर दवाव डालते रहते है, पर वस्तुस्थिति उनकी वहुत सहायता नही करती, इसलिए उनकी चेष्टाएँ विफल होती है और उनकी इच्छाओकी पूर्त्ति नही हो पाती। पर आजकी अवस्थामे व्रिटिश गवर्नमेण्टपर न कोई ऐसा दवाव ही है कि वह कोई सार पदार्थ देना स्वीकार करे और न काग्रेस ही किसी छोटी चीजको लेना कवूल कर सकती है।

अनुचित मार्ग

मैं यह मानता हूँ कि ऐसे समूहकी काररवाइयोसे हमको सतर्क रहनेकी आवश्यकता है और उनका विरोध करना भी आवश्यक है, पर इसका यह तरीका नही है कि हम वर्किंग कमेटीको किसी साजिशका दोषी ठहरावे और उसके खिलाफ जिहाद वोल दे। वर्किंग

१ देखिये पृष्ठ सं० ९३ की टिप्पणी।

कमेटीने तो अपनी स्थिति स्पष्ट कर दी है । हम इस हालके प्रस्तावके हवालेसे ही समझौता करनेवालोका मुँह वन्द कर सकते हैं । समझौते और सौदा करनेकी प्रवृत्तिको हम उचित उपायोका अवलम्बन करके ही दवा सकते है । गाली-गलौजसे यह काम सिद्ध होनेवाला नही है । उससे तो उल्टे काम विगडता है । एक ओर जहाँ हमारा कर्त्तव्य है कि हम इस प्रवृत्तिको रोके दूसरी ओर हमको यह भी चाहिये कि सग्रामकी तैयारी करे । जन-आन्दोलनको पुष्ट करके ही हम साम्राज्यविरोधी शक्तियोको वढा सकते है । इसी प्रकार वह वातावरण प्रस्तुत हो सकता है जिसके होते हुए राष्ट्र और काग्रेस अपने आदर्शसे भ्रष्ट नही हो सकती । इसके लिए अविश्वास और सन्देहका वातावरण घातक है । वरावर यह कहनेसे कि काग्रेस लडेगी नही और हमारे नेता सुलहके लिए उत्सुक है हम काग्रेसके प्रति जनतामे अविश्वासको वढाते हैं । इसका परिणाम यह होता है कि जनता निरुत्साह हो जाती है और युद्धकी तैयारीसे हट जाती है । ऐसी शिक्षा और प्रचारका एक ही परिणाम होता है कि कार्यकर्ता असली कामसे हट जाते हैं । वह केवल अपने नेताओको अपशब्द कहकर अपनी उग्रताका परिचय देना पर्याप्त समझते है । नेताओकी पोल खोलनेके प्रयत्नमे वह अपनी ही पोल खोलते हैं । जो लोग इसपर विश्वास करनेको तैयार हो जाते हैं कि काग्रेस नही लडेगी वह इसपर विश्वास सहसा नही करते कि सुभाप वावू और उनका दल लडेगा और यदि ऐसा विश्वास भी करते हैं तो भी यह वात उनके मनमें नही वैठती कि केवल उनके लडनेसे कोई देशव्यापी प्रभावशाली आन्दोलन हो सकता है । सुभाप वावूने व्रिटिश गवर्नमेण्टको चेतावनी दी है कि देश वर्किंग कमेटीके साथ नही है इसलिए उन्हे उससे किसी प्रकारका समझौता नही करना चाहिये । किन्तु देश जानता है और गवर्नमेण्ट जानती है कि किसके आह्वानपर राष्ट्र क्रान्तिपथपर अग्रसर हो सकता है । नतीजा यह होता है कि इस शास्त्रार्थसे केवल विरोधियोकी ही शक्ति वढती है, कुछ राष्ट्रीय कार्यकर्ता गलत रास्ता पकड लेते है, प्रस्तुत कार्यसे पराङमुख हो मौखिक शास्त्रार्थको ही राष्ट्रकी सवसे वडी सेवा समझते हैं ।

इस समय विचारकी वडी अस्त-व्यस्तता है । लोगोके दिमाग साफ नही हैं, विविध प्रश्नोमे वह उलझे हुए है । हरएक अपनी ओर घसीटता है और सवसे वडा उग्रवादी होनेका दावा पेश करता है । शव्दोका मायाजाल भी विचित्र है । 'स्लोगन' और नारे वड़े प्रभावशाली होते है । यदि नारे ठीक हुए तो यह वडा अनर्थ भी करते हैं । इसलिए स्लोगन देनेका काम वडी जिम्मेदारीका है । आजकल तरह-तरहके नारे चल पडे है । यह वर्तमान अस्त-व्यस्तताको और भी वढाते हैं । एक ही वातको वार-वार दुहरानेसे लोग उसकी सच्चाईके कायल हो जाते हैं । आजकल इस तरहका गलत प्रोपेगेंडा (प्रचार) वहुत हो रहा है । जो इस कलामे जितना ही सिद्धहस्त हो उसे उतनी ही तात्कालिक सफलता मिलती है । इसे कौन पूछता है कि सत्यता किधर है । सत्य भी मौजूद रहकर आज विजयी नही रह सकता, उसको भी अपने प्रचारके लिए व्यवस्था करनी पड़ती है । ऐसी हालतमे हमारी राष्ट्रीय कमेटियोको ठंडे दिलसे सव वातोपर विचार करना चाहिये और छानवीन करके ही किसी निर्णयपर पहुँचना चाहिये केवल जोशसे कुछ नही होता है ।

बुद्धिकी कसौटीपर कसकर ही तथ्यका निर्णय हो सकता है। अकारण सबपर अविश्वास और सन्देह करनेसे कोई लाभ नही होता और राजनीतिक जीवन भी कटु और दुखद हो जाता है। हमको वस्तुस्थितिको ठीक-ठीक समझकर ही अपना कर्त्तव्य निर्धारित करना चाहिये। वस्तुस्थिति यदि प्रतिकूल है तो उसको यथासाध्य बदलनेकी चेष्टा करनी चाहिये किन्तु जो अपरिहार्य है उसके लिए शोक करनेसे क्या लाभ।

आजकी स्थिति यह है कि जबतक समग्र कांग्रेस आगे नही बढ़ती और गाधीजी आगे नही बढते तबतक कोई प्रभावशाली राष्ट्रव्यापी आन्दोलन नही हो सकता। कांग्रेसकी नीतिकी घोषणा हो चुकी है। उसपर अकारण सन्देह करना अनुचित है और अपनी शक्तिको क्षीण करना है। कांग्रेसको अग्रसर करनेका प्रत्येक उपाय करना चाहिये। वह आनेवाले संग्रामकी तैयारीमे लगनेसे ही होगा, एक दूसरेको दोषी ठहराने से नही।

सम्मेलनका उद्देश्य

समझौता विरोधी सम्मेलनके सम्बन्धमे सबसे बड़ी आपत्ति यह है कि इसका गूढ उद्देश्य हमको काग्रेसकी विरोधीसंस्था बनाना है। सुभाष बाबू १० फरवरीके 'फारवर्ड ब्लाक' के अंकमे लिखते है कि काग्रेसमें सड़ाईन आ गयी है, इसे हमें रोकना है। उनका कहना है कि काग्रेस समझौते कर लेगी और इस तरह कांग्रेस नामका उपयोग करनेके हकको खो बैठेगी, क्योकि वह ऐसा करके अपने आदर्शसे भ्रष्ट हो जावेगी। इस समय वामपक्ष ही कांग्रेसका वास्तविक कर्णधार होगा और उसको दक्षिण पक्षके लोगोको कांग्रेससे पृथक् करनेका अधिकार होगा। उनको डर है कि दक्षिण पक्ष कांग्रेसमें अपने फर्जी बहुमतके बलपर काग्रेससे न निकलेगा और उस समय कांग्रेसके दो टुकड़े हो जावेगे और जनताको फैसला करना होगा कि वह किसको अपनावे। वह एक मुकाबलेकी दूसरी कांग्रेस खडी करना चाहते है। आजकी कांग्रेसमे उनको बैठनेका हक नही है, इसलिए वह अपनी दूसरी कांग्रेस बनानेकी फिक्रमे २४ फरवरीके अंकमे वह लिखते है कि "रामगढ़ कांग्रेसके बारेमे यदि वामपक्षी परेशान न हो तो उससे आसमान फूट न पड़ेगा। अच्छा हो यदि वह रामगढ कांग्रेसको शुद्ध दक्षिण-पक्षकीकांग्रेस बनानेमें सहायता दें। इस साल कांग्रेस पण्डालके बाहरकी घटनाएँ अधिक जरूरी होंगी। रामगढ़मे अखिल भारतीय समझौता विरोधी सम्मेलन होने जा रहा है। यदि इसको सफलता मिली तो राजनीतिक दृष्टिसे कांग्रेसके महत्त्वको यह ढक देगा' यह शब्द विचारणीय है। इससे स्पष्ट है कि सुभाष बाबू काग्रेसके महत्त्वको घटाना चाहते है और उसको क्षीण और नष्ट कर एक प्रतिद्वन्द्वी संस्था खड़ी करना चाहते है। सुभाष बाबू काग्रेसके प्रति सदा अपनी अटल श्रद्धा प्रगट किया करते थे। उनका झगड़ा 'हाई कमाण्ड' से था, न कि काग्रेससे। आरम्भमे वह गाधीजीको भी इस झगड़ेमे अलग रखते थे, उनके लिए आदरका भाव था। उनमे और वर्किंग-कमेटीके सदस्योमे वह फर्क किया करते थे। धीरे-धीरे यह फर्क भी मिट गया है और काग्रेसके प्रति वह अपनी पुरानी श्रद्धा भी खो बैठे है। कोई भी व्यक्ति चाहे कितना बड़ा क्यो न हो कांग्रेस सस्थासे छोटा है। हम व्यक्तिके पुजारी नही है।

हम संस्थाकी महत्ताको मानते हैं साथ ही साथ हमे न भूलना चाहिये कि संस्थाका नष्ट करना सहल हो सकता है सस्थाका वनाना उतना सुगम नही । हमारा तो विश्वास है कि कांग्रेसमे एक सच्चे साम्राज्यविरोधी वननेकी पूरी ताकत है। कांग्रेसके क्रमिक विकासका इतिहास इसका साक्षी है । हमारे इस कथनका यह आशय नही है कि कांग्रेसके दूसरे रास्तेपर जानेकी सम्भावना ही नही है, किन्तु इसकी आशा कम है । इसके अतिरिक्त जवतक यह वात स्पष्ट नही हो जाती तवतक अपने तर्काश्रित विश्वासको छोडना भी अनुचित होगा । इस सम्भावनाको दूर करनेका अच्छा उपाय यह नही है कि हम काग्रेसका विरोध करने लगे और पुरानी इमारतको ढहानेकी कोशिश करे, किन्तु हमे उचित साधनोसे काम लेकर खतरेको दूर करने का उपाय करना चाहिये ।

एक बुनियादी सवाल

फारवर्ड व्लाकके एक दूसरे नेता श्री निहारेन्दु दत्त मजूमदार तो प्रसन्न होगे यदि इस सम्मेलनसे एक वामपक्षी (left) काग्रेसका जन्म हो । उन्होने मौजूदा काग्रेसके सामने कुछ शर्त्ते रखी हैं । एक शर्त यह है कि वर्किंग-कमेटीमे वामपक्षियोका वहुमत हो । जव काग्रेसमे दक्षिणपक्षका वहुमत है तो उनके सामने यह शर्त रखना कि तुम समस्त नैष्ठिक अधिकार वामपक्षको सौप दो, कहाँतक उचित है और इसे कौन माननेको तैयार होगा ? ऐसी असम्भव शर्त रखनेके माने यही होते है कि आप किसी-न-किसी वहानेसे एक नयी काग्रेस वनाना चाहते है । हम जानना चाहते है कि क्या इसी तरह काग्रेसको दो टुकडोमे वाँटकर वामपक्ष प्रवल हो सकता है । यह तो साम्राज्यविरोधियोको कमजोर करनेकी योजना है, इससे तो राष्ट्रीय सग्राम निश्चय ही दुर्वल पड जायगा । यह एक वुनियादी सवाल है । इसकी हम उपेक्षा नही कर सकते । इस समय सत्याग्रह होता है या नही इस प्रश्नका उतना महत्व नही है जितना इस नये खडे किये सवालका है । जिन लोगोका काग्रेस संस्थाके प्रति सद्भाव है, जैसा कि काग्रेस समाजवादियोका और रायवादियोका है—वह ऐसी दशामे समझौता विरोधी सम्मेलनको एक साधारण वात समझकर हँसीमे नही टाल सकते । यदि सम्मेलनके पीछे यह गूढ उद्देश्य न होता तो हम किसी-न-किसी तरह इसे वर्दाश्त कर लेते और उतने चिन्तित न होते । किन्तु इस स्पष्टीकरणके वाद कौन कह सकता है यह सम्मेलन काग्रेसके अस्तित्वके लिए खतरनाक नही है । सम्मेलनके प्रमुख काग्रेस-वर्किंग-कमेटीको ब्रिटिश साम्राज्यवादका दोस्त और साथी कहकर वदनाम करते है जो काग्रेसके प्रति विरोधके भावको जगाता है ।

श्री अन्नपूर्णयाका कहना है कि मन्त्रिपद ग्रहणके विरोधमे इस प्रकारका एक सम्मेलन हुआ था, तव आज समझौता विरोधी सम्मेलनका क्यो विरोध किया जाता है । यह मिसाल ठीक नही है क्योकि काग्रेसमे मन्त्रिपद लिया जाय या नही इसपर विवाद होनेवाला था । देशके सामने प्रश्न था कि मन्त्रिपद लिया जाय या शासन विधानमे संकट उत्पन्न किया जाय । यह प्रश्न अनिवार्य हो गया था और इसका उत्तर देना जरूरी था । ऐसी अवस्थामे जो लोग मन्त्रि पद ग्रहणके विरुद्ध थे उनका इसके विरुद्ध आवाज उठाना

स्वाभाविक और आवश्यक था। किन्तु समझौतेके सम्बन्धमे यह बात नही कही जा सकती। कोई भी व्यक्ति समझौता करानेके लिए काग्रेसमे प्रस्ताव नहीं ला रहा है। उलटे वर्किग कमेटी अपनी नीतिकी घोषणा कर यह बात स्पष्ट कर देती है कि पूर्ण स्वाधीनतासे कम कोई वस्तु स्वीकार नही की जा सकती। इसलिए और खासकर इस कारणसे कि सम्मेलन बुलानेका उद्देश्य केवल समझौतेकी मनोवृत्तिको दबाना ही नही है, किन्तु काग्रेसको तोडना है और उसके बदलेमे दूसरी संस्था खड़ी करनी है हम इस सम्मेलनका विरोध करनेके लिए विवश हो गये है।

कम्युनिस्टोंकी चुप्पी

श्री मानवेन्द्रनाथराय और श्री जयप्रकाशनारायणने अपने-अपने दलकी स्थिति स्पष्ट कर दी है। कम्युनिस्ट अभीतक चुप है। इसका रहस्य मालूम नहीं होता। उनको एक वक्तव्य देकर अपनी स्थिति स्पष्ट कर देना चाहिये। ऐसे महत्वके प्रश्नपर चुप रहना किसी राजनीतिक दलको शोभा नही देता। यह उसके राजनीतिक दिवालियेपन-की निशानी है या अवसरवादिता है। कहा जाता है कि इस विषयमे भी कम्युनिस्ट तटस्थ रहना चाहते है। दो पक्षमे जब कोई पक्ष मान्य न हो तब तटस्थ रहा जाता है। इस प्रश्नपर तटस्थ रहनेके अर्थ होगे काग्रेसका विरोध करना। तो क्या हम समझें कि कम्युनिस्टोने अपने सयुक्त मोर्चेकी नीतिको छोड़ दिया है और अपनी पुरानी नीति फिरसे अख्तियार कर ली है? आशा है वह अपनी राय जाहिर कर लोगोको तरह-तरहके अटकल लगानेका मौका न देगे।

आजकी स्थिति बडी भयावह है। जहाँ राष्ट्रकी शक्ति बढी है वहाँ नये-नये खतरे भी पैदा हो रहे है। हमको सावधानीसे काम लेना है। पूर्वापरका अच्छी तरह विचार करके ही हमको अपना मार्ग स्थिर करना है। आशा है, काग्रेस कार्यकर्त्ता इस प्रश्नकी विवेचना करेंगे और किसी ऐसे निर्णय पर पहुँचेंगे जिससे राष्ट्रकी क्षति न हो।[१]

पाकिस्तान की योजना देशके लिए आत्मघातक है

देशके बँटवारेका फैसला केवल धार्मिक अल्पसंख्यकोपर नही छोडा जा सकता। मुसलिम-लीगने अपने लाहौरके इजलासमे हिन्दुस्तानके बँटवारेकी एक योजना मंजूर की है। इसे आमतौरसे 'पाकिस्तान' कहते हैं। मुसलिमलीगका कहना है कि हिन्दू और मुसलमान दो कौमें है, इनका राष्ट्र नहीं हो सकता, इसलिए हिन्दुस्तानमें धार्मिक समुदायके आधारपर तीन स्वतन्त्र राष्ट्र होने चाहिये। लीग हिन्दुस्तानकी एकता और और अखण्डताको नही स्वीकार करती। कांग्रेस इस माँगका विरोध करती है, किन्तु महात्माजीने कहा है कि यदि स्वराज्य पचायतके मुसलिम प्रतिनिधि इस माँगपर इसरार

१. 'संघर्ष' १८ मार्च १९४० ई०

करेंगे तो विवश होकर उसे स्वीकार करना पड़ेगा । महात्माजीका ख्याल है कि मुसलमान स्वयं इस योजनाका विरोध करेंगे । स्वराज्य पंचायतके क्या 'अधिकार होंगे, कौनसे प्रश्नोका निर्णय केवल मुसलिम प्रतिनिधियोके हाथ मे होगा आदि बाते अभी तक साफ नही की गयी है । मेरी रायमे प्रत्येक प्रश्न मुसलिम प्रश्न नही बनाया जा सकता । हिन्दुस्तानकी एकता और अखण्डताका प्रश्न ऐसा प्रश्न नही है कि इसका निर्णय किसी अल्प समुदायके हाथमे छोड़ दिया जाय । इस प्रश्नका सम्बन्ध मुसलमानोके अतिरिक्त अल्प-समुदायोसे भी है । बहुसख्यक समुदाय भी इस प्रश्नकी उपेक्षा नही कर सकता । ऐसी अवस्थामें इसका निर्णय स्वराज्य-पचायतके बहुमतके आधारपर ही होना चाहिये ।

मुसलमान पृथक् राष्ट्र नहीं

इतना ही कहना पर्याप्त न होगा, इसलिए हम इस प्रश्नकी मीमासा करेंगे । धर्मके आधारपर राष्ट्र नही होते । राष्ट्रकी सबसे बडी पहचान भाषा है । हिन्दुस्तानके मुसलमान एक भाषा नही बोलते । वह प्रान्तोमे बँटे है और अपने-अपने प्रान्तकी भाषा बोलते हैं । बगालके मुसलमान और तामिल मुसलमानोमे धर्मको छोडकर कोई समानता नही है । बंगालका मुसलमान बंगाली हिन्दूके कही ज्यादा नजदीक है ।

हिन्दू और मुसलमानकी नस्ल एक है। संस्कृतिमे भी काफी सम्मिश्रण है । मुसलमानोकी एक भाषा है और हिन्दुओकी दूसरी ऐसी नही है । दोनो एक ही भाषा बोलते है । भाषाके आधारपर यदि राष्ट्र बनते हो तो कहना होगा कि भारतवर्षमे बंगाली, पजाबी, सिन्धी, तेलगू गुजराती आदि राष्ट्र है । यदि राष्ट्रको आत्मनिर्णयका अधिकार दिया जाय तो इन विविध जातियोको यह अधिकार देना होगा न कि हिन्दुओ या मुसलमानोको । इस रीतिके अनुसार यदि पंजाबके लोग अलग होना चाहे तो हो सकते है, किन्तु इसका फैसला बहुमतसे नही हो सकता; क्योकि प्रश्न असाधारण है । जबतक एक बहुत बडी तादाद इस माँगका समर्थन न करे पृथक् होनेका अधिकार देना अनुचित होगा ।

रूसका उदाहरण

इस सम्बन्धमे रूसका उदाहरण पेश किया जाता है, लेकिन हम भूल जाते है कि रूसके साम्राज्यमे कजक, उजबेग, बशकिर, तातार आदि भिन्न-भिन्न नस्लें थी जिनके देश अलग-अलग थे और जो जीतकर रूसी साम्राज्यमे दाखिल कर लिये गये थे और जिनपर जारका हर तरहका अत्याचार होता था । उनकी सस्कृतिको कुचल दिया गया था और उनकी कोई स्वतन्त्र सत्ता न थी । वह बराबर जारके विरुद्ध बगावत करते थे और उनमे साम्राज्यसे अलग होनेके लिए आन्दोलन चलते थे । ऐसी स्थितिमे लेनिनने इनको स्वभाग्य-निर्णयका अधिकार देना उचित समझा, लेकिन लेनिन साथ-साथ यह भी कहा करता था कि कर्तव्य तो एक साथ रहना बताता है । लेनिनके शब्द यह थे कि हम पृथक् होनेके विरुद्ध है, किन्तु पृथक् होनेका अधिकार देनेके पक्षमे है ।

यह जातियाँ रूसियोंको अविश्वासकी दृष्टिसे देखती थी; क्योंकि रूस (Great Russia) मे प्रतिक्रियावादियोका बोलवाला था । इनके विश्वासको प्राप्त करनेके लिए लेनिनके लिए यह आवश्यक था कि वह पृथक होनेके अधिकारको भी स्वीकार कर लेता । यहाँपर यह कहना आवश्यक है कि इस प्रश्नपर सोशल डेमाक्रेटोंमे एकमत न था । रोजालक्जेमवर्ग इस नीतिका कट्टर विरोध करती थी । वह स्वभाग्यनिर्णयके सिद्धान्तको खतरनाक समझती थी । उनका कहना था कि इससे पूँजीपतियोका ही आधिपत्य वढता है । लोकमतको प्रभावित करनेके लिए पूँजीपतियोके पास हजार तरीके हैं । जिस तरह वोट लेकर समाजवादकी स्थापना नही हो सकती उसी तरह उनका कहना था कि इस प्रकार हम जनताको केवल अपनी-अपनी जातिके प्रतिगामी पूँजीवादियोके हाथ सौंप देंगे । इस अधिकारके वर्तनेसे रूस छिन्न-भिन्न होने लगेगा । समाजवादका इनसे कोई उपकार न होगा, उल्टे क्रान्ति-विरोधी शक्तियाँ उत्तेजित होगी । अन्तमे ऐसा हुआ भी । फिनलैण्ड और युक्रेनके पूँजीवादियोने क्रान्तिका विरोध करनेके लिए जर्मनीसे सहायता माँगी और विवश होकर सोवियट रूसको फौज भेजकर हस्तक्षेप करना पड़ा । सिद्धान्तमे तो पृथक होनेका हक मान लिया गया, पर जब कभी किसी जातिने इस हकको हासिल करनेकी चेष्टा की तो उसे दवा दिया गया । इस तरह हम देखते है कि सोवियत रूसमे इस नीतिपर कभी अमल नही किया गया । यह तो अवसरवादिताकी नीति थी और उससे कुछ काम भी निकला, किन्तु वास्तविक नीति तो सदा यही थी कि कोई सोवियट संघसे वाहर न जाने पावे । रूसकी कम्युनिस्ट पार्टीकी सातवी कांग्रेसमे स्टालिनने कहा था—"नेशनल सोवियट रिपब्लिके अपनी सत्ताकी रक्षा तभी कर सकती हैं और पूँजीवादपर गालिव आ सकती है जवतक कि वह एक संघमे सम्मिलित है ।"

वात सच थी, पर स्वभाग्यनिर्णयका सिद्धान्त प्रत्येकको आत्महत्या करनेका भी हक देता है । हमारे देशमे तो अवसरवादिताकी दृष्टिसे भी इसे स्वीकार करनेकी जरूरत नही है । पजावी, सिन्धी आदिमे से किसीने भी ऐसी माँग पेश नही की है और वह पेश क्यो करे ? वह सब समान रूपसे ब्रिटिश साम्राज्यवादके अधीन है । उन सबके दु ख-सुख एकसे है । उनमेसे एक दूसरेपर अत्याचार नही कर सकता । उनकी सस्कृति और भाषापर यदि कोई आघात करता है तो वह विदेशी सत्ता है । ऐसी अवस्थामे इनमेसे कोई स्वतन्त्र राष्ट्रकी माँग क्यो पेश करे ? इसके अतिरिक्त भारतीय एकताकी भावना प्रवल होती जाती हे और सब इसका अनुभव करने लगे है कि समवेत चेष्टासे ही भारत स्वतन्त्र किया जा सकता है और अर्जित स्वतन्त्रताकी रक्षा करनेमे समर्थ हो सकता है । आजकी हालतमे तो यह वात और साफ हो गयी है । अब जमाना छोटे राष्ट्रोका नही है ।

पाकिस्तानकी माँगका रहस्य

यह माँग कुछ मुसलमानोकी ओरसे पेश की गयी है । मुसलिमलीगका यह दावा कि वह सब मुसलमानोका प्रतिनिधित्व करती है झुठलाया गया है । आजाद मुसलिम कानफरेन्सकी सफलता इसका प्रमाण है । बंगालके मुसलमान तो पाकिस्तानकी योजनाको

पसन्द नहीं करते। मौलवी फजलुलहक साहव भी इस योजनापर मुग्ध नही है। वह अव भी भारतीय एकताकी वात करते हैं। सिकन्दर हयातखाँ भी इसके हामी नही हैं। दूसरे 'लीगर' जो इसका राग अलापते थे उनकी असली मशा थी कि यह काम व्रिटिश सत्ताकी मददसे हो, पर अव जव लडाईकी शक्ल वदली और इसमे भी शक होने लगा कि वह सत्ता इस देशमें रह भी जावेगी तो धीरे-धीरे उन्होने हिन्दुस्तानकी हिफाजतके लिए एक नेशनल गवर्नमेण्ट कायम करनेका नारा वुलन्द करना शुरू किया। ज्यादातर तो धमकीके लिए पाकिस्तानकी योजना वनायी गयी है। इसमे असलियत कम है, लेकिन अगर मुसलिम लीगका इसपर अनुरोध हो तो हमको इसका विरोध करना ही पडेगा। प्रत्येक समुदायकी सस्कृतिकी रक्षाके लिए कांग्रेस वचनबद्ध है और काग्रेसने यह भी स्वीकार किया है कि अल्प समुदाय अपने अधिकारोकी रक्षाके लिए जो व्यवस्था चाहेगे वह कर दी जावेगी। इससे अधिक और क्या किया जा सकता है? मुसलमान प्रान्तोमे वँटे हुए हैं। कजक, उजवेग, ताजिक आदिकी मिसाल यहाँ लागू नही होती।

सरहदी सूवे और वलूचिस्तानको छोड़कर कोई ऐसा प्रान्त नहीं है जहाँ खालिस मुसलमान ही वसते हो। शायद यह सूवे अलग होना न चाहेगे। और सूवोमे वसनेवाले मुसलमानोंकी तुलना रूसी साम्राज्यके यहूदी, पोल, लेट (Letts), स्थोनियन आदि लोगोसे की जा सकती है। कुछ सूवोमे तो इनकी आबादी हिन्दुओसे ज्यादा है। वहाँ तो इनके लिए कोई दिक्कत नही है, इसलिए इन सूवोका शुमार न होना चाहिये। शेष सूवोमे जहाँ यह अल्पसख्यामे हैं वहाँ इनके अधिकारोकी रक्षाकी व्यवस्था की जायगी। रूसमे यहूदी, लेट, स्थोनियनके अधिकारोकी जिस प्रकार रक्षा की गयी है उस प्रकार इनकी भी होनी चाहिये। इन जातियोके अपने देश न थे, यह साम्राज्यमे फैले हुए थे, इसलिए इनको स्वभाग्यनिर्णयका अधिकार नही दिया गया।

भारतीय कम्युनिस्टोंकी भूल

हमने ऊपर दिखलानेकी कोशिश की है कि रूसका उदाहरण यहाँ लागू नही होता। तिसपर भी हिन्दुस्तानकी कम्युनिस्ट-पार्टीने सन् १९३१ से ही समस्त राष्ट्रीय अल्प-समुदायोको आत्मनिर्णयका अधिकार दे रखा है। रूसमे अलग होनेका हक भी शामिल है। यह उनके उद्देश्यकी घोपणा (draft platform) मे है। आँख मूँदकर नकल करनेका यही नतीजा है। यह वात होती इसलिए है कि सोवियट यूनियनकी नीतिको कोमिण्टर्न (Third International) विना विचारे अपनाती है और भिन्न-भिन्न देशोकी कम्युनिस्ट पार्टियाँ उसके फैसलेपर चलनेको वाध्य हैं। प्रत्येक पार्टीको देश-कालका विचार कर अपनी नीतिको स्थिर करनेकी स्वतन्त्रता होनी चाहिये। दूसरे देशके लिए जो नीति उपयुक्त है उसे यन्त्रवत् अपने यहाँ लागू करना पड़ता है। लेनिनकी शिक्षा थी कि कोमिण्टर्न समान नियमो तथा संघर्षकी एक-सी नीतियोके आधारपर नही निर्मित हो सकता। जवतक राष्ट्रीय विभिन्नता मौजूद है और यह भेद वहुत समयतक कायम रहेंगे—संसारमे मजदूर जमातके अधिनायकत्व होनेके वाद भी—तवतक

'टेक्टिस'का भेद रहेगा। हम राष्ट्रीय विभिन्नताओंको नहीं मिटा सकते। ऐसा सोचना मूर्खता होगी। हमको मौलिक सिद्धान्तोंमें अवस्थानुसार हेर-फेर करना पड़ेगा। प्रत्येक देशका अपना अलग एक ढंग रहता है और अपने ढंगसे ही वह उस मौलिक कार्यको सम्पन्न करता है। यह विशेषता अपनी विशेष अर्थनीति, राजनीति, संस्कृति, धार्मिक विकास आदिके कारण हुआ करती है। इसकी उपेक्षा नहीं की जा सकती। देशकालके भेदसे नीति बदलती रहती है, इसलिए विना अपनी अवस्थापर पूरा विचार किये दूसरे देशकी नीतिको अपनाना भयावह होता है।

सन् १९३१ में पृथक् होनेका प्रश्न भी हमारे सामने न था। यह माँग अभी हालसे पेश होने लगी है। उस समय इस अनावश्यक घोषणाको करके एक नया प्रश्न व्यर्थके लिए खड़ा किया गया। इससे केवल गलत विचारोंको सहारा मिलता है और जब वही विचार स्थूल रूप धारण कर लेते हैं तब उनको दवानेकी कोशिश की जाती है। यह बहुत गलत तरीका है।

अभी हालमें जब जिन्ना साहबने कांग्रेसके सामने यह मांग की थी कि कांग्रेस मुस्लिम लीगको तमाम मुसलमानोंका प्रतिनिधि मान ले उस वक्त कुछ कम्युनिस्ट मुसलमानोंने इस माँगको मान लेनेपर जोर दिया था और यह भी कहा था कि उस हालतमें कांग्रेसके मुसलमान मुस्लिम लीगमें दाखिल हो जावेंगे। यह भाई अपने भोलेपनमें समझते थे कि इससे हिन्दू-मुसलिम एकताके लिए रास्ता साफ हो जावेगा। शायद वहाँ जाकर हमारे ये भाई नीचेसे संयुक्त मोर्चेकी नीति (United frontfrom below) चलाते। यह इस बातको भूल गये थे कि उस हालतमें कांग्रेस धीरे-धीरे हिन्दू संस्था बन जाती।

पहली गलती तो इनकी यह है कि केवल धर्मके आधारपर यह राष्ट्र-निर्माण मानते हैं। स्टालिनने राष्ट्रकी सबसे बडी पहचान भाषाको बताया है। दूसरी गलती यह है कि रूसके इतिहासका ठीक-ठीक अध्ययन किये विना और अपने देशकी स्थितिपर पूर्ण विचार किये विना ही अपना कार्यक्रम बना डालते हैं। दूसरेका अनुकरण करनेमें सुविधा अवश्य है, परन्तु हमको यह न भूलना चाहिये कि समाजवादीका मार्ग सुगम नहीं है, उसकी साधना सुलभ लाभकी साधना नहीं है, समाजवाद एक वैज्ञानिक वस्तु है इसलिए समाजवादीकी नीति और कार्यप्रणाली भी वैज्ञानिक होनी चाहिये।

थोड़ी देरके लिए यदि यह मान भी लें कि मुसलमानोंको स्वभाग्यनिर्णयका अधिकार मिलना चाहिये तो किस तर्कके आधारपर सिक्खोंकी ऐसी ही माँगको हम अस्वीकृत कर सकेंगे? सिक्खोंका भी एक अल्प समुदाय है। ऐसी अवस्थामें सिक्खोंको मध्य-पंजाबमें एक स्वतन्त्र राष्ट्र बनानेका अधिकार देना होगा। पंजाबके पूर्वी हिस्सेमें जाट कौम बसती है, वह भी अपनी स्वतन्त्र सत्ता चाहेगी, इसे हम कैसे रोक सकेंगे? इस तरह हम देखते हैं कि उत्तर पश्चिमका मुस्लिम राष्ट्र मुसलिमलीगकी इच्छाके अनुसार न बन सकेगा। राष्ट्रका विस्तार बहुत घटाना पड़ेगा, पर इससे लीगियोंको कैसे सन्तोष

होगा ? यह नहीं हो सकता कि किसी अल्प समुदायकी सब उचित-अनुचित माँगें मान ली जावे, विशेषकर जब कि अन्य अल्प समुदायोको उनकी पूर्त्तिसे हानि हो ।

प्रगतिका मार्ग

भारतमे जितने अल्प समुदाय है उनके अधिकारोंकी पूरी रक्षा करना हमारा कर्तव्य है । उनके साथ न्यायका ही नही वरंच उदारताका व्यवहार होना चाहिये । उनको सास्कृतिक स्वतन्त्रता मिलनी चाहिये । जितनी पिछडी हुई जातियाँ है उनकी उन्नतिके लिए विशेष ध्यान देना चाहिये । धार्मिक वैमनस्यका एक यह भी कारण है कि शिक्षाकी दृष्टिसे मुसलमान हिन्दुओसे पिछड़े हुए है । बहुत कालतक वह अग्रेजी शिक्षाका विरोध करते रहे और इसीलिए राजनीतिक चेतना उनमे अपेक्षाकृत कम है । काग्रेस राजनीतिक दौड़मे काफी आगे बढ़ गयी है । उसमे लोकमत प्रबल है, इसीलिए नेतृत्व भी बदला, किन्तु मुसलिम लीगका नेतृत्व अभी पुराने ढंगका ही चला आता है । वह जनताके आर्थिक प्रश्नोको लेकर आन्दोलन नही करता । वह धार्मिक प्रश्नोमे प्राय. मुसलमानोको उलझाये रहता है । काग्रेसका विरोध करना ही उसका मुख्य लक्ष्य है । न उसके कोई ऊँचे आदर्श है, न गरीब मुसलिम जनताकी ही उसे फिक्र है । मुस्लिम स्थिर स्वार्थोकी रक्षा करना उसका उद्देश्य है । काग्रेस और लीगका यह अन्तर है । इसी असमानताके कारण कोई तसफिया नही हो पाता । यह असमानता मुसलमानोमे शिक्षाके प्रसारसे ही दूर हो सकती है, धीरे-धीरे दूर भी हो रही है । इसमे हम सबको सहायक होना चाहिये, किन्तु किसी मौलिक प्रश्नका निर्णय अल्प समुदायोके हाथ छोड़ा नही जा सकता ।[१]

रामगढ़ कांग्रेसकी नीतिमें परिवर्तन आत्मघातक है[२]

मैं कम्युनिस्टोके इस कथनसे सहमत नही हूँ कि काग्रेसके कुछ उच्च नेता ब्रिटिश साम्राज्यशाहीके हाथ देशको वेच देना चाहते है । मै समझता हूँ कि वे भी उतने ही ईमानदार है जितने कि दूसरे लोग और नीतिका वे प्रतिपादन इसलिए करते है कि उसे वे ईमानदारीके साथ स्वाधीनता-आन्दोलनके लिए सही समझते है, न कि इसलिए कि पूंजीपतियोके प्रतिनिधि होनेके नाते वे पूंजीपतियोका हित उस नीतिमे देखते है, जैसा कि कम्युनिस्टोका ख्याल है ।

रामगढ़की नीतिमें परिवर्तन

यूरोपीय युद्धके आरम्भसे लेकर अ० भा० काग्रेस कमेटीकी बैठकके समयतककी काग्रेसकी काररवाईका विस्तारपूर्वक उल्लेख करते हुए आचार्यजीने सिद्ध किया कि रामगढ-

१. 'संघर्ष' १७ जून १९४० ई०
२. अ० भा० काग्रेस कमेटीमे भाषण

में काग्रेसने जो नीति अपनायी थी कार्यसमितिके प्रस्तावसे उसका अन्त किया जा रहा है। यूरोपीय युद्धके आरम्भ होनेपर १४ सितम्वरको वर्धामे काग्रेस कार्यसमितिकी जो वैठक हुई उसमे व्रिटिश सरकारसे पूछा गया था कि वह स्पप्ट करे कि उसके युद्ध-सम्वन्धी उद्देश्य क्या है। आगे चलकर जव अक्तूवर मासमे अखिल भारतीय काग्रेस कमेटीकी वैठक वुलायी गयी तो उसने निश्चय किया था उसमे व्रिटिश सरकारसे उसके युद्ध सम्वन्धी उद्देश्योके अतिरिक्त सुलह-सम्वन्धी उद्देश्य भी पूछे गये थे और काग्रेसजनोंको प्रत्येक प्रकारकी परिस्थितिका सामना करनेके लिए तैयार रहनेको कहा गया था, जिसका स्पष्ट अर्थ यही था कि अगर व्रिटिश सरकार अपने वक्तव्यों और कार्योसे स्पप्ट रूपसे यह नहीं सिद्ध कर देती कि यह युद्ध साम्राज्यवादी उद्देश्योके लिए नही लड़ा जा रहा है तो काग्रेस आजादीकी लड़ाई छेड़नेके लिए मजवूर होगी। इसके वाद 'स्वाधीनता दिवस' जिस ढंगसे मनाया गया, उससे काग्रेसजनोको यह वतलाया गया कि स्वतन्त्रता संग्रामके छेडनेकी तैयारी की जा रही है। काग्रेसके रामगढ-अधिवेशनमे साफ तौरपर इस वातका एलान कर दिया गया है कि वर्तमान यूरोपीय युद्ध साम्राज्यवादी युद्ध है, उसमें भाग लेना अपनी गुलामीकी जंजीरोको ही कसना होगा और फिर काग्रेस-कमेटियोको लडाईकी तैयारी करनेके लिए सत्याग्रह कमेटियोमे परिवर्तित हो जानेका आदेश दिया गया। रामगढ काग्रेसमे महात्मा गाधीके सेनापतित्व स्वीकार कर लेनेसे भी काग्रेस-जनोका यही विश्वास दृढ हुआ कि काग्रेस युद्धमे भाग नही लेने जा रही है, क्योकि महात्मा गाधी किसी हालतमे अधिकसे अधिक व्रिटिश सरकारको देशकी नैतिक सहायता ही देनेको तैयार थे, इससे अधिक नही, अत. प्रस्तावके कुछ समर्थकोका यह कहना कि कार्य-समितिका निश्चय रामगढके निश्चयके प्रतिकूल नही है. वास्तविकताके अनुकूलन ही है।

स्थितिमें परिवर्तन नहीं

यह समझना भ्रम है कि आज परिस्थितिमे कोई ऐसा परिवर्तन हो गया है कि जिसकी कल्पना रामगढमें नही की जा सकती थी। अथवा जिसके कारण रामगढमे निर्धारित की हुई नीतको हमे वदलना पड़े। युद्धमे चाहे जो भी शक्ति जीते उपनिवेशोकी भलाई इसीमे है कि वे अपनी स्वाधीनताकी प्राप्तिके लिए प्रयत्न करे। अगर आजकी हालतमे इगलैण्ड जीत भी जाय तो यह समझना भूल होगी कि यह लोकतन्त्रकी विजय होगी। पूंजीवाद और प्रजातन्त्रका प्रचलित रूप लडाईके वाद भी वना नही रह सकता। अगर इंगलैण्डके पूंजीवादी शासक युद्धमें जीत जायॅ तो वे भी अपने देशमे एक नियन्त्रित पूंजी-वादी व्यवस्था चलानेका प्रयत्न करेंगे, भले ही वह उसे फैसिज्मका नाम न दे। जो हालत आज फ्रासकी है उससे वहुत कुछ मिलती-जुलती हालत उस अवस्थामे इंगलैण्डमे भी हो जानेका डर है। अत. मनुष्यताकी रक्षाके लिए इस युद्धमे हमारे सम्मिलित होनेका प्रश्न आजकी हालतमे नही उठता। हमारे सामने व्रिटिश सरकारने भी कोई नया प्रस्ताव नही किया जिसके जवावमें हमें अपनी ओरसे कुछ कहना हो।

रामगढ़के प्रस्तावमे हिन्दुस्तानकी आजादीका प्रश्न एक विस्तृत दायरेके अन्दर

देखा गया है। रामगढके प्रस्तावमे हिन्दुस्तानकी आजादीके अलावा एशिया और अफ्रीकाके दूसरे अनेक उपनिवेशोकी आजादीकी भी माँग की गयी है, किन्तु दिल्लीके निश्चयमे इस पहलूकी कोई चर्चा नही की गयी है। हमे अपने राष्ट्रीय आन्दोलनके अन्तर्राष्ट्रीय पहलूको भूल नही जाना चाहिये।

काग्रेसके तथाकथित राष्ट्रीय सरकार बनानेके खतरेकी ओर भी ध्यान देना चाहिये। अगर ऐसा हुआ तो काग्रेसके युद्ध-विरोधी परम्पराके साथ ही उसकी राष्ट्रीयताकी परम्पराके नष्ट हो जानेका डर है और यह कार्य वैसी ही नासमझीका कहा जायगा जैसा यह कि पुनर्जन्म प्राप्त करनेकी आशामे आत्म-हत्या कर ली जाय।[१]

सत्याग्रहपर पाबन्दियाँ

११ अक्तूबरको वर्धा वर्किंग-कमेटीकी बैठक शुरू होगी। मालूम नही महात्माजी सत्याग्रहकी कौन योजना उसके विचारार्थ रखते है, किन्तु इतना तो स्पष्ट है कि महात्माजी किसी न किसी रूपमे व्यक्तिगत सत्याग्रहसे ही आन्दोलनका आरम्भ करेगे। महात्माजी एक अरसेसे कहते आते है कि वह सामूहिक सत्याग्रहके लिए देशमे उपयुक्त वातावरण नही पाते। रामगढकी वक्तृतामे अवश्य सामूहिक सत्याग्रहकी बात उन्होने की थी, किन्तु मईके महीनेसे वह बराबर सामूहिक सत्याग्रहके न छेडनेकी बात ही कहते आये है। पहले सत्याग्रहका आधार देशकी आजादीका सवाल था, किन्तु अब वह आधार भी बहुत सकुचित कर दिया गया है। बम्बईके प्रस्तावमे और महात्माजीके भाषणमे यह बात साफ कर दी गयी है। काग्रेस अपनी नीतिका अहिसात्मक तरीकेसे अनुसरण करनेकी स्वतन्त्रता चाहती है। काग्रेस साम्राज्यवादी युद्धका विरोध करनेकी नीतिको अरसेसे अपनाये हुए है। महात्माजी अहिसाके सिद्धान्तके अनुसार प्रत्येक युद्धके विरोधी है। काग्रेसकी इस नीतिके अनुसार काम करते हुए कितने ही कार्यकर्ता जेलखानोमे बन्द कर दिये गये। काग्रेस इसी प्रश्नको लेकर सत्याग्रह करने जा रही है। स्वभावत यह सवाल उठता है कि रामगढ-काग्रेसके बाद क्या ऐसी बाते हुई जिनके कारण सामूहिक सत्याग्रह अनुपयुक्त समझा गया और आजादीका सवाल छोड दिया गया? मैं समझता हूँ कि हिसाके भयसे महात्माजी सामूहिक सत्याग्रहकी आज्ञा देनेसे घबड़ाते है और मुसलिम लीगके विरोधके कारण आजादीके सवालको इस समय उठाना नही चाहते। शायद उनका ख्याल है कि राज-शक्तिके सवालको लेकर सत्याग्रह आरम्भ करनेसे मुसलिम लीगके नेताओको यह ख्याल हो सकता है कि इस तरह काग्रेस गवर्नमेण्टको उससे समझौता करनेके लिए मजबूर करना चाहती है। उनके ख्यालसे इसका नतीजा यह होगा कि मुसलिम लीग आन्दोलनमे रुकावट डालेगी। अपना रास्ता साफ करनेके लिए शायद

---

१. 'सघर्ष' १२ अगस्त, १९४० ई०

गांधीजीने सत्याग्रहका यह नया आधार वनाया है। फ्रांसके पतनसे भी किसी प्रकारका आन्दोलन शुरू करनेकी उनकी हिचकिचाहट वढ गयी है और वह इसीलिए सत्याग्रह शुरू करनेको तैयार हो गये हैं क्योंकि उनके ख्यालसे गवर्नमेण्ट काग्रेसके कुचलनेके लिए तुली हुई है। उनके शव्दोमे यह सत्याग्रह आत्मरक्षाके लिए है।

काग्रेसका संगठन इस प्रकारका नही है कि वह राज्य-शक्ति लेनेमें समर्थ हो सके। फिर सत्याग्रह आन्दोलनका साधारणतः समझौतेमे ही अन्त हो सकता है? इसके द्वारा राज-सत्तापर दवाव काफी पड़ता है पर यह वर्तमान संगठनकी सहायतासे विदेशी सत्ताको नष्ट नही कर सकता। अहिंसाको सिद्धान्तरूपेण ग्रहण करनेसे उसकी वारीकियोमे जाना अनिवार्य हो जाता है जिनपर लम्वे-लम्वे शास्त्रार्थ चलते हैं और जैसा कि विभिन्न धार्मिक सम्प्रदायोके पण्डित आपसमे किया करते है। इनसे वास्तविकतासे कम सम्वन्ध रहता है, अक्सर वालकी खाल निकाली जाती है जिसका समझना साधारण लोगोके लिए असम्भव हो जाता है। इस शास्त्रार्थमे पड़नेके कारण हमारे कई महीने खराव गये और जिस तरहसे हम अपने निर्णय रोज वदलते रहे उससे हमारी प्रतिष्ठामे कुछ कमी ही हुई है।

वम्वईके प्रस्तावमें कहा गया है कि नागरिक-स्वतन्त्रताकीरक्षाके लिए जिस मात्रा और रूपमे सत्याग्रहकी आवश्यकता होगी उतनीही मात्रा और परिमाणमे उसका व्यवहार किया जायगा। यह तो हमने वर्तमान नेतृत्वसे कभी आशा नही की थी कि वह राज्य-शक्ति लेनेके लिए सब उपयुक्त उपायोका अवलम्वन लेगे, पर हम यह अवश्य मानते थे कि पूर्ण स्वतन्त्रताके सवालको लेकर आन्दोलनका आरम्भ किया जायगा और इसी विश्वासमे हम समाजवादी आरम्भसे ही वर्किंग कमेटीका साथ देते आये है। हमारा यह ख्याल ठीक निकला कि सत्याग्रह अनिवार्य है और दल कहते रहे कि नेता लड़ेंगे नही, किन्तु हम कहते रहे कि परिस्थिति ऐसी है कि यदि वह लड़ना न भी चाहें तो उनको लड़नेपर मजवूर होना पड़ेगा। हमारा यह कथन ठीक निकला, किन्तु हमको यह पता नही था कि आन्दोलन का आधार इतना संकुचित कर दिया जायगा। मुसलिम लीगसे इतना डरनेकी क्या जरूरत है। उससे कई वार सुलहकी कोशिशे की गयी, पर सव मेहनत वेकार गयी। अव तो हमको यह समझकर काम करना है कि सम्प्रदायवादियोके विरोधका भी हमे मुकावला करना है। अगर हम इसके लिए तैयार न हो तो उसके माने होगे कि हमने सदा के लिए अपने लक्ष्यके लिए लड़ना छोड दिया। वाहरी और भीतरी रुकावटोका समान रूपसे मुकावला करना पड़ेगा, इसलिए मैं नही समझता कि सवाल क्यो वदल दिया गया। इससे हमने अपनी लड़ाईको वहुत कमजोर कर दिया। उसमे शुरूसे ही वाँध-वाँध दिये और पावन्दियाँ लगा दी, जिससे वह जन-क्रान्तिमे विकसित न हो सके। इस प्रश्नसे साधारण लोगोको कोई विशेष दिलचस्पी नही है और उनमे यह योग्यता भी नही है कि वह भाषण देकर या लेख लिखकर इस अधिकारको उपयोगमें लानेकी चेष्टा करे। तो क्या हम समझे कि देशकी अनपढ जनता इस आन्दोलनसे अलग रखी जायगी? यदि ऐसा हुआ तो हमारा आन्दोलन प्रभावशाली कैसे हो सकेगा?

यदि स्वराज्यके लिए सत्याग्रह शुरू होता तो आशा की जा सकती थी कि धीरे-धीरे वह देशव्यापी होगा और किसान, मजदूर, छोटे पेशेके लोग भी बड़ी तादादमें उसमे शरीक होगे। उस अवस्थामे देशमे शक्ति रहते असहयोग और सत्याग्रहका पूरा कार्य-क्रम, जिसकी घोषणा सन् १९२१ मे हुई थी, काममे लाया जा सकता था। उसमे विकासकी काफी गुंजाइश होती। जन-आन्दोलनकी हदबरारी भी हमारे नेता न कर सकते, केवल अपने नियन्त्रणमें रखकर गलत रास्ते पर जानेसे उसे बचाते, लेकिन आधार को इतना सकुचित कर देनेसे विकास के सब मार्गोंके बन्द हो जानेकी आशंका है। मेरी पहली आपत्ति यह है। दूसरी शका यह उठती है कि युद्ध समाप्त होनेपर क्या होगा? जो सवाल सत्याग्रहका आधार बनाया जा रहा है उससे तो यही मालूम होता है कि सत्याग्रह भी बन्द हो जायगा, क्योंकि जब युद्ध ही न होगा तो उसके विरोधका प्रश्न कहाँ उठता है।

मैंने इन शंकाओंको इसलिए उठाया है कि लोग इस सत्याग्रहमे भाग ले और स्वराज्यके लक्ष्यको भी सामने रखे जिसमे विकासका अवसर मिले। प० जवाहरलालजीका कहना है कि आजादीका सवाल बालायताक नही रखा गया है, किन्तु महात्माजी और सरदार साहब तो ऐसा नही कहते। खैर! यदि पं० जवाहरलालको ऐसा कुछ कहनेका अधिकार है तो सर्वसाधारणको भी है। मै चाहता हूँ कि बम्बईके प्रस्तावका ऐसा ही अर्थ करे और धीरे-धीरे आन्दोलनको एक विराट् जन-आन्दोलनका रूप दे, यदि ऐसा हुआ तो हम क्रान्तिके पथपर बहुत आगे बढेगे। अन्तर्राष्ट्रीय स्थितिपर भी बहुत कुछ निर्भर करता है। युद्धके बाद भी क्रान्तिकी अवस्था जारी रहेगी। दु ख तो इस बातका है कि इसमे आत्मविश्वासकी कमी है और हम ऐसा बन्दोबस्त चाहते हैं जिसमें किसी प्रकारकी जोखिम न उठाना पड़े, इसीलिए यह हिचकिचाहट है और आन्दोलन शुरू करनेमे इतनी देर हो रही है, पर क्रान्तिकारियोको इस तरह न घबराना चाहिये।

यदि जन-आन्दोलनके जीवन-मरणका प्रश्न न होता तो मै इस प्रकारके सत्याग्रहका समर्थन न करता। काग्रेसकी खामोशीसे जन-आन्दोलनको कड़ा धक्का पहुँचेगा, पर जननायकोंकी मनोवृत्तिका अध्ययन करने और काग्रेस-सगठनकी दुर्बलताओंका पता चलनेका यह अच्छा मौका है। इससे आगेके लिए हम सबक सीख सकते है। यह बात हमे न भूलनी चाहिये कि बिना जोखिम उठाये कोई बड़ा काम नही हो सकता। हम समझते हैं कि आनेवाले जमानेमे हमको किसानो और मजदूरोके सगठन पर और अधिक जोर देना पड़ेगा। समाजवादी पार्टी इसपर काफी जोर दे रही है, पर अब इस ओर और ज्यादा ध्यान देनेकी आवश्यकता है। यदि सत्याग्रहको शक्तिशाली बनाना है तो किसानो और मजदूरोको साम्राज्य-विरोधी सघर्षमे खीचना पडेगा। इसके लिए किसान सभा और मजदूर-सभाका काम बड़े पैमानेपर करना पडेगा अन्यथा इन वर्गोंमे निश्चेष्टता आ जावेगी और वह हमारे आन्दोलनसे बहुत कुछ पृथक् रहेगे। समाजवादियोके मतमे यह पूँजीवादी प्रजा-सत्तात्मक क्रान्ति (bourgeois democratic revolution) की मंजिल है।

इसका एक स्तम्भ विदेशी सत्ताका विरोधी है और दूसरा किसानोकी क्रान्ति है । जब पहला स्तम्भ कुछ दुर्बल पडे तब दूसरेको मजबूत करनेकी कोशिश होनी चाहिये ।

मेरी समाजवादियोसे अपील है कि कांग्रेस-आन्दोलनमे पूरा-पूरा भाग लेते हुए वह किसान और मजदूरोके संगठनके कामको भी काफी दिलचस्पीके साथ करें ।[1]

व्यक्तिगत सत्याग्रह और आजादीकी लड़ाई

महात्मा गांधीके वक्तव्यपर एक दृष्टि

महात्माजीके हालके वक्तव्यसे बडी निराशा हुई । इसलिए नही कि व्यक्तिगत सत्याग्रह फिलहाल एक ही व्यक्तितक सीमित रहेगा, किन्तु इसलिए कि उसमे कुछ ऐसे सिद्धान्तोका निरूपण किया गया है जो मेरी अल्पबुद्धिमे हमारे आन्दोलनके लिए घातक है । वक्तव्यसे मालूम होता है कि सत्याग्रहका उद्देश्य केवल भाषणकी स्वतन्त्रताकी रक्षा करना है । बम्बईके प्रस्तावमे तथा बम्बईमे दिये हुए महात्माजीके भाषणोमे जो बातें शायद साफ नही की गयी थी, वह इस वक्तव्यसे साफ हो जाती है । यह तो शायद स्पष्ट ही था कि आजादीका सवाल इस समय छोड दिया गया है, पर यह स्पष्ट नहीं था कि सत्याग्रहका उद्देश्य लडाईके लिए हिन्दुस्तानके जन-धनके उपयोगको रोकना नहीं है, बल्कि महज अपने अधिकारको जताना है । महात्माजीका वक्तव्य इस बातको स्पष्ट कर देता है । कुछ व्यक्तियोके सत्याग्रहसे कुछ अंशमे यह काम सिद्ध होता है तो बात दूसरी है, पर सत्याग्रहका उद्देश्य यह नही रखा गया है । हिन्दुस्तान इतना बड़ा देश है कि जबतक कार्यकर्ताओकी एक बहुत बडी फौज इस कामको एक साथ न करे तबतक काममे सफलताकी आशा नही करनी चाहिये । इसलिए पहले तो व्यक्तिगत सत्याग्रह ही, वह भी जब बहुत थोड़ेसे चुने हुए लोगोमे ही सीमित रखा जाय, इस काममे बडी भारी रुकावट है, फिर जब यह कहा जाता है कि प्रतिपक्षीको जहाँतक हो सके कम परेशान करो, उसके काममे कम-से-कम बाधा डालो तो यह उद्योग बेकार-सा हो जाता है । उद्देश्य केवल अपने अधिकारकी रक्षा करनेका है, कुछ हासिल करनेका नही । कांग्रेसके युद्ध-विरोधी प्रस्तावको भी हम इस तरह कार्यान्वित नही करते, राष्ट्रीय माँगको हासिल करनेकी बात तो दूर रही ।

हम इसके लिए तैयार नही थे । यू० पी० की प्रान्तीय कांग्रेस कौंसिलने अपनी पिछली बैठकमे जो प्रस्ताव पास किया था उसका क्षेत्र तो अति विस्तृत था । उसमे आजादीका सवाल भी रखा गया था और युद्धके लिए हिन्दुस्तानके जन-धनके इस्तेमाल को रोकनेकी बात भी कही गयी थी । याद रखिये कि यह प्रस्ताव हमने बम्बईके इजलासके बाद पास किया था, पर महात्माजीके वक्तव्यने इस प्रस्तावको निरर्थक-सा बना दिया है अजीब हालत है कि कांग्रेसके निश्चयोके असली अर्थका पता बहुत देरमे चलता है !

---

१. 'संघर्ष' १४ अक्तूबर, १९४० ई०

परेशानी कैसी

महात्माजीने अपने वक्तव्यमे कहा है कि मै स्वयं सत्याग्रह नही करना चाहता। इस निश्चयका कारण वताते हुए महात्माजी कहते हैं कि इसका कारण यह भी है कि काग्रेस गवर्नमेण्टको परेशान नही करना चाहती। यह थ्योरी सत्य और अहिंसा-सम्मत वतायी जाती है। हमारी अल्पवुद्धिमे यह नही आया कि इसका सत्य और अहिंसासे क्या सम्बन्ध है, जब हम सत्याग्रह किसीको परेशान करनेकी गरजसे नही करना चाहते हैं, वल्कि अपने उद्देश्यको हासिल करनेके लिए ही करना चाहते हैं। महज छेड़छाड़के लिए कोई आन्दोलन करना नामुनासिव होगा यह हम मानते हैं, उससे हमारा ही नुकसान है। यह तो वही मसल हुई कि दूसरेकी नाक काटनेके लिए हम अपनी नाक कटवानेके लिए तैयार हैं। जब युद्ध आरम्भ होनेपर वर्किंग-कमेटीने अपना लम्वा वक्तव्य निकाला था और वादमे रामगढ-काग्रेसने अपना प्रस्ताव पास किया था, जिसमे वताया गया था कि यह युद्ध साम्राज्यवादी है और अगला कदम सत्याग्रहका होगा, उस समय हमको प्रतिपक्षीको परेशान करनेका ख्याल न था। जव कभी हम स्वराज्यकी लडाई छेड़ेंगे, साम्राज्यशाहीको परेशानी होगी ही, लेकिन क्या हम जन्मसिद्ध अधिकारको छोड देगे ? क्या हम यह समझे कि जवतक युद्धमे प्रतिपक्षीके हारनेके लक्षण नही दिखायी पडे तवतक तो सत्याग्रह करना सत्य और अहिसाके प्रतिकूल नही है, लेकिन जव हमारा प्रतिपक्षी शत्रुसे विताडित होने लगे और उसके पराजयकी आशका हो जावे तव गुलामोको लडाई रोक देनी चाहिये। जव हमारा प्रतिपक्षी लडाईमे सँभल जाय, यह तर्क हमारी वुद्धिमें नही आता। हिन्दुस्तानकी आजादी ही अग्रेजोके लिए काफी परेशानीकी वात है, वह ऐसा ही समझते हैं, लेकिन हम तो हिन्दुस्तानको आजाद करके अग्रेज कौमपर एहसान करेगे। मै यह वात मजाकमे नही कहता, क्योकि मेरा विश्वास है कि जो कौम दूसरोको गुलाम वनाती है वह अन्तमे खुद गुलाम हो जाती है, इसलिए स्वराज्यकी लडाई ऐसे मौकेपर छेडना परेशान करना नही है। हमारी लडाई तो शान्तिमय है। हम उनके देशपर तो आक्रमण कर नही रहे है, केवल अपने देशको आजाद करना चाहते हैं, इसमे किसीको परेशान करनेका सवाल कहाँ उठता है। खेल और कुश्तीके कायदे ऐसे हो सकते है, लेकिन आजादीके जगमे इन कायदोकी गुजाइश नही है, क्योकि प्रतिपक्षी किसी कायदेको माननेको तैयार नही है। हमारी लडाई अहिंसाकी है, लेकिन हमारा प्रतिपक्षी हिंसाका आश्रय लेता है। जिस समय वह सकटसे घिरा हुआ हे उस समय भी वह हमारे साथ इन्साफ करनेको तैयार नही है अल्प समुदायोका वहाना कर टालमटोलकी वाते करता है। हिन्दुस्तानकी इकाई तोडने और प्रजातन्त्रकी भावनाको दवानेकी चाल चलता है। हमारा सकल्प पहले ही हो चुका है। उसके होनेसे केवल भारतका ही नही वल्कि अग्रेज जातिका भी कल्याण है। यह सकल्प दूसरोको नुकसान नही पहुँचाना चाहता, केवल अपनी चीज वापस चाहता है इसमे अधर्म कहाँ है ? मैं तो इसे धर्म-युद्ध ही समझता हूँ।

मै जीवनमे नैतिक आचरणको वड़ा महत्त्व देता हूँ। मैं संकीर्ण राष्ट्रीयताका कट्टर

विरोधी और अन्तरराष्ट्रीयताका पुजारी हूँ। किसी जातिके प्रति मेरा विद्वेष नही है। इङ्गलेण्डके शासकवर्गका मै अलबत्ता विरोधी हूँ, किन्तु अंग्रेजोके प्रति मुझे राग नही है। सब राष्ट्रोकी जनताका मै आदर करता हूँ, क्योकि मै जानता हूँ कि प्रत्येक राष्ट्रकी प्रजा शान्तिप्रिय हुआ करती है, वह विद्वेशकी अग्नि प्रज्वलित नही करना चाहती। युद्धोंकी जिम्मेदारी उसपर नही है, किन्तु पूँजीपतियों और फौजी अफसरोपर है।

हमारा कर्तव्य

इन सब विचारोंके रखते हुए यदि इस समय हम आजादीके लिए सत्याग्रह करें तो हम किसी पहलूसे भी अनीति नही करेगे। एक वर्षकी नोटिस सचेत करनेके लिए क्या काफी नही है और यदि इसपर भी कोई नही सँभलता तो हम क्या करे? मुझे भय है कि यदि हम इस प्रकारका अटल सिद्धान्त वना लेगे कि सकटमे फँसे रहनेपर शत्रुको परेशान न किया जाय तो कभी भी आजाद न होगे। साम्राज्यवादका मुकावला करना आसान काम नही है, तिसपर यदि हम ऐसे सिद्धान्तपर अमल करने चलेगे तो लक्ष्यतक पहुँचना असम्भव हो जायगा। उस हालतमे हमको स्वराज्यकी आशा न रखनी चाहिये। मैने पहले ही साफ कर दिया है कि महज प्रतिपक्षीको परेशान करनेकी गरजसे आन्दोलन करना बचपना होगा, लेकिन अपने लक्ष्यकी प्राप्तिके लिए आये सुनहरे अवसरोंको खोना भी गलती होगी। किसी ठोस कारणसे आन्दोलनको शुरू न करना ठीक हो सकता है किन्तु केवल इस आधारपर अपने निश्चयको स्थगित कर देना ठीक नही।

श्रद्धा जरूरी चीज है, लेकिन उसे तर्कके आश्रित होना चाहिये। सिपाहीको भी पूछनेका हक है। भाड़के सिपाहियोकी वात दूसरी है, हालाँकि इस नये जमानेमे वह भी कभी-कभी पूछ वैठते है। लेकिन अपनी इच्छासे सिपाहीका वाना लेनेवाले लोगोकी शंका तो दूर करनी ही होगी। इस नये युगमे 'सैनिकको कारण पूछनेका अधिकार नही' (There's not to reason why) वाली वात गलत होती जाती है। इसमे शक नही जवतक कोई किसी संस्थामे है उसको अनुशासनकी रक्षा करनी होगी और सेनापतिके आदेशोका पालन करना होगा, लेकिन अपने दिलकी वात कहनेका हक तो उसे मिलना चाहिये।

कार्यकर्ताओंसे अपील

इस लेखके लिखनेका एक कारण और है। मुझे काग्रेसके सदस्योमे निश्चेष्टता आ जानेका भय है। कही ऐसा न हो कि जवतक अपना नम्वर न आये तवतक लोग हाथपर हाथ धरे बैठे रहे। मै देखता हूँ कि ऐसा हो रहा है। जवसे मन्त्रि-पदका त्याग हुआ है तबसे किसानोकी शिकायते दूर करनेकी ओर ध्यान नही दिया जा रहा है। युद्धके कारण कारखानोके मजदूरोकी आर्थिक कठिनाइयाँ वढ गयी है, इस ओर भी ध्यान देना अत्यन्त आवश्यक है। मै चाहता हूँ कि काग्रेसजन चिरपरिचित रचनात्मक कार्यक्रमको पूरा करते हुए इन जरूरी कामोको भी करते रहे। मेरी अपील समाजवादियोसे विशेप रूपसे

है, क्योकि वह इस कामके महत्त्वको अच्छी तरह समझते है और थोडा बहुत उसे करते भी रहते हैं। इस ओर उन्हे लगनसे लग जाना चाहिये। जनताको आर्थिक कार्यक्रमके आधारपर संगठित करना और उसमे राजनीतिक जागृति उत्पन्न करना परम आवश्यक है। इस समय किसीका भी निश्चेष्ट रहना आत्महत्याके समान है। निश्चेष्टता मृत्यु है। जो अपनेको क्रान्तिकारी कहता है वह इस आसरे चुप वैठा नही रह सकता कि मेरा तो अभी नम्वर ही नही आया और यह सोच नही सकता कि सत्याग्रहके सिवाय कोई दूसरा कार्य ही इस समय क्या है। ऐसी दूपित मनोवृत्ति वहुधा देखनेमे आती है। हम सवको इससे वचना चाहिये।[१]

भारतकी स्वाधीनताका प्रश्न

इस लेखमालाकी प्रस्तावनामे हमने यह दिखलानेकी कोशिश की थी कि सच्चे जनतन्त्रकी स्थापनाके लिए क्रान्ति आवश्यक है, क्योकि इसी प्रकार जनसमूहकी दीक्षा होती है और क्रान्ति तभी सम्भव है जव साम्राज्यशाहीके लिए सकटकी अवस्था उत्पन्न हो और जनता उस अवसरसे लाभ उठानेके लिए तैयार हो। हमने सक्षेपमे यह दिखलानेकी चेष्टा की थी कि पूंजीवादी पद्धतिका ह्रास होता जाता है और उसपर संकट वार-वार आयेगे और इस तरह क्रान्तिके लिए अवसर भी मिलते रहेगे। सच तो यह है कि पूंजीवादी पद्धतिकी असगतिके कारण ही युद्ध अनिवार्य हो गये है। पूंजीवादियोके लिए सर्वप्रधान चीज मुनाफा है। जो लोग अस्त्र-शस्त्रका व्यापार करते है वह युद्धजीवी होते है। इनका गुट अन्तर्राष्ट्रीय क्रान्तिको कायम नही रहने देता। दो राष्ट्रोमे युद्ध भी चलता रहता है और वह एक दूसरेके हाथ अस्त्र-शस्त्र भी वेचते रहते है। पिछले यूरोपीय युद्धमें यही हुआ। १९१४ से १७ तक जर्मनीको हालैण्ड, स्विटरलैण्ड, नार्वे और स्वीडनके जरिये युद्ध-सामग्री वरावर मिलती रही और इसी प्रकार जर्मनी भी, फ्रासको फौलाद भेजता रहा। इतिहास-लेखकोका कहना है कि यदि जर्मनीका अवरोध आरम्भसे ही कडाईसे किया गया होता तो युद्ध चार वर्ष न चलता और एक वर्षमे ही कैसरको सुलहके लिए मजवूर होना पड़ता। लेकिन अस्त्र-शस्त्रके व्यापारी युद्धको इतनी जल्दी समाप्त होने देना नही चाहते थे। इस तरह तो उनका व्यापार ही मारा जाता। थैनिविल जिला, जहाँ जर्मनीके लोहेके कारखाने थे, अरक्षित था और फ्रासीसी सेना इतनी नजदीक थी कि यदि वह चाहती तो उसपर कव्जा कर लेती, लेकिन उसने ऐसा नही किया, क्योकि ऐसा करनेसे जर्मनीकी फौलादकी पैदावार वहुत कम हो जाती और इसका नतीजा यह होता कि लडाई ज्यादा दिन नही चलती। अनातोले फ्रासको जव यह मालूम हुआ तव उसने कहा कि हम तो विश्वास करते थे कि यह पितृभूमिके लिए प्राणविसर्जन करेंगे,

---

१. 'संघर्ष' २८ अक्तूवर, १९४० ई०

किन्तु यह व्यवसाय और व्यापारके लिए प्राण देते है । पिछले युद्धके समयकी इस प्रकारकी घटनाओका उल्लेख किया जा सकता है, जिससे स्पष्ट हो जायगा कि पूंजीवादियोके बड़े-बड़े गुट अपने मुनाफेके लिए शान्ति कायम नही होने देते । अनातोले फ्रासका यह कहना बहुत ठीक है कि इनका आराध्य देव, पितृभूमि नही, किन्तु इनका मुनाफा है ।

पूंजीवादी पद्धति सार्वभौमिक है । इस कारण भौगोलिक हदे टूट रही है और अन्तर्राष्ट्रीयता बढ रही है । पूंजीवादी वर्ग अपने भौगोलिक राज्यकी इतनी परवाह नही करता जितना अपने वर्गके स्वार्थोकी । जिस प्रकार समाजवादियोंका कहना है कि मजदूरोकी कोई पितृभूमि नही है 'दुनियाके मजदूर एक हो जाओ' उसी प्रकार पूंजीवादी गुटका भी यही नारा है कि हमारी पितृभूमि कोई नहीं है, दुनियाके पूंजीवादियो ! आओ हम सब मिलकर जनताकी क्रान्तिको दबाने और अपने वर्गको सुरक्षित करनेके लिए एक हो जाये । जहाँ समाजवादी ससारकी पीडित और शोपित जनताका संयुक्त मोर्चा बनाते है वहाँ मुट्ठीभर ससारके पूंजीपति भी अपने स्वार्थोकी रक्षाके लिए जनताके विरुद्ध संयुक्त मोर्चा बनाते है । अपने स्वार्थोकी रक्षाके लिए यदि युद्धकी आवश्यकता हो तो उसके लिए भी तैयार है और अपने देशकी भोली-भाली जनताको तलवारके घाट उतारनेमें जरा भी दरेग नही करते ।

वर्गके भीतर भी संघर्प चलता रहता है, किन्तु जब जनतासे किसी भी साम्राज्यवादी राष्ट्रको खतरा पैदा होता है तो जनताको कुचलनेके लिए साम्राज्यशाहियाँ एक हो जाती है और जन-क्रान्तिसे अपनी रक्षा करनेके लिए आपसकी लडाई भी बन्द कर देती है । पिछले यूरोपीय यु द्धमे यही हुआ । शुरूमे लड़ाई जारी रखनेकी कोशिश की गयी, किन्तु जब लम्बाई-चौडाईके कारण जनताकी आँखे खुली, वह युद्धकी भीपणता और वास्तविकता-को समझनेमें लगी और फौजमे भी अशान्ति फैलने लगी, तब पूंजीवादियोके गुटने शान्तिका प्रयत्न करना शुरू कर दिया । जर्मन और फ्रासीसी सिपाही लडाईसे ऊब कर आपसमें भाईचारा बढाने लगे । जगह-जगह फौजमे विद्रोह होने लगे । सिपाही लडाईका मैदान छोडकर भागने लगे । रूसकी जो फौज फ्रांस लायी गयी थी उसने ब्रेस्ट लिटाव्स्कके सुलहनामोके बाद लड़नेसे इनकार कर दिया । इसपर उनके हथियार छीन लिये गये और १०, ००० सिपाहियोका कत्लेआम हुआ । यह इसलिए किया गया ताकि उनका छूत फ्रासीसी सिपाहियोको न लगे । सन् १९१८ मे यहाँतक हालत हो गयी थी कि फ्रासकी गवर्नमेण्ट आमतौरसे अपनी फौजोपर अविश्वास करती थी । इधर शहरोमें हडतालें शुरू हो गयी और ऐसी हालतमे यदि लड़ाई कुछ दिन और जारी रहती तो सामाजिक क्रान्तिका होना अनिवार्य था ।

रूसकी क्रान्ति १९१७ मे सफल हो चुकी थी । उससे एक नवीन प्रेरणा क्रान्ति-कारियोको मिलती थी । पूंजीवादियोके लिए यह एक नया खतरा था । साम्राज्यशाहीकी लड़ाईमे दस्तूर है कि एक राष्ट्र जीतता है और दूसरा हारता है । यह एक ऐसी चिन्ताजनक बात न थी, किन्तु जब साम्राज्यशाहियोको समान रूपसे जनक्रान्तिसे खतरा पैदा हो जाता

है तब युद्धको वन्द करनेमे ही उनकी रक्षा होती है, इसलिए जब यह खतरा पैदा हुआ और दूसरे तरीके इस खतरेको दूर न कर सके तभी आर्थिक अवरोध लडाईके साथ लागू किया गया और सुलहकी वातचीत शुरू की गयी । लड़ाई वन्द होनेमे देर न हुई, क्योकि यूरोपके शासक-वर्गने सामान्य खतरेको जल्द पहचान लिया । इधर लडाई वन्द की गयी और उधर जनक्रान्तिको दवानेके मनसूवे मिल-जुलकर होने लगे । विजयी और पराजित सेनाको एक दूसरेसे अलग रखा गया । क्लिमेंशोने प्रस्ताव किया कि क्रान्तिको रोकनेके लिए अमेरिकाकी फौजसे सहायता ली जाय । फ्रासके अखवारोने रूसकी नयी आजादीका गला घोटनेके लिए लूडेनडार्फको समस्त अधिकार देनेकी चर्चा चलायी । मित्रराष्ट्रोकी मंजूरीसे एक जर्मन दस्ता रूस-क्रान्तिके विद्रोहियोकी मददके लिए फिनलैण्ड भेजा गया जो फिनलैण्डकी राजधानी हेलसिंगफोर्सके ४० हजार समाजवादियोके कत्लमे मददगार हुआ । लडाई वन्द कर मास्कोपर धावा बोलनेका प्रस्ताव अमेरिकाके राष्ट्रपति वुडरो विलसनको दिया गया, किन्तु विलसनने इस प्रस्तावको मजूर नही किया । वर्लिनके स्पार्टेकिस्ट (Spartacist) नामक समाजवादियोको दवानेके लिए ५००० मशीनगने जर्मनोके हाथमें छोड़ दी गयी । इस तरह साम्राज्यवादी युद्ध एक दूसरे तरीकेके युद्धमे परिवर्तित हो गया । अव साम्राज्यशाहियाँ भी मिलकर जनतासे लडने लग गयी । सामाजिक प्रणालीको सुरक्षित रखनेके लिए धनीवर्गने हर तरहकी चाल खेली । उसके लिए एक नयी समस्या उठ खडी हुई । यह वर्ग-समस्या थी । यह समस्या उसके लिए सर्वोपरि थी । इसने राष्ट्रनीतिमे काफी उलट-फेर किया । मध्यम श्रेणीमे वर्ग-चेतना वहुत वढ गयी । सन् १६१४-१८ के इतिहासने उसके दिलोंको दहला दिया । यही कारण है कि जव हिटलरने यह दावा पेश किया कि वह वोल्शेविज्मको नेस्तनावूद करना चाहता है तो साम्राज्यशाहियोने उसे सामाजिक क्रान्तिको रोकनेका एक वाँध समझकर मजवूत करना शुरू किया । फैसिस्टोको सन्तुष्ट करनेकी नीति (Appeasement Policy) का यही रहस्य है । स्पेनके प्रजातन्त्रको कुचलनेकी साजिशका भी यही रहस्य है । इस साजिशमें व्रिटेन और फ्रास भी सम्मिलित थे । हालाँकि फ्रैंकोकी जीतने हिटलरको मजवूत कर दिया और फ्रासको व्रिटेनका आश्रित वना दिया, हिटलरने वोल्शेविज्मका हौवा दिखाकर अपना मतलव साधा और यूरोपकी ताकतोको वेवकूफ वनाकर अपने राज्यका विस्तार विना लडाईके किया और लडाईका अवसर आनेपर उसी वोल्शेविक रूससे समझौता भी कर लिया । यह सव इसीलिए सम्भव हुआ क्योकि शासकवर्ग जनक्रान्तिको वचाना चाहते थे और वर्गके स्वार्थ उनके लिए सर्वोपरि हो गये थे ।

लुत्फ तो यह है कि यह लोग वरावर शान्तिकी रट लगाये रहते हैं । एक भी आदमी ऐसा नही है जो यह कहे कि हम शान्ति नही चाहते, शान्तिकी स्थापनाके लिए नाना प्रकारके आयोजन भी करते हैं, किन्तु तिसपर भी युद्ध नही टलते । निःशस्त्रीकरणके विना शान्ति कायम नही हो सकती लेकिन शासकवर्ग ऐसे अडगे लगाता है जिससे निःशस्त्रीकरण नही हो पाता । इसका कारण यही है कि पूंजीवादी अपने मुनाफेको सवसे पहले देखते हैं । अस्त्र-शस्त्र तैयार कर वह कृत्रिम तरीकेसे वेकारीको भी घटाते हैं । इससे यह दिखानेकी

भी कोशिश की जाती है कि आर्थिक मन्दी कम हो रही है और सम्पत्की अवस्था लौट रही है। यदि आज नि.शस्त्रीकरण हो और उत्पादनकी पद्धति साथ-साथ वदली न जाय तो वेकारी वहुत वढ जायगी जिससे क्रान्तिका खतरा भी वढ जायगा। इस वजहसे भी नि शस्त्रीकरणका विरोध किया जायगा। यह साफ है कि जवतक पूँजीवादी पद्धति प्रचलित है तवतक युद्ध अनिवार्य है। यदि आप युद्धका अन्त करना चाहते है तो पूँजीवादी पद्धतिके अन्तके लिए तैयार हो जाइये। पर साधारणत: लोग इन दोनोके घनिष्ठ सम्वन्ध-को नही समझते।

पिछले युद्धकी चर्चा हमने इसलिए की जिसमे पाठकोको मालूम हो जाय कि साम्राज्यशाहीपर सकट आनेके कारण जनक्रान्तिकी सम्भावना कितनी अधिक हो जाती है। यदि लडाई चन्द महीने भी और चलती तो निस्सन्देह फ्रास और जर्मनीमे समाजवादी पद्धति कायम हो जाती। इसके फलस्वरूप सारे यूरोपका कायापलट हो जाता। पिछली वार जनक्रान्तिकी सहायता करनेमे कई कारण थे। पहले तो लडाई वहुत लम्वी चली और उस समयतक सेनाका यंत्रीकरण (Mechanization) इतना नही हुआ था जितना कि अव हो गया है जिसकी वजहसे उस समय नरसहार अत्यधिक हुआ। दूसरा कारण यह कि संसारकी नैतिक सहायता प्राप्त करनेके लिए मित्रराष्ट्रोने वडे-वडे आदर्शोकी घोषणा की थी। मित्रराष्ट्रोकी ओरसे कहा गया था कि लड़ाई जनतन्त्रकी रक्षा और विस्तारके लिए है और भविष्यमें अन्तर्राष्ट्रीय सम्वन्ध नये आधारपर कायम होगे जिससे युद्धोका सदाके लिए अन्त हो जायगा। युद्धके दौरानमे इस घोषणासे भी प्रेरणा मिली थी, पर युद्धके वाद भी जनक्रान्तिको इससे वरावर प्रेरणा मिलती रही, क्योकि मित्रराष्ट्रोने अपने वादोको पूरा नही किया और इस प्रकार जनतामे उत्तेजना और अशान्ति उत्पन्न की।

हमने ऊपर देखा कि युद्धकालमे यद्यपि शासकवर्गके समयसे होशियार हो जानेसे जनक्रान्ति हर जगह न हो सकी तथापि लम्वी चौड़ी वाते करनेसे और वादको उनको पूरा न करनेसे क्रान्तिका सिलसिला फिर शुरू हुआ। एशियामें तो खासकर युद्धके समाप्ति-के वाद ही क्रान्तिका सिलसिला शुरू हुआ था। सन् १९१९ मे मिस्र, भारत और चीनमे नया सिलसिला शुरू हुआ था। सन् १९२१ में ईरानके शाह गद्दीसे उतारे गये और सन् १९२३-२४ मे तुर्कीमे प्रजातन्त्र कायम हुआ। लड़ाईके जमानेमे या तो क्रान्ति सर्वसाधारण हो जाती है या केवल उन्ही देशोमे होती है जो लड़ाईमे परास्त होते है अथवा जहाँकी फौज लड़ाईमे शरीक होनेसे इनकार करती है।

इस वारका युद्ध कुछ दूसरे ढगका है। इसमे आदमियोंकी उतनी जरूरत नहीं पड़ती जितनी पिछली वार पडी थी। इस वार शासकवर्ग पिछली भूलको दुहराना भी नही चाहता। आज वह युद्ध और शान्तिके उद्देश्योका स्पष्टीकरण करनेको तैयार नहीं है, क्योकि वह जानता है कि जनतामे आशा पैदा करना और फिर उसे पूरा न करना काफी खतरनाक होता है। इसका कटु अनुभव उसको पिछली वार हो चुका है। आज उसकी वर्गचेतना भी वहुत वढ़ी-चढी है। इसीलिए यह भरसक ऐसा प्रयत्न करना चाहता है जिससे जनक्रान्ति न होने पावे। इसीलिए यदि आगे चलकर जनक्रान्तिकी सम्भावना

प्रवल होगी तो यह भी वहुत मुमकिन है कि सुलहकी चर्चा उठाकर लड़ाई वन्द कर दी जावे। पूंजीवादी प्रजातन्त्र पूंजीवादी प्रथाको कभी खतरेमे न डालेगा और आज चाहे भले ही वह कह ले कि फैसिस्ट वर्वर और पशु है पर जरूरत पड़नेपर वह इन्हीसे मामिला पटा लेगा लेकिन जनताको उभरने न देगा।

हमने पिछले युद्ध और आजके युद्धका यह अन्तर इसलिए वताया जिसमे पाठक यह समझ जायँ कि जनक्रान्तिका कार्य पहलेकी अपेक्षा कुछ कठिन हो गया है। फ्रासकी हार एक प्रकार विना लड़े ही हो गयी। फ्रासके शासकवर्गका नैतिक पतन इतनी तेजीसे हुआ और उसमे देशसे विश्वासघात करनेवाले लोगोका एक ऐसा स्थान था कि किसी दूसरे नतीजेकी उम्मीद ही न हो सकती थी। जिनसे क्रान्तिके नेतृत्वकी आशा की जा सकती थी, वह या तो गृहयुद्ध (Civil war) का नारा बुलन्द करनेके कारण राष्ट्रके शत्रुकी कोटिमे आ गये और इसलिए उनका दमन हुआ या उन्होने तूफानके सामने अपनी कमजोरीके कारण सिर झुका दिया। पिछली वार रूसकी सफल क्रान्ति और क्रान्तियोका प्रेरक वनी थी। इस वार उसको आत्मरक्षाके लिए ही पूरी ताकत लगानी पड़ रही है। आज हम दुनियामे आँख पसारकर देखे तो क्रान्तिके केन्द्र नजर न आयेगे। यूरोपमें हिटलरका आतक ऐसा वैठ गया है कि अभी वहाँके लोगोको होश सँभालनेमे कुछ अरसा लगेगा। या तो जव हिटलरकी युद्धमे हार हो या जव आर्थिक संगठन लडाईके वोझको वर्दाश्त न कर सके और छिन्न-भिन्न होने लगे तभी क्रान्ति हो सकती है। एशियामे चीन अवश्य फैसिज्मकी वाढको रोके हुए है और अपनी आजादीकी रक्षाके लिए अपूर्व त्याग और शौर्य प्रदर्शित कर हम सवको प्रेरणा दे रहा है। चीन इसलिए पूर्वी एशियामे आजादी और लोकतन्त्रका हिमायती है। सारा यूरोप हिटलरके सामने झुक गया पर चीन जापानकी फैसिस्ट और फौजी गवर्नमेण्टके आगे न झुका। चीनके वाद हिन्दुस्तान ही एक ऐसा देश है जो कमसे कम साम्राज्यशाही युद्धका प्रतिवाद कर रहा है। अमेरिका जिसने पिछली वार अपने प्रेसिडेण्टके मुखसे एक नयी दुनिया कायम करनेकी वात की थी, आज फैसिज्मका विरोध करके ही सन्तुष्ट है। कुछ प्रगतिशील लोग यह भी कहते है कि सवका प्रधान कार्य आज फैसिज्मका विरोध करना है और यही जनक्रान्तिकी तैयारी है। इसमे शक नही कि पूंजीवादी प्रजातन्त्र और फैसिज्ममे गुणकी दृष्टिसे अन्तर है, तथापि यह मानना पडेगा कि साम्राज्यवाद फैसिज्मके मुकावले सफल होकर स्वयं फैसिस्ट रूप धारण कर सकता यदि वह साम्राज्यकी भावनाका परित्याग नही करता। प्रो० लास्कीने अपनी एक हालकी पुस्तकमे यह दिखलानेकी चेष्टा की है कि जवतक ब्रिटेन यूरोपकी क्रान्तिका अग्रदूत नही वनता तवतक वह युद्धमे विजयी नही हो सकता। मेरी रायमे सच्ची नीति यह है कि वाहर हम फैसिज्मका विरोध करे और घरमे प्रतिगामी शक्तियोका। यूरोपके स्वतन्त्र राष्ट्रोसे यह कहना ठीक होगा कि वे फैसिज्मका मुकावला करे किन्तु पराधीन देशोसे केवल इस गुणकी विभिन्नताके कारण यह कहना कि वे फैसिज्मके विरोधमे साम्राज्यशाहीका साथ दे गलत होगा। ब्रिटेनकी मौजूदा गवर्नमेण्ट प्रगतिशील नही है और न यह आशा ही है कि वह जल्द प्रगतिशाली वन सकेगी।

इस तरह आज क्रान्तिके मार्गमे काफी रुकावटें हैं तथापि इसमे सन्देह नहीं कि जब आर्थिक संगठन टूटने लगेगा और बेकारी बढेगी तब जनता क्षुब्ध होगी। इसलिए यदि युद्धकालमे क्रान्तिका सुअवसर नही मिलता तो युद्धके बाद तो अवश्य मिलेगा। लेकिन उसकी तैयारी तो एक अरसेसे शुरू हो जानी चाहिये थी। हिन्दुस्तानमे तो हमने वक्तकी काफी बर्बादी की। सत्याग्रह यदि नही शुरू हुआ था तो कमसे कम माकूल तैयारी तो करते। इस समय तो शहरी आजादीके सवालको लेकर सत्याग्रह हो रहा है। इससे कमसे कम युद्धका नैतिक विरोध प्रदर्शित होता है। स्वतन्त्र होनेके लिए हमको जनतामे जागृति उत्पन्न करना होगा और उसको सगठित करना होगा। वर्त्तमान सत्याग्रहको आधार बनाकर यदि हम सभी तैयारीमें लग जावे तो बडा काम हो। अगले लेखमें हम गत वर्षका सिंहावलोकन करेंगे और अपनी निश्चेष्टताकी कहानी सुनावेंगे। तदनन्तर हम कुछ ऐसे प्रश्नोंपर विचार करेंगे जो हमारे रास्तेमे रुकावट डालते है। फिर सच्ची तैयारी किसे कहते हैं और उसका उपकरण और साधन कैसा हो इन विपयोपर हम विचार करेंगे।[१]

भारतकी स्वाधीनताका सवाल

सन् १९३९–४० का सिंहावलोकन

युद्धके खतरेकी ओर कांग्रेसका ध्यान सबसे पहले सन् १९२७ मे गया था। जब इटलीने अबीसिनियापर आक्रमण किया तब यह खतरा और भी बढ़ गया और इसलिए सन् १९३६ मे कांग्रेसने अपना यह निश्चय प्रकट किया कि वह साम्राज्यवादी युद्धमे भाग लेनेका विरोध करती है। त्रिपुरीका अधिवेशन एक दृष्टिसे बड़े महत्त्वका था क्योंकि उसमे युद्धका विरोध करनेका निश्चय महज दुहराया ही नहीं गया था किन्तु साथ-साथ राष्ट्रीय माँगका प्रस्ताव भी पास किया गया था और यह कहा गया था कि अब समय आ गया है जब हमको स्वभाग्यनिर्णयके सिद्धान्तको लागू करना चाहिये। त्रिपुरीमे यह स्पष्ट कर दिया गया था कि जबतक साम्राज्यवाद और फैसिज्मका समान रूपसे अन्त नही कर दिया जाता तबतक ससारमे शान्ति स्थापित नही हो सकती, कांग्रेस स्वतन्त्रता और शान्तिके मार्गका अनुसरण करना चाहती है, उसकी वैदेशिक नीति इसी आधारपर बननी चाहिये और इसलिए उसका यह निश्चय है कि वह साम्राज्यवाद और फैसिज्मसे कोई सम्बन्ध नही रखना चाहती।

दु:खके साथ कहना पडता है कि राष्ट्रीय माँगका प्रस्ताव कार्यान्वित नही किया गया और आनेवाले खतरेका मुकाबला करनेके लिए तथा अपने निश्चयोको पूरा करनेके लिए देशको तैयार नही किया गया। मन्त्रिपद ग्रहण कर लेनेके बादसे कांग्रेसके एक भागमे

१. 'सघर्ष' ६ जनवरी, १९४१ ई०

वैधानिक मनोवृत्ति प्रवल होने लगी। जनताकी हलचलसे उसको घवराहट होती थी। युद्धके आरम्भ होनेके वाद भी कोई खास तैयारी नही की गयी। दुनिया को यह दिखानेके लिए कि काग्रेस ब्रिटिश गवर्नमेण्टकी नैतिक सहायता देनेके लिए तैयार है यदि विश्वास हो कि यह लडाई लोकतन्त्रके लिए लड़ी जा रही है। काग्रेस इसी कोशिशमे लगी रही कि ब्रिटिश गवर्नमेण्टसे उसके इरादे साफ कराये जाये। युद्धका उद्देश्य क्या है और सुलहकी शक्ल क्या होगी यह सवाल वार-वार हुकूमतसे पूछे गये, पर उसने इन सवालोका जवाव देनेसे गुरेज किया। वह जवाव क्यो देने लगी; दूधका जला छाँछ फूंक-फूंक कर पीता है। सन् १९१४ मे जो यूरोपीय युद्ध हुआ था उसमे मित्रराष्ट्रोने वड़ी लम्वी-चौड़ी वातें की थी और लोकतन्त्रकी दुहाई देकर संसारकी नैतिक सहायता प्राप्त की थी पर विजयी होनेपर वह अपने वादोको भूल गये। युद्धके दौरानमे लोगोको आशा वँध गयी थी कि युद्धके वाद नये आदर्शोके अनुसार अन्तर्राष्ट्रीय सम्वन्ध स्थापित होगे और स्वेच्छाचारिताका अन्त और लोकतन्त्रकी स्थापना होगी, पर जव इन आशाओंपर पानी फिर गया तव जनतामे उत्तेजना और अशान्ति उत्पन्न हुई और क्रान्तियोंका सिलसिला शुरू हुआ। इस अनुभवसे लाभ उठाकर ब्रिटिश गवर्नमेण्ट इस वार उस भूलको दोहराना नही चाहती, इसलिए वह युद्धके उद्देश्योका स्पष्टीकरण करनेको तैयार नही है। कुछ अरसेतक इन्तजार करनेके वाद जव वायसरायके वक्तव्यसे स्पष्ट हो गया कि ब्रिटिश गवर्नमेण्ट गोल वाते करनेके सिवाय कुछ करना नही चाहती तव काग्रेसने विवश होकर मन्त्रियोको वापस वुला लिया, पर साथ-साथ यह भी साफ कर दिया कि वह सम्मानपूर्वक समझौतेकी कोशिशोको जारी रखेगी। महात्माजीका शुरूमे यह ख्याल था कि ब्रिटिश हुकूमतकी जन-धनसे सहायता न कर उसकी नैतिक सहायता करनी चाहिये। लेकिन वर्किंग-कमेटीका एक भी सदस्य इस ख्यालका न था, इसलिए महात्माजीने अपनी रायमे कुछ तवदीली की। जव गवर्नमेण्टने अपने उद्देष्श्यका स्पष्टीकरण नही किया और कोई सन्तोषजनक उत्तर नही दिया तव महात्माजीने मन्त्रिपद छोड़नेका परामर्श दिया और रामगढ़मे नेतृत्व भी ग्रहण किया। रामगढ काग्रेसमे पूर्ण स्वाधीनताकी माँग दुहरायी गयी और यह साफ कर दिया गया कि 'डोमिनियन स्टेट्स' (औपनिवेशिक स्वराज्य) उसको स्वीकार नही होगा। यह भी घोषणा की गयी कि यह युद्ध साम्राज्यवादी युद्ध है और कांग्रेसका दूसरा कदम सत्याग्रह होगा। महात्माजीने अपने भाषणमे सामूहिक सत्याग्रह करनेका विचार प्रकट किया, लेकिन यह भी साफ कर दिया कि जवतक देश तैयार नही हो जाता तवतक वह कुछ नही करेगे। उन्होने रचनात्मक कार्यक्रम तथा अनुशासनपर जोर दिया। उनके आदेशसे काग्रेस-कमेटियाँ सत्याग्रह कमेटियोमे तवदील हो गयी और रचनात्मक कार्यक्रम कार्यान्वित किया जाने लगा। जिनको इस कार्यक्रमके प्रभावशाली होनेमे विश्वास नही था वह भी इसमे इस विचारसे शरीक हुए कि विना इन शर्त्तोके पूरा किये सत्याग्रहके शुरू होनेकी कोई सम्भावना नही है। कोई प्रान्तीय कमेटी अपने कार्यक्रमको रचनात्मक कार्यतक सीमित रखनेके लिए वाध्य न थी। उसको इसका पूरा अधिकार था कि वह रचनात्मक कामके साथ अन्य कामोको भी जोडे, यदि वह काम कांग्रेसके सिद्धान्त

के प्रतिकूल न हों किन्तु संयुक्तप्रान्तको छोड़कर किसी भी दूसरे प्रान्तमें एक पूर्ण आयोजना तैयार करनेकी कोशिश नही की गयी। वजारतके जमानेमें किसानोकी शिकायतोको सुनने और उनको रफा करनेका काम निरन्तर जारी था। इस तरह कांग्रेसका सम्पर्क किसानोके साथ बराबर बना था और कांग्रेस उसके दैनिक संघर्षमे हिस्सा लेती थी। मंत्रिपदका परित्याग करनेके बादसे यह सम्पर्क बहुत कम हो गया। किसानोकी सहायता करनेका एक ही तरीका नही है। यदि हमारी गवर्नमेण्ट नही है तब भी हम किसानोंको संगठित कर उनकी मांगोके लिए शान्तिमय लड़ाई लड़कर उनकी सहायता कर सकते हैं। स्वयंसेवकोके सघटनका काम भी बहुत जरूरी था, पर दो एक प्रान्तोंको छोड़कर इस दिशामे कुछ नही किया गया। कहातक कहा जाय, कांग्रेसकी नीतिको जनताको समझानेका भी काम प्राय· नही ही किया गया। यह काम प्रायः वामपक्ष करता रहा और इसीलिए वे काफी तादादमे गिरफ्तार भी किये गये। सत्याग्रहके आरम्भके पूर्व ही लगभग पाँच हजार राजनीतिक बन्दी हो चुके थे। इस संस्थामे दक्षिणपक्षके लोगोंकी संख्या बहुत थोडी है। दक्षिणपक्ष समझौतेकी आशा लगाये बैठा हुआ था। इसके अतिरिक्त साधारणतः कांग्रेसजन सत्याग्रहके लिए किसी विशेष तैयारीकी जरूरत नही समझते और जब एक बार सत्याग्रह शुरू हो जाय तब तो उनके ख्यालसे किसी दूसरे कामकी जरूरत ही नही रह जाती। एक जमाना था जब जेलका डर दूर करना जरूरी था, लेकिन आज तो कांग्रेसने सबके लिए यह काम आसान-सा कर दिया है। जिसको देखिये वही आज सत्याग्रहकी धमकी देता है, इसीलिए महज जेल जानेका आज वह महत्त्व नही रह गया है। हम कई मंजिले पार कर चुके हैं। अब हमको आगे बढना चाहिये। राजशक्ति कैसे मिलती है इसकी तस्वीर कांग्रेसवालोके सामने नही रखी गयी है। इस कमीको हमे पूरा करना चाहिये। रामगढमे तो निश्चय हो चुका था कि कांग्रेसका अगला कदम सत्याग्रह होगा, लेकिन वह बराबर टलता ही गया। हिन्दू-मुस्लिम सवाल महात्माजीको परेशान कर डालता था। उनको इसमे भी शक था कि देश कहाँतक शान्तिके पथपर अन्ततक कायम रहेगा। इन दो कारणोसे उनको सत्याग्रह शुरू करनेमे हिचकिचाहट होती थी। इसी दुविधामे जब वे थे तब मईके महीनेमे फ्रांसकी हार हुई। इस घटनाका गांधीपर गहरा असर हुआ। एक तो उन्होने लडाईके दौरानमे ब्रिटिश हुकूमतको परेशान न करनेका निश्चय किया, दूसरे अहिंसाकी व्याख्याका और विस्तार कर यह भी तय किया कि अब समय आ गया है जब उन्हे यह घोषणा कर देनी चाहिये कि जहाँतक उनका सम्बन्ध है वह आजाद हिन्दुस्तानमे फौज नही रखेगे और यदि बाहरी आक्रमण होगा तो उसका मुकाबला सत्याग्रहसे करेंगे। यदि कांग्रेस उनके विचारको स्वीकार करती है तो वह उसका नेतृत्व करेंगे अन्यथा नही। वर्किंग-कमेटीमे उन्होने उसकी चर्चा चलायी और जब उसके बहुत से सदस्य इस विचारसे सहमत नही हुए तब वह पृथक हो गये। फ्रांसकी हारके बाद कांग्रेसके नेतृत्वका एक बड़ा भाग विचलित हो गया। वह भीतरी अराजकता और बाह्य आक्रमणके भयसे पंगु हो गया, इसीलिए वह सत्याग्रह शुरू करनेको तैयार न था। महात्माजीके अलग होनेसे सुलह-समझौतेका रास्ता साफ हो गया था क्योकि उसका ख्याल था कि

गवर्नमेण्ट यदि समझौता करेगी तो इसी शर्त्तपर करेगी कि कांग्रेस लड़ाईमें उसकी मदद करे जिसके लिए गाधीजी तैयार न थे। इस तरह पूनामे समझौतेका प्रस्ताव पास हुआ। लेकिन वायसरायने काग्रेसका प्रस्ताव मजूर नही किया। अव सत्याग्रह शुरू करनेके सिवाय और कोई दूसरा चारा नही था। वर्किग कमेटी गांधीजीको फिर कांग्रेसमे लायी और उनके सन्तोपके लिए अहिंसाकी नयी व्याख्याको स्वीकार किया। गाधीजीपर गवर्नमेण्टकी वेरुखीका वुरा प्रभाव पडा और उन्होने किसी-न-किसी शक्लमे सत्याग्रह करनेका निश्चय किया। गाधीजी गवर्नमेण्टको परेशान भी नही करना चाहते थे और काग्रेसको जिन्दा रखना तथा गवर्नमेण्टका जवाव देना भी उनके लिए जरूरी था, इसलिए उन्होने व्यक्तिगत सत्याग्रहका रास्ता निकाला और नागरिक स्वतन्त्रताका सवाल उठाया।

महात्माजी अपने सिद्धान्तके अनुसार लडाईके दौरानमे समझौता नही करते, लेकिन दूसरे दक्षिणपक्षके नेता समझौते के लिए ही सत्याग्रह कर रहे है उनके बयानोसे यह साफ है। जनता भी यही समझती है। लोगोका ख्याल है कि अगर गवर्नमेण्ट समझौतेके लिए तैयार हो जायगी तो काग्रेसके नेता महात्माजीपर दवाव डालेगे कि समझौतेके रास्तेमे वह सहूलियत पैदा करे और यदि उनका सिद्धान्त इसे गवारा नही करता तो वह कृपया एक वार फिर पृथक हो जायँ और उनको सौदा करने दे। समझौतेका प्रयास सफल न होनेपर ही सत्याग्रहका उपक्रम हुआ है। इससे यह धारणा और पुष्ट होती है। नेतृत्वका अधिकांश भाग समझौता ही चाहता है। वह क्रान्तिकी छायासे घवराता है। उससे यह आशा अव नही रह गयी है कि वह रामगढके प्रस्तावको कार्यान्वित करेगा। यदि महात्माजीके कारण युद्धके दौरानमे समझौता न हो सका तो युद्धके वाद जव विधानके प्रश्नपर फिरसे विचार होगा तो हमारे नेता फिर समझौतेकी वातचीत चलावेगे। काग्रेसके लिए सवसे वड़ा खतरा यही है। मन्त्रिपद ग्रहण कर हमने अपने लिए एक मुसीवत वुला ली। वैधानिक मनोवृत्तिको तो उत्तेजना मिली ही जिसकी वजहसे अवसरवादियोको काग्रेसमे घुसनेका मौका मिला साथ साथ मुसलिम लीगका भी विरोध वढ गया और हिन्दू-मुसलिम प्रश्नने भयंकर रूप धारण कर लिया।

राज्यशक्ति हासिल करनेके लिए किस किस्मकी तैयारी होनी चाहिये यह भी हम नही जानते। पुराने ढंगसे ही अव हम भी काम करते है और कांग्रेसको एक नये सांचेमे ढालनेकी तरफ हमारा ध्यान नही है। इस प्रश्नपर हम किसी दूसरे लेखमे विचार करेगे। इस लेखमे तो हम केवल एक वर्षका हिसाव दे रहे है। काग्रेसके अधिकारियोने कोई खास तैयारी नही की इसका उल्लेख हम ऊपर कर चुके है।

अव जरा वामपक्षकी भी कथा सुनिये। पहले तो वामपक्षमे कोई एकता नही है वह कई टुकडोमे वँटा हुआ है। यह हालत केवल हमारे ही देशमे नही है, किन्तु सारे ससारमे वामपक्षके टुकडे-टुकडे हो गये है। दलोके भीतर भी कही-कही उपदल वन गये है। इस परिस्थितिके वुनियादी कारणोमे जानेका यह मौका नही है किन्तु इसकी वास्तविकतासे इनकार नही किया जा सकता। भारतवर्पमे वामपक्षके अन्तर्गत कई दल है। इस समय इनमेसे कुछकी राहे भी अलग हो गयी है। काम करनेका तरीका तो भिन्न था ही।

रायपन्थी आज जिस नुकतेपर पहुँच गये है उसको देखते हुए उनके साथ मिल-जुलकर काम करनेका सवाल ही नही उठता। कम्युनिस्ट संयुक्त मोर्चेके तभीतक कायल रहते हैं जबतक उनमे शामिल होनसे उनकी ताकत बढती रहे। जब कभी उनके दिमागमे यह ख्याल आता है कि क्रान्ति नजदीक आ गयी है तब वह संयुक्त मोर्चेसे हटकर अपना राग अलग अलापने लगते हैं। इसका कारण यह है कि वह क्रान्तिका नेतृत्व अकेले करना चाहते हैं जो संयुक्त मोर्चेमें शामिल रहकर नही हो सकता। समाजवादी एकता भी वह इसलिए नही चाहते कि विभिन्न दल मिल-जुलकर कुछ हासिल करें, बल्कि इसलिए कि इस तरह वह अपना प्रभाव बढ़ा सकते है और समाजवादी दलोंपर अपना आधिपत्य जमा सकते हैं। जबतक आप उनको बेरोक-टोक काररवाई करने दें तबतक वह आपको क्रान्तिकारी मानेंगे, लेकिन अगर आपने इसमे रुकावट डाली और अपनेको अलग रखनेकी व्यवस्था की तो आप तत्काल सुधारवादी और समाजवादियोमे फूट डालनेवाले हो जायँगे। असलियत यह है कि यह क्रान्तिके नेतृत्वमे अपनी ही प्रधानता चाहते हैं। यदि यह सम्भव नही है तो यह क्रान्तिको ही असम्भव बनानेकी चेष्टा करेंगे। दलके हित इनके लिए जनान्दोलनके हितोसे भी बढ़कर है। यह तो अपनेको क्रान्तिका तनहा ठेकेदार समझते हैं। इनको छोडकर सब सुधारवादी है, इसलिए अगर क्रान्ति हो तो इन्हीके नेतृत्वमें हो। इसीलिए क्रान्तिके जमानेमे वही संयुक्त मोर्चा इनको मजूर होगा जिसमे इनका प्राधान्य है। दूसरे तरहके मोर्चे क्रान्तिके लिए अहितकर हैं। उनको कमजोर करना और उनके नेतृत्वको बदनाम करना इन क्रान्तिके ठेकेदारोके लिए अत्यन्त जरूरी हो जाता है। जितनी साम्राज्य-विरोधी संस्थाएँ है उनपर कब्जा पाना और यदि इसमे सफलता न मिली तो उनको ध्वंस करना भी जरूरी हो जाता हे। यह ध्वंसात्मक कार्य वक्त आनेपर 'क्रान्तिकारियो' के लिए मैदान साफ रखनेके लिए अत्यन्त जरूरी है। जबसे युद्धका आरम्भ हुआ है तबसे कम्युनिस्टोंका सम्पर्क जनतासे बहुत कम हो गया है। अब वह एक ही फ्रण्ट (मोर्चे) पर काम करते है, यह हे विद्यार्थी फ्रण्ट। वह पार्टी जो अपनेको श्रमजीवी वर्गकी पार्टी कहती थी और दूसरोका इसी आधारपर मजाक उड़ाती थी कि उसके सदस्य निम्न-मध्य-श्रेणीके हैं आज स्वयं निम्न-मध्य-श्रेणी (Petty bourgeoisie) की पार्टी हो गयी है। विद्यार्थियोमे काम करनको हम काफी महत्व देते हैं, लेकिन जनताका स्थान कोई दूसरा समुदाय नही ले सकता। मजदूर सस्थाओमे कम्युनिस्टो-का क्या स्थान है यह अखिल भारतीय मजदूर कांग्रेसके हालके अधिवेशनसे साफ हो गया है। एक बहुत दिनोका भ्रम दूर हो गया। हकीकत यह है कि वहाँ भी अन्य दल इनसे कई गुना ज्यादा हैं। किसानोमें इनकी खास जगह कोई कभी नही रही। बंगालके कुछ जिलोको छोड़कर किसानोमे इनका काम नहीके बराबर है। कांग्रेसमे तो इनका कभी कोई विशेष स्थान रहा ही नही है। अब तो वह कांग्रेसके ही खिलाफ हो गये हैं। जब ऐसी हालत है तो विद्यार्थी-फ्रण्टपर आधिपत्य जमाना बहुत जरूरी हो जाता हे। विद्यार्थियो-में यदि बहुमत नही है तो मतलबबरारीके और तरीकोसे काम लेना चाहिये। डा० अशरफ साहबने तो यहाँतक कहा कि इतिहासका तकाजा है कि विद्यार्थीसघके दो टुकड़े

हो जायँ, क्योकि आज यह वहुत जरूरी वात साफ हो जाय कि कौन क्रान्तिकारी है और कौन सुधारवादी। वाकई डाक्टर साहवने हसका काम किया। जिस तरह हस दूधका दूध, पानीका पानी अलग कर देता है उसी तरह डाक्टर साहवने अपने भेडियोको वकरियोसे अलग कर लिया। डाक्टर साहव जव अपनी वक्तृता दे रहे थे उस समय उनके पक्षके विद्यार्थीने यही समझा होगा कि वह विद्यार्थी-सघमे भेद उत्पन्न कर कोई इतिहास-निर्दिष्ट क्रान्तिकारी काम कर रहे है। अव विद्यार्थी-संघपर कव्जा जमाकर यह आलथी-पालथी मारकर बैठेगे और क्रान्तिका इन्तजार करेगे। इनका दुर्भाग्य है कि और संस्थाएँ इनके कव्जेमे नही है और न वह खतम ही हो पाती है। इससे इनके जरिये क्रान्तिके सफल होनेमें जरा शक होता है।

लेकिन यह तो अपनी शुद्ध क्रान्ति चाहते है, कोई अधकचरी चीज नही। इसलिए कमजोर होते हुए भी यह दूसरोसे सम्मानपूर्वक समझौता नही करेगे। इस घातक मनोवृत्ति-ने हिटलरका उत्थान किया था। जव नाजी सैनिकोकी ताकत वढने लगी तव मजदूरोने उनको अपना दुश्मन समझकर उनका पीछा करना शुरू किया और लड़ाईकी तैयारी करना चाहा। हिटलरने एक लाख भूरी कमीजवालोको जव वर्लिन वुलाया तव वामपक्षके विभिन्न जिलोके नेताओने आपसमे परामर्श किया कि ऐसी परिस्थितिमे क्या करना चाहिये। सभी विचारके समाजवादी इकट्ठा थे। वहुतोने सलाह दी कि फौरन आम हड़तालकी घोषणा होनी चाहिये और मजदूरोको लडाईके लिए सयुक्त मोर्चा वनाना चाहिये। लेकिन कम्युनिस्टोने कहा कि हिटलरको आने दो हम उससे समझ लेगे। इस निश्चेष्टताके कारण मजदूरोका लडनेका जोश ठंडा हो गया। जर्मन पार्लमेण्ट (Reichstag) को जलवाकर नाजियोने इस वहाने लोगोका दमन करना शुरू किया और इस तरह विद्रोह-की आशापर पानी फिर गया। यह सवसे अकेले ही समझना चाहते है, इसलिए किसीसे नही समझ पाते। इन्होने एक साल कोरी वकवासमे ही निकाल दिया। जनान्दोलनकी सिद्धिके कामकी सर्वथा उपेक्षा की।

फारवर्ड व्लाकको वने अभी दो-ढाई सालसे ज्यादा नही हुए है। इसकी कोई स्पप्ट विचारधारा नही है। काग्रेसके वर्तमान नेतृत्वका विरोध ही इसका मुख्य आधार रहा है। इस कारण तरह-तरहके लोग इसमे सम्मिलित हो गये। इसने स्वतन्त्र रीतिसे सत्याग्रह-संग्राम चलानेकी कोशिश की, पर विफल रहा। अव इन्होने अपनी गलती पहचानी है और ये अपने कामका ढंग वदल रहे है, लेकिन वर्ग-संघटनोमे इनका विशेप काम नही है, और हो भी कैसे सकता है। इसके लिए दो वर्पका समय वहुत थोडा होता है, लकिन हम आशा करते है कि फारवर्ड व्लाक अपनी नीतिको फिरसे स्पप्ट करेगा और किसान मजदूरोमे काम करनेपर जोर देगा।

समाजवादी सयुक्त मोर्चेपर तवतक जोर देते रहे जवतक काग्रेसके नेताओने समझौतेका प्रस्ताव नही पास किया था। पूनामें समाजवादियोने समझौतेका घोर विरोध किया, क्योकि वह कांग्रेसके प्रस्तावोके विरुद्ध था और उससे जनान्दोलनको ठेस पहुँचती थी। समाजवादी काग्रेस-नीतिका प्रचार करनेके साथ-साथ किसानो और मजदूरोमे भी थोड़ा

बहुत काम करते थे। आज तो वह इसपर काफी जोर देते है। यदि अन्य वामपक्षी भी इस कामको अमलमे महत्व दें तो इस दिशामें काफी काम हो सकता है।

इतना कहनेपर यह मानना ही पड़ेगा कि व्यक्तिगत सत्याग्रहके आरम्भ होनेतक वामपक्ष-के दलोंने ही प्रधानतया काग्रेसके युद्ध-विरोधी निश्चयका जनतामें प्रचार किया था।

एक वर्ष तो किसी तरह व्यतीत हो गया। क्या भविष्यके लिए कुछ आशा की जा सकती है? वामपक्षसे तबतक कुछ नही हो सकता जबतक वामपक्षके वे दल जिनके उद्देश्य एक हैं इस बातको नही समझ लेते कि संयुक्त मोर्चा बनानेके सिवाय कोई दूसरी गति नही है। लेकिन यह तभी सम्भव है जब ईमानदारीकी रीतिसे काम हो और ठेकेदारीसे हमारे दोस्त दस्तबरदार हो। समाजवादियोंने एकताके लिए काफी कोशिश की। सालोतक इसी कोशिशमे लगे रहे। इसके लिए पार्टीमें सभी विचारके समाजवादियोको स्थान दिया गया, लेकिन इस रुखकी कद्र न की गयी और सदा अपना मतलब गांठनेमे दूसरे लगे रहे। इस समय हर जगह यह रोग फैल गया है कि दलविशेषके स्वार्थ आन्दोलनकी जरूरतोसे भी ऊपर है। जबतक इस रोगसे हमारा छुटकारा नही होगा तबतक हम कुछ नही कर सकते। इसके लिए अहंमन्यताको कम करना होगा और यह मानना होगा कि हमारे सिवा दूसरे भी क्रान्तिकारी हो सकते है।[1]

आगे बढनेमे इस एकताका अभाव रुकावट डालता है। दूसरी बड़ी रुकावट हिन्दू-मुसलिम समस्या है। अगले लेखमें हम इसपर विस्तारसे विचार करेंगे।

अगस्त-क्रान्तिका स्वरूप और उसका सन्देश

प्रश्न—९ अगस्तको छेड़े गये भारत छोड़ो आन्दोलनकी, आपकी रायमे क्या मुख्य विशेषता है?

उत्तर—यह आन्दोलन भारतीय स्वाधीनता-आन्दोलनका सबसे बड़ा जन-संग्राम था। किसी पूर्वनिश्चित योजनाके अभावमे भी देशकी जनता सर्वत्र सरकारके विरुद्ध उठ खडी हुई और जैसा कि स्वत -प्रसूत जनक्रान्तियोमे देखा जाता है, उसने शासन-सत्ताके केन्द्रोपर अधिकार करना और विदेशी शासनके प्रतीकोको नष्ट करना आरम्भ किया। प्रचलित शासन-व्यवस्थाके विरुद्ध शान्तिमय प्रदर्शन तथा स्वत -प्रसूत व्यापक जन-विद्रोहमें जो अन्तर होता है वही 'भारत छोड़ो' आन्दोलन तथा उसके पूर्ववर्त्ती काग्रेसके आन्दोलनोमे देख पड़ता है।

प्रश्न—क्या 'अगस्त-आन्दोलन' को कांग्रेसका आन्दोलन कहना उचित होगा? कांग्रेस 'हाईकमाण्ड'का अपनी गिरफ्तारीके बाद आन्दोलन चलानेके सम्बन्धमें किसी योजनाका न छोड़ जाना किस बातका द्योतक है?

उत्तर—यह आन्दोलन काग्रेसका आन्दोलन था इसमे मुझे कोई सन्देह नही है।

---

१. 'संघर्ष' १३ जनवरी, १९४१ ई०

अपने लेखो और भाषणोंद्वारा महात्माजी तथा काग्रेसके दूसरे नेताओंने आन्दोलनके लिए वातावरण पहलेसे ही तैयार कर रखा था। काग्रेस-कार्यसमितिके सदस्योंकी गिरफ्तारीकी वातको ध्यानमे रखते हुए यह आदेश जारी कर दिया गया था कि नेताओकी गिरफ्तारीके पश्चात् हर व्यक्ति अपनेको ही अपना नेता समझे और अहिंसाके दायरेके भीतर रहते हुए जो उचित समझे करे। इस आदेशके वावजूद यह तर्क करना कि महात्माजी गिरफ्तार हो गये और आन्दोलन छेड नही सके, अतः जो आन्दोलन आरम्भ हुआ वह काग्रेसका आन्दोलन नही वरन् नेताओकी गिरफ्तारीपर केवल विरोध-प्रदर्शन था, मेरी रायमे शाब्दिक तर्क मात्र है, कोरी वकालती बहस है।

मेरा अनुमान है कि महात्माजी राष्ट्रीय माँगको लेकर वायसरायसे बाते करनेवाले थे, इसी कारण सम्भवतः वे सत्याग्रहका स्पष्ट कार्यक्रम रखना उचित नही समझते थे। किन्तु देशकी अनिश्चित अवस्थाको देखते हुए वे चुप भी नही बैठ सकते थे। इस कारण उन्होने वीचका मार्ग अपनाया अर्थात् 'भारत छोड़ो' प्रस्ताव अखिल भारतीय काग्रेस कमेटीसे स्वीकृत कराया। कार्यक्रमका दिया जाना यद्यपि उचित ही होता, किन्तु जनताकी तत्कालीन मनोदशाको देखते हुए यह नि संकोच रूपसे कहा जा सकता है कि कार्यक्रमके रखे जानेसे भी आन्दोलनके स्वरूपमे अन्तर न आता।

प्रश्न—अगस्त-आन्दोलनसे राष्ट्रीय कार्यकर्ताओको क्या प्रमुख शिक्षाएँ मिलती है ?

उत्तर—इस आन्दोलनने दिखलाया कि जनता बहुत आगे बढ़ गयी है, कार्यकर्तागण पीछे रह गये है। प्रचारका कार्य बहुत हो चुका, जनतामे क्रान्तिकारी चेतनाका विकास सन्तोषजनक सीमातक हो चुका है, आवश्यकता है इस चेतनाको सघटनात्मक रूप देनेकी। कार्यकर्ताओको क्रान्तिके स्वरूपका अध्ययन करना चाहिये और उसका सचालन करनेके लिए क्रान्तिकारी रचनात्मक सघटन-कार्यमे जुट जाना चाहिये। क्रान्तिका संचालन करनेकी कलाके साथ कार्यकर्ताओको यह भी समझना चाहिये कि सत्ता हाथमे आनेपर उसे कैसे वनाये रखा जा सकता है।

प्रश्न—क्या आपकी रायमे अगस्त-आन्दोलनमे अपनायी गयी तोड़-फोड़की प्रणाली काग्रेसकी अहिंसा-नीतिके विरुद्ध थी ?

उत्तर—मै हिंसा-अहिंसाकी शास्त्रीय वहसमे पडना नही चाहता। हिंसा-अहिंसाका सूक्ष्म विचार बहुत कठिन है। इस विपयमे विद्वान् भी मोहको प्राप्त होते है। किन्तु इस सम्वन्धमे मेरा मत यह है कि जितने मानवोचित और प्रभावशाली उपाय है उन सवका अवलम्बन किया जा सकता है। उपायोके औचित्यका विचार करनेमे उनकी नैतिकताका भी विचार करना होता है, किन्तु नैतिकताका मापदण्ड ऐसा न होना चाहिये जिसके अनुसार कार्य करना सामान्य जनोके लिए असम्भव हो।

प्रश्न—अगस्त-आन्दोलनके अनुभवोंके प्रकाशमे आपकी रायमे काग्रेसको अपने शान्तिकालीन रचनात्मक कार्यक्रममे क्या परिवर्तन करना चाहिये ?

उत्तर—इसमे सन्देह नही कि सामाजिक सुधार अथवा शिक्षाके प्रचारके लिए जो कार्य किया जाय उससे राष्ट्रकी पुष्टिमे सहायता मिलती है किन्तु राजनीतिक दृष्टिसे

हम उसी रचनात्मक कार्यक्रमको महत्व देगे जो प्रत्यक्ष रूपसे विदेशी सत्ताको हटाने और अपनी सत्ताको कायम करनेमे सहायक होता हो । इस दृष्टिसे किसानो और मजदूरोंका उनकी आर्थिक माँगोंके आधारपर संघटन, गाँवोंमे आत्मरक्षाका कार्य करनेवाले स्वयं-सेवकोका संघटन, ग्राम-पंचायतोकी स्थापना, शासन-पद्धतिसे स्वतन्त्र सहयोग-समितियोंकी स्थापना, विशेष महत्वके हैं जो अन्य शान्तिकालीन रचनात्मक कार्य है उनका महत्व तभी है जब कि उन्हें इस कार्यक्रमके साथ आनुषगिक रूपसे रखा जाय ।

प्रश्न—क्या अगस्त-क्रान्तिके परिणामस्वरूप आपको स्वाधीनता-आन्दोलनके लिए किसी प्रकारका खतरा दिखायी पड़ता है ?

उत्तर—इस आन्दोलनमे लोगोने जिस साहस, शौर्य आदिका परिचय दिया उसके लिए उचित आदर रखते हुए भी हमको उसकी त्रुटियोंकी उपेक्षा नही करनी चाहिये । एक यह भूल हो सकती है कि हम संग्रामके उस स्वरूपको ही अतिरञ्जित महत्व देने लग जायँ और उसको महज दुहरानेकी चेष्टा करे । वास्तविक जन-क्रान्तिके स्वरूपके लिए मजदूरोकी आम हडताल और किसानोकी लगानबन्दीका होना बहुत आवश्यक है । हमे इस बातका ध्यान रखना है कि आन्दोलन कुछ चुने हुए व्यक्तियोके समूहोका आतंकवादी विद्रोह नही वरन् देशव्यापी पैमानेपर जनताकी क्रान्ति हो ।[1]

सफल क्रान्तिकी तैयारी कीजिये

सन् १९४२ मे आन्दोलनके मुकाबलेमे पहले आन्दोलन प्रदर्शनमात्र थे, स्वतन्त्रताकी प्राप्तिके लिए हमारा यह पहला प्रयास था । इसको हम सच्चे अर्थमे जनताकी क्रान्ति कह सकते है । इस क्रातिमे लाखो भारतवासियोने भाग लिया और हजारो नवयुवकोने प्राणोकी बाजी लगाकर भारी खतरेको उठाया । इसकी रूपरेखा थी जो उन क्रान्तियोकी होती है जिनका नेतृत्व जनता स्वय करती है और जिनकी प्रगति स्वरसेन (स्वतःप्रसूत) होती है । ऐसी क्रान्तिकी जो खूबियाँ होती हैं वह इसमें भी पायी जाती हैं और उसकी त्रुटियाँ भी । सामाजिक क्रान्तिकी दृष्टिसे इसका महत्व नही है, किन्तु राष्ट्रीय क्रान्तिकी दृष्टिसे इसका बहुत ऊँचा स्थान हे । पुनः यह भी ठीक है कि इस क्रान्तिके फलस्वरूप जनतामे अपूर्व जागृति हुई है और सामाजिक क्रान्तिकी यह आधार-शिला है ।

यह क्रान्ति ८ अगस्तके प्रस्तावसे सम्बद्ध है । यह प्रस्ताव ऐतिहासिक महत्व रखता है और प्रत्येक दृष्टिसे अपने समयके लिहाजसे यह पूर्ण है । हम इस प्रस्तावको युगके अनुकूल पाते हैं । इसकी राष्ट्रीयता सकुचित नही है, किन्तु उदार है और अन्तर्राष्ट्रीयताके साथ इसका सामंजस्य है । राष्ट्रीयताकी भावना आज भी प्रबल है और प्रत्येक युद्धके पश्चात् वह और भी प्रबल हो जाती है । जब रूसमे आज हम राष्ट्रीयताका बोलबाला पाते है तब उन देशोका क्या कहना जो अभी अपनी स्वतन्त्रताके लिए लड रहे है । राष्ट्रीयता

---

१. 'समाज' ८ अगस्त, १९४६ ई०

इन गुलाम देशोका एक जवर्दस्त शस्त्र है । किन्तु हमारी विशेषता यह है कि जहाँ हम अपनी स्वतन्त्रताके लिए प्रयत्नशील है वहाँ हमारी पूरी सहानुभूति उन सव अधीन देशोके साथ है जो हमारी तरह साम्राज्यवादके चगुलसे छुटकारा पाना चाहते है । हमारी यह भी घोषणा है कि हम स्वतन्त्र होकर किसी देशकी स्वतन्त्रताका अपहरण नही करेगे । इस प्रकार हमने अपने पड़ोसी राष्ट्रोको अभयदान किया है और उनका सौहार्द प्राप्त किया है ।

साथ ही साथ हम संसारके अन्य देशोसे पृथक् भी नहीं रहना चाहते । हम स्वतन्त्र राष्ट्रोके कुटुम्वमे सम्मिलित होकर अपने कर्तव्योको पूरा करना चाहते है और विश्वशान्ति-की स्थापनामे सहायक होना चाहते है । स्वतन्त्र भारत शान्तिका एक जवर्दस्त समर्थक होगा और सस्कृतियोके आदान-प्रदानमे उसका उचित मान होगा । हमको न उपनिवेशोकी आवश्यकता है और न किसी दूसरे राष्ट्रके आर्थिक-जीवनपर प्रभुत्व पानेकी । हम आत्मतुष्ट है, क्योकि हमारा जन-वल और धन-वल पर्याप्त है । हमारा पुरातन इतिहास भी हमको यही शिक्षा देता है ।

जहाँ इस प्रस्तावमे उदार राष्ट्रीयता और अन्तर्राष्ट्रीयताका उल्लेख है वहाँ अपने देशकी जनताके हितोकी उपेक्षा भी नही की गयी है और स्वराज्यके स्वरूपका किंचिन्मात्र दिग्दर्शन भी कराया गया है । हम चाहते है कि राष्ट्रकी शक्ति जनताके हाथमे आवे अर्थात् किसान और मजदूर जो राष्ट्रकी सम्पत्तिका उत्पादन करते है, राज्यशक्तिका संचालन और उपयोग करे । हमारा स्वराज्य मध्यम वर्गका स्वराज्य नही होगा, किन्तु वास्तवमे किसान-मजदूर-राज होगा ।

यह तो हमारा सन्' ४२ का निश्चय है । इसीको कार्यान्वित करनेके लिए अगस्त-क्रान्ति हुई थी । किन्तु इस प्रस्तावके सव पहलू क्रान्तिमे भाग लेनेवालेके सामने न थे । क्रान्तिकी कोई तैयारी भी न थी । क्रान्तिके लिए उपयुक्त वातावरण तैयार करना ही क्रान्तिके लिए पर्याप्त नही होता । इसके लिए उपयुक्त सगठनकी आवश्यकता होती है । क्रान्तिका आरम्भ और स्वरसेन होना वहुत अच्छा है । जनताकी लाभकी दृष्टिसे यही श्रेयस्कर है, किन्तु क्रान्तिके पीछे व्यापक दृष्टि रखनेवाले और क्रान्तिके विज्ञानके समझने वाले कर्णधार चाहिये और चाहिये सगठन जो उनके आदेशोके अनुसार जनताकी उन्मुक्त शक्तियोका समुचित उपयोग कर सके । ऐसी क्रान्तिके अवसरपर जनताका नैतिक वल वहुत वढ गया है और लाखो आदमी मानवताके सद्गुणोंका अपनेमे अनुभव करते है । क्रान्तिके कार्यको यही वात सुगम वनाती है और सफल क्रान्तिकी रक्षा करनेमे भी यही समर्थ होती है ।

क्रान्तिकी सफलताके लिए सेनाका विद्रोह करना , कमसे कम उसका तटस्थ रहना, आवश्यक होता है । सन् ४२ मे सेनाका सहयोग हम भारतमे पा सके, यद्यपि देशके वाहर आजाद-हिन्द-फौजके सगठनने भारतीय सेनाके एक अशमे विद्रोहकी अग्नि प्रज्वलित कर दी थी । यदि कही यह सुयोग देशके भीतर प्राप्त होता और राष्ट्रके दो अग—नागरिक और सैनिक—अलग-अलग काम न कर एक सूत्रमे आवद्ध होते तो क्रान्तिकी

सफलता निश्चित थी। अन्य त्रुटियोंके साथ-साथ यह एक भारी कमी थी जिसकी ओर भी ध्यान देनेकी आवश्यकता है।

९ अगस्त सन् ४२ हमारे इतिहासमें सदा स्मरणीय रहेगा, किन्तु यदि हम उसकी वैज्ञानिक विवेचना कर उससे उचित उपदेश न लेंगे और अपनी त्रुटियां और दुर्बलताओंका अध्ययन कर उनके दूर करनेकी चेष्टा न करेंगे तो हम अगस्त-क्रान्तिका पूरापूरा लाभ न उठा सकेंगे। हमको यह न भूलना चाहिये कि हमने अपने लक्ष्यको अभी नहीं पाया है। ९ अगस्तके दिन हमको इस निश्चयको दुहराना चाहिये और उसको कार्यान्वित करनेके लिए दृढ़ संकल्प होना चाहिये।[1]

मध्यकालीन सरकार

इतिहासमें जिस स्थायी क्रान्तिकारी गवर्नमेण्टका उल्लेख मिलता है वह एक भिन्न वस्तु है। उसका निर्माण सफल क्रान्तिके पश्चात् होता है। उसका कार्य राष्ट्रीय विधान-परिषदको आमंत्रित करना होता है। वही विधान-परिषदका चुनाव कराती है और इसका प्रबन्ध करती है कि प्रत्येक बालिग पुरुष और स्त्रीको स्वच्छन्द मत देनेका अधिकार हो तथा चुनावमें किसी प्रकारकी अनियमितता न हो। पुनः यही स्थायी गवर्नमेण्ट परिषद्को राष्ट्रका भावी विधान बनानेका पूर्ण अधिकार देती है। इस गवर्नमेण्ट-का यह भी कर्तव्य होता है कि जब तक नयी गवर्नमेण्ट अस्तित्वमें नहीं आती तबतक वह देशका शासन करे तथा परिस्थितिके अनुसार जनताके हितोंकी रक्षाके लिए अधिक-से-अधिक प्रयत्न करे। रूसमें लेनिनके अनुसार स्थायी गवर्नमेण्टको कमसे कम निम्नलिखित कार्यक्रमको कार्यान्वित करना चाहिये था।—निरंकुश शासनका अन्त, लोकतन्त्रकी स्थापना, हर बालिग पुरुष और स्त्रीको वोट देनेका अधिकार, बैलेट द्वारा वोट, व्यक्तिकी स्वतन्त्रता, भाषाकी स्वतन्त्रता, प्रेसकी स्वतन्त्रता तथा सभा करनेकी स्वतन्त्रता, राष्ट्रोंको स्वभाग्य-निर्णयका अधिकार, मजदूरोंके लिए आठ घण्टेका दिन तथा उनके स्वत्वोंकी रक्षाके लिए कानून आदि। यह कार्यक्रम देशकी तात्कालिक परिस्थितिके अनुसार होता है। हमारे यहाँ परिस्थिति ऐसी हुई कि विधान-परिषद् पहले बन गयी और मध्य-कालीन सरकार पीछे बनी। किन्तु केवल इससेकोई अन्तर नहीं आता क्योंकि यहाँ चुनावमें कोई अनियमितता नहीं हुई। अन्तर चुनावके प्रकारमें है। यहाँ व्यविस्थापिका सभाओं द्वारा चुनाव हुआ है और इन सभाओंके सदस्योंका चुनाव बालिग मताधिकारके आधारपर नहीं हुआ है। यदि मध्यकालीन सरकारका निर्माण पहले हो गया होता तब भी यही स्थिति होती, क्योंकि कांग्रेसने चुनावके इस प्रकारको स्वीकार कर लिया था। यह भी स्पष्ट है कि यहाँकी विधान-परिषद् एक ऐसी संस्था नहीं है जिसको पूर्ण अधिकार प्राप्त हों कुछ सिद्धान्त उसके लिए निरूपित कर दिये गये हैं। इनको माननेके लिए वे बाध्य हैं

1. 'समाज' ८ अगस्त, १९४६ ई०

अन्यथा उसको विधान वनानेकी स्वतन्त्रता है। पुनः क्रान्तिके सफल होनेके पश्चात् उसका निर्माण नही हुआ है। हाँ,ब्रिटिश गवर्नमेण्टने भारतके स्वतन्त्रताके हकको तथा भावी विधान वनानेके हकको स्वीकार कर लिया है। किन्तु उसकी एक शर्त्त यह भी है कि अल्पसख्यक समुदायोके हितोकी रक्षाका विधान दिया जाय तथा उसके साथ कुछ प्रश्नोके निपटारेके लिए सन्धि की जाय। ये प्रश्न क्या है और उनका निपटारा ब्रिटिश गवर्नमेण्ट किस प्रकार चाहती है यह हमको नही वताया गया है। मुझको यही वात सवसे अधिक खटकती है।

रास्तेके खतरे

इसमें सन्देह नही कि ब्रिटिश गवर्नमेण्टने समझ लिया है कि वह अव भारतपर पुराने ढंगसे शासन नही कर सकती। दिन प्रति दिनके शासनका काम वह भारतको सौपना चाहती है, किन्तु अपने आर्थिक हितोको वह सुरक्षित रखना चाहती है, क्योकि यदि उसका व्यापार वढता नही तो वह इङ्गलैण्डकी जनताको सन्तुष्ट नही रख सकती। वह यह भी चाहती है कि फौजी दृष्टिसे भारत उसका मित्र रहे तथा युद्धकी अवस्थामे भारतसे उसको पूरी सहायता मिले। इस सम्वन्धमे ब्रिटिश सेनाके एक भागको वह हमारे देशमे कुछ वर्षोंके लिए रखनेकी माँग कर सकती है। ब्रिटिश अफसरोद्वारा भारतीय सेनाकी शिक्षा हो, ब्रिटेनसे ही लडाईका सामान खरीदा जाय तथा युद्धकी अवस्थामे उसको मार्गकी सुविधा रहे और हर तरहकी मदद दी जाय, ये सव माँगे भी हो सकती है। मिस्र, ईराकमे ऐसा ही हुआ है। ब्रिटिश गवर्नमेण्टका यह रवैया रहा है कि सन्धि-पत्रकी पहली धारामे वह पूर्ण स्वतन्त्रताको स्वीकार करती है और अगली धाराओमे उसपर अनेक प्रकारके प्रतिवन्ध लगा देती है। मुझे सवसे अधिक भय सन्धि-पत्रकी शर्तोसे है और आज जव उसकी उपेक्षा की जाती है तो मुझे आश्चर्य होता है। मेरी रायमे जहाँ और वातोका स्पष्टीकरण कराया गया, वहाँ इसका भी स्पष्टीकरण होना चाहिये था। पुन. वालिग मताधिकारके अनुसार विधान-परिषद्का न चुना जाना एक वडी कमी है। वालिग मताधिकार स्वयं एक क्रान्तिकारी सिद्धान्त है। यदि विधान-परिषद्का चुनाव इस सिद्धान्तके अनुसार होता तो देशका वातावरण ही दूसरा होता। उस अवस्थामे जनता सजग होती, विधान-परिषद्से उसका प्रत्यक्ष सम्वन्ध स्थापित होता और वह परिषद्के कामोमे दिलचस्पी लेती। क्रान्तिके सफल होनेके पश्चात् तो जनताकी सक्रियता वहुत वढ जाती है। इस लाभसे हम वञ्चित है।

हमारे देशमे जो प्रयोग इस समय हो रहा है वह एकदम नया है। इसकी सफलताके सम्वन्धमे मतभेदकी सम्भावना वनी रहती है। जो इस प्रयोगके पक्षमे है वे भी निश्चित रूपसे नही कह सकते कि इसके द्वारा हमारा लक्ष्य अवश्य प्राप्त होगा। इसीलिए वे क्रान्तिकारी मनोवृत्तिको वनाये रखने और अपने सगठनको सुदृढ वनानेका उपदेश देते है। वे इसकी आशा अवश्य रखते है कि समझौतेके मार्गसे सफलता मिलेगी अन्यथा वे समझौता स्वीकार ही क्यो करते ?

एक कमजोरी और है जिसकी ओर ध्यान दिलाना आवश्यक है। जब समझौतेसे काम होता है तब विधान-परिषद्मे प्रधान पक्षोका सम्मिलित होना आवश्यक हो जाता है। मुसलिम लीगके बाहर रहनेसे परिषद् कमजोर है।

मध्यकालीन सरकारकी स्थिति चाहे जो हो, जब वह बन गयी तो प्रश्न यह है कि इसके प्रति हमारी नीति क्या हो। काग्रेसने एक कदम उठाया है, एक जिम्मेदारी अपने ऊपर ली है। लीगका केवल असहयोग नही है, उसका प्रबल विरोध भी है। समय भी असाधारण है, प्रश्न बडे जटिल हैं, मजदूरोमे घोर अशान्ति है, आये दिन हड़तालें होती हैं। ऐसे नाजुक समयमे काग्रेसने बहुत बड़ी जिम्मेदारी अपने ऊपर ली है। यह उसकी परीक्षाका समय है। जनताको काग्रेससे बडी आशा है और उसको स्थितिका पूरा पता नही है। इससे दिक्कत और बढ गयी है। यदि काग्रेस किसी कारण असफल रही तो उसकी प्रतिष्ठाको भारी धक्का लगेगा। देशकी बहुत बडी क्षति होगी, इसलिए किसीका कोई मत क्यो न हो, सबको सफलताकी कामना करनी चाहिय और इसका पूरा प्रयत्न करना चाहिये कि काग्रेमकी शक्ति और उसकी प्रतिष्ठा बढे।

मध्यकालीन सरकार क्या करे

मध्यकालीन सरकारसे हमे पूरा लाभ भी उठाना चाहिये। यह सरकार स्थायी क्रान्तिकारी गवर्नमेण्टके समकक्ष हो या न हो, इसका कर्तव्य हो जाता है कि लोकतन्त्रकी स्थापनाके लिए यह जितना आगे जा सकती है जाये। लोकतान्त्रिक शासनकी स्थापना समाजवादके मार्गकी पहली मंजिल है, और अस्थायी क्रान्तिकारी गवर्नमेण्टका काम लोकतन्त्रके मार्गको प्रशस्त करना है। यह काम निरकुश शासन तथा सामन्तशाहीका अन्त करने, जनताके लाभके लिए उचित कानून बनाने तथा लोकतन्त्रकी भूमिका कायम करनसे सिद्ध होता है। इस दृष्टिसे मध्यकालीन सरकारको नागरिकताके अधिकारोकी रक्षा तथा उनकी सीमाकी वृद्धि करनी चाहिये। मजदूरोके कामके घण्टे कम करना चाहिये, उनकी मजदूरी बढानी चाहिये, उनके लिए अन्य सुविधाओका आयोजन करना चाहिये, तथा ट्रेड-यूनियन आन्दोलनको पुष्ट करना चाहिये। यातायातके मार्ग, बिजली और कोयलेकी खानोको राष्ट्रकी सम्पत्ति करार देना चाहिये। उद्योग व्यवसायोका जनताके लाभके लिए नियन्त्रण होना चाहिये। प्रान्तीय क्षेत्रमे जमीदारी प्रथाका अन्त, सहयोग समितियो और ग्राम-पंचायतोंकी स्थापना, स्थानीय स्वायत्त-शासन-सुधार तथा सम्मिलित निर्वाचन प्रणालीकी प्रतिष्ठा होनी चाहिये। केन्द्रीय सरकारको वैज्ञानिक तथा औद्योगिक अन्वेषणकी व्यवस्था करनी चाहिये। कृषिकी उन्नतिके उपायोको निर्धारित कर योजनाएँ बनानी चाहिये और उन्हे कार्यान्वित करना चाहिये तथा शिक्षाके प्रसारके लिए प्रान्तोको धनसे सहायता करनी चाहिये। देशी राज्योपर प्रभाव डालकर वहाँ उत्तरदायी शासनकी स्थापना करनी चाहिये। काग्रेसको मुसलिम जनतासे अधिक सम्पर्क स्थापित करना चाहिये और उसे अपने प्रभावमे लाना चाहिये। जनताको शासनके सस्पर्शमे लाना चाहिये। जनतामे लोकतन्त्रकी भावना बढ़े, उसका आत्म-विश्वास बढ़े इसका प्रयत्न

करना चाहिये। आजकी कपडे और अनाजकी समस्याको केन्द्रीय सरकार ही हल कर सकती है। कपडेकी देहातमे बडी कमी है, इस कमीको पूरा करना है। फिलहाल राशनिंग रहना जरूरी है। इस वातकी चेष्टा करते रहना चाहिये कि जितनी जल्दी यह हट जाय उतना ही अच्छा है। जनताको आजकी स्थिति वतलानेकी वड़ी जरूरत है। इङ्गलैण्डमे युद्धके वाद भी राशनिंग जारी है। युद्धकालकी अपेक्षा आज इसमे ज्यादा कडाई है। संसारके खाद्यपदार्थोकी समस्या वडी कठिन है। अमेरिकाने कंट्रोल उठा लिया और इसका परिणाम यह हुआ कि वहाँ वस्तुओकी कीमत वहुत वढ गयी। इस कारण अमेरिकाने वाहर भेजनेके लिए गेहूँकी खरीद वन्द कर दी है। संसारके अन्य देशोसे हमको अन्न मिलेगा या नही यह अनिश्चित है। हम काफी अन्न पैदा भी नही करते। जनताको यह सव दिक्कते वतानी चाहिये। यह झूठी शान न होनी चाहिये कि हम सव कुछ कर सकते है। एक कठिन समस्या साम्प्रदायिक शान्ति वनाये रखनेकी है। इन सव कामोके करनेके लिए काग्रेस तथा जनताको गवर्नमेण्टपर वरावर दवाव डालते रहना चाहिये तथा उसकी सहायता हर प्रकारसे करनी चाहिये। इन सव कामोसे जनताकी शक्ति वढ़ेगी और यही प्रधान वस्तु है।[१]

स्वाधीनता दिवस और हमारा कर्तव्य

स्वाधीनता दिवसके अवसरपर सदाकी भाँति इस वर्ष भी देशके करोड़ो नर-नारी विदेशी शासनका अन्त करने और पूर्ण स्वाधीनता प्राप्त करनेकी प्रतिज्ञाको दुहरायेगे। हमारी आजादीकी लड़ाई आज जिस मंजिलमे पहुँच चुकी है उसे देखते हुए, इस वातको ध्यानमे रखकर कि विधान परिषद्ने नेहरूजी द्वारा उपस्थित किये गये लक्ष्य-सम्वन्धी उस प्रस्तावको स्वीकार कर लिया है जिसमे कहा गया है कि परिषद् स्वतन्त्र भारतीय लोकतन्त्र-का विधान प्रस्तुत करेगी आवश्यकता इस वातकी थी कि इस अवसरपर हम विदेशी आधिपत्यका अन्त करनेकी प्रतिज्ञा नही वरन् उसके स्थानपर देशकी स्वाधीनताकी घोषणा करते और उसपर आक्रमण करनेवाली शक्तियोका मुकावला करनेकी प्रतिज्ञा करते। किन्तु स्थिति यह है कि स्वाधीनता दिवसके प्रतिज्ञा-पत्रमे 'भारत छोड़ो' प्रस्ताव सम्वन्धी जो पैराग्राफ था वह भी निकाल दिया गया है। हमारे नेताओकी रायमें जव कि काग्रेस शासकोके साथ समझौतेके द्वारा स्वाधीन भारतका विधान वनाने जा रही है ऐसे अवसरपर भारत छोडोके नारेका दुहराना शिष्टाचारके विरुद्ध होगा। कितने ही नेताओने सार्वजनिक रूपसे यह मत व्यक्त भी किया है कि ब्रिटिश शासक स्वयं भारत छोड़कर जा रहे है, इस माँगको पूरा करानेके लिए अव हमे लड़नेकी, जनक्रान्तिका मार्ग अपनानेकी आवश्यकता न होगी।

---

१. 'समाज' ५ सितम्वर, १९४६ ई०

ब्रिटेनको परेशानियाँ

मेरी रायमें परिस्थितियोका सूक्ष्म विश्लेपण करनेपर इस प्रकारकी धारणा वना लेनेके यथेप्ट प्रमाण नही मिलते कि ब्रिटिश शासक अपने साम्राज्यवादी स्वार्थोको तिलांजलि देकर स्वयमेव यहाँसे विदा हो जाना चाहते है और अव भविष्यमे उनके विरुद्ध जनसंघर्षकी तैयारी अनावश्यक हो गयी है। यह सही है कि युद्धोत्तर विश्वमें ब्रिटेनकी स्थिति वहुत निर्वल हो गयी है। ब्रिटिश नौसेनाकी शक्ति क्षीण हो चली है और नौसेनाका पुराना महत्त्व भी घट चला है। ब्रिटिश सम्राज्यके कनाडा और आस्ट्रेलिया सरीखे देश अपनी रक्षा तथा अन्य आवश्यकताओकी पूर्तिके लिए ब्रिटेनका नही, वरन् अमेरिकाका मुँह ताकते है। ब्रिटिश साम्राज्यान्तर्गत औपनिवेशिक स्वाधीन देश अव समूचे ब्रिटिश साम्राज्यकी रक्षाका भार अपने ऊपर न लेकर केवल उस क्षेत्रकी रक्षामे ही विशेप रुचि रखते है जिसमें वे स्वय अवस्थित है। परमाणु वम तथा अन्य भयानक सामरिक आविप्कारोको ध्यानमें रखकर, ब्रिटेनको अपनी सामरिक योजनाओमे परिवर्तन करने पड रहे है। संसारके विभिन्न देशोमे लगी हुई ब्रिटेनकी पूंजीका वड़ा भाग समाप्त हो चुका है और आज भारत तथा मिस्र सरीखे देशोका वड़ा ऋण ब्रिटेनपर चढा हुआ है। अमेरिकाके विराट् औद्योगिक विस्तार तथा पूर्वीय यूरोपके रूसी प्रभाव-क्षेत्रमे चले जानेके कारण, ब्रिटेनके मालको खरीदनेवाला वाजार भी वहुत सकुचित हो गया है। ब्रिटेनके कल-कारखाने ध्वस्त हो गये है और उसकी घरेलू आर्थिक समस्याएँ गम्भीर रूप धारण कर रही है। यदि अमेरिकाका ऋण ब्रिटेनको न मिल गया होता तो उसकी अवस्था वहुत ही शोचनीय होती। यह भी सही है कि महायुद्धके परिणामस्वरूप उपनिवेशोकी जनतामे जागरणकी जो लहर आयी है, जिस प्रकार विद्रोहकी भावना सेनातकमे जा पहुँची है और आर्थिक समस्याओने जो भयंकर रूप धारण कर लिया है उसे देखते हुए उपनिवेशोमे सगीनोके वलपर अपने शासनको वनाये रखना अथवा गोरी नौकरशाहीके प्रवन्धके वलपर आर्थिक समस्याओंको हल कर सकना ब्रिटिश शासकोकी शक्तिके वाहरकी वात है।

शासकोंकी नयी योजना

किन्तु अपनी सामयिक स्थितिकी निर्वलता और आर्थिक स्थितिकी गम्भीरता तथा उपनिवेशोकी वदली हुई परिस्थिति और पुराने ढगसे शासन करनेकी असमर्थताको देखते हुए भी ब्रिटिश कूटनीतिज्ञ हिम्मत नही हार वैठे है। परिर्वातत परिस्थितियोमें किस प्रकार अपने साम्राज्यवादी स्वार्थोंको अधिकसे अधिक सुरक्षित रखा जा सकता है वे वड़ी कुशलताके साथ इसके लिए अपनी योजनाएँ वना रहे हैं। दिन-प्रतिदिनके शासनका भार वे उपनिवेशोके राजनीतिक दलोको सौप देनेके लिए तैयार है किन्तु आज उपनिवेशोमें ब्रिटिश पूंजी तथा तैयार मालके लिए दूसरे देशोकी अपेक्षा जो विशेष सुविधाएँ उन्हे प्राप्त है उनका परित्याग करनेके लिए तैयार नही है। जवतक किसी देशको अपनी इच्छाके अनुसार अपना आर्थिक विकास करने तथा अपनी वैदेशिक नीति और रक्षा-नीतिको

अपनी-अपनी इच्छाके अनुसार सचालित करनेकी पूर्ण स्वाधीनता न हो तबतक वह कैसे स्वाधीन कहला सकता है ।

ब्रिटिश शासक आज सगीनोके बलपर ये सुविधाएँ नही बनाये रख सकते, इसलिए मुसलिमलीग देशी नरेश तथा दूसरी प्रतिगामी शक्तियोकी पीठ थपथपाकर उन्हे उत्तेजित करके और उनकी बहुत-सी काररवाइयोको तरह देकर वे अपना काम बनाना चाहते हैं । देश विभिन्न प्रतिस्पर्धी भागोमे बँटा रहे, विभिन्न भागोके निवासी आपसमे मिलकर समूचे देशकी समृद्धिकी योजना बनानेके स्थानपर एक दूसरेको भय और ईर्ष्याकी दृष्टिसे देखते रहे और अपने क्षेत्रकी समृद्धिकी ओर ही उनका ध्यान रहे इसीमे वे आजकी परिस्थितियोमे अपने इन दोनो आधारभूत स्वार्थोकी सुरक्षाका उपाय पाते हैं । जिस प्रकार भारतको वे 'हिन्दुस्तान', 'पाकिस्तान' और 'राजस्थान'मे बाँटना चाहते है उसी प्रकार फिलिस्तीन-को भी अरबिस्तान, यहूदिस्तान और अग्रेजिस्तानके तीन टुकडोमे बाँटना चाहते है इसी प्रकार नील नदीकी घाटीमे सूडानका पाकिस्तानी अस्तित्व अलग बनाये रखना चाहते है । आजकी परिवर्तित परिस्थितियोको देखते हुए दूसरे पुराने साम्राज्यवादी देश भी ब्रिटेनकी कूटनीतिका अनुसरण कर रहे है । फ्रेंच शासक हिन्दचीनमे कोचीन-चीनके रूपमे पाकिस्तानकी सृष्टि कर रहे है ।

प्रतिगामी शक्तियोंको उत्तेजना

जहाँ ब्रिटिश शासक उपनिवेशोके भीतर अपने स्वार्थोकी रक्षाके लिए प्रतिक्रियागामी शक्तियोको उभाड रहे है, वहाँ साम्राज्यपर वाह्य आक्रमणके प्रति भी वे पूर्णरूपेण सजग एवं सतर्क है । ब्रिटेनको अपने साम्राज्यके लिए रूससे बडा खतरा मालूम पडता है । रूसका मुकाबला करनेके लिए ब्रिटिश शासक अमेरिकाके साथ गठबन्धन कर रहे है । अमेरिका आज पूँजीवादका सबसे बड़ा गढ है । उसका मौन साम्राज्यवाद ससारके वृहत् भागपर फैला है और उत्तरोत्तर बढता जा रहा है । किन्तु इसकी परवाह न करते हुए ब्रिटिश शासक अमेरिकाके साथ मिलकर अपनी सैनिक-रक्षाकी योजनाएँ बना रहे है । मध्यपूर्व और भूमध्यसागरके प्रदेशोके आन्तरिक मामलोमे ब्रिटेन और अमेरिका मिलकर हस्तक्षेप कर रहे हैं । अफ्रिकामे ब्रिटेन और अमेरिकाके जो हथियारके कारखाने खुल रहे है और लीबीया, नाइजेरिया और सूडानको सैनिक अड्डोके रूपमे विकसित करनेकी योजना बन रही है उसका उद्देश्य साम्राज्य-रक्षाकी तैयारी ही है ।

ब्रिटिश शासकोंकी पुरानी चाल

जबतक ब्रिटिश फौजे हमारे देशसे नही चली जाती, अपने देशके सैनिक साधनोका उपयोग करनेकी पूर्ण स्वाधीनता हमे नही प्राप्त होती, युद्धकालमे ब्रिटेनको अपने सैनिक अड्डोका उपयोग करनेकी शर्त हमे माननी पडती है और अपने देशका आर्थिक विकास करनेके लिए हम पूर्ण स्वतन्त्र नही होते, ब्रिटिश मालके लिए विशेप सुविधा देनी पडती है, तबतक केवल देशके शासन-प्रबन्ध देशवासियोके हाथमे आ जाने मात्रसे हमे यह नही समझ लेना चाहिये कि देश स्वतन्त्र हो गया । ब्रिटिश राजनीतिज्ञोका यह पुराना तरीका

है कि वे अपनेको संकटग्रस्त देख उपनिवेशोंकी स्वतन्त्रता भी स्वीकार कर लेते हैं, किन्तु जहाँ कि वे एक ओर सिद्धान्तरूपमें स्वाधीनता स्वीकार करते हैं वहाँ मित्रताकी सन्धिके बहाने दूसरी ओर ऐसी शर्तें लगा देते हैं कि स्वाधीनता केवल आलंकारिक गौरवकी वस्तु रह जाती है। मिस्रकी स्वाधीनता कबकी स्वीकार की जा चुकी है किन्तु आज भी ब्रिटिश फौजें वहाँसे विदा नहीं हुई, ईराककी सन्धिके अनुसार युद्धकी आशंका होनेपर ही ब्रिटिश फौजें वहाँ भेजी जा सकती हैं, किन्तु आज युद्धकी आशंका न होते हुए भी भारतीय फौजें बसराके बन्दरगाहमें डटी हुई हैं। ट्रांसजार्डनको इसी प्रकारकी स्वाधीनता कुछ मास पूर्व ब्रिटेनने प्रदान की है।

पूँजीपतियोंका गठबन्धन

नामकी स्वाधीनता हुए भी किस प्रकार औद्योगिक दृष्टिसे अनुन्नत और सैनिक दृष्टिसे निर्बल देश वहाँके पूँजीवादी शासकों तथा विदेशी कूटनीतिज्ञोंकी सहायतासे साम्राज्यवादी शोषणके शिकार बनाये जा सकते हैं इसका ज्वलन्त उदाहरण एशियाकी सबसे बड़ी जनसंख्यावाला देश हमारा पड़ोसी चीन है। चीन अमेरिकाका उपनिवेश नहीं है, किन्तु चीनी कम्युनिस्टोंके विरुद्ध च्यांगकाई शेककी सरकारकी और पूँजीवादी नेतृत्वसे प्रभावित कोमितांग दलकी अमेरिका शस्त्रास्त्रोंसे सहायता कर रहा है और ऋणकी लम्बी रकम देकर केन्द्रीय सरकारकी तबाह आर्थिक अवस्थाको सँभाल रहा है। बदलेमें च्यांगकाई शेककी अनुगृहीत सरकार अमेरिकन पूँजीको चीनमें सब प्रकारकी सुविधाएँ देनेको तैयार है। आजके स्वदेशीकी भावनाके जमानेमें पूरी तरह अमेरिकन पूँजीसे चलाये जानेवाले कारखाने भले ही न खड़े किये जायँ, पर अमेरिकन और चीनी दोनों ही प्रकारकी सम्मिलित पूँजीसे अनेक कारखाने चीनमें खुलेंगे और देशी और विदेशी पूँजीपति सम्मिलित रूपसे चीनी जनताका शोषण करेंगे। जब अमेरिका चीनी कम्युनिस्टोंके खिलाफ कोमितांगकी सहायता कर रहा है तो अमेरिका और रूसका युद्ध छिड़नेपर कोमितांग-दल निश्चय ही रूसके विरुद्ध अमेरिकाकी मदद करेगा। यह सहयोगात्मक साम्राज्यवाद ही आजके युगका सबसे बड़ा संकट है जिससे जनताको सावधान होनेकी आवश्यकता है।

अतः आइये, स्वाधीनता दिवसके इस पुण्य पर्वपर हम प्रतिज्ञा करें कि विदेशी आधिपत्यके प्रत्येक रूपका जबतक हम अन्त न कर लेंगे तबतक हम अपने साम्राज्य-विरोधी क्रान्तिकी तैयारी बन्द न करेंगे और चैनकी सांस न लेंगे। यदि हमारे पुराने और अनुभवी नेता यह समझते हैं कि समझौतेके रास्तेसे स्वराज्य मिल सकता है तो वह समझौतेकी कोशिशमें लगे रहें, किन्तु युद्धकी तैयारीको भी जारी रखें। बर्मांके फासिज्म-विरोधी जन-संघके युवक नेता श्री आगसानके शब्दोंमें हम अच्छेसे अच्छे परिणामकी आशा करें, किन्तु बुरेसे बुरे परिणामके लिए तैयार रहें।[१]

---

१. 'समाज' ३० जनवरी, १९४७ ई०

कांग्रेस किधर

यह कहा जाता है कि कांग्रेस दुर्वल और क्षीण होती जाती है, काग्रेसमे आपसकी दलवन्दी और फूट वढ़ती जाती है, अनुशासनकी कमी होती जाती है तथा काग्रेस कार्यकर्ता साधारणत. अपने आदर्शोसे च्युत होते जाते हैं। काग्रेसको इस नये खतरेसे वचानेके लिए कई सुझाव पेश किये गये हैं। कोई कहता है कि काग्रेसके भीतर अनेक विचारधाराओको स्थान देनेसे यह गडवड़ी उत्पन्न हो गयी है, इसलिए यदि काग्रेसके भीतर पार्टियोंको स्थान न दिया जाय तो यह वुराई दूर हो सकती है। इस सिलसिलेमे यह कहा जाता है कि अव समय आ गया है कि काग्रेसको पार्टीका स्वरूप देना चाहिये। अव वह स्वतन्त्रता अर्जित करनेके लिए विविध वर्गोका संयुक्त मोर्चा मात्र नही रह गया है। उनका कहना है कि जवतक विविध दलोके लिए उसमे स्थान रहेगा तवतक अनुशासनका ठीक-ठीक पालन नही हो सकेगा। इन मित्रोका कहना है कि वर्तमान अवस्थामें सव काग्रेसजनोकी समान रूपसे कांग्रेसके प्रति वफादारी नही है तथा प्रत्येक दलका सदस्य सर्वोपरि अपने दलमें प्रतिपन्न होता है। काग्रेसमे चुनावके अवसरपर जो अत्याचार होता है उसके रोकनेका यह उपाय निर्धारित किया जाता है कि काग्रेसके साधारण सदस्योको मत देनेका अधिकार न होना चाहिये। निर्वाचन क्षेत्र केवल कांग्रेस कार्यकर्ताओंका होना चाहिये जिनके लिए कुछ शर्त्तोका पालन करना अनिवार्य होना चाहिये। काग्रेसकी ओरसे काग्रेस-विधानमे सशोधन करनेके लिए जो उपसमिति नियुक्त की गयी थी उसकी यही सिफारिशें हैं।

हमारा निवेदन है कि जवतक रोगका निदान ठीक-ठीक नही होगा तवतक रोगका इलाज भी न होगा। ऊपर जिन उपायोका निर्देश किया गया है वह इतने प्रभावशाली नही हैं कि उनके प्रयोगसे रोगके आरामकी आशा की जा सके। चुनावके समयकी वुराइयोको रोकनेके लिए चुनावकी प्रथाको ही अप्रजातान्त्रिक वना देना एक दोषका निरसन करना और एक दूसरे घातक दोषको निमन्त्रण देना है। जीवनके अन्य विभागोमे ग्राम-पंचायतसे लेकर व्यवस्थापिका सभातक साधारण चुनावको कायम रखना और केवल काग्रेसके चुनावके लिए जनतंत्रके सिद्धान्तको ढीला करना उचित नही प्रतीत होता। हाँ! यह ठीक है कि काग्रेसके सगठनकी तुलना इन सस्थाओसे पूर्ण रूपसे नही की जा सकती। कांग्रेसके पदाधिकारियोके लिए विशेष योग्यताका नियम रखना आवश्यक है, किन्तु चुनावका तरीका इस प्रकार वदल देना कि जनतन्त्रके सिद्धान्तका परित्याग करना पड़े उचित नही है। पुन: कांग्रेस वालिग मताधिकार देनेके पक्षमे है। इस आधारपर जो चुनाव होगे उनमे अनाचारकी आशंका सदा वनी रहेगी। इस अनाचारको रोकनेके लिए उचित उपायोका विधान करना आवश्यक है, किन्तु इसके लिए वालिग मताधिकारका ही परित्याग करना उचित नही होगा। लोकतन्त्र-पद्धतिके अनाचार किसी-न-किसी अंश या रूपमे सर्वत्र पाये जाते हैं, किन्तु इसके लिए कोई इस पद्धतिके परित्यागकी सिफारिश नही करता। विशेषकर जव हम लोकतंत्र शासनकी स्थापना करना चाहते

---

१. 'समाज' ३० जनवरी, १९४७ ई०

है तो यह उचित प्रतीत होता है कि जो संस्था इस सिद्धान्तको समाजमे प्रतिष्ठित करना चाहती है उसे स्वयं अपना सचालन इसी पद्धतिके अनुसार करना चाहिये ।

पुन. यह कहा जाता है कि विविध विचारधाराओंपर आश्रित अनेक दलोंके समावेशसे कांग्रेसकी अवस्था बिगड़ रही है और उसका अनुशासन शिथिल पड रहा है तथा अब जब स्वतन्त्रता प्राप्त-सी हो गयी है तब कांग्रेसको संयुक्त मोर्चा बनाये रखनेका कोई अर्थ नहीं है । इन सज्जनोका कहना है कि कांग्रेसके उद्देश्यकी पूर्त्ति हो जानेसे कांग्रेसके सम्मुख स्वतन्त्रताकी रक्षा करनेका ही प्रश्न रह जाता है किन्तु यह मित्र भूल जाते हैं कि कांग्रेसकी बीमारीका यह कारण नही है । ये कांग्रेसजन जो अपनेको कांग्रेसके अनन्य भक्त कहते हैं और एक नेता एक पताकाका नारा लगाते है, आपसमे ही लड़ा करते हैं । वह अपनी महत्त्वाकांक्षाको पूरा करनेके लिए व्यक्तिगत दलोकी सृष्टि करते हैं और इतनी बुरी तरह लडते हैं कि लज्जासे सिर झुका लेना पडता है । उदाहरण देनेकी आवश्यकता नहीं है, क्योकि यह बात किसीसे छिपी नही हैं । अत यदि विविध दल कांग्रेससे बाहर कर दिये जायँ तब भी रोगसे छुटकारा नही मिलेगा । नवीन व्यक्तिगत दलोकी सृष्टि होगी और आज भी इनकी कमी नहीं है । इस सम्बन्धमे एकमात्र कांग्रेसनिष्ठकी जो बात कही गयी है उसका अर्थ स्पष्ट नही है । मनुष्यकी मूलनिष्ठा जीवनके आधारकी और सामाजिक मूल्योमे होती है । इसीसे प्रेरित होकर वह विविध संस्थाओमे सम्मिलित होता है और उनका परित्याग करता रहता है । एक समय एक व्यक्ति एक संस्थाका सदस्य हो सकता है और उसकी निष्ठा समान रूपसे दोनोमे हो सकती है । ऐसे अवसर आ सकते हैं जब इन दो निष्ठाओमे परस्पर विरोध उत्पन्न हो, किन्तु यदि उस व्यक्तिके लिए दोनोकी आवश्यकता है तब वह इस विरोधका परिहार कर लेगा । अन्ततोगत्वा इसका निर्णय उस व्यक्तिके मूल्य और आदर्श ही करेंगे कि उसको किस संस्थामे रहना है । कोई संस्था अपने सदस्योसे इतना ही चाह सकती है कि वे उसके निर्णयोंका पालन करे । इससे अधिक चाहना तथा उनके आत्मविश्वास और सिद्धान्तोको सीमित करनेकी चेष्टा करना सर्वथा अनुचित होगा ।

इस सम्बन्धमे हम यह भी कहना चाहते हैं कि यदि सयुक्त मोर्चेका काम समाप्त हो गया है और कांग्रेस अपने लक्ष्यको प्राप्त कर चुकी है, अथवा जून १९४८ मे प्राप्त कर लेगी तो उस समय कांग्रेसके अस्तित्वकी ही क्या आवश्यकता है । विभन्न विचार रखनेवाले तथा स्वतन्त्र भारतके लिए विभिन्न कार्यक्रमको प्रस्तुत करनेवाले सभीने कांग्रेसकी सेवा की है और सबके उद्योग और प्रयत्नका ही यह फल है कि देश स्वतन्त्र होने जा रहा है । ऐसी अवस्थामे स्वतन्त्र हो जानेपर कांग्रेस संस्थाको जीवित रखना, युद्धसे सब दलोको पृथक् कर देना तथा एक विचारके लोगोको उसपर एकाधिकार कायम करने देना कहाँतक उचित है ? कांग्रेस किसीकी भी दास नही है । यह समस्त राष्ट्रकी सम्पत्ति है । इसके निर्माणमे सबका हाथ रहा है । अत यह कहना अमुक-अमुक निकल जावे और 'हम' अकेले इसका सचालन करे सर्वथा अन्याय है । फिर यह हम' है कौन ? इसका निर्णय कौन करेगा ? हमको यह जानकर प्रसन्नता हुई है कि महात्माजीका यह विचार है

कि देशके स्वतन्त्र होनेपर काग्रेसकी आवश्यकता न रह जायगी। आचार्य कृपलानीने भी इसी तरहका विचार व्यक्त किया है। कुछ और नेता भी इसी विचारके मालूम होते है, किन्तु अधिकाश नेता, काग्रेस-सस्थाको जीवित रखना चाहते हैं। हम समझते है कि यह दूसरे वास्तविकताको ज्यादा पहचानते हैं। अधिकारारूढ होनेपर अपनी सत्ता वनाये रखनेके लिए काग्रेसकी प्रतिष्ठा और मर्यादा उपयोगी सिद्ध होगी, इस लाभको वह नही छोड़ना चाहेंगे। कुओमिनताग भी आजतक एक दलके रूपमे जीवित रहा है और आज जव अन्य दलोसे समझौता करनेको वाध्य हो रहा है तव भी वह जनतान्त्रिक ढगको स्वीकार करनेके लिए अपनी प्रस्तुतता दिखाता है। किन्तु यदि महज इस कार्यके लिए काग्रेसको जिन्दा रखना है तो फिर यह समझ लेना चाहिये, कि उसका वह पुराना स्वरूप नही रहेगा। तव काग्रेसकी राजनीति वदल जावेगी और वह विशेप रूपसे चुनावकी एक मशीन वन जावेगी। ऐसी अवस्थामे ऐसी सस्थाओमे जो दोप आ जाते हैं वह काग्रेसमे भी आ जावेंगे। कुओमिनतागका उदाहरण हमारे सम्मुख है। फिर त्याग और तपस्याका वातावरण काग्रेसमे नही रहेगा और शक्तिके लिए छीना-झपटी शुरू हो जावेगी। भविष्यमे उसको एक दूसरे प्रकारके नेतृत्वकी आवश्यकता होगी। वैधानिक पण्डितोका महत्त्व वढेगा। किन्तु आज हमारी नीति सर्वथा अस्पष्ट है। एक ओर कहा जाता है हमारा कार्य समाप्त हो गया है और दूसरी ओर हमसे त्यागी और तपस्वी होनेको कहा जाता है। यदि वास्तवमे लक्ष्यकी प्राप्ति हो गयी है और लक्ष्य स्वतन्त्रतातक ही सीमित है और उसके रूप-रंगकी फिक्र नही है तो उन लोगोको जो कानूनके वनानेमे रस लेते है और जो वैधानिक योग्यता रखते है आगे लाना चाहिये। किन्तु हम ऐसा भी नही करते है, क्योकि ऐसा करनेसे नेतृत्व दूसरोके हाथमे चला जावेगा और स्थिर स्वार्थोको धक्का लगेगा। हमारी गति विचित्र है। हमको समझ लेना चाहिये कि काग्रेसको यदि चुनाव-की मशीन वनाना है तो फिर त्याग और तपस्याकी वात करना व्यर्थ है और आजका रोना भी व्यर्थ है। उस हालतमे power politics को प्राधान्य मिलेगा और अन्य स्वतन्त्र देशोके समान हमारे राजनीतिज्ञ भी दुनियादार वन जावेंगे और अपने अगके स्वार्थोकी रक्षामे लग जावेंगे। काग्रेसमे एक प्रकारका और विचार भी पाया जाता है, इसका विवेचन करना भी आवश्यक है। वह यह है कि स्वतन्त्रताकी रक्षाके लिए अव काग्रेसजनोको रचनात्मक कार्यमे लग जाना चाहिये। किन्तु अंव जव सभी सरकारी कर्मचारी देशभक्त हो गये हैं तो यह काम उन्हीके सुपुर्द क्यो नही किया जाता? रचनात्मक कार्यकी व्याख्या करते समय यह सज्जन महात्माजीके कार्यक्रमकी ओर पुन: हमारा ध्यान दिलाते है, किन्तु वह भूल जाते है कि महात्माजी द्वारा निर्धारित कार्यक्रम देशको स्वतन्त्र करनेके लिए प्रभावशाली वनाया गया था। यह हो सकता है कि जो कार्यक्रम स्वतन्त्रता दिलानेमे समर्थ हो वही उसकी रक्षा भी कर सके। अतः हमको इस कार्यक्रमकी परीक्षा इस दृष्टिसे करनी चाहिये। इस कार्यक्रममे कई वातोका समावेश है। कुछ वाते तो ऐसी है जिनकी प्रत्येक समाजको आवश्यकता पडती है। उनका स्वतन्त्रताकी रक्षाके प्रश्नसे कोई विशेष सम्वन्ध नही है। पुन: कुछ वाते ऐसी है जिनका सम्वन्ध

समाजके आर्थिक संगठनसे है, यथा खद्दरका उत्पादन और ग्रामोद्योग। प्रश्न यह है कि क्या स्वतन्त्र भारतको इस कार्यक्रमकी औद्योगिक नीति स्वीकृत होगी? कांग्रेस गवर्नमेण्ट ही इस नीतिको अपनाती नही मालूम होती है। चाहिये तो यह कि हम पहले अपनी अर्थ-नीतिको निर्धारित करें और उसके अनुसार गवर्नमेण्ट अपना कार्यक्रम वनावे, किन्तु हम करते है इसके सर्वथा विपरीत। हम एक कार्यक्रमको स्वीकार कराना चाहते है और यह नही देखते कि यह कार्यक्रम किसी अर्थ-नीतिको स्वीकार करके ही वना है। इस सम्वन्धमे यह भी विचारणीय है कि व्यक्ति तथा व्यक्तियोके समूह इसके लिए क्या कर सकते हैं। आर्थिक योजना वनाना गवर्नमेण्टका काम है और उसको कार्यान्वित करना भी उसीका काम है। हाँ, यदि आर्थिक योजना इस प्रकारकी है जिससे सामाजिक संगठन लोकतंत्रात्मक वनता है और जिसके द्वारा उत्पादनके साधन समाजकी मिलकियत हो जाते है, तव इनका महत्व सामाजिक और सांस्कृतिक हो जाता है। उस अवस्थामे जीवनकी नयी दिशाकी ओर सर्वसाधारणको मोड़नेके लिए प्रचारकी आवश्यकता होती है और यह काम नि.स्वार्थसेवी ही कर सकते है। उस अवस्थामे किसी गैर-सरकारी संस्थाकी भी आवश्यकता पड़ती है, पर तव केवल कार्यक्रमका उल्लेख न कर सिद्धान्तोंका स्पष्टीकरण होना चाहिये और समाजकी नयी रूपरेखाके अनुसार ही एक पूर्ण योजना प्रस्तुत करनी चाहिये। उक्त कार्यक्रमकी आर्थिक योजना भी अधूरी है और आजके युगके अनुरूप नही है। आजके युगकी आत्म-तृप्तता (autarchy) का नियम नही चल सकता।

पुनः इस रचनात्मक कार्यक्रमके अन्य अग किसान, मजदूर और विद्यार्थियोके सगठनसे सम्वन्ध रखते है, पर प्रश्न यह है कि यह संगठन किस उद्देश्यसे है और जवतक उद्देश्य स्पष्ट नही किया जाता हमारा कार्य निरुद्देश्य होनेसे कुछ अधिक लाभदायक नही होगा।

मजदूरोके संगठनके प्रश्नको ही ले लीजिये। इनका सगठन कई दृष्टिसे हो सकता है। एक दृष्टि यह भी है कि आज जव अनेक दल मजदूरोमे काम कर रहे है और उनके कामसे गवर्नमेण्टोको कुछ परेशानी हो रही है तो मजदूरवर्गपर कांग्रेसद्वारा काग्रेस-गवर्नमेण्टका नियंत्रण कायम करना उपयोगी होगा। हम समझते है कि शायद यही दृष्टि इन महानुभावोके सामने है। आज काग्रेसके अनुसार गवर्नमेण्टोको चलानेकी वात नही कही जा रही है। आज तो माँग इस वातकी है कि काग्रेस-मशीन गवर्नमेण्टोकी सहायता करे और उसके निश्चयोको कार्यान्वित करानेमे मददगार हो। हर जगह काग्रेस गवर्नमेण्टे हड़तालके विरुद्ध है और काग्रेस-नेता हडतालोको वन्द करानेका हर प्रकारसे प्रयत्न करते है। इतना ही नही, यह कहा जाता है कि अव कांग्रेस गवर्नमेण्टके होते हड़तालकी आवश्यकता ही क्या है। यह लोग कराँचीके मौलिक अधिकारोके प्रस्तावको भूल गये है। कही-कही केवल यूनियन (संघ) वनानेकी चेष्टा करनेपर ही प्रत्येक सेफ्टी कानूनके अनुसार कार्यकर्ता नजरवन्द कर लिये जाते है।

इंगलण्ड और अमेरिकामे आये दिन हड़ताले होती है, युद्धकालमे वड़ी-वड़ी हड़ताले हुई, यहाँ भी हो रही हैं। इस प्रवाहको कौन रोक सकता है? मजदूरोकी उचित माँगे

पूरी कीजिये, हडतालें आप ही बन्द हो जायँगी, पर शासकोको प्रत्येक दशामे कोचना होता है तभी सामाजिक न्याय मिलता है, इसीलिए हड़तालके अन्तिम अस्त्रको हम मजदूरोसे नही छीन सकते; यह अधिकार उनको प्राप्त होना ही चाहिये। यह तर्क कि कारखानोके बन्द होनेसे कपडे आदिकी और कमी हो जावेगी—मजदूरोके गले नही उतरता। यह उपदेश मिलमालिकोको देना चाहिये और आज महँगीके जमानेमे जब मजदूरोकी क्रयशक्ति बहुत कम हो गयी है उनकी मजदूरीका पर्याप्त मात्रामे बढ़ाया जाना परम आवश्यक है।

यह कहा जायगा कि उक्त कार्यक्रमकी आवश्यकता किसान-मजदूर राज कायम करनेके लिए है। उत्तरमे हमारा यह निवेदन है कि हमने तो एक प्रकारसे इस नारेको भुला-सा दिया है। लोग यही समझते है कि अगस्त सन् १९४२ का प्रस्ताव 'अंग्रेज, भारत छोडो' मात्र था। उसके और आवश्यक अंग भुला दिये गये है। इसीलिए लोग समझते है कि हमारा कार्य समाप्त-सा हो गया है। हमने इस महान् उद्देश्यके लिए लोगोकी मनोवृत्तिको काफी तैयार नही किया था शायद इसीलिए ये अत्यन्त महत्वपूर्ण अश भुला-से दिये गये है, अन्यथा इसकी इस प्रकार उपेक्षा नही होती। कांग्रेसको अपना लक्ष्य स्थिर करना होगा। फिर वह जो कुछ हो, उसीके अनुसार कार्यक्रम बनेगा। यदि कांग्रेसको चुनावकी मशीनमात्र बनाये रखना है तो बड़े-बड़े आदर्शोकी बात छोड़ देनी चाहिये। किन्तु यदि वास्तवमे किसान-मजदूर-राज्यकी स्थापना करना कांग्रेसका अब भी लक्ष्य है तो कांग्रेस-द्वारा इसको स्पष्ट रूपसे स्वीकार कराना चाहिये और हमारे प्रत्येक कार्यमे इसको प्रथम स्थान मिलना चाहिये।

आज कांग्रेस द्वारा उन्हीका आप्यायन होता है जो किसी-न-किसी पदपर आरूढ है, इनमेसे कुछकी महत्त्वाकाक्षाकी पूर्ति होती है, इसलिए वह सन्तुष्ट है। कुछ ऐसे पदोपर नियुक्त है जहाँ रहकर वह कुछ सार्वजनिक सेवा कर सकते है। इस प्रकार उनका भी आत्मसतर्पण होता रहता है। किन्तु सामान्य कांग्रेस-जनकी उच्च भावना तथा उसकी आदर्शप्रियताकी सन्तुष्टि नही होती। हमको यह न भूलना चाहिये कि किसी सस्थाकी परख उसके चोटीके नेताओसे नही होती। महान् पुरुषोको तो भारत सदा जन्म देता रहा है, किन्तु उनके होते हुए भी हम अवनतिके गर्तमे समय-समयपर गिरते रहे है। सस्थाकी परख उसके द्वितीय-तृतीय श्रेणीके कार्यकर्ताओसे होती है। अत यह धारणा मिथ्या होगी कि जबतक हमारे पास महात्माजी, जवाहरलालजी और मौलाना आजाद ऐसे नेता है तबतक सब कुशल है, हमारा अनिष्ट नही हो सकता।

यदि हम वास्तवमे किसान-मजदूर-राज्यके पक्षमे है तो हमको यह स्थूल सत्य समझ लेना चाहिये कि ऐसे राज्यकी स्थापना किसान-मजदूर स्वयं ही करेंगे। हम उनके लिए उसकी स्थापना नही कर सकते, हमारा केवल इतना काम है कि हम उनको इस उद्देश्यकी प्राप्तिके लिए संगठित करे, किन्तु यह संगठन हडतालके हथियारको छीनकर नही हो सकता और न मजदूरोको यह बतानेसे ही हो सकता है कि वह अपने सेवा योजकोपर पूर्ण विश्वास रखे और केवल अनुनय-विनयसे ही काम ले। जब शुद्ध मजदूर आन्दोलन इस

अस्त्रके कभी-कभी प्रयोगके विना नही चल सकते तव किसान-मजदूर-राज्यकी स्थापनाकी वात तो दूर रही इसके लिए एक दूसरी क्रान्तिकी ही आवश्यकता होगी ।

सव वातोंपर विचारकर यही उपयुक्त प्रतीत होता है कि कांग्रेस एक छोटा-सा ध्येय अपने सामने रखकर उसके अनुरूप कार्यक्रम प्रस्तुत करे, किन्तु अब उसे अपने कार्यके स्वरूपको स्पष्ट ढंगसे स्थिर करना होगा । नीतिको अस्पष्ट रखनेसे अव काम नहीं चलेगा । किन्तु काग्रेसको महज चुनावकी मशीन वनाकर त्याग और तपस्याकी आशा करना व्यर्थ है । उस अवस्थामे काग्रेस संस्थाका वही रूप होगा जो अन्य देशोमे ऐसी संस्थाओका हुआ करता है ।[१]

लोकतन्त्रकी स्थापनाका मार्ग

पाकिस्तानकी माँग मुसलिम लीगके नेताओ द्वारा मुसलिम जनताकी हीन-भावना और आकांक्षाओकी पूर्ति न होनेके कारण उनमे जो असन्तोप व्याप्त हो रहा था उसको दूर करनेके लिए रखी गयी थी । स्वतन्त्र पाकिस्तानकी माँग रखकर लीगी नेताओने मुसलिम जनताका ध्यान भोजन और स्वाधीनताकी वास्तविक समस्याओकी ओरसे हटानेकी चेष्टा की । मुसलिम सम्प्रदायमे घृणा, भय और सन्देहके सिद्धान्तोका प्रचार किया गया और मनुष्यकी उन विध्वसात्मक प्रवृत्तियोको उत्तेजना देनेकी चेष्टा की गयी जो अन्ततोगत्वा मजहवी झगडोमे फूट पड़ी और जिसने मनुष्यको पशुके स्तरपर पहुँचा दिया ।

समस्याका हल नहीं

किन्तु अव जव कि पाकिस्तानके लक्ष्यकी सिद्धि—खण्डित रूपमे ही सही—हो गयी है, समूची परिस्थिति मुसलमानोको एक नयी रोशनीमे दिखायी पड़ेगी । पाकिस्तानी राज्यके सामने वहुत-सी कठिनाइयाँ होंगी और उसे अनेक जटिल प्रश्नोको हल करना पड़ेगा । कुछ लोगो द्वारा यह माँग पेश की जायेगी कि इस्लामके सिद्धान्तोके आधारपर पाकिस्तानको धार्मिक राज्यका रूप दिया जाय । एक ओर जिन प्रान्तोको पंजावके अपने ऊपर हावी होनेका डर है वे केन्द्रको शिथिल वनानेपर जोर देंगे, दूसरी ओर पंजावको पूर्वी वंगालका डर वना रहेगा जो कि अपनी जन-संख्याके वलपर पाकिस्तानकी केन्द्रीय सरकारपर हावी होगा । इसके अतिरिक्त और इन सवसे वढकर जनताकी गरीवी और वेकारीको दूर करनेका वुनियादी सवाल होगा । इन समस्याओका हल होना कठिन देखकर पाकिस्तानके नेता जनताको भुलानेके लिए पाकिस्तानकी सीमाके सशोधनकी कोशिश कर सकते है । वे अपने अनुयायियोके सामने यह तर्क रख सकते है कि उनकी मुसीवतोंकी जड़ खण्डित पाकिस्तान है और जवतक उनका मूल स्वप्न पूरा नही होता तवतक जनताकी मुक्ति न होगी । इस प्रकार जनताकी आकाक्षाओकी पूर्ति न होनेके

---

१. 'जनवाणी' अप्रैल, १९४७ ई०

कारण असन्तोष और क्षोभकी समस्याका समाधान करनेके लिए भय और घृणाका वातावरण बनाये रखा जा सकता है और मनुष्यकी विध्वसात्मक प्रवृत्तियोको पुन खुलकर नाचनेका अवसर दिया जा सकता है ।

यदि दुर्भाग्यवश घटनाओका यह रूप हुआ तो भारतीय सघमे भी उसकी अवाछनीय प्रतिक्रियाएँ हुए विना न रहेगी । किन्तु यदि पाकिस्तानके नेताओको भारतीय संघमे रहनेवाले अपने भाइयोका कुछ ख्याल हुआ तो वे इस वातका ध्यान रखेगे कि वे जिस राज्यका निर्माण करने जा रहे है वह एक लोकतन्त्रात्मक राज्य होगा, जिसमे सभी व्यक्ति समान नागरिकताका उपभोग कर सकेगे और जहाँ अल्पसख्यकोके हितोकी पूरी तरह रक्षा की जायगी । किन्तु पाकिस्तानी नेता क्या करते है और क्या नही करते, हमे इसपर निर्भर नही रहना है । वे चाहे जो भी करे, हमारा कर्तव्य स्पष्ट है । हमे इस वातका ध्यान रखना है कि लोकतन्त्रात्मक राज्यका जो चित्र हमारे सामने है वह किसी कारण विकृत न होने पाये ।

सुदृढ़ राज्यकी आवश्यकता

यह स्पष्ट है कि हमे एक सुदृढ राष्ट्रीय राज्यका संघटन करना है । अखिल भारतीय काग्रेस-कमेटीकी पिछली वैठकमे सरदार पटेलने इस वातकी ओर सकेत किया था । शायद वे यह सोचते है कि एक शक्तिशाली सेना और नौरकरशाहीके सघटनसे ही इस उद्देश्यकी पूर्ति हो सकती है ।

सम्भवत वे और दूसरे नेता सोचते है कि हमारे सामने निकट महत्त्वका कार्य यही है, दूसरी चीजोपर वादमे ध्यान दिया जा सकता है । किन्तु जिस प्रकार आज शान्तिकी स्थापनामे इसलिए वाधा पड रही है कि उसकी वुनियाद लडाईके दौरानमे ही नही डाली गयी उसी प्रकार अभीसे यदि लोकतन्त्रकी वुनियाद नही डाली गयी और लोकतन्त्रात्मक प्रक्रियाएँ नही अपनायी गयी तो भारतीय सघको सर्वग्रासी अधिनायकतन्त्रवादी राजका रूप ग्रहण करते हुए देखेगे । शक्तिशाली सेना और नौकरशाहीवाला राज्य, जिसमे नौकरशाहीकी मनोवृत्तिपर नियन्त्रण रखने और शासन-प्रवन्धमे प्रमुख भाग लेनेवाली लोकतन्त्रात्मक सस्थाएँ न हो तो लोकतन्त्रके लिए भारी खतरा सावित होता है । यदि पूँजीवादी हितोको आज राज्यपर हावी होनेका मौका दिया जाता है तो आगे चलकर इस स्थितिको वदलना सम्भव न होगा ।

एक ऐसे देशमे जो अनेक जातियो और सम्प्रदायोमे वँटा हुआ है और जिसमे ऊँच-नीचके भेदभावोसे भरी हुई सामाजिक सम्वन्धकी शृखला पायी जाती है, यह और भी आवश्यक हो जाता है कि जनताको पग-पगपर लोकतन्त्रके सिद्धान्तोकी याद दिलायी जाय । लोकतन्त्र अभ्यास और परम्पराकी वस्तु होती है । जवतक हम वर्तमान सामाजिक ढाँचेको सहारा देनेवाले मिथ्या विश्वासो और आस्थाओका अन्त न करेगे तवतक हमे अपने देशमे लोकतन्त्रकी स्थापनाकी आशा न करनी चाहिये ।

समताका आधार

यदि हमे सुदृढ राजकी स्थापना करनी है तो हमें समाजको समताके आधारपर संघटित करना होगा। यदि प्रभुशक्ति सर्वसाधारणमे निहित होती है तो हमें सर्वसाधारण-को शक्तिमान बनाना होगा, शृंखलाकी जो भी कडी निर्बल दिखायी दे उसमें शक्ति भरनी होगी। एक जबर्दस्त सामाजिक उलट-फेरके द्वारा ही सामाजिक सौहार्दकी स्थापना हो सकती है। बिना सामाजिक सौहार्दके सुदृढ राज्यका निर्माण नही हो सकता। दुर्भाग्यवश हमारे नेता धारा-सभाओसे बाहर लोकतन्त्रके व्यवहारपर जोर देनेकी आवश्यकता अनुभव नही करते। जिनके हाथमे देशका संचालन-सूत्र है वे पुलिस, फौज और नौकरशाही-के सदस्योपर ही भरोसा कर रहे है। यदि राष्ट्र-निर्माणके कार्यको आगे बढानेके लिए गैर-सरकारी संस्थाओसे काम लेनेकी बात उनके सामने रखी जाती है तो ऐसे सुझावोंके प्रति वे कोई उत्साह नही दिखाते। यह बात समझ लेनेकी है कि भारतीय संघका मार्ग फूलोसे भरा हुआ नही होगा। समय आ गया है कि हम इस उक्तिके सत्यको हृदयंगम कर ले कि सतत जागरूकता ही स्वतन्त्रताका मूल्य होती है।

आनेवाले समयमे बाह्य और आन्तरिक समस्या दोनोपर ही पूरा ध्यान देना होगा। सघके भीतर विच्छिन्नकारी शक्तियोका नियन्त्रण हिसाके प्रयोगद्वारा नही, बल्कि इन शक्तियोका प्रतिनिधित्व करनेवाली जनताकी उचित माँगो और आकाक्षाओकी पूर्ति द्वारा करना होगा। जो विभाजक शक्तियाँ अबतक स्वाधीनता प्राप्त करनेके समूचे ध्यानको एक ही ओर लगा देनेवाले कार्यकी ओर लगी हुई थी अब खुलकर खेलनेके लिए अवसर पायेगी। इस प्रकारकी प्रवृत्तियाँ अभी ही उभरती हुई नजर आ रही हैं। उदाहरणके लिए बम्बईके भविष्यके सम्बन्धमे काग्रेसजनोमें अभीसे मतभेद उत्पन्न हो गया है। एक दल उसे गुजरातका अग बनाना चाहता है तो दूसरा महाराष्ट्रका। प्रान्तके अन्तर्गत प्रादेशिक स्वायत्त शासनको स्वीकार करके आदिवासियोके पार्थक्यवादी आन्दोलनकी माँगका हमे सहानुभूतिपूर्ण हल ढूँढना होगा। विभिन्न प्रान्तोकी ईर्ष्याके उभड़नेका खतरा भी है और उनसे उत्पन्न होनेवाले प्रान्तीय झगड़ोका निपटारा करनेके लिए हमे अपनी पूरी बुद्धि और समझका उपयोग करना पडेगा। सबके ऊपर भूख और गरीबीकी समस्याको हल करना तो हे ही।

वादा नहीं प्रत्यक्ष चाहिये

अब हमे यह देखना है कि एक सुदृढ राज्यकी स्थापना किस प्रकार हो सकती है। आधुनिक उद्योग-धन्धोके बिना ऐसे राज्यकी कल्पना भी नही की जा सकती। ब्रिटिश शासनसे विरासतमे अशिक्षा, दरिद्रता, पिछड़े उद्योग-धन्धे तथा अत्यन्त पुराने ढंगकी कृषि-व्यवस्था ही हमे प्राप्त हुई हैं। हमे सभी काम नये सिरेसे आरम्भ करना है, किन्तु जनताके हार्दिक सहयोगके अभावमे हमारी प्रगति सम्भव नही। इस महान् निर्माण-कार्यमे हमे जनताकी शक्तिका प्रयोग करना है और उसमे दिलचस्पी एवं उत्साह पैदा करना है। यह सब तबतक सम्भव नही जबतक राज्य जनतामे नया विश्वास नही

उत्पन्न कर देता। उसे न केवल आर्थिक प्रगति और सामाजिक कल्याणका वादा करना है, वल्कि सामाजिक उन्नतिका प्रत्यक्ष प्रमाण भी देना है। ऐसी अवस्थामे ही लोग सभी आपत्तियोका सामना करेगे। सोवियत रूसका उदाहरण हमारे सामने है। लेनिनकी प्रेरणासे राज्यद्वारा जारी किये गये कानूनोने देशमे एक ऐसी मनोवैज्ञानिक स्थिति पैदा कर दी थी जिससे श्रमिकोमे नया जीवन आ गया और वे अनुभव करने लगे कि उन्हे अपने राज्य-निर्माण का कार्य पूरा करना है। सोवियत जनताने उज्वल भविष्यकी आशामे हर तरहके कष्टोको प्रसन्नतापूर्वक सहन किया।

अगर हम जनताको संघटित करना चाहते है और एक नये जीवनका आधार तैयार करनेमे उसका सहयोग प्राप्त करना चाहते है, तो हमे रूसी उदाहरणका अनुकरण करना होगा।

इस राष्ट्रीय कार्यमे सामाजिक दृष्टिसे दलित वर्गोका हार्दिक सहयोग प्राप्त होगा और उनकी सामूहिक शक्तिका तभी सदुपयोग हो सकता है जब कि हम उन्हे यह अनुभव करा देगे कि आजका सामाजिक भेदभाव शीघ्र ही समाप्त हो जायगा। हमारे देशमे जनताकी शक्तिका एक ऐसा विशाल स्रोत है जिसका अधिक उपयोग नही किया गया है और इसमे तभी सफलता मिल सकती है जबकि हम बुद्धिमत्तापूर्वक और सहानुभूतिके साथ इसका इस्तेमाल करेगे।

हमे जनतामे यह विश्वास उत्पन्न कर देना है कि राज्य उनकी मान्य महत्ताको स्वीकार करता है और शासन-व्यवस्थाके वे स्वय एक मुख्य अवयव है।

हमे यह भी स्मरण रखना है कि वर्तमान युगमे व्यक्तिको आर्थिक उन्नति करनेके लिए समान अवसर दिये जानेपर विशेष जोर दिया जाय।

जहाँ विभिन्न वर्गोमे पायी जानेवाली विषमता, आर्थिक विषमता, वहुत अधिक है, सुखमय जीवन सम्भव नही।

इसलिए सामाजिक विषमताकी समाप्ति लोकतान्त्रिक व्यवस्थाके विकासके लिए अत्यन्त आवश्यक है। यह बिलकुल स्पष्ट है कि यदि हिन्दू-राज्यका नारा कार्यान्वित किया गया तो लोकतन्त्र मुरझा जायगा और हमारी सामाजिक व्यवस्थाके वर्तमान दोष स्थायी बन जायँगे। अनुदार और प्रतिक्रियावादी शक्तियोका जोर पुन. बढ़ जायगा और हिन्दू धर्मके नामपर इस वातकी पूरी कोशिश की जायगी कि लोकतन्त्रीय आदर्शोका आर्थिक क्षेत्रमे विकास न हो सके। पुरानी पद्धतियोको पुनर्जीवित करनेकी चेष्टा घातक ही सिद्ध हो सकती है, पर नया सामाजिक दृष्टिकोण, जिसके विकासकी हमलोग चेष्टा करते रहे है और जिसके द्वारा ही जन-शक्तिको एक नयी दिशा प्रदान की जा सकती है, उस प्रतिक्रियावादी दृष्टिकोणद्वारा दवा दिया जायगा जो भविष्यके विरुद्ध भूतकालीन व्यवस्थाका पोषक है।

हमे उन नये सामाजिक और सास्कृतिक आदर्शोकी रक्षा करनी है जिनका निर्माण जनताके इतने कष्ट सहनके बाद हो सका। गत दो पीढियोकी शिक्षाको व्यर्थ नही जाने देना चाहिये। इस बीच हिटलरके सकीर्ण राष्ट्रवादके विरुद्ध हमें मेजिनीके व्यापक

राष्ट्रवादको अपनानेकी शिक्षा मिली है। हमने बराबर यह ध्यान रखा है कि हमारी राष्ट्रीयता आक्रमणशील संकुचित राष्ट्रीयताकी अधोगतिको न प्राप्त होने पाये। आधुनिक युगमे राष्ट्रीयता अधिक अनुदार होती जा रही है, इसलिए यह और भी आवश्यक हो गया है कि हम पूर्ण सतर्क रहे।

१५ अगस्तसे ही

यदि उपर्युक्त बाते सही है, तो हमें अपने देशकी राजनीतिके नये अध्यायको आरम्भ करनेमे देर न करनी चाहिये। १५ अगस्तसे ही इसका श्रीगणेश किया जा सकता है। उस दिन नव-निर्मित सरकारको शोषित एव दलित वर्गो और पिछड़ी जातियोके लिए आशाका एक नया सन्देश घोषित करना चाहिये जिसमे जनताकी सार्वभौम सत्ताको स्वीकार किया गया हो। उसी दिन हमारे सामाजिक जीवनके नये आधारकी भी घोषणा होनी चाहिये और उसमे सकेत होना चाहिये कि नयी शासन व्यवस्थामे जनताको भाग लेने-देनेके लिए क्या कदम उठाये जा रहे हैं। किन्तु महज वादोसे ही काम नही चल सकता। नयी सरकारको अपनी लगनका प्रमाण भी देना होगा। घोषणा-मात्रसे लोगोमे उत्साह नही उत्पन्न हो जायगा जबतक उसके साथ ही हम उस घोषणापर अमल करना भी नही आरम्भ कर दे। क्या ही अच्छा होता अगर उसी दिन राज्यद्वारा जमींदारी प्रथाकी वास्तविक समाप्तिकी घोषणा हो जाती।

गैर-सरकारी संस्थाएँ

लोकतन्त्रकी नीव हमे अभीसे डालनी होगी। कोरे वस्तुवादी इस कार्यको उतना महत्त्वपूर्ण नही समझ सकते हैं जितना कि रक्षा-व्यवस्था और एक योग्य सिविल सर्विसका संघटन। किन्तु ये सभी कार्य समान महत्त्वके है और किसीको भी भविष्यके लिए नही टाला जा सकता। यथार्थवादी व्यक्ति तात्कालिक आवश्यकताओकी ओर विशेष ध्यान देता है और वर्तमान आवश्यकताओके सामने भविष्यकी उपेक्षा कर देता है। ऐसी यथार्थवादिता व्यक्तिको अवसरवादिताके गड्ढेमे गिरा सकती है। दूसरी तरफ एक विशुद्ध आदर्शवादी एक ऐसे भविष्यके चक्करमे जो कभी आनेवाला नही है, वर्तमानका बलिदान कर सकता है। किन्तु ऐसा आदर्शवादी जिसके आदर्शकी जडे यथार्थवादमे हैं, बीचके एक सुनहले मध्यम मार्गको ग्रहण करेगा और भविष्यके साथ वर्तमानके सम्बन्ध-को कायम रखेगा। यथार्थवादी व्यक्ति आदर्शोको हवाई बात कहकर उसका उपहास कर सकता है, किन्तु वह भूल जाता है कि इतिहासकी प्रेरक शक्ति राजनीति और कूटनीति नही वरन् आदर्शोके प्रति विश्वास और उत्कट लगन ही रही है।

सार्वभौमिक शिक्षाके बिना लोकतन्त्रका निर्माण सम्भव नही है। शिक्षा देनेके अतिरिक्त यदि हमे समाजमें लोकतन्त्रीय पद्धतिका प्रसार करना है तो इस कार्यमें हमे सहकारी आन्दोलनसे बढ़कर दूसरी वस्तुसे सहायता नही मिल सकती है। इस तरहका सामाजिक संगठन स्थानीय लोगोमे कर्तृत्व शक्तिको बढाता है, सामाजिक कल्याणके लिए समानताके आधारपर लोगोको संघटित करता है और लोकतन्त्रको विकसित करता

है। ऐसे क्रान्तिकारी जन-सघटनके नैतिक प्रभावसे लोकतन्त्रीय ढंगसे शासित स्वतन्त्र व्यक्तियोवाले समाजके निर्माणमे सहायता मिलेगी। इसके अतिरिक्त इस वातका भी प्रयत्न होना चाहिये कि देशके पिछड़े हुए भागोकी सास्कृतिक, सामाजिक और आर्थिक उन्नति हो सके। इन्ही तरीकोसे हम भयकर सामाजिक विषमताको समाप्त कर सकते हैं जिससे आज हमारा सामाजिक सघटन दूपित हो गया है। साथ ही राज्यका यह विशेष कर्तव्य होना चाहिये कि वह प्रत्येक समूहको उन्नतिका समान अवसर प्रदान करे।

सरकारी व्यवस्था चाहे वह कितनी ही कुशल क्यो न हो, अकेले इन उद्देश्योकी प्राप्ति नही कर सकती है। गैर-सरकारी सस्थाओकी स्थापना करनी होगी और उनके द्वारा सरकारी कार्योको पूरा करनेके लिए राष्ट्रव्यापी आन्दोलन आरम्भ करना होगा। काग्रेस-संघटन, जो चुने हुए कुशल लोगोका समूह रहा है, का इस कार्यमे उपयोग किया जा सकता है। काग्रेसमे आदर्शवाद और आत्मत्यागकी भावनाकी कमी नही है। यदि आज यह पतनोन्मुख है, तो इसका एकमात्र कारण परिवर्तित परिस्थितियोके अनुकूल लक्ष्य और कार्यक्रमका अभाव है। राष्ट्रद्वारा अपनायी जानेवाली आधारभूत नीतियोके मूल स्रोतके रूपमे काग्रेसका जो महत्व अवतक रहा है उसे वह तेजीसे खो रही है। इसका काम अव केवल चुनाव लड़ना और सरकारके निर्णयोकी स्वीकृति देना मात्र रह गया है। प्रत्येक व्यक्ति इसको सुसघटित करनेकी वात करता है, किन्तु इस समस्यापर विचार करनेके लिए किसीको समय नही है। इस आत्मसन्तोषका, जिससे सारा राष्ट्र पीड़ित है, अवश्य अन्त होना चाहिये। यह सोचना गलत है कि जवतक गाधीजी और जवाहरलाल-जी मौजूद हैं तवतक राष्ट्रका भाग्य इनकी मुट्ठियोमे सुरक्षित है। हमे स्मरण रखना चाहिये कि किसी संघटनका महत्व उसके उच्च नेताओद्वारा नही वल्कि उसके साधारण कार्यकर्ताओद्वारा आँका जाता है। भारत अपनी ह्रासावस्थामे भी कितने ही महान् पुरुषोको जन्म दे चुका है, किन्तु सर्वसाधारण व्यक्तिको उठाया नही जा सका। जो राजनीतिक पद्धति उच्च नेताओपर इस प्रकार आश्रित रहती है, उसमे कोई मौलिक दोष अवश्य है। मेरी रायसे यह मनोवृत्ति हमारी उस सामाजिक व्यवस्थाकी देन है जो पीडित करके थोडेसे ऐसे विशेष व्यक्तियोको जन्म देती है जो इन लाखो व्यक्तियोके उद्धारके रूपमे सामने आते हैं। लोकतान्त्रिक सरकारका कार्य चलानेके लिए औसत दर्जेकी योग्यतावाले व्यक्तियोकी वडे पैमानेपर आवश्यकता है। साधारण जनता कैसे ऊँची उठायी जाय और उसे लोकतान्त्रिक जीवन-प्रणालीकी शिक्षा कैसे दी जाय यही हमारी समस्या है। क्या हम इस कार्यको पूरा कर सकेगे।[1]

हिन्दुस्तान और राष्ट्रमण्डल (१)

यह वडे दु खकी वात है कि हिन्दुस्तान धीरे-धीरे उन सभी घोषित आदर्शोको छोड़ता जा रहा है, जिनके लिए उसने गत २० वर्षोसे सघर्ष किया था। धीरे-धीरे हम परस्पर

१. 'समाज' १० जुलाई १९४७ ई०

विरोधी दो खेमोंमेंसे एक खेमेकी ओर बढ़ते जा रहे हैं। चाहते हुए भी हम बड़ी तेजीके साथ इङ्गलैण्डकी प्रतिक्रियावादी परराष्ट्र नीतिके साथ अपनेको एकाकार कर रहे हैं। अभीतक किसीने यह नही बताया कि इस तरहके गठबन्धनसे हिन्दुस्तानको क्या लाभ होगा ? एक बात तो हमें साफ दिखायी दे रही है कि हमारे देशवासियोंके साथ ब्रिटिश राष्ट्रमण्डल-के देशोमें बराबरीका बर्ताव नही हो रहा है।

भारत सरकारकी नीति न समाजवादी है और न राष्ट्रवादी। देशके नेताओंने हमें धोखा दिया है। हमें उम्मीद करनी चाहिये कि देशकी जनता जागेगी और इस भयंकर भूलको सुधारेगी।

इस समझौतेमें ब्रिटेन सबसे बड़ा हिस्सेदार है और ब्रिटिश बादशाह उसकी एकताका प्रतीक है। यद्यपि मजदूर सरकार अपने देशमें समाजवादी नीति अख्तियार किये है, लेकिन उसकी विदेश-नीति साम्राज्यवादी और प्रतिक्रियावादी है। इसके अतिरिक्त ब्रिटेन ऐंग्लो-अमेरिकी गुटका एक प्रमुख सदस्य है और आस्ट्रेलिया तथा न्यूजीलैण्ड अपनी सुरक्षाके लिए उससे सहयोग कर रहे हैं। उसकी वर्तमान विदेशी नीति चर्चिलकी नीतिका ही अंश है। वह प्रगतिशील शक्तियोंके विरुद्ध हर जगह राजाओं, सामन्तों और पुराने रईसोंका समर्थन कर रहा है। मलायामें वह अपने साम्राज्यवादी हितोंकी रक्षा कर रहा है और अन्य देशोमें यूरोपीय शक्तियोंके साम्राज्यवादी दावोंका समर्थन कर रहा है।

इसके अलावा एक बात यह भी है कि कामनवेल्थके इन सदस्योंके साथ भारतका किसी अर्थमें साम्य नहीं है, उनकी ठीक जगह तो कामनवेल्थके बाहर ही होती। कामन-वेल्थके पुराने सदस्य तो ब्रिटिश बादशाहके प्रति राजभक्ति रखनेके लिए जातीयता, परम्परा, संस्कृति और रक्त-सम्बन्धके कारण बाध्य थे।

केवल 'ब्रिटिश' नाम हटा देनेसे ही कामनवेल्थके असली स्वरूपमें अन्तर नही आ जाता। या तो हम यह मान लें कि कामनवेल्थ कुछ राज्योंका ढीलाढाला संगठन है, जिसके पीछे उद्देश्योंकी कोई एकता नही ऐसी हालतमें उसकी सदस्यतासे हमारा क्या लाभ होगा ? या अगर हम माने कि इस संगठनके पीछे एक सामाजिक और आर्थिक नीति है, तो उस हालतमें हमें यह देखना पड़ेगा कि हमारे लक्ष्यका मेल बैठता है या नही।

यह साफ है कि जिन लोगोंने दोनो गुटोंमें किसी एकके साथ गठबन्धन कर लिया, उनसे विश्वमें शान्ति-रक्षा करनेकी आशा नही की जा सकती। जो लोग तटस्थताकी नीति अपनाये हुए है, जैसा कि हमलोग, उनको इन गुटोंसे कतई अलग रहना चाहिये।

कामनवेल्थके साथ हमारे सम्बन्धोंकी प्रतिक्रिया रूसपर अवश्य पड़ेगी। सोवियत प्रेस तो पहलेसे ही हमारा विरोधी था, अब इस घटनासे तो उसे एक बहाना मिल जायगा।

यद्यपि मैं सोवियत रूसकी परराष्ट्र नीतिकी कई बातोंसे सहमत नही हूँ, तो भी मैं यह कहनेको तैयार नही हूँ कि सोवियत रूस खामखाह लड़ाई करना चाहता है और उसका

रुख आक्रमणात्मक है। अगर हम वास्तवमें तटस्थ रहना और दुनियामें शान्ति तथा प्रगति लाना चाहते हैं तो हमे अपने पड़ोसी देशोंके साथ अनाक्रमण सन्धि करनी चाहिये और दुनियाकी प्रगतिशील शक्तियोंके साथ अपना सम्बन्ध जोड़ना चाहिये।"[1]

हिन्दुस्तान और राष्ट्रमण्डल (२)

पण्डित नेहरूके प्रति अत्यधिक सम्मान और स्नेह होनेके कारण मैं उनके साथ किसी विवादमे नही पड़ना चाहता, किन्तु कुछ दिन पूर्व उन्होने राष्ट्रमण्डलके प्रश्नपर अपने ब्राडकास्ट-भाषणमे मेरा भी नाम लिया है, अतएव इस अवसरपर उनको तथा जनताको अपना विचार स्पष्ट रूपसे बता देना मैं अपना कर्तव्य समझता हूँ। नेहरूजीकी कुछ सफाईका तो मुझसे कोई सम्बन्ध नही है। मैं यह जानता हूँ कि राष्ट्रमण्डल कोई महाराज्य नही है और उससे हम जब चाहें सम्बन्ध-विच्छेद कर सकते है। साथ ही अगर हिन्दुस्तान-का राष्ट्रमण्डलमें रहना हितकर मान लिया जाय तो इसमे सन्देह नही कि प्रधान मन्त्रीजीको इस कार्यमे काफी सफलता मिली है। हमारे सामने यह प्रश्न नही है कि राष्ट्र मण्डलकी सदस्यतासे सिद्धान्ततः हमारी स्वतन्त्रतामे बाधा पहुँचती है या नही, बल्कि हमें यह देखना है कि क्या उससे हिन्दुस्तानका स्थायी हित होता है और क्या उससे विश्व-शान्ति और प्रगतिमे सहायता मिलेगी? इस कसौटीसे हमे इस प्रश्नपर विचार करना है, किन्तु मुझे अफसोसके साथ कहना पडता है कि सिवाय व्यर्थकी बाते बनानेके पण्डित नेहरूने कभी यह बतानेकी कोशिश नही की कि उससे इन महान् उद्देश्योंकी पूर्तिमें किस प्रकार सहायता मिलेगी। मै न तो अलगावकी नीतिका समर्थक हूँ और न मेरे अन्दर किसी जाति-विशेषके प्रति कोई विरोध-भाव ही है। मैं अंग्रेजोका बहुत सम्मान करता हूँ और उनकी कुछ विशेषताओंका प्रशंसक भी हूँ। मैं संकीर्ण राष्ट्रीयताको इस युगका सबसे बड़ा अभिशाप मानता हूँ। मैं यह भी चाहता हूँ कि जहाँतक हो ब्रिटेनके साथ समझौता और सहयोग भी होना चाहिये। तात्पर्य यह कि अगर मुझे यह विश्वास हो जाय कि वर्तमान अन्तरराष्ट्रीय परिस्थितिमें राष्ट्रमण्डलके अन्दर ही हिन्दुस्तानका हित-साधन और उद्देश्य-पूर्ति हो सकती है तो मैं निस्सन्देह इसका समर्थन करूँगा, किन्तु अफसोस है कि मुझे प्रधान मन्त्रीजीके हालके भाषणोमे एक भी ऐसी बात नही मिली जिससे मेरे विचारमे परिवर्तन हो सके।

प्रधान मन्त्रीजीने राष्ट्रमण्डलके प्रश्नपर हालके विवादको बिलकुल व्यर्थ कहा है और फिर भी इसपर विधान-परिषद् तथा अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटीसे विचार करनेका अनुरोध किया है। मुझे अफसोस है कि नेहरूजी इतने महत्वपूर्ण प्रश्नको जरासी बातमे ही खतम कर देना चाहते है। क्या वह नही जानते कि इसी प्रश्नको लेकर हिन्दुस्तानमे २२ वर्षोसे विवाद चल रहा है? १९०७ की सूरत-कांग्रेसमे जिन प्रश्नोंपर फूट पड़ी

१. 'संघर्ष' ९ मई, १९४९ ई०

उनमे एक यह भी था और वह मतभेद १९१६ तक बना रहा । इसी प्रश्नको लेकर १९२८ मे पण्डित नेहरूने अन्य लोगोके सहयोगसे इण्डिपेण्डेन्स आफ इण्डिया लीगकी स्थापना की । इसी प्रश्नपर १९२८ की कलकत्ता-कांग्रेसमे उन्होने गांधीजी तथा मोतीलालजीका विरोध किया और अपने इसी विचारके कारण ही १९२९ में वह भारतीय युवकोके हृदय सम्राट बने । इसमे जरा भी सन्देह नही कि जब उन्होने ब्रिटेनसे पूर्ण सम्बन्ध-विच्छेदका जोरदार समर्थन किया तो उनके अन्दर कोई ब्रिटिश-विरोधी भावना काम नही कर रही थी, बल्कि इसके लिए कुछ विशेष कारण थे । हमलोग भी उन दिनो अलगावकी नीतिके समर्थक नही थे । अतएव अगर हमे उस ध्येयका जिसे मैं अपने विद्यार्थी-जीवनसे ही ही मानता रहा हूँ परित्याग करना है तो मैं उन विशेष कारणोको जानना चाहूँगा जिनसे आज हमे अपनी नीतिमे परिवर्तन करनेकी आवश्यकता पड़ी ।

मै अत्यन्त नम्रतापूर्वक यह कहना चाहता हूँ कि पण्डित नेहरूके पत्र-प्रतिनिधि सम्मेलनवाले भाषणसे तो उनके ब्राडकास्ट भाषणका प्रभाव भी नष्ट हो गया । विगत कुछ वर्षोमे जब कभी हमलोगोका उनसे मतभेद हुआ तो वह बिना कोई दलील दिये ही हमलोगोपर संकुचित दृष्टि और नारोमे चिपके रहनेका आरोप लगाते रहे है, किन्तु यह कोई दलील नही और इससे तो वामपक्षियोपर उनका आक्रोश ही प्रकट होता है । वह हमारी मखौल उड़ा सकते हैं और दोषारोपण भी कर सकते हैं, किन्तु किसी विरोधीको प्रभावित करनेका यह तरीका नही है । मैं उनकी काफी इज्जत करता हूँ और उनसे व्यर्थ विवाद नही करना चाहता, किन्तु मै यह स्पष्ट करना चाहता हूँ कि अगर हममेसे कुछ लोग विगत २५ वर्षोंके राष्ट्रीय आन्दोलनके विचारो और विश्वासोसे बुरी तरह चिपके हुए है और जो आज भी पूर्ण नही हुए है तो दूसरी ओर प्रधान मन्त्रीजी भी ब्रिटिश शासनकी नौकरशाही व्यवस्था तथा अन्य कुरीतियोंमे बुरी तरह उलझ गये है । वह वर्तमान परिवर्तनशील जगत्‌मे प्रगतिशील विचार और कार्यकी आवश्यकताका उपदेश देते है, किन्तु उनकी सरकारकी नीति स्वय द्विविधा और भीरुतापूर्ण है और अगर वह यथास्थितिको कायम नही रखना चाहती तो समझौतावादी तो अवश्य है । इतने दिनोके सरकारी अनुभवसे अब उनके पुराने आदर्शो एव सिद्धान्तोकी व्यावहारिकतामे वह आस्था नही रही । उनकी बाते तथा कार्य सभी गोलमटोल होते है । यही कारण है कि उन्होने निश्चत और ठोस सम्बन्धकी अपेक्षा एक अनिश्चित और गोलमटोल सम्बन्धको अधिक पसन्द किया । इससे यह सिद्ध करना चाहते है कि वह अलगावकी नीतिके समर्थक नही है और उन लोगोंके साथ मैत्री-सम्बन्ध कायम रखना चाहते है जिनको वह जानते है तथा जिनके विचारोसे वह काफी सहमत है ।

मैंने अपने एक पूर्व वक्तव्यमे राष्ट्रमण्डलमे सम्मिलित होनेके विरुद्ध अपने विचारोको संक्षेपमे कह दिया था । इधर राष्ट्रमण्डलके सदस्य-राष्ट्रोके राजनीतिज्ञोने पण्डित नेहरूकी प्रशसाका जो राग अलापा है उससे मेरे विचारोकी पुष्टि ही हुई है । अब तो हम जालमे फँस चुके है और विधान चाहे जो कुछ भी हो, ब्रिटिश राजनीतिज्ञ अब हमको यूरोपीय राजनीतिमे अधिकाधिक फँसानेका खेल शुरू करेगे । कहा जाता है कि राष्ट्र-

मण्डलसे हमे सैनिक सहायता प्राप्त होगी, किन्तु हमारे शत्रु कौन है जिनसे राष्ट्रमण्डल हमारी रक्षा करेगा। उसके सभी प्रमुख सदस्य-राष्ट्र आंग्ल-अमेरिकन गुटमें शामिल है और पाश्चात्य यूरोपीय संघ तथा अटलांटिक पैक्टके समर्थक है। ऐसी स्थितिमे राष्ट्र-मण्डल हिन्दुस्तानकी तटस्थता-नीतिमे कदापि सहायक न होगा।

पण्डित नेहरूने एक नये एशियाके निर्माणका उल्लेख किया है और इसके नामपर हमसे राष्ट्रमण्डलका समर्थन करनेके लिए कहा है। किन्तु उन्होने यह बतानेका कष्ट नही किया कि इन दोनोका एक दूसरेसे क्या सम्बन्ध है? मेरे विचारसे तो राष्ट्रमण्डलमे शामिल होनेसे दक्षिण-पूर्वी एशियाई राष्ट्रोके साथ हमारे सम्बन्धपर बुरा प्रभाव पडेगा। ब्रिटेन मलायामे साम्राज्यवादी नीतिका अनुसरण कर रहा है और उसका डच और फ्रासीसी साम्राज्यवादके साथ गठबन्धन भी है। दक्षिण-पूर्वी एशियामे जिन शक्तियोका उदय हो रहा है और जो शीघ्र ही सत्तारूढ़ होगी, वे राष्ट्रमण्डलके साथ किसी प्रकारके सम्बन्धकी विरोधी है। हमलोगोने अपनेको पहले ही एक गुटमे शामिल कर लिया है और अगर दूसरे उसके विरुद्ध जाते है तो हम उनपर दोषारोपण नही कर सकते है।

प्रधान मन्त्रीजीका विश्वास है कि हिन्दुस्तान राष्ट्रमण्डलमे रहकर विश्व-शान्तिमें अधिक प्रभावकर रूपसे योगदान दे सकता है। किन्तु इस बातकी बिलकुल आशा नही है कि हिन्दुस्तान ब्रिटेन और राष्ट्रमण्डलके दूसरे राष्ट्रोकी नीतिको प्रभावित कर सकेगा। उन राष्ट्रोने सयुक्त राष्ट्रसघमे अनेक महत्त्वपूर्ण प्रश्नोपर हिन्दुस्तानके विरुद्ध मत दिया है। अपनी देशभक्ति और सदाशयताके कारण ही हम ऐसा सोचते है। किन्तु इस गुरुतर कार्यको करनेके लिए न तो हमारे पास सैनिक शक्ति है न नैतिक बल। गाधीजीके बताये हुए मार्गोको तिलांजलि देकर हम कबतक उनका नाम बेचते रहेगे। हमने जो कुछ नैतिक शक्ति सचित की थी वह नष्ट हो रही है। हिन्दुस्तान केवल मनुष्यकी विवेक-बुद्धिसे नैतिक अपील कर सकता है, किन्तु उसके लिए हम दिनोदिन असमर्थ हो रहे है।

यह अत्यन्त दुखकी बात है कि हिन्दुस्तान पण्डित नेहरूकी महती विचार और कार्य-शक्तिका कुछ मनोवैज्ञानिक कारणोसे पूरा लाभ नही उठा पा रहा है। क्या ही अच्छा होता अगर हमारे प्रधान मन्त्रीजी राष्ट्रमण्डलके फन्देसे बाहर निकलकर विश्वको एक नये दृष्टिकोणसे देखते।[1]

लखनऊमें ९ अगस्तको भाषण—कामनवेल्थविरोधी[2]

८ अगस्त सन् ४२ को काग्रेसने यह फैसला किया था कि हमारे नये विधानमे देशकी राजनीतिक ताकत किसान-मजदूरके हाथमे दी जाये, परन्तु लोगोके दिल-दिमाग इस फैसलेको माननेके लिए तैयार नही किये गये थे। सन् ४२ की क्रान्ति शुद्ध राजनीतिक

१. 'जनवाणी'—जून १९४९ ई०

२. सन् १९४९ ई०

क्रान्ति थी, सामाजिक क्रान्ति नही। उसके साथ जनताके सामाजिक संघर्ष नही चल पड़े, अन्यथा आज देशकी शक्ति ही दूसरी होती।

सन् ४२ की क्रान्तिके बाद अंग्रेज समझ गये कि बिना फौजकी सहायताके जागृत हिन्दुस्तानपर शासन करना कठिन है; परन्तु सन् ४६ के नौ-सैनिक विद्रोहने बताया कि फौज-पुलिस भी उनके खिलाफ होती जा रही है। द्वितीय महायुद्धसे ब्रिटेन कमजोर होकर निकला, इसलिए उसके सामने हिन्दु स्तानको आजादी देनेके सिवाय दूसरा चारा न रहा।

अंग्रेजोंकी चाल सफल

लेकिन अंग्रेज बडी चालाक कौम है, उसने बाहर निकलते-निकलते भी देशका बँटवारा करके उसे कमजोर कर दिया। पाकिस्तान बनानेमे उसकी मशा यही थी कि दोनो देश हमारी सहायताके मुँहताज रहेगे और खुशी-खुशी कामनवेल्थमे आ जायेंगे।

ब्रिटिश सरकारकी चाल सफल हुई। हिन्दुस्तानकी सत्तारुढ पार्टी कांग्रेसने कामनवेल्थमे रहनेका फैसला कर दिया है। लेकिन यह निर्णय उसके अबतकके किये वादोंके खिलाफ है। सन् १९०६ मे इसी प्रश्नको लेकर कांग्रेसमे दो पार्टियाँ हुई। कलकत्ता-कांग्रेसमे दादाभाई नौरोजीने स्वराज्यकी माँग रखी। सन् १९०७ मे यह मतभेद अधिक उग्र हो उठा और सूरत-कांग्रेसमे नरम और गरम दल अलग-अलग हो गये। ९ वर्षतक वे अलग रहे। फिर इसी लखनऊमे सन् १९१६ मे कांग्रेसमें एकता स्थापित हुई। सन् १९२७ मे मद्रासमे जवाहरलालजीने मुकम्मिल आजादीका सवाल उठाया और 'इण्डिपेण्डेन्स आफ इण्डिया लीग' बनायी जिसमे सुभाषबाबू भी शामिल हुए। सन् २८ तक यह लीग चलती रही। उस वर्षकी कांग्रेसमे बड़ी गरम तकरीरें हुई। तय हुआ कि ब्रिटिश सरकारको एक सालकी अन्तिम चेतावनी (अल्टीमेटम) दी जाय। अगर इस अवधिमें वह औपनिवेशिक स्वराज्य (डोमिनियन स्टेटस) दे देती है, तब तो हिन्दुस्तान कामनवेल्थमे रहेगा अन्यथा नही। सन् १९२९ में लाहौर अधिवेशनमें कांग्रेसने अपना ध्येय बदला। पूर्ण स्वतन्त्रताका लक्ष्य उसने स्वीकार किया; मतलब कि उसने माना कि ब्रिटिश साम्राज्य या कामनवेल्थसे उसका कोई रिश्ता नही रहेगा।"

आस्ट्रेलिया, कनाडा आदि देश पड़ोसीके नाते अमेरिकाकी ओर ही ज्यादा झुके रहते हैं, लेकिन एक धर्म, एक नस्ल, एक जबान होनेके कारण वे कामनवेल्थमे भी शिरकत किये हुए है। पर हिन्दुस्तान किस दृष्टि से, किस लाभके लिए कामनवेल्थमे रहे?

पण्डित जवाहरलाल नेहरूने बताया कि कुछ क्षणिक लाभ है हमे, पर इसके लिए हम विदेशियोके खानदानके मेम्बर क्यो बने? अंग्रेजोके साथ आप शौकसे दोस्ती रखिये, क्योकि आजकल ब्रिटेनमे मजदूर सरकार है। उसकी गृहनीति अच्छी है, परन्तु उसकी विदेश-नीति गलत है। ब्रिटिश सरकार सरमायेदारीकी पुरानी परम्पराओसे घिरी हुई है। वह उन ताकतोको उभारती है जो प्रगतिशील नही हैं और अब तो उसने

अमेरिकाके साथ मिलकर एक गुट बना लिया है। अमेरिका आज दुनियाकी सबसे खतरनाक ताकत है। सियासी मंशाको पूरा करनेके लिए वह मुल्कोको कर्ज देता है।

इंगलैण्ड खुद मुँहताज है

कुछ लोग कहते हैं कि हम कामनवेल्थमे रहेंगे तो हमें औद्योगिक निर्माणके लिए मशीनें मिलेगी, लेकिन इंगलैण्ड आज इस स्थितिमे है ही नही कि वह हमे मशीनें दे सके। अमेरिकासे मशीनें मँगानेमे डालरका झगड़ा है। हमारी कांग्रेस सरकारें बजट सेशनके शुरूमें बड़ी लुभावनी योजनाएँ रखती है, लेकिन सालके अन्तमे कहती है कि डालर न मिल पानेके कारण मशीनें नही आ सकी। पौण्डपावना भी नहीं मिल पा रहा है। हम अलग रहते तो ब्रिटेनपर कुछ दबाव भी डाल सकते थे।

रूस शत्रु बन गया

जब यह क्षणिक लाभ भी हमे नही मिलता, तब आखिर कौनसा फायदा है जिसके लिए हम कामनवेल्थमे रहें? नुकसान जरूर है। जबसे हमने कामनवेल्थकी साझेदारी मंजूर की है तबसे रूस खामखाह हमारा विरोधी हो गया है। हमारे पड़ोसी एशियाई देशोमें भी समाजवादकी ताकतें उभड़ रही हैं, उनकी भी इच्छा है कि हिन्दुस्तान कामनवेल्थमें न रहे। कामनवेल्थमे जितने मुल्क हैं, खुलेतौरसे या छिपे-छिपे ऐंग्लो-अमेरिकी गुटमें आ गये हैं। ऐसी हालतमे हम कितना ही तटस्थताका ढोल पीटें, कोई हमपर विश्वास करनेवाला नही। सब यही कहेंगे कि अगर आप आज इस गुटके साथ नही हैं तो जब मौका पड़ेगा तब उसके साथ हो जायँगे। अब हमारा मुल्क आजाद है, इसलिए दुनियाके सभी मुल्क हमसे दोस्ती करना चाहते है, लेकिन अगर हम किसी एक गुटके होकर रह गये तब हमसे दूसरे गुटके देश दोस्ती कैसे करेंगे?

कामनवेल्थकी अर्थनीति

कामनवेल्थ आखिर है क्या? उसके पीछे वर्षोका इतिहास है, वैदेशिक नीति है, एक आर्थिक व्यवस्था है जो पूँजीवादी है। फिर उससे हमारा मेल कैसे हो सकता है? सरमायेदारोका कोई मुल्क नही, वे अपने स्वार्थके लिए अपने मुल्कको कुर्बान कर सकते हैं। च्यागकाईशेकने उन कारणोको दूर न किया जिनके कारण कम्युनिस्ट आगे बढ़े, उल्टे वह पूँजीवादी अमेरिकाकी गुलामी करता रहा। जबतक सरमायेदारीका सिलसिला रहेगा तबतक दुनिया पनप नही सकती, उसमे अमन नही रह सकता। सरमायेदारोकी निगाह दुनियाकी दौलत हड़पनेपर रहती है, इसीलिए जंग होती है, राष्ट्र-प्रेम उभारा जाता है और सरमायेदार युद्ध करा देते हैं।

हम हरेक कौमसे दोस्ती करनेको तैयार हैं। हमारा ब्रिटेनसे व्यापारिक, आर्थिक, सांस्कृतिक समझौता हो सकता है, परन्तु हम किसी कुनबेमे नही दाखिल होंगे। अगर होंगे तो एशियाके आजादी-पसन्द देशोके कुनबेमे—तरक्की-पसन्द कुनबेमे शामिल होंगे।

सच्चा स्वराज्य नहीं हुआ

सच्चा स्वराज्य अभी नहीं हुआ है और ९ अगस्त सन् ४२ को शुरू हुई क्रान्तिका दौरा अभी समाप्त नही हुआ है। जबतक लोगोकी जहनियत—मनोवृत्ति नही बदलती तबतक मुल्ककी समस्याएँ हल न होगी। लाखो लोगोको जबतक एक नयी उम्मीदसे नही भर दिया जाता तबतक वे कष्ट-सहनके लिए तैयार नही हो सकते।

जनताकी मायूसी दूर करो

कांग्रेसी सरकारोसे हमारा कहना है—लोगोमे मायूसी छायी हुई है, उसे दूर करना चाहिये। जब जनताको विश्वास हो जायगा कि आप उसके बुनियादी सवालोको हल करनेके लिए तैयार है तभी वह आपपर विश्वास कर सकेंगी। हमारी शिकायत यह नही है कि आपकी रफ्तार धीमी है, पर हमारी शिकायत है कि आपके कदम गलत पड़ रहे है। आप लम्बे-चौडे वादे न कीजिये, छोटे बुनियादी काम ही हाथमे लीजिये अपनी ताकतके मुताबिक; तब जनताका सहयोग आपको प्राप्त होगा। एक बार आपपर विश्वास जमनेपर जनता भी थोड़े दिन और मुसीबत सहनेके लिए तैयार हो जायगी। जनतासे मेरी अपील है कि वह अपनी समस्याओंको खुद समझनेकी कोशिश करे और जो सही रास्ता हो उसे अख्तियार करे।

———

तीसरा अध्याय

समाजवादकी ओर

तीसरा अध्याय

कांग्रेस समाजवादी कान्फरेन्स[1]

हमारे सूबेमे प्रगतिशील शक्तियाँ काफी मजबूत रही है। यह सूबा साम्राज्योका लीलास्थल रहा है, अत: हमारे यहाँ वड़े-वड़े शहर वन गये और शहरके रहनेवालोका हमारे राष्ट्रीय जीवनमे अत्यधिक प्रभाव रहा है। शहरके रहनेवाले गाँववालोसे ज्यादा प्रगतिशील होते है। इसी कारण हमारे सूबेकी काग्रेस भी और सूबोसे ज्यादा प्रगतिशील रही है। तव अगर काग्रेस-समाजवादी पार्टीका हमारे सूबेमें जोर है तो आश्चर्य ही क्या ? अगर हम ठिकानेसे काम करे तो हमारा ख्याल है कि इस सूबेकी काग्रेसमे हम वहुमत अपनी तरफ कर सकते है। वरावर तो हम अव भी है। हमारी शक्ति विखरी हुई है। हम अच्छी तरह संगठित नही है, नही तो यह सूवा प्रगतिशील शक्तियोका नेतृत्व कर सकता और राष्ट्रीय आन्दोलनको आगे वढानेमे सव सूबोसे ज्यादा हिस्सा लेता। इसका सवूत तो यही है कि इन दो-तीन महीनोमे ही पार्टीके करीव-करीव एक हजार सदस्य वन गये। यह कान्फ्रेन्स इसीलिए की गयी कि हम सवको यह वता दे कि काग्रेस समाजवादी पार्टीके सगठनका कार्य अव जोरोसे मुस्तैदीसे हो रहा है और फिर हम वहुत दिनोसे मिले भी नही थे तथा मिलकर अपने प्रान्त और देशकी समस्याओपर विचार भी नही किया था।

समाजवादी नेतृत्वकी आवश्यकता

हम समाजवादियोको लेनिनकी यह वात वरावर याद रखनी चाहिये कि सामाजिक स्वतन्त्रताके लिए राजनीतिक स्वतन्त्रताकी लड़ाई वहुत जरूरी है। सामाजिक स्वतन्त्रताकी लड़ाई (Social struggle) चलानेके लिए यह जरूरी है कि राजनीतिक स्वतन्त्रताकी लड़ाई (Democratic struggle) मे पूरा-पूरा हिस्सा लिया जाय और उसे सफल करनेकी कोशिश की जाय। समाजवादी अगर राजनीतिक लडाईमे पूरा-पूरा भाग नही लेते तो सामाजिक स्वतन्त्रताके लिए लड़नेकी नौवत ही नही आयेगी। काग्रेस समाजवादी पार्टीका जन्म, जैसा कि उसका नाम ही वताता है, इसलिए हुआ था कि इन दोनो तरहकी लड़ाइयोको मिला देनेकी जरूरत थी। समाजवादियोको राष्ट्रीय आन्दोलनमे काग्रेसमे हिस्सा लेनेके लिए राजी करना था और राष्ट्रीय आन्दोलनमें समाजवादी शक्तियोका प्रभुत्व कायम करना था; एक क्रान्तिकारी नेतृत्व कायम करना था।

---

१. २ और ३ अप्रैल सन् १९३८ को लखनऊमे प्रान्तीय कांग्रेस समाजवादी कान्फरेन्समे सभापतिकी हैसियतसे दिया गया भाषण।

कांग्रेसमें आन्दोलनका अर्थ अभीतक सिर्फ प्रचार करना रहा है। प्रचार तो 'स्वतन्त्रता' 'स्वराज्य' ऐसी गोल-मटोल बातोंको लेकर किया जा सकता है, मगर जब प्रचारसे काम नही चलता और वास्तवमे आन्दोलन (agitation) करनेकी जरूरत पड़ती है तो ऐसी स्पष्ट बातोसे काम नही चलता; खासकर जब उसमे जनताको भी शामिल करनेकी बात हो। ऐसे आन्दोलनके लिए जिसमें जनताको पूरा-पूरा शामिल करना है, कुछ साफ-साफ ठोस बातोंकी जरूरत होती है, जिनका जनताकी रोजाना जिन्दगीसे गहरा सम्बन्ध हो यानी जनताकी आर्थिक माँगोको बुलन्द करनेकी जरूरत पड़ती है। यही एक तरीका राजनीतिक स्वतन्त्रताकी लड़ाईको आगे बढ़ाने, उसमे और भी ताकत लानेका है। जनसाधारणको सगठित कर उनमे लड़नेकी ताकत पैदा करनेका और कोई उपाय नही है। फिर तो यह साफ है कि यह काम बिना सामाजवादी नेतृत्वके पूरा नही हो सकता था। इन्हीं कारणोसे समाजवादी पार्टी पैदा हुई और इन्ही उद्देश्योंको हासिल करनेकी वह कोशिश करती रही है।

आर्थिक माँगोकी बुनियादपर आन्दोलन करनेसे, आर्थिक लड़ाई लड़नेसे, देशकी ताकत बढती है। इसीसे कांग्रेसकी भी ताकत बढ़ी है। इसका मिसाल तो पिछले असेम्बलियोका चुनाव ही था। अधिकांश काग्रेसजनोको यह विश्वास नही था कि इस पिछले चुनावमे कांग्रेसकी इतनी जबर्दस्त जीत होगी, क्योकि वह आर्थिक माँगोके बिना चलाये गये आन्दोलनकी ताकत नही जानते थे। इस चुनावने उनकी आँखें खोली।

मजबूत संगठन बनाइये

अब इतना तो जरूर हो गया है कि लोग अपनेको समाजवादी कहनेसे घबराते नही। अब तो सभी लोग आज यह साबित करनेकी कोशिश करते हैं कि एक नये प्रकारका समाजवाद वह भी चाहते है। महात्मागाधी भी अपनेको समाजवादी कहते है। ऐसी हालतमें एक समाजवादीकी पहचान बातोसे नही हो सकती। उसकी काररवाईको देखना होगा। हम भी प्रचारसे आगे बढ़कर संगठनके कार्यमें जुट जायँगे तो खरे और खोटे समाजवादीकी परख करना आसान हो जायगा। इसलिए हमे संगठनके कार्यपर सबसे ज्यादा ध्यान देना है। इसके लिए अपना एक पत्र होना चाहिये और अपने विचारोंका प्रतिपादन करनेके लिए पुस्तक-पुस्तकाएँ तैयार करनी चाहिये।

हमारे संगठनकी कमजोरी उसके शिथिल होनेके कारण हमें बड़ी मुश्किल हो रही हैं। यह जो काग्रेसके अन्दर नरमदल-और गरमदलवालोका झगड़ा उठ खड़ा हुआ है इसका दारोमदार मेरे ख्यालमे हमारी संगठनकी शिथिलतापर है। किसान-सभाओं और काग्रेसके सम्बन्धको ही लीजिये। यह ठीक है कि कांग्रेसके कुछ नेता काग्रेसके कार्यकर्ताओं-को किसान-सभाओंमें काम करनेसे रोकते है, किसान-सभाओका पनपना उन्हें बुरा लगता है, मगर मेरा विश्वास है कि इच्छा होते हुए लोग ऐसा नही कर पाते अगर किसान-सभाओंके ऊपर अनुभवी अग्रगामी कांग्रेसजनोकी अच्छी देख-रेख होती। किसान-सभाओं-का दायरा इतना बढ़ गया है और देखरेख करनेवाले इतने कम या असंगठित हैं कि

किसान सभाओकी कारखाइयोकी अच्छी देख-रेख नहीं हो पाती। तरह-तरहके लोग किसान-सभाओमे घुस पडे है और मनमानी कारखाई करते हैं। मेरा विश्वास है कि काग्रेस समाजवादी पार्टी यदि अच्छी तरह संगठित होती और किसान-सभाओंकी कारखाईपर पूरा नियन्त्रण रखती तो काग्रेसके नरमदलको शिकायत करनेका मौका मुश्किलसे मिलता और किसान-सभाओके खिलाफ लोगोंको भड़कानेमे इतनी आसानी न होती। इससे यह साफ है कि हमारे राष्ट्रीय सयुक्त मोर्चेका हमारे अच्छी तरह संगठित होनेसे कितना सम्बन्ध है।

इसी संगठनकी कमजोरीके कारण शासन-सकटके जमानेमे हरिपुरा-कांग्रेसमें हमारी पार्टी कमजोर पड गयी। जैसा नेतृत्व उसे देना चाहिये था वह न दे सकी। अगर हमारा सगठन अच्छा होता, हमे अपनी सगठित शक्तिपर भरोसा होता तो हरिपुरामे आपको दूसरा ही दृश्य देखनेको मिलता।

सगठनके सम्बन्धमे हमे एक दो बाते याद रखनी हैं। हमारी पार्टीको खतरा ऐसे लोगोसे है जो समाजवादके सिद्धान्त या तरीकोमे विश्वास न रखते हुए हमारी पार्टीमे इसलिये आ जाते हैं कि वह काग्रेसके नेतृत्वसे जाती बातोकी वजहसे चिढे हुए है या जो हमारी पार्टीको काग्रेसके ओहदे हासिल करनेका साधन बनाना चाहते हैं। हमे ऐसे लोगोसे बचना है और ऐसे लोगोको ही पार्टीमे दाखिल करना है जिनकी परख असली तरीकेसे हो चुकी है। दूसरी बात जो हमे ख्यालमे रखनी चाहिये वह यह है कि दूरदराजकी बातोपर उतना ध्यान न देकर हमे आजकी बातोपर ध्यान देना चाहिये। मूल सिद्धान्तोके सम्बन्धमे कडाई इतनी जरूरी नही है जितनी कि आजके आन्दोलनके तौर-तरीकोके सम्बन्धमे। दूसरे शब्दोमे यह कहा जा सकता है कि मूल सिद्धान्तोसे ज्यादा महत्त्वकी बात हमारे लिए इस समय विधि और उपाय (tactics) है। प्रजातान्त्रिक क्रान्तिके लिए हमारी जो लड़ाई चल रही है उसमे सफल नेतृत्व करनेके लिए सुलझे हुए उपायोका निर्धारण करना ही सबसे बडा काम है। इस कारण सदस्योकी छान-बीन करते समय हमे इस बातका ख्याल करना है कि पार्टीके अन्दर ऐसे ही लोग दाखिल किये जायँ जो राष्ट्रीय आन्दोलनका सफल नेतृत्व करनेकी योग्यता रखते हो यानी हमारी आजादीकी लड़ाईको आगे बढानेके सुलझे हुए तरीको की सच्ची वाकफियत रखते हो।

जबतक हम अपना सगठन मजबूत नही करते हम न तो प्रगतिशील शक्तियोका ही नेतृत्व कर सकते है और न राष्ट्रीय आन्दोलनका ही। काग्रेस समाजवादी पार्टीके सामने दो बड़े-बड़े काम है। एक तो सभी अग्रगामी शक्तियोको एक साथ करना और दूसरा ब्रिटिश साम्राज्यशाहीके खिलाफ अग्रगामी शक्तियोके नेतृत्वमे जबर्दस्त सयुक्त राष्ट्रीय मोर्चा तैयार करना। यह बात साफ है कि दूसरे काममे हमे सफलता तभी मिलेगी जब हम पहले कामको अन्जाम दे सके। हमे खुशी है कि हमारी पार्टी इसके लिए अपने जन्म-कालसे ही प्रयत्नशील रही है। हमे यह प्रयत्न जारी रखना है।

साथ-ही-साथ हमे इसकी कोशिश करनी है कि काग्रेसके अन्दर सुधारवादी मनोवृत्ति जोर न पकड़ने पावे। हमारी आजकी जो अवस्था है उसमें शासन संकटोका होना

अनिवार्य है। एक तो अभी खत्म हुआ, मगर अभी और आनेवाले हैं। इनका मुकाबला करनेके लिए राष्ट्रीय आन्दोलनके क्रान्तिकारी नेतृत्वकी आवश्यकता है। हमें लोगोंको यह समझाना है कि साम्राज्यशाहीको मजबूर करनेकी ताकत हममे तभी आयेगी जब हम जनताकी आर्थिक लड़ाईको राजनीतिक लड़ाईके साथ घुलमिल जाने दें। उदाहरणके लिए किसानो और मजदूरोके प्रदर्शनकी विधि हमे काममें लानी है। उन्हें अपनी माँगोंके लिए सगठित रूपसे आन्दोलन करना सिखाना है। कांग्रेसके चार आना मेम्बरोसे हमारा सच्चा सम्पर्क इसी तरह हो सकता है।

आजकी हालत तो यह है कि ऐसे प्रदर्शनोपर नाराजगीका इजहार किया जाता है। कहा जाता है कि इनकी जरूरत क्या है। इस विचारधारा, इस मनोवृत्तिको हमें दूर करना है। ऐसे प्रदर्शनोमे यहाँतक कि किसान-सभाओके कायम करनेमें कांग्रेसके बड़े-बड़े नरमदलके नेता भी पुराने जमानेमे शामिल हो चुके है। खुद सरदार वल्लभभाई पटेल हमारी प्रान्तीय किसान संघकी बैठककी सदारत कर चुके है। मगर आज चूंकि किसान-सभाएँ क्रान्तिकारी रूप अख्तियार कर रही है, इन्हे खतरनाक बताया जाता है।

इससे यह पता चलता है कि इसमे कोई सिद्धान्तकी बात नही है। मगर हमे अपना काम इस तरह करना चाहिये जिसमे हमें इन्हें कांग्रेसके साधारण सदस्योंकी निगाहमें बदनाम करनेका कोई बहाना न मिले। लाल झण्डा ले चलना ठीक है, मगर उसे राष्ट्रीय प्रदर्शनोमे राष्ट्रीय झण्डेसे ऊँची जगह देना एक गलत बात है। ऐसी कितनी ही बाते है जिनको ध्यानमे रखकर अगर हम काम करें तो कांग्रेस और राष्ट्रीय आन्दोलनको क्रान्तिके पथपर बढाते हुए हम राष्ट्रीय स्वतन्त्रता और समाजवादकी बीचकी मंजिलें तेजीसे तय करते जायँगे। यह ठीक है कि समाजवादी होनेकी हैसियतसे हमें इसकी तैयारी करनी है कि स्वराज्यकी लड़ाई जैसे ही खतम हो या उसके खतम होते-होते सामाजिक स्वतन्त्रताकी लड़ाई शुरू हो जाय, मगर यह भी ठीक है कि अगर स्वराज्यकी लड़ाईमे हम जल्दसे जल्द कामयाबी हासिल नही करते तो सामाजिक स्वतन्त्रताकी लड़ाईकी नौबत ही नही आयेगी।

संयुक्त मोर्चा और भारतीय कम्युनिस्ट

विविध विचार रखनेवाले व्यक्तियो या समुदायोमे किसी सामान्य शत्रुके विरुद्ध या किसी विशेष उद्देश्यकी पूर्तिके लिए जो सयुक्त कार्य किया जाता है वही प्रधान रूपसे संयुक्त मोर्चा है। यूरोपमे फैसिज्म और युद्धका विरोध करनेवाली कई सस्थाएँ रही है, पर इन संस्थाओके उद्देश्य और उनकी कार्यप्रणाली समान न थी। आपसमें कई प्रश्नोको लेकर इनमे काफी मतभेद और विरोध था। बाजी संस्थाएँ तो एक दूसरेकी ही परम शत्रु थी। किन्तु इनमेसे जिन संस्थाओने यह अनुभव किया कि तत्काल अपने मौलिक मतभेदोको भुलाकर मिलजुलकर सामान्य शत्रुका सामना करना चाहिये, उन्होने इस

विशेष उद्देश्यसे आपसमे संयुक्त मोर्चा कायम किया। समाजवादके विरोधी प्रजातन्त्रवादियोंको भी यह लगा कि यदि फैसिज्मका उत्कर्ष होता है तो उससे प्रजातन्त्रकी क्षति होती है और प्रजातन्त्रके लोपकी सम्भावना उत्पन्न हो जाती है। 'समान शीलव्यसनेषु सख्यम्'की नीतिके अनुसार एक ही मुसीवतमे गिरफ्तार समुदाय और संस्थाओने समान शत्रुका मुकावला करनेके लिए आपसमे एक संयुक्त मोर्चा कायम किया। इसी प्रकार चीनमे जव जापानका आक्रमण प्रवल वेगसे वढ़ने लगा तव राष्ट्रवादियों और कम्युनिस्टोंने आपसकी लडाईको वन्द कर जापानके आक्रमणका सफलताके साथ मुकावला करनेके लिए एक सयुक्त मोर्चा कायम किया।

संयुक्त मोर्चेकी कठिनाइयाँ

एक विशेष अवसरपर किसी विशेष प्रश्नको लेकर भी क्षणिक संयुक्त मोर्चा कायम किया जाता है। यह सयुक्त मोर्चा व्यक्तियो और समुदायो दोनोके वीच हो सकता है। सयुक्त मोर्चा कायम करनेमे कई तरहकी कठिनाइयाँ पड़ा करती है। जो सस्थाएँ कलतक एक-दूसरेकी टीका-टिप्पणी किया करती थी और एक-दूसरेके नेताओकी निन्दा किया करती थी, उनका किसी एक प्रश्नपर भी सयुक्त मोर्चा कायम करना दुष्कर होता है। पुरानी वाते जल्दी भुलायी नही जा सकती और व्यक्तिगत द्वेपके कारण नेता सयुक्त मोर्चेको अकसर कायम भी नही होने देते। यदि नेता दूरदर्शी नही है, समयकी आवश्यकताको नही पहचानते और आपसके झगड़ोसे ऊपर नही उठ सकते तो संयुक्त मोर्चा साधारणतया नही कायम हो पाता। प्राय. जव दोनो ओरसे इसकी आवश्यकता अनुभव की जाती है या जनसमुदाय अपने नेताओको इसके लिए विवश करता है, तभी संयुक्त मोर्चा कायम होता है। राष्ट्रपर विदेशी आक्रमण होनेसे या कोई सामान्य भारी खतरा उत्पन्न होनेसे संयुक्त मोर्चा सुगमतासे कायम हो जाता है। किन्तु साधारण अवस्थामे इसमे वड़ी अडचनें पड़ती है। जव दो सस्थाओमे संयुक्त मोर्चा कायम होता है तो उसकी शर्तें और मोर्चेका कार्यक्रम भी तय कर लिया जाता है। यद्यपि संस्थाएँ संयुक्त मोर्चा वनानेके वाद भी एक-दूसरेकी समालोचना करती रहती है, तथापि आलोचनाकी शैली वहुत कुछ वदल जाती है। यह भी देखनेमे आता है कि सब शर्ते तय हो गयी और काम चल निकला, किन्तु कुछ समय वाद मोर्चा टूट गया, क्योकि एक दल संयुक्त मोर्चेमे प्रधान स्थान पानेकी अनुचित चेष्टा करता है, जिससे दूसरोको उसकी जिम्मेदारी और सद्भावनापर सन्देह होने लगता है।

संयुक्त मोर्चेके तरीके

कम्युनिस्टोकी भाषामे यह मोर्चा 'ऊपरसे' (from above) और 'नीचेसे' (from below) दो तरहसे कायम होता है। इन शब्दोका अर्थ हमको अच्छी तरह समझ लेना चाहिये। जव म्वाहिदा दो सस्थाओके नेताओके दरमियान होता है तव कहा जाता है कि संयुक्त मोर्चा 'ऊपरसे' कायम हुआ। जव ऐसा कोई म्वाहिदा नही हो पाता तव साधारण सदस्योंके साथ मिलकर काम करनेकी चेष्टा की जाती है।

उनको वतलाया जाता है कि नेता स्वार्थी है या दूरदर्शी नही हैं, वह संयुक्त मोर्चेकी नितान्त आवश्यकताको नही महसूस करते। इसके विना जनताके आर्थिक और राजनीतिक संघर्ष सफलताके साथ नही चलाये जा सकते, अतः तुमको नेताओंकी परवाह नही करनी चाहिये और हमारे साथ मिलजुलकर कार्य करना चाहिये। इसे नीचेसे संयुक्त मोर्चा (united front from below) कहते हैं।

जिस देशकी व्यवस्था ही ऐसी हो कि वहाँका शासनविधान राज्यमें एकसे अधिक दलकी स्थापनाकी इजाजत नही देता, वहाँ ऊपरसे संयुक्त मोर्चेका प्रश्न ही नहीं उठता; वहाँ एक ही प्रकारकी विचारशैली राज्यसे स्वीकृत होती है। वहां तो विभिन्न विचार रखनेवाली संस्थाएँ होती ही नही। वहाँ विभिन्न विचारके व्यक्ति या छोटे समुदाय ही होते हैं; इसलिए इन विभिन्न विचारके लोगोंको संयुक्त मोर्चेके लिए राजी करना पडता है। इसे 'नीचेसे संयुक्त मोर्चा' कह सकते है, पर इस प्रकारके संयुक्त मोर्चेकी कोशिश उन देशोमे भी की जाती है जहाँ एकसे अधिक विभिन्न विचारवाली संस्थाएँ मौजूद होती हैं। यह तभी होता है जव उनके नेताओसे कोई समझौता हो नही पाता या उनसे समझौता करना इष्ट नही होता। तव साधारण सदस्योंमे नेताओंके विरुद्ध प्रचार किया जाता है और उन्हे साथ काम करनेके लिए तैयार किया जाता है। जो सदस्य इस प्रकारसे प्रभावित हो अपनी पुरानी संस्था छोड़ देते हैं और दूसरी संस्थामे शरीक हो जाते हैं उनके वारेमे यह नही कहा जा सकता कि उनके साथ संयुक्त मोर्चा स्थापित किया गया है। यह उन्हीके वारेमे कहा जा सकता है जो अपनी पुरानी संस्थामें रहते हुए संयुक्त मोर्चेके साथ पूरा सहयोग करते हैं। किन्तु यह साफ है कि नेताओंके पीठ पीछे 'नीचेसे' संयुक्त मोर्चा कायम करना सम्भव नही है। इस प्रयत्नमें वहुत कम सफलताकी सम्भावना है। प्रत्येक संस्थाका अपना नेतृत्व और अपना अनुशासन रहता है। संस्थाका प्रत्येक सदस्य इनसे वँधा रहता है। नेतृत्वके प्रति उसकी श्रद्धा होती है। उसकी उपेक्षा कर साधारण सदस्योंके साथ संयुक्त मोर्चा स्थापित करना साधारणत. सम्भव नही होता। एक ऐसी विराट संस्थामे जिसकी शाखाएँ दूरतक फैली हो और जिसका अनुशासन कुछ ढीला हो यह सम्भव है कि इस कार्यमे कुछ स्थानीय कमेटियोंके साथ संयुक्त कार्य करनेका अवसर मिले। किन्तु यह वात वडे पैमानेपर नही हो सकती। यह एक ऐसी वात है जिसके समझनेमे देर न लगनी चाहिये, पर हमारे कम्युनिस्ट भाई कभी-कभी 'नीचेसे संयुक्त मोर्चा' के नारेको वुलन्द करते देखे जाते हैं। नेताओंके साथ समझौता करके ही किसी संस्थाका हार्दिक सहयोग प्राप्त हो सकता है और वही प्रभावशाली भी होता है। यह कहना कि हम साधारण सदस्योंके साथ तो संयुक्त मोर्चा वनानेको तैयार है, किन्तु उनके नेताओंके साथ नहीं, कोरा पाण्डित्य होगा। यह तो वैसी ही वात होगी जैसी कि यदि कोई कहे कि हम पूंजीपतियोंके विरुद्ध की गयी हडतालको समाप्त करनेके लिए समझौतेकी वातचीत तो करनेको तैयार हैं, किन्तु उनके साथ नही। हडतालको खतम करनेके लिए किसी न किसी समय पूंजीपतियोंके साथ आपको वातचीत करनी ही होगी। उसी प्रकार संगठित जनताको संयुक्त कार्यके लिए आमंत्रित करना तवतक सम्भव नही

है जबतक आप उन नेताओसे बातचीत नही करते जिनको जनता श्रद्धा और विश्वासकी दृष्टिसे देखती है। किसी और प्रकारसे कार्य करनेका अर्थ होगा महज राजनीतिक निश्चेष्टताका प्रदर्शन ।

किन्तु हमारे कम्युनिस्ट भाई कभी 'ऊपरसे' सयुक्त मोर्चेकी नीति वर्तते है और कभी 'नीचेसे'। अवस्थाके अनुसार वह सदा अपनी नीतिको बदलते रहते है, किन्तु उनको इसमे विशेष सफलता नही मिली है ।

कांग्रेस और कम्युनिस्ट

हिन्दुस्तानके सामने सबसे बड़ा और पहला सवाल पूर्ण स्वतन्त्रता प्राप्त करना है है विविध वर्गके लोग ब्रिटिश साम्राज्यवादका विरोध करनेके लिए काग्रेसमे सम्मिलित हैं। इस विरोधके लिए काग्रेस ही प्रधान सस्था है। काग्रेसके अतिरिक्त अन्य साम्राज्य-विरोधी संस्थाएँ भी है, जैसे मजदूर-सभा, किसान-सभा, युवक-सघ, विद्यार्थी-सघ आदि ।

भारतके कम्युनिस्टोका काग्रेसके प्रति रुख सदा एकसा नही रहा है। यह बार-बार बदलता रहा है। कभी वह काग्रेसमे रहनेके पक्षपाती रहे है, कभी नही। किन्तु एक बातमे उनकी राय कभी नही बदली है; वह काग्रेसको निश्चित रूपसे भारतके पूँजीपतियोकी वर्ग-सस्था मानते हैं। उनका विचार है कि काग्रेसका नेतृत्व सदैव सगठन और विचार-शैलीकी दृष्टिसे पूँजीवादी रहा है और उसका कार्यक्रम और उसकी नीति पूँजीवादी वर्गके स्वार्थो और हितोका पोषक रही है। इसीलिए उन्होने काग्रेस और उसके नेताओका महत्त्व कम करनेकी सदा चेष्टा की है। वह जनताको काग्रेसके प्रभाव-क्षेत्रसे अलग करना चाहते है।

१९२८ का घातक निश्चय

सन् १९२८ तक कम्युनिस्ट काग्रेसमे भी काम करते थे और कही-कही उसकी कार्यकारिणी समितिके सदस्य भी थे। उस समय उनकी सख्या बहुत स्वल्प थी। चीनमे भी कम्युनिस्ट वहाँकी राष्ट्रीय सस्था, 'कुओमिताग'मे शरीक थे। अपनी स्वतन्त्र राजनीतिक सत्ता कायम रखते हुए उन्होने 'कुओमिताग'मे प्रवेश किया था। सनयातसेनकी अनुमतिसे ही यह कार्य हुआ था। इससे कम्युनिस्टोको राष्ट्रीय आन्दोलनको प्रभावित करनेका अच्छा अवसर मिला था। इस नीतिका अवलम्बन करनेसे चीनकी जनतामे कम्युनिस्टोका प्रभाव बहुत बढ़ गया था। साथ-साथ 'कुओमिताग' की नीतिको भी बनाये रखनेमे वह सफल हुए थे। किन्तु सन् १९२७-२८ मे कम्युनिस्टो और दूसरोसे झगड़ा हो गया, वह 'कुओमिताग' से निकाल दिये गये और च्यागकाई शेकने उनको नेस्तनाबूद करना चाहा। चीनके अनुभवके बाद उपनिवेश-सम्बन्धी नीति एकदम बदल गयी और सन् १९२८ मे कम्युनिस्ट इण्टर-नेशनलने यह निश्चय किया कि उपनिवेशोमे राष्ट्रीय सुधारवादी संस्थाओसे किसी तरहकी शिरकत नही हो सकती। इस निश्चयके अनुसार भारतके कम्युनिस्ट भी काग्रेससे अलग हो गये और सन् १९३०-३२ के सत्याग्रह-आन्दोलनोमे

भाग लेनेके वजाय उनका विरोध करते रहे। सन् १६२८ के वाद कम्युनिस्ट पार्टी वहुत ही कमजोर हो गयी और अपनी संकुचित नीतिके कारण जनान्दोलनसे वहुत कुछ अलग हो गयी। ट्रेड यूनियन काग्रेसमें भी दो दल हो गये और कम्युनिस्टोने अपनी 'लाल' यूनियनें अलग वनायी। सन् १६३४ में पार्टीकी नीतिका स्पष्टीकरण करनेके लिए एक मसविदा तैयार किया गया और इसीके आधारपर पार्टीका संगठन शुरू हुआ। पार्टीने मजदूर, किसान और शोपित मध्यम श्रेणीका एक साम्राज्यविरोधी संयुक्त मोर्चा वनानेका निश्चय किया। उसके लिए उन्होने एक स्वतन्त्र संस्थाका निर्माण आवश्यक समझा जिसका अपना प्रोग्राम हो। इस सम्वन्धमें अपनी 'थीसिस' (फरवरी, ३४)मे उन्होने लिखा कि "आज कम्युनिस्ट पार्टीके सामने सवसे जरूरी काम एक ऐसी संस्थाका निर्माण करना है जो साम्राज्यवादका विरोध करनेके लिए समस्त शोपित वर्गके संयुक्त मोर्चेकी अभिव्यक्ति हो। कम्युनिस्ट पार्टीके प्रभावमें तैयार किये हुए क्रान्तिकारी कार्यकर्ता इस मोर्चेके मूलाधार होगे और क्रान्तिकारी ट्रेड यूनियन किसान-सभाएँ और युवक-सघके क्रान्तिकारी अंशोके सामूहिक सम्वन्धके आधारपर यह संस्था वनायी जायगी। इसे हम (Anti-Imperialist League) अर्थात् "साम्राज्यविरोधी लीग" कह सकते है। सव शोपित वर्गोकी माँगे इसके प्रोग्राममे शामिल की जायँगी और राष्ट्रीय स्वतन्त्रता, मजदूर और किसान राज्य-आदि इसके नारे होगे। यह एक सर्वसाधारणकी सस्था होगी जिसमें सभी शोपित वर्गके लोग सम्मिलित होगे। इस लीगकी स्वतन्त्र सत्ता होगी। यह कांग्रेससे केवल स्वतन्त्र ही नही होगी, किन्तु उसकी विरोधी होगी। लीगको निरन्तर सुधारवादी नेताओं और संस्थाओंकी आलोचना करनी चाहिये और श्रमिकोके सामने उसके वास्तविक चरित्र (role) का उद्घाटन करना चाहिये। साथ ही साथ इसे अपने झण्डे और नारोके साथ काग्रेसके प्रदर्शनमें भी भाग लेना चाहिये। निम्न मध्यम श्रेणीके सगठनोमे उदाहरणके लिए युवक-सघोमे, सुधारवादी किसान-सघोमे इसे अपनी टुकड़ियाँ इस गरजसे भेजनी चाहिये ताकि ये सगठन लीगमे दाखिल हो जायँ। श्रमिक जनतासे सुधारवादीसंगठन और नेतृत्वको अलग करनेके लिए यह निहायत जरूरी है कि कम्युनिस्ट संयुक्त मोर्चेमें अपने नेतृत्वको कार्यरूपमे सिद्ध कर दिखावें।" इस उद्धरणसे यह स्पष्ट हो जायगा कि सन् ३४ मे कम्युनिस्ट कांग्रेसको संयुक्त मोर्चेसे वाहर ही नही रखते थे, किन्तु संयुक्त मोर्चेकी एक संस्था उसके विरोधमे खड़ा करना चाहते थे। इसका कारण यही था कि वह काग्रेसको एक सुधार-वादी संस्था समझते थे।

कांग्रेस समाजवादियोंकी निन्दा

सन् १६३४ मे जव काग्रेस समाजवादी पार्टीका जन्म हुआ तव उन्होने इसे left reformism अर्थात् वामपक्षीय सुधारवादका लकव दिया। उनके मतसे कांग्रेसमे पूंजीवादी विचारधाराका ही प्रधान्य था और गांधीवाद और 'काग्रेस समाजवाद' एक ही विचारधाराके दो पक्ष थे। उनके अनुसार कांग्रेस समाजवादी पार्टी जनताके विद्रोहका

विकास न करके उसकी तरक्कीको रोकनेवाली थी। उनका ख्याल था कि यह महज कम्युनिस्टोके प्रभावको रोकनेकी एक तरकीब है।

सन् १६३५ मे कम्युनिस्टोकी सातवी काग्रेस हुई और उसमे कुछ महत्त्वपूर्ण निश्चय हुए। उन्होंने अपनी पुरानी भूलोको स्वीकार किया और ट्रेड यूनियन एकताकी नीति फिरसे स्थिर की, सकीर्णताके परित्याग करनेका आदेश दिया और संयुक्त मोर्चेकी नीतिको नये ढंगसे बर्तनेपर जोर दिया। किन्तु इस नीतिका अनुसरण एक साथ सब देशोमे नही किया गया। इस नयी नीतिको लेकर हिन्दुस्तानके कम्युनिस्टोमे बहुत वाद-विवाद हुआ और धीरे-धीरे यह नयी नीति काममे लायी जाने लगी। काग्रेस समाजवादी दल अपने जन्मकालसे ही ट्रेड यूनियन एकताके लिए प्रयत्नशील था और जब कम्युनिस्टोने 'इण्टर नेशनल' से नया आदेश पाया तो अपनी 'लाल' यूनियन तोड़ दी और एकताके लिए काग्रेस समाजवादी दलके साथ सहयोग किया। धीरे-धीरे पुरानी सयुक्त मोर्चेकी नीति भी बदलने लगी। अब कम्युनिस्टोने काग्रेसकी स्थानीय कमेटियोकी ओर ध्यान देना उचित समझा। उस समय कम्युनिस्ट पार्टी गैर कानूनी करार दी जा चुकी थी। इसलिए उसे सब कानूनी अवसरोसे लाभ उठाना था। इसी गरजसे वह काग्रेससे भी लाभ उठाना चाहती थी। काग्रेसमे जनताके सम्पर्कमे आनेका अच्छा मौका मिलता था और इस काममे हुकूमत रुकावट भी नही डाल सकती थी। कम्युनिस्ट उन श्रेणियोपर इस प्रकार अपना प्रभाव बढाना चाहते थे जो उनके विचारसे साम्राज्यवादका विरोध तो करना चाहती थीं किन्तु अभी काग्रेस संस्थासे पृथक् नही हुई थी। कम्युनिस्ट पार्टीकी कांग्रेससे शिरकत-का तो सवाल ही नही उठता था। पार्टीको सुधारवादका उसी प्रकार विरोध करना था जिस प्रकार साम्राज्यशाहीका। कम्युनिस्ट काग्रेस सगठनका अपने मतलबके लिए उपयोग करना चाहते थे, जनताको सगठित सघर्षके लिए तैयार करना चाहते थे, और उसको सुधारवादियोके प्रभावसे मुक्त करना चाहते थे। इसके विपरीत उनके कथनानुसार रायपथी और समाजवादी काग्रेसको बलिष्ठ करनेके हकमे थे ताकि वह सफलताके साथ मजदूर, किसान और शहरके गरीबोको धोखेमे रख सके।

कम्युनिस्टोंकी आत्म-प्रवंचना

कम्युनिस्टोकी रायमे जनताका काग्रेसकी समझौतेकी नीतिपरसे विश्वास उठ गया था, किन्तु कम्युनिस्ट पार्टी इस परिस्थितिसे पूरा लाभ नही उठा सकी थी और उसके कामको बिगाड़नेके लिए समाजवादी दल उत्पन्न हो गया था। उसकी रायमे कम्युनिस्टोके बढते हुए प्रभावको दबानेके लिए ही यह एक नया तरीका सुधारवादियोने निकाला था ताकि समाजवादके नामपर जनताकी आखमे धूल डाली जाय।

कांग्रेस तो उनके मतसे सुधारवादी संस्था थी, किन्तु देशमे कतिपय मजदूर-यूनियन तथा कुछ अन्य साम्राज्यविरोधी संस्थाएँ मौजूद थी जो सुधारवादकी कट्टर विरोधी थीं और जो क्रान्तिकारी जनताको अपनी ओर आकृष्ट करनेका सामर्थ्य रखती थी। किन्तु अब वह यह सोचने लगे थे कि इन संस्थाओंका प्रभाव कही अधिक हो सकता है

"यदि संस्थाओके रूपमे वह कांग्रेसकी स्थानीय सस्थाओसे सहयोग करे। इस सहयोगका आधार सामूहिक सदस्यता होना चाहिये। काग्रेसके साथ सम्बन्ध होना जरूरी है, क्योंकि साम्राज्यविरोधी संघर्ष इससे तेजीके साथ वढाया जा सकता है, पर इस सम्बन्धका यह अर्थ न होगा कि वे अपनी स्वतन्त्रता और अपना स्वरूप ही खो बैठे। काग्रेससे सम्बन्ध स्थापित करनेके बाद यह संस्थाएँ सव क्रान्तिकारी अंशोको एकत्र कर गांधीजीकी शैलीके अनुसार नही, किन्तु सही ढंगसे सघर्ष करेंगी। जनताको एक स्वतन्त्र राजनीतिक शक्तिके वनानेमे सहायक होना आवश्यक है।"

इस उद्धरणसे यह बात साफ हो जाती है कि कम्युनिस्ट सन् १९३६ में यह चाहते थे कि क्रान्तिकारी सस्थाएँ काग्रेस कमेटियोसे सम्बन्ध स्थापित कर उनके सदस्योको कम्युनिस्ट ढंगसे सघर्ष करनेके लिए तैयार करे। इसमे प्रधानता काग्रेसकी न थी, किन्तु अन्य संस्थाओकी थी। इसको वतानेकी जरूरत नही है कि इस तरह कांग्रसके दायरेके लोग इस प्रकारके सयुक्त मोर्चेमे शामिल नही किये जा सकते थे। वास्तवमे वह काग्रेसका सम्बन्ध इसलिए चाहते थे कि काग्रेस कानूनी कामके लिए मौका देती थी और कांग्रेस एक राजनीतिक क्षेत्र भी था जहाँ शोषित वर्गोके विविध समूह वनते थे। वह चाहते थे कि असली क्रान्तिकारी सस्थाएँ इस क्षेत्रका अपने लिए उपयोग करे। उनकी रायमे आर्थिक और राजनीतिक सघर्षोके लिए जनताको तैयार करने और उसको काग्रेसके प्रभावसे अलग करनेका सवसे प्रभावशाली तरीका सयुक्त मोर्चेकी नीति ही थी।' काग्रेसके वारेमे सामान्य रूपसे उनकी राय इतनी खराब थी कि वह अपने भोलेपनमे यह समझते थे कि 'जो लोग वरसो गाधीजीकी दुमसे बँधे रहे वह कैसे मजदूर और किसानसे प्रेम कर सकते है और हिन्दुस्तानमे समाजवादी राज्य स्थापित करनेकी बात सोच सकते है।" इसका तो यह अर्थ हुआ कि एक बार जो गाधीवादी हो गया, वह कभी छुटकारा नही पा सकता। उनका शायद यह ख्याल है कि जिस-पर कभी कांग्रेसका साया नही पड़ा है वह ज्यादा आसानीसे क्रान्तिकारी वनाया जा सकता है। यह है क्रान्तिकारी मनोवृत्ति और राजनीतिज्ञता!

किसान सभा और कम्युनिस्ट

सन् १९३६ मे अखिल भारतीय किसान सभाका सगठन हुआ था। उसका कार्यक्रम क्या हो और उसकी सत्ता किस प्रकारकी हो इसपर एक 'थीसिस' मे कम्युनिस्टोने विचार किया था। उसका कहना था कि "ये किसान सभाएँ प्राय· काग्रेसजनो और काग्रेस समाजवादियो द्वारा संगठित होगी और इसलिए इनपर काग्रेसका कुछ प्रभाव पड़ना अनिवार्य है। पर हमको दृढताके साथ अनुरोध करना चाहिये कि आरम्भसे ही किसानसभाकी स्वतन्त्र सत्ता हो और वह काग्रेसका पुछल्ला न वने। किसानोंपर जो काग्रेसका प्रभाव है उसको घटानेके लिए हमे किस नीतिका सहारा लेना चाहिये? हमारे कुछ साथी गाँवमें काग्रेसके प्रभावको सही तौरसे नही आँकते। इसमे कोई सन्देह नही कि किसानोमे कांग्रेसके प्रति वहुत असन्तोष है, विशेषकर गाँवके

स्वयंसेवकोंमे। हमको निस्सन्देह किसान सभाको कांग्रेसका पुछल्ला बननेसे रोकना चाहिये, पर यह काम होशियारीसे होना चाहिये ! हमे कांग्रेसकी नीति और उसके श्रेणी आधारको खोलकर बता देना चाहिये"।

यह उद्धरण भी कांग्रेसको कमजोर करने और अन्य स्थानोको मजबूत बनानेकी नीतिकी ओर इशारा करता है।

दत्त और ब्रैडलेका लेख

कुछ दिनो बाद कामरेड दत्त और ब्रैडलेका लेख प्रकाशित हुआ जिसका शीर्षक था 'हिन्दोस्तानमे साम्राज्यविरोधी जनमोर्चा।"

यह लेख बडे मार्केका था। इसमे प्रथम बार कम्युनिस्टोद्वारा स्वीकृत किया गया था कि कांग्रेस अपने संगठन और कार्यक्रममे कुछ और परिवर्तन कर साम्राज्यविरोधी जनमोर्चा बन सकती है। हमे वस्तुसे काम है, न कि नामसे। किन्तु हमें यह मानना होगा कि आजकी हालतमे कांग्रेस अभी सयुक्त मोर्चा नही बन पायी है। उसके विधानमें अब भी जनताके कई अंश छूट जाते हैं। उसका प्रोग्राम अभी पूरी तरह साफ-साफ राष्ट्रीय सघर्षका प्रोग्राम नही है। उसका नेतृत्व भी अभी ऐसा नही है। जनताकी निहित शक्तियोका उद्बोधन करनेके बजाय वह उनपर "ब्रेक' का काम करता है। जरूरत इस बातकी है कि कांग्रेसके द्वारा जो एकता सिद्ध हो चुकी है उसमे किसी प्रकारकी कमी किये बिना उसका अधिक विस्तार किया जाय और उसके सगठन और नेतृत्वको एक नये स्तरमे ले जानेकी चेष्टा की जाय।.....इसलिए हमे पहले कांग्रेसका सम्बन्ध अन्य जनसस्थाओके साथ जोड़ना चाहिये, कांग्रेसके विधानको बदलवानेकी कोशिश होनी चाहिये और सामूहिक सम्बन्धकी मॉग पेश करनी चाहिये। जब तक यह कार्य सिद्ध नही होता तबतक कांग्रेस कमेटी, ट्रेड यूनियन, किसान-सभा, युवकसघ, समाजवादी समुदाय तथा अन्य साम्राज्यविरोधी सगठनोकी सम्मिलित सस्थाएँ जगह-जगह कायम करनी चाहिये।"

इस लेखमे आगे चलकर इस बातपर जोर दिया गया है कि पहले वामपक्षकी शक्तियोमें एकता स्थापित होनी चाहिये और वही इस सयुक्त मोर्चेकी जान होगी। मोर्चे का प्रधान नारा "स्वराज्य पचायत" (Constituent Assembly) होगा। कुछ दिन पहले तक यह नारा पूँजीवादका नारा कहकर बदनाम किया जाता था। अब यही नारा सयुक्त मोर्चेका मुख्य नारा बन गया !

जनमोर्चेका स्वरूप

इस लेखसे कम्युनिस्टोमे बड़ी खलबली मची, क्योकि अबतक जो कुछ उनकी ओरसे कहा या लिखा गया था उस सबको यह लेख काटता था। काफी समयतक इस सम्बन्धमे वाद-विवाद चलता रहा। अन्तमे इस लेखके प्रकाशनके एक वर्ष बाद मार्च सन् १९३७ मे 'पोलिट ब्यूरो' ने इसके समर्थनमे एक वक्तव्य निकाला। इसमे इस मोर्चेका नया नामकरण हुआ। अब इसे संयुक्त राष्ट्रीय मोर्चा कहने लगे। इस मोर्चेके श्रेणी आधारका जिक्र

करते हुए इस वक्तव्यमे कहा गया है कि 'इसमे मुट्ठीभर प्रतिगामियो और राज्यभक्तोंको छोड़कर समस्त भारतीय जनताका समावेश होता है।" कांग्रेसका श्रेणी आधार तो पूँजीवादी और सुधारक जमीदार वर्ग बताया जाता है, किन्तु साम्राज्यविरोधी जनमोर्चेका श्रेणी आधार समस्त राष्ट्र है! यह एक अजीब बात है।

इसके बाद ही किसान सभाका कांग्रेसके साथ क्या सम्बन्ध हो, इसपर कम्युनिस्टोका नया निश्चय प्रकाशित हुआ। किसान सभा अपनी स्वतन्त्र सत्ता रखती हुई कांग्रेसके ही आधारपर एक शक्तिशाली मोर्चा कायम करनेकी कोशिश करेगी। इसीलिए वह कांग्रेससे सामूहिक सम्बन्ध स्थापित करना चाहती है।

कम्युनिस्ट इण्टरनेशनलकी सातवी कांग्रेसमे हिन्दुस्तानपर रिपोर्ट देते हुए वैंग मिंग (Wang Ming) ने कहा था कि "हिन्दुस्तानके कम्युनिस्टोंने संकीर्णता दिखाकर बड़ी भूल की है। वह कांग्रेससे अलग हो गये और उसके द्वारा संगठित प्रदर्शनोमें भाग नही लेते थे। साथ ही, उनका निजका संगठन भी ऐसा न था जिसके आधारपर स्वतन्त्र रीतिसे वह एक जबर्दस्त जनान्दोलन खड़ा कर सकते। उनका जनतासे सम्पर्क बहुत कम हो गया।. ...इस तरह कम्युनिस्ट समुदायने वास्तवमे जनतापर गांधीवाद और सुधारवादका प्रभाव बने रहनेमे मदद की। कम्युनिस्टोको इस संकीर्णताको छोड़ना चाहिये और कांग्रेसके भीतर तथा उससे सम्बद्ध सुधारक और क्रान्तिकारी संस्थाओंमें काम करना चाहिये।

लेनिनकी यही शिक्षा थी। उसका कहना था कि "सुधारक सस्थाओके साथ संयुक्त मोर्चा बनाते हुए शर्तें इस गरजसे न रखनी चाहिये जिसमें उनके नेता उन्हें नामंजूर कर दें, बल्कि साधारण माँगोको भी यदि वह श्रेणियोकी माँगे है या साम्राज्यविरोधी माँगें हैं, मान लेना चाहिये, क्योकि इतिहास इसका साक्षी है कि साधारण अधिकारोके लिए किये गये छोटेसे छोटे आन्दोलनोंने क्रान्तियोको जन्म दिया है।" पर हमारे भाई इस शिक्षाको बहुत दिनोतक भूले रहे और अपने ही नेताओके याद दिलानेपर भी अमल करनेमें बहुत समय लगा दिया। सन् १९३५ में अन्तराष्ट्रीय कम्युनिस्ट संघकी ७ वी कांग्रेस हुई थी, पर लगभग २ वर्षके बाद ही इस नीतिपर ठीक ढंगसे अमल होना शुरू हुआ।

कांग्रेसका जो श्रेणी आधार कम्युनिस्टोंने मान रखा है उसके कारण तथा इस कारण कि उनको विचार-स्वातन्त्र्य तथा अपनी नीति स्वयं निर्धारित करनेका हक नही है, यह शोचनीय अवस्था उत्पन्न हो गयी थी और फिर उत्पन्न हो सकती है।

मौलिक मतभेद

समाजवादी और रायपन्थी कांग्रेसको राष्ट्रीय स्वतन्त्रताके लिए किये जानेवाले संघर्षका उपकरण समझते हैं। हमारे मतमे कांग्रेसका नेतृत्व चाहे जैसा क्यों न हो, आन्दोलनकी दृष्टिसे कांग्रेस एक क्रान्तिकारी शक्ति है। कांग्रेस प्रजातन्त्रवादी तथा क्रान्तिकारी आन्दोलन है। यह हमारा विचार है। इसी स्थलपर हमारा कम्युनिस्टोसे मौलिक मतभेद है। दत्त-ब्रैडलेने अपने लेखमे इसी बातको दबी जबानसे स्पष्टरीत्या

माना है। किन्तु इसकी क्या गारण्टी है कि वह इसपर कायम रहेंगे ? आज भी वह अपनी स्थिति बदलते नजर आते है।

रूस-जर्मन सन्धिके बाद यूरोपमे कम्युनिस्टोंने संयुक्त मोर्चेकी नीतिका परित्याग कर दिया है। सोशल डेमोक्रैसी (Social democracy) के नेताओंके साथ मिलकर अब वे न तो सभी मजदूरोका संयुक्त मोर्चा (Worker's front) बनानेके लिए तैयार हैं और और न कोई राष्ट्रीय संयुक्त मोर्चा (People's front)। उनकी रायमे "अब मजदूर-वर्गकी एकता और जनताका सम्मिलित मोर्चा केवल 'नीचेसे' ही स्थापित किया जा सकता है।" यूरोपमे कम्युनिस्ट इण्टरनेशनलकी नीतिमें परिवर्तन होनेके साथ ही अब भारतीय कम्युनिस्टोकी नीतिमे भी तबदीली आ गयी है। जबतक यूरोपमे संयुक्त मोर्चाका जोर रहा तबतक भारतीय कम्युनिस्ट भी संयुक्त मोर्चा और सयुक्त नेतृत्वका नारा लगाते रहे। संयुक्त नेतृत्वको कायम रखनेके वे इस अंशतक पक्षपाती थे कि जब स्वतन्त्रता-दिवसके प्रतिज्ञापत्रमे जोडे गये नये अशोका काग्रेस समाजवादी पार्टीकी ओरसे विरोध किया गया तो उन्होने हमारी आलोचनाकी खिल्ली उड़ा दी और समूचे प्रतिज्ञापत्रको ग्रहण किया किन्तु आज तो कम्युनिस्टोका प्रमुख कार्य संयुक्त नेतृत्वके स्थानपर केवल मजदूर जमातके नेतृत्वके लिए प्रयत्न करना हो गया है। लडाईकी तैयारीके जमानेमे तो वे गाधीजीके नेतृत्वको आवश्यक समझते रहे, पर आज कम्युनिस्टोका प्रमुख कार्य गाधीवाद नेतृत्वका भण्डाफोड़ करना, जनतापरसे उसका प्रभाव नष्ट करना, जनताको यह समझाना कि रचनात्मक कार्यक्रम केवल अधूरा ही नही है, बल्कि वह मुख्य प्रश्नको बरगलानेके लिए है और जनताका विश्वास गाधीवादी नेतृत्वपरसे हटानेकी कोशिश करना है। इस प्रकार आज कम्युनिस्टोका कार्य गाधीवादके विरोधमें भी उसी तीव्रतासे युद्ध करना हो गया है जितना कि साम्राज्यवादके साथ।

अब यह कहा जाने लगा है कि क्रान्ति सन्निकट है। इस अवस्थामे संयुक्त मोर्चेकी नीतिमे परिवर्तन करना लाजिमी है। जनता क्रान्तिकी ओर द्रुत वेगसे अग्रसर हो रही है, नेतृत्व पिछड रहा है, युद्धसे भागता है और समझौता करना चाहता है। अतः इस अवस्थामे 'नीचेसे' ही संयुक्त मोर्चा होना चाहिये, अर्थात् नेताओकी उपेक्षा कर साधारण सदस्योके साथ सयुक्त कार्य होना चाहिये। हम इस नीतिके थोथेपनको ऊपर दिखा चुके हैं। भारत एक कृषिप्रधान देश है। ऐंगेल्सने ठीक कहा है कि ऐसे देशमे जबतक किसानोमे काफी काम नही किया जायगा और उनका विश्वास नही प्राप्त किया जायगा, कम्युनिस्ट क्रान्ति नही कर सकते। कौन कह सकता है कि हमारे कम्युनिस्ट भाइयोका किसानोपर अच्छा प्रभाव है ? कितने प्रान्तोमे किसान-सभाका ठोस काम है और इनमे भी कितने कम्युनिस्ट कार्यकर्ता है ? वह तो उँगलीपर गिने जा सकते है। मजदूरोमें भी काफी काम नही हुआ है। रेलवेके मजदूर अब भी सुधारवादियोके प्रभावमे है। इन आवश्यक क्षेत्रोकी उपेक्षा की गयी है। कार्यकर्ता बहुत कम है, क्षेत्र है विस्तृत। यह समझना कि रूसके क्रान्तिकारियोको परिस्थितिकी जो सुविधाएँ मिली थी वह हमको भी मिलेगी और इसी भरोसे किसी जबर्दस्त कार्यक्रमको बनाना बचपन होगा।

यथार्थवादी दृष्टिकोणकी आवश्यकता

समयका व्यवहार अत्यन्त निष्ठुर भी हो सकता है। हमारी साधना सुलभ नहीं होगी। कमसे कम इस आधारपर कोई बड़ा काम उठा लेना जोखिम उठाना होगा। हमको नाप तौलकर वस्तुनिष्ठ क्रान्तिकारीकी तरह आचरण करना चाहिये। अपनी शक्तिका मुवालगेके साथ अन्दाज लगाना और विरोधी शक्तिका काम, वस्तुनिष्ठा नहीं कहलायी जा सकती। इसकी कमी हम कम्युनिस्ट भाइयोंमें पाते हैं। कांग्रेस एक महती शक्ति है। उसकी उपेक्षा नहीं की जा सकती। 'नीचेसे' संयुक्त मोर्चेकी नीतिपर चलकर हम इस शक्ति-भण्डारका समुचित लाभ नहीं उठा सकते। हम आकाशके तारे न गिनें और ज्योतिषसे काम न लें, किन्तु वस्तुस्थितिको पहचाने और उसके अनुसार अपना कार्यक्रम बनावें।

समाजवादीके तरीके भले ही दूसरे हों, किन्तु राष्ट्रवादियोंके अपर्याप्त तरीकोंका भी उसे समर्थन करना चाहिये, जब साम्राज्यविरोधी युद्ध सामने हो। ऐसे मौकेपर कांग्रेसके नेताओंकी पोल खोलनेका व्यापार खतरनाक है। इससे युद्धकी तैयारी नहीं होती बल्कि उसको काफी धक्का पहुँचता है। यह तो हमारे अनुभवकी बात है। दूर जानेकी जरूरत नहीं है। यह कहकर हमारे नेता लड़ेंगे नहीं, लड़ें भी तो समझौता कर लेंगे, हमने जनतामें निरुत्साह पैदा कर दिया है। इस निरुत्साहको दूर करनेमें कठिनाई हो रही है। क्या यह पोल खोलनेकी नीति इस समय घातक नहीं सिद्ध हो रही है? क्या यदि यह कहा जाय कि यह नीति संघर्षकी नीति नहीं है तो क्या कोई बड़ा अन्याय किया जाता है?

किन्तु हमारा अभिप्राय यह कदापि नहीं है कि गांधीवादी नेतृत्वकी कोई आलोचना की ही न जाय, अपना कार्यक्रम रखा ही न जाय और स्वतन्त्र रूपसे जारी रखे गये अपने कार्योंको छोड़ दिया जाय। मौकेको देखते हुए ये सभी आवश्यक है, किन्तु इनका प्रमुख उद्देश्य गांधीवादी नेताओंकी पोल खोलकर उनका असर जनतापरसे हटाने और जनताको निरुत्साहित करनेके स्थानपर जनतामें अपने विचारों और कार्यशैलीका प्रचार बढ़ाना और और युद्धकी ओर उन्हें ले जाना होना चाहिये। हमारी आलोचना मौकेको देखते हुए और संयमके साथ होनी चाहिये। हमें यह न भूलना चाहिये कि आजकी हालतमें, जब कि राष्ट्रीय संयुक्त मोर्चेके भीतर समाजवादी अल्प संख्यामें है, अगर हम तुरन्त देशव्यापी संग्राम छेड़ना चाहते है तो राष्ट्रीय आन्दोलनके लिए संयुक्त नेतृत्व अनिवार्य है, अपरिहार्य है। हाँ, यदि गाधीवादी नेतृत्व लड़नेसे ही इन्कार कर दे और साम्राज्यशाहीके साथ समझौता करनेको तैयार हो जाय तब अवश्य स्थिति दूसरी होगी। उस समय हम अपनी शक्ति और सामर्थ्यके अनुसार, अपने पृथक् कार्यक्रमके अनुसार जनताको लेकर आगे बढ़नेके लिए स्वतन्त्र होंगे। आज जरूरत इस बातकी है कि रामगढ़ कांग्रेसने लड़ाईके लिए जो कार्यक्रम हमारे सामने रखा है और कांग्रेस समाजवादी पार्टीने रामगढ़ कांग्रेसके लिए जो कार्यक्रम तैयार किया था इन दोनोंके आधारपर हम जनताको बड़ेसे बड़े पैमानेपर

संगठित करे। ऐसा करके ही हम जनताके विश्वासभाजन बनकर वह शक्ति प्राप्त कर सकते है जिसके वलपर गांधीजीके नेतृत्वमे युद्ध आरम्भ होनेपर हम उसपर अपना प्रभाव डाल सकेंगे और यदि गांधीजी युद्ध न छेड़े तो हम स्वतन्त्र रूपसे कोई कार्रवाई कर सकेंगे।

युद्ध और जनता[1]

यह युद्ध आरम्भमे कम्युनिस्टोके लिए साम्राज्यवादी था। जब जर्मनी-रूसका समझौता हो गया तो और जोर-शोरसे साम्राज्यवादी हो गया। इङ्गलैण्ड और फ्रांसका साम्राज्यवाद जर्मनीके नाजीवादसे भी ज्यादा बदतर करार दिया गया। हिटलरको शान्तिप्रिय और इङ्गलैण्डको सारी खुराफातकी जड़ बतलाया गया। जब जर्मनीने रूसपर आक्रमण किया तब इनका यही विचार था कि चर्चिलने हिटलरको बरगलाकर रूसके विरुद्ध कर दिया है। अर्थात् अनाक्रमण सन्धिके कारण यह हिटलरको देवतास्वरूप समझने लगे थे और इनका ख्याल था कि जर्मनीको रूससे लडानेमे इङ्गलैण्डकी शरारत होगी। इस सिधाई और भोली समझकी क्या दाद दी जाय। लुत्फ तो यह है कि इसी समझके बलपर हमारे दोस्त अकेले दुनियामे क्रान्ति करना चाहते है।

इस युद्धके बाद भी ५ महीनेतक बराबर यह युद्धको साम्राज्यवादी बताते रहे। रूसके युद्धमे सम्मिलित होनेसे भी इनकी रायमे पहली दिसम्बर सन् १९४१ के पहले युद्धका स्वरूप जरा भी नही बदला था। स्टालिनके तीसरी जुलाईके भाषणने, जिसमे उन्होने कहा था कि हमारे देशकी स्वतन्त्रताकी लड़ाई यूरोप और अमेरिकाकी जनताकी लड़ाईमें मिलकर एक हो जायगी और यह स्वतन्त्रताके लिए जनताका एक संयुक्त मोर्चा होगा, भारतीय कम्युनिस्टोको भी प्रभावित किया था। लेकिन चूँकि उसमे भविष्यकालका प्रयोग हुआ था इस कारण हमारे दोस्त यह न समझ पाये कि एंग्लो सोवियत और सोवियत अमेरिकन समझौतेने भविष्यको वर्तमानकालका रूप दे दिया है और यह जनताका संयुक्त मोर्चा इस समझौताके बाद वास्तवमे तैयार हो गया है। इसके बाद स्टालिनका ऐसा कोई भाषण न हुआ जिसमे उन्होने स्पष्ट शब्दोमे इस सयुक्त मोर्चेके तैयार हो जानेका निर्देश किया हो। हाँ, इस घटनासे जेलमे नजरबन्द कुछ कम्युनिस्ट अवश्य प्रभावित हुए थे और उन्होने अपने मित्रोको बाहर कहला भेजा कि सोवियत-यूनियनके लडाईमे आ जानेसे युद्धके स्वरूपमे बुनियादी तबदीली हो गयी है। इसलिए कम्युनिस्ट पार्टीको अपनी नीति बदलनी चाहिये। इसपर कम्युनिस्ट पार्टीने इनके तर्कोका खण्डन करते हुए फिर इसी सिद्धान्तको प्रतिपादित किया कि युद्ध अब भी साम्राज्यवादी है।

---

१. अखिल भारतीय किसान सम्मेलन (बिदौल, मुजफ्फरपुर) मे अध्यक्षपदसे दिया हुआ भाषण।

कम्युनिस्ट नीतिमें परिवर्तन

यहाँकी कम्युनिस्ट पार्टी ब्रिटेनकी पार्टीसे सम्बद्ध है और समय-समयपर वहाँसे आदेश मिलते रहते हैं जिनको माननेके लिए वह बाध्य है। ब्रिटेनकी पार्टीके मन्त्री हैरी-पालिटने जुलाई सन् १९४१ मे अपनी पार्टीके नाम एक अपील प्रकाशित की जिसमे उन्होने युद्धके स्वरूपके बदल जानेके कारण पार्टीकी नीतिके बदलनेकी आवश्यकता बतलायी। यह अपील भारतमे नवम्बरमे पहुँची। इस पत्रको पढकर यहाँकी कम्युनिस्ट पार्टीको भी अपनी नीति बदलनी पड़ी। अब उनको यह कहना पड़ा कि हम गलतीपर थे और हैरी पालिट सही थे। ये अपनेको यह कहकर कोसने लगे कि हम उन सिद्धान्तो और अनुमानोसे गुमराह हो गये थे जो राष्ट्रवादकी उपज हैं और हमने मार्क्स लेनिनकी मजदूर जमातकी अन्तर्राष्ट्रीयताको भुला दिया। यदि हैरी पालिटका यह पत्र इनके हाथ न लगा होता तो यह युद्ध अब भी साम्राज्यवादी युद्ध रहता। पालिटके पत्रमें कोई ऐसे नये तर्क नहीं दिये गये हैं जो उसके बिना नही सोचे जा सकते। पत्रकी मुख्य बात यही है कि युद्धमें सोवियत-यूनियनके आ जानेसे एक मौलिक परिवर्तन हो गया है और लोकतन्त्रवादी और प्रगतिशील जनताके सामने हिटलरकी हारके लिए युद्ध करना एक महत्त्वका सवाल हो गया है। पत्रमे यह भी स्पष्ट किया गया है कि चर्चिलकी गवर्नमेण्ट भी इस बुनियादी तबदीलीको मानती है। पार्टीने इसीके अनुकूल अपनी नयी नीति निर्धारित की है। पार्टीको अपने ऊपर और जनतापर विश्वास करना चाहिये कि जनता गवर्नमेण्टको हिटलरसे मेल करनेसे रोकेगी और इस सम्बन्धमे उसको किसी प्रकारका अनुमान न लगाना चाहिये। हमारे दोस्तोंने यह न सोचा कि यदि उपनिवेशमे रहनेके कारण वह राष्ट्रवादसे प्रभावित हो सकते थे तो इगलैण्डमे रहनेके कारण हैरी पालिट तथाकथित राष्ट्र-रक्षा (national defencism) से प्रभावित हो सकते थे। हैरी पालिट शुरूसे ही हिटलरके विरोध करनेके पक्षमे थे। उन्होने जर्मनी-रूसका समझौता नापसन्द किया था और उसके बादकी कम्युनिस्ट पार्टीकी नीतिसे वह सहमत नही थे। इसी कारण वह मन्त्री-पदसे कुछ समयके लिए अलग हो गये थे। जब जर्मनीने रूसपर आक्रमण किया तब उनको जन-संयुक्त मोर्चाकी पुरानी नीतिको बर्तनेका अवसर मिला। रूसका भी यही आदेश था। इस नीतिपर अमल करनेमे ब्रिटेनकी भी रक्षा थी। इस जानकारीके बाद क्या यह सम्भव नही है कि जिस प्रकार सन् १९१४ के युद्धमे कितने ही साम्यवादियोने अपने देशकी रक्षाके नामपर युद्धको साम्राज्यवादी कहना स्वीकार नही किया उसी प्रकार हैरी पालिट भी इगलैण्डकी रक्षाके प्रश्नसे प्रभावित होकर सोवियत रूसके नाम पर इस युद्धको जनताका युद्ध कहते हैं।

महायुद्धका स्वरूप

आज हैरी पालिटके फतवेको पाकर कम्युनिस्ट इसे जनताका युद्ध कहने लगे हैं। इसमे स्वामी सहजानन्दजी भी कम्युनिस्टोके साथ हैं। स्वामीजी किसान सभाके फूटमे ही नही, लड़ाईके मामलेमे भी पूरी तरह इनके साथ है। हम यह मानते हैं कि

साम्राज्यवादी युद्ध घटनाचक्रसे राष्ट्रीय युद्ध हो सकता है और राष्ट्रीय युद्ध साम्राज्यवादी हो सकता है। किन्तु इस युद्धका स्वरूप अभी नही बदला है। युद्धमे कुछ राष्ट्रीय तत्त्व आ गये है, किन्तु वह गौण है। प्रधान तत्त्व आज भी साम्राज्यवादी है। दूसरी ओर युद्धक्षेत्रका विस्तार होनेसे, अर्थात् जापान और अमेरिका, इन दो साम्राज्यवादी राष्ट्रोके आ जानेसे युद्धमे नये साम्राज्यवादी तत्त्व आ गये है। अब यह युद्ध विश्वव्यापी हो गया है। इसका सूत्र चीन और रूसके हाथमे नही है। चीन इंगलैण्ड और अमेरिकाकी सहायतापर आश्रित है और रूसपर लडाई लादी गयी है। वह इस युद्धके उद्देश्योको बदलनेके लिए अपनी खुशीसे नही शरीक हुआ है। चर्चिल और रूजवेल्ट भी 'दुश्मनका दुश्मन दोस्त होता है' इस आधारपर रूसके साथ है। मुसीबतमे अजीब-अजीब लोगोका साथ हो जाता है। तो क्या हम यह कह सकते है कि यह सब शरीफजादे है? युद्धके सूत्र इंगलैण्ड और अमेरिकाके हाथमे है, जो साम्राज्यवादी है। भविष्यकी सबसे जबर्दस्त साम्राज्यवादी शक्ति अमेरिकाकी होगी। उसकी इस युद्धमें प्रधानता है। राष्ट्रीय तत्त्व गौण है और युद्धके निर्णयोमे उनका कोई विशेष महत्त्व नही है। इसलिए मेरा कहना है कि युद्ध प्रधानतया अब भी साम्राज्यवादी है। चीन और रूसके साथ हमारी हार्दिक सहानुभूति है। इस कारण नीतिमे थोड़ा परिवर्तन करना पड़ता है। पर यदि युद्धका स्वरूप प्रधान अंशमे नही बदला है तो नीतिमे कोई मौलिक परिवर्तन नही किया जा सकता।

यदि इंगलैण्ड और अमेरिका अपनी युद्ध और शान्तिकी नीतिको बदलें और अपनी साम्राज्यवादी मनोवृत्तिका परित्याग कर आज अपने साम्राज्यवादी हितोंका परित्याग करे तो यह युद्ध अवश्य जनताका फैसिस्ट विरोधी युद्ध हो जायगा, पर ऐसी आशा नही रखनी चाहिये। हम साम्राज्यवादके युगमे रह रहे है। राष्ट्रोको जब अपनी नीतिमे शान्तिमय उपायो तथा कूटनीतिसे सफलता नही मिलती तब वह सैन्यबलका प्रयोगकर अपने उद्देश्योको प्राप्त करना चाहते है। तृप्त राष्ट्र अपने साम्राज्यकी रक्षा करना चाहते है और अतृप्त राष्ट्र ससारका फिरसे बटवारा करनेके लिए तृप्त राष्ट्रोको विवश करना चाहते है। वर्तमान युद्धका यही हेतु है। दूसरोकी स्वतन्त्रता छीनकर और उनका आर्थिक शोपण कर तृप्त राष्ट्रोके साम्राज्यकी स्थापना हुई है। यों तो पूंजीवादी सत्ता सर्वग्रासी होती है और किसी प्रकार उसकी भूख शान्त नही होती, ; किन्तु जब एक पुराना पूंजीवादी राष्ट्र एक विशाल साम्राज्यकी स्थापना कर लेता है, कतिपय देशोके आर्थिक जीवनपर प्रभुत्व कायम कर लेता है और जगह-जगह अपना प्रभाव-क्षेत्र बना लेता है तब किसी जबर्दस्त प्रतिद्वन्द्वीका मुकाबला होनेपर वह शान्तिका पाठ पढने लगता है। यह तो वही मसल है कि हजार चूहे खाकर बिल्ली हजको चली। लीग ऑव् नेशन्सकी स्थापना इसीलिए हुई थी कि इगलैण्ड और फ्रास अपने हस्तगत मालको हजम कर सके और पदाक्रान्त राष्ट्र उनके विरुद्ध सिर न उठा सके। पूर्वीय यूरोपमे फ्रासने अपनेको मजबूत करनेके लिए क्षुद्र राष्ट्रोका समूह बनाया। इस समूहमे ऐसे राष्ट्र भी शामिल थे जिनका शासन स्वेच्छाचारी फौजी अधिनायकोके हाथमे था।

तिसपर भी इन राष्ट्रोंका समर्थन फ्रास करता था । संसारका एक बहुत बड़ा हिस्सा अपने कब्जेमे करके इन्होने यह कहना शुरू किया कि युद्धद्वारा अपने झगड़ोंको निपटानेका तरीका गलत है और जो शान्ति भंग करता है उसे लीगसे दण्ड मिलना चाहिये । किन्तु जब्र जापानने चीनपर आक्रमण किया और मचूरिया ले लिया तब चीन लीगका सदस्य था । लीगसे सहायताकी अपील की किन्तु लीगने कोई सहायता न दी । लीग आव् नेशन्स तो इंगलैण्ड और फ्रांसकी साम्राज्यवादी नीतिका समर्थन करनेके लिए बनायी गयी थी । यही दो राष्ट्र इसके प्रधान थे । यह आपसमे जो समझौता कर लेते थे उसीको लीग-द्वारा स्वीकृत करालेते थे। दुर्बल राष्ट्रोके सबल राष्ट्रोद्वारा ग्रसे जानेपर अपनी सुविधाके अनुसार ही कोई काररवाई करते थे। लोकतन्त्र तथा क्षुद्र राष्ट्रोकी रक्षाके लिए इन्होने कभी कुछ नही किया । जर्मनीको सन्तुष्ट करनेकी कोशिश इसलिए करते थे जिसमे इनपर आक्रमण न करे, बलिदानका बकरा चाहे दूसरा कोई भले ही बने । मित्र राष्ट्रोकी ओरसे आज कहा जाता है कि यह यद्ध स्वतन्त्रता और लोकमतकी रक्षाके लिए है । किन्तु हमने देखा कि जब जर्मनीने चेकोस्लोवाकियाके लोकतन्त्रपर आक्रमण किया तब इंगलैण्ड और फ्रांसने कुछ न किया, किन्तु उल्टे हिटलरसे म्यूनिकका समझौता कर लिया । पर जब पोलैण्डके अर्ध फैसिस्ट राष्ट्रपर आक्रमण हुआ तब इंगलैण्डने जर्मनीके विरुद्ध युद्धकी घोषणा कर दी ।

क्या यह युद्ध फासिज्मविरोधी है ?

कहा जाता है कि यह युद्ध फैसिज्मका विरोध करनेके लिए लडा जा रहा है, क्योकि एक ओर रूस और लोकतन्त्रवादी राष्ट्र है तथा दूसरी ओर फैसिस्ट राष्ट्र । किन्तु यह भ्रम मात्र है । हम ऊपर देख चुके है कि पोलैण्ड अर्ध फैसिस्ट राष्ट्र लोकतन्त्रवादियोंके साथ है । ग्रीस भी उनके खेमेमे है । पूर्वीय यूरोपके कुछ दूसरे अर्ध फैसिस्ट राष्ट्र भी युद्धके पहले इनके साथ थे । किन्तु हिटलरकी जीतने उनको इससे अलग कर दिया । यह भी ख्याल गलत है कि प्रधान फैसिस्ट राष्ट्र एक साथ मिलकर फैसिज्मकी विचार-पद्धतिको फैलानेके लिए लड़ रहे हैं । फैसिस्ट भी साम्राज्यवादी है । उनमें भी परस्पर स्वार्थोका संघर्ष चलता रहता है । जर्मनी और इटलीके हितोका प्रत्यक्ष विरोध मध्य यूरोपमे देखा जा सकता है । किसको नही मालूम-कि आस्ट्रियाके प्रश्नको लेकर हिटलर और मुसोलिनीमे काफी तनाततनी हो गयी थी । किन्तु स्वार्थवश ये इस समय साथ हैं । समय आनेपर एक दूसरेके विरोधमे भी खडे हो सकते हैं । हिटलरने बोलशेविज्मका अन्त करनेके लिए यह लडाई नही छेड़ी है । वह तो वर्साईकी सन्धिको खतम कर यूरोपका प्रभुत्व चाहता है । बोलशेविज्मका हौआ दिखाकर वह बराबर इंगलैण्ड और फ्रांसको बेवकूफ बनाता रहा और कई प्रदेश उसने बिना लडे ही ले लिये । किन्तु जब चेम्बरलेनने देखा कि अब बहुत जल्दी हमारी बारी आनेवाली है तो युद्धकी घोपणा कर दी । यह वस्तुस्थिति है । सबको अपनी-अपनी फिक्र है । कोई राष्ट्र किसी आदर्शके लिए नही लड़ रहा है । सब अपने स्वार्थके लिए लड़ रहे है और हर एकसे मैत्री

करनेको तैयार है, चाहे वह प्रजातन्त्रवादी हो या फैसिस्ट । इस बातको फिरसे दुहरानेकी जरूरत है कि कोई भी राष्ट्र इस समय किसी वादके लिए नही लड रहा है । जिस तरह बोलशेविज्मका हौआ दिखाकर हिटलर इतने साल विना लड़ाईके अपना काम निकालता रहा उसी तरह मित्र राष्ट्र अब स्वतन्त्रता और लोकतन्त्रकी दुहाई देकर भोली-भाली जनताको वेवकूफ बनाना चाहते हैं । हिटलरको बोलशेविक रूससे अनाक्रमण सन्धि (Non-aggression Pact) करनेमे कोई मुश्किल नही हुई । स्टालिन भी फैसिस्ट जर्मनीसे पैक्ट करनेको खुशी-खुशी राजी हो गया । यह पैक्ट क्यो टूटा यह दूसरी कथा है, किन्तु यह भी असन्दिग्ध है कि वह इसलिए नही टूटा कि रूस एक कम्युनिस्ट राज्य है । आज भी रूस और जापानका पैक्ट कायम है । यह तो राजनीतिकी चाले है । कुछ दिन हुए सर स्टैफर्ड क्रिप्सने कहा था कि रूस दूसरी गवर्नमेण्टोके मामलेमे हस्तक्षेप नही करना चाहता । लड़ाई खतम होनेपर यह अपनेको मजबूत करनेमे लगेगा और इसलिए वह अपने राज्यकी सीमाओको सुधारना चाहता है । स्वय स्टालिनने कहा था कि हम राष्ट्रीय युद्ध लड़ रहे है ।

यदि यह युद्ध फैसिज्मका अन्त करनेके लिए चल रहा है तो इगलैण्ड रूसकी पूरी मदद क्यो नही करता ? सर स्टैफर्ड क्रिप्सतकने इसकी शिकायत की है । इस समय वास्तवमे अकेला रूस ही जर्मनीका सफल मुकाबला कर रहा है । और मोर्चोपर तो मित्रराष्ट्रोकी हार हो रही है । यदि उद्देश्य एक है तो जो राष्ट्र वास्तवमे जर्मनीका सफल मुकाबला कर रहा है उसकी पूरी मदद होनी चाहिये । यदि अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्रमे लोकतन्त्र और फैसिज्मकी प्रतिद्वन्द्विता चल रही है तो एकदेशीय दृष्टि नही होनी चाहिये । दुनियाके पैमानेपर ही लोकतन्त्र और फैसिज्मका फैसला होगा । फिर अपना-अपना क्या ? एक कुटुम्ब समझकर सब साधनोका उपयोग अच्छेसे अच्छे ढगसे होना चाहिये । किन्तु पेंचपर पेच लगे हुए है । कही तो इसका डर है कि इंगलैण्डमे कम्युनिस्ट विचार न फैल जाये । इसकी भी फिक्र है कि किसी भी हालतमे इगलैण्डकी रक्षाकी वर्तमान अवस्थामे तनिक भी फर्क न आये ।

युद्ध और भारत

हमसे कहा जाता है कि रूसकी आजादीमे तुम्हारी आजादी शामिल है और इसलिए युद्धमें सहयोग करनेको कहा जाता है । इसका अर्थ यह है कि यदि दूसरे पदाक्रान्त राष्ट्र स्वतन्त्र होते है तो हम भी अन्तमे स्वतन्त्र हो जावेगे । किन्तु हमको तो धुरी राष्ट्रोने गुलाम नही बना रखा है । हम तो एक लोकतन्त्रवादी राष्ट्रके गुलाम हैं । वह चाहे तो आज भी भारतको स्वतन्त्र घोषित कर सकता है । इसमे धुरी राष्ट्र क्या अड़चन डाल रहे है ? यह भी सच नही है कि जितने देशोपर आज हिटलरका कब्जा है उन सबको वह सदाके लिए गुलाम बनाना चाहता है । युद्धकी आवश्यकतासे प्रेरित होकर ही उसको ऐसा करना पडा है । इगलैण्डको भी विवश होकर नारवेकी तटस्थताको भग करना पड़ा था । इस प्रकार इगलैण्ड और रूसने ईरानमे हस्तक्षेप किया था । और यदि यह सच है

कि सबकी आजादीमे हमारी आजादी भी शामिल है तो यह भी मानना पड़ेगा कि हमारी गुलामीमे सबकी गुलामी छिपी हुई है। यदि हम अपनी दासताके बन्धन यहां काटते है तो दूसरी प्रगतिशील शक्तियोंको भी सबल बनाते है। तथ्य यही है कि भारत अपनी स्वतन्त्रता अर्जित करके ही, सिर्फ इसी तरीकेसे रूस और चीनकी मदद कर सकता है।

विचारिये कि यदि भारत स्वतन्त्र होता तो क्या करता ? यदि हम थोड़ी देरके लिए मान भी लें कि यह युद्ध प्रजातन्त्रकी स्थापनाके लिए लड़ा जा रहा है तो भी क्या स्वतन्त्र भारत बिना सोचे विचारे आगमे कूद पड़ता ? किसी भी स्वतन्त्र राष्ट्रने अबतक ऐसा नहीं किया। जिनकी यह लड़ाई नहीं है वह इससे अलग ही रहना चाहते हैं। रूस भी यही चाहता था। टर्कीकी भी यही नीति है। हम भी इसी नीतिका अनुसरण करते। हाँ, यदि हमारे देशपर कोई राष्ट्र आक्रमण करता तो हम उसका मुकाबला करते और उस अवस्थामे उन राष्ट्रोंसे मैत्री करते जो हमारे पक्षके सिपाही होते। किन्तु आज जब हम गुलाम है तो भी हमको दूसरोंकी आजादीके लिए लड़नेको कहा जाता है।

यह एक अजीब-सी बात है। शायद कहनेवाले यह समझते हों कि गुलामोंकी जानकी कीमत ही कितनी। अपने देशमें भारतवासी आये दिन किसी न किसी मुसीबतके शिकार होते रहते हैं। इससे तो कहीं अच्छा है कि वह दूसरोंकी आजादीके लिए लड़कर मरें। हम भारतवासियोंको आजादीकी मुसीबतों और कठिनाइयोंका अनुभव तो है नहीं। हमने तो केवल उसका सुनहला पहलू देखा है। उसीमें हम मस्त हैं। हमारा जोश इस कदर बढ़ा हुआ है कि हम दुनियासे गुलामी और आर्थिक शोषणको मिटा देना चाहते हैं। इसीलिए हमारी चीन और रूसके साथ हार्दिक सहानुभूति है। किन्तु गवर्नमेण्टोंमें यह उत्साह और आदर्शवादिता नहीं पायी जाती। क्या हमारी इस आदर्शवादिताका अनुचित लाभ उठाया जा रहा है या हम गुलामोंको इस तरह चिढ़ाया जा रहा है ? यह भी कहा जा सकता है कि अब तो युद्ध दरवाजेपर आ गया, अब गुलामी आजादीका क्या सवाल है ? अब तो अपनी मातृभूमिकी रक्षाका सवाल है। किन्तु हमको इस काबिल ही नहीं रक्खा गया है कि हम अपनी रक्षा कर सकें। हमको तो पीरनाबालिग बनाकर रखा गया है। हम सिर्फ दुआ कर सकते है या कोस सकते है। लड़ाईमें शरीक होकर हम अपनी मदद तो न कर सकेंगे किन्तु अपनी गुलामीकी जंजीरोंको अवश्य मजबूत कर देंगे। दुनियाको यही बतलाया जायगा कि हिन्दुस्तान अपनी गुलामीसे सन्तुष्ट है।

वर्तमान महायुद्धके उद्देश्य

साम्राज्यवादने दुनियाका बन्दरबांट किया है और दुनियाको तीन समुदायोंमें बांट दिया है। अमेरिका, इङ्गलैण्ड और जर्मनी इन समुदायोंका नेतृत्व करते हैं। अन्य छोटे राष्ट्र इनमेंसे किसी एकका साथ देनेके लिए विवश हैं। इस युद्धमें इङ्गलैण्ड अमेरिकाके आश्रित हो गया है। यदि यह कहा जाय कि शायद इस युद्धमे इङ्गलैण्ड और अमेरिकाका एक गुट हो गया है तो शायद अत्युक्ति न होगी। दोनोंकी प्रतिद्वन्द्विता कुछ अरसेसे चली

आती है। किन्तु इसे युद्धकी आवश्यकताओ और अमेरिकाकी महती शक्तिने इङ्गलैण्डको अमेरिकाके आश्रित होनेके लिए विवश किया है।

एटलांटिक घोषणा (Atlantic Charter) एक गुटकी नीतिको निर्धारित करता है और हिटलरकी नयी व्यवस्था (New Order) और जापानका सम्मिलित समृद्धि कार्यक्रम (Co-prosperity Programme) दूसरे गुटकी नीति जाहिर करता है। इनमे कोई विशेष अन्तर नही है। एटलाटिक घोषणामें केवल उन्हीके लिए स्वभाग्य निर्णयका सिद्धान्त माना गया है जिनको हिटलरने आक्रान्त किया है। इङ्गलैण्डके साम्राज्य और उसके उपनिवेशोको यह सिद्धान्त लागू नही होता। अमेरिका भी इस घोषणाद्वारा अपने साम्राज्यवादी हितोका परित्याग नहीं करता। ऐसी अवस्थामे कौन विश्वास कर सकता है कि यह लड़ाई लोकतन्त्र और आजादीके लिए लड़ी जा रही है? पराये धनपर तो सभी लक्ष्मीनारायण होते हैं। यूरोपके आक्रान्त और विजित राष्ट्रोके लिए स्वभाग्य निर्णयके सिद्धान्तको मानना इङ्गलैण्डके लिए कोई वडी वात नही है। इङ्गलैण्डके अधीन यह राष्ट्र कभी नही रहे हैं। इङ्गलैण्ड यूरोपपर अपना प्रभुत्व शक्ति-सन्तुलनकी नीतिको वर्तकर ही कायम रख सकता है। छोटे राष्ट्रोको स्वभाग्य निर्णयका अधिकार देकर सन्तुलन कायम होता है। पिछले महायुद्धके वाद भी कई प्रदेशोको स्वभाग्य निर्णयका अधिकार देकर और उनको जर्मनीसे स्वतन्त्र कर जर्मनीकी शक्तिको क्षीण किया गया था। इसी उद्देश्यसे आज भी यूरोपके आक्रान्त राष्ट्रोकी स्वाधीनता स्वीकार की गयी है। यदि एक महान् आदर्शकी पूर्तिका स्वांग भी रचा जा सके और साथ-साथ अपना उद्देष्य भी सिद्ध होता हो तो इससे वढ़कर क्या हो सकता है? किन्तु यदि इस आदर्शके अनुसार भारत, वर्मा, सिहल तथा अफ्रिकाके उपनिवेशोमे काम किया जाय तभी ब्रिटेनकी सचाई सावित हो सकती है। अन्यथा यह मक्कारी ही समझी जायगी।

हिटलरकी नयी व्यवस्था

हिटलरकी नयी व्यवस्था भी धोखेकी चीज है। नाजीवाद तथा फासिस्टवाद एक वर्वरवस्तु है। वह मानव स्वतन्त्रताको पददलित करता है। मनुष्यके व्यक्तित्वकी उनकी नजरोमे कोई कीमत नही है। उसके लिए कोई सामाजिक या आध्यात्मिक आदर्श (spiritual values) नही है, किन्तु हिटलरने अपने देशकी वेकारीको दूर कर दिया है। उसका खयाल है कि यदि वह यूरोपसे वेकारी और आर्थिक अनिश्चितता (Economic insecurity)को दूर कर सके तो यूरोपमे उसका प्रभुत्व कायम हो सकता है। उद्योग-व्यवसायके क्षेत्रमे जो आर्थिक संकट वार-वार उपस्थित होते रहते हैं और जिससे अस्तव्यस्तता होती रहती है उसके कारण जनतामे आर्थिक अनिश्चितता-का भाव उत्पन्न हो गया है। इसी अनिश्चितताके कारण जर्मनीका निम्न-मध्यम-वर्ग नाजीवादका आधार वना। इस अनिश्चितताको नाजीवादने फिलहाल तो दूर कर दिया है यद्यपि ऐसा करनेके लिए नाजीवादने रहन-सहनका दर्जा काफी गिरा दिया है।

पार्लमेण्टरी प्रजातन्त्रके पास इस समस्याका कोई तत्कालीन हल भी नही है, इसीलिए उसका ह्रास तथा फासिस्टवाद या समाजवादकी उन्नति हो रही है।

फासिस्टवाद यद्यपि साम्राज्यवादकी एक विशेष अवस्था मात्र है तथापि उसने पूंजीपतियोके मुनाफेका काफी नियन्त्रण कर तथा अन्य उपायोका अवलम्बन कर जर्मनीसे वेकारीको दूर कर दिया है और लोगोको यह आश्वासन दिया है कि यद्यपि उनके रहन-सहनका दर्जा पहलेकी अपेक्षा गिर गया है तथापि उद्योगक्षेत्रकी अस्तव्यस्तताके कारण उनको समय-समयपर अकिंचनता, दरिद्रता और वेकारीका सामना न करना पड़ेगा। यह सच है कि मनुष्य केवल रोटीसे ही सन्तुष्ट नही होता, किन्तु जवतक रोटीका सवाल हल नही होता तवतक उसके लिए यही एक सवाल अहमियत रखता है। भूखे पेट भजन नही होता। किन्तु एक वार जव यह सवाल हल हो जाता है तव मनुष्यका ध्यान और सवालोंकी ओर जाता है। यही कारण है कि आज जर्मन लोग हिटलरके पीछे है। लडाईका संकट जवतक रहेगा तवतक उसके पीछे रहेंगे। हार ही जर्मनजातिको हिटलरके विरुद्ध कर सकती है या कोई ऐसा वाद हो जो आर्थिक निश्चितताके साथ-साथ मानवोचित आदर्शोकी भी पूर्ति करता हो।

इसमें सन्देह नही कि नाजीवादको तात्कालिक सफलता ही मिल सकती है। उसका भविष्य उज्ज्वल नही है, क्योकि यह इस भूलमे पड़ गया है कि मनुष्यके केवल पेट होता है, मस्तिष्क और भाव नही होते। हिटलरकी नयी व्यवस्था यूरोपको आर्थिक चिन्तासे मुक्त करना चाहती है। वह यूरोपमे एक ऐसी आर्थिक पद्धति कायम करना चाहती है जिससे यूरोपवासी आये दिन पूंजीवादके सकटोसे वचे रहे। यही इसकी विशेपता है। दूसरी दृष्टियोसे जव आप इस व्यवस्थाकी परीक्षा करेंगे तो इसमे दोप ही दोष दिखायी देंगे। हिटलरके मित्रराष्ट्र इटलीको औपनिवेशिक स्वराज्य (Dominion Status) मिल सकता है और अन्य छोटे-छोटे राष्ट्रोको देशी राज (Home Rule) दिया जायगा। प्रत्येक राष्ट्र यथासम्भव अन्नादिकी दृष्टिसे आत्मनिर्भर वनाया जायगा। कई उद्योग-प्रधान प्रदेश अपनी प्रधानता खो देंगे। हिटलरकी सेना सव राष्ट्रोकी रक्षा करेगी। यह सव तो होगा। किन्तु नाजीवादकी वर्वरता सारे यूरोपपर छा जायगी। पर जवतक मित्रराष्ट्र यूरोपके सामने ऐसी व्यवस्था न रखेंगे जिसके आधारपर आर्थिक निश्चितताकी आशा की जा सके तथा आये दिनके युद्धोसे छोटे राष्ट्रोंकी रक्षा हो सके तवतक स्वतन्त्रता और लोकतन्त्रकी कोरी वकवाससे यूरोपके राष्ट्रोको सन्तोप नही होगा। इंगलैण्ड जव अपने देशकी वेकारीको युद्धकी अवस्थामे भी पूरी तरहसे दूर नही कर सका है तव उसके नुस्खोंको दूसरे कैसे विश्वास करें? छोटे राष्ट्र स्वभाग्य-निर्णयके सिद्धान्तको लेकर क्या करें? सच वात तो यह है कि इसी सिद्धान्तके लागू करनेसे छोटे राष्ट्र मुसीवतमे पड़ गये है। यूरोपीय संघके वने विना यूरोपका कल्याण नहीं है। छोटे राष्ट्रोकी स्वतन्त्रता पड़ोसी शक्तिशाली राष्ट्रोको अपने युद्धके लोभको संवरण नही करने देती। यदि एक समुदायमे सव सम्मिलित हो और सवके समान अधिकार हो और सव एक दूसरेके साथ

सहयोग करें तभी स्वभाग्य-निर्णयका सिद्धान्त सार्थक हो सकता है। पर यह पूंजीवादके युगमे सम्भव नही।

हिटलरकी नयी व्यवस्था (New order) यूरोपके लिए है और जापानकी सम्मिलित समृद्धिकी योजना (Co-prosperityProgramme) पूर्वी एशियाके लिए है। एशियामें जो अद्भुत जागृति हुई है और राष्ट्रीय भावका उत्थान हुआ है उसीको देखकर यह योजना बनायी गयी है। इस युगमे जापान एशियावासियोको अरसेके लिए गुलाम नही बना सकता। इंगलैण्डने जिस तरह अपना साम्राज्य स्थापित किया उस तरह जापान आज नही कर सकता। जनताकी स्वतन्त्रताकी प्रवल भावनाकी उपेक्षा नही की जा सकती। इसीलिए जापानको मीठी घूंट पिलानेके लिए विवश होना पडता है। वह ऐसा जाहिर करता है मानो पूर्वी एशियासे यूरोपकी सत्ता मिटाना उसका एकमात्र उद्देश्य है। वहुतसे इस मिथ्या प्रचारमे फँस जाते हैं। यूरोपीय साम्राज्यवादसे एशियाके लोग तग आ गये है। इसीलिए यह प्रचार काम कर जाता है। चूंकि पूर्वी एशियाके देश कमजोर हैं इसलिए जापान उनकी रक्षाका वचन देता है और सवको अपने कुटुम्वोमे शामिल होनेके लिए निमन्त्रित करता है। वह इस कुटुम्वका 'कर्त्ता' (हिन्दू कुटुम्वका प्रमुख कर्त्ता कहलाता है) वनना चाहता है। वह कहता है कि जव हम सव एक कुटुम्वके सदस्य हो गये तो हरएक राष्ट्रको हर वातके लिए स्वतन्त्र व्यवस्था करनेकी क्या जरूरत वाकी रह जाती है? जापानके पास वडी सेना है और लोहे आदिके आधारभूत कल-कारखाने हैं। प्रत्येक राष्ट्र इनका उपयोग अपने लाभके लिए कर सकता है। प्रत्येक राष्ट्र अपने अन्न-वस्त्र और आन्तरिक रक्षाका प्रवन्ध स्वय कर ले और शेप की व्यवस्था जापानमे पहलेसे ही मौजूद है। जापान इस प्रकार पूर्वी एशियाके राष्ट्रोको देशी राज 'Home Rule' मात्र देना चाहता है जैसा इंगलैण्डने मिस्र, फिलिस्तीन, ईराक आदिको दे रखा है। हमको यह भी न भूलना चाहिये कि वह एक सवल राष्ट्र वननेके लिए कुछ प्रदेशोपर अपना प्रत्यक्ष अधिकार भी चाहता है। यदि आप खुशी-खुशी उसकी योजनाको नही स्वीकार करते तो वह आपके ही देशके कुछ लोगोको फोड़कर एक नकली स्वदेशी हुकूमत कायम करेगा। मचूरिया और चीनमे उसने ऐसा ही किया है।

मित्रराष्ट्र तथा धुरीराष्ट्रोकी नयी व्यवस्थाकी यह हकीकत है। इन सवसे जनताका कल्याण नही होनेका है और न कोई समस्या ही हल हो सकती है।

समाजवाद एकमात्र उपाय है

जवतक पूंजीवाद और उसकी विशेष अवस्थाएँ, साम्राज्यवाद और फासिस्टवादका लोप नहीं होता तवतक ससारमे शान्ति स्थापित नही हो सकती। जहाँ हिटलरकी नयी व्यवस्था और जापानकी सम्मिलित समृद्धिकी योजना किसी प्रकार आर्थिक अनिश्चितता-को तत्काल दूर करनेमे समर्थ हो सकती है वहाँ वे मनुष्यकी स्वतन्त्रताकी भूखको नही मिटाती। जहाँ मित्रराष्ट्रोकी योजना यूरोपके आक्रान्त देशोकी स्वतन्त्रताको स्वीकार करती है वहाँ उनकी आर्थिक अनिश्चितताको दूर नही कर पाती तथा अपने अधीन

उपनिवेशोकी गुलामीको कायम रखती है। मनुष्य रोटी, शान्ति और स्वतन्त्रता तीनों चाहता है। यह सब बाते सच्चे समाजवादकी स्थापनाद्वारा ही प्राप्त हो सकती है। मानवता ही समाजवादका आधार है। समाजवाद मनुष्यके व्यक्तित्वका सम्मान करता है और उसके विकासके लिए पूर्ण अवसर देता है। उत्पादनके साधन व्यक्तिकी मिलकियत न होकर सारे समाजकी मिलकियत बन जाते है और अर्थनीतिका संचालन व्यक्तियोंके मुनाफेके लिए न होकर सारे समाजके लाभके लिए होता है। समाजवादकी स्थापनापर निश्चितताका लोप हो जाता है। साथ-साथ रहन-सहनका दर्जा भी ऊँचा होता जाता है। ज्ञान और संस्कृति उच्च वर्गतक सीमित न रहकर सारे समाजके लिए सुलभ हो जाती है। रोजा लुक्सेम्बर्गके शब्दोमे 'समाजवाद रोटी-मक्खनका सवाल नहीं है किन्तु एक सास्कृतिक आन्दोलन है, एक विशाल तथा उन्नत ससारव्यापी विचार-पद्धति है (Socialism is not a bread and butter problem, but a cultural movement, a great and proud worldideology.) इसीलिए मार्क्सका कहना है कि मजदूरवर्गको रोटीकी अपेक्षा शौर्य्य, आत्मविश्वास, स्वतन्त्रता और आत्मसम्मानकी अधिक आवश्यकता है। समाजवाद ही सच्चे मानेमे लोकतन्त्रकी स्थापना कर सकता है। आजका सीधा सवाल पूँजीवाद बनाम समाजवादका है। जबतक पूँजीवादका बोलबाला है तबतक युद्धोका होना अनिवार्य है। इसीलिए क्रान्तिकारी जमाते विश्वव्यापी पैमानेपर पूँजीवादका विरोध करती है। इससे बचनेका तरीका यही है। युद्धमे सहयोग देकर हम साम्राज्यवादी हितोकी ही रक्षा करते है।

कम्युनिस्ट दोस्त अन्तर्राष्ट्रीयताकी दुहाई देते है। इससे बढकर अन्तर्राष्ट्रीयता क्या हो सकती है ? लेनिनके शब्दोमे "केवल एक ही प्रकारकी व्यावहारिक अन्तर्राष्ट्रीयता है अर्थात् अपने ही देशमे क्रान्तिकारी आन्दोलनके विकासके लिए हार्दिक उद्योग करना और प्रत्येक देशके इसी प्रकारके आन्दोलनका समर्थन (प्रचार, सहानुभूति और सामानद्वारा) करना।" इसको छोड़कर सब आत्मप्रवञ्चना है।

'देश-रक्षा'का पाखण्ड

कम्युनिस्ट भाइयोने कुछ समयसे "जनताका युद्ध" का नारा छोड़कर देशभक्तिकी अपील करनी शुरू की है। यह युद्ध जनताका युद्ध है इस भ्रममे जनता नही पड़ी है, वह तो अपने नित्यके अनुभवसे युद्धके साम्राज्यवादी स्वरूपको देख रही है। केवल मुट्ठीभर कम्युनिस्ट इस धोखमे पड़े है या यो कहिये कि धोखेमे पडनेके लिए मजबूर है। किन्तु उनका प्रचार व्यर्थ साबित हो रहा है। वातावरण इस विचारके सर्वथा प्रतिकूल है। इसलिए कम्युनिस्टोने जनताके युद्धका जिक्र करना ही एक तरहसे बन्द कर दिया है। अब वह मातृभूमिकी रक्षाके नामपर ब्रिटिश गवर्नमेण्टके साथ सहयोग करनेकी अपील करते है। उनका तर्क है कि शत्रु दरवाजेपर आ गया है; हम स्वतन्त्र रीतिसे उसका मुकाबला नही कर सकते; इसलिए राष्ट्रकी रक्षाके लिए हमको गवर्नमेण्टसे सहयोग करना चाहिये। इसी नीतिकी निन्दा लेनिनने "मिथ्या देश-रक्षा" (National

Defencism) कहकर की है। गवर्नमेण्टके साथ सहयोग कर हम उसके साम्राज्य-वादी हितोकी रक्षा करते है, देशकी नही। गुलामोका भी कोई देश होता है।

इस तर्कका अर्थ तो यह हुआ कि चाहे युद्ध साम्राज्यवादी क्यों न हो जब युद्ध दरवाजेपर आ जावे तब सब विचार छोडकर और मतभेदको भुलाकर अपनी हुकूमतकी सहायता करो। यह न वैज्ञानिक ढगसे सोचते है, न साम्राज्यवादी, न राष्ट्रीय और न अन्तर्राष्ट्रीय। यह केवल अवसरवादिता है। ऐसे ही लोगोको लक्ष्य कर मार्क्सने एक अवसरपर कहा था "I have sown dragons and have harvested fleas" "मैंने अग्निसर्पकी खेती की मगर हाथ लगे डस।" यदि एक तीर नही काम करता तो दूसरा छोड़ो। किसी तरह काम निकालना चाहिये। जनतामें जिस तरहका प्रचार काम कर सके उस तरहका प्रचार होना चाहिये। मार्क्सवादी जनताको न देवताकी तरह पूजता है और न उसकी अवमानना करता है। वह जनतासे सीखता है और जनताको सिखाता है। लेकिन कम्युनिस्ट तो जनताको मिट्टीका लोदा समझते मालूम होते है। यह तो हिटलरका तरीका है। कमसे कम मुझे ऐसी आशा इनसे न थी। मैं समझता था कि और चाहे जो कुछ हो कम्युनिस्ट कमसे कम जनताको जान बूझकर वेवकूफ बनाना नही चाहेगे। जो जनता इतिहासको बनाती और बिगाडती है उसके साथ मजाक करना ठीक नही है। उसका निरादर करना इतिहासके साथ विश्वासघात करना है।

मैंने युद्धके सम्बन्धमे विविध पहलुओकी विस्तारसे चर्चा इस कारण की है कि आज कम्युनिस्टोकी विचारपद्धतिकी मीमासा करना सबसे महत्वका क्रान्तिकारी कार्य हो गया है। यह ठीक है कि उनका प्रचार ऊसरमे बीज छीटनेके समान है। किन्तु पढे-लिखे लोग कभी-कभी अपनी प्रकाण्ड विद्वत्ता या अल्पज्ञानके कारण सीधी-सादी बात समझनेमे भी असमर्थ रह जाते है। पढे-लिखे लोगोकी दिमागी ऐय्याशी कभी-कभी नये-नये विवाद खड़ा करती है और अपनी वाक्चातुरीसे दूसरोको परास्त करना चाहती है। इसमे उनको खास मजा आता है। और जब ऐसी विचारधाराको रूस और तृतीय इण्टरनेशनलका सहारा मिल जाय तब तो कहना ही क्या है? क्रान्तिके मार्गको परिष्कृत करनेके लिए इस विचार-पद्धतिके खोखलेपनको दिखाना निहायत जरूरी है।

कम्युनिस्टोंकी कार्यपद्धति

कम्युनिस्टोकी कार्य-पद्धति भी उतनी ही दूषित है। कम्युनिस्ट लोग अन्तर्राष्ट्रीय एकता तथा संयुक्त मोर्चेकी दुहाई देते है मगर हर जगह फूट पैदा करते नजर आते है। विद्यार्थी-आन्दोलन तथा किसान-आन्दोलनका अनुभव तो यही बतलाता है। यह कोई आकस्मिक घटनाएँ नही है। हमारा कर्त्तव्य है कि इसका अनुसन्धान करे और समझे कि क्या कारण है कि जहाँ कही कम्युनिस्ट जाते है वहाँ संस्थाओको छिन्न-भिन्न कर देते है। उनके साथ संयुक्त मोर्चाबन्दी बहुत दिन नही चलती। कम्युनिस्टोकी नीति है कि जब कभी वह कमजोर होते है या जब कभी उनको किसी खतरेका सामना करना पडता है तब वह संयुक्त मोर्चेका नारा बुलन्द करते है। इस प्रकार वह अपनी शक्ति और प्रभावको

बढाते हैं । यदि वह किसी समय काफी सवल हो जाते है तो उस संस्थापर अपना आधिपत्य जमानेकी कोशिश करते है । जब कभी उनकी समझमें क्रान्तिकारी परिस्थिति उपस्थित होती है तभी वह सयुक्त मोर्चेकी नीतिका परित्याग करते है और उन संस्थाओंपर पूरा कब्जा करना चाहते है जिनमे उनका या तो बहुमत है या परिस्थिति कब्जा पानेके लिए अनुकूल है । इसका कारण यह है कि उनकी ऐसी मान्यता है कि वही सच्चे क्रान्तिकारी हैं और दूसरे लोग सुधारवादी हैं । वह अपनेको क्रान्तिका ठेकेदार समझते हैं और उनके कार्यमे दूसरे बाधा न डाल सके इसलिए किसी दूसरी सस्थाके अनुशासनमे नही रहना चाहते और वर्ग-संगठनोपर अपना अक्षुण्ण प्रभाव जमाना चाहते हैं । यही कारण है कि वह कम्युनिस्ट, जो सन् १९३७ से संयुक्त मोर्चेका नारा बुलन्द करने लगे थे और काग्रेसकी एकताके लिए लम्बी बाते किया करते थे, युद्धके उपस्थित होते ही काग्रेसके विरुद्ध आवाज उठाने लगे, उन सब दलोको सुधारवादी कहने लगे जिनके साथ वह अबतक सहयोग करते आये थे और जिनको कलतक क्रान्तिकारी स्वीकार करते थे । मजदूर और किसान सभाओमे उनको सामान्य स्थान प्राप्त था । इसलिए इन संस्थाओंमें उनकी दाल नही गल पाती थी । किन्तु विद्यार्थी-सगठनपर अच्छा प्रभाव होनेके कारण उस सगठनमे झगड़ा खडा करना उनके लिए आसान था । नागपुर अधिवेशनके अवसरपर उन्होने दूसरे दलोको निकालनेका प्रयत्न किया और स्वागत समितिकी सहायतासे इस कामको पूरा कर सके । कुछ दिनो बाद जब सत्याग्रह आन्दोलनमे कई प्रमुख किसान नेता गिरफ्तार हो गये तब उन्हे किसान-सभामे बेजाब्ता कार्यवाही करनेका मौका मिला । यहाँ इस बातकी जरूरत नही है कि मै कम्युनिस्टोकी उन अनियमित कार्यवाहियोका उल्लेख करूँ जिनके द्वारा उन्होने किसान-सभाके जिम्मेदार लोगोको उनसे अलग होनेके लिए विवश किया । इसमे स्वामी सहजानन्द सरस्वतीका भी पूरा हाथ था ।

कम्युनिस्टोंकी साम्प्रदायिकता

कम्युनिस्टोके इतिहासमे यह पहला मौका नही है जब कि उन्होने वर्ग-संगठनोको अपनी कार्यवाहियोसे कमजोर कर दिया है । भारत क्या हर जगह उसके पर्याप्त उदाहरण हमको मिलते है और क्यो न मिले जब कि उनकी मनोवृत्ति इतनी सकुचित, अनुदार और मिथ्या धारणाओपर स्थापित है । यह अपनी भूलोको स्वीकार भी करते है, उनको सुधारते भी है । किन्तु फिर भी उन्ही भूलोको दुहराते है । हर जगह इन्होने क्रान्तिको बरबाद किया है ! इसी दूषित मनोवृत्तिकी बदौलत आन्दोलन और क्रान्तिसे भी अपने दलको ये अधिक महत्त्व देते हैं । इनके कठमुल्लापनका क्या कहना है । यह शब्दप्रमाणके माननेवाले है । जीवनका अनुभव इनके लिए इतना महत्त्व नही रखता जितना कि शास्त्रका एक वाक्य । इनका आचरण पग-पगपर मार्क्सकी शिक्षाके प्रतिकूल होता है । इन्होने कम्युनिज्मको एक धार्मिक सम्प्रदायका स्वरूप दे दिया है । इनके भी महन्त है । मास्को इनका मक्का है । तृतीय इण्टरनेशनलके आदेश इनके लिए वेदवाक्य है, चाहे उनकी उपयुक्तता समझमे आवे या न आवे ?

हमारी नीति

खैर कम्युनिस्ट जो भी सोचे या करे, हमारा रास्ता साफ है। हम आजादी चाहते है। हम साम्राज्यवाद और फासिज्म दोनोके विरोधी है। हम चाहते है कि जनतामें आक्रमणकारीके विरोधका भाव जगे। हमको किसी राष्ट्रका आक्रमण वर्दाश्त नही हो सकता। हम सब नयी व्यवस्थाओकी हकीकतको समझते है। हम यह भी जानते है कि कोई भी राष्ट्र दूसरेको मुक्त करनेके लिए आत्मवलिदान नही करता है। हम जापानको सचेत कर देना चाहते है कि वह यह न समझे कि हम भारतवासी उसका स्वागत करेंगे। हम गुलाम है जरूर-पर एक गुलामीके वदले दूसरी गुलामीको ओढनेको तैयार नही है। हम हर आक्रमणकारीका मुकावला करेंगे। हमारे पास जो अस्त्र है उन्हीका प्रयोग हम कर सकते है। असहयोग ही हमारा अस्त्र है। इसका प्रयोग हम वीस सालसे कर रहे है। भारतकी मिट्टी और आवोहवासे वेवसीकी हालतमे यह अस्त्र पैदा हुआ है।

यह जनताका युद्ध कैसे वनेगा ?

यदि इस युद्धमे कम्युनिस्ट जनताका हार्दिक सहयोग प्राप्त करना चाहते है तो उनको नीचे लिखी शर्तोको गवर्नमेण्टसे पूरा कराना चाहिये। इन शर्तोके पूरा हुए विना जनताका सहयोग नही मिल सकता :—

(१) जनताको यह अनुभव होना चाहिये कि देश स्वतन्त्र हो गया है और उसको अपने देशकी रक्षा करनी है। यह कार्य भविष्यके वादोसे नही हो सकता और न वायसराय-की काउन्सिलके भारतीय करनेसे। यहाँका प्रत्येक अधिवासी और सामान्यजन जव अपनेको स्वतन्त्र समझे तभी समझना चाहिये कि देश स्वतन्त्र हुआ।

(२) सामाजिक कानूनका वनना जिससे यहाँके किसानो, मजदूरो तथा निम्नश्रेणीके लोगोकी वेकारी और गरीवी दूर हो।

वर्तमान युगमे इन शर्तोका पूरा होना युद्धमे सहयोग प्राप्त करनेके लिए जरूरी है। जनता १९ वी शताव्दीकी जनताकी तरह निश्चेष्ट और उदासीन नही है। वह जानना चाहती है कि युद्ध क्यो लडा जा रहा है और उससे उसका क्या सम्वन्ध है। वह जानना चाहती है कि युद्ध पूँजीपतियोके लाभके लिए लडा जा रहा है या वह जनताके हितमे है। वह यह भी जानना चाहती है कि युद्धके लिए पूँजीपति भी त्यागके लिए तैयार है या केवल उसीसे त्याग करनेको कहा जाता है।

पिछले युद्धका अनुभव उसके सामने है। उस वार भी कहा गया था कि यह युद्ध लोकतन्त्रकी रक्षा और स्वतन्त्रताके लिए है। किन्तु हुआ कुछ नही। इसलिए जनता सतर्क है और जानना चाहती है कि इस वार भी पिछली वारकी तरह कही धोखा तो नही दिया जाता है। वह यह भी आश्वासन चाहती है कि नयी व्यवस्था ऐसी होनी चाहिये जिसमे युद्ध सम्भव न हो। फ्रासमे जव पोलैण्डकी रक्षाके लिए युद्ध घोषित किया गया और जगह जगह पोस्टर चिपकाये गये जिसमे लिखा था—'स्वतन्त्रता खतरेमे है, पूरी ताकत लगाकर उसकी रक्षा करो" तव लोग पूछते देखे गये कि पोलैण्डपर आक्रमण और

हमारी स्वाधीनता खतरे में ? लोग यह नही समझ पाते थे कि हम पोलैण्डके लिए क्यों लड़े । पिछले युद्धके रक्तस्रावकी याद उनके हृदय-पटलपर अकित हो गयी थी। माताएँ सोचती थी कि लड़कोको क्या हमने इसीलिए पाला-पोसा और सुशिक्षित किया था कि जव वह जीवनक्षेत्रमे प्रवेश करनेके योग्य हो जायँ तव हम उन्हे वध्यस्थानमे मौतके घाट उतरनेको भेज दें ।

स्वतन्त्र देशोकी जनता साम्राज्यशाहीकी लड़ाइयाँ लड़नेको नही तैयार है । जर्मन जातिके साथ वर्साईमें अन्याय न किया गया होता और वादको आर्थिक संकटके कारण जर्मन तवाह न हो गये होते और हिटलरने कमसे कम राष्ट्रीय अपमानको धोने और आर्थिक अनिश्चितताका अन्त करनेका प्रयत्न न किया होता तो जर्मन लोग आज हिटलरके साथ न होते ।

फ्रासके पतनके कारणोंका विश्लेपण करनेसे मालूम होता है कि वड़े-वड़े सेनापति और राजनीतिज्ञोकी धोखेवाजी ही पतनका कारण न थी किन्तु जनताका निरुत्साह और उदासीनता भी । यह उदासीनता इस कारण थी कि जन सयुक्त मोर्चे (People's front) की सरकारने जो कानून मजदूरोंके हितके लिए वनाये थे वह वादको रद्द कर दिये गये थे ।

इगलैण्डमें चर्चिलकी गवर्नमेण्टके आनेके वादसे कंजर्वेटिव गवर्नमेण्टने कई ऐसे कानून मजदूरोके लाभके लिए युद्धकी आवश्यकताओसे विवश होकर वनाये है जो मजदूर पार्टीकी पुरानी माँगों की अपेक्षा कही अधिक वढे हुए है । पर इतना भी पर्याप्त नही समझा जाता है । इस युद्धने यह दिखा दिया है कि पूंजीवाद इस युद्धके जीतनेमे काफी रुकावट है । हथियारोके तैयार करने और जनशक्तिके उपयोगमे इगलैण्डकी वह सामाजिक व्यवस्था हारिज हो रही है जिसका आधार व्यक्तिगत सम्पत्तिकी रक्षा और मुनाफा कमाना है । आज इगलैण्डमे खाद्यसामग्रीकी पैदावार वढ़ानेका प्रयत्न हो रहा है । इसके लिए खेतके मजदूरोकी मजदूरी काफी वढा दी गयी है । लेकिन वैंकर, जमीदार और व्यापारी अपने स्वार्थके कारण अव भी रुकावट डाल रहे है ।

यह सर्वग्रासी युद्ध (total war) है । इसके जीतनेके लिए चौमुखी कोशिश होनी चाहिये । आवादीके प्रत्येक हिस्सेकी मदद और हार्दिक सहयोगके विना यह लडाई नही जीती जा सकती । युद्ध जीतनेके लिए सवको आत्मत्याग करनेके लिए तैयार होना पड़ेगा । केवल सिपाहीका आत्मत्याग काफी नही है । नागरिकोको भी पूरा हिस्सा चुकाना पडेगा । सव स्वार्थोकी उपेक्षा करनी होगी । आवश्यकता पड़नेपर व्यक्तिगत सम्पत्ति भी वलिदान करना होगा । हिटलरको किसी किस्मकी अड़चन नही है । पर इंगलैण्डका पूँजीपति वर्ग अपने स्वार्थोको छोडनेको तैयार नही है । जव गवर्नमेण्टने खेत-मजदूरकी मजदूरी वढायी तो खेतोके मालिक गल्लेका भाव वढानेकी माँग करने लगे। यह वर्ग लड़ाईका वहुत वड़ा वोझ गरीवोपर छोड़ना चाहता है । पूँजीपतियोका एक भाग देशके स्वार्थोको भी अपने वर्गके स्वार्थोके लिए वलिदान कर देगा । इसी वर्गके प्रतिनिधि वाल्डविन और चेम्वरलेन थे । चर्चिल साम्राज्यके हितोको सर्वोपरि मानता है । जिस

तरह पूँजीपतियोका वर्ग वडी कठिनाईसे अपने विशेपाधिकारोंको छोडनेको तैयार है उसी तरह जनता अव यह जानना चाहती है कि उसके क्या अधिकार है और यदि उससे सहायता माँगी जाती है तो उसकी मुसीवतोको दूर करनेके लिए हुकूमत क्या करनेको तैयार है। यह हालत स्वतन्त्र और प्रजातन्त्र कहलानेवाले देशोकी है। फिर जगे हुए परतन्त्र देशोका क्या कहना ! पहले तो वहाँकी जनता परदेशी राजसत्ताके विरुद्ध होती है; दूसरे क्रान्तिके डरसे हुकूमत जनताको हथियार नही देती। जनता और अधिकारियो-के वीच अविश्वासकी एक दीवार खड़ी रहती है। जनता अपनी स्वतन्त्रताके लिए वार-वार उद्योग करती है: हुकूमत उसका दमन करती है। इसलिए इनका सम्वन्ध और भी कटु और विद्वेपपूर्ण हो जाता है।

जो संगठन तेजस्वी, आत्मत्यागी और जनताका प्रिय होता है वही हुकूमतका विरोध करता है और वास्तवमे युद्धके समय वही हुकूमतके भी कामका होता है। किन्तु उसी सगठनसे हुकूमत सवसे ज्यादा घवराती है और उसीका सवसे कम विश्वास करती है। हुकूमतके वादोका जनता विश्वास नही करती है। हुकूमतमे इतना माद्दा और दूरदर्शिता नही होती कि वह युद्धकी आवश्यकताओको समझकर सव पुरानी परम्पराओको तोड़ दे। जनतामे आत्मविश्वासकी कमीसे आक्रमणकारियोके विरोधकी उतनी तीव्र भावना नही होती। इन सव कारणोसे जनताका सहयोग नही प्राप्त होता, वह तटस्थ रहती है। इसलिए साम्राज्य ब्रिटेनकी कमजोरीका हेतु है। यह वात मलाया और वर्मामे प्रमाणित हो चुकी है। किन्तु तिसपर भी साम्राज्यका मोह छोड़ा नही जाता।

जनता किस आशापर साथ दे? उसकी गरीवी, वेकारी, वेवसी और गुलामी यह सव साम्राज्यवादके कारण है। आज भी उसके आर्थिक वोझ वढते जाते हैं। संयुक्त-प्रान्तमे वेदखलीका ताँता लगा हुआ है। अकेले गोरखपुर जिलेमे २०००० वेदखलियाँ हुई है। जमीदारोका जुल्म वढता जाता है सरकारी अहलकार तरह देते है। इस्तेमालकी सव चीजे महँगी होती जाती हैं। गल्ला उसी हिसावसे महँगा नही है क्योकि गल्लेकी कीमतपर नियन्त्रण है और महँगाईसे जो थोडा वहुत फायदा हुआ है, वह वनियोका, न कि किसानोका। आज कहा जाता है कि ज्यादा खाद्यसामग्री पैदा करो, किन्तु जैसा हम आगे दिखावेगे वर्तमान काश्तकारी कानूनके रहते यह सम्भव नही है। कोई भी गवर्नमेण्ट, जिसका निकट सम्पर्क जनतासे होता और जो वास्तवमे युद्धमे सफल होना चाहती, वेदखलीको वन्द कर देती और किसानोके रास्तेसे उन तमाम अड़चनोको दूर करनेका प्रयत्न करती जो उसको पैदावार वढ़ाने नही देती।

ब्रिटेन साम्राज्यके वोझसे पिसा जाता है। यह गलत है कि जापानके टैंक और डाइव वाम्वर साम्राज्यको छिन्न-भिन्न कर रहे हैं। साम्राज्यके वोझको फेंककर नैतिकता-का अभेद्य कवच पहिन ब्रिटेन आज भी विजयी हो सकता है। उसके इस कार्यसे जापान-जर्मनीके अस्त्र-शस्त्र निस्तेज और निष्प्रभ हो जायँगे। यह एक ऐसा प्रचार-कार्य होगा कि इससे युद्धकी कायापलट हो जावेगी। जर्मनीद्वारा आक्रान्त देशोको एक नूतन सन्देश मिलेगा और उनके बुझे हुए दिलोमें एक नवीन आशाका सचार होगा। एशियाके

देशोंमें एक कोनेसे दूसरे कोनेतक बिजली दौड़ जायगी। जापानका सारा प्रचार व्यर्थ हो जावेगा। एशिया-अफ्रिकाकी असंख्य जनता फैसिज्मको नेस्तानाबूद करनेपर तुल जावेगी। फिर मोर्चोंकी कमी नही रहेगी। पर जो लोग अस्त्र-शस्त्रपर ज्यादा विश्वास करते है वह नैतिकताके रहस्यको नही समझ सकते। केवल युद्धसामग्रीकी समृद्धिके आधारपर जो लड़ाई लड़ी जावेगी उसका नतीजा निश्चित रूपसे नही बताया जा सकता।

हमारे सामने चीनियोकी मिसाल पेश की जाती है। किन्तु लोग भूल जाते हैं कि चीन स्वतन्त्र है और चीनियोंमें जापानियोके विरुद्ध प्रबल विद्वेशका भाव मौजूद है। इसका कारण यह है कि सन् १८९५ ई० से जापान चीनपर आक्रमण करता आ रहा है और उसने चीनके कई प्रदेश हस्तगत कर लिये है। जापानका भारतके साथ राजनीतिक सम्बन्ध नही रहा है। इसलिए उसके विरुद्ध विद्वेष भाव होना सम्भव नही है। फिर चीनमे जनताकी आर्थिक अवस्थाको सुधारनेकी थोडी बहुत चेष्टा भी हो रही है। सहयोग समितिका आन्दोलन चल रहा है। एडगर स्नो (Edgar Snow) ने अपनी 'जली भूमि' (Scorched Earth) नामक पुस्तकमे बतलाया है कि जो प्रान्त कम्युनिस्टोंके अधिकारमे है और जहाँ किसानोंकी अवस्था ज्यादा अच्छी है वहाँके निवासी युद्धमे ज्यादा उत्साहके साथ सहयोग दे रहे है। एडगर स्नोकी शिकायत है कि अभीतक चीनका एक तिहाई भाग ही युद्धके लिए संगठित किया जा सका है और उनके अनुसार इसका कारण यही है कि किसानोंकी अवस्थाके सुधारनेपर पूरा ध्यान नही दिया जाता है। इसके लिए वह को-मि-टागको उत्तरदायी ठहराते है।

युद्धके अनुभव बता रहे हैं कि जबतक जनताको एक नवीन आशा और नवीन उद्देश्यसे प्रभावित नही किया जावेगा जिनके लिए वह मरनेके लिये तैयार हो और जिनकी रक्षाके लिए वह आत्मबलिदान करे, तबतक युद्धमे किसी पक्षको सफलता नही मिल सकती। रूस और चीनके साथ जो सबकी हार्दिक सहानुभूति है उससे कहाँतक लाभ उठाया जा सकता है? इनका मित्र राष्ट्रोके खेमेमे होना मित्र राष्ट्रोको बल पहुँचाता है। पर यह पूंजी उनकी निजकी नही है और दूसरेकी पूंजीके आधारपर कबतक काम चल सकता है? वही युद्धनीति सर्वोत्तम है जो जनताकी सामाजिक तथा आर्थिक उन्नतिकी आवश्यकताको पूरी करती है। इतिहास गतिशील है। वह ऐसी संस्थाओको बहुत अरसेतक कायम नहीं रहने देगा जो जड़ हो गयी है और उसकी प्रगतिमें बाधा पहुँचाती है। पुराने साम्राज्य ध्वस्त हो रहे है। यह प्रक्रिया हमारी आँखोके सामने चल रही है। उनका स्थान लेनेके लिए किसी नयी संस्थाका जन्म होगा। यदि ससारकी प्रगतिशील शक्तियाँ वर्तमान युद्धको सामाजिक क्रान्तिके युद्धमें परिणत करके समाजवादकी स्थापनाके लिए सचेष्ट न हुई तो कुछ समयके लिए फासिज्मके छा जानेका अन्देशा है।

सब समझदार लोग इंगलैण्ड और अमेरिकासे यह सवाल कर रहे है कि वे साम्राज्य वादके बोझसे अपनेको हल्का करे तथा सब राष्ट्रोंकी स्वतन्त्रता स्वीकार कर समस्त ससारमे एक ऐसी नयी व्यवस्थाका आरम्भ करे जिससे जनताको सच्ची शान्ति, आर्थिक निश्चिन्तता और स्वतन्त्रता प्राप्त हो। संसारकी उन्नतिका तथा विजय

प्राप्त करनेका यह सर्वोत्तम उपाय है। आधी लडाई तो विचारोकी लडाई है। जिसके पास कोई प्रोग्राम नही है वह अस्त्र-शस्त्र- सुसज्जित होनेपर भी कुछ नही कर सकता। विचारोकी शक्ति टैंकोसे भी कही ज्यादा गहरी और जवर्दस्त है। विचार पहाड़ो और समुद्रोका भी उल्लङ्घन करते है और उनके सामने राष्ट्रीय हदे वेकार हो जाती है। इगलैण्डके प्रसिद्ध फौजी अफसर लिडलहार्ट (Liddellhart) के शब्दोमे 'इस लड़ाईका फैसला मनोवैज्ञानिक (psychological) क्षेत्रमे होगा।' इसके लिए जनताकी जीविकाका प्रश्न हल करना और उसके अधिकारोको विस्तृत करना आवश्यक है। किन्तु, साम्राज्यवादी राष्ट्र क्यो इन वातोपर ध्यान देने लगे ? वह अपनी पाशविक शक्ति और असीम धनके गर्वके नशेमे चूर है। यदि कुछ करना भी चाहते है तो कदम फूंक-फूंककर रखते है। पर आज इसका जमाना नही रहा। आज तो करोड़ो दिलोको हिला देनेवाली नीतिकी जरूरत है।

युद्ध-सम्बन्धी समस्याएँ

हम चाहें या न चाहें हमारे ऊपर यह युद्ध लाद ही दिया गया है। युद्धके कारण हमारे देशमे तरह-तरहकी समस्याएँ उठ खडी हुई है। अपने देशके कल्याण, अपने देशवासियोके सुख और शान्तिकी दृष्टिसे हमे इन समस्याओका सामना करना है, इनको हल करना है। ज्यो-ज्यो देश इन समस्याओको हल करनेकी ओर वढेगा वह स्पष्ट अनुभव करेगा कि स्वतन्त्रता और सामाजिक क्रान्तिकी कितनी तात्कालिक आवश्यकता है। इसके विना गाडी आगे वढ़ ही नही पाती और हमारे सारे प्रयत्न बेकार मालूम पडते है, हमारी सारी योजनाएँ कागजोमे ही धरी रह जायँगी। अगर इन कठिनाइयोका दृढतासे सामना नही किया गया तो सारा देश वडी परेशानी और तकलीफ उठायेगा।

युद्धके कारण चीजे महँगी हो ही जाती है। हमारे देशमे भी ऐसा ही हो रहा है। सभी चीजोका दाम दिन-व-दिन वढता जा रहा है। शहरोमे रहनेवाले लोगोको वडी कठिनाईका सामना करना पड रहा है। जीवन-निर्वाहकी समस्या वडी कठिन हो गयी है। देहात मे समस्या थोड़ी भिन्न है, मगर देहातके लोग भी हर तरहसे परेशान है। किसानोकी मामूली जरूरतकी चीजें महँगी हो गयी है और हर तरहका जुल्म वढ गया है। मौका पाकर जमीदार अपनी खोयी हुई सुविधाएँ तथा अधिकार फिरसे हस्तगत करने, किसानोको वेदखल करने तथा उनसे तरह-तरहकी वसूलियावियाँ करनेमे लगे है। इस देशकी हुकूमत तो लडाई चलानेकी धुनमे है। उसे लड़ाईके लिए रुपये और सामान इकट्ठा करनेकी परेशानी है और यह सव घूम फिरकर किसानोके ऊपर पडता है। हुकूमत जमीदारोको पकड़ती है और जमीदार किसानोको पकडते है।

जैसे-जैसे युद्ध फैलता और वढता जायगा ये समस्याएँ और भी विकट रूप धारण करती जायँगी। हम सभी लोगोके सामने महँगी और भरपेट भोजनकी सामग्री इकट्ठा करनेका प्रश्न आयेगा। साधारण समयमे भी हिन्दुस्तानमे चावल और गेहूँ काफी नही पैदा होता। हमे हर साल वर्मासे ३५ लाख टन चावल मँगवाना पडता था। करीव-

करीव यही हालत गेहूँकी थी । हमारी गेहूँकी पैदावार काफी नही होती । इधर लड़ाईके लिए हिन्दुस्तानसे गल्ला वाहर भेजा गया और उधर वर्मापर जापानियोका कब्जा हो जानेकी वजहसे जापानसे चावलका आना वन्द हो गया । लेकिन वर्मासे लोग भाग-भागकर लाखोकी संख्यामे हिन्दुस्तान चले आये है । इसके अलावा आवागमनकी कठिनाइयोके कारण खाद्य सामग्री एक स्थान से दूसरे स्थानको भेजना कठिन होता जा रहा है । तो ऐसी हालतमे गल्लेकी कमीका खतरा हमारे सामने पेश होता है और ऐसा मालूम होता है कि वाहरसे हम यह सामान नही मँगवा सकेंगे; शायद देशके अन्दर भी एक जगहसे दूसरी जगह हम ये चीजे मुश्किलसे पहुँचा पावे ।

जव खाद्य सामग्री मांगसे कम पड़ जायगी तो दामका वढ जाना तो स्वाभाविक है । वाजार-भावको रोकनेकी कोशिश की जा रही है । उससे कुछ थोडा काम चलेगा मगर असली सवाल तो और गल्ला पैदा करनेका है । इसके दो उपाय हैं । एक तो यह कि गल्लेकी खेती वढायी जाय और दूसरा यह कि खेतोकी उपज वढायी जाय । ऐसे तो हिन्दुस्तानकी जमीनका एक चौथाई हिस्सा अभी वेकार पड़ा है मगर वास्तवमें इस जमीनपर जल्द-से जल्द जानवरोका चारा ही पैदा किया जा सकता है । गल्ला पैदा करनेके लिए तो इस जमीनको वहुतसारी चीजोकी जरूरत है । इस कारण खेती वढानेका सवाल तो टेढ़ा है ।

और गल्ला कैसे पैदा हो ?

तव रही वात खेतीकी उपज वढ़ानेकी । यह हो सकता है । इसकी कोशिश सभी ओरसे की जा रही है । सरकार इसे अपने ढंगसे कर रही है । 'वही रफ्तार वेढगी जो पहले थी सो अव भी है' । कांग्रेसने भी इस ओर अपनी शक्ति लगानी शुरू की है । ऐसा ख्याल है कि हर हिस्सेके लोग अपनी-अपनी जरूरतके लिए काफी गल्ला पैदा कर ले तो काम वन जाय । इसलिए किसानोसे अपील की जा रही है कि वह अधिक-से-अधिक अन्न पैदा करनेमे लग जायँ ।

वात वहुत दुरुस्त है । इस कठिन समस्याका आजकी हालतमे और कोई हल हो नही सकता । मगर जो तरीका अख्तियार किया जा रहा है वह निहायत ही नाकाफी है । उससे हमारा उद्देश्य नही हासिल होगा । लोगोको इसका ख्याल करना चाहिये कि जिससे वह अपील कर रहे हैं उसके दिल और दिमागपर इसका क्या असर पड़ेगा । आखिर यह भी कोई सोचता है कि एक किसान इस तरह जी-तोड़ परिश्रम करनेकी वात क्यो सोचे ? क्या इसलिए कि यह लड़ाई उसकी लडाई है और ब्रिटिश सरकारके जीत जानेपर उसका भाग्योदय होगा ? यह तो उसकी अक्लमे नही अँटता । सरकारकी ओरसे जो व्यवहार उसके साथ किया जा रहा हे उसका अनुभव करते हुए ऐसी विचारधाराको उत्तेजना नही मिलती । तो क्या इसलिए कि शहरोके वसनेवालोंको वड़ी तकलीफ होगी ? उन्होंने उसके लिए क्या किया है या कर रहे हैं ? या इसलिए कि जो कुछ वह पैदा करे वह मालिकके लगान, महाजनके सूद और तरह-तरहकी माँगोको पूरा करनेमे खत्म हो जाय

और वह वेचारा हाथ टटोलता रह जाय ? ऐसी हालतमें उसके हृदयमें उत्साह कैसे पैदा हो सकता है ?

यह बात सही है कि गल्लेकी महँगीका फायदा उठानेके लिए किसान कुछ-न-कुछ ज्यादा गल्ला पैदा करनेकी ओर जरूर झुकेंगे, मगर इस तरह जो पैदावार बढ़ेगी उससे देशका काम थोडे ही चलेगा। पैदावार काफी वढानी होगी और उसके लिए किसानोको अपनी जान लगा देनी होगी। यह उद्देश्य कैसे हासिल होगा ? सरकार और उसके गुमाश्तोके तरीके तो ऐसे है कि उससे परेशान होकर किसान अपनी जगहसे टससे मस न हो तो कोई आश्चर्यकी वात न होगी अन्देशा तो है कि इस दुर्व्यवहारसे यह गल्लेकी समस्या और भी जटिल न हो जाय, किसान विल्कुल ही विगड न खड़ा हो। चीजोका दाम यो ही वढ गया है, जमीदारो, महाजनो तथा साहूकारोका पुराना रवैया फिर शुरू हो गया है और ऊपरसे सरकारकी ओरसे लडाईमे मदद करनेकी माँग आकर दवाती है। यह तो परेशानी और तवाहीका रास्ता है।

अगर हमलोग चाहते है कि यह मसला सही तरीकेसे तय हो और किसान उत्साहके साथ इस काममे शामिल हो तो हमे उनके हौसले वढानेका उपाय करना होगा। हमे वह सारी वाते करनी होगी जिससे किसानकी खेतीसे और ज्यादा दिलचस्पी हो, जिससे उसके दिलमे अपने खेतकी उपज वढानेकी परेशानी पैदा हो। पुराने रीतिरिवाजो रिश्ते-नाते, नियमो तथा कानूनोका वोझ जवतक उसके ऊपर लदा रहेगा तवतक उससे कोई उम्मीद नही की जा सकती। यही तो समाजवादी कितने वर्षोसे कहते आ रहे है। इसके लिए यह जरूरी है कि कमसे कम फैजपुर काग्रेसमे जो किसान-सम्वन्धी कार्यक्रम कवूल किया गया था उसपर अमल किया जाय। किसानोको जमीदारो, महाजनो तथा साहूकारोकी ज्यादतीसे नजात दिलायी जाय, कर्ज तथा सूदखोरीसे उन्हे वचाया जाय, लगानमे कमी की जाय, वेदखलीका तरीका खत्म किया जाय, किसी न किसी शक्लमे जमीनमे किसानोकी मिल्कियत मान ली जाय और खेतीकी तरक्कीके लिए जरूरी इन्तजाम जल्दसे जल्द किये जायँ। तव कही यह मामला कावूमे आ सकता है। वरना हमलोग यो ही हाथ-पैर पीटते रह जायेगे।

रूस तथा चीनका उदाहरण

आखिर हमे तो अपने देशकी वेकारी और गरीवी दूर करनी ही है, देशको स्वतन्त्र करना है, अपनी स्वतन्त्रताकी रक्षा करनी है और तत्काल लड़ाईकी परेशानियोका सामना करना है। यह सव कैसे होगा ? यह सव कौन करेगा ? अगर हम चाहते है कि हमारे देशकी जनता जोश और हिम्मतके साथ इस काममे पडे तो हमे सामाजिक क्रान्तिके कार्य-क्रमको तत्काल अपनाना पड़ेगा, उसी तरह जैसे चीनको अपनाना पडा है। आखिर हमसे रोज कहा जाता है कि हम रूस और चीनके आदर्शका अनुकरण करे; जिस वहादुरीसे रूसी और चीनी अपनी आजादीके लिए लड़ रहे है उसी तरह लडनेको हम भी तैयार हो जायँ। मगर अपने लोगोमे यह जोश और हिम्मत पैदा करनेके लिए रूस और चीनमें

जो तरीके अख्तियार किये गये उसकी चर्चा नही की जाती । रूसको तो जाने दीजिये । वहाँ तो मजदूर-किसान राज चल रहा है मगर चीनमे १९३७ मे जो प्रयत्न किसानोको सन्तुष्ट करनेके लिए किये गये उनकी ओर हमे ध्यान देना चाहिये । यह उसका नतीजा है कि आज चीनी जनता प्राणपणसे अपने देशके लिए लड रही है और विना अच्छी तैयारीके आज पाँच वर्ष हुए जापान ऐसे सुसज्जित शत्रुका सामना कर रही है ।

जापानके हमलेके पहले चीनके किसानोकी वड़ी बुरी अवस्था थी । हिन्दुस्तानके किसानोकी ही तरह वे जमीदारो, महाजनो तथा साहूकारोंकी गैरवाजिव वसूलियावियों तथा ज्यादतियोसे परेशान थे । सन् १९२६ से लेकर सन् १९३७ तक वरावर किसानोकी ओरसे माँगें पेश की गयी और कुओमिटाग (चीनकी राष्ट्रीय पार्टी) ने उनके लिए नये कार्यक्रम वनाये जिनमे २५ सैकडे लगान घटानेका फैसला किया गया था । सन् १९३७ मे उसने किसानोंको जमीनमे मिल्कियत दिलाने और अधिकसे अधिक लगानकी दर तय करनेका प्रस्ताव स्वीकार किया । मगर जमीदारोकी ताकतके मुकावले यह पूरा कार्यक्रम काममे नही आ सका । फिर भी जो सुधार कर दिये गये उनसे किसानोको थोडा सन्तोष हुआ और वे अपनी सरकारके लिए हिम्मतसे लड रहे है । यह तो भीतरी चीनकी वात है । मगर जो सूवे जापानके कब्जेमे चले गये हिस्सोके पास है वहाँ तो लगानमे २५ सैकड़े कमी करके, सूद ज्यादासे ज्यादा १० सैकड़े तय करके जमीदारो और महाजनोसे किसानोंकी रक्षा की गयी । जो जमीने दो सालसे वेकार पडी थी उन्हे सहयोग कृषिके तरीकेसे काममे लानेके लिए किसानोको दे दिया गया । ऐसी जमीनोमे, खेती करनेके वाद, किसानोको मिल्कियत हासिल हो जाती है । इन सूवोकी हूकूमतोने खेतीके सामान सिचाई वगैरहका इन्तजाम भी किसानोके लिए कर दिया है । जमीदारशाहीकी मनमानी खतम करनेकी पूरी कोशिश हुकूमतकी ओरसे की गयी है, जिसका नतीजा यह हुआ कि सन् १९३८ मे खेतीसे पैदावार ७० सैकड़े वढ़ गयी । दूसरी फसल और भी ज्यादा हुई । जो वात वर्षोंसे नही हो पाती थी वह लडाईके कारण तेजीसे हो गयी ।

इसीका नतीजा यह है कि आज चीनकी जनता इस हिम्मत और दिलेरीके साथ अपनी आजादीके दुश्मनोका मुकावला कर रही हैं । यही तरीका आजादी हासिल करने तथा उसे कायम रखनेका है । कमसे कम लड़ाईके जमानेमे तो देशकी जनताके खिलाफ की जानेवाली काररवाइयाँ वन्द होनी चाहिये । इसे वन्द करवाना तो लड़ाई चलानेवालोके लिए भी जरूरी है । इससे वढकर युद्धविरोधी वात तो और कोई हो ही नही सकती । युद्धसम्वन्धी जो समस्याएँ उत्पन्न हो रही हैं और होगी उन्हे हल करनेके लिए भी जनताको परेशान करनेवाली चीजे वन्द होनी चाहिये । विशेपकर खाद्य-सामग्री उत्पन्न करनेका काम तो इसके विना जोर नही पकड सकता ।

स्वतन्त्रता तथा समाजवादसे ही उद्धार होगा

हमारी आजकी जितनी भी दूसरी समस्याएँ है, जैसे कि आन्तरिक शान्तिका प्रश्न आदि, इनका हल भी इसीपर निर्भर है कि हमारे देशकी जनताका हौसला वढे, वे इस

देशको अपना देश समझे और देशकी रक्षा के लिए पूरी शक्ति और दृढताके साथ प्रयत्न करे। यह हम स्वतन्त्रता तथा समाजवादकी बुनियादपर ही कर सकते है। स्वतन्त्रता तथा समाजवाद हमारे लिए दूरकी वस्तु न होकर तात्कालिक कार्यक्रमके रूपमे आ रहे है। इन्ही आदर्शोको सदा अपने समक्ष रखकर हम आजकी अवस्थामे अपना कर्त्तव्य निर्धारित कर सकते है।

आजकी अवस्थामें काग्रेसने आत्मनिर्भरता तथा आत्मरक्षाका कार्यक्रम देशके सामने रखा है और अपनी स्वयसेवक सेना भी वह फिरसे तैयार कर रही है। काग्रेसने यह भी तय किया है कि वह देशपर होनेवाले सभी प्रकारके आक्रमणोका सामना अहिंसात्मक असहयोगके सहारे करेगी। इस अस्त्रका प्रयोग वह ब्रिटिश हुकूमतके खिलाफ अभी नही करना चाहती। कारण यह है कि इससे तत्काल जापानियोका हौसला बढेगा और हिन्दुस्तानपर आक्रमण करनेका ख्याल उनके दिलोमे जोर पकड सकता है। ससारकी स्वतन्त्रता और शान्तिके ख्यालसे काग्रेस अभीतक ब्रिटिश हुकूमतसे झगड़ा बचाती रही है। काग्रेसने इस मामलेमें बहुत धैर्यसे काम लिया है। मगर इस धैर्यका नाजायज फायदा उठाया जा रहा है। लोग अब भी यह नही समझ पाये है कि आजका हिन्दुस्तान साम्राज्यवादी व्यवस्था बर्दाश्त करनेको अब बिलकुल तैयार नही है। इसके रहते-रहते तो हमारे किसी मसलेका हल नही निकल सकता, बहुत कुछ अडचन ही पैदा हो जाती है। युद्ध-सम्बन्धी समस्याएँ भी और जटिल रूप धारण कर लेती है; उन्हे सुलझाना मुश्किल हो जाता है।

अपनी तात्कालिक समस्याओको सुलझानेके लिए हमे अपने पैरोंपर खडा होना चाहिये। इसका तरीका काग्रेसने बताया है। हमे उत्साह तथा दृढताके साथ काग्रेससे मिलकर काम करना चाहिये। देशमे ऐसा सगठन तथा शक्ति उत्पन्न करनी चाहिये जिससे कि भविष्यकी विपत्तियोका हम सफलतासे सामना कर सके। इसमे काग्रेस सभीके सहयोगकी आशा रखती है और उसे यह सहयोग मिलना चाहिये। आज हमे पूरी एकतासे काम करना है। कम्युनिस्ट ही नही, श्री राजगोपालाचारीकी तरह वयोवृद्ध नेता भी, बुद्धिभेद तथा फूट पैदा करनेमे लगे हुए है। इसका प्रतिकार करना है और राष्ट्रीय शक्तिकी सृष्टि तथा रक्षा करनी है।

समाजवादी क्रान्तिकी रूपरेखा

हमको यह समझ लेना चाहिये कि अब समय आ गया है कि हम प्रचारके स्तरसे ऊपर उठे। इसमे सन्देह नही कि काग्रेससे मजदूर और विद्यार्थियोमे काम करनेका महत्त्व हमारे कारण हुआ है। यह भी निर्विवाद है कि किसानोमे आर्थिक आधारपर काम करनेकी प्रवृत्ति काग्रेसमे हमारे कारण हुई है। यदि हम कहे कि हमारी पार्टीकी नीति और कार्यक्रमका यह फल है कि अगस्त सन् ४२ मे काग्रेसने किसान-मजदूर राज्यकी

स्थापनाको अपना लक्ष्य वनाया तो अत्युक्ति न होगी। किन्तु इन सब क्षेत्रोमें हमारा काम प्रचारात्मक रहा है, पर अब इस प्रकारके कार्यका उतना महत्त्व नही रह गया है। अगस्त-क्रान्तिके फलस्वरूप राष्ट्रीय और क्रान्तिकारी भावना देशके विविध वर्गोमे व्याप्त हो गयी है। भारतकी स्वतन्त्रताका लक्ष्य सवने स्वीकार कर लिया है। आन्दोलन-का विस्तार तो हो गया है, किन्तु अब उसमे गम्भीरता लानेकी आवश्यकता है। यह कार्य व्याख्यानो द्वारा नही हो सकता। इसके लिए क्रान्तिकारी ढंगका रचनात्मक कार्य करनेकी आवश्यकता है। जिस प्रकार हमारे लिए यह जानना जरूरी है कि विना संघर्षके भारतको पूर्ण स्वतन्त्रता नही मिल सकती, उसी प्रकार यह समझना भी जरूरी है कि पुराने ढंगकी तैयारी हमको स्वतन्त्रता नही दिला सकती। गत अगस्त-क्रान्तिका इतिहास मनन करनेसे हमको अपनी दुर्वलता और त्रुटियाँ मालूम हो जायँगी। हमको मालूम हो जायगा कि सफलताके लिए तैयारी और सगठनकी आवश्यकता है तथा क्रान्ति स्वतः सफल नही हुआ करती। यह ठीक है कि वहुजन समाजका क्रान्तिमे सम्मिलित होना क्रान्तिको वल देता है तथा इसी प्रकार क्रान्ति लोकतन्त्रके मार्गसे विचलित नही होती। किन्तु यह भी निर्विवाद है कि क्रान्तिका संगठन सुदृढ होनेसे ही तथा क्रान्तिके संचालकोकी दृष्टि स्पष्ट तथा रचनात्मक होनेसे ही क्रान्ति सफल होती है तथा उसकी आधारशिला मजवूत होती है। आजकी अवस्थामे इस तैयारीमे प्रचारका वहुत निम्न स्थान है। आवश्यकता है क्रान्तिकारी मनोवृत्तिसे रचनात्मक और संगठनात्मक काम करनेकी। अत प्रत्येक क्षेत्रमे कामके ढंगको वदलना आवश्यक है। वडी-वड़ी सभाएँ करना तथा राष्ट्रीय पर्व मनाना ही अवतक हमारा काम रहा है। संस्थाओके पदोके लिए होड़ भी होता रहा है। किन्तु अव आवश्यकता इस वातकी है कि हम जगह-जगह गाँवोके समूहोको क्रान्तिका केन्द्र वनावे जहाँके लोग इस प्रकार सगठित हो कि विदेशी शक्तिको हटाकर अपनी शक्तिको जमा सके और ग्रामकी सस्थाओ द्वारा राज-काज चला सके। मिदनापुर और सताराके उदाहरण हमारे सामने है। हमारा कर्तव्य है कि हम कुछ क्षेत्रोको चुनकर उनमे इस प्रकार काम करे, जिसमे वहाँके रहनेवाले नवीन शिक्षा ग्रहण कर लोकतन्त्रात्मक ढगसे अपने संगठनको चलावे तथा जीवनके कई विभागोमे यथा-सम्भव आत्मनिर्भर हो। इन क्षेत्रोमे प्रौढ़-शिक्षा और सहयोग (Cooperation) को उत्तेजन दिया जाय; ग्राम पचायतद्वारा सव झगडे तय किये जाय, किसान युवकोके स्वयंसेवकोके स्वयसेवक दलका सगठन कर आत्मरक्षाका विधान किया जाय; जमीदार, महाजन तथा पुलिसके अत्याचारोका विरोध करनेकी क्षमता पैदा की जाय, जनताकी राजनीतिक चेतनाकी सतहको ऊँचा किया जाय तथा अन्य सव आनुषगिक कार्य किये जायँ जिनसे हमारे उद्देश्यकी पूर्ति हो। यदि केन्द्रमे क्रान्तिकी भावना न हो, तो यह सव कार्य निर्जीव हो जायँगे। इसी प्रकार मजदूरोमे शुद्ध मजदूर आन्दोलनकी सतहसे ऊपर उठकर हमे मजदूरोको समय आने पर आम हडतालके लिए तैयार करना चाहिये। यह ठीक है कि इसका भी आधार एक सुदृढ मजदूर-आन्दोलन ही होगा, किन्तु हमारा कार्य केवल इस आधारको विस्तृत तथा गम्भीर करनेतक सीमित न होगा। यह तो सुधार-

वादियोका काम है। इसका यह अर्थ नही है कि हम इस कार्यको हेय समझते है। हम इसके महत्त्वको स्वीकार करते है। यह भी ठीक है कि क्रान्ति नित्य नही हुआ करती है तथा सुधारवादी समझा जानेवाला काम ही क्रान्तिका आधार बनता है। किन्तु अब हम एक ऐसे युगमे रह रहे है, जब पुरानी रूढियाँ टूट रही है, जब वर्तमान समाजके आधारमें ही आमूल परिवर्तन करनेकी आवश्यकता है, जब राजनीतिक तथा सामाजिक क्रान्तिके बिना मानव-समाजका कल्याण नही हो सकता है, तब सुधारवादको अपना एकमात्र उद्देश्य बनाना हमारी भूल होगी। आज सुधारके कार्य क्रान्तिके सहायक होकर ही समाजके उपकारक हो सकते है। इसी प्रकार विद्यार्थियोको कार्यकुशल बनाना, उनमे विविध क्षेत्रोमे लोकनायक होनेकी क्षमता उत्पन्न करना तथा वर्तमान समस्याओको समझने और समाधान करनेकी योग्यता उत्पन्न करना हमारा प्रधान कार्य होना चाहिये। इसी प्रकार यदि कांग्रेसको क्रान्तिका उपकरण बनना है तो उसको भी अपनी परिपाटी बदलनी होगी। वास्तविकता यह है कि उसके कामका ढग पुराना पड़ गया है और उससे नये युगकी आवश्यकताएँ पूर्ण नही होती। सच तो यह है कि इन सब वर्ग-संस्थाओपर कांग्रेसका साया पड़ा है और जबतक कांग्रेस नही बदलती, इनके बदलनेमे भी कठिनाई है। किन्तु वे लोग जो संग्रामकी अनिवार्यताके कायल है उनका उत्तरदायित्व इस दिशामे औरोसे कही अधिक है। उनको नया मार्ग दिखाना चाहिये और जो लोग आज उनके कार्यक्रमको सन्देह और अविश्वासकी दृष्टिसे देखते है, उनके सामने कार्यसे, न कि केवल बातोसे अपने कार्यक्रमकी उत्कृष्टता प्रमाणित करनी चाहिये। अत· समाजवादियोका कर्तव्य है कि वह नये कदमको उठावे। जबतक हम अपने दिल और दिमागको न बदलेगे, तबतक कार्य-सिद्धि नही होगी। सफलताकी यही कुञ्जी है। इसके बिना जो भी कार्य किया जायगा, वह क्रान्तिको निकट लानमे सहायक न होगा।

एक कारण है जिससे इस नये ढंगका अख्तियार करना जरूरी है। आज हम देखते हैं कि देशमे नयी-नयी अनेक पार्टियाँ बन रही है। आजके युगमे जब समाजके मौलिक आधारके विषयमे ही तीव्र मतभेद है और सर्व साधारणका यह विश्वास हो रहा है कि आजादी बहुत निकट आ गयी है, पार्टियोकी सख्यामे वृद्धि होना स्वाभाविक है। यह युग समुदायका है, न कि व्यक्तिका। जब आर्थिक क्षेत्रमे समूहकी प्रधानता हो रही है तथा सामुदायिक अर्थ-नीतिका महत्त्व रोज बढता जाता है; तब यह तत्त्व समाजके सब अगोमे व्याप्त होता जाता है। व्यक्ति आज समूहसे अतिरिक्त अपना पृथक महत्त्व नही रखता। समूहके उद्देश्यको चरितार्थ करके ही वह कृतकृत्य होता है। वह मशीनके एक पुर्जेके समान हो रहा है। पुन. राज्यशक्ति सन्निकट है, इस विश्वासके कारण विविध समुदायोका उदय होता है जो अपने-अपने लिए उस शक्तिको प्राप्त करना चाहते है। इनमेसे बहुतेरे युग-धर्मका प्रतिनिधि बननेका दावा करते है और उनकी वाणी भी युगके अनुकूल होती है। यह युग समाजवादका युग है, अत· इनमेसे बहुतोको अपनेको समाज-वादका समर्थक बताना पडता है। अब इनमे यदि विवेक करना है तो वाणी मात्रसे विवेक न होगा। इनकी समस्त चेष्टा, इनका कार्यकलाप देखकर ही इनमे विवेक किया जा

सकता है। वाणीका अनुसरण करनेवाला कार्य ही विशेष हो सकता है। अन्यथा जनतामें संस्थाओंकी वहुलताके कारण वुद्धि-विभ्रम होनेका डर है।

अगस्त-क्रान्तिके वादसे कहीं-कहीं यह भी आवाज सुन पड़ती है कि विचार-धाराकी सर्वथा उपेक्षा कर हमको उन सव शक्तियोंको एकत्र करना चाहिये जो साम्राज्यवादका ध्वंस करना चाहती है। आज जव समाजवाद सर्वत्र सफल या अग्रसर हो रहा है तव उसकी सर्वथा उपेक्षा कर केवल राजनीतिक क्रान्तिकी वात सोचना युगके साथ विश्वासघात करना है। आज यह कहना कि यह मंजिल मध्यम वर्गीय क्रान्तिकी है, वडी भारी भूल होगी। आज एक ही क्रान्तिद्वारा हम छलाँग मारकर किसान मजदूरोंका राज्य कायम कर सकते है और ऐसा तभी हो सकता है जव हमारे सामने राजनीतिक क्रान्तिके साथ-साथ सामाजिक क्रान्तिका भी ध्येय हो। अधिकसे अधिक क्या सम्भव है और किन साधनोंद्वारा सम्भव है, इसका ज्ञान होना अति आवश्यक है। अन्यथा विदेशी सत्ताके हटनेपर वह विविध शक्तियाँ परस्पर ही लड़ जायँगी, जिन्होने मिलकर यह कार्य सिद्ध किया है। भविष्यके सम्वन्धमे इनमे कुछ समझौता होना आवश्यक है। यह भी हो सकता है कि दृष्टिके स्पष्ट न होनेके कारण हम सम्भाव्यसे कमपर ही सन्तोष कर ले।

किन्तु इस कथनसे यह नही समझना चाहिये कि हम सिद्धान्तोंकी वहसमे पड़कर शक्तिको खर्च करना चाहते है और एक जीवित आन्दोलनको साम्प्रदायिक सकीर्णतासे पंगु वना देना चाहते है। हम उन लोगोमे भी नही है जो अपनेको एकमात्र क्रान्तिका ठेकेदार समझते है। हमारे मतमे सच्चा मार्क्सवाद कोई अटल सिद्धान्त (Dogma) नही है। जीवनकी गतिके साथ-साथ यह भी वदलता है। इसकी विशेपता इसका क्रान्तिकारी होना है। मार्क्सकी शिक्षामे समयके अनुसार हेरफेर करना तवतक Revisionism नही है जव तक आप इस परिवर्तनसे उसके क्रान्तिकारी तत्त्वोको सुरक्षित रखते है। वर्नस्टीन (Bernstein) और काट्स्की (Kautsky) Revisionist इसलिए थे कि उन्होंने मार्क्सवादके हीरको ही, उसके तत्त्वविशेषको ही निकालकर फेंक दिया था। क्या लेनिनने मार्क्सवादकी मूल शिक्षामे परिवर्तन नही किया? क्या आज जो कुछ कम्युनिस्ट पार्टियाँ कर रही है, वह मार्क्सवादको वहुतकुछ अंशमें वदलना नही है? आज उनका सर्वत्र जोर केवल लोकतन्त्रपर है। आज क्या वह अन्य दलोके साथ, चाहे वह समाजवादीसे अन्य भी क्यों न हों, सम्मिलित गवर्नमेण्ट नही वना रही है? यदि है, तो कम्युनिस्टोकी इनमे से कुछ वातोको हम समयकी आवश्यकता समझते हैं। किन्तु कम्युनिस्टोका हमारे प्राचीन भाष्यकारोकी तरह प्रायः ंग यह है कि वह सूत्रों को ठीक मानते हुए उनका अर्थ ही वदल देते है। विवादके समय वह मार्क्सके सव सिद्धान्तोको यथार्थ सिद्ध करनेका प्रयत्न करेंगे, किन्तु उनका आचरण इनमेसे कुछके कभी-कभी विरुद्ध भी होगा और तव भी वह यह स्वीकार नही करेंगे कि वह किसी पुराने सिद्धान्तको तोड़ रहे है। धार्मिकोंकी प्रवृत्ति ठीक इसी तरहकी होती है। मूलको गलत कहने से उनके धर्मके शाश्वततत्वको हानि पहुँचती है। किन्तु काल मूलमें परिवर्तन चाहता है और इसलिए इनको मूलको विना वदले उसका नया

अर्थ करना पड़ता है। जीवनमे गति और क्रिया होती है। अत: मार्क्सवाद भी गतिशील और क्रियाशील है और इसलिए उसमे लोच है। किन्तु जव वह स्थिर वस्तु हो जाता है, तव उसका क्रान्तिकारी तत्त्व नष्ट हो जाता है और वह एक प्रकारका राजनीतिक व्याकरण हो जाता है जिसके कठोर नियमोमे किसी प्रकारका हेरफेर नही हो सकता। मार्क्सवादको एक जिन्दा शास्त्र माननेमे ही उसका गौरव है। एक तो यो ही पुराने विचार निरर्थक हो जानेके पीछे भी वहुत दिनोतक जीवित रहते है और जीवनको प्रभावित करते रहते है और इसी कारण आर्थिक पद्धतिके वहुत कुछ वदल जानेपर भी पुरानी विचारशैलीके वदलनेमे वहुत समय लगता है और जव हम कुछ सिद्धान्तोको अटल मान लेगे तव तो हमारा कार्य और भी कठिन हो जायगा।

मार्क्सवाद और उसके तरीकोके सम्वन्धमे यह कहना एक गलतफहमी है कि यह लोकतन्त्रात्मक नही है। यह एक मिथ्या धारणा है। सोवियत रूसकी शासन-प्रणालीके लोकतन्त्रात्मक न होनेके कारण यह धारणा पुष्ट हो गयी है। पुन: राजनीतिक लोकतन्त्रके अपूर्ण होनेके कारण तथा पूँजीवादके युग मे उसकी प्रतिष्ठा होनेके कारण हम उसको 'Capitalist democracy' कहकर उसका वार-वार उपहास करते रहे है। इन्ही कारणोसे लोकतन्त्र एक मखौलकी वस्तु वन गया था। १६ वी सदीका लोकतन्त्र अपूर्ण अवश्य था और अपूर्ण होते हुए भी वह पूर्णताका दावा करता था। इस कारण उसकी कमजोरियोको दिखाना और भी आवश्यक था। २० वी सदीमे लोकतन्त्रकी व्याख्या और विस्तृत होती गयी है और नागरिक स्वतन्त्रता तथा राजनीतिक लोकतन्त्रके साथ-साथ आर्थिक जनतन्त्र भी इसका आवश्यक अङ्ग माना गया है, किन्तु 'Capitalist democracy' का मखौल उडानेसे तथा सोवियत रूसमे राजनीतिक लोकतन्त्रके अभाव से लोकतन्त्रके इस अगको क्षति पहुँची है। इसका वुरा परिणाम यह हुआ है कि वहुतसे ऐसे लोग जो पहले कम्युनिस्ट थे, इस कमीके कारण आर्थिक लोकतन्त्रकी भी उपेक्षा करनेको तैयार हैं। उनके मतमे प्रधान वस्तु व्यक्तिकी स्वतन्त्रता है। इस प्रकार लोकतन्त्रका क्षेत्र दोनो ओरसे सकुचित हो गया है। हमको एक पूर्ण वस्तु चाहिये। दोनो प्रकारके लोकतन्त्रसे ही व्यक्तित्वकी कृतकृत्यता हो सकती है, किन्तु पार्थक्यके कारण समाजमे दलगत प्रभुत्व (Totalitarianism) की वृद्धि हुई है और मार्क्स-वादको क्षति पहुँची है। फैसिज्मके जन्ममे भी Capitalist democracy का विरोध और उसका उपहास सहायक रहा है। उसको अपूर्ण वताना आवश्यक था; किन्तु पूंजीवादके साथ-साथ उस अधरी चीजका मजाक उड़ाना ठीक न था। इस वातमे कम्युनिज्म और फासिज्मकी समानता होनेके कारण कुछ लोगोने दोनोको एक ही कोटिमें रखा है। इग्लैण्डके एक अर्थशास्त्री तो इस कारण समाजवादको ही गुलामीकी ओर ले जानेवाला समझते है। उनके मतमे आर्थिक क्षेत्रमे स्वतन्त्रता रहने से ही अन्य प्रकारकी स्वतन्त्रता सुरक्षित रह सकती है। वह लोकतन्त्रकी दुहाई देकर पूँजीवादको ही जिन्दा रखना चाहते हैं। पुन. कई फासिस्ट राज्योके कायम हो जानेसे नागरिक स्वतन्त्रता तथा राजनीतिक लोकतन्त्रका प्रश्न एक महत्वका प्रश्न हो गया। इस प्रश्नने

अन्य प्रश्नोको थोड़े समयके लिए अभिभूत कर लिया तव कम्युनिस्टोकी भी आँखें खुली और उन्होने फासिज्मका सफल विरोध करनेके लिए राजनीतिक लोकतन्त्रकी रक्षाके नाम पर जगह-जगह संयुक्त मोर्चा वनाया। यही कारण है कि युद्धकालमे यूरोपके कम्युनिस्टोके प्रोग्राम राजनीतिक लोकतन्त्र तथा नागरिक स्वतन्त्रतापर ही जोर देते थे और उनमे समाजवादको स्थान न था तथा आज भी उनका सबसे अधिक जोर लोकतन्त्रपर ही है। किन्तु खेदकी वात है कि सोवियत रूसमे इस ओर कार्य नही हुआ है। यदि वहाँ राजनीतिक लोकतन्त्रकी स्थापना हो जाती तो स्थितिमे महान् परिवर्तन हो जाता। फासिस्ट शक्तियोका विनाश इसी नारेके आधारपर हुआ है। यदि वहुजन इसी आधारपर फासिज्मका विरोध करनेके लिए संगठित हो सकता तो इस आधार की रक्षा करना हमारा कर्तव्य हो जाता है।

पुन: मार्क्सने लोकतन्त्रका तथा प्रत्येकके व्यक्तित्वके पूर्ण विकासका कई जगह उल्लेख किया है और यह भी वताया है कि समाजवादकी स्थापनासे ही यह उद्देश्य पूरा हो सकता है। आज मार्क्सकी इस शिक्षापर विशेप जोर देनेकी जरूरत है। अत· सहज रूपसे यह प्रश्न हमारी विचार-कोटिमे आ जाता है कि यह कार्य कैसे पूरा हो सकता है। इस सम्वन्धमे विचारधाराके नामका प्रश्न आ जाता है। नामका भी अपना महत्त्व है। मार्क्स और एगल्सने जव 'कम्युनिस्ट मैनिफेस्टो' लिखा था तव पुस्तकके नामका प्रश्न उनके सामने था। मैनिफेस्टोकी भूमिकामे इस प्रश्नका विवेचन किया गया है और क्योकि उस समय काल्पनिक समाजवाद (Utopian socialism) का वडा प्रभाव था, इसलिए 'सोशलिस्ट' नाम रखना उचित न समझा गया। इसी कारण संस्थाका नाम भी कम्युनिस्ट लीग रखा गया। किन्तु सन् १८६५ के लगभग हम देखते हैं कि कम्युनिस्ट नामका परित्याग किया जाता है। सन् १८६३ मे लसाल (Lasalle) ने जर्मनीमे एक सोशलिस्ट लेवर पार्टी स्थापित की थी और सन् १८६९ मे वावेल (Babel) और लिब्कनैक्ख्त (Liebknecht) ने एक दूसरी पार्टीकी स्थापना की थी, जिसका नाम 'सोशल डेमोक्रैटिकपार्टी' रखा गया। सन् १८७५ मे दोनो एकमे मिला दी गयो। इन पार्टियोके प्रतिष्ठापक मार्क्सवादी थे और इस समयसे मार्क्सिस्ट पार्टियोका नाम सर्वत्र यही रखा जाने लगा। नाममे यह परिवर्तन क्यो हुआ, यह विचारणीय है। काल्पनिक समाजवादका महत्त्व नष्ट हो चुका था, इसलिए सोशलिस्ट नामका प्रयोग करनेमे अव कोई खतरा नही था। उस समय समाजमे डेमोक्रैट राजनीतिक क्षेत्रमे सवसे उग्र समझे जाते थे और वह लोकप्रिय भी थे। अत· समाजवादियोको वताना था कि उनकी भी राजनीति उग्र है। इसलिए उन्होने इस नामको अपनाया, किन्तु अपनी विशेपताको भी नामसे व्यक्त करना था, इस कारण सोशल डेमोक्रैट नाम रखा गया। अर्थात् वह डेमोक्रैट जो सामाजिक प्रश्नोमें दिलचस्पी लेते है, जिनके उद्देश्यमे राजनीति और समाजनीति दोनोका समावेश है। रूसकी पार्टीका भी यही नाम था, किन्तु जव प्रथम महायुद्धमे रूसको छोड़कर अन्य देशोकी पार्टियोने वास्ले कान्फरेंस (सन् १९१२) के निश्चयके विरुद्ध अपने-अपने देशके पूंजीपतियोका युद्धमें साथ दिया, तव लेनिनने कम्युनिस्ट नामको

फिरसे जिन्दा किया। लेनिनके उद्योगसे कम्युनिस्ट इंटरनेशनलकी स्थापना हुई और रूसकी पार्टी कम्युनिस्ट पार्टी कहलाने लगी।

इस इतिहाससे हमको यह मालूम होता है कि कम्युनिज्म शब्दका कोई विशेष महत्त्व नही है। नाम रखते समय हमको यह विचार करना है कि जो नाम हम स्वीकार करे, वह समयकी माँगको ध्यानमे रखे और वह ऐसा न हो जिससे किसी प्रकारका भ्रम उत्पन्न हो। यदि कोई नाम बदनाम हो चुका है तो उसका परित्याग करना ही उचित है। जिस समय हमारी पार्टीका जन्म हुआ था, उस समय भारतके कम्युनिस्ट कांग्रेसके विरोधी थे और इसलिए सन् १९३० के सत्याग्रह आन्दोलनमे उन्होने मजदूरोको उसमे शरीक होनेसे रोका था। अत: हमे अपनेको उनसे पृथक् करना आवश्यक था। हम इसके भी विरुद्ध थे कि हमारी पार्टी किसी बाहरी सस्थाके अधीन हो। हम किसी अन्तर्राष्ट्रीय सस्थामे शरीक होनेके विरुद्ध कभी भी न थे और आज भी नही है, किन्तु हम इसके लिए तैयार नही कि कोई बाहरी सस्था हमारा नियन्त्रण करे, विशेषकर जब उस सस्थामे एक ही देशका प्राधान्य हो।

इसलिए हमारी पार्टीका नाम कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी रखा गया। सोशल डेमोक्रैट बदनाम हो चुके थे, इसलिए इस नामको हम अपना नही सकते थे। पुन: 'डेमोक्रैट' शब्दके प्रयोगकी अब कोई आवश्यकता भी नही थी; क्योकि डेमोक्रैट शब्द अब उग्र राजनीतिका सूचक नही रह गया था। हमारे देशमे इसका कोई महत्त्व भी न था। हमारे विरोधियोने हमको सोशल फासिस्ट (Social fascist) आदि नामोसे पुकारा, किन्तु वही सन् ४२ की परीक्षामे खरे नही उतरे। उनकी नीति Revisionism कहलायेगी, क्योकि उन्होने, जहाँतक हमारे देशका सम्बन्ध है, लेनिनके साम्राज्य-वाद विरोधी युद्धके नारेको जन-युद्धके नारेमे परिवर्तित कर दिया और इस प्रकार मार्क्स-वादके क्रान्तिकारी तत्त्वका परित्याग किया। सन् ४२ के आचरणके कारण कम्युनिस्ट नाम हमारे यहाँ और भी बदनाम हो गया है।

आज हमारे लिए नामका सवाल फिर उठ गया है। कहा जाता है कि 'कांग्रेस' शब्द निकाल देना चाहिये, क्योकि इसके जोड़नेसे हमलोगोमे एक प्रकारसे यह भ्रम फैलता है कि कांग्रेसने हमको स्वीकार कर लिया है। मैं नही समझता कि ऐसा भ्रम किसीको हुआ है; किन्तु यदि ऐसी आपत्ति की जाती है तो मुझको ऐसा करनेमे कोई एतराज नही है।

इससे भी अधिक महत्त्वका प्रश्न यह है कि आज अपने उद्देश्यको स्पष्ट करनेके लिए समाजवादमे कोई विशेषण लगाना चाहिये या नही। मैं समझता हूँ कि ऊपर हम जिस प्रश्नका विवेचन कर चुके है, उससे 'प्रजातान्त्रिक समाजवाद' इस शब्दके प्रयोगकी आवश्यकता स्पष्ट हो चुकी होगी। 'Social democracy' न कह कर 'Democratic socialism कहना चाहिये। इससे मार्क्सका अभिप्राय ठीक-ठीक व्यक्त होता है तथा Democracy को छोड़कर सच्चे समाजवादकी स्थापना नही हो सकती है, यह बात भी जाहिर हो जाती है। इसका यह अर्थ नही है कि आवश्यकता पड़नेपर मजदूर जमातका अधिनायकत्व थोड़े समयके लिए न स्थापित किया जाय। इसकी सदा

आवश्यकता पड़ेगी, ऐसी कोई बात नहीं है। जिस समय मार्क्सने इसकी चर्चा की थी, उस समय स्थिति सर्वथा भिन्न थी। आज भी सर्वत्र एक ही स्थिति नही है। यदि प्रजातान्त्रिक क्रान्ति किसान-मजदूरके नेतृत्वमे हुई तो बहुत सम्भव है कि अधिनायकत्वकी स्थापनाका प्रश्न न उठे।

रूसमें मजदूर वर्गका अधिनायकत्व न होकर कम्युनिस्ट पार्टीका अधिनायकत्व है तथा वह धीरे-धीरे स्थायी होता जाता है। यदि रूसमे वर्गविहीन समाजकी स्थापना हो चुकी है जैसा कि कहा जाता है तब अधिनायकत्वकी क्या आवश्यकता रह गयी है? अनुभव बताता है कि प्रभुताके मदसे उन्मत्त व्यक्ति और संस्थाएँ अपने अधिकारको स्थिर बनानेका प्रयत्न करती हैं। इसलिए इसकी आवश्यकता आ पड़े तो इस अधिकारको जितने कम समयके लिए बरता जाय, उतना ही अच्छा है और अधिकारको प्रयोग करने-वालोंकी संख्या जितनी बड़ी हो सके, उतना अच्छा है।

श्रेणीसजग किसान और मजदूरोंके नेतृत्वमें की गयी जन-तान्त्रिक क्रान्तिको इसकी कदाचित् आवश्यकता न होगी। मैं नही समझ पाता कि इस सवालको लेकर इतना वाद-विवाद क्यों है? मार्क्सने स्वयं यह नही कहा है कि इस मंजिलसे गुजरना सर्वत्र अनिवार्य है। आज तो इसकी अनिवार्यता और भी कम होती जाती है। यूरोपके कई देशोंमें एक दलकी गवर्नमेण्ट नही बन पायी है। वहाँ समाजवाद और कम्युनिज्मका झगड़ा सर्वत्र चल रहा है। दोनोंका एक संगठनमें मिल जाना कठिन है। यदि दो दल एक कार्यक्रमपर एक मत हो जायें तो कई देशोमे जनतान्त्रिक ढंगसे धीरे-धीरे समाजवादकी स्थापना हो सकती है। दुख इसीका है कि वामपक्षमें कही भी एका नही हो पाता। कहना ही पड़ता है कि कम्युनिस्टोकी नीति इसके लिए जिम्मेदार है।

अतः हम जनतान्त्रिक समाजवादके पक्षपाती हैं। उत्पत्तिके साधनोंको समाजके अधीन करनेसे अधिकारिवर्ग (Bureucracy) का प्रभुत्व बढ़ जाता है। इसकी रोक-थाम करनी होगी। इसके लिए ऐसे नियम काममे लाने होगे जिनसे जनताका उनपर नियन्त्रण रहे। उद्योग व्यवसायके प्रबन्धमे राज्यके अतिरिक्त मजदूरोंका काफी हाथ होना चाहिये। स्वायत्त-शासनकी संस्थाओंद्वारा भी कुछ व्यवसायोंका सचालन हो सकता है। समाजमे रंग, जाति और वर्णका भेद मिटा देना चाहिये। प्रत्येक व्यक्तिको उन्नतिका पूरा अवसर मिलना चाहिये। समाजवादी राष्ट्रको साम्राज्यवादका विरोधी होना चाहिये; आर्थिक तथा राजनीतिक समानताकी प्रतिष्ठा होनी चाहिये।

किन्तु जबतक हम जनतान्त्रिक समाजवादकी स्थापना नही कर पाते तबतक हमारी क्या नीति हो? पार्टीने विधानपरिषद्मे जानेका विरोध किया है, इसीलिए कि वह सर्वाधिकार प्राप्त संस्था नहीं है। इस परिषद्का भविष्य अनिश्चित-सा है। यदि इसने कोई विधान प्रस्तुत किया और वह प्रयोगमे आया तब अपनी नीतिको और स्पष्ट रूपसे निश्चित करनेका समय हमारे लिए आयेगा। किन्तु यह निर्विवाद है कि उस समयसे ही समाजवादी क्रान्तिका युग शुरू होगा जिसे पूंजीवादी जनतान्त्रिक क्रान्तिका बचा हुआ काम भी पूरा करना होगा। उस समय दलोंका नये आधारपर निर्माण होगा। आजकी

अवस्थामें क्रान्तिकारी मनोवृत्तिको जिन्दा रखना, मजदूरोका सुदृढ संगठन बनाना, किसान-मजदूरोका जहाँ सम्भव हो, संयुक्त मोर्चा बनाना तथा किसान-मजदूरोके जमीदार पूंजीपतियोसे जो संघर्ष हो, उनका नेतृत्व करना हमारा काम है। इन सब कार्योको सुसम्पन्न करनेके लिए पार्टीको एक उपयुक्त साधन बनाना अति आवश्यक है। पार्टीके सदस्योकी शिक्षा-दीक्षाकी उचित व्यवस्था करना, उनको विभिन्न कार्योमे नियुक्त करना तथा संगठनको सुदृढ करना हमारा कर्तव्य है।[1]

समाजवादी दल[2]

कामरेड सभापति महोदय और मित्रो,

आज पार्टीके इस पाँचवे वार्षिक अधिवेशनके अवसरपर आप सबका हार्दिक स्वागत करनेका गौरवास्पद कर्त्तव्य मुझे मिला है। हम नौ वर्षके बाद एकत्र हो रहे हैं। इस बीच ससारके सभी भागोमे व्यापक परिवर्तन हुए हैं। इस महायुद्धसे ब्रिटिश साम्राज्य-वादको महान् धक्का लगा है और उपनिवेशोके लोगोमे राष्ट्रीय स्वतन्त्रताके आन्दोलन अत्यधिक सबल हो गये है। राष्ट्रीय तथा क्रान्तिमूलक चेतना एव भावनाएँ जनतामे बहुत द्रुत गतिसे परिपक्व हो रही हैं। हमारे अपने देशमे ही जनतामे अभूतपूर्व चेतना और क्रियाशीलता दृष्टिगोचर होती है यद्यपि दुर्भाग्यवश प्रतिक्रियावादी नेतृत्वमे ये प्राय. हानिकर एवं अवाञ्छनीय दिशाओमे मुडी हुई हैं और इस कारण प्रगतिशील कार्यक्रमके लिए हानिप्रद हुई है, किन्तु इन सब बातोसे यह तो स्पष्ट हो ही जाता है कि जनतामे एक चेतना जागृत हुई है जो इसके पहले कभी नही हुई थी और यदि प्रतिक्रियावादी नेतृत्वको उसके वर्तमान शक्ति और प्रभावके पदसे च्युत कर दिया जाय तो जनता क्रान्तिमूलक सघर्षकी ओर ले जायी जा सकती है।

ससारके अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धोका सतुलन तो नष्ट हो ही गया है साथ ही सभी देशोमे विभिन्न वर्गोके बीचका साम्य भी आलोडित हो गया है। निम्नतर मध्यम-वर्गके बड़े-बडे भागोका आर्थिक दृष्टिसे विनाश-सा हो गया है और अब अपनी माँगोके लिए उन्होने हड़तालके अस्त्रका प्रयोग किया। महायुद्धके कारण यूरोपकी सबसे अधिक क्षति हुई है। इसकी आर्थिक स्थिति छिन्न-भिन्न हो गयी है। विभिन्न दलोका सामाजिक आधार बदल रहा है और प्राचीन दुर्जुआ उदार दल अपने पहलेके प्रभावका बहुत अश खो चुके है। सोशलिस्ट और कम्युनिस्ट दलोकी शक्ति बढ गयी है और एक नवीन उदारचेतादल (Catholic Party) जो समाजके पिछड़े हुए अशका प्रतिनिधित्व करता है आविर्भूत हो गया है।

---

१. 'जनवाणी'—फरवरी १९४७ ई०

२. मार्च १९४७ को कानपुरमे सोशलिस्ट पार्टी कान्फरेन्सके स्वागताध्यक्ष-पदसे दिया गया भाषण।

इन नौ वर्षोंमे प्राप्त अनुभवके आधारपर और हमारे भारतवर्षमें और उसके बाहर महायुद्धके फलस्वरूप जो व्यापक परिवर्तन हुए हैं उन्हे दृष्टिमे रखते हुए हमें अपनी नीति फिरसे निर्धारित करनी है। पूँजीवाद अपने आन्तरिक विरोधोका निराकरण नही कर सकता है और फलतः उसे स्थायी बनानेके सभी प्रयत्नोकी विफलता अवश्यम्भावी है। बृहत् चतुष्टय (The Big Four) को शान्तिकी समस्याका समाधान नही प्राप्त हो सका है। एक दूसरे विश्वव्यापी सघर्षकी तैयारियाँ प्रारम्भ हो चुकी है और राष्ट्रोंकी नये प्रकारकी दलबन्दी हो चुकी है। यद्यपि अभी प्रत्येक देश थका हुआ है, उसे कुछ समयके लिए विश्राम और पुनरुज्जीवनकी बडी आवश्यकता है और हर जगह लोग रोटीके लिए और शान्तिके लिए चिल्ला रहे हैं, तथापि राज्योंके सूत्रधार और नेता फिर अपने पुराने जघन्य व्यापारमे लग गये है।

पूँजीवादके आन्तरिक विरोध ऐसे हैं कि विभिन्न शक्तियोंके पारस्परिक सघर्ष और वैमनस्य स्पष्ट होकर ही रहेंगे चाहे इसमे अपेक्षाकृत जल्दी हो या देर। समाजके आधार बुरी तरह हिल चुके हैं और शासकवर्ग नही जानते कि इन परिवर्त्तित दशाओंमे शासनकार्य कैसे चलावे। उससे नवीन दशाके साथ अपना सामञ्जस्य बैठाते ही नही बनता और उसमें यह क्षमता किंवा दूरदर्शिता है ही नही कि वह नयी विपत्तियोंपर समाजका निर्माण कर सके। आये दिन स्पष्ट होता जा रहा है कि जब तक सम्पत्ति-सम्बन्धी वर्तमान सम्बन्ध आमूल परिवर्त्तित नही किये जाते तब तक ससारमें स्थायी शान्ति नही स्थापित हो सकती। नवीन युगका सूत्रपात हो रहा है और ऐसा प्रतीत होता है कि समाजवादके चरितार्थ होनेकी घडी आही गयी है तथापि कुछ दुर्निवार प्रत्यय हमारे मार्गमें अब भी विद्यमान है जिनका अतिक्रमण आवश्यक है इसके पहले कि संसार लक्ष्यतक पहुँच सके। जहाँतक सिद्धान्तो और आदर्शोका सम्बन्ध है हमलोगोको इस विचारसे लोहा लेना है कि समाजवाद और गणतन्त्र एक साथ नही रह सकते। बहुतसे लोग तो यहाँतक कह गये हैं कि सोशलिज्म दासतामूलक समाजका मार्ग प्रशस्त करता है। एक अग्रेज अर्थशास्त्रीका मत है कि व्यक्तिगत स्वतन्त्रता ऐसे ही समाजमे अक्षुण्ण रह सकती है जहाँ आर्थिक स्थिति राज्य अधिकारके जालसे मुक्त रहती है। ये महाशय व्यक्तिके स्वतन्त्र प्रयासके समर्थक हैं और चूँकि सोशलिज्मका सिद्धान्त है कि उत्पादन और वितरण व्यवस्थामूलक हों उनका कहना है कि ऐसे कार्यक्रममे आवश्यक स्वतन्त्रताकी रक्षा नही हो सकती। सोवियत रूसमे समाजवादकी जो मिट्टी पलीद की गयी है और फलतः वहाँ राजनीतिक स्वतन्त्रताका जो अभाव हो गया है इस कारण भी यह विश्वास अभिसिञ्चित हो गया है कि व्यवस्थामूलक सुनिश्चित आर्थिक कार्यक्रम अवश्यमेव दलगत प्रभुत्व (Totalitarianism) और नौकरशाहीकी स्थिति पैदा कर देगा।

यह दुर्भाग्यकी बात है कि रूसकी स्थितिको ही सोशलिज्मका नमूना मानकर यह अनुमान किया जाता है कि सोशलिज्म कैसा होगा और इसी अनुमानको आधार मानकर आलोचना की जाती है। जिन लोगोकी कम्युनिज्ममे आस्था रूसकी राजनीतिक और सामाजिक स्थितिके कारण छिन्न-भिन्न हो गयी है और जो अब व्यक्तिगत स्वातन्त्र्य और

मानवके अधिकारोंको प्रधानता देने लग गये हैं वे प्राय स्टालिनके दलके षड्यन्त्रोको इस स्थितिका कारण वताते हैं। साथ-ही-साथ ऐसे भी लोग हैं जो इन विषयोंमें अधिक गम्भीर विचार रखते हैं और जिनका मत है कि व्यवस्थामूलक कार्यक्रम व्यक्तिगत स्वातन्त्र्य-को ह्रास पहुँचावेगा। इन दोनो ही दृष्टिकोणोमे सत्यांश है, किन्तु यदि गणतन्त्रीय कार्यक्रमका सूत्रपात कर दिया जाय तो इस खतरेसे वचा जा सकता है। व्यवस्थाके मूलमें कोई ऐसी आन्तरिक वात नही है जिसके कारण मानवके अधिकारोके लिए कोई खतरा (भयावह स्थिति) उपस्थित हो जाय। किसी भी राज्यकी आर्थिक स्थितिकी ऐसी व्यवस्था की जा सकती है कि इस प्रकारके कार्यक्रममे सन्निहित खतरे न्यूनतम हो जायँ। गणतन्त्रीय भावनाओको राज्यव्यवस्था-प्रवन्धकी सीमाके वाहर भी ले आना, अर्थसम्बन्धी व्यस्थाका विकेन्द्रीकरण, ऐसी गैर-सरकारी संस्थाओकी स्थापना जो खास-खास उद्योग-धन्धे चलवाये और स्वतन्त्र मजदूरवर्गके सघटनोद्वारा समाजकी आर्थिक व्यवस्थाका नियमन इत्यादि ऐसे उपाय हैं जिनसे खतरा दूर किया जा सकता है।

एक वात और है जिसके कारण कम्युनिज्मकी निन्दा की जाती है। कम्युनिस्ट पार्टीके आचरण, उसके षड्यन्त्र और द्विविधामूलक व्यापार, उसकी सुस्पष्ट अवसरवादिता और दूसरोके साथ व्यवहारमे नैतिक मान्यताओकी नितान्त अवहेलनाओंके कारण सोशलिज्म वदनाम हो गया है। जव कभी कम्युनिस्ट पार्टीने दूसरी राजनीतिक पार्टियोके साथ कन्धासे कन्धा मिलाया है तो उसने अपने लाभ और सुभीतेके लिए ही ऐसा किया है और जव कभी इसने दूसरी सस्थाओके साथ सम्वन्ध जोड़नेका प्रयत्न किया है तो उसका उद्देश्य या तो उसे हथिया लेनेका रहा है या उसे छिन्न-भिन्न कर देनेका। उनके सिद्धान्त और चालोंमे जो कौतूहलपूर्ण सतत परिवर्तन हुआ करते हैं उनके साथ चल सकना दुरूह वात है। यह सत्य स्वीकार ही करना पड़ेगा कि सोशलिज्मके उद्देश्यको कम्युनिस्ट दलोके सिद्धान्तशून्य व्यापार और उनकी सन्दिग्ध नैतिकताके कारण अत्यन्त हानि पहुँची है। मुझे तनिक भी सन्देह नही है कि यदि इनके व्यवहारका मापदण्ड दूसरे प्रकारका हुआ होता तो वामपक्षीय एकता सम्भव हो गयी होती।

विचारणीय वात है कि यद्यपि वे आज गणतन्त्रका समर्थन करते है तथापि यही प्रतीत होता है कि कुछ सामयिक सुविधाएँ प्राप्त करनेकी उनकी यह एक चालमात्र है। वह जो कहते हैं वही उनकी सच्ची भावना नही रहती यह तो इसी वातसे सिद्ध हो जाता है कि सोवियत रूसमे जनताको राजनीतिक स्वतन्त्रता देनेके लिए कुछ भी नही होता। वल्गेरियाका सुप्रसिद्ध कम्युनिस्ट डिमीट्राफ तो अपनी पार्टीसे छिपाता ही नही कि यह सव कुछ इतर उद्देश्योकी सिद्धिका छद्म उपाय है। उसके शब्द हैं "अभी तो कम्युनिस्ट पार्टीको एक साधारण गणतन्त्रीय दलका ही रूप धारण करना है। ऐसे कम्युनिस्ट जिन्हें इस प्रकारके द्व्यर्थक दृष्टिकोणके कारण कष्ट पहुँचता है या तो मार्क्सवादी ही नही हैं या वे केवल उत्तेजनावादी (Provocateurs) हैं।" भला ऐसे वक्तव्यके समक्ष गैरकम्युनिस्टोसे कैसे आशा की जा सकती है कि वे उनके साथ मिलकर कोई कार्यक्रम वनावे।

ससारके कम्युनिस्टोको फासिज्म और युद्धके खतरेके विरुद्ध जनतामे स्वतन्त्रता और गणतन्त्रके नामपर मोर्चे बनाने थे । युद्धकालमे कम्युनिस्ट यूरोपमे प्रतिरोधात्मक आन्दोलन चलाते थे उनके सम्बन्धमे अपने कार्यक्रममे कम्युनिज्मका नामतक नही लेते थे । तब वे केवल डिमोक्रेसीका दम भरते थे । असख्य जनसमूहको स्वतन्त्रता और गणतन्त्रके नाम-पर फासिज्मके विरुद्ध कार्यरत किया गया और अब जब युद्ध समाप्त हो गया है और फासिस्ट शक्तियोका दम टूट गया है तो युक्तिसंगत यही बात है कि इन उदात्त विचारोकी महान् सम्भावनाओको चरितार्थ किया जाय और यह बात असंशयात्मक रूपसे सुस्पष्ट कर दी जाय कि हम लोग गणतन्त्रात्मक समाजवादके पक्षमे बद्धपरिकर है ।

जहाँतक कि कांग्रेसके समाजवादियोंका सम्बन्ध है हमलोग सदैव जनतन्त्र और स्वतन्त्रताके ही लिए आरूढ रहे है । हमने सदैव एक स्वयसिद्ध बातके तौरपर यह माना है कि समाजवाद ही पूर्ण जनतन्त्र है और यह कहा है कि समाजवाद एक सिद्धान्त है जो मानव व्यक्तित्वके स्वतन्त्र विकासपर उतना ही जोर देता है जितना आर्थिक स्वतन्त्रता पर । सोवियत रूसने मानव-क्रिया-कलापके विभिन्न क्षेत्रोमे जो सिद्धियाँ प्राप्त की हैं उनके हमलोग सदैव प्रशंसक ही रहे है, पर हम उसके मित्र भावसे आलोचक रहे है और खेदके साथ यह कहते आये है कि उसने राजनीतिक स्वतन्त्रताके प्रश्नकी उपेक्षा की है ।

जो लोग यह समझते है कि मार्क्सके विचार (Teachings) जनतन्त्रके विरुद्ध है, वह गलती करते है । मार्क्स अपने युगका एक महान् मानवतावादी था । विचार प्रकट करनेकी स्वतन्त्रता (freedom of expression) का अधिकार वह मनुष्यकी सम्पत्तिमे सबसे पवित्र सम्पत्ति मानता था । कितने जोरके साथ उसने व्यक्तिगत स्वतन्त्रताका समर्थन किया था, वह सुविदित है । उसका कम्युनिज्म पूर्ण जनतन्त्रको स्वीकार करके चला था । यही कारण था कि वह यह विश्वास करता था कि जन-तन्त्रवादी इंगलैण्ड और अमेरिकामे समाजवाद हिंस्र उपायोका उपयोग किये बिना ही स्थापित हो जायगा । उसका विचार था कि मनुष्योपर प्रतियोगिता एव सम्पत्तिके कारण जो नियमन और रोक-थाम चलाते है, वही सब अनर्थोका मूल है । एंजिल्सने कम्युनिज्मकी यही व्याख्या की कि यह निम्नस्तरकी जनताकी मुक्तिके लिए आवश्यक साधनोका सिद्धान्त है । निश्चय है कि मार्क्स किंवा एंजिल्स ऐसे समाजवादका समर्थन कभी न करते जो जनताके लिए कामकी व्यवस्था करनेके साथ ही उसे दासत्वकी शृङ्खलामे बाँधे और उसकी सच्ची स्वतन्त्रताका अपहरण करे ।

मार्क्सके मतानुसार मानवके विकासक्रममे सामन्तशाही और पूंजीवादकी स्थितिमे व्यक्ति मानव रह ही नही गया था और निम्न स्तरकी जनतामे क्रान्ति कराकर ही व्यक्तिके लुप्त अस्तित्वका पुनरुद्धार किया जा सकता है । उसका यह विचार था कि निम्नवर्गका व्यक्ति ही मानवताका प्रतिनिधि है और उसकी विजयसे ही मानवताकी भावनाकी विजय होगी । अपनी व्यवस्थामे उसने सामाजिक मानवको केन्द्रस्थानमे रखा था । मार्क्सद्वारा स्थापित कम्युनिस्ट लीगके मुख-पत्र, कम्युनिस्ट जर्नलकी कोलोके कम्युनिस्ट ट्रायलवाली प्रति (सितम्बर १८४७) मे छपी हुई इस बातसे बहुत बातोका पता चल जाता है—'

"हमलोग उन कम्युनिस्टोंमें नही है जो व्यक्तिकी स्वतन्त्रताका नाश करनेके लिए वद्ध परिकर है, जो विश्वको एक विशाल वैरक अथवा कारखानेमे परिणत कर देना चाहते है। कुछ ऐसे कम्युनिस्ट भी है जो नि सकोच व्यक्तिगत स्वतन्त्रताको अस्वीकार कर देते है। ऐसा करनमे उनके विवेकको कोई ठेस नही लगती। ये लोग चाहते है कि व्यक्तिगत स्वतन्त्रताको ससारसे वहिष्कृत कर देना चाहिये, क्योकि इसे वे पूर्ण सामजस्यके लिए व्यवधानस्वरूप समझते है। किन्तु हमलोग स्वतन्त्रताके वदले वरावरी नही चाहते। हमलोगोको विश्वास है कि किसी भी सामाजिक व्यवस्थामे वैसी पूर्व स्वतन्त्रता नही मिलेगी जैसी ऐसे समाजमे जो सामाजिक स्वामित्व (Communal ownership) पर आधारित हो।"

कहा जा सकता है कि जव मार्क्स स्वतन्त्रता और जनतन्त्रका समर्थक था तो उसने निम्नवर्गकी तानाशाही (dictatorship) की चर्चा क्यो की। हमलोगोको स्मरण रखना चाहिये कि वह इस तानाशाहीकी कल्पना केवल ऐसे देशोके लिए करता था, जहाँ जनतन्त्रीय व्यवस्थाएँ और परम्पराएँ दृढतासे स्थापित नही थी और जहाँ पूँजीपतियो-का दल तुरन्त ही राज्यकी सारी सैनिक शक्तिका प्रयोग अपने प्रतिद्वन्दियोके विरुद्ध कर सकता है। फिर इस तानाशाहीकी कल्पना केवल अल्पकालके लिए की गयी थी, साथ ही यह मजदूर जनताकी गणतन्त्रीय तानाशाही होती न कि किसी दलविशेषकी।

मार्क्स-दर्शनका आविर्भाव इस अभिप्रायसे नही हुआ था कि पूँजीवादके अन्तर्गत व्यक्तिगत स्वतन्त्रता किस प्रकार सुनिश्चित वन गयी है उसका निराकरण कर दिया जाय, वल्कि इस उद्देश्यसे कि जनतन्त्रकी भावना और स्वतन्त्रताको पूर्ण वना दिया जाय और उसे साधारण मानवके लिए प्राप्य वना दिया जाय। मार्क्सने १९ वी शताव्दीके आर्थिक मानवकी भर्त्सना यह कहकर की कि वह अमानुषिक एव पाशविक हो गया है, क्योकि पूँजीवादी व्यवस्थामे पडकर साधारण मानव दासताको प्राप्त हो गया है और ऐसा हो गया है कि उसे जड़ पदार्थोकी भाँति प्रयोग किया जा सकता है।

जनतन्त्रकी वह भावना, जिसका सम्वन्ध पूँजीवादके उत्थानके साथ जोड़ा जाता है, अपूर्ण थी, क्योकि वह केवल राजनीतिक क्षेत्रतक ही सीमत थी। किन्तु २० वी शताव्दीके प्रारम्भसे धीरे-धीरे उसका विस्तार होता रहा है और उसके अन्तर्गत आर्थिक जनतन्त्रवाद भी आ गया है। कम्युनिस्टोके लिए यह आवश्यक था कि वे जनतन्त्रकी पूँजीवादी भावनाकी कमी और अनुपयुक्तताका दिग्दर्शन कराते; किन्तु उदार परम्पराके लिए अनादरकी भावना रखना उनकी वहुत वड़ी भूल थी। अपने प्रचारसे उन्होने जनतन्त्रीय सस्थाओके मूलको कमजोर वना दिया। इस प्रकार कम्युनिस्टोने उदार परम्पराके नाशमे सहायता पहुँचायी, इसपर आगे चलकर फासिस्टोने भी उसी प्रकार प्रहार किया और इस प्रकार फासिज्मके सूत्रपातका मार्ग प्रशस्त कर दिया : इस वड़ी भूलका वहुत वड़ा मूल्य सोशलिज्मको चुकाना पडा। जर्मनीमे फासिज्मकी चमत्कारिक उन्नति और फासिस्ट विचारोका विश्वव्यापी प्रसार मानवताकी सभी प्रकारकी उन्नतिके लिए एक खतरा हो गया—सोशलिज्मकी तो वात ही क्या !

प्रजातन्त्र और सोशलिज्मके एक प्रश्नपर ही अपने विचार प्रकट करनेकी स्वतन्त्रता मैंने ली है, क्योंकि इस समयका यह एक मौलिक प्रश्न हो गया है। हमे जनतन्त्र और स्वतन्त्रतामे अपना विश्वास फिरसे घोषित करना है। आज इस घोपणाकी आवश्यकता सबसे अधिक है, क्योकि यदि विगत महायुद्धने कोई बात प्रमाणित की है तो वह यह है कि साधारण मानव अपने लिए काम और उसे करनेके लिए अनुकूल और अच्छी परिस्थिति सुनिश्चित कर लेनेके बाद निश्चय ही अपने लिए स्वतन्त्रता और जनतन्त्रकी माँग करेगा ताकि वह पूर्ण रूपसे अपना विकास कर सके।

सम्मेलन तो अपनी नीतिके विपयमे एक सुस्पष्ट घोपणा करेगा ही और पार्टीका संगठन-सम्बन्धी कार्यक्रम भी निर्धारित करेगा ही।

एक बात और है जिसकी चर्चा अपना वक्तव्य समाप्त करनेके पूर्व मैं कर देना चाहूँगा—इस समय कुछ दलो द्वारा यह पुकार हुई है कि वामपक्षियोको एक हो जाना चाहिये। उनकी माँग है कि वामपक्षी दलोंको चाहिये कि एकत्र होकर एक संयुक्त मोर्चेका निर्माण करे। इसमे सन्देह नही कि यदि सभी क्रान्तिमूलक समाजवादी शक्तियाँ एकीभूत हो जायँ तो वह प्रतिक्रियावादी मोर्चेके विरुद्ध एक अभेद्य शक्ति हो जायगी। किन्तु खेदकी बात है कि सुविदित कारणोसे, जिनकी ओर ऊपर संक्षेपमे संकेत किया जा चुका है, निकट भविष्यमें ऐसा एकीकरण सम्भव नही प्रतीत होता। हम कांग्रेसके सोशलिस्ट अपने तई बहुत हानि उठाकर भी इस देशमे सोशलिस्ट ऐक्य स्थापित करनेका अधिकसे अधिक प्रयत्न कर चुके है और अन्तमे हमे पता चला है कि हमलोग केवल मृगतृष्णाके फेरमे पड़े रहे है और जो लोग हमारे साथ मिलनेकी उत्सुकता प्रकट कर रहे थे, वे केवल अपनी पार्टीके सुभीतेके लिए वैसा कर रहे थे। आन्दोलनको सबल बनाना उनका उद्देश्य नही था। आश्चर्य तो यह है कि भारतवर्षमे ही यह बात नही हुई। वामपक्षियोमे एकताका अभाव एक सर्वव्यापी रोग है। कम्युनिस्टोकी व्यवहार-व्यवस्थामे कोई महत्त्वपूर्ण कमी है जिसके कारण सोशलिस्टोमे इतना पारस्परिक अनैक्य है। जबतक इनमे आमूल परिवर्तन नही हो पाता, ऐक्यकी कोई आशा नही। सभी वामपक्षियोके लिए और विशेषत. कम्युनिस्टोके लिए मैं कम्युनिस्ट-लीगके मुख-पत्र (सितम्बर १८४७) मेसे निम्नांकित अश देना चाहता हूँ —

'यहाँ हमे थोडे शब्द निम्नवर्गके केवल उनलोगोसे कहना है जो अन्य राजनीतिक अथवा सामाजिक दलोमे है। हम सबको आजके समाजसे लोहा लेना है, क्योकि यह हमे दबाता है और दीनता और घृणित दशामें सडने देता है। खेद है कि यह समझने और आपसमे ऐक्य स्थापित करनेके बजाय हम आपसमे लडने झगड़नेके लिए ही उद्यत रहते हैं, जिससे हमे दबानेवालोको आनन्द मिलता है। ऐसी जनतन्त्रीय राज्यव्यवस्थाके प्रतिष्ठापनके निमित्त जिसके अन्तर्गत प्रत्येक दल वक्तव्यो एव लेखोद्वारा अपने आदर्शोके लिए बहुमत अपने पक्षमे करनेमे समर्थ हो सके, एक ही व्यक्तिकी भाँति हम सब एक हो जानेके बजाय आपसमे ही इस बातके लिए झगड़ते रहते है कि जब हमलोग विजयी हो जायँगे तब क्या होगा और क्या नही होगा।

'यदि हमें ठोस शक्ति प्राप्त करनी है तो विभिन्न दलोके मुखियोका भिन्न विचारवालोपर कटु आक्रमण करना बन्द करना होगा और विरोधी सिद्धान्तोके माननेवालोपर गालियोकी बौछारके व्यापारका अन्त करना होगा।"

एक बार फिर हम आपलोगोका इस महत्त्वपूर्ण सभामे योग देनेके निमित्त स्वागत करते है और आपसे प्रार्थना करते है कि हमारी कमियो और त्रुटियोपर ध्यान न दे।

किसानोंका उद्धार कैसे हो ?[1]

जमीदारी प्रथाका अन्त करके जमीनपर उसके जोतनेवालेका अधिकार स्थापित किया जाय, यह हमारे किसान-आन्दोलनकी सबसे प्रमुख माँग रही है। इस माँगको काग्रेसने सिद्धान्तरूपमे स्वीकार कर लिया है और हमारे प्रान्तमे इस माँगको व्यावहारिक रूप देनेके सम्बन्धमे रूपरेखा तैयार करनेके लिए एक सरकारी कमेटी भी बैठायी गयी है। खेती ही हमारे देशका मुख्य उद्योग-धन्धा है। इसमे देशके लगभग ७३ फी सदी लोग लगे हुए है। बिना जमीदारी प्रथाका अन्त हुए इस उद्योग-धन्धेकी तरक्की नही हो सकती, किसान जमीनको अपनी समझकर उसकी पैदावार बढानेके लिए हर तरहका त्याग करनेके लिए तैयार नही हो सकता, भूमिपर नये साधनोका प्रयोग करनेकी प्रेरणा उसे नही मिल सकती। खेतीकी उन्नतिके लिए जमीदारी प्रथाका अन्त होना और खेती परसे दूसरे उन सभी बीचके लोगोको हटाना, जो खेती न करते हुए भी उसकी पैदावारके अंशको हड़प जाते है, बहुत आवश्यक है।

जमीदार प्रथाका अन्त करनेकी किसान-आन्दोलनकी माँगको स्वीकार करके भी प्रान्तीय सरकार इस कार्यको पूरा करनेमे बड़ी सुस्तीसे काम ले रही है। महायुद्धकी समाप्ति होनेपर पश्चिमी यूरोपके अनेक देशोमे जमीदारी प्रथाका अन्त किया गया। किन्तु इन देशोमे इस कामको एक वर्षमे ही पूरा कर डाला गया। हमारे यहाँ अभी इस बातका निश्चय नही हो पाया कि जमीदारोको मुआवजा कितना दिया जाय।

मुआवजेका सवाल

जहाँतक समाजवादियोका सम्बन्ध है, वे सिद्धान्तत मुआवजा दिये जानेके विरोधी है। हमारे देशमे मुआवजा देनेका प्रश्न सिद्धान्तकी दृष्टिसे इसलिए भी नही उठता कि जमीदारी प्रथा हमारे देशकी अपनी प्रथा न होकर विदेशी शासनद्वारा अपनी सुविधा और सहायताके लिए खड़ी की गयी प्रथा है। अपने देशमे प्राचीन कालमे ऐसे लोग तो होते थे जो एक खास इलाकेकी मालगुजारी वसूल करके सरकारको दे देते थे और बदलेमे सरकारकी ओरसे उन्हे उसका एक अंश कमीशनके रूपमे मिल जाया करता था, किन्तु वे भूमिके

---

१. द्वितीय बनारस जिला किसान-सम्मेलनके अध्यक्ष-पदसे १० अप्रैल १९४७ को जो भाषण किया था उसके प्रमुख भागका सारांश है।

अधिकारी कभी नही स्वीकार किये जाते थे। उसका अधिकारी तो किसान अथवा ग्राम पचायतें ही होती थी। सम्राट् अशोकने जव स्वयं अपनी सीर और खुदकाश्तके अतिरिक्त अन्य भूमि भी भिक्षुओको दानमे देदेनेकी इच्छा प्रकट की तो उन्हें मन्त्रियोंने वताया कि उन्हें ऐसा करनेका अधिकार नही है।

हमारे प्रान्तके अवधके तालुकेदारोने तो जमीदारी पानेके लिए एक कौडी भी खर्च नही की। सन् १८५७ के स्वाधीनता-सग्राममे विद्रोही जमीदारोकी जमीने छीनकर अग्रेजोकी मदद करनेवालोको दे दी गयी। अवधके तालुकेदारोकी जमीन इसी प्रकार मिली हुई है। अत. न्यायकी दृष्टिसे उन्हे मुआवजा पानेका कोई हक नही है। जव कि जमीदारी प्रथाका अन्त करनेके लिए सरकारको कानूनन् मुआवजा देना ही पड़ेगा ऐसी हालतमे यह रकम थोडीसे-थोडी होनी चाहिये।

जमींदारोंकी धाँधली

सरकारकी ओरसे जमीदारी प्रथाका अन्त करनेमे जो सुस्ती दिखायी जा रही है उसके कारण किसानोपर इस समय एक जवर्दस्त आफत आयी हुई है। जमीदार यह सोचते है कि जमीदारी तो जानेवाली है इसलिए इस समय उसके जरिये ज्यादासे ज्यादा जो भी वसूल किया जा सके वसूल कर लिया जाय। साथ ही वे नजराना लेकर तालावो, चारागाहो और सार्वजनिक रास्तोकी जमीनको भी जोतपर उठा रहे है जिससे आगे चलकर अपनी जमीदारीकी खेतीके वढे हुए रकवेके मुताविक वे मुआवजेकी भी अपेक्षाकृत वड़ी रकम वसूल कर सके। शिकमी काश्तकार वड़ी तादादमे वेदखल किये जा रहे है। प्रान्तीय सरकारका कर्तव्य है कि वह जल्द-से-जल्द जमीदारी प्रथाको समाप्त करे। साथ-ही इस वीच जमीदारोद्वारा जो जुल्म हो रहे है उनसे किसानोकी रक्षा होना भी अत्यन्त आवश्यक है। यह प्रसन्नताकी वात है कि प्रान्तीय सरकारने इस आशयका एक कानून पास किया है कि जिन जमीदारोके अत्याचारोसे किसान वहुत तंग आ गये है उनकी जमीदारी सरकार 'कोर्ट आव् वार्ड्स' की देख-रेखमे ले ले। आशा है, यह कानून केवल कागजी ही नही रह जायगा, सरकारकी ओरसे कडाईके साथ इसको पालन करनेका प्रवन्ध किया जायगा। जगलो, चारागाहो, सार्वजनिक मार्गो आदिकी रक्षाके लिए भी शीघ्र एक कानून वनाये जानेकी आवश्यकता है।

जमींदारोंके अन्तके पश्चात्

जमीदारी प्रथाका अन्त हो जानेसे ही किसानोकी वर्तमान दुरवस्थाका अन्त नही हो जायगा। जमीनपर वढ़े हुए वेहद भारको हटाने तथा उसकी पैदावार वढ़ानेके लिए सरकार तथा स्वयं किसानोंको साहसपूर्ण कदम उठाने होगे। उद्योग-धन्धोका उचित विकास न होनेके कारण भूमिपर भार वेहद वढ़ गया है और वह छोटे-छोटे असंख्य अलाभकर टुकड़ोमे वँट गयी है। भूमिपर इस भारको दूर करनेके लिए सरकारको उद्योग-धन्धोंका तेजीसे विस्तार करनेकी नीति अपनानी चाहिये। छोटी-छोटी टुकड़ियोमे वँटी हुई जमीन-को लाभकर वनाने और उससे पूरा फायदा उठानेके लिए हमे चकवन्दीकी नीति अपनानी

पड़ेगी। चकबन्दी हो जानेपर भी एक परिवारके हिस्सेमे जमीनका जितना वडा टुकड़ा आता है उसपर आधुनिक यन्त्रोका लाभकर प्रयोग नही किया जा सकता। खेतोमे आधुनिक यन्त्रोके प्रयोगके लिए वडे-वडे खेतोका होना जरूरी है। अत. आवश्यकता इस बातकी है कि समूचे गाँवके लोग मिलकर सहकारी कृषिकी प्रथाको अपनावे, सबकी जमीन एक साथ जोती और वोयी जाय, फसलके काटनेके वक्त क्षेत्रफलके हिसाबसे पैदावार बाँट ली जाय। सिंचाईके लिए सरकारको विजलीका प्रवन्ध करना चाहिये। वहुतसे किसान आज कर्जके भारसे वुरी तरह पिस रहे हैं। सरकारका कर्तव्य है कि वह उन्हे सस्ते दरपर सूद देनेवाली सरकारी वैंक खोलकर साहूकारी-पाशसे मुक्त करे। किसान सस्ती दरपर अच्छी खाद और बीज वगैरह प्राप्त कर सके और अपनी पैदावारका उन्हे पूरा मुआवजा मिल सके इसके लिए जरूरी है कि बीचके दलालोको दूर किया जाय तथा खरीद और बिक्रीका सारा कार्य सहकारी समितियोके जरिये किया जाय। इस प्रसगमे किसानोको प्रान्तीय सरकारके गाँव हुकूमत बिलके द्वारा जो अधिकार मिलनेवाले है उनका पूरा इस्तेमाल करना चाहिये।

किसान-सभाओंका कार्य

अबतक किसान-सभाओका कार्य मुख्यत. प्रचारात्मक रहा है, वे किसानोकी शिकायतोको सरकारके सामने रखकर उन्हे दूर करनेके लिए आन्दोलन करती रही हैं। किन्तु अब जब कि जमीदारी प्रथाका अन्त निकट है और राज्यसत्ता भारतीयोको हस्तान्तरित होनेवाली है तब उन्हे किसान-मजदूर राज्यकी स्थापनाके ध्येयको लेकर रचनात्मक कार्यमे लगना है। जमीदारोके लठैतो तथा साम्प्रदायिक उपद्रवकारियोसे किसानोकी रक्षाके लिए ग्राममे किसान-सेना अर्थात् स्वय सेवक दलके संघटनकी आवश्यकता है।

सबसे वड़ी बात किसान कार्यकर्ताओको जो करनी है वह है किसानोको आपसमे मिल-जुलकर काम करना सिखाना। गाँवके मुकदमोका निपटारा, गाँवकी शिक्षाका प्रवन्ध, किसानोकी आवश्यकताकी वस्तुओकी खरीद और बिक्री इन सबको किसानोको अपनी पचायत और सहयोगसमितियोके द्वारा करना चाहिये। किसान कार्यकर्ताओका कर्तव्य है कि वे रूस, अमेरिका आदि भारतके बाहरी देशोमे होनेवाले कृषि-सम्वन्धी प्रयोगोका अध्ययन करे और मालूम करे कि उनसे भारतीय किसान क्या शिक्षा ग्रहण कर सकते हैं।

किसान-सभाओको एक ओर सरकारपर जोर डालकर उससे किसानोके हितके कानून बनवाना है, दूसरी ओर स्वय किसानोकी मनोवृत्ति बदलनी है। अमेरिकाके किसानके पास अच्छा घर, बगीचा, और मोटर है, किन्तु हमारे देशका अन्नदाता किसान अपना ही पेट भरनेमे असमर्थ रहता है। इसके लिए वह अपने भाग्यको दोष देकर प्राय: सन्तोष कर लेता है। पर किस्मतकी यह मार हमारे ही देशके किसानोपर ही क्यो है, अमेरिकाके किसानोपर क्यो नही? हमे किसानोके मस्तिष्कसे भाग्यवादको निकाल फेंकना है, उन्हे अपने पैरोपर खडा होना सिखाना है, एक दूसरेके साथ सहयोग करना सिखाना है।

ग्राम और नगरका फर्क मिटे

आज हमारे ग्रामोका जीवन इतना नीरस और कठोर है कि ग्रामोके जो नवयुवक थोड़ी-बहुत शिक्षा प्राप्त कर लेते है वे शहरमे ही रहना चाहते है, गांवको लौटना उन्हे खलता है । हमे ग्रामोमे भी नगरोमे प्राप्त होनेवाले विज्ञानकी विभूतियोका प्रचार करना है और अन्ततोगत्वा ग्राम और नगरके भेदको ही मिटा देना है । यह कार्य तभी पूरा होगा जब कि शोषणपर आधारित सामन्तवाद तथा पूंजीवादका अन्त कर दिया जाय, बहुतोकी मिहनतकी कमाईपर गुलछर्रे उडानेवाले कुछ न रहें, सभी लोग एक दूसरेके साथ सहयोग करते हुए परिश्रम करें और व्यक्ति की भलाई सबकी भलाई और समूहकी भलाई व्यक्तिकी भलाई समझी जाय । इस शोषणमुक्त समाजकी स्थापनाके लिए किसान-सभाओंको मजदूर-सभाओके साथ घनिष्ठ सम्पर्क स्थापित करके आन्दोलन करना होगा ।

कांग्रेस और सोशलिस्ट पार्टी

मैं अबतक इस बातका समर्थन करता रहा कि हमे कांग्रेस नही छोड़ना चाहिये । आज मैं आपसे यह कहता हूँ कि हमे कांग्रेस छोड़ देना चाहिये ।

कांग्रेस छोड़ना कोई खुशीकी बात नही है । मैं तीस सालसे कांग्रेसका कार्यकर्त्ता हूँ । मैं इन सब वर्षोका सम्बन्ध छोड़ रहा हूँ । मै अच्छे मित्रोको छोड़ रहा हूँ । राजनीति भी अजीब चीज है । राजनीतिमे मित्र दुश्मन बन जाते है ।

मैं तो सन् १९३४ से कहता रहा हूँ कि कांग्रेस समाजवादका अस्त्र नही बन सकती ।

हमे कांग्रेस छोड़नेकी जल्दी नही थी । कांग्रेस हमे उसे छोड़ देनेके लिए बाध्य कर रही है । एक बार कांग्रेसके अध्यक्षने हमसे कहा था कि हम अपनी पार्टीके नामसे 'कांग्रेस' शब्द निकाल दे । दूसरे कांग्रेसने हमसे यह भी कहा कि हम अपनी पार्टीका द्वार गैर-कांग्रेसियोके लिए भी खोल दे । हमने कानपुरमे यह सब कुछ किया । अब उन्होने एक ऐसा विधान बनाया है कि अब हमारे पास कोई दूसरा चारा ही नही ।

गाधीजीने कांग्रेसके लिए अधिक सुन्दर भविष्य सोचा (Visualise) था । वह कांग्रेसको जन-सेवकोका समूह (beehives) बनाना चाहते थे । वह उसे लोक-सेवक-सघ बनाना चाहते थे । गाधीजी अब नही है और उन्होने कांग्रेसको एक राजनीतिक दल बना डाला है ।

कांग्रेसके अन्दर जन-तान्त्रिक कार्यवाही (functioning) नामुमकिन हो गयी है । उस सस्थामे रहना असम्भव हो गया है ।

माउन्टबेटन प्लैन मजूर कर, कांग्रेसने अपने बुनियादी वसूलोको छोड़ दिया है । देश बेशक आजाद हो गया है, लेकिन आजादी मृत्यु और तबाहीका पैगाम लेकर आयी । पुरानी बुराइयाँ उभर आयी । इतिहासने वह चीज कभी नही देखी जो बात हमने आजादीके फौरन बाद देखी । साम्प्रदायिक वैरने सामूहिक हत्याओका भयंकर रूप धारण कर

लिया। सामन्तशाही और स्थिर स्वार्थोसे समर्थित साम्प्रदायिकता तूफानकी तरह देशमे फैल गयी। साम्प्रदायिक घृणा और रोपकी शक्तियाँ नये राज्यकी जड़ोतकको उखाड़ फेक देना चाहती है।

हिन्दुस्तानमे असाम्प्रदायिक जनतन्त्रकी रक्षाके लिए इन प्रतिगामी शक्तियोका मुकावला करना चाहिये। साम्प्रदायिकताकी इन प्रतिगामी शक्तियोके अलावा, कम्युनिस्ट लोगोको भी हमारे नये राज्यकी रक्षाका कुछ ध्यान नही है। उनकी वफादारी भी देशके वाहर (Interterritorial) है। हमे कम्युनिस्टोसे भी लड़ना है।

अगस्त सन् १९४७ से पहले काग्रेस एक विस्तृत सयुक्त मोर्चा थी। उसका प्रगतिशील, सदा विकासमान और व्यापक विचार था। लेकिन आज वह एक पार्टी है। वह राजनीतिक स्वतन्त्रताको ही अपना ध्येय समझती है और अव शक्तिका उपयोग करनेमे ही संलग्न है। ऐसा मालूम होता है कि उसने हुकूमत करना ही अपना काम समझ रखा है। काग्रेसने तो सरकारसे अपना समीकरण (identification) कर लिया है। वह तो अव सरकारके अधीन हो गयी है।

काग्रेसमे हर किस्मके आदमी शरीक हो गये है। कलके देश-भक्त गद्दार वताये जाते है। काग्रेस-राजके अन्दर देशभक्तिकी व्याख्या ही वदल गयी है।

काग्रेसके आदर्शो और काग्रेस सरकारोके कार्योमें वडा अन्तर है। कांग्रेसका दावा है कि सम्प्रदायवादियोका उसमे कोई स्थान नही। लेकिन कट्टर सम्प्रदायवादी सरकारके मेम्वर है।

सरदार वल्लभभाई पटेल पूंजीवादियोको आश्वासन देते है कि षण्मुखम् चेट्टी उनके प्रतिनिधि है और इसलिए उन्हे भयकी जरूरत नही। वह चाहते है कि मुस्लिमलीगी लीगको खत्म कर काग्रेसमे शामिल हो जायँ। वह कांग्रेसमे हिन्दू सभाइयोका स्वागत करते है। इस तरह एक द्वारसे कांग्रेस सोशलिस्टोको निकालती है और दूसरे द्वारसे पूंजीवादियो और सम्प्रदायवादियोको शामिल करती है। ईश्वर ही कांग्रेसकी रक्षा कर सकता है!

काग्रेस सरकार कहती है "पैदा करो या मरो"। वह मजदूरोसे अधिक त्यागकी मॉग करती है। यह कैसे हो सकता है? "पैदा करो या मरो" का नारा केवल मजदूरोसे ही सम्वोधित नही किया जा सकता है। यह नारा पूंजीपतियो और धनियोसे भी सम्वोधित होना चाहिये। अगर स्थिर स्वार्थ चार कदम आगे वढ़नेको तैयार हो तो मैं सरकारको विश्वास दिलाता हूँ कि मजदूर पीछे नही रहेगा।

हम भग्नहृदय काग्रेसके वाहर नही आ रहे है। हमारे आदर्श भिन्न है। आज आदर्शोका विरोध है। इसका यह अभिप्राय नही कि जो काग्रेसमें रह गये है वे सव प्रतिगामी है।

साम्प्रदायिक घृणा और भावना तथा साम्प्रदायिकताके जहरको खतम करनेके लिए हमे काग्रेससे सहयोग करना चाहिये। अगर हमारे राज्यको सवल वनना है, तो असाम्प्रदायिक जनतन्त्रका वातावरण सारे देशमे फैलना चाहिये।

हम अपने देशमें नये जीवनकी बुनियाद डालते जा रहे हैं। नौकरशाही बिल्कुल प्रतिगामी, भ्रष्ट और दकियानूसी है। शासनयन्त्र, अग्रेजोकी कृति, नितान्त कालातीत है। हमे कर्मचारियोको नयी शिक्षा देनी होगी। उन्हे यह बात समझानी है कि वे जनता और राज्यके नौकर हैं। बुद्धिजीवियोके बिना हमारा काम नहीं चल सकता। हमे उन्हें अपनेमे शामिल करना चाहिये।

ऐसा दिखायी देता है कि सरकारका एकतन्त्रीकरण हो रहा है। कांग्रेसमे अधिनायकत्व बढ रहा है। सरकारी पीर्टीके खिलाफ जनतान्त्रिक, स्वतन्त्र, निर्भीक और स्वस्थ विरोधकी माँग है। इस माँगको सोशलिस्ट पार्टी ही पूरा कर सकती है। इतिहासके इस चैलेन्जको हमें स्वीकार करना होगा।

हमे यह नही भूलना चाहिये कि जनतन्त्रकी जड़ें जनतामें है। अगर जनता शक्ति-सम्पन्न है, तो राज्य भी शक्तिशाली होगा।

मैं यह माननेको तैयार हूँ कि काग्रेस छोड़नेके बाद कुछ दिनोतक हमे बियाबानमे रहना पडेगा। लेकिन इसकी क्या परवाह है?

काग्रेस जीवनहीन होती जा रही है। राष्ट्र आशाकी नयी किरण तथा स्रोतकी खोजमे है। इस आशाका स्रोत किसानो और मजदूरोमे है। आशाकी इस नयी किरणकी खोजका उत्तरदायित्व सोशलिस्ट पार्टीपर है। हमे इस उत्तरदायित्वको मजूर करना है। मुझे यकीन है कि हम शीघ्र ही समाजवादी समाजका विकास कर सकेंगे। शीघ्र ही जन-तान्त्रिक समाजवादको स्थापित करनेमे सफल होगे। हमारा स्वप्न सत्य सिद्ध होगा।

जनतन्त्रकी रक्षाके लिए विरोधी दलकी आवश्यकता[1]

माननीय अध्यक्ष महोदय, मैंने और मेरे ग्यारह साथियोने आज असेम्बलीसे त्यागपत्र देनेका निर्णय कर लिया है और कांग्रेस-असेम्बली पार्टीके नेताको अपना त्यागपत्र दे दिया है। मैं आपको विश्वास दिलाना चाहता हूँ कि काग्रेससे पृथक् होनेका यह निर्णय हमारे जीवनका सबसे कठिन निर्णय है। बिना पूर्वविचारके हमने यह निर्णय सहसा नही किया है। कठोर कर्तव्य-भावनासे प्रेरित होकर ही तथा अपने आदर्शो और उद्देश्योकी पूर्तिके लिए हम इस निर्णायपर पहुँचनेके लिए विवश हुए है। इस निर्णयपर पहुँचनेमे हमने काफी समय लिया है। हम देशकी वर्तमान स्थितिसे भलीभाँति परिचित हैं। हम मानते हैं कि देश सकटकी अवस्थासे गुजर रहा है। किन्तु हम इन सकटोकी सूचीमे अपनी संस्कृति तथा जनतन्त्रको भी शामिल करते है। आज जनतन्त्र तथा हमारी संस्कृति भी खतरेमे है। यह निर्विवाद है कि जनतन्त्रकी सफलताके लिए एक विरोधी दलका होना आवश्यक है—एक ऐसा विरोधी दल, जो जनतन्त्रके सिद्धान्तमें विश्वास रखता हो, जो राज्यको

[1] सोशलिस्ट पार्टीके नासिक अधिवेशनके निश्चयानुसार युक्तप्रान्तीय व्यवस्थापिका सभाकी सदस्यतासे दूसरे १२ साथियोके साथ इस्तीफा देते हुए पढ़ा गया वक्तव्य।

किसी धर्मविशेषसे सम्बद्ध न करना चाहता हो, जो गवर्नमेण्टकी आलोचना केवल आलोचनाकी दृष्टिसे न करे तथा जिसकी आलोचना रचना और निर्माणके हितमे हो न कि ध्वंसके लिए ।

जनतन्त्रका अभ्यास नहीं

हम इस अत्यन्त आवश्यक कार्यको पूरा करना चाहते है । हम इस वातको कहनेके लिए क्षमा चाहते हैं कि इस कार्यकी पूर्ति हमारे ही द्वारा हो सकती है । दुर्भाग्यवश जनतन्त्रकी कोई परम्परा हमारे देशमे नही है तथा साम्प्रदायिकताका इस समय प्राधान्य है । हम जनतन्त्रके अभ्यस्त नही है । इस कारण रचनात्मक विरोधके अभावमे अधिनायकत्वकी मनोवृत्तिका पनपना सुगम है । केवल साम्प्रदायिकताका विरोध करनेसे जनतन्त्रकी स्थापना नही होती । इस सम्वन्धमे मैं कहूँगा कि क्या ही अच्छा होता यदि माननीय पुलिस-सचिव हमारे गृहसचिव होते । कल तथा अपने वजट भापणमे उन्होंने जिन सिद्धान्तोका निरूपण किया है और जिस प्रकार जनतन्त्रकी प्रगतिके लिए जनतन्त्रकी आवश्यकता प्रतिपादित की है, उससे हम पूर्णत सहमत हैं । हम आशा करते है कि यह नीति केवल उनकी व्यक्तिगत राय ही न होगी, वल्कि गवर्नमेण्टकी स्थिर नीति होगी । यदि ऐसा है तो हम आशा कर सकते है कि रचनात्मक विरोधी दल गवर्नमेण्टका पूरक होगा और अपने महत्त्वपूर्ण कार्यमे सफलता प्राप्त करेगा ।

सम्पत्तिके उत्तराधिकारी

वियोग सदा दु खदायी होता है । इस विछोहका हमको कोई कम दु ख नही है । हमको इससे मार्मिक पीड़ा पहुँची है, किन्तु सस्थाओ तथा व्यक्तियोके जीवनमे ऐसे अवसर आते है, जव उनको अपने आदर्शो और उद्देश्योकी पूर्तिके लिए अपनी प्रियसे प्रिय वस्तुका भी त्याग करना पड़ता है । हम सन्तप्त हृदयसे अपना पुराना घर छोड़ रहे है । किन्तु जो अपनी पैतृक सम्पत्ति है, उससे हम दस्तवरदार नही हो रहे है । यह सम्पत्ति भौतिक नही है । यह आदर्शो तथा पवित्र उद्देश्योकी सम्पत्ति है । इस सम्पत्तिका उत्तराधिकारी न केवल ज्येष्ठ पुत्र होता है और न इस सम्पत्तिका समविभाग ही होता है । धार्मिक समुदायोका पर्सनल ला अर्थात् व्यक्तिगत विधान उसपर लागू नही होता । इस सम्पत्तिका दायाद वही हो सकता है, जो अपने आचरण और विश्वाससे अपनेको उसका अधिकारी सिद्ध करे । इसमे मिथ्या गर्व नही है । हम अपनी सीमाओ को जानते है । हम अपनी कमजोरियोसे भी परिचित हैं । किन्तु हम यह कहना चाहते हैं कि हम इसका अधिकारी वननेका प्रयत्न करेगे ।

विद्वेषकी भावना नहीं

ब्रिटिश पार्लमेण्ट तथा अन्य व्यवस्थापिकाओका इतिहास वताता है कि ऐसे अवसरपर लोग त्यागपत्र भी नही देते । हम चाहते तो इधरसे उठकर किसी दूसरी ओर वैठ जाते । किन्तु हमने ऐसा करना उचित नही समझा । ऐसा हो सकता है कि आपके आशीर्वादसे निकट भविष्यमे हम इस विशाल भवनके किसी कोनेमे अपनी कुटीका निर्माण कर सके

(हर्षध्वनि)। किन्तु चाहे यह संकल्प पूरा हो या नही, हम अपने सिद्धान्तोसे विचलित न होगे। हम जानते है कि हमारे देशका यह युग निर्माणका है, न कि ध्वंसका। अतः हमारी आलोचना सदा इसी उद्देश्यसे होगी। हम व्यक्तिगत आक्षेपोसे सदा वचनेका प्रयत्न करेंगे और हम किसी ऐसे विवादमे न पडेगे। राजनीतिक जीवनको स्वस्थ और नीतिपूर्ण वनानेमे हम अपना हाथ वढाना चाहते है। इन वातोमे महात्माजीका उपदेश हमारा पथ-प्रदर्शन करेगा। हम आपको विश्वास दिलाना चाहते है कि हमने किसी विद्वेष और विरोधके भावसे प्रेरित होकर यह कार्य नही किया है। हममें किसी प्रकारकी कटुता नही है। हमारे वहुतसे साथी और सहकर्मी कांग्रेसमे है और उनके साथ हमारा सम्वन्ध मधुर रहेगा। हम जानते है कि उनको भी हमारे अलग होनेसे दुःख पहुँचा है। हमारे समान राजनीतिक आदर्श तथा हमारी समान निष्ठा अव भी हमको एक प्रकारसे उनसे एक सूत्रमें वाँधे रहेगी।

माननीय अध्यक्ष महोदय, आप एक कुटुम्वके सम्मानित सदस्य होते हुए भी इस भवनके अन्य कुटुम्वोके अधिकारोकी भी रक्षा करते है। अतः हम आपसे आशा करते है कि आप हमको आशीर्वाद देगे कि हम अपने उद्देश्योकी पूर्तिमे सफलता प्राप्त करें। हम आपके प्रति तथा कांग्रेस असेम्वली पार्टीके नेता माननीय पं० गोविन्दवल्लभ पन्तके प्रति अपनी कृतज्ञता प्रदर्शित करते है।

हमने कांग्रेस क्यों छोड़ी ?

कांग्रेसकी स्थापना देशको स्वतन्त्र करनेके लिए हुई थी। इस लक्ष्यकी प्राप्तिके लिए एक ऐसी राष्ट्रीय सस्थाकी जरूरत थी जो आजादी पानेके लिए विविध वर्गो और विचारधाराओका एक सयुक्त मोर्चा वन सके। विना देशके स्वतन्त्र हुए कोई भी अर्थनीति सफल नही हो सकती थी। राजनीतिक स्वतन्त्रता पाना सवका समान ध्येय था। कांग्रेस इस प्रकारका संयुक्त मोर्चा थी। इसी कारण यद्यपि समाजवादी पार्टीका जन्म सन् १९३४ ई० मे हुआ, पार्टीने कांग्रेसमे रहकर सयुक्त मोर्चेको मजवूत किया। समाजवादी पार्टीके भीतर रहनेकी वजहसे कांग्रेस आर्थिक कार्यक्रमको महत्व देने लगी। पण्डित जवाहरलाल नेहरूने भी कांग्रेसके प्लेटफार्मसे समाजवादका प्रचार किया। फैजपुर-कांग्रेसमे किसानों-की समस्याओकी ओर अधिक ध्यान दिया गया और फलस्वरूप असेम्वलीके सन् १९३७ के चुनावमे किसानोने कांग्रेसका साथ देकर कांग्रेस-पार्टीको सफल वनाया और उसकी गवर्नमेण्ट कई प्रान्तोमे कायम की। किसानोके प्रभावमे कांग्रेसको धीरे-धीरे जमीदारी प्रथाका अन्त करनेके लिए वाध्य होना पडा। कांग्रेसने आजादीके लिए जो सत्याग्रहकी लड़ाइयाँ लड़ी उसका नतीजा यह हुआ कि कांग्रेस धीरे-धीरे जनताकी सस्था होने लगी और जनताके प्रभावमे उसे अधिकाधिक जनताकी माँगोको स्वीकार करना पड़ा। यहाँतक कि सन् १९४२ मे अपने ८ अगस्तके प्रस्तावमे कांग्रेसको यह स्वीकार करना पड़ा कि वह

किसान-मजदूर राज्य स्थापित करेगी। इस घोषणाके साथ सन् ४२ के जन-आन्दोलनका श्रीगणेश हुआ था। यद्यपि काग्रेसने धीरे-धीरे किसानोके अधिकारोको स्वीकार किया और वह उनको अपने प्रभावक्षेत्रमे लायी तथापि मजदूरोके लिए काग्रेस उतना नही लडी। यही कारण है कि काग्रेसके सामाजिक आधारमे मजदूरोका वह स्थान नही है। पिछले चुनावमे मजदूरोने भी काग्रेसका साथ दिया, किन्तु इसका कारण यह है कि मजदूर भी आजादी चाहता था। वर्गकी हैसियतसे वह तब भी काग्रेससे अलग-सा था। शोषित वर्गोके साथ महात्माजी तथा अन्य काग्रेसजनोकी जो सहानुभूति थी उसके कारण मजदूर भी एक अस्पष्ट रूपसे काग्रेसकी ओर आकर्षित होता था, किन्तु उसने काग्रेसको उस तरह नही अपनाया जिस तरह किसानवर्गने अपनाया था।

अब हिन्दुस्तान आजाद हो गया है। सर्वत्र काग्रेसकी गवर्नमेण्ट शासनारूढ है। काग्रेसका कार्य अब पूरा हो गया है। जब कोई आन्दोलन सफल हो जाता है उसके नेताओके हाथोमे अधिकार आता है तब उसमे एक प्रकारकी जडता आ जाती है। जो आन्दोलन पहले सजीव था और निरन्तर विकसित होता रहता था वह अब धीरे-धीरे निश्चित रूप धारण करने लगता है और उसमे विकासकी गुंजाइश गायब होने लगती है। गवर्नमेण्टका संस्थापर अधिकार बढने लगता है और सस्था धीरे-धीरे अपने स्वतन्त्र अस्तित्व और महत्त्वको खोने लगती है। क्योकि काग्रेसका ध्येय अब पूरा हो गया है इसलिए वह अब गवर्नमेण्टकी इच्छाकी पूर्तिमात्र करने लगी है।

प्रश्न यह है कि क्या काग्रेस आज अपनी आर्थिक नीतिको इस प्रकार बदल सकती है कि हम कह सके कि यह नीति समाजवादके आधारपर आश्रित है। यह कार्य अब दुष्कर क्या असम्भव हो गया है।

काग्रेसका निरन्तर विकास होता आया है, किन्तु लक्ष्यके शुद्ध राजनीतिक होनेके कारण इसका प्लेटफार्म काफी चौडा रहा है। इस विकासका कारण यह था कि काग्रेस एक आन्दोलन था। इस आन्दोलनसे प्रभावित होकर काग्रेसमे नये-नये समूह और वर्ग सदा आते रहे है। आन्दोलनकी मर्यादा गवर्नमेण्टकी आवश्यकताओसे सीमित न थी। गवर्नमेण्ट सदा स्थिरता चाहती है। वह परिवर्तनोसे घबराती है। उसकी चाल सदा मन्द होती है, जन-आन्दोलनका स्वागत करनेके बजाय वह उसका रोक-थाम करती है और उसका उत्तर सदा यही होता है कि जब हम जनताके हितोकी रक्षा करनेको तैयार है तो आन्दोलनकी क्या आवश्यकता है। जनताका हित किसमे है इसका अन्तिम निर्णायक वही बनना चाहते है। काग्रेस गवर्नमेण्टकी मनोवृत्ति भी ऐसी ही बन गयी है। इसमे कोई आश्चर्य करनेका कारण नही है। यह स्वाभाविक है, क्योकि कांग्रेसकी कोई ऐसी स्पष्ट और विशद अर्थनीति न थी जो नीचेसे आयी होती, इसलिए काग्रेसमे भी वही जड़ता आती जाती है। यह ठीक है कि काग्रेसमे काफी असन्तोष है और यह असन्तोष इसी कारणसे है कि काग्रेस अबतक एक आन्दोलन थी न कि एक पार्टी। विविध विचारधाराएँ जो अबतक काग्रेसमे रहकर काम करती थी अब एक साथ काम करनेमे दिक्कत महसूस करती है। स्वतन्त्रता पानेके बाद आर्थिक प्रश्न सफाईसे सामने आने लगे है और वह उत्तर चाहते

है। काग्रेसका वह दल जिसका कांग्रेस मशीनपर कब्जा है अब अन्य विचारधाराओको काग्रेसमे स्थान नही देना चाहता। वह काग्रेसको एक पार्टीका रूप देना चाहता है। गवर्नमेण्टका फायदा भी इसीमे है। इसी प्रकार वह काग्रेसको अपने लिए प्रयोग कर सकते है। यह दल एक प्रकारसे मध्यम श्रेणीका प्रतिनिधित्व करता है। कांग्रेसकी परम्पराके अनुसार इनकी भी सहानुभूति जनताके साथ है और आज कोई गवर्नमेण्ट जनताकी उपेक्षा भी नही कर सकती। किन्तु इस सहानुभूतिकी मर्यादा बहुत सीमित है। यदि कोई शुद्ध पूँजीवादी गवर्नमेण्ट होती तो उसको भी विवश होकर जनताकी स्थितिको उन्नत करना होता। उसमे और वर्तमान गवर्नमेण्टमे अन्तर इतना ही है कि यह गवर्नमेण्ट जनताका साथ देनेके लिए स्वत. स्वतन्त्र है। किन्तु वह एक प्रकारकी परवशतामे पडी हुई है। गवर्नमेण्टमे भी विचारोकी समानता नही। उनमे ऐसे भी व्यक्ति है जो समाजवादको स्वीकार करते है, किन्तु गवर्नमेण्टकी नीति एक व्यक्तिविशेषके विचारोके अनुसार नही निर्धारित होती, चाहे वह व्यक्ति कितना ही बड़ा क्यो न हो। इसलिए यह कहना कि क्योकि केन्द्रीय गवर्नमेण्टके प्रधान सचिव पण्डित जवाहरलाल नेहरू है इसलिए गवर्नमेण्ट सोशलिस्ट है, गलत होगा। हम यह प्रश्न कर सकते है कि एक सोशलिस्ट प्रधान सचिवके होते हुए उसकी कैबिनेटमे पूँजीपतियोके समर्थक कई सचिव क्यो है तथा उसमे हिन्दू महासभाके एक प्रधान व्यक्ति क्यो है। हम यह नही मानते कि पण्डितजीने इन सज्जनोको अपनी खुशीसे मन्त्रिमण्डलमे लिया है। वह इनको लेनेके लिए परिस्थितियोसे मजबूर कर दिये गये है। ये परिस्थितियाँ क्या है। एक तो काग्रेस मशीनपर जिनका कब्जा है वह पण्डितजीके विचारके नही है, वह पूँजीपतियोके समर्थक है। दूसरी बात यह है कि काग्रेसकी कोई अर्थनीति नीचेके प्रभावसे ठीक-ठीक नही बन पायी है। यदि बन पाती तो काग्रेसकी मशीनपर पण्डितजीका ही कब्जा होता। आज पण्डितजीका सबसे अधिक प्रभाव है देश और विदेश दोनोमे। वह अन्तर्राष्ट्रीय व्यक्ति है। किन्तु वह मध्यम वर्गका जिसका मशीनपर कब्जा है प्रतिनिधित्व नही करते। इस वर्गको पण्डितजीकी बहुत जरूरत है। असलियतको छिपानेके लिए और गवर्नमेण्टकी शोभाको बढानेके लिए तथा उसे लोकप्रिय बनानेके लिए, पण्डित नेहरूके बिना यह गवर्नमेण्ट अपनी लोकप्रियता खो देगी। इस उद्देश्यको पूरा करनेके लिए वह नेहरूजीको थोडा-बहुत सन्तुष्ट भी करेंगे, किन्तु यह दिखानेके लिए कि उसके बिना वह कुछ नही कर सकते वह कभी-कभी अपना हाथ खीच लेगे। और आज जब पैदावार बढानेकी इतनी जरूरत है अपनी पूँजी व्यवसायसे खीचकर नेहरूजीको यह दिखलाना चाहेगे कि उनकी सहायताके बिना यह कार्य नही हो सकता। किसी गवर्नमेण्टकी नीतिके अन्तिम निर्णायक व्यक्तिविशेष नही होते, किन्तु पार्टी मशीन होती है, यह मशीन पण्डित नेहरू और जनताको एक दूसरेसे अलग करती है।

महात्माजीसे बढकर प्रभावशाली कौन हो सकता है, किन्तु क्या हम नही जानते कि इधर दो वर्षसे गवर्नमेण्टपर उनका प्रभाव क्षीण हो गया था। वह स्वयं कहा करते थे कि पैदलोपर मेरा प्रभाव है, किन्तु शतरंजके बड़े मुहरोपर जैसे वजीर आदिपर अब मेरा

प्रभाव नही है । क्या हम नही जानते कि देशका बँटवारा बिना उनके पूछे हो गया था ? इसलिए हमारा समाधान यह कहकर करना कि गवर्नमेण्टके नेता पण्डित जवाहरलालजी है ठीक नही है.।

नये विधानके अनुसार कांग्रेस वस्तुत एक पार्टी हो गयी है । अब कांग्रेसकी मशीनका पूरा-पूरा उपयोग गवर्नमेण्टके लाभके लिए किया जायगा । जन-आन्दोलन कांग्रेसके अनुशासनके नामपर रोके जायँगे । कांग्रेस एक प्रकारसे गवर्नमेण्टकी केवल प्रचारक रह जायगी । जन-आन्दोलनपर रोक थाम होनेसे जनता नये नये अनुभवोसे वचित हो जायगी । इसकी भी आशा कम है कि कांग्रेसद्वारा कोई रचनात्मक कार्य भी हो सकेगा । ऐसी स्थितिमे कांग्रेसका सामाजिक आधार नित्य सकुचित हो जायगा । जमीदारी प्रथाका अन्त करनेके बाद कांग्रेस बडे-बडे किसानों और मध्य वर्गकी सस्था रह जायगी । केवल जमीदारी प्रथाका अन्त करनेसे जमीनकी समस्याएँ हल न होगी, गरीब किसानो और खेतिहर मजदूरोके प्रश्न हल न होगे । यह एक नया समाधान चाहेगे । मजदूरवर्ग भी आगे बढ न सकेगा ।

सामाजिक सघर्पसे चैतना पैदा होती है और जब एक प्रकारसे इसका नेतृत्व कांग्रेस न करेगी तो कांग्रेसके विकासका क्रम बन्द हो जायगा । सत्याग्रह-सग्रामोसे ही कांग्रेसका सामाजिक आधार विस्तृत हुआ था । प्रत्येक संग्रामके बाद कांग्रेसकी शक्ति बढी है और जनताके आनेसे उसका कार्यक्रम दे देनेसे उसकी सफलताका निश्चय नही है । अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटीने हालमे जो कार्यक्रम स्वीकार किया है वह ऊपरसे आया है नीचेसे नही । कांग्रेसका सामाजिक आधार इसका उपयुक्त साधन नही है । उपयुक्त साधनके अभावमे साध्यकी सफलता नही हो सकती । यही कारण है कि सन् ४२ के प्रस्तावपर विधानपरिषद्ने कोई ध्यान नही दिया है । जनताको पता नही है कि क्या विधान बन रहा है । यदि जनतामे उसका प्रचार किया जाता और उसकी राय ली जाती तो विधानमे कुछ परिवर्तन हो सकता था ।

समाजवादी पार्टीके सामने ऐसी स्थितिमें यह प्रश्न उठा कि उसको क्या करना चाहिये । देशकी सकटकी अवस्था उसे कोई निश्चय फैसला करनेसे रोक रही थी । कांग्रेससे निकलना तो उसको था ही किन्तु प्रश्न था कि इसके लिए उपयुक्त समय क्या है ! हमारी अनिश्चितता इसी कारण थी, किन्तु जब कांग्रेस-विधानमे यह सशोधन कर दिया गया कि कांग्रेसमे कोई पार्टी नही रह सकती तब हमारे लिए निकलनेके सिवाय कोई दूसरा मार्ग नही रहा ।

इसके अतिरिक्त जनतन्त्रके आधारको सुदृढ करनेके लिए भी निकलना आवश्यक हो गया । जनतन्त्रकी सफलताके लिए स्वस्थ रचनात्मक विरोधका होना जरूरी है । आज इसका नितान्त अभाव है और साम्प्रदायिक दल इस कार्यको नही कर सकते । उनकी आलोचनाका विशेष महत्त्व और आदर नही है । भारतीय परिस्थितिमे कांग्रेसका कोई दल इस कमीको पूरा कर सकता है । यह दल समाजवादी दल ही हो सकता है ।

जब कांग्रेसमे विकासकी गुँजाइश नही रह जाती तब उन वर्गोके आधारपर जो समाजवादका आधार बन सकते है, एक नये सगठनका निर्माण करना आवश्यक हो जाता है ।

यह वर्ग मुख्यत गरीव किसान और मजदूरवर्ग ही हो सकता है। शिक्षित वर्गका तो प्रत्येक दलके लिए महत्त्व है। विशेपज्ञोकी सहायताके विना कोई शासन नही चल सकता। समाजवादी पार्टीको तो यह सहायता और भी अपेक्षित है, क्योकि वह निश्चित आर्थिक योजनाके महत्वको स्वीकार करना चाहते है। इसीलिए हम व्यवस्थापकोकी और विशेपज्ञोकी उपेक्षा नही कर सकते। इनमेसे जो हमारी नीतिको स्वीकार करते है उन्हे अपने दलमे सम्मानपूर्वक प्रविष्ट करना है। उनकी सहायतासे हमको अपनी नीति और कार्यक्रमको भी सुस्पष्ट वनाना है।

हमारे कार्यक्रमका विविध रूप होगा। हम मुख्यत किसान और मजदूरोकी सेवामे रत रहेगे। सामाजिक शक्तिका उद्‌गमस्थान इन्ही वर्गोंमे है। इन्ही वर्गोसे शक्ति लेकर हम समाजवादकी स्थापना कर सकते है। यही वर्ग समाजवादके मुख्य आधार है। साथ ही पार्लमेण्टरी प्रोग्रामकी भी उपेक्षा नही की जा सकती। आजकी स्थितिमे उसका अपना विशेप महत्त्व है। इस प्रकार हम देशकी समस्याओका भी अध्ययन कर सकेगे और उनके सम्वन्धमे अपना मत देशवासियोके सम्मुख रख सकेगे। इस कार्यसे रचनात्मक मनोवृत्तिके वननेमे भी सहायता मिलेगी। किन्तु हम यह नही भूल सकते कि हमको पार्लमेण्टरी प्रोग्राममे तभी सफलता मिलेगी जव हमारी जडे जनतामे फैल जाये।

इस सम्वन्धमे यह कहना आवश्यक है कि हम रचनात्मक कार्यक्रमको ऊँचा स्थान देगे। लोकतन्त्रकी स्थापनाके लिए सर्वत्न सहकारिताकी भावनाको उत्तेजित करना है। यही काम अकेले गवर्नमेण्ट नही कर सकती। इस ओर हम विशेप ध्यान देना चाहते है।

कार्य महान् है और हमारे साधन कम है। यदि हमारे उद्देश्य और कार्यक्रम देशकी आवश्यकताको पूरा करनेवाले है और यदि विद्याचरण सम्पन्न लोकसेवक इस आन्दोलनका नेतृत्व करे तो इसका सामाजिक आधार विस्तृत होगा और कार्यमे सफलता मिलेगी।

कुछ गम्भीर प्रश्न

भारतीय विधानका प्रारम्भ ही इस घोपणाके साथ होता है कि 'भारत एक प्रजातान्त्रिक और असाम्प्रदायिक राज्य है।" हम सभी जानते है कि प्रजातन्त्र और असाम्प्रदायिकताकी भावनाएँ वैज्ञानिक, वौद्धिक तथा नयी चेतनावाले युगकी उपज है। इसलिए यह बुद्धि-सगत है कि इन विचारोको भारतीय भूमिमे पनपने देनेके लिए विचारो और भावनाओका अनुकूल वातावरण तथा इनकी पुष्टि और जीवनके लिए पोपक पदार्थ प्रचुर मात्नामे हो।

जादूकी छडी घुमाते ही प्रजातन्त्नका वातावरण उपस्थित नही हो जाता, उसके पीछे एक परम्परा होती है और व्यक्तिको अपने स्वभावमे उसे लाना पडता है। सत्य तो यह है कि भारतीय जनता प्रजातान्त्रिक विचारोकी नही है। इसलिए आज इस वातकी वड़ी आवश्यकता है कि हम अपनी पुरानी आदतको वदलकर अपने चरित्नका नये रूपमे

निर्माण करे । मानना पड़ेगा कि यह कोई सरल कार्य नही और इस दिशामे प्रगति वड़ी धीमी रहेगी । सतत सचेष्ट रहकर, अनवरत चेष्टा करते रहनेपर ही हम प्रजातान्त्रिक जीवन-पद्धतिपर चलनेकी आशा कर सकते हैं ।

इसके अतिरिक्त, चूँकि हमारे देशमे आवश्यकतासे अधिक धार्मिक भावना है, इलिए उसको असाम्प्रदायिकताकी ओर मोडनेका प्रयत्न करना भी वहुत आवश्यक है ।

राष्ट्रीयताको तिलाञ्जलि

आज देशकी जो दशा है, उसमे इस दोहरे कामका पूरा होना कठिन हो गया है । धार्मिक आधारपर देशका वँटवारा हो जानेसे, दोनो ओर साम्प्रदायिक घृणाका वोलवाला है और फलस्वरूप देशका वौद्धिक और भावनाशील वातावरण पूर्णतया परिवर्तित हो गया है । साम्प्रदायिक उपद्रवोने हत्या, लूट, आगजनी, वलात्कार और अपहरणका स्थान ले लिया है। साम्प्रदायिकता आज सवके सिरोपर चढकर वोल रही है, राष्ट्रकी विचारधारा-पर आज साम्प्रदायिकताकी अपनी विचारसरणियाँ हावी हो रही हैं । अन्य विचार-धाराओके लिए अभी कोई स्थान नही । हमारा सारा सामाजिक जीवन आज भ्रष्ट हो गया है और हमारा राजनीतिक तथा वौद्धिक जीवन निम्न स्तरपर उतर आया है । इसका परिणाम यह हुआ है कि हमारा राजनीतिक चिन्तन अस्त-व्यस्त और हमारी उदार भावनाएँ सकुचित हो गयी है । हमारे नैतिक मूल्य वहुत नीचे गिर गये है और अव हम हर समस्याको एक सम्प्रदायके सकुचित दृष्टिकोणसे देखने लगे है । साम्प्रदायिकताका मतलव है फिरकापरस्तीकी ओर लौट जाना और उस मानेमे हमने अपनी राष्ट्रीयताको तिलाञ्जलि दे दी है ।

एक बार हमने यह सोचा था कि जव देशमे फिरसे शान्ति और व्यवस्था स्थापित हो जायगी, तव राष्ट्र अपने खोये हुए नैतिक संतुलनको पुन शीघ्रतासे प्राप्त कर लेगा और स्वतन्त्रता सग्रामोके दिनोमे हम जिन उच्च आदर्शोके लिए लड़े थे, उनको पूरा करनेमे द्विगुणित उत्साहसे जुट पडेगे । लेकिन जव ऊपरी ढगसे सारी वाते व्यवस्थित हो गयी, तव भी एक न एक प्रश्न, जैसे पहले काश्मीरका, अव हैदरावादका—साम्प्रदायिक भावनाको उभारते रहते है और जन-जीवन अव भी अशान्त वना हुआ है । ऐसा लगता है कि जवतक ये प्रश्न हल नही किये जाते, राष्ट्रका नैतिक स्वास्थ्य गिरता ही जायगा । इसलिए आज यह वहुत आवश्यक हो गया है कि इन प्रश्नोका निपटारा शीघ्रताके साथ किया जाय ।

प्रतिक्रियावादियोंको प्रोत्साहन

लेकिन यह कहते दु ख होता है कि सार्वजनिक जीवनमे जिन लोगोको प्रमुख स्थान प्राप्त है वे परिस्थितिकी इस गम्भीरताको अनुभव नही करते । कहाँ तो वे वर्त्तमान परिस्थितिको वदलनेमे अपनी पूरी शक्ति लगाते और कहाँ वे ऐसे सार्वजनिक भाषण तथा प्रचार करते है, जिनसे प्रतिगामी और प्रगति-विरोधी शक्तियोको अप्रत्यक्ष रूपमे उत्साह मिलता है । वे यह नही समझते कि ये प्रतिक्रियावादी शक्तियाँ प्रभावशाली होकर

हमे उस नयी जीवन-पद्धतिको अपनानेसे रोकेगी, जिसका अपनाया जाना राष्ट्रकी रक्षा और विश्वकी प्रगतिके लिए अत्यन्त आवश्यक है। ऐसी शक्तियाँ अपने राजनीतिक उद्देश्योकी प्राप्तिके लिए मनुष्यकी बुद्धिसे अपील करनेके बजाय परम्परागत विश्वासो और रीतिरिवाजोकी दुहाई देती है। जनताका ज्ञानवर्द्धन न करके वे उसमे मति भ्रम फैलानेकी चेष्टा करती है। राजनीतिक विवादमे वे हर तरहकी ऊलूल-जलूल बातें घसीट लाती है। ऐसा लगता है कि चुनावोका मूल उद्देश्य ही वे आँखोसे ओझल कर बैठती है। येनकेन प्रकारेण चुनाव जीत लेना ही उनका मुख्य उद्देश्य मालूम होता है। चुनावोके सिलसिलेमे मतदाताओकी ज्ञान वृद्धि भी होनी चाहिये, इसकी ओर शायद उनका ध्यान नही जाता।

धर्मके नामपर

चुनावका समय ऐसा समय है जब राजनीतिक विवादको उच्च धरातलपर रखकर स्वस्थ राजनीतिक वातावरण उत्पन्न किया जा सकता है। इस सिलसिलेमे लोगोकी धार्मिक भावनाओको भी असाम्प्रदायिक बनानेकी चेष्टा की जाती है और राजनीतिक तथा सामाजिक समस्याओकी ओर उसका ध्यान आकर्षित किया जाता है। लेकिन जब हमारे सार्वजनिक नेता धार्मिक मंचपर खडे होकर जनतासे वोट देनेके लिए अपील करते है, तब जादू और अन्धविश्वासका वातावरण उत्पन्न न हो तो क्या हो? जब कोई नेता मतदाताओसे कहता है कि अमुक व्यक्तियोको ही वोट दो, अन्यथा ईश्वर तुमपर कुपित हो जायगा, तब ऐसा लगता है मानो वह ईश्वरको औरोसे अधिक जाननेका दावा रखता है। यह स्पष्ट है कि इस प्रकारके दावेमे कोई तथ्य नही है, लेकिन इससे तो इतना होता ही है कि जो लोग ईश्वरमे विश्वास करते है, उनके दिलमे झूठमूठ एक भय घर कर जाता है।

संस्कृतिके नामपर

भारतीय सस्कृतिकी कई बाते प्रशंसा और रक्षाके योग्य है, लेकिन हमारी परम्परागत संस्कृतिके नामपर जितनी चीजें चलती है, उन सबकी प्रशंसा और रक्षा नही होनी चाहिये। घिसे-घिसाये विचारो, जीर्णशीर्ण सामाजिक सिद्धान्तो और मतवादोसे हमे हानि ही पहुँच सकती है। परम्परासे चले आनेवाले कुछ विचार तो आजकी परिस्थितिमे बिलकुल असगत हो गये है और उनका तिरस्कार आवश्यक है। सावधानीसे हमें अपनी प्राचीन सस्कृतिके उन अगोको चुनना है जो हमारी वर्तमान समस्याओको सुलझानेमे समर्थ हो। लेकिन यदि कोई प्रमुख सार्वजनिक नेता प्राचीन भारतीय सस्कृतिके नामपर अपना चिन्ह रखे बिना, वोटरोसे अपील करता है तो वोटरोपर निस्सन्देह यही प्रभाव पड़ेगा कि नेता प्राचीन भारतीय संस्कृतिके उन सभी परम्परागत विश्वासो तथा रीति-रिवाजोकी प्रशसा कर रहा है, जो साधारण जनको बहुत प्रिय है और जिनको वे बहुत आदरकी दृष्टिसे देखते है। ये सारी बाते केवल इसलिए कही जाती है कि अपने राजनीतिक विरोधी-को नीचा दिखाया जा सके और जनताके सामने उसे भौतिकवादी तथा अपनी संस्कृतिको घृणा करनेवालेके रूपमे चित्रित किया जा सके। इस तरहकी अपील एक प्रतिगामी नारा

बनकर रह जाती है और असाम्प्रदायिक राज्य और प्रजातन्त्रको दृढ करनमे इससे कोई मदद नही मिलती।

एक प्रमुख नेताने तो यहाँ तक कहा है कि ईश्वरमे आस्था होना भारतीय सस्कृतिका अविभाज्य अग है। कई लोग इस वातकी सत्यतापर सन्देह करेगे कि ईश्वरपर विश्वास किये विना भी मनुष्य धार्मिक जीवन व्यतीत कर सकता है। दूसरोको इसमे विरोधाभास भले ही लगे, किन्तु भारतके विषयमे यह शब्दश' सत्य है। ईश्वरमे आस्था होना भारतीय संस्कृतिका आवश्यक अग नही है। इस देशमे कई ऐसे धार्मिक मतवाद प्रचलित हुए जिन्होने अपने अनुयायियोके लिए ईश्वरके प्रति विश्वासको शर्त नही वनाया। भारतीय सस्कृतिकी मूल आत्मा और उसका सार इससे विलकुल भिन्न है। वह विश्वके नैतिक शासनमे विश्वास करता है। इस स्थलपर इसकी विस्तृत विवेचना असगत होगी, फिर भी ठीक परिस्थितिका स्पष्टीकरण आवश्यक है, क्योकि इसके विना यह भ्रम हो सकता है कि भारतीय संस्कृति अत्यधिक धार्मिक है। कोई भी राज्य अपनी जनताकी सस्कृतिसे अलग नही रह सकता। राज्यका यह प्रधान कर्त्तव्य होना चाहिये कि वह अपनी जनताकी सस्कृतिको दूसरोमे फैलावे और विश्वविद्यालयोके द्वारा भावी सन्ततिके लिए इसकी विरासत देनेका प्रवन्ध करे।

हमारी सच्ची संस्कृति

भारतीय सस्कृतिके एक 'विद्वान् समर्थक' के कथनका एक ही मतलव हो सकता था कि चुनावमे खडे हुए उसके विरोधी उम्मेदवार नास्तिक और भारतीय सस्कृतिके द्रोही थे। लेकिन जो अपनी सस्कृतिका शत्रु है, वह स्वयका शत्रु है। हमको केवल यह याद रखना है कि संस्कृति जड नही होती; इतिहासके किसी युगमे यदि वह ह्रासोन्मुख होती है तो किसी युगमे विकासोन्मुख। हमारी सस्कृतिके दो पहलू रहे है। एक व्यक्तिवादी और दूसरा समष्टिवादी अर्थात् विश्वजनीन। आधुनिक युगमे हमे अपनी सस्कृतिके विश्वजनीन पहलूपर ही जोर देना है। हमे यह भी याद रखना चाहिये कि जव कभी हमने अपनी संस्कृतिके इस पहलूपर ध्यान केन्द्रित किया, भारतका गौरव वौद्धिक और सांस्कृतिक क्षेत्रोमे अत्यधिक वढा। यदि हम विश्वप्रेमकी इस भावनाको, जो मानवमात्रके प्रति प्रेम उपजाती है, फिर अपना ले तो हम अपने देशको उसी उच्च पदपर पहुँचा सकते हैं।

राजनीति और धर्म

यही एक तरीका है जिससे हम अपनी संकुचित परिधिसे निकलकर असाम्प्रदायिक ढगपर सोच सकेगे। हम एक ऐसे ससारमे रह रहे है जिसमे क्रान्तिकारी परिवर्तन हो चुके है। हमसे उसका नया तकाजा है। इस नयी परिस्थितिका सामना हम तभी कर सकेंगे जव हममे वही उदारता, सहिष्णुता और मैत्रीभाव हो जो हमारी सस्कृतिकी विशेषता रहे है। भारतीय संस्कृतिका हित हम उसकी कुछ गली-सड़ी परम्पराओसे चिपके रहकर नही कर सकते। इसके लिए तो हमे उसके सारको ही ग्रहण करना पड़ेगा। सक्षेपमे,

यदि हम सचमुच चाहते है कि अपने राष्ट्रका सगठन असाम्प्रदायिक आधारपर करें तो हमे राजनीतिमें धर्मका हस्तक्षेप रोकना ही होगा।

विरोधी दलका भारतीयकरण

पहले मैने कहा है कि हमारे देशके विरले लोगोमे ही प्रजातान्त्रिक चरित्र या व्यवहार पाया जाता है। उसको स्थापित करनेके लिए हमे अपनी सारी सद्भावना और शक्ति लगानी पड़ेगी। बच्चोमें प्रजातान्त्रिक स्वभाव शिक्षाके द्वारा ही उत्पन्न किया जा सकता है। लेकिन राजनीतिक स्तरपर शासनारूढ दलको यह स्वीकार करना चाहिये कि प्रजातन्त्रकी स्थापनाके लिए विरोधी दलका होना आवश्यक है। लेकिन जब कभी वैधानिक स्वतन्त्रतापर जोर दिया जाता है और विरोधी दलके संघटनकी आवश्यकता बतलायी जाती है तब सरकारी गद्दियोपर बैठे लोग इसकी जरूरतसे इन्कार कर देते है। और यह सब कुछ किया जाता है भारतीय परम्पराके नामपर। विरोधी दलकी माँगको शान्त करनेके लिए हालमे ही यह नुस्खा अपनाया गया है। यह कहा जाता है कि पश्चिमी पद्धतिका अनुकरण किये बिना ही भारत अपने यहाँ प्रजातन्त्रका विकास कर सकता है और ऐसा करते हुए वह उन अच्छी बातोको छोड सकता है जिनको पश्चिममे प्रजातन्त्रके निर्माणके लिए आवश्यक अंग समझा जाता है। उनकी यह भारतीय परम्परा तब नही टूटती जब विधान-परिषद्मे यूरोपीय देशोके विधान जैसे के तैसे स्वीकार कर लिये जाते है। लेकिन उस प्रजातान्त्रिक विधानकी सुरक्षाके लिए जब एक आवश्यक बात सुझायी जाती है जो सदियोके अनुभवका निचोड है, तब भारतीय परम्परा जैसी एक रहस्यात्मक वस्तुके नामपर उसका विरोध किया जाता है। भारतीय परम्पराके इन समर्थकोको हमारी नेक सलाह है कि पूर्वजोके इस सन्नियमका वे पालन करे कि एक निश्चित आयुके बाद वे सामाजिक जीवनसे सन्यास ले लिया करे। यदि हमारे मन्त्रिगण और राजनीतिज्ञ ६० वर्ष की आयुमे सार्वजनिक क्षेत्रसे अलग हो जाया करे तो शासन और जनता दोनोंका बड़ा भला होगा। मैं सुझाव दूंगा कि भारतके नये प्रस्तावित विधानमे इस प्रकारका एक नियम जोड दिया जाय। आजकी नयी समस्याओको सुलझाने और शासन चलानेके लिए तो हमे ऐसे नवयुवकोकी आवश्यकता है, जिनके पास उत्साह और नया दृष्टिकोण हो। जीवनसे थके हुए और पुरानी परिपाटीपर सोचनेवाले मनुष्य तो गड़बड़घोटाला ही करेंगे। यदि कर्मचारियोके लिए एक निश्चित उम्रके बाद नौकरीसे अलग हो जानेकी शर्त है, तो कोई कारण नही कि मन्त्रियोको उस नियमसे बरी किया जाय। हम एक ऐसे गतिशील युगमे रह रहे है, जिसमे प्रतिक्षण परिवर्तन हो रहा है। बुजुर्ग लोगोसे यह उम्मीद नही की जा सकती कि बदलती हुई हालतोमे भी वे उतनी ही तत्परता और शीघ्रतासे काम कर सकेंगे।

तानाशाहीकी ओर

अगर आप विरोधी दलकी आवश्यकतासे इनकार करते है तो इसका मतलब यह है है कि आप निरकुश शासनका समर्थन कर रहे है। भारतीय सरकारे धीरे-धीरे,

अधिनायकवादकी ओर झुक रही है। उनका यह दावा है कि वर्तमान शासन-व्यवस्था बिल्कुल ठीक है और उसका समर्थन करना चाहिये। राष्ट्रीय सरकारके नामपर जनतासे यह अपील की जाती है कि वह इसको समझदारी और न्यायका ठेकेदार मानकर इसपर विश्वास करे। हमारे शासक आज अपनी आलोचना बर्दाश्त नहीं कर सकते। उन्हें अपने निर्णयपर अत्यधिक भरोसा है, बल्कि मैं कह सकता हूँ कि वर्तमान संकट कालमें किसीकी सहायताके बिना ही सामना करनेका उनको अत्यधिक गर्व है।

जनतामें आतंक है

लेकिन मुझे सबसे अधिक दुःख यह देखकर हुआ है कि आज अधिकांश जनतापर कांग्रेसके अधिकारियोंका आतंक बैठ गया है। जो कांग्रेसजन-कांग्रेस और सरकार, दोनोंमें उच्च पदपर, हैं, उनसे जनता बहुत डरती है। सम्भवतः वह कांग्रेसजनोंसे अधिक भय खाती है, क्योंकि वे अपने असीम अधिकारोंसे उसे हानि पहुँचाना चाहते हैं। स्वतन्त्रता-प्राप्तिके पूर्व का प्यार आज भय और घृणामें बदल गया है। इस भयका क्षेत्र बहुत विस्तृत हो गया है और जनताकी गतिविधि पंगु हो गयी है। महात्माजीकी शिक्षाओंका सार था निर्भयता। लेकिन आज तो उनके तथाकथित अनुयायी ही जनतामें भय उत्पन्न करनेके उत्तरदायी हो रहे हैं। और जहाँ निर्भयता नहीं वहाँ प्रजातन्त्र कभी सफल नहीं हो सकता। सीधी-सादी बात तो यह है कि आज जनता स्वतन्त्रताकी आभाका अनुभव नहीं करती। फलतः राजनीतिक असफलता सामने है, जो क्रमशः राजनीतिक असन्तोष और उदासीनतामें परिणत होती जा रही है।

इन सारी बातोंका एक ही कारण है कि आज कांग्रेसकी राजनीति गन्दी हो गयी है। अब राजनीति अधिकार और धन-प्राप्तिका एक साधन मात्र बन गयी है। कांग्रेसकी राजनीति आज पहलेकी तरह जनताको नये सत्योंका दर्शन करानेके लिए संघर्ष नहीं करती, संसारको पहलेसे अच्छा बनानेके लिए अब वह प्रयत्न नहीं कर रही है। कांग्रेसजनोंकी सामाजिक चेतना मन्द पड़ गयी है और ऐसा लगता है कि कांग्रेसकी आत्माको लकवा मार गया है और यह इसलिए हुआ है कि कांग्रेस आज आन्दोलन नहीं रह गयी।

जनताको अब पहलेकी तरह इससे प्रेरणा नहीं मिलती। इससे केवल उन्हीं लोगोंको प्रेरणा मिलती है जो इसकी सेवाओंके बलपर मन्त्रियों और सभा सचिवोंके पदपर पहुँच गये हैं और यह भी इसलिए क्योंकि उनको भ्रम है कि वे जनताकी सेवा कर रहे हैं।

इसलिए या तो कांग्रेसको खत्म हो जाना चाहिये या उसे अपना कायाकल्प करना चाहिये। देशका सबसे बड़ा राजनीतिक संगठन होनेके कारण इसका उत्तरदायित्व भी महान् है। उसका कर्त्तव्य है कि यह जनतामें गौरव और निर्भयताकी नयी भावना भरे और एक नयी दिशाका निर्देश करे। आजकी यह सबसे बड़ी आवश्यकता है। यदि जनताको यह नया प्रकाश मिला तो उसकी शक्तिका रुद्ध स्रोत मुक्त होकर वह उठेगा और एक नये समाजके निर्माणके लिए शक्तिशाली संघटित प्रयत्नकी सम्भावना उपस्थित हो जायगी। लेकिन आजकी स्थितिसे तो निराशा ही होती है। यह वातावरण हमारे उन सभी सामाजिक तथा आध्यात्मिक मूल्योंको नष्ट कर देगा, जिनको अपना लक्ष्य बनाकर

हम बहुत दिनोंसे जंगलकी काँटोंभरी राहपर चलते रहे हैं। यह बिल्कुल स्पष्ट है कि आजकी स्थितिमें राजनीति जीवित नहीं रह सकती।

इस अप्रिय स्थितिको सुधारनेके लिए क्या वे लोग कुछ करेंगे जो ऐसा कर तो सकते हैं, परन्तु करना नहीं चाहते ? या इनकी आँखोंपर पट्टी बँधी है जो वे बदलती हुई हालतोंको नहीं देख पाते ? अथवा वे चाहते हैं कि नियति ही अपना निश्चित पथ ग्रहण करे ?

सन् ४२ की क्रान्तिका उद्देश्य अभी पूरा नहीं हुआ[1]

आज १५ अगस्त है। आप सोचते होंगे कि यह दिवस हम और कांग्रेसी साथ-साथ क्यों नहीं मना रहे हैं। उत्तर स्पष्ट है। आज हमारा और कांग्रेसका रास्ता अलग-अलग है। ब्रिटिश साम्राज्यवादसे लड़नेमें हम सब साथ थे। किन्तु कांग्रेसने ९ अगस्त सन् १९४२ की प्रतिज्ञाको भुला दिया। इस प्रतिज्ञाका महत्त्व बहुत ज्यादा है। इस प्रतिज्ञामें तीन महत्त्वपूर्ण चीजें हैं—(१) आजादी, (२) किसान-मजदूर राज और (३) विश्व-बन्धुत्व। किन्तु देशके नये बन रहे विधानमें किसान-मजदूरों अथवा मेहनतकशोंके हाथमें सत्ता जानेकी कोई गुन्जाइश नहीं है। राजनीतिक आजादी मिल जानेपर कांग्रेसके नेताओंने अपने कामको समाप्त समझ लिया। किन्तु वास्तवमें अभी ४२ का आन्दोलन समाप्त नहीं हुआ है। राजनीतिक आजादी अवश्य मिल गयी है किन्तु नये समाजका निर्माण और आर्थिक विषमताको समाप्त कर समता स्थापित करना अभी शेष है।

उपर्युक्त उद्देश्यकी प्राप्तिके लिए सन् ४२ में भारतकी जनताने महान् बलिदान किये। कुछ समय बाद यह विद्रोह दब गया मालूम पड़ा। वास्तवमें विद्रोह दबा नहीं था, उसपर राख अवश्य पड़ गयी थी। जनता अवसरकी ताकमें थी। नेताओंके जेलसे छूटनेपर यह स्पष्ट हो गया था।

गत १५ अगस्तको हमें जो आजादी मिली वह हमारी शक्तिकी वजहसे ही प्राप्त नहीं हुई। उसका एक कारण ब्रिटेनकी शक्तिका क्षीण होना भी था। शक्ति क्षीण होनेके कारण इतने बड़े साम्राज्यपर काबू बनाये रखना उनके लिए कठिन था। अतः उन्होंने अपने स्वार्थोंको दृष्टिमें रखकर ही समझौता किया। इस समझौतेमें भी उन्होंने हमें दुर्बल बनाया। देशका विभाजनकर राष्ट्रीयताका नाश किया और उसे साम्प्रदायिकताकी भट्टीमें झोंक दिया। देश सभी नैतिक मूल्योंको भूल गया। वर्तमान युग विज्ञान और विश्वबन्धुत्वका है। इस परिवर्तनशील युगमें हमें नये सामाजिक मूल्य अपनाने होंगे। जो देश इन्हें नहीं अपनायेगा उसका पतन निश्चित है।

आज स्थिर स्वार्थवाले और पूंजीपति कांग्रेसपर प्रभुत्व बढ़ानेका उपक्रम कर रहे हैं। इसमें उन्हें सफलता भी मिल रही है। एशियाई देशोंके सम्मेलनके अवसरपर यह

---

१. लखनऊ सोशलिस्टपार्टीके तत्वावधानमें हुई सार्वजनिक सभामें दिये हुए भाषण-का सारांश।

आशा बँधी थी कि भारत एशियाका नेतृत्व करेगा । प्राचीन कालमे भी भारतने एशिया-का नेतृत्व किया था । यह नेतृत्व हमारी सस्कृति और नैतिकताके कारण ही सम्भव हो सका था । प्राचीन भारतने दुनियामे प्रभुत्व स्थापित करनेकी कामना नही की । उसने सदैव एक नया सन्देश दिया । एशियाके गुलाम देशोसे सहानुभूति रखनेके कारण भारत आज भी एशियाका गुरु वन सकता था । एशियाके देश यह चाहते भी थे । किन्तु आज स्थिति वदल गयी है । एशियाई देश देखते है कि आप अपने घरकी समस्याएँ ही हल नही कर सकते । फिर एशियाके नेतृत्वका सवाल कहाँ ?-

हमारे लिए यह अत्यधिक लज्जाकी वात थी कि अपने उच्च आदर्शोको भूलकर हम वर्वरता और साम्प्रदायिकताका नग्न नृत्य करे । आज जनतन्त्रका मूल्य नही समझा जा रहा है । विरोधी दलका मुँह वन्द कर साम्प्रदायिकताका राज लादा जा रहा है । यह मार्ग पतनका है ।

हमे सन् ४२ का मार्ग नही भूलना है । आज कांग्रेसके नेताओने उस मार्गको भुला दिया है । इन नेताओका विचार है कि हमारी लडाई समाप्त हो गयी, यह समय भोगका है, सरकारी पदोपर रहकर ही जनताकी सेवा सम्भव है । वर्तमान अवस्थामे जनताकी शक्ति कैद है, उसको वाहर निकलनेका मौका नही मिलता । हमारी सरकारे जनताके सहयोगकी उपेक्षा कर फौज, पुलिस और सिविल सर्विसके वूतेपर शासन कर रही है । देशभरकी जनतामे आतक फैला हुआ है । गाधीजीने जनताको निर्भय वनना सिखाया था किन्तु काग्रेसी राजमे ही जनता त्रस्त है । गत चुनावोके अवसरपर एक वोटरने मुझसे कहा था कि आज न वोट देनेकी आजादी है, न मरनेकी । ऐसी हालतमे जनतन्त्र चल नही सकता । जो जनता पहले काग्रेसके प्रति श्रद्धा रखती थी वही आज उससे डरी हुई है ।

काग्रेसी सरकारे विरोधी दलकी आवश्यकता नही समझती । विरोधी दलको विदेशी चीज और भारतीय सस्कृतिके विरुद्ध वताया जाता है । ये ही सरकारें आँख मूँदकर विदेशी विधानोकी नकल कर रही हैं । क्या यहाँ भारतीय सस्कृतिसे विरोध नही होता ? जनतन्त्रकी सफलताके लिए अग्रेज विरोधी दलको आवश्यक समझते हैं ।

आज समाजवादको भी विदेशी वताकर उसका विरोध किया जाता है । ऐसे लोगोसे मैं पूछता हूँ कि पूँजीवाद भी तो वाहरसे आया है । वह भी तो विदेशी है । फिर उसका विरोध क्यो नही ? अगर आपको विदेशी चीजोसे ही वैर है तो पूँजीवादका नाश क्यों नही करते ? पूँजीवादके अभावमे समाजवादकी आवश्यकता ही नही रहती । यदि पूँजीवाद-को समाप्त नही किया जाता तो समाजवादी आन्दोलनको भी नही रोका जा सकता ।

संस्कृतिका प्रश्न

भारतीय सस्कृतिको समझना अत्यधिक कठिन है । विना समझे उसकी असामयिक दुहाई देना व्यर्थ है । जीवन और सस्कृति परिवर्तनशील हैं । किसी भी देशके लिए ताजे पानीकी भाँति नवीन संस्कृतिकी आवश्यकता होती है । अन्यथा जीवन-प्रवाह

हम वहुत दिनोंसे जंगलकी काँटोभरी राहपर चलते रहे है। यह विल्कुल स्पष्ट है कि आजकी स्थितिमे राजनीति जीवित नही रह सकती।

इस अप्रिय स्थितिको सुधारनेके लिए क्या वे लोग कुछ करेगे जो ऐसा कर तो सकते है, परन्तु करना नही चाहते ? या उनकी आँखोपर पट्टी वँधी है जो वे वदलती हुई हालतोको नही देख पाते ? अथवा वे चाहते है कि नियति ही अपना निश्चित पथ ग्रहण करे ?

सन् ४२ की क्रान्तिका उद्देश्य अभी पूरा नहीं हुआ[1]

आज १५ अगस्त है। आप सोचते होगे कि यह दिवस हम और काग्रेसी साथ-साथ क्यों नही मना रहे है। उत्तर स्पष्ट है। आज हमारा और काग्रेसका रास्ता अलग-अलग है। ब्रिटिश साम्राज्यवादसे लड़नेमे हम सव साथ थे। किन्तु काग्रेसने ९ अगस्त सन् १९४२ की प्रतिज्ञाको भुला दिया। इस प्रतिज्ञाका महत्त्व वहुत ज्यादा है। इस प्रतिज्ञामें तीन महत्त्वपूर्ण चीजे है—(१) आजादी, (२) किसान-मजदूर राज और (३) विश्व-वन्धुत्व। किन्तु देशके नये वन रहे विधानमे किसान-मजदूरो अथवा मेहनतकशोके हाथमें सत्ता जानेकी कोई गुञ्जाइश नही है। राजनीतिक आजादी मिल जानेपर काग्रेसके नेताओने अपने कामको समाप्त समझ लिया। किन्तु वास्तवमे अभी ४२ का आन्दोलन समाप्त नही हुआ है। राजनीतिक आजादी अवश्य मिल गयी है किन्तु नये समाजका निर्माण और आर्थिक विपमताको समाप्त कर समता स्थापित करना अभी शेप है।

उपर्युक्त उद्देश्यकी प्राप्तिके लिए सन् ४२ मे भारतकी जनताने महान् वलिदान किये। कुछ समय वाद यह विद्रोह दव गया मालूम पडा। वास्तवमे विद्रोह दवा नही था, उसपर राख अवश्य पड गयी थी। जनता अवसरकी ताकमे थी। नेताओके जेलसे छूटनेपर यह स्पष्ट हो गया था।

गत १५ अगस्तको हमे जो आजादी मिली वह हमारी शक्तिकी वजहसे ही प्राप्त नही हुई। उसका एक कारण ब्रिटेनकी शक्तिका क्षीण होना भी था। शक्ति क्षीण होनेके कारण इतने वडे साम्राज्यपर कावू वनाये रखना उनके लिए कठिन था। अत. उन्होने अपने स्वार्थोको दृष्टिमे रखकर ही समझौता किया। इस समझौतेमे भी उन्होने हमें दुर्वल वनाया। देशका विभाजनकर राष्ट्रीयताका नाश किया और उसे साम्प्रदायिकताकी भट्टीमे झोक दिया। देश सभी नैतिक मूल्योको भूल गया। वर्तमान युग विज्ञान और विश्ववन्धुत्वका है। इस परिवर्तनशील युगमे हमे नये सामाजिक मूल्य अपनाने होगे। जो देश इन्हे नही अपनायेगा उसका पतन निश्चित है।

आज स्थिर स्वार्थवाले और पूंजीपति कांग्रेसपर प्रभुत्व वढानेका उपक्रम कर रहे है। इसमे उन्हें सफलता भी मिल रही है। एशियाई देशोके सम्मेलनके अवसरपर यह

---

१. लखनऊ सोशलिस्टपार्टीके तत्वावधानमे हुई सार्वजनिक सभामे दिये हुए भाषण-का सारांश।

आशा बँधी थी कि भारत एशियाका नेतृत्व करेगा। प्राचीन कालमे भी भारतने एशियाका नेतृत्व किया था। यह नेतृत्व हमारी सस्कृति और नैतिकताके कारण ही सम्भव हो सका था। प्राचीन भारतने दुनियामे प्रभुत्व स्थापित करनेकी कामना नही की। उसने सदैव एक नया सन्देश दिया। एशियाके गुलाम देशोसे सहानुभूति रखनेके कारण भारत आज भी एशियाका गुरु बन सकता था। एशियाके देश यह चाहते भी थे। किन्तु आज स्थिति बदल गयी है। एशियाई देश देखते है कि आप अपने घरकी समस्याएँ ही हल नही कर सकते। फिर एशियाके नेतृत्वका सवाल कहाँ ?

हमारे लिए यह अत्यधिक लज्जाकी बात थी कि अपने उच्च आदर्शोको भूलकर हम बर्बरता और साम्प्रदायिकताका नग्न नृत्य करे। आज जनतन्त्रका मूल्य नही समझा जा रहा है। विरोधी दलका मुँह बन्द कर साम्प्रदायिकताका राज लादा जा रहा है। यह मार्ग पतनका है।

हमे सन् ४२ का मार्ग नही भूलना है। आज काग्रेसके नेताओने उस मार्गको भुला दिया है। इन नेताओका विचार है कि हमारी लड़ाई समाप्त हो गयी, यह समय भोगका है, सरकारी पदोपर रहकर ही जनताकी सेवा सम्भव है। वर्तमान अवस्थामे जनताकी शक्ति कैद है, उसको बाहर निकलनेका मौका नही मिलता। हमारी सरकारे जनताके सहयोगकी उपेक्षा कर फौज, पुलिस और सिविल सर्विसके बूतेपर शासन कर रही हैं। देशभरकी जनतामे आतक फैला हुआ है। गाधीजीने जनताको निर्भय बनना सिखाया था किन्तु काग्रेसी राजमे ही जनता त्रस्त है। गत चुनावोके अवसरपर एक वोटरने मुझसे कहा था कि आज न वोट देनेकी आजादी है, न मरनेकी। ऐसी हालतमे जनतन्त्र चल नही सकता। जो जनता पहले काग्रेसके प्रति श्रद्धा रखती थी वही आज उससे डरी हुई है।

कांग्रेसी सरकारे विरोधी दलकी आवश्यकता नही समझती। विरोधी दलको विदेशी चीज और भारतीय सस्कृतिके विरुद्ध बताया जाता है। ये ही सरकारे आँख मूँदकर विदेशी विधानोकी नकल कर रही हैं। क्या यहाँ भारतीय सस्कृतिसे विरोध नही होता ? जनतन्त्रकी सफलताके लिए अग्रेज विरोधी दलको आवश्यक समझते हैं।

आज समाजवादको भी विदेशी बताकर उसका विरोध किया जाता है। ऐसे लोगोसे मैं पूछता हूँ कि पूँजीवाद भी तो बाहरसे आया है। वह भी तो विदेशी है। फिर उसका विरोध क्यो नही ? अगर आपको विदेशी चीजोसे ही वैर है तो पूँजीवादका नाश क्यो नही करते ? पूँजीवादके अभावमे समाजवादकी आवश्यकता ही नही रहती। यदि पूँजीवादको समाप्त नही किया जाता तो समाजवादी आन्दोलनको भी नही रोका जा सकता।

संस्कृतिका प्रश्न

भारतीय सस्कृतिको समझना अत्यधिक कठिन है। बिना समझे उसकी असामयिक दुहाई देना व्यर्थ है। जीवन और संस्कृति परिवर्तनशील हैं। किसी भी देशके लिए ताजे पानीकी भाँति नवीन सस्कृतिकी आवश्यकता होती है। अन्यथा जीवन-प्रवाह

असम्भव हो जाता है। मैं जीवन-प्रवाहको वढानेवाली सस्कृतिका ही उपासक हूँ, मध्य-युगीन सस्कृति गुलामीका उपासक नही। भारतकी प्राचीन संस्कृतिका आधार विश्व-वन्धुत्व, श्रेष्ठ गुणोको ग्रहण करना और दुर्गुणोका परित्याग करना है। इसी सस्कृतिकी हमें रक्षा करनी है। स्थिति वदलनेपर जीवनके नये मूल्य अपनाने होते है।

वर्तमान युग जनतन्त्र और समाजवादका युग है। रूस और पूर्वी यूरोपके देशोमे समाजवादी आन्दोलनको लगभग पूर्ण सफलता प्राप्त हुई है। आज इगलैण्डकी स्थिति भी यही है। वहाँ मजदूर दलकी सरकार है। आजसे ५० वर्ष पूर्व समाजवादके आन्दोलनको मूर्खता कहा जाता था। आज दुनियाके लगभग सभी देशोमे नवीन रास्ते अपनाये जा रहे है। अधिकाश देशोमे समाजवादी दलोके सहयोगके विना शासन चलाना असम्भव हो गया है। समाजवादका एकमात्र शक्तिशाली विरोधी अमेरिका आज विश्वके लिए अभिशाप वन रहा है।

हमारे देशमे काग्रेससे समाजवादकी आशा की जाती थी, किन्तु अव यह आशा धूलमें मिल गयी है। काग्रेसकी प्रतिज्ञाएँ अत्यधिक सुन्दर है, लेकिन कोरी प्रतिज्ञासे काम नही चलता। हमे प्रत्येक सगठनके सामाजिक आधारको देखना होगा। आज यह स्पष्ट हो गया है कि काग्रेसका सामाजिक आधार पूँजीवाद है। अत. उससे समाजवादकी स्थापना नही हो सकती। आज जमीदारी समाप्त हो जानेके वाद यदि जमीदार एक पार्टी वनावे और पूँजीवादको समाप्त करनेका नारा लगावे तो क्या हम उनके नारेपर विश्वास कर सकते है? ऐसे लोगोसे पूँजीवादके नाशकी आशा नही की जा सकती।

काग्रेस आज निर्जीव हो गयी है। आन्दोलन और नवीन आदर्शोके विरुद्ध वह जनताके मार्गमे रोड़े अटका रही है। वर्तमान स्थितिमे काग्रेस सरकारका नियन्त्रण करनेके वजाय काग्रेस स्वय सरकारसे नियन्त्रित होती है। पिछले चुनावोमे जमीदारो और पूँजीपतियोने खुले दिलसे काग्रेसकी मदद की है। वे धीरे-धीरे काग्रेसमे घुस रहे है। वे जानते है कि उन्हे अन्यत्र शरण नही मिल सकती। काग्रेस उनके प्रभावमे आती जा रही है। अव ऐसे लोगोसे किसान-मजदूर राज्यकी स्थापना कैसे हो सकती है?

स्वस्थ विरोधी दलके अभावमे शासन निरंकुश और भ्रष्ट हो जाता है। जनतन्त्रको सफल वनानेके लिए हमे नयी परम्परा कायम करनी होगी। सोशलिस्ट पार्टीने काग्रेससे अलग होकर और विरोधी दलकी तरह कार्य करनेका निश्चय कर देशका अत्यधिक उपकार किया है। विभिन्न साम्प्रदायिक दल अपने रूप वदलकर काग्रेसमे शामिल हो रहे है। काग्रेसके छोटे-छोटे उग्र दल समाजवादी पार्टीमे सम्मिलित हो रहे है। काग्रेस अव राष्ट्रीय संस्था नही रह गयी है। यह एक सवसे वड़ा और पुराना राजनीतिक दल अवश्य है। काग्रेसमे भी कुछ समाजवादी है, किन्तु अल्पसख्यक होनेके कारण उनकी वात वहाँ नही सुनी जाती।

राष्ट्र-निर्माणके लिए सर्वाधिक आवश्यक चीज जनताका सहयोग है। गरीव जनता—किसान-मजदूर— भी त्याग कर सकती है। किन्तु यह तभी सम्भव है जव उसे नवीन सामाजिक ढाँचेमें उचित स्थान प्राप्त हो। रूसकी राज्यक्रान्तिके वाद वहाँकी

सरकारने विदेशी सहायताके विना केवल जनतासे आश्चर्यजनक उन्नति कर डाली। रूसकी जनता समझती थी कि उसके परिश्रमसे चन्द व्यक्ति ही मौज न करेगे। राष्ट्रकी सम्पत्तिको उत्पन्न करनेवाला किसान-मजदूर सव कुछ कर सकता है। इसके लिए उसका राज्य कायम होना जरूरी है। जनतामे विश्वास खोना आत्मविश्वास खोना है। आकस्मिक परिवर्तन सम्भव भले ही न हो, किन्तु पुराने ढाँचेके रहते थोडा परिवर्तन भी नही हो सकता। काग्रेसका सामाजिक आधार उसे आगे नही वढ़ने देता।

इतना ही नही, वह तो आपको पीछेकी ओर खीच रहा है। सरकारने पूँजीपतियोको १० वर्षतक निर्विघ्न शोषणका पट्टा दे दिया है। उसके वाद राष्ट्रीयकरण करनेकी वाते व्यर्थ है। समाजवादके विना वेकारीकी समस्याका हल भी सम्भव नही है। भारतमे समाजवादी पार्टी ही समाजवादकी स्थापना कर सकती है।

एक वात और है। हमे राज्य और सरकारके अन्तरको भली भाँति समझ लेना चाहिये। उपर्युक्त दोनो चीजे पृथक् है। राज्य स्थायी होता है, किन्तु सरकार वदलती रहती है। उसका वदलना जरूरी होता है। उसे हम वदलेगे भी।

जो लोग सन् ४२ की प्रतिज्ञा पूरी करना चाहते है उनको मै सोशलिस्ट पार्टीमे सम्मिलित होनेके लिए निमन्त्रण देता हूँ। हम केवल पुरानी पूँजीके आधारपर अपना कार्य नही चलाना चाहते। उच्च आदर्शोमे विश्वास करनेवाले सभी शिक्षित व्यक्तियोका हम स्वागत करते है। पार्टीका संचालन पूर्णत जनतन्त्रात्मक ढगसे होगा।[1]

पटना अधिवेशन[2]

साथियो,

यह वहुत ही खेदका विपय है कि हमारे मनोनीत सभापति श्री यूसुफ मेहरअली साहव अपनी वीमारीके कारण इस ऐतिहासिक महत्त्वके अधिवेशनकी सदारत करने नही आ सके। इस मौकेपर हमारे विचार विमर्शका पथ-प्रदर्शन तथा हमारे कार्योका संचालन करनेके लिए हमे उनकी सख्त जरूरत थी। उनके परिपक्व तथा सतुलित विचार, समाजवादी आदर्शोके प्रति उनकी अटल निष्ठा, उनकी जवरदस्त संगठन शक्ति और उनका मोहक व्यक्तित्व—इन सभी गुणोने मिलकर भारतवर्षकी राजनीतिमे उनका एक विशेप महत्त्वपूर्ण स्थान वना दिया है। यह हमारा दुर्भाग्य है कि निरन्तर अस्वस्थताके कारण वे अपनी वहुमूल्य सेवाएँ पार्टीको समर्पित करनेमे असमर्थ है। फिर भी वड़ी ही उत्सुकतासे हम आशा करते है, और यही हमारी शुभकामना है कि वे शीघ्र ही स्वस्थ हो जायेगे और इस देशमे समाजवादी लक्ष्यकी स्थापनामे वहुमूल्य देन दे सकेगे।

उनकी अनुपस्थितिमे मुझे उनका स्थान ग्रहण करनेके लिए कहा गया है। दूसरी

---

१. 'संघर्ष २३-अगस्त, १९४८ ई०

२. सभापतिके पदसे दिया गया भाषण (१९४९)।

बार पार्टी-सम्मेलनकी सदारत करनेको बुलाया जाना तथा साथी मेहरअली साहबका प्रतिनिधि बनना, मेरे लिए बहुत बड़ा सम्मान है। लेकिन उनके स्थानकी पूर्ति पूर्ण रूपसे कोई भी नहीं कर सकता और इस प्रकार मुझे जो सम्मान प्रदान किया गया है उससे मेरी जिम्मेदारी और भी बढ गयी है। मैं इस महान् गौरवके पदको स्वीकार करनेमें अपनेको कमजोर पा रहा हूँ, विशेषकर ऐसे समयमें जब अनेक महत्त्वपूर्ण प्रश्न हमारे सम्मुख उपस्थित है जिन्हें हमे हल करना है। फिर भी मेरी कर्त्तव्यभावना मुझे इस सम्मानपूर्ण पदको स्वीकार करनेको बाध्य करती है, और मैं इस आशासे इसे स्वीकार करता हूँ कि आप सम्मेलनके कार्य-सचालनमे मुझे अपना हार्दिक तथा उदारतापूर्ण सहयोग प्रदान करेंगे।

यह वर्ष हमारी पार्टीके लिए बहुत ही महत्त्वपूर्ण वर्ष है। एक स्वतन्त्र पार्टीके रूपमें अपने अस्तित्वका हमने पहला साल ही अभी पूरा किया है। पिछले साल नासिकमे हमने अपनी उस पितृ-सस्थासे सम्बन्ध-विच्छेद करनेका महत्त्वपूर्ण निश्चय किया था, जिसकी पूरे चौदह वर्षोतक हमने वफादारीके साथ सेवा की थी। इसके बाद कोई भी ऐसी बात नही हुई है जो हमे उस निश्चयपर पुनर्विचार करनेके लिए प्रेरित करे। इसके विपरीत, ज्यो-ज्यो दिन व्यतीत होते जाते है, हमे ऐसे ताजे प्रमाण मिलते जाते है जो इस बातको सिद्ध करते है कि हमारा वह निश्चय बिलकुल सही तथा आवश्यक था। अपनी एक स्वतन्त्र सत्ता स्थापित कर लेनेके बादसे हमारी जिम्मेदारियो तथा हमारे कर्त्तव्योंमे कई गुना वृद्धि हो गयी है। आपलोगोमे बहुतसे लोगोको, जो नासिकमे उपस्थित थे, याद होगा कि मैंने वहाँ अपने भाषणमे इस बातकी तरफ लोगोका ध्यान आकर्षित किया था कि सम्भव है आनेवाले कुछ दिनोतक हम बिल्कुल अन्धकारमें पड़ जायँ। हमारी बढ़ी हुई प्रतिष्ठा और प्रभावका एक कारण यह था कि हम बहुत दिनोसे काग्रेससे बँधे चले आते थे। हमे कांग्रेसके अन्दर एक आलोचक दल समझा जाता था जिसका प्रमुख कार्य काग्रेसको क्रान्तिकारी मार्गसे विचलित होकर एक विशुद्ध पार्लियामेण्टरी पार्टी बननेसे रोकना था। हमने इस कार्यको बड़ी सफलतापूर्वक सम्पादित किया, यहाँतक कि हमारे नेताओसे कुछ, जिन्होने १९४२ के संघर्षमे बहुत ही महत्त्वपूर्ण भाग लिया था, देशके नायक बन गये और उनसे पार्टीकी प्रतिष्ठा और जनप्रियता बहुत ही बढ गयी। लेकिन जब हम एक विरोधी पार्टीके रूपमे काग्रेससे बाहर निकल आये, यह सारी चीजे बदल गयी। बहुतसे लोगोने तो हमारे निश्चयके महत्त्वको समझा ही नही। वे सन्दिग्ध और किंकर्त्तव्य-विमूढ हो गये और इस विचित्र दृश्यको देखकर स्तब्ध रह गये कि समाजवादी-पार्टी काग्रेस-पार्टीकी विरोधी पार्टी बनकर उससे बाहर निकल आयी और उसने काग्रेसके नेतृत्वको चुनौती दे दी। कांग्रेसके लोगोने भी जानबूझकर हमे गलत रूपमे प्रदर्शित करनेकी कोशिश की। उन्होने हमपर एक ऐसे गाढ़े समयमे कांग्रेसकी पीठमे छुरा भोकनेका दोषारोपण किया जब कि सम्पूर्ण देश सकटकालीन स्थितिसे गुजर रहा था। कुछ लोगोने हमपर पितृघातका दोष लगाया। हमारे विरुद्ध तरह-तरहकी गालियोका प्रयोग किया गया और हमको अत्यन्त विकृत रूपमे दिखानेकी चेष्टा की गयी। अतएव हमको जनताको

यह समझानेमे कि हमने यह कदम क्यो उठाया, बडी कठिनाइयोका सामना करना पड़ा। जनतामे फैला हुआ बहुत-सा भ्रम इस प्रयत्नसे दूर हुआ। किन्तु फिर भी बहुतसे लोग हमारे विरोधियोके भुलावेमे आ गये और बहुत दिनोतक आश्वस्त नही हो सके। आरम्भमे हमारी प्रतिष्ठाको एक धक्का लगा। हमारी नीयतपर तरह-तरहके आक्षेप किये गये। कहा गया कि हमलोग असन्तुष्ट पद-लोभी है जो अतृप्तिके कारण विरोध-पक्षके नये रूपमे सामने आये है। युक्तप्रान्तीय धारासभाके उपनिर्वाचनोमे राजनीतिक प्रश्नोपर पर्दा डाला गया। अप्रासगिक प्रश्नोको उस्थित करके और जनताकी धार्मिक भावनाओको उद्बुद्ध करके निर्वाचकोको भ्रममे डालनेकी काग्रेसजनोने पूरी चेष्टा की। जनताकी तर्कशक्ति और बुद्धिके स्थानपर परम्परा-जनित विश्वासो, भावनाओ और रूढियोका उद्बोधन किया गया। व्याख्यान-मंचके हथकण्डोका प्रयोग किया गया और 'धर्म तथा सस्कृतिपर विपत्ति' के नारे लगाये गये। काग्रेसी उम्मेदवारोके पक्षमे गाधीजीकी आत्माका बार-बार आह्वान किया गया। निर्वाचकोको प्रभावित करनेके लिए शासन-यन्त्रका प्रयोग किया गया और अनेक भ्रष्टाचारोका आश्रय लिया गया। इसके बाद यदि चुनावमे हमारी गहरी हार हुई तो कोई आश्चर्यकी बात नही। यह सच है कि इन उपचुनावोके परिणामस्वरूप हमारे साथियोको एक गहरा धक्का लगा, किन्तु यह भी सच है कि वे बहुत जल्द इसके प्रभावोसे मुक्त हो गये। जनताकी प्रतिक्रिया विभिन्न प्रकारकी हुई। कुछ लोगोने वैधानिक तरीकोमे विश्वास ही खो दिया, कुछकी यह राय थी कि मतदानका तरीका बदलना चाहिये और साथ ही कुछ ऐसे भी थे जिन्होने सोशलिस्ट पार्टीकी शक्तिमे विश्वास खो दिया। पहले उन्होने पार्टीकी शक्ति और उसके प्रभावके सम्बन्धमे अतिरजित धारणा बना ली थी। ऐसी ही धारणा सोशलिस्ट पार्टीके, विशेषकर युक्तप्रान्तके, कार्यकर्त्ताओकी थी। किन्तु उन्हे यह देखकर बडा धक्का लगा कि परिणाम उनकी आशा और अनुमानके विपरीत हुआ। उनका अनुमान गलत सिद्ध हुआ, क्योकि उन्होने स्थितिके एक ही अगको अत्यधिक महत्त्व दिया था, अर्थात् काग्रेससे जनताके बढते हुए असन्तोष और अलगावको। सोशलिस्ट पार्टीको सगठित होनेका समय भी नही मिला था कि चुनावकी घोषणा हो गयी। मै चुनाव-सम्बन्धी असफलताका मुख्य कारण कार्यकर्त्ताओकी कमी और चुनावके सगठनात्मक कार्यकी अनुभवहीनताको समझता हूँ। यद्यपि खोयी हुई शक्ति धीरे-धीरे पुनः प्राप्त की जा रही है और स्थितिमे बहुत कुछ सुधार हुआ है, जैसा कि टाउन एरियाके चुनावो और बम्बईमे कारपोरेशन तथा असेम्बलीके उपचुनावोके परिणामसे प्रकट होता है—फिर भी इन दोनो त्रुटियोकी पूर्त्ति नही हुई और वे अब भी हमें परेशान कर रही है। मैं समझता हूँ कि जबतक ये दोनो कारण बने रहेगे, हमारी गति तेज नही हो सकती। मुझे इस बातमे किञ्चिन्मात्र सन्देह नही है कि देशकी स्थिति पार्टीके अत्यन्त अनुकूल है और यदि हम अवसरसे लाभ उठाना जानते हो तो हम सरलतापूर्वक बडी सफलताएँ प्राप्त कर सकते है। यो भी चुनाव-सम्बन्धी सारी बातोका हिसाब लगानेपर मेरा विश्लेषण इतना निराशाजनक नही है जितना कि वह ऊपरसे दिखायी देता है। सब प्रकारकी प्रारम्भिक कठिनाइयाँ होते हुए

भी हमने कुछ क्षेत्रोमे ३८, ४२ और ४३ प्रतिशत वोट पाये। दूसरे क्षेत्रोमे हमारे उम्मेदवारोको २४ से ३० प्रतिशततक वोट मिले। बहुत थोडे क्षेत्रोमे ही हमारी हार अधिक हुई और हमारी जमानतें जब्त हुई। अवश्य ही यह कोई बुरा परिणाम नही रहा और यदि मतदानकी वही प्रणाली यहाँ भी होती जो बम्बई नगरमे है, तो अवश्य ही हमने उतनी ही प्रतिशत सीटे जीती होती जितनी कि बम्बईमे हमे मिली। कोई भी वस्तु सफलता-की भाँति सफल, नही होती—हमारा विश्लेपण कितना ही गम्भीर क्यो न हो—इसमे सन्देह नही कि चुनावमे हमारी पराजयका उस समय जनताके मनपर बडा घातक प्रभाव पडा। इस सक्षिप्त सिंहावलोकनमे इस वर्पकी मुख्य घटनाका उल्लेख आवश्यक है। इसकी बहुत चर्चा हुई है और इसकी प्रतिक्रिया सम्पूर्ण देशपर हुई। फिर भी हमारी हार पार्टी-कार्यकर्त्ताओको हतोत्साह न कर पायी। उलटे और भी सक्रिय कार्यकी प्रेरणा इसने प्रदान की और हमे अपने बलाबलका सही अन्दाजा हुआ। अपनी त्रुटियोंके विषयमे हम सचेत हो गये और हमने समझा कि हमारा प्रभाव और सम्मान कांग्रेसके साथ रहनेमात्रसे अत्यधिक बढा हुआ था। इस सबककी भी हमें अत्यन्त आवश्यकता थी और जहाँ हमारी हानि केवल क्षणिक रही, वहाँ एक दृष्टिसे हमारे पृथक् होनेके उपरान्त कांग्रेसकी स्थायी क्षति हुई। उसने सदाके लिए अपना राष्ट्रीय स्वरूप खो दिया। आज उसकी हैसियत एक राजनीतिक पार्टीकी ही रह गयी है और अब वह भारतीय जनताका एकमात्र प्रतिनिधि होनेका दावा नही कर सकती। सिद्धान्तोका संघर्ष बहुत आगे बढ गया है। मजदूर-आन्दोलन अपनी एकता खो चुका है। कांग्रेस, जिसके लिए पहले मजदूर और किसान-संगठनोका कोई उपयोग न था, आज सरकारके हितमे इन संगठनोके नियन्त्रणकी आवश्यकता समझती है। इस प्रकार मजदूर-वर्ग तीन सगठनोमे विभक्त हो चुका है और अब मजदूर-सगठनोको सरकार और राजनीतिक पार्टियोसे स्वतन्त्र नही रखा जा सकता। यही दृश्य अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्रमे भी प्रकट हो रहा है। एक अन्तर्राष्ट्रीय संगठन जो सरकार और राजनीतिक पार्टियो तथा सिद्धान्तोसे मुक्त हो, राजनीतिक वास्तविकताओंसे मेल नही खाता है और इसीलिए यह विचार कार्यरूपमे नही लाया जा सकता।

कांग्रेसके सत्तारूढ होनेके साथ कुछ नवीन मनगढन्त सिद्धान्तोको प्रचारित किया जा रहा है। बहुधा श्रमिकोके हड़तालके अधिकारको अस्वीकार किया जाता है और कुछ हड़तालोको गैर-कानूनी करार देनेके लिए कानून बनाये जा रहे है। सरकार और जनताको एक बता दिया जाता है और कहा जाता है कि सरकारद्वारा नियन्त्रित तथा निर्देशित उद्योगो मे हडताल न होनी चाहिये। भारतीय प्रकृतिके नामपर विरोधपक्ष तथा वैधानिक स्वतन्त्रताकी आवश्यकतातकको अस्वीकार किया जाता है। कांग्रेस सरकारकी पिछलग्गू हो गयी है और इसलिए सामाजिक सघर्षोमे अग्रसर होनेकी अपनी स्वतन्त्रता खो चुकी है। आज इसका प्रधान कार्य सरकारके स्वार्थके लिए जन-आन्दोलन रोकना हो गया है। भारतीय आन्दोलन ऊँचे स्तरपर उठना चाहता है, वह सामाजिक और आर्थिक जीवनके नये ढाँचेको पानेके लिए लड़ रहा है। कांग्रेस उग्र नारोका प्रयोग करती है और कहती है कि

उसका संकल्प एक वर्गविहीन समाजकी स्थापना करना है। काग्रेसके अध्यक्षने यह भविष्यवाणी भी की है कि अगले पॉच वर्षोमे रक्तहीन क्रान्तिके द्वारा देश समाजवादी राज्यकी प्राप्ति कर लेगा। किन्तु व्यवहारमे काग्रेसके ये सारे दावे झूठे साबित हो रहे है और जनताको एक नवीन दिशाकी प्रेरणा प्रदान करनेमे वह असफल रही है। जान पड़ता है कि जनतामे अब उसे विश्वास नही रहा। जन-आन्दोलनोको नया बाना पहनाने और पुन दीक्षित करनेके लिए स्वयं जन-आन्दोलनकी अपेक्षा उसका विश्वास कानूनोमे अधिक दिखायी देता है। इसने कोई महत्वपूर्ण कार्य नही किये है और न कोई महत्त्वका सामाजिक परिवर्तन उपस्थित किया है। यह सच है कि विभाजन-जनित कुछ समस्याओको, जिनका उसे अकस्मात् सामना करना पडा, उसने कुशलतापूर्वक हल करनेकी चेष्टा की है। उसने कुछ दूषित और प्रतिक्रियावादी शक्तियोको रोका है जिससे उसे पराभूत हो जानेका भय था। किन्तु ये शक्तियाँ बारबार सिर उठानेका प्रयत्न कर रही है और यद्यपि इस समय वे दब गयी है, तथापि हम अपनेको धोखा देगे, यदि हम यह विश्वास कर बैठे कि उनका सदाके लिए विनाश हो चुका है। उनकी नीवे अब भी सुरक्षित है और वे प्रवृत्तियाँ और विचार जिनसे इन शक्तियोको बल मिलता है अब भी अपरिपक्व युवकोके चित्तको आकर्षित कर रहे है। यह निश्चित है कि वे बार-बार नये बानोमे प्रकट होती रहेगी, जबतक हम इस विषको सामाजिक जीवनसे निकाल फेकनेके लिए कुछ ठोस कार्य नही करते। इस विषका निवारण करनेके लिए एक शक्तिशाली सास्कृतिक आन्दोलनकी आवश्यकता है जो मध्ययुगीन अन्धविश्वासके स्थानपर ज्ञान और बुद्धिवादकी प्रतिष्ठा करे। इन प्रतिक्रियावादी शक्तियोको काग्रेसमे सम्मिलित होनेका निमन्त्रण देकर खतम नही किया जा सकता। यह सोचना कि यदि ये अपना अलग सगठन समाप्त कर काग्रेसमे मिल जायँ तो इससेकाग्रेसकी शक्तिमे वृद्धि होगी और वह दृढ होगी, समस्याको आवश्यकता-से अधिक आसान समझ लेना है। मेरा यह निश्चित विचार है कि यह प्रक्रिया आरम्भ होनेपर काग्रेस और अधिक विकारग्रस्त हो जायगी। मुख्य प्रश्न तो यह है कि क्या काग्रेस अपने नये उद्देश्योकी पूर्तिके विषयमे सच्ची है? सरदार पटेलका कहना है कि वर्तमान सरकार उद्योगधन्धोके राष्ट्रीयकरणकी योजना कार्यान्वित करनेमे असमर्थ है। यही वास्तविक सत्य है, इसके अलावे अन्य बाते पाखण्ड और कपटाचार है; और ऐसी दशामे यह साफ है कि सरकार किसी भी आर्थिक व्यवस्थाकी स्थापनाके लिए कोई समुचित प्रयत्न नही करेगी। उसने वस्तुस्थितिको यथावत् बनाये रखनेका निश्चय किया है, और धनी तथा सुविधाप्राप्त वर्गोको इससे डरनेकी कोई आवश्यकता नही। अत. पूँजीपतियोकी अपने भविष्यकी चिन्ता या तो बनावटी है या प्रसिद्ध काग्रेसी नेताओके परस्पर-विरोधी और भ्रामक वक्तव्योसे उत्पन्न हुई है। प्रकट सत्य तो यह है कि कांग्रेस एक सरक्षणशील शक्ति हो गयी है और केवल शुभ घोषणाओसे उसके स्वरूपको नही बदला जा सकता। वर्गविहीन समाजकी स्थापना हवाई बातोसे नहीं हो सकती। समाजवादी उद्देश्योकी घोषणाएँ केवल काग्रेसके वास्तविक रूपको ऊपरसे ढँकनेमे ही सहायक हो सकती है। उसकी कथनी और करनीका अन्तर बुद्धिमानोको धोखा नही दे सकता। यह सोचना

गलत है कि कांग्रेसकी उग्र राष्ट्रीयताके गर्भसे समाजवादका जन्म केवल घोषणाओं और व्याख्यानोंके सहारे सम्भव होगा। सर्वहारा वर्गको अपने नये ऐतिहासिक कर्त्तव्यके प्रति जाग्रत करनेके लिए जोरदार सामाजिक कार्यक्रम और उस वर्गका सगठन आवश्यक है और उसे वर्गविहीन समाजकी स्थापनाके कर्त्तव्यकी पूर्त्तिके योग्य बनानेके लिए पर्याप्त शिक्षाकाल आवश्यक होगा। बिना जन-सहयोगके कोई भी क्रान्ति सफल नही हो सकती। काग्रेस जिस मार्गपर चल रही है वह उसे एक अन्धी गलीमे ले जायगा और आजकी महत्त्वपूर्ण समस्याओको वह हल न कर सकेगी। काग्रेस और सोशलिस्ट पार्टीके उद्देश्यो और नीतिमे कोई अन्तर नही है, इस कथनमे कोई सत्यता नही। कुछ शर्तोको पूरा करनेपर ही कोई सगठन सामाजिक परिवर्तन लानेका समुचित साधन हो सकता है और कांग्रेस इन शर्तोको पूरा नही करती। काग्रेस उग्र राष्ट्रीयताका प्रतिनिधित्व करती है और अधिनायकवादकी ओर अग्रसर हो रही है। इसी कारण प्रत्येकसे काग्रेसमे सम्मिलित होनेको कहा जा रहा है। अपनेमे सम्मिलित करनेके पहले किसी समुदायकी विचारधारा और पिछले इतिहासको वह नही देखना चाहती। उसकी एकमात्र चिन्ता उन सारे विरोधो और उन स्वतन्त्र सगठनोको समाप्त कर डालनेकी है जो उसके अधिकारका विरोध करनेकी इच्छा कर सके। यदि प्रतिक्रियावादी और साम्प्रदायिक शक्तियाँ अपना अलग अस्तित्व समाप्त कर उसके अनुशासनमे आ जायँ तो वह सहर्ष उनके साथ शक्तिका बँटवारा कर लेगी। फिर भी यदि यह कार्य सम्पन्न हो गया तो कांग्रेसकी क्या दशा होगी, यह सोचकर हम काँप जाते है। तथापि काग्रेसके अध्यक्ष महोदय यह कहनेका साहस करते है कि पाँच वर्षमे वर्गविहीन समाज स्थापित हो जायगा !

मेरे आदरणीय साथी राममनोहर लोहियाने अपने युक्तप्रान्तके चुनावके दौरेमे 'संकटवाद' शब्दका प्रयोग किया है। यह छोटासा शब्द काग्रेसजनोद्वारा प्रतिदिन होनेवाले भाषणोकी मूल प्रवृत्तिको स्पष्ट करता है। उनका कथन है कि वह नवजात राज्य तरह-तरहके खतरोसे घिरा हुआ है। अत: प्रत्येक नागरिकको सरकार-भक्त बनना चाहिये और उसे अपना अधिक सहयोग देना चाहिये। इनमेसे कुछ संकट अब दूर हो चुके हैं। पर उनके भाग्यसे नये सकट उत्पन्न होते रहते है। इनमे सबसे नया साम्यवादका सकट है। हमसे कहा जाता है कि चीनका पतन हो रहा है, साम्यवादका सकट हमारी सीमाओतक पहुँच गया है और यदि इस समय कोई परिवर्तन अपने देशमे होता है तो कम्युनिस्ट इससे लाभ उठावेगे। मेरी रायमे यह प्रचार समाजके संरक्षणशील तत्त्वोको और उन राजनीतिक दलोको जो प्रजातन्त्रका समर्थन करते है और अधिनायकवादके विरुद्ध है डराये रखनेका एक साधन है। साधारणतया यह भी विश्वास किया जाता है कि मध्य मार्गके राजनीतिक दलोका भी कोई भविष्य नही है और इस मध्य मार्गके दलोंमें सोशलिस्ट पार्टी भी एक है। यह एक गलती है जिसके सुधारकी आवश्यकता है। मैं कम्युनिस्ट पार्टीको उग्र वामपक्षी पार्टी नही मानता। मेरे विचारसे वही पार्टी उग्र वामपक्षी पार्टी हो सकती है जिसमे सामाजिक न्याय और समानताकी प्राप्तिके लिए क्रान्तिकारी परिवर्तन लानेकी बुद्धिमत्ता और साहस हो। कोई अधिनायकवादी पार्टी

सोशलिस्ट पार्टी नही हो सकती चाहे इसके सामाजिक उद्देश्य सोशलिस्ट पार्टी जैसे ही क्यों न हो। किसी राजनीतिक दलकी कार्य-प्रणालीकी उपेक्षा नही की जा सकती। उस दलका स्थान निर्णय करते समय इसकी विवेचना करनी ही होगी, क्योकि साध्य और साधन अन्योन्याश्रित है और एक दूसरेसे अलग नही किये जा सकते। साम्यवाद प्रजातन्त्रका हिमायती नही है और मानव-व्यक्तित्वके विकासके लिए आवश्यक मूल्योका आदर नही करता। यह उस वैधानिक प्रजातन्त्रकी खिल्ली उडाता है जिसकी रक्षाके लिए इसने विगत महायुद्धमे इतना जोर लगाया। इसके लिए नैतिक नियमोकी कोई उपयोगिता नही है और क्षणिक लाभके लिए सन्देहात्मक नैतिकताके उपायोका आश्रय लेनेमे भी इसे हिचक नही होती। इसके साथ ही साथ यह रूसकी वैदेशिक नीतिका पुछल्ला है और उसके लिए यह अपने ही राज्यकी प्रादेशिक एकताको छिन्न-भिन्न कर सकता है या अपने ही राज्यको पलट सकता है। इन कारणोंसे कम्युनिस्ट पार्टी उग्र वामपक्षी पार्टी नही हो सकती। ऐसी पार्टी तो सोशलिस्ट पार्टी ही है क्योकि इसे प्रजातन्त्रमे पूर्ण विश्वास है और इसने समाजमे क्रान्तिकारी आर्थिक परिवर्तन लाना अपना उद्देश्य बनाया है। इसके साथ ही साथ यह केवल विशुद्ध विधानवादी दल ही नही है। इसकी क्रान्तिकारी परम्परा और जनतामे इसके कार्य इस बातकी गारण्टी है कि यह अपनी क्रान्तिकारिताको नहीं छोडेगी।

मेरी रायमे यहाँ इस धारणापर भी विचार करना आवश्यक है जिसके कारण लोग समझते है कि कम्युनिस्ट पार्टीके लिए इस देशमे आगे आनेका अधिक उपयुक्त अवसर है। जो लोग इस समस्यापर अधिक दूरतक नही सोचते, यह अधिकाश ऐसे ही लोगोका विश्वास है। चीनमे कम्युनिस्ट विजय ही इस भ्रान्त धारणाका कारण है। लोग यह भूल जाते है कि दोनो देशोकी परिस्थितियोमे महान् अन्तर है। सोलह वर्षके लम्बे युद्धके कारण चीनकी स्थितिमे लगातार अव्यवस्था रही है और इसकी आर्थिक व्यवस्था अस्तव्यस्त हो चुकी है। वास्तवमे पिछले चालीस वर्षोसे वहाँ शान्ति नही रही है। इसके विपरीत भारतवर्षमे सदा शान्ति और सुरक्षा रही है और शासनतन्त्र कभी भङ्ग नही हुआ। युद्ध कभी भारतवर्षके प्रवेशद्वारोतक नही पहुँच सका और हमे मानव-जीव और सम्पत्तिका वह विनाश नही देखना पड़ा जो चीनमे आये दिन हुआ है। इसके साथ ही साथ चीनमे एक कम्युनिस्ट राज्य रहा है जो सदा अपनी सीमाओका विस्तार करता रहा और कोमिन-तागसे नेतृत्वके लिए प्रतिस्पर्धा करता रहा है। भारतवर्षमे कम्युनिस्ट पार्टी जनप्रभाव-शून्य पार्टी है। चीनकी तरह भारतवर्षकी आर्थिक दशा भी नही खराब हुई है और न उस तरहकी मुद्रास्फीति ही हुई है। हमारे देशका शासनप्रबन्ध भी उतना भ्रष्ट नही है और सेना तथा पुलिस भी नये राज्यके प्रति वफादार बनी हुई है। चीनके कम्युनिस्टोके पक्षमे एक और मुख्य बात यह थी कि वहाँके लोगोको दोमेसे एकको चुनना था—या तो कम्युनिस्ट पार्टीको चुने या कोमिनतांगको। इसके अलावे उनके सामने दूसरा उपाय नही, क्योकि दूसरे राजनीतिक दल जन समर्थन विहीन छोटे-छोटे दल है। चीनकी कम्युनिस्ट सरकार च्याग-काई-शेकके शासनसे नि सन्देह अच्छी है। उन्होने सामन्तवादी प्रथाको

तोड दिया है और जमीन खेत जोतनेवालोको बाँट दी है। उन्होने अपने सिद्धान्तोंमे भी चीनकी स्थितिके अनुकूल सुधार कर चीनी साम्यवादको नया स्वरूप दिया है जो कभी-कभी इसी कारण 'खेतिहर साम्यवाद' कहलाता है। माओत्सेतुगका रूसका पुछल्ला होना भी निश्चित नही। भारतवर्षमे लोगोको अपनी इच्छानुसार चुनावकी अधिक स्वतन्त्रता है। सोशलिस्ट पार्टीको किसान और मजदूरोके रूपमे जनताका समर्थन प्राप्त है। उसने जनताको आकृष्ट किया है और कुछ ऐसे राष्ट्रीय व्यक्तियोको उपस्थित किया है जिनका जनता आदर करती है। यह पार्टी बढ रही है और यदि इसकी कमियाँ दूर कर दी जायँ तो यह कांग्रेससे राजनीतिक सत्ताके लिए प्रतिद्वन्द्विता कर सकती है। कुछ लोगोका यह भी कहना है कि चीनमे कम्युनिस्ट राज्यकी स्थापनाके बाद चीन भारतवर्षमे अपनी सेना भारतीय कम्युनिस्टोकी सहायताके लिए भेजेगा। यह कोरी कल्पना है। नये कम्युनिस्ट राज्यको कितनी ही आन्तरिक समस्याओंका सामना करना पड़ेगा। वह अपनी ही समस्याओमे उलझा रहेगा और शान्ति-सुरक्षाकी स्थापना ही उसके लिए कठिन होगी। अपने पडोसियोसे मित्रता रखना ही उसके लिए हितकर होगा और यदि भारत चीनकी नयी सरकारको अपनी स्वीकृति देगा तो उसे भी सद्भावनाके रूपमें इसका उत्तर देना होगा और इस दशामे वह भारतके कम्युनिस्टोको अपनी हरकते सुधारनेकी सलाह भी दे सकता है। किसी भी दशामे उसके लिए भारतीय कम्युनिस्टोकी आकाक्षाओं-का समर्थन करना कुछ वर्षोतक सम्भव न होगा। यदि भारतकी परिस्थितिको वास्तवमे अच्छी तरह समझना है तो एक बातपर और विचार करना होगा। भारतके प्रधानमन्त्री अपनी नीतियोके निर्माणमे उतने कठोर और सकीर्ण नही हैं जैसे कि चीनमे च्यागकाईशेक रहे हैं। मुझे तो यहाँतक विश्वास है कि यदि वे सकटके समय यह समझेगे कि क्रान्तिकारी परिवर्तनके बिना स्थिति नही सँभाली जा सकती तो वैसा कदम अवश्य उठावेगे। दोनों नेताओके दृष्टिकोण और सिद्धान्तमे महान् अन्तर है। इसलिए सब बातोपर विचार करनेके बाद मै इस परिणामपर पहुँचा हूँ कि भारतवर्षमे कम्युनिस्ट-नेतृत्वकी दिल्ली दूर है। इस देशमे राजनीतिक असन्तोष, राजनीतिक घृणा और उदासीनताके रूपमें तेजीसे परिवर्तित हो रहा है और यही कारण है कि यहाँ आलोचनात्मक चिन्तनका अत्यन्त अभाव है। यह बडी खतरनाक स्थिति है, किन्तु इसका उपाय हो सकता है यदि सरकार जन-जीवनमे एक नयी भावना उत्पन्न करे। उदासीनताकी इस भावनाको मिटाना है और जनताको राजनीतिक मामलोमे सक्रिय दिलचस्पी लेनेके लिए उत्साहित करना है। जनताके उदासीन मनोभाव मैत्रीभावमे परिवर्तित होने चाहिये और यह तभी सम्भव है, जब भोजन और वस्त्रके बुनियादी सवाल सन्तोषप्रद रूपसे हल हो जायँ और दमन-भयसे, मुक्त होकर सरकारकी आलोचना करनेकी वैधानिक स्वतन्त्रता प्राप्त हो।

यहाँपर देशकी प्रजातान्त्रिक स्वतन्त्रताकी चर्चा करना भी अप्रासगिक नही होगा। दुर्भाग्यसे, प्रजातन्त्रवादका मूल यहाँकी मिट्टीमे नही है। प्रजातन्त्र एक जीवन-विधि है और एक ऐसे देशमें जहाँ प्रजातन्त्रके अभ्यास और उसकी परम्पराका प्रायः अभाव है। इसका वातावरण सतत प्रयत्नोद्वारा ही तैयार किया जा सकता है। सम्प्रदायवाद

इसका सबसे बडा शत्रु है और यदि प्रजातन्त्रात्मक जीवन-प्रणालीको सफल बनाना है, तो उसका उन्मूलन अनिवार्यत होना चाहिये। साम्प्रदायिकताके परिणामस्वरूप हमारी राजनीतिक विचारधारा भी विकृत हो गयी है और अधिकाशमे हमारी परम्परागत चिन्तन प्रणालीने, जिसका हमारी वर्तमान समस्याओके साथ कोई मेल नही है, अतिशय महत्त्व प्राप्त कर लिया है। यह स्पष्ट तौरपर समझ लेना है कि प्राचीन संस्कृतिके पुनर्जीवनका आन्दोलन आज दिन उपस्थित समस्याओके समझने एवं उनका हल निकालनेमे हमे कुछ भी मदद नही पहुँचा सकता। हमलोग शीघ्रगामी सामाजिक परिवर्तनोके युगमें रह रहे है, जहाँ परिस्थितियाँ सदैव हमारे लिए नित्य नयी माँग उपस्थित करती रहती हैं। हमलोग अपनेको प्रत्येक क्षण नवीन परिस्थितियोके अनुकूल बनानेके लिए विवश हैं। विज्ञान और शिल्पके इस युगमे, राजनीतिक और आर्थिक सगठन इतने जटिल होते जा रहे हैं कि लदे हुए जमानेके जीर्ण विचारोके वलपर उनका नियन्त्रण और संचालन हम नही कर सकते। यदि आज हमे जीवित रहना है तो हमे अनिवार्यत उन सामाजिक और राजनीतिक मूल्योको अपनाना ही होगा, जो वर्त्तमान समाजके लिए अपरिहार्य है। इनमेसे एक प्रजातन्त्रवाद भी है। प्रजातन्त्रवादका अर्थ सामान्य जनके प्रति आदर और उसकी राष्ट्रविधायक शक्तिमे विश्वास है। जनसाधारण कोई जडराशि नही है जिसकी उपेक्षा की जाय। उसमे आरम्भशक्ति भी होती है और वह सकटके समय क्रियाशीलताका जोरदार तकाजा पेश करता है। इसलिए जो प्रजातान्त्रिक सिद्धान्तोके पोषक है, वे किसी हालतमे भी सामान्यजनकी उपेक्षा नही कर सकते, बल्कि ऐसे लोग जन-शिक्षाके द्वारा साधारणजनको इस योग्य बनायेगे कि वह अपनी इच्छाको व्यक्त कर सके और शासन-व्यवस्थाकी आलोचना करनेके अपने अधिकारोका भी उपयोग कर सके। दुर्भाग्यसे जो शासनारूढ हैं उनका मनोभाव अनुदार है। जनताद्वारा की गयी सरकारी नीतिकी आलोचनाके प्रति सरकार सहिष्णु नही है। अवश्य ही विरोधी विचारोको स्वतन्त्र रूपसे व्यक्त करने और सगठित करनेके अधिकारपर सरकारी आक्रमण राजनीतिक प्रगतिको रोकता है, उसमे वोलने, लिखने और सघवद्ध होनेकी स्वतन्त्रता सुरक्षित होनी चाहिये और एक न एक वहाने स्वतन्त्र समाजके अधिकारोपर कुठाराघात करनेकी क्रिया बन्द होनी चाहिये। किन्तु वैधानिक स्वतन्त्रताके बावजूद हम देखते हैं कि जनतान्त्रिक भावोका गला घोटा जा रहा है और नागरिक स्वतन्त्रता कुचली जा रही है। इन घातक हमलोका तगड़ा विरोध करनेके लिए एक सुसगठित लोकमतका अभाव है। जनताकी उदासीनता अधिकारियोको और भी गैरजिम्मेदार बना देती है और यदि वह कोई आवाज अन्यायके विरुद्ध उठाती भी है तो वह अनसुनी कर दी जाती है। खतरेके समय यदि सरकार जनताकी सम्मति प्राप्त कर विशेषाधिकारोसे काम ले तो इसमे किसीको भी आपत्ति नही हो सकती, किन्तु साम्प्रदायिक शान्तिके नामपर, जबकि वस्तुत कोई आतंक या भयकी बात न हो, जनताके मौलिक अधिकारोपर एक लम्बे समयतक रोक लगाना अवश्य ही अवाछनीय है। यदि सरकार अपने वचनोके प्रति सच्ची है तो उसे अवश्य इसका सबूत देना चाहिये कि वह प्रजातान्त्रिक तरीकोपर चलती है और विधानका आदर

करती है । जनतन्त्रकी सीमाओंको सीमित करनेकी अपेक्षा उत्तरोत्तर विस्तृत करना चाहिये ।

इस सम्बन्धमे शिक्षाके महत्त्वपर भी जोर देना होगा, क्योकि शिक्षाके माध्यमसे ही राष्ट्रके तरुणोमे प्रजातान्त्रिक तरीकोकी आदते डाली जा सकती है । देशके उन तरुणोको जो ध्वसात्मक सिद्धान्तोके विषैले प्रभावमे आ गये है, पुन. शिक्षाद्वारा इसके दुष्परिणामोसे बचाना है और इसके लिए हमारे शिक्षाकेन्द्रोमे जन-तान्त्रिक विचारो एवं भावोका वातावरण तैयार करना है । इस नये कार्यमे देशके विश्वविद्यालय एक प्रमुख भाग ले सकते है । इन विश्वविद्यालयोको सृजनात्मक विचारोका केन्द्रस्थल बन जाना है, यहाँ अध्येताओंको अपने अध्यापकोके निकट सम्पर्कमे आने और निरन्तर विचारोका आदान-प्रदान करनेका अवसर मिले । इसी कारण शिक्षण-सस्थाओको देशके जीवनसे अलग नही रहना चाहिये और इसे मान लेनेमे कोई हिचक नही होनी चाहिये कि गौरवपूर्ण पार्थक्यकी नीति निश्चित रूपमे हानिकारक है । वर्तमान समस्याओपर तर्क-वितर्क करनेको प्रोत्साहन मिलना चाहिये और अध्यापकोको देशके सामाजिक और राजनीतिक जीवनमे भाग लेनेका अधिकार मिलना चाहिये । विश्वविद्यालयोको बढते हुए अधिनायकवाद और उसी तरहके सिद्धान्तोके कुप्रभावोसे मोर्चा लेनेमे प्रमुख भाग लेना चाहिये । इन विश्वविद्यालयों-को चाहिये कि वे प्रजातन्त्रको मजबूत बनावे और नवयुवकोको अपने पेशेके लिए ही तैयार न करे बल्कि इसलिए भी कि वे नागरिक कर्तव्योकी पूर्ति कर सके । विश्वविद्यालयोकी शिक्षण-प्रणाली ऐसी हो कि सत्य परीक्षण करनेमे अध्येताओकी दृष्टि साफ हो और सत्यको ग्रहण करनेमे वे साहसी हो, चाहे वह सत्य प्रिय या अप्रिय हो । शिक्षा तो एक सतत प्रवाह है; ज्ञानकी सीमाओका विस्तार हो रहा है । नवीन सत्यो और सिद्धान्तोका उद्घाटन हो रहा है और नये विज्ञानोका विकास हो रहा है । इसलिए, लाजिमी तौरपर यह आवश्यक है कि मस्तिष्कका समय-समयपर परिष्कार होता रहे, जिससे चित्तमे सामाजिक चेतनाका लोप न हो जाय, जिसकी मानव-विकासके लिए अत्यन्त आवश्यकता है । अध्ययनके पाठ्यक्रमोमे विधानके साथ-साथ मानवशास्त्रोका भी समावेश होना चाहिये । अध्येताओंमे एक वैज्ञानिक दृष्टिकोण पैदा करना चाहिये और ऐसा प्रयत्न होना चाहिये कि युवकोके हृदयमे सामाजिक और आध्यात्मिक मूल्योका महत्त्व घर कर जाय । यहाँपर हमे यह भी नही भूल जाना है कि विज्ञानके विकास और सामाजिक समस्याओपर उसके प्रयोगसे ही सस्कृतिका समाजीकरण तथा दरिद्रताका निवारण सम्भव हुआ है । प्राचीन समाजमे, जब कि समाजके आर्थिक ढाँचेको मूलत· परिवर्तित करना सम्भव नही था, दयालु लोग, जो दरिद्रों और दलितोकी दशापर द्रवित होते थे, सिर्फ धनीमानी व्यक्तियोसे उनके प्रति उदारता बरतनेकी याचना करके ही रह जाते थे । वह विज्ञान ही है जिसने हमारे लिए उन नवीन मानव-मूल्योको प्रस्तुत किया है, जिनके सहारे हम सामाजिक न्याय एव समता प्राप्त कर सकते है । समाजवाद निश्चय ही एक स्वप्नमात्र रह जाता और एक विश्वव्यापी आन्दोलनका वर्तमान स्वरूप कभी न प्राप्त करता, यदि विज्ञान और शिल्पने बहुलताका युग न ला दिया होता । किन्तु वैज्ञानिक दृष्टिकोणको मानव मूल्योमे

आस्था रखकर ही आगे बढ़ना है, जिससे अश्रेयस्कर प्रयोजनोकी सिद्धिके लिए विज्ञानका दुरुपयोग न हो। वैज्ञानिक ज्ञानकोषको सभ्यताके विकास तथा सदुद्देश्योकी पूर्त्तिके निमित्त समाजकी सेवामे अर्पित होना चाहिये।

प्रचलित भ्रान्त धारणाओमेसे एक धारणा यह भी है कि समाजवाद प्रजातन्त्रके विरुद्ध है, इस धारणाका उन्मूलन होना चाहिये। मार्क्स एक महान् मानवतावादी था। व्यक्ति-स्वातन्त्र्यके लिए उसका आग्रह उल्लेखनीय है। उसका विश्वास था कि इतिहासकी एक दिशा है और उसके अनुसार इस युगमे क्रान्तिकारी सर्वहारा ही मानव-समाजका प्रतिनिधि है। उसने पूंजीवादको एक अनुचित सामाजिक व्यवस्था वतलाया था, क्योकि मुनाफेकी लिप्सामे वह व्यक्तिवाद और अहम्मन्यताको जन्म देता है। पूंजीवादी व्यवस्थाके अन्दर श्रमिकवर्ग अपनी श्रमशक्तिको दूसरी अन्य वस्तुओकी तरह वेचनेको वाध्य होता है और अपने मानव-तत्त्वसे च्युत हो जाता है। इस वर्गको पुन: उसने मानव-स्वरूपमे प्रतिष्ठित करना चाहा था। इस कार्यके लिए मुनाफेकी प्रवृत्ति और प्रति-द्वन्द्वितापर आश्रित पूंजीवादी व्यवस्थाके स्थानपर एक मार्क्सवादी व्यवस्थाकी स्थापना करनी होगी, जिसमे मुनाफेकी लिप्साके स्थानपर एकता और सहयोगकी भावनाका विकास हो। मार्क्सके शब्दोमे 'सर्वहाराकी मुक्तिमे ही मानव-समाजकी मुक्ति सन्निहित है, क्योकि समाजके समस्त उत्पीड़न सर्वहारा वर्गमे ही केन्द्रित है।' रोजा लुक्समवर्गके शब्दोमे 'समाजवाद केवल रोटीकी समस्या ही नही है प्रत्युत एक विश्वव्यापी सांस्कृतिक आन्दोलन है'। अधिनायकतन्त्र आतक पैदा करता है और मनुष्यको राज्यकी मशीनका एक पुर्जामात्र बना देता है। यह मनुष्यके गौरवको नष्ट करता है और व्यक्तित्वके विकासका अवसर नही देता। यह एक नये ढगके आतक और दासताको जन्म देता है, जिसमे नागरिककी अपनी कोई इच्छा नही होती और वह राज्यका एक पुर्जामात्र होता है। अवश्य ही, समाजवाद जो कि सामान्य-जनकी स्वतन्त्रताका हामी है, सरकारके इस स्वरूपकी स्वीकृति नही दे सकता। आश्चर्य है कि कम्युनिस्ट लोगोके, जिन्होंने जनवादी मोर्चेके दिनोमे और फिर विगत महायुद्धके समय वैधानिक प्रजातन्त्रकी रक्षा तथा युद्ध और फासिज्मके खिलाफ लड़नेके लिए समस्त प्रजातान्त्रिक शक्तियोके साथ मिलकर सयुक्त मोर्चा बनाया था, अपने देशमे ही एक निरकुश अधिनायकतान्त्रिक राज्य है, जो वहाँकी जनताके जीवनपर अपना पूर्ण नियन्त्रण रखता है। जनताके प्रजातान्त्रिक अधिकारोकी रक्षाके प्रश्नपर जनयुद्ध लडा गया और जीता भी गया। युद्धका मूल प्रश्न राजनीतिक प्रजातन्त्र और फासिज्मके बीच निपटारा करना था। प्रजातान्त्रिक स्वतन्त्रताको साधारण-जनकी किसी महत्त्वपूर्ण समस्याको व्यक्त करना चाहिये, तभी वह लाखो मनुष्योको साहसपूर्ण कार्योके लिए प्रेरित कर सकती है। यह नही कहा जा सकता कि विगत युद्ध आत्मरक्षाके लिए था। प्रश्न यह है कि 'आत्मरक्षा किस लिए ?' जनता अपने जनतान्त्रिक अधिकारोका आदर करती थी और अपने देशको फासिस्ट विचारधाराके आक्रमणसे बचाना चाहती थी। मानव-जीवन और सम्पत्तिकी इतनी वर्बादी और विनाशके बाद अधिनायक-तन्त्रको स्वीकार करना नितान्त पागलपन ही होगा। यह आशा की जाती

थी कि रूसी लोग जिन्होने फासिस्ट शक्तियोको पराजित करनेमें महत्त्वपूर्ण भाग लिया था, अपने घरको सँभालेंगे और राज एव अपनी सामाजिक संस्थाओंको जनतान्त्रिक रूप देंगे। परन्तु ऐसी कोई भी बात नही हुई और इसलिए यह अनुमान करना अनुचित न होगा कि रूसी नेताओको राजनीतिक लोकतन्त्रमे कोई प्रेम नही था और वे फासिज्मके विरुद्ध सघर्षमे ससारके जनतान्त्रिक राष्ट्रोको अपनी ओर घसीट लानेके लिए ही उनकी जनतान्त्रिक भावनाओंका उपयोग कर रहे थे। किन्तु जिन मानवीय मूल्योके रक्षार्थ संसारने अपना इतना खून बहाया उनको दृढताके साथ बचाना ही चाहिये और यदि अपनेको साम्यवादी या समाजवादी कहनेवाले इसमे असफल सिद्ध होते है तो वे जनहितके साथ गद्दारीके दोषभागी होगे।

प्रान्तीयता एक दूसरा अभिशाप है जिसे हमारी जनताको भुगतना पडता है। भारतीय एकताको दृढ करनेके लिए अन्तर्प्रान्तीय बन्धुत्व और मेलका होना आवश्यक है। यह तभी सम्भव है जब हम एक दूसरेको समझने और एक दूसरेकी भाषा और उनके साहित्यको जाननेका प्रयत्न करे। एकतान्त्रिक शासन-प्रणाली इसका उपचार नही है। भाषाके आधारपर प्रान्तोके पुनर्निर्माणकी माँगको हम अब नही रोक सकते और समय रहते ही इस माँगको स्वीकार कर लेनेमे ही कुशलता है। हमारा पुराना इतिहास और हमारी परम्परा दोनो ही इस माँगके अनुकूल रहे हैं और संघ-शासन विधान भारतीय स्थितिके लिए अति उपयुक्त है। निस्सन्देह हमारे इन अभीष्ट उद्देश्योकी पूर्तिके अन्य प्रकार भी ह। उनमेसे एक प्रकार यह है कि समस्त प्रान्तीय भाषाओके लिए एक ही लिपि अपनायी जाय। इससे इन भाषाओंके सीखनेके कार्यमे सुविधा होगी, क्योकि इनमेसे अधिकाशका पैतृक स्रोत एक ही है। जातीय और साम्प्रदायिक भेदोसे रहित एक सामान्य दीवानी-कानून और एक सामान्य आर्थिक सगठन, दूसरा अति अत्यावश्यक सुधार है जिससे अन्त-प्रन्तीय बन्धनोको दृढ बनानेकी आशा की जा सकती है। पारस्परिक अविश्वास और विरोधके सभी कारणोको दूर करना चाहिये और एक प्रान्तके अन्तर्गत समस्त समुदायों—विशेपत. अल्पसंख्यको—को विश्वास दिलाना चाहिये कि उनके उचित स्वार्थोके लिए कोई खतरा नही रहेगा और समस्त वर्गोके हाथ सामाजिक न्याय होगा। जाति-व्यवस्था भारतका अभिशाप रही है। इसने हिन्दू-समाजको अभेद्य विभागोमे विभक्त कर दिया है। हालके चुनावोमे जाति प्रथाकी बुराइयाँ प्रत्यक्ष दिखायी पडी हैं। जातिगत आधारपर राजनीतिक गुट बनाये जा रहे हैं और कुछ विशेप स्थानोपर तो तथाकथित निम्न-जातियोने उच्च जातियोके विरुद्ध अपनेको सगठित कर लिया हे। यह भारतीय स्थितिमे और जन्म और सम्पत्ति सम्बन्धी विशेपाधिकारोके विरुद्ध अकिञ्चनो और दलितोके संघर्पका द्योतक है। यह स्थिति हमारे लिए चाहे जितनी अप्रिय हो, पर मुझे भय है कि हमे इस अपरिहार्य अवस्थासे गुजरना ही पड़ेगा। अतीतमे साम्प्रदायिक निर्वाचन-प्रणालीकी स्वीकृति और कुछ विशेप सम्प्रदायोके लिए सुरक्षित स्थान प्रदान करना वर्तमान अवस्थाके लिए मुख्य रूपसे उत्तरदायी है। फिर भी मैं समझता हूँ कि हमारी राजनीतिमे यह केवल एक अस्थायी मंजिल है। किन्तु यह देखकर परेशानी होती है

कि कुछ स्थानोपर कांग्रेसके लोग अपने प्रभुत्वको कायम रखनेके लिए जातीय संगठनोके साथ गठबन्धन कर रहे है । मैं सोचता हूँ कि यदि हम निम्न जातियोको उचित रीतिसे शिक्षित करें और अपने आचरणसे उन्हे दिखा दे कि हम उनके सामाजिक और आर्थिक स्तरको ऊँचा करनेकी सचमुच इच्छा रखते है और हम उनके उचित राजनीतिक अधिकारोको स्वीकार करने तथा अपने एकाधिकारकी प्रवृत्तियोको त्यागनेको तैयार हैं तो जात-पॉतके सकीर्ण आधारपर छोटे-छोटे गुट बनानेकी निरर्थकता हम उन्हें समझा सकते हैं । सोशलिस्ट पार्टीके लिए शोषितोके अधिकारोकी रक्षक होनेके कारण उनका विश्वास प्राप्त करनेका सबसे अधिक अवसर है । उन्हे पार्टीके सिद्धान्तो और नीतियोमे दीक्षित किया जा सकता है और राजनीतिमे जातिवाद तथा सम्प्रदायवादसे दूर हटाया जा सकता है । केवल एक समाजवादी समाजमे जो समता और सामाजिक न्यायके ऊपर प्रतिष्ठित होता है, उनकी सामाजिक और आर्थिक दशामे सुधार किया जा सकता है ।

दूसरा आवश्यक प्रश्न जिसपर मै विचार करना चाहूँगा कृपक-समस्या है । जमीदारी-निर्मूलन बहुत दिन पहले ही हो जाना चाहिये था, किन्तु अभीतक उसका अन्त दिखायी नही दे रहा है । किन्तु तर्कके लिए मै मान लेता हूँ कि यह निकट भविष्यमे खतम होने जा रही है । मेरे अपने प्रान्तमे जमीदारी-निर्मूलन-समितिकी रिपोर्ट प्रकाशित हो चुकी है और सूचित किया गया है कि एक बिलका मसौदा तैयार हो रहा है । इसके सुझाव प्रगतिशील नही है और वे धारा-सभाके, जिसने इस कमेटीको नियुक्त किया था, प्रस्तावका पूर्ण रूप से पालन नही करते । व्यवस्थापिका सभाका आदेश सरकार और खेतिहरके बीचके मध्यस्थ वर्गको समाप्त करनेका था । किन्तु इसे समितिके सुझावोका आधार नही बनाया गया है । समितिका सुझाव शिकमीदारोके एक बहुत बडे वर्गको अधिकार-विहीन कर देता है और उसकी सिफारिशोमे भूमिके पुनर्वितरणकी कोई भी गुन्जाइश नही है । दूसरी बात जिसपर मैं जोर देना चाहता हूँ मुआविजेकी अदायगीके सम्बन्धकी है । सत्त्वत सोशलिस्ट पार्टी इस सिद्धान्तको नही मानती । हम इस मतके है कि सामान्यत: स्वामित्वके आधारपर कोई भी मुआविजा नही देना चाहिये, किन्तु पुनर्वासनके आधार पर गरीब भूस्वामियोको हरजाना दिया जा सकता है । इसका अर्थ यह हुआ कि धनिकोको किसी प्रकारका हरजाना पानेका अधिकार नही है, पर गरीबोके लिए ऐसी सुविधाएँ प्रस्तुत की जायेगी, जिनसे वे नया-जीवन प्रारम्भ कर सके । किन्तु चूँकि सरकारने मुआविजा चुकानेके सिद्धान्तको मान लिया है, अत हमने भी अपने प्रस्तावमे थोड़ा परिवर्तन करना स्वीकार कर लिया है । हमने मुआविजेकी एक क्रमिक योजना बनायी है और सबसे बड़ी रकम एक लाख तय की है । हमने यह भी सुझाव रखा है कि अधिकतम क्षेत्र जिसे रखनेकी अनुमति किसी खेतिहरको दी जा सकती है तीस एकडसे अधिक न होना चाहिये और यह नियम कानूनकी स्वीकृतिके साथ ही लागू होना चाहिये । यदि यह नियम मान लिया जाता है तो बडे खेतोको तोड देना पडेगा और किसानो और जमीदारोके गरीब वर्गोके बीच वितरणके लिए भूमि प्राप्त हो सकेगी । इसके अतिरिक्त रिपोर्टमे उन लोगोके भाग्यका भी कोई विचार नही किया गया है जिनके खेत आवश्यकतासे भी

छोटे हैं—यद्यपि इनकी सख्या वहुत अधिक है। हम समझ सकते हैं कि ऐसे प्रान्तमे खेती अलाभकर ही रहेगी और अनाजकी अतिरिक्त उपज वहुत अधिक न होगी। उनकी समस्या टेढी है और यद्यपि यह सच है कि उन्नत वीजो, अच्छी खाद और उन्नत नस्लके चौपायोके सहारे भूमिकी उत्पादकता वढायी जा सकती है, तथापि यह तभी सम्भव है जव वे अपने साधनोका एक साथ उपयोग करे और सहकारी उद्योगकी ओर अग्रसर हो। किन्तु इसमे स्वभावत समय लगेगा। इस वीच जो कुछ भी हम कर सकते है वह यही कि वर्तमान स्थितिमे हम जितने अधिक खेतोको लाभप्रद वना सके वनाये, और जो लाभप्रद न वन सके उन्हे दूसरे प्रकारकी सहायता दे। मेरी रायमे यदि सरकार उनकी पूरी लगान माफ करनेको तैयार न हो तो भी उसे वहुत कम कर देना चाहिये।

दूसरी आलोचना जो मै करना चाहता हूँ लगानकी उस रकमके वारेमे है जिसे जमीदारी निर्मूलनके उपरान्त किसानसे वसूल किया जायगा। प्रस्ताव यह है कि उनसे वही लगान वसूल की जावे जितना वह आज दे रहे हैं। यदि यही किया गया तो किसानको कोई मानसिक तुष्टि न होगी और वह अपनी स्थितिमे कोई परिवर्तन महसूस नही करेगा। हमारा सुझाव है कि जो मालगुजारी आज जमीदार दे रहे हैं किसानोसे उससे अधिक रकम लगानमे न ली जाय। इस आधारपर कि हरजानेका भार काश्तकारको लेना चाहिये, उक्त प्रस्तावका औचित्य नही माना जा सकता। हम इसके विरुद्ध है, क्योकि यह एक दूसरे प्रकारका शोषण ही होगा। हमारे मतसे राज्यको यह भार वहन करना चाहिये था उसे दूसरे शोषक वर्गोके कन्धोपर डाला जाना चाहिये। हम इस विचारका भी समर्थन नही करते कि भूमिको कीमत लेकर किसानोके हाथ वेचा जाय, क्योकि हम नही चाहते कि वे यह समझे कि भूमिपर उन्होने स्वामित्वके अधिकार अर्जित किये हैं। यदि लगानका भार हल्का हो जाता है और किसी प्रकारकी गैरकानूनी रकमे वसूल नही की जाती है तथा वे वेदखलीके शिकार नही वनाये जाते तो वे पूर्ण रूपसे सन्तुष्ट हो जायँगे।

रिपोर्टकी दूसरी कमी यह है कि इसने भूमिहीन श्रमिकोकी ओर वहुत ध्यान नहीं दिया है। न्यूनतम मजदूरीका कानून वनना चाहिये और उनकी आमदनीकी पूर्तिके लिए ग्रामीण उद्योग-धन्धोकी स्थापना होनी चाहिये। इसके अतिरिक्त जितनी भूमि परती है उसके वीस प्रतिशतसे अधिक जोतमे लायी जानी चाहिये और खेतिहर मजदूरोको इस जमीनपर वसाना चाहिये। किन्तु सर्वोपरि, यह आवश्यक है कि गावोमे समस्त मानवीय सम्वन्धोको वदला जाय और उन्हे लोकतान्त्रिक आधारपर स्थापित किया जाय। इस ध्येयकी सिद्धिके लिए कृषिमे और उसकी उपजके विक्रयमे सहकारिताकी व्यवस्था आवश्यक है। ग्राम-पचायतोको गाँवका राजनीतिक अदालती और आर्थिक सगठन मान लेना चाहिये। गाँववाले सरलतासे सहकारिताको नही अपना लेगे और हमे समझा-वुझाकर, प्रचार और प्रोत्साहनके द्वारा इन्हे इसकी उपयोगिताका विश्वास दिलाना होगा। कृषक अनुभवसे सीखते हैं और यदि किसानको सहकारी प्रणालीकी श्रेष्ठताका विश्वास हो जाय, क्योकि इससे उसे अच्छी उपज और अपनी पैदावारका अच्छा

दाम प्राप्त होता है, तो वह तत्परतापूर्वक इसे अपना लेगा। इसके लिए सरकारी यंत्र पर्याप्त नही है। गैरसरकारी सस्थाओके द्वारा उसके प्रयत्नोको पूरा करना होगा, क्योकि केवल ऐसी ही सस्थाएँ इस कार्य मे उत्साह और साहसकी भावना ला सकती है। ग्राम-पचायतोका अब भी जनताके मनपर प्रभाव जमा हुआ है और यदि उन्हे एक नये रूप और नये आधारपर पुनरुज्जीवित किया जाय तो वे अन्ततोगत्वा सफल सिद्ध हो सकती है। पचायतोके ही द्वारा लगान वसूली भी की जानी चाहिये।

गाँवोके सम्बन्धमे इतनी अधिक उदासीनता दिखायी गयी है कि जबतक हम एक नवीन वातावरण उत्पन्न करनेके लिए कोई क्रान्तिकारी कदम नही उठाते, तबतक गाँवोकी स्थितिमे कोई भी उन्नति नही होगी। गाँवोमे सामाजिक सुविधाओ और सास्कृतिक केन्द्रोका सर्वथा अभाव है और इसका दु खद परिणाम यह है कि शिक्षित नवयुवकोको वहाँ ठहरनेके लिए कोई आकर्षण नही रहता और वे नगरोकी ओर चले जाते है और इस प्रकार अपनी सेवाओ और नेतृत्वसे गाँवको वचित कर देते है। इस परिस्थितिका उपचार होना चाहिये और देहातोकी दशामे सुधार करनेके लिए यह आवश्यक है कि इन सभी सुधारोको तुरन्त और एक साथ आरम्भ किया जाय।

उपर्युक्त बाते अन्य प्रान्तोपर भी समानरूपसे लागू होती है।

दूसरा प्रश्न जो मेरे समक्ष विचारणीय है वह है श्रमका। औद्योगिक झगडोके निबटारेके लिए सरकारने जो व्यवस्था की है, उससे मजदूरोके सामूहिक रूपसे सौदा करनेके अधिकारमे अनेक बाधाएँ उपस्थित होती है। औद्योगिक झगडोको तय करनेके लिए सरकारने समझौता बोर्डो और औद्योगिक पचायती अदालतोकी स्थापना की है, किन्तु उनकी व्यवस्था इतनी जटिल है तथा उनकी कार्यप्रणाली इतनी धीमी और दीर्घसूत्री है कि उससे मालिकोका ही लाभ होता है और मजदूरोकी पर्याप्त रक्षा नही हो पाती है। इतना ही नही, कारखाना-समितियोका विधान तो औद्योगिक लोकतन्त्रकी जड ही काट देता है। सरकार गैर-काग्रेसी सघटनोकी उपेक्षा करती है और उसकी नीति भी पक्षपातकी है। भारतीय राष्ट्रीय मजदूर-सघको वह मजदूरोका सबसे अधिक प्रतिनिधित्व करनेवाली सस्था स्वीकार करती है। युक्तप्रान्तमे तो इसे ही कारखाना-समितियोके सदस्योको मनोनीत करनेका भी अधिकार दे दिया गया है। अपनी कारखाना-समितियोके लिए कार्यकर्ताओको निर्वाचित करनेके मजदूरोके लोकतन्त्रात्मक अधिकारपर यह एक प्रहार है। फलत. अनेक खानोकी कारखाना-समितियाँ अपने मजदूरोका प्रतिनिधित्व नही करती और मजदूरोका विश्वास उन्हे प्राप्त नही है। ये समितियाँ मजदूर-सघटनोसे असम्बद्ध रहकर उनके प्रभावकी उपेक्षा करती है। फलत उन्हे सघोका समर्थन तथा सहयोग प्राप्त नही हो पाता। इस कानूनका बुरा प्रभाव यह पडता है कि ये कारखाना-समितियाँ मजदूर-संघटनोके विरोधमे खडी कर दी जाती है। सरकारी नीतिसे भारतीय राष्ट्रीय मजदूर-सघको अनुचित सहारा मिल रहा है, आमतौरसे मजदूर इसके विरोधी है। इस प्रकार मजदूर-सघटनोकी मजदूरोके लिए उचित वेतनकी माँग करनेकी शक्ति बहुत कम कर दी जा रही है और उनके हड़ताल करनेका अधिकार वस्तुतः

छीन लिया जा रहा है। सरकार उत्पादनमें वृद्धि करनेके लिए मजदूरोंसे अपील करती है, किन्तु प्रतिनिधि तथा प्रभावशाली संघटनोंकी उपेक्षा करके और मजदूरोके सिरपर अनुचित ढंगसे एक ऐसे संघटन को लाद करके जो वस्तुत अल्पसंख्यक मजदूरोका ही प्रतिनिधित्व करता है, वह उत्पादन-वृद्धि कार्यमे सहयोग देनेसे मजदूरोको हतोत्साहित करती है। ऐसा ज्ञात होता है कि सरकारका एकमात्र उद्देश्य मजदूर आन्दोलनको छिन्न-भिन्न कर देना और काग्रेस नियंत्रित भारतीय राष्ट्रीय मजदूर-संघको अप्रत्यक्ष महायता और स्वीकृति प्रदान कर मजदूरोंको उसके कब्जेमे आ जानेके लिए विवश करना तथा हड़ताल करनेके अधिकारसे मजदूरोको वञ्चित करना है। यह ध्यान देनेकी बात है कि भारतीय राष्ट्रीय मजदूर-संघ समझौता-वार्ता तथा पचायतपर ही विश्वास करता है और किसी भी स्थितिमे हड़ताल करना उसे स्वीकार नही है। यह स्पष्ट है कि सरकार जो अन्य दलोंपर राजनीतिक उद्देश्योकी पूर्तिके लिए मजदूरोको बरगलानेका दोपारोपण करती है, वस्तुत इसके लिए वह स्वयं दोपी है। गैर-काग्रेसी मजदूर-सघटनोको वैधानिक कारवाइयोंके लिए साधारणत अनुमति नहीं दी जाती है और उनके कार्यकर्त्ता गिरफ्तार और निष्कासित कर दिये जाते है। इस बातके अनेक प्रमाण दिये जा सकते है कि भारतीय राष्ट्रीय मजदूर-संघमे सम्मिलित न होनेके कारण गैर-कांग्रेसी युनियनोके सदस्योंको उनके उचित अधिकारो से वञ्चित किया गया है। डालमियाँनगरकी शान्तिपूर्ण हड़तालको भङ्ग करनेके लिए फौजका उपयोग किया गया और निकटस्थ ग्रामोके निवासियोंको हड़तालियोंसे सहानुभूति रखनेके कारण आतंकित किया गया। हड़तालियोके नेता साथी वसावनसिंहको गिरफ्तार कर लिया गया। जमशेदपुरमे सोशलिस्ट पार्टीकी राष्ट्रीय कार्यकारिणी (नेशनल इक्जिक्यूटिव) के सदस्य मुशी अहमददीनको गिरफ्तार कर लिया गया और पार्टीके अनेक कार्यकर्ताओंको निष्कासित भी कर दिया गया है। उपयोगी वस्तुओंके मूल्योमें वृद्धिके कारण वास्तविक मजदूरीमे कमी तथा मजदूरोके प्रति सरकारके तानाभरे व्यवहारके फलस्वरूप मजदूर उद्विग्न हो रहे है और इससे उनमे संघर्पकी भावना बढ़ रही है। हड़ताल करनेके अधिकारकी अमान्यता तथा सघटित रूपमे उचित मजदूरी माँगनेके अधिकारपर विभिन्न प्रतिबन्धोके परिणामस्वरूप शान्तिपूर्ण तरीकोपरसे स्वभावत मजदूरोका विश्वास हट जायगा। अनेक मजदूर-संघोने अभी हालमे ही कम्युनिस्टोको तिरस्कृत किया है और कम्युनिस्ट-नियन्त्रित अखिल भारतीय ट्रेड यूनियनने काग्रेससे सम्बन्ध विच्छेद कर लिया है। यदि इस प्रगतिको जारी रखना है तथा भारतीय मजदूर आन्दोलनको सुदृढ माँगोपर बढ़नेका अवसर देना है तो सरकारको पक्षतपातपूर्ण नीतिका परित्याग करना पड़ेगा और यह जानना होगा कि कौन शान्तिपूर्ण लोकतान्त्रिक तरीकोपर विश्वास करता है तथा कौन हिंसात्मक तरीकोपर विश्वास करता है तथा अपना मुख्य उद्देश्य समझता है। असन्तोप उत्पन्न करना विद्रोहकी अग्नि भड़काना है, किन्तु खेदका विपय है कि सरकार मजदूरोके असन्तोपके आधारभूत कारणोका अन्त न करके पूंजीपति-वर्ग को प्रसन्न करनेकी नीति अपनाये हुए है। सरकारको पूँजीपतियोंसे यह आशा है कि प्रोत्साहन देनेसे वे उद्योग-व्यवसायोंकी उन्नतिमे अधिकसे अधिक पूंजी लगायेंगे और इसी

आशापर उन्हे पुनः और अधिक सुविधाएँ प्रदान की गयी हैं। सरकारकी नीतियोमे निम्न मध्यवर्गकी मानसिक स्थितिकी छाया झलकती है जिसमे न तो जन-क्रान्तिके पथपर चलनेका साहस है और न अपने स्वार्थोको पूर्णरूपसे पूँजीवादी वर्गके स्वार्थोसे मिला देनेकी इच्छा ही है।' यह वर्ग सदा ही इन दोनो परस्पर विरोधी स्वार्थोमे क्षणिक सामंजस्य स्थापित करनेकी चेष्टा करता रहता है और मुख्यत पूर्णरूपसे पूँजीवादी वर्गके प्रभावमे रहता है, परन्तु समय ऐसा है कि मौलिक परिवर्तनकी साहसपूर्ण और सुदृढ नीतिसे ही परिस्थिति सँभल सकती है।

राज्योकी समस्या एक अन्य प्रश्न है जिसके सम्वन्धमे भी थोड़ा प्रकाश डालना यहाँपर अप्रासगिक न होगा। हिन्द-सरकारके रियासती विभागका यह दावा है कि उसने जादूका काम करके दिखाया है। भारतवर्षसे अग्रेजोका शासन समाप्त होनेके साथ साथ राजाओके प्रभुत्वका अन्त होना भी अवश्यम्भावी था। छोटे राजाओके मामलोको तय करनेमे रियासती विभागको जो कूटनीतिक सफलता प्राप्त हुई उसकी हम सराहना कर सकते है, किन्तु इस कथनकी वस्तुथितिसे पुष्टि नही होती कि राज्योमे रक्तहीन क्रान्ति सम्पन्न हुई है। कतिपय रियासतोमे जनताने स्वय आगे कदम वढाया और राजाओको अधिकार त्याग करनेके लिए वाध्य किया। यह भी आवश्यक है कि जिन रियासतोका प्रान्तोमे विलय हुआ है वे पूर्णरूपसे उनमे समन्वित कर दी जायँ। काश्मीर और हैदरावादके राजवशोका अन्त होना चाहिये। इस देशमे जो विदेशी वस्तियाँ है उन्हे भारतीय संघका अंग वना देना चाहिये। हम गोआके अपने उन वीर सार्थियोको नही भूल सकते जो पुर्तगालके एक किलेमे सड रहे है और जिन्हे लम्वी अवधिकी सजाएँ दी गयी है। सभी जगह जनता विद्रोहके लिए तैयार है और इन विदेशी वस्तियोकी जनताका अपना राजनीतिक भविष्य निश्चित करनेका अधिकार अवश्य ही स्वीकार करना होगा।

लोगोके मस्तिष्कको आन्दोलित करनेवाले प्रश्नोमे एक प्रश्न यह यह है कि हिन्दको ब्रिटिश राष्ट्रमण्डलके अन्तर्गत ही रहना चाहिये या उससे बाहर निकल आना चाहिये। आज ससार दो शक्तिशाली गुटोमे विभाजित है और अगर हम तृतीय विश्वव्यापी युद्धसे अलग रहना चाहते है तो इन दलोमेसे किसी एकमे भी हमारे लिए स्थान नही है। भारतीय राज तटस्थताकी नीतिके लिए वचनवद्ध है और यदि युद्ध आरम्भ होता है तो इसमे किसी ओरसे हिस्सा लेनेकी उसकी कोई इच्छा नही है। भारतवर्षका हित इस वातमे है कि वह युद्धसे अलग रहे और इस वातका प्रत्येक सम्भव उपाय किया जाय कि किसी प्रकार भी विश्वकी शान्ति भग न होने पावे। भारतवर्ष अपना यह 'पार्ट' तभी प्रभावकर ढंगसे अदा कर सकता है जव कि वह किसी भी दलमे अपनेको शामिल न करे। यदि वह किसी दलमे शामिल हो जाय तो इससे दोमेसे एक वडी शक्तिके विरोधका सामना करना पड़ेगा। ब्रिटिश राष्ट्रमण्डलका सदस्य होनेसे उसकी शान्ति एव युद्ध-सम्वन्धी नीतिमे हिस्सा लेनेका कर्तव्य भी अपने ऊपर आ जाता है, यदि ऐसी वात न भी हो तो इतना तो निश्चित ही है कि इससे तटस्थ रहनेकी हमारी ईमानदारीपर दूसरोका सन्देह वढ़ जायगा। इसके साथ ही ऐसे राष्ट्रमण्डलमे भारतवर्षके लिए कोई स्थान नही है जिसका एक सदस्य

हमारे देशवासियोंके साथ समानताका वर्ताव नही करता और उनको निम्न और हीन अवस्थामे रखता है । इसके अतिरिक्त पश्चिमी जनतन्त्रोमें ब्रिटेनका प्रमुख स्थान है तथा यह आशा की जाती है कि वह दुनियाकी जनतन्त्रवादी शक्तियोका नेतृत्व करेगा । किन्तु फ्रान्स और हालैण्ड जो कि उसके साथी है, दक्षिण पूर्वी एशियामे अपनी साम्राज्यवादी नीतियोका परित्याग करनेके लिए तैयार नही है । कम्युनिजमके विरुद्ध एक गढके रूपमे पश्चिमी यूरोपका संघ बनाया गया है और इसे अमेरिकाकी प्रवल सहायता प्राप्त है । अग्रेजोने ही वर्मामे उपद्रव खड़ा कर दिया है और वहाँ वे आन्तरिक फूटको प्रोत्साहित कर रहे है । आस्ट्रेलियाके परराष्ट्र-मन्त्रीने असावधानीसे वर्माको पुन॰ राष्ट्रमण्डलमें सम्मिलित हो जानेकी सलाह भी दे दी हे । हिन्दुस्तानका अगोच्छेद करके ही ब्रिटिश सरकारने यहाँ सत्ता हस्तान्तरित की । इन सब वातोसे यही निष्कर्ष निकलता हे कि वे एशियाई राष्ट्रोको कभी अखण्ड और शक्तिशाली नही देखना चाहते । इन विभिन्न कारणोसे हमारे लिए राष्ट्रमण्डलमे रहना हितकर नही है । इसका यह अर्थ नही है कि हम सास्कृतिक और व्यावसायिक कार्योके लिए भी ब्रिटेनके साथ मैत्री-सम्बन्ध न स्थापित करे । किन्तु हम यह कदापि स्वीकार नही कर सकते कि हिन्दुस्तान ब्रिटेनकी परराष्ट्रनीतिसे बँधा रहे और उसे विनाशकारी युद्धका एक अखाडा बनना पड़े । हमे यह भी नही भूलना चाहिये कि ब्रिटेन तथा उसके पश्चिमी मित्र दक्षिण पूर्वी एशियामे जिस नीतिका अनुसरण कर रहे है उससे इन राष्ट्रोमे साम्यवादकी ही शक्ति वढेगी और अगर इस प्रदेशमे साम्यवाद विजयी हुआ तो इन राष्ट्रोकी सहायतासे तृतीय गुट निर्माण करनेकी रही-सही आशापर भी पानी फिर जायगा ।

मैने यह कहा है कि पार्टीके अन्दर भी कुछ त्रुटियां है जिनका सुधार आवश्यक है । सर्वप्रथम, हमारा वर्तमान विधान नवीन परिस्थितियोंके लिए सर्वथा अनुपयुक्त है । इसमे परिवर्तनकी आवश्यकता है और पार्टीको एक नये आधारपर पुनस्संघटित करना होगा । अभीतक यह कुछ चुने हुए लोगोकी ही पार्टी है, किन्तु अगर हमे अपना उद्देश्य प्राप्त करना है और सचमुच काग्रेसका प्रतिद्वन्द्वी बनना है तो अपना सघटन व्यापक बनाना पड़ेगा । हमे जनतामे घुसकर उसका विश्वास प्राप्त करना होगा । पार्टीको लोकतान्त्रिक समाजवादका उपकरण बनाना है और इसके लिए वुद्धिजीवी वर्गका सहयोग अपेक्षित है । हमलोगोको महान् निर्माण-कार्य करना है और इसमे पूरी शक्ति और वुद्धि लगाने की आश्यकता है । हम केवल प्रचारसे सफल होनेकी आशा नही कर सकते । शोषण और विशेप सुविधाओंका अन्त करनेके लिए उत्पादनके साधनोका समाजीकरण करना पडेगा और सार्वजनिक सेवाओको जनसाधारणके हितकी दृष्टिसे सघटित करना है । अनायोजित आर्थिक पद्धतिके स्थानपर नियोजित अर्थनीतिको अपनाना होगा और सबके ऊपर मानवीय सम्वन्धोको इस प्रकार वदल देना पडेगा जिसमे कि जीवन ही लोकतन्त्रात्मक ढंगका वन जाय । इन सव कार्योको सफलतापूर्वक सम्पन्न करनेके लिए आर्थिक तथा सामाजिक समस्याओपर गम्भीर तथा ठोस अध्ययन अपेक्षित है । पार्टी को न केवल एक सुव्यवस्थित कार्यक्रम ही प्रस्तुत करना है, प्रत्युत उसे असंख्य जनताको यह विश्वास

दिलाना है कि 'पार्टी' को अपने कर्त्तव्यका ज्ञान है और आवश्यकता पडनेपर उसे कार्यान्वित करनेकी शक्ति भी उसमे विद्यमान है। जहाँ हम एक ओर किसानो और मजदूरोंके वर्ग-सघटनोका निर्माण करते है और अपनी सेवा तथा कठिन परिश्रमसे उनका विश्वास प्राप्त करते है, वहाँ हमे बुद्धिवादियोमे प्रविष्ट होकर उन्हे 'पार्टी' के झण्डेके नीचे सघटित करना है। अर्थशास्त्र तथा सामाजिक विज्ञानके अध्येताओको 'पार्टी' मे लाना है और अपनी नीति निर्धारित करने तथा समस्याओके अध्ययन करनेके लिए उनके परामर्श और पथप्रदर्शनको सदा प्राप्त करते रहना है। हममे कार्यकर्ताओका अभाव है और मै समझता हूँ कि यही हमारी मुख्य दुर्बलता है। हमे उच्च कोटिके कुशल कार्यकर्ताओकी आवश्यकता है, जिन्हे समस्याओका उचित ज्ञान हो तथा 'पार्टी के कार्यकर्ताओको उत्पन्न करनेका जिनमे पर्याप्त उत्साह हो। समाजवादी नवयुवक सघ एक ऐसा सघटन है जिसे यदि उचित रूपसे सघटित किया जाय तो वह पार्टीके लिए सदस्य तैयार कर सकता है। कार्यकर्ताओकी ट्रेनिगके लिए श्रमिक विद्यालयोकी स्थापना होनी चाहिये जहाँ उन्हे केवल सैद्धान्तिक ज्ञान ही न प्राप्त कराया जाय, प्रत्युत उनकी कार्य-क्षमताका भी उचित विकास हो।

यदि हमने उन सभीके लिए द्वार न खोले जो 'पार्टी' के विधान तथा उसके कार्यक्रममे विश्वास रखते है तो हम अपने कर्तव्यकी पूर्ति न कर सकेगे। हमे उन सभी मजदूर-सघो, किसान-पचायतो, समाजवादी नवयुवक संघो, सहयोग समितियो तथा इस प्रकारके अन्य सघटनोको 'पार्टी' से सम्बद्ध कर लेना चाहिये जो एक प्रस्तावद्वारा 'पार्टी' की योजनाओ और उसकी नीतिको स्वीकार करते है। कोई भी व्यक्ति जो सोशलिस्ट सिद्धान्तोको स्वीकार करता है तथा 'पार्टी' के अनुशासनको पालन करनेकी प्रतिज्ञा करता है उसे भी स्वीकार कर लेना चाहिये। वर्तमान अवस्थामे जब कि आर्थिक स्थिति खराब हो गयी है और सम्पन्न लोग भी मजदूरोमे सम्मिलित हो रहे है, हमे इनवर्गोके व्यक्तियोको 'पार्टी' मे लानेसे कोई विशेष खतरा नही है।'

मध्यमवर्गीय लोगोको पार्टीमे लेनेसे कुछ खतरा तो अवश्य है, परन्तु थोडेसे विवेक और सावधानीसे हम उस खतरेको टाल सकते है। यह स्पष्ट है कि हम उन लोगोको जो सम्प्रदायवादी है या स्थिरस्वार्थोका प्रतिनिधित्व करते है नही ले सकते, जबतक हमे इस बातका पूर्ण विश्वास न हो जाय कि उनमे वास्तविक हृदय-परिवर्तन हुआ है और वे जीवनके समाजवादी-दर्शनको तहेदिलसे स्वीकार कर चुके है। पार्टीके प्रधान मन्त्रीने एक विद्वत्तापूर्ण मसविदा तैयार किया है जिसमे उन्होने पार्टीके विधानपर भली भाँति विचार किया है और एक प्रस्तावित विधान भी नये सिद्धान्तोके आधारपर तैयार किया गया है। मै इस तथ्यसे भी अनभिज्ञ नही हूँ कि इस प्रश्नपर तीव्र मतभेद है, किन्तु मैं यह जानता हूँ कि साधारणतया कुछ परिवर्तनकी आवश्यकताका अनुभव किया जा रहा है। कुछ लोग ईमानदारीके साथ यह समझते है कि समान रूपसे व्यक्तिगत सदस्योकी भर्ती खतरेसे खाली नही है और वे विधानमे किसी ऐसे परिवर्तनका तीव्र विरोध करते है जो अन्तमे पार्टीके क्रान्तिकारी स्वरूपको विनष्ट कर सकता है। यहाँ मैं इस समस्याके पक्ष-विपक्षका विस्तृत विवेचन नही करूँगा। परन्तु मै यह कहनेसे अपनेको रोक नही

सकता कि पार्टीमे एक ऐसी प्रवृत्ति लक्षित होती है जो पार्टीको अपने लिए सुरक्षित रखनेकी उत्कट इच्छासे नवागन्तुकोके लिए उसका दरवाजा मजबूतीसे बन्द रखना चाहती है। यह एक अवाछनीय प्रवृत्ति है जिसका उन्मूलन पार्टीकी उन्नतिके लिए आवश्यक है। नवीन रक्तकी प्राप्ति सदा वाछनीय है। पार्टीको थोड़ेसे लोगोकी निधि बननेके लिए नही छोड़ा जा सकता और प्रत्येक सच्चे समाजवादीको पार्टीमे सम्मिलित होनेका अधिकार है। इस प्रकारका संकुचित दृष्टिकोण समाजवादी उद्देश्यके प्रति विश्वासघात होगा। यह नितान्त अहम्मन्यता और अहंकारकी प्रवृत्ति है जिसमे वस्तुस्थितिके ज्ञानका खेदजनक अभाव दिखायी देता है। यह प्रकट सत्य है कि जबतक पार्टी सार्वजनिक स्वरूप नही धारण करती, वह अपने उद्देश्योकी पूर्ति नही कर सकती।

पार्टीके पुनस्सगठनकी आवश्यकता है। उसकी विभिन्न शाखाओके कार्योमे कोई सन्तोपजनक समन्वय नही है। विभिन्न शाखाओके कार्योकी देखरेख करने तथा उन्हे अधिक सक्रिय बनानेके लिए उचित निरीक्षणकी व्यवस्था होनी चाहिये। पार्टी सम्बन्धी कार्योके नये केन्द्र खोलने पडेगे और किसान पंचायतोको सुसगठित दृढ करना होगा। इस सम्बन्धमे हमलोगोको रचनात्मक कार्यपर विशेष जोर देना है। विस्तृत क्षेत्रमे केवल प्रचार-कार्यकी अपेक्षा कुछ चुने हुए क्षेत्रोमे ठोस कार्य अधिक वाछनीय है। हमलोग प्रचार-कार्यमे अभ्यस्त हो गये है, किन्तु अब इससे काम नही चलेगा। देहातोमे भी राजनीतिक चेतना उत्पन्न हो गयी है, किन्तु अबतक वहाँ कोई ऐसा सगठन नही है जो सघर्ष-कालमे उनको पथ-प्रदर्शन और कार्य-निर्देशका केन्द्र बना सके। ऐसे सजीव केन्द्रोका निर्माण करना है, जहाँ नवीन सामाजिक जीवनका दर्शन हो सके। देहातोंमे नवजीवनका सचार करनेके लिए सहकारिताका विशेप महत्त्व है और अगर हमारे साथी इस ओर अधिक आकृष्ट है तो यह हमारे लिए परम सन्तोषका विषय होगा। यदि हम जनताके समक्ष निस्वार्थ और रचनात्मक कार्योद्वारा समाजवादी नीतिको कार्यान्वित करनेके लिए अपनी सच्चाई और योग्यताका प्रमाण पेश कर सके तो हम उसमे नया जीवन डाल सकते है और एक नया विश्वास उत्पन्न कर सकते है। यद्यपि हमारा सन्देश सुननेके लिए काफी सख्यामे लोग एकत्र होते है, हमे उन लोगोको यह विश्वास दिलाना है कि हम अधिकारारूढ होनेपर उनके साथ विश्वासघात नही करेगे। हम ठोस कार्यद्वारा ही जनताको आश्वस्त कर सकते है, न कि प्रचारद्वारा। अगर हम पार्टी-सघटनको अधिक व्यापक बना सके और जनताका सद्भाव प्राप्त कर सके तो उससे हमारी काफी शक्ति-वृद्धि होगी और हम निश्चित रूपसे चुनावमे विजय प्राप्त करेगे। जनतामे कार्य करना हमारी मुख्य चिन्ता होनी चाहिये। पार्टीको सामाजिक संघर्पोका प्रतीक होना चाहिये तथा उसमे साधारण जनताकी आवश्यकताएँ, इच्छाएँ और आकाक्षाएँ अभिव्यक्त होनी चाहिये। हमारी बातोकी सही कसौटी हमारा कार्य है। आत्म-तुष्टि खतरनाक होती है। अपनी सभाओमे विशाल जनसमूहको देखकर हमे भ्रममे नही पड़ना चाहिये। जनताका काग्रेसमे विश्वास नही रहा है और वह यही देखनेके लिए हमारे पास आती है कि क्या हम उसे कोई अच्छी चीज दे सकते है। वे हमारे पास इसलिए आते है कि

हम शासनारूढ़ नही है, किन्तु वे इस बातका पक्का आश्वासन चाहते है कि जब राजनीतिक शक्ति हमारे हाथोमे आ जायगी तो हम भ्रष्ट नही होगे और अपनी प्रतिज्ञाओके प्रति ईमानदार रहेगे। केवल मौखिक आश्वासनोसे उन्हे सन्तोष नही होगा। अकिंचन और शोषित वर्गोकी नि स्वार्थ सेवासे ही उनके सन्देह दूर हो सकते है।

मजदूरोमे काम करनेका हमारी पार्टीमे अपना महत्त्व है, और यह देखकर सन्तोष होता है कि इस दिशामे काम आगे बढा है। मजदूरोमे हमारा एक व्यापक मंच तैयार हो गया है और अधिकाश व्यक्ति जो जनतन्त्र और समाजवादके समर्थक है, इसमे सम्मिलित हो गये है। सभी गैर-काग्रेसी और गैर-कम्युनिस्ट युनियन शीघ्र ही एक शक्तिशाली संघटनके रूपमे एकत्र हो जायँगी जिसका नाम 'हिंद मजदूर सभा' रखा गया है। यह सघटन साढे छ लाखकी सदस्यतासे आरम्भ किया गया था और प्रभावशाली सघटनों द्वारा इसमे सम्मिलित होनेकी घोषणा की गयी है। बिहार और युक्तप्रान्तमे बहुत-सी ऐसी युनियने है जो सोशलिस्ट पार्टीके प्रभावमे है और इस सघटनमे सम्मिलित होगी। आशा की जाती है कि 'हिंद मजदूर सभा' की कुल सदस्यता शीघ्र ही १५ लाख हो जायगी जो कि भारतीय राष्ट्रीय ट्रेड युनियन काग्रेसकी घोषित कुल सदस्यतासे कही अधिक है। उन सभी युनियनोसे भारतीय राष्ट्रीय ट्रेड युनियन काग्रेस अलग हो चुकी है और अबतक हमारे नये सघटनमे सम्मिलित नही हुई है। मैं अपील करता हूँ कि वे हमारे साथ शामिल हो और हमे बल प्रदान करे ताकि इस देशमे सुदृढ ट्रेड युनियन आन्दोलनका निर्माण किया जा सके। मजदूरोमे काम करनेके हमारे ढगमे भी पर्याप्त सुधार करनेकी गुंजाइश है। हमे श्रमिक हितकारी कार्योमे भी लगना चाहिये और मजदूर-वर्गको उत्तरदायित्वकी भावना बढानेकी शिक्षा देनी चाहिये तथा उसे उसके उज्ज्वल भविष्यका भी ज्ञान कराना चाहिये।

मैं आशा करता हूँ कि मैंने सभी मुख्य-मुख्य बातोपर प्रकाश डाल दिया है। मुझे इस बातका पूरा विश्वास है कि हमारी पार्टीका भविष्य महान् है। इसमे पर्याप्त शक्ति विद्यमान है और यदि हम यह जानते है कि अपने सामने आये हुए अवसरका उपयोग कैसे किया जाय तो हम जनताके हृदयमे अपने लिए स्थान बना लेगे और दिनपर दिन शक्तिशाली ही होते जायँगे। आज एक ऐसे दलकी आवश्यकता है जो जनतन्त्रवादी राज्यको सुदृढ बनानेके लिए प्रतिज्ञाबद्ध हो, हिंसात्मक तरीकोके प्रयोगका विरोधी हो और जनतन्त्रवादी ढगसे उत्पादनके साधनोका समाजीकरण करना चाहता हो। हम क्रान्तिकारी युगमे रह रहे है, जब कि विशाल जन-समुदाय अधिकाधिक समाजवादी सिद्धान्तोंके प्रभावमे आ रहा है। सब जगह जनता शान्ति चाहती है, किन्तु यदि रोटीकी समस्या और किसी प्रकारसे हल न हुई तो लोग सघर्षका स्वागत करेगे। पूंजीवादी शक्तियोकी अदूरदर्शितापूर्ण नीतिने उन्हें अन्धा बना दिया है और वे परिस्थितिको नही समझ सकती। उनकी सर्वग्राही एकाधिकारकी प्रवृत्ति उन्हे इस सत्यका अनुभव नही होने देती कि उनकी नीतियो तथा कार्योसे कम्युनिस्टोका प्रभाव समाप्त होनेके स्थानपर बढ़ता ही जा रहा है। केवल तभी शान्ति कायम रह सकती है और युद्ध टाला जा सकता

है जब कि हितकारी योजनाओको व्यापक रूपमे कार्यान्वित किया जाय, आयोजित आर्थिक प्रणालीके द्वारा मजदूरोके रहन-सहनका दर्जा ऊँचा उठाया जाय और उत्पादनके साधनोपर क्रमशः समाजका स्वामित्व स्थापित हो। आज कीमते ऊँची चढती जा रही है और मुद्रा-स्फीति घटानेके प्रयत्नोका कोई प्रभाव नही पड रहा है। आर्थिक दुरवस्था जनताको उत्तेजित कर रही है और अव्यवस्थाकी स्थितिमे पनपनेवाले लोग इसका पूरा-पूरा लाभ उठानेके लिए सन्नद्ध है। किन्तु फिर भी सरकार उस खतरेसे भलीभाँति अवगत नही है जो कि उसके सामने विकट रुप मे खडा है। जब उसके विरुद्ध यह आरोप लगाया जाता है कि वह पूँजीपतियोको प्रसन्न रखनेकी नीति अपना रही है और स्थिर स्वार्थियोद्वारा प्रभावित है तो उसके सूतधारोको बुरा लगता हैं। परन्तु मेरी समझमे नही आता कि कि उनकी इस नीतिकी और कौनसी दूसरी व्याख्या की जाय जो दिनपर दिन पूँजीपतियोके सूक्ष्म प्रभावमे जा रही है। हमें इस बातको समझना चाहिये कि हम इतिहासके साथ खिलवाड नही कर सकते। हमे अपनेको यह धोखा नही देना चाहिये कि भारतवर्ष दक्षिण-पूर्वी एशियाके देशोसे भिन्न है। सकटकालमे एकाएक उथल-पुथल होती है और उसी प्रकार जनमतमे आत्यन्तिक परिवर्तन हो जाते हैं। ऐसी दु.खद स्थितिमे हमारा कार्य और भी कठिन हो गया, किन्तु इस कठिनकालमे हमारे कार्यकर्ताओमे हतोत्साह और निराशा नही आनी चाहिये, प्रत्युत इससे हमे प्रेरणा प्राप्त करनी चाहिये। यदि हम अपनी 'पार्टी' को विरोधी दलके रूपमे सघटित कर सके तो हम इस मन स्थितिका उपचार कर सकेगे। किसी उत्कट कार्यक्रमकी आवश्यकता नही है। केवल ऐसे सक्रिय कदम उठाये जाने चाहिये जो बुद्धिजीवी-वर्गकी उदासीनताको दूर कर सके और उसमे नये उत्साह और नयी आशाका सचार कर सके। हमारी जनता अज्ञान और निर्धनतामे डूबी हुई है, वह निष्क्रिय और निरुत्साह हो गयी है और उसकी सारी आशाएँ और अभिलाषाएँ समाप्त हो चुकी हैं। किन्तु यदि हम उनके उत्साह तथा खोये हुए आत्म-विश्वासको पुनर्जाग्रत कर सके तो हम उन्हे पुनः सक्रिय रूपमे ला सकते है और यह तभी सम्भव है जब कि 'पार्टी' चरित्रवान कार्यकर्ताओको उत्पन्न कर सके जिनका 'पार्टी' के सिद्धान्तो और उसकी नीतिमें दृढ़ विश्वास हो। केवल इसी प्रकारका विश्वास ही नवजीवन प्रदान कर सकता है और भयंकर सकटकी घड़ियोमे, जब कि उनके विश्वासका परीक्षणकाल है, उन्हे दृढ और अविचल रख सकता है। 'पार्टी' के समक्ष यही प्रमुख कार्य है और हमे अपनी सम्पूर्ण शक्ति इसकी पूर्तिमे लगा देनी चाहिये।

इतिहास हमारे पक्षमे है। आज मानव-समाजको एक नवीन सामंजस्य और समन्वयकी आवश्यकता है। चारो ओर प्राचीन और अर्वाचीनमें तीव्र सघर्ष हो रहा है। यह नवयुगका उषाकाल है और हमलोग मुक्तिके द्वारपर खडे है। किन्तु सामाजिक स्वतन्त्रताके सूर्योदयसे पूर्व हमे अपनेको उस नव-सस्कृतिके योग्य सिद्ध करना है। वर्तमान युगमे लोकतन्त्रको प्रतिष्ठित करनेके लिए यह आवश्यक है कि हम अपनी अर्थनीति-को जनहितकी दृष्टिसे सुनियोजित करें। यदि हम दृढ़ता और विश्वासके साथ अपने लक्ष्यकी ओर अग्रसर होते रहें तो सभ्यताकी अगली मजिलको अवश्य प्राप्त करेंगे।

मुझे विश्वास है कि सोशलिस्ट पार्टी अपनेको पूर्ण समर्थ बनायेगी और कार्यरूपमे यह सिद्ध कर देगी कि लोकतन्त्र और समाजवादकी एक साथ प्रगति सम्भव है ।

सत्याग्रह और प्रजातन्त्र

इस समय इगलैण्डमे मकानोकी बडी किल्लत है । गरीब बे-घरबार हो रहे है और अमीरोके फ्लैट कही-कही खाली पडे है तथा फौजके लोगोंके रहनेके लिए बनाये गये कैम्प भी खाली है । अधिकारियोसे कहा गया कि खाली मकानोको इन गरीबोके लिए ले लिया जाय, किन्तु उन्होने इस ओर ध्यान नही दिया । जब गरीबोने देखा कि उनके रहनेका कोई प्रबन्ध नही हो रहा है तब उन्होने इन रिक्त स्थानोमे जाकर अपना सामान रखना आरम्भ किया । यह ठीक है कि उनका यह काम नियम-विरुद्ध है । किन्तु जब अधिकारी कुछ सुनते नही और टाल-मटोल करते है तब इनके लिए कोई दूसरा चारा नही रह जाता । ऐसी अवस्थामे सत्याग्रहद्वारा ही अधिकारी अपना कर्तव्य पालन करनेके लिए विवश किये जा सकते है ।

'न्यु स्टेट्स्मैन एण्ड नेशन' (२४ अगस्त, १९४६) की सम्पादकीय टिप्पणीमे प्रश्न किया गया है कि इस घटनासे हम क्या सबक ले सकते है । सम्पादकका उत्तर यह है "सत्याग्रहद्वारा अधिकारियोंको अपने कर्तव्यसे नियोजित करना पडता है । मजदूरोंको विद्रोही समझकर उनकी उपेक्षा करना उचित नही है । यह नही समझना चाहिये कि उन्होने अपने कार्यसे अपने इस हकको खो दिया है कि इनके साथ न्याय किया जाय । इसके विपरीत मन्त्रिमण्डलको सदा सतर्क रहना चाहिये और यह देखना चाहिये कि विविध विभागोका काम इतना धीमा तो नही है कि उसके कारण ऐसी स्थिति पैदा हो जाय जिसके विरुद्ध लोगोंको विद्रोह करना पडे ।"

पुन. २८ सितम्बरकी एक टिप्पणीमे 'न्यु स्टेट्स्मैन एण्ड नेशन' कहता है कि यह आन्दोलन निस्सन्देह बहुत आवश्यक था । जो स्थानीय अधिकारी अपने काममे ढीले थे अथवा जो प्रतिक्रियावादी थे वे इस आन्दोलनसे बहुत डर गये । सम्भवत: इस आन्दोलनसे मिस्टर बेवन (Bevan) अधिक-से-अधिक मकान बनानेके लिए विवश हुए है । "यद्यपि सरकारके लिए इस आन्दोलनको रोकना अनिवार्य था, तथापि कभी-कभी थोड़ी गैर-कानूनी कार्यवाही और सत्याग्रह वैधानिक शासनकी व्यवस्थामे उपयोगी सिद्ध होते है । वे लोग भी जो व्यक्तिगत जायदादके स्वत्वोकी दुहाई देते है इस आन्दोलनसे प्रभावित हुए है और उनकी समझमे आ गया है कि बे-घरबार लोगोको कितना कष्ट होता है । इस आन्दोलनसे सरकारको यह भी मालूम हो गया है कि मकान बनानेके बारेमे जनता क्या चाहती है और इस प्रोग्रामके कार्यान्वित करनेसे जितनी तरक्की होगी उसी हिसाबसे जनता सरकारके कार्यके सम्बन्धमे अपनी राय कायम करेगी । विदेशी समाचार चाहे बड़े-बड़े शीर्षकोके साथ पत्रोमें दिये जायँ और ऐसे शीर्षक घरेलू राजनीतिको

नसीब न हो, किन्तु एक साधारण नागरिक सन्धियोंकी अपेक्षा मकानोकी कही ज्यादा फिक्र करता है, यदि उसको यह विश्वास हुआ कि मजदूर-सरकार मकानोकी व्यवस्थाके लिए सब कुछ कर रही है, तभी उसका विश्वास सरकारको प्राप्त हो सकेगा !"

इसी प्रकार इंगलैण्डमे कभी-कभी ऐसी हडतालें होती है, जिनसे जनताको बड़ी असुविधा होती है। ये हडतालें युनियनके अधिकारियोकी रायसे भी नही होती: इसलिए ये नियम-विरुद्ध हैं। हड़ताल करानेवालोका यह कहना है कि जो मशीनरी मजदूरीके प्रश्नका निपटारा करानेके लिए बनी है उसकी गति इतनी मन्द है कि वह बर्दाश्तके बाहर है। उनकी यह भी शिकायत है कि युनियनोके अधिकारी प्रबन्ध और व्यवस्थाके काममें डूबे रहते हैं और अपने उन दिनोके पुराने अनुभवोको भूल गये हैं जब वे स्वयं मजदूरी करते थे। इसका फल यह है कि अब वे मजदूरोकी सच्ची हालतको नही जानते और इस प्रकार सामान्य मजदूरोकी जो शिकायतें हैं, उनके साथ उन्होने सहानुभूति खो दी है। इसलिए उनका कहना है कि सारी मशीनरीको एक धक्का लगाना है। उनका कहना ठीक है कि अधिकारियोको सत्याग्रहद्वारा ही सक्रिय बनाया जा सकता है। आवश्यकता इस बात की है कि उद्योग-व्यवसायके सघटन तथा मजदूरोसे समझौता करनेकी मशीनरीमे आमूल परिवर्तन किया जाय न कि हड़ताल करनेवालोको विद्रोही कहकर दण्ड दिया जाय।

हमारे देशमे इस समय हड़तालोकी बाढ-सी आ गयी है, किन्तु यह समझना हमारी भूल होगी कि इन सबके पीछे कम्युनिस्टोका हाथ है। मजदूरोकी आर्थिक अवस्था अच्छी नही है। उनको अनेक प्रकारके कष्ट हैं। उनकी युनियनको प्राय. मान्यता नही दी जाती। उनकी शिकायतोको सुनना और ऐसे कानून बनाना जिससे उनके कष्टोका निवारण हो शासकोका कर्त्तव्य है। प्रत्येक हड़तालसे किसी-न-किसीको कष्ट अवश्य होता है। यह भी ठीक है कि सामानके तैयार होनेमें रुकावट होती है, जिसके कारण जनताका कष्ट और बढ़ जाता है। किन्तु फिर इसका इलाज क्या है? हड़ताल ही एक ऐसा अस्त्र है जिसके प्रयोगसे मजदूरवर्ग अपने कष्टोका निवारण करता है। ट्रेड युनियन आन्दोलनका आधार ही हड़ताल है। इस अस्त्रको मजदूरोके हाथसे छीन लेना उनके साथ अन्याय करना है और उनको बेवश तथा लाचार कर देना है। अपनी सम्मिलित शक्तिसे मजदूरी तय करनेका सिद्धान्त (collective bargaining) माना जा चुका है। जब मजदूरोकी उचित माँगोंकी बराबर उपेक्षा की जाती है, तब उनकी प्रार्थनापर ध्यान नही दिया जाता, तब उन बेचारोके लिए हड़तालके सिवा दूसरा उपाय ही क्या है? जब उनकी सर्वथा उपेक्षा की जाती है तब अधिकारियोका ध्यान आकृष्ट करनेके लिए वे कभी-कभी शान्तिमय प्रदर्शन करते हैं। इसपर वे गिरफ्तार कर लिये जाते हैं और उनसे कहा जाता है कि तबतक वे कामपर वापस न जायँगे जबतक उनकी माँगोपर विचार नही किया जायगा। हम नही समझते कि सरकार इन प्रदर्शनोसे क्यों भयभीत है? शान्तिमय प्रदर्शन और हडताल करनेका सबको हक है। हम नहीं मान सकते कि अपनी सरकार होनेपर यह अधिकार जाता रहता है। 'लॉ एँण्ड आर्डर' का हौवा दिखाकर नागरिक स्वतन्त्रताका अपहरण नही किया जा सकता। शान्ति और

कानूनकी स्थापना होनी चाहिये, किन्तु इसके लिए नागरिक स्वतन्त्रताका वलिदान सामान्य अवस्थामे नही किया जा सकता। साम्प्रदायिक वलवोकी वात न्यारी है। उनकी तुलना शान्तिमय प्रदर्शनों और हड़तालोसे करना उचित नही है। यदि सरकार स्वयं मजदूरोके हितोका ध्यान रखे तो हडतालो और प्रदर्शनोकी प्राय· आवश्यकता ही न हो। किन्तु देखनेमे यही आता है कि अच्छीसे अच्छी सरकारपर भी कर्तव्यपालन करनेके लिए दवाव डालना पड़ता है। मिल-मालिकोसे तो न्यायकी आशा करना ही व्यर्थ है। अनुभव यही वताता है कि जो युनियने हाल की है और कमजोर है, उनको जिन्दा रहनेके लिए वडा संघर्ष करना पडता है। मालिकोसे अपनी छोटीसे-छोटी माँगको मनवानेके लिए भी हडतालकी धमकी देनी पडती है या सचमुच हडताल करनी पडती है। मालिक यूनियनको सदा बुरी दृष्टिसे देखते है और वे यही समझते है कि इनसे हमारे अधिकारोको खतरा है। हमारी रायमे प्रजातन्त्रके लिए कभी-कभी सत्याग्रहका सहारा लेना पड़ता है। विद्रोह कहकर उसकी उपेक्षा नही की जा सकती। यदि हिंसाका प्रयोग रोकना है तो शान्तिमय सत्याग्रहके अधिकारको कभी भी नही छीनना चाहिये। अधिकारियोको अपने कर्तव्यका ज्ञान करानेके लिए और उनकी सुस्ती दूर करनेके लिए यह एक उत्तम उपाय है। हम विनयपूर्वक कहना चाहते है कि स्वराज्यके स्थापित होनेपर भी इसका अधिकार रहना चाहिये। किन्तु आज तो हम पूर्ण स्वराज्यका उपभोग भी नही कर रहे है। हम कोई ऐसा काम न करे जिससे हमारे विरोधियोको यह कहनेका अवसर मिले कि जिन कामोके लिए हम विदेशी शासनकी निन्दा करते थे, उन्ही कामोको हम स्वयं कर रहे है।

मालिक और मजदूरके आपसी झगड़ोको तय करनेके लिए अनिवार्य पचायतका प्रस्ताव रखा गया है। आजके युगमे लोग राज्यपर अधिकाधिक निर्भर रहना चाहते है। मालूम होता है कि प्रजातन्त्रके तरीकोपरसे लोगोका विश्वास उठता जाता है। हर वातके लिए कानूनकी माँग की जाती है। किन्तु कानूनसे उद्योगके क्षेत्रमे शान्ति स्थापित नही हो सकती। उल्टे इससे झगड़ोके वढनेका अन्देशा है। इस अनिवार्य गुलामीसे वचनेके लिए मजदूर हिंसा करनेके लिए मजवूर हो जायगा। यदि अदालतका निर्णय मजदूरोको पसन्द न आया तव वे उस निर्णयका विरोध करेगे और सरकारके विरुद्ध हडताल करनेके लिए बाध्य होगे। हमको तो ऐसी व्यवस्था करनी चाहिये कि जिसमे मजदूर सहयोग करें, न कि विद्रोह।

अमेरिकाके प्रेसीडेन्ट ट्रूमैनने तो हद कर दिया। वह इतना आगे वढ गये कि उन्होने गत मईके महीनेमे काग्रेससे एक ऐसा असाधारण कानून वनवाना चाहा जिसका अर्थ मजदूरोको संगीनोके भयसे अपने कामपर वने रहनेके लिए मजवूर करना है। उन्होने अपने लिए ऐसे अधिकार चाहे, जो किसी प्रेसीडेण्टको कभी नही दिये गये। उनकी माँग यह है कि जब कभी कोई हड़ताल हो तो उनको किसी भी व्यवसायपर कब्जा करने तथा असाधारण अवस्थाकी घोषणा करनेका पूरा अधिकार हो। ऐसी घोषणाके बाद वह मुनाफा जब्त कर सकें, आज्ञाका पालन न करनेपर मजदूर-नेताओको जेल भेज सकें, मजदूरोके

के हकोको वापस ले सके, और नियत की गयी मजदूरी और शर्तोपर उनको कामपर वापस जानेका हुक्म दे सकें। यदि मजदूर इन्कार करे तो वे सेनामे उनकी अनिवार्य भरती कर सके और सिपाहीकी हैसियतसे उनपर फौजी कानून लागू कर सकें। जो तनख्वाह सिपाहियोको दी जाती है, उसी तनख्वाहपर उनसे कारखानोमें काम लें और यदि वे इस पर भी हडताल करे तो उनके कोर्टमार्शलकी आज्ञा दे सकें।

यह तो प्रजातन्त्रका गला घोटना है। इससे मजदूरोकी हालत गुलामोसे भी वदतर हो जायगी। मालिक मजदूरके झगड़े ऐसे है जो आपसके समझौतेसे ही तय हो सकते हैं। इनमें राज्यका दखल देना अनुचित होगा। जब किसीको भी उसकी इच्छाके विरुद्ध काम करनेके लिए मजबूर नही किया जा सकता, तब यह विचत्र वात मालूम पडती है कि सामूहिक रूपसे उसी कामको करनेके लिए मजदूर बाध्य किया जा सकता है। जिसे कोई अकेले कर सकता है उसे औरोके साथ मिलकर क्यों नही कर सकता? अनिवार्य पंचायतद्वारा मिल-मालिकोके झगड़े तय कराना प्रजातन्त्रकी पद्धतिके प्रतिकूल है।

कृषिसुधार-समितिके सामने बयान

मेरा पहला प्रस्ताव यह है कि सरकार और कृषकों यानी जमीन जोतनेवालोंके वीच और कोई मध्यवर्गी लोग न हो। युक्त प्रदेशकी धारासभाने जो प्रस्ताव स्वीकृत किया था उसका आशय यह था कि सरकार और खेतिहरोके वीचके सवलोग उठा दिये जायँ, पर जमीदारी उठा देनेके प्रश्नका विचार करनेके लिए जो कमेटी सरकारने नियुक्त की थी उसने अपनी सिफारिशोका आधार इसे नही माना है। कमेटीने इसे वहुत वदल डाला है। मुझे स्मरण है कि सार्वजनिक निर्वाचन होनेके पूर्व कांग्रेस-कार्यसमितिने निर्वाचन सम्बन्धी जो मन्तव्य अपनाया था उसमे यह कहा गया था कि सरकार और किसानके वीचके लोग उठा दिये जायँ। उसमे 'किसान' शब्दका प्रयोग किया गया था। कार्य-समितिकी उस वैठकमे मैं उपस्थित था जिसमे यह मन्तव्य स्वीकृत हुआ। (असेम्वलीवाले अपने प्रस्तावमे हमलोगोने 'काश्तकार' शब्द रखा था।) मूल मसविदेमे 'जमीन जोतनेवाला' ये शब्द थे और इनका प्रयोग पण्डित जवाहरलाल नेहरूने किया था। कुछ वाद-विवादके पश्चात् यह राय हुई कि सब प्रकारके किसानोको अलग कर देना ठीक न होगा, चाहे कोई किसान खुद जमीन जोतते हो या पारिश्रमिक देकर दूसरोसे जुतवाते हों। अतः मेरा पहला प्रस्ताव यही है कि सब प्रकारके वीचके लोग उठा दिये जायें। जमीदारी उठा देनेका विचार करनेवाली कमेटीकी जो सिफारिश है उसके अनुसार तो काश्तकारोके वहुतसे शिकमी काश्तकार जमीनसे वञ्चित हो जायेंगे। कमेटीकी रिपोर्टमे उनके अधिकार नही माने गये है और नयी सिफारिशें कानूनको गवर्नर-जनरलकी मंजूरी मिलते ही अमलमें आ जायेंगी। इस वीच फार्मोकी संख्या वढेगी और किसानोकी जमीनें छिन जायेंगी। किसानोके शिकमी काश्तकारोका कोई वैधानिक अधिकार नही माना गया है, इससे पूंजी-

पतियोके फार्म धीरे-धीरे बनते जा रहे है। अत' अभीसे यदि इसकी रोक-थाम न हुई तो भविष्यमे देख पडेगा कि बडे-बडे फार्म बन गये है जिन्हे पूंजीपति अथवा व्यक्तिविशेष चला रहे है। कमेटीकी इन सिफारिशोमे जमीनके पुनर्वितरणकी कोई विधि नही है। मेरे विचारमें बहुसख्यक गरीब किसानोकी दृष्टिसे सबसे पहला सुधार जो अत्यन्त आवश्यक है, यह है कि जमीनके पुनर्वितरणका अधिकार सरकारके हाथमे होना चाहिये और यह काम आजमे ही हाथमे लिया जाना चाहिये।

दूसरी बात क्षतिपूर्त्तिके सम्बन्धमे है। हमलोगोका जहाँतक सम्बन्ध है, हमलोग सिद्धान्तत' क्षतिपूर्त्ति करना ठीक नही समझते, यद्यपि इस विषयमे मतभेद है। यूरोपके जो समाजवादी अपनेको मार्क्सवादी नही कहते, क्षतिपूर्त्तिकी रकम देना ठीक समझते हैं, पर उनका कहना यह है कि क्षतिपूर्त्तिका भार अन्य शोषक श्रेणियोपर रखा जाना चाहिये। उदाहरणार्थ, सरकार कोई उद्यम अपने हाथमे ले और उस उद्यमके जो लोग पहले मालिक थे उन्हे क्षतिपूर्ति देनी हो तो यह क्षतिपूर्त्ति अन्य उद्योग-धन्धेवालोको करनी होगी। यही उनका नियम है। उपस्थित प्रसंगमे हमलोगोकी यह राय तो नही थी कि जमीनके मालिक जानकर किसीको क्षतिपूर्त्तिकी रकम दी जाय, पर पुनर्निवासके आधारपर क्षतिपूर्त्ति कराना हमलोगोने स्वीकार किया था अर्थात् जिन लोगोकी जमीन ले ली जायगी उन्हे यह अधिकार है कि सरकार उन्हे फिरसे बसाये। इसी आधारपर हमने क्षतिपूरण माना है। और यही जब मानना है तब क्षतिपूर्त्ति पानेका अमीरोको तो कोई अधिकार नही रहता, पर गरीबोको अधिकसे अधिक रकम मिलनी चाहिये और उनके लिए ऐसी स्थिति उत्पन्न की जानी चाहिये कि वे कोई नया उद्योग-धन्धा शुरू कर सके। यह दूसरा सिद्धान्त है। पर हमलोग देखते हैं कि हमारी सिफारिश सरकारको स्वीकार होनेवाली नही है, इसलिए हम क्षतिपूर्त्तिकी एक मर्यादा निश्चित करना चाहते हैं। सरकार तो यह निश्चित कर ही चुकी है कि क्षतिपूर्त्ति की जाय और यह भी तय कर चुकी है कि जिन मालिकोको १०,००० रु० से अधिक मुनाफा मिलता रहा हो उन्हे उनके मुनाफेकी तिगुनी रकम दी जाय। हमलोगोने सबसे बड़ी मर्यादा यह रखी है कि एक लाख रुपयेसे अधिक क्षतिपूर्त्तिकी रकम किसीको भी न दी जाय। फिर, बहुत से गरीब जमीदार होगे जिनकी जमीने निकल जायँगी। सरकार उन्हे क्षतिपूर्त्तिके तौरपर जो कुछ देना चाहती है वह बहुत-ही कम है। यह रकम भी उन्हे एक मुश्त नही मिलेगी बल्कि किश्त-दर-किश्त कई बरसोमे पूरी की जायगी। इससे उन्हें कोई नया उद्योग आरम्भ करनेकी सुविधा नही मिलेगी। अत. इसके हम विरोधी हैं। हमलोग यह चाहते है कि किसीके भी हाथमे ३० एकडसे अधिक जमीन न होनी चाहिये और यह बात अभीसे हो, आगेके लिए छोड न दी जाय। इस तरीकेसे सरकार बडे-बडे फार्मोको तोड़ सकेगी और जो जमीन इस तरह मिलेगी वह उन छोटे जमीदारोको बाँट दी जा सकेगी जो खेती करना चाहते है, दूसरोके परिश्रमका शोषण न कर स्वयं हल चलाना चाहते है। इन लोगोके फार्म बड़े किये जा सकते है और नयी शर्तोपर उनकी सख्या बढ़ायी जा सकती है। यह दूसरा सुधार है जो हमलोग सूचित करते हैं। हमारे प्रान्तमे सैकड़े ६० से भी अधिक खाते आर्थिक दृष्टिसे लाभजनक नही हैं।

मैं जानता हूँ, जमीनकी उपज वढ़ानेके लिए कई उपाय करने पड़ेगे जैसे अच्छे वीज, खाद और अच्छी नस्लके बैल। पर इतनेसे ही काम न चलेगा। जमीनकी उपज वढानेमें वहुत समय लगेगा। किसानोकी आमदनी वढानेका कोई दूसरा उपाय भी करना होगा। किसानोके इन छोटे-छोटे खातोको लाभजनक वनानेके काममें वडी कठिनाई है। पर मुझे स्मरण है कि एक वार युक्तप्रदेशकी प्रान्तिक कांग्रेस कमेटीने एक प्रस्तावके द्वारा उस समयकी सरकारसे यह सिफारिश की थी कि जो खाते लाभजनक नही है वे जव तक लाभजनक नही हो जाते तवतक उनपर कोई लगान न लगायी जाय। मेरी सूचना यही है कि हर उपायसे इन खातोको लाभजनक वनाया जाय। किसी हद तक यह काम वन सकता है, क्योकि हमारे प्रान्तमें वहुत-सी जमीन ऐसी पड़ी हुई है जो अभीतक जोती नही गयी है। खेती करने लायक जमीनमेसे १०० मे वीस हिस्सा जमीन जोती जा सकती है। सरकारका यह कर्त्तव्य है कि यह जमीन जोतनेके काममे लाये और यहाँ किसानी करनेवाले मजदूरोको वसाये। इस तरह उन्हे मौका दे कि वे अच्छे किसान वने। पर मेरा यह विशेष आग्रह है कि जवतक खाते लाभजनक नही वन जाते तवतक उनकी कुछ मदद की जाय। एक मदद यह है कि यदि इन्हे पूरी लगानकी छूट न दी जा सकती हो तो कमसे कम वह लगान बहुत कुछ घटा दी जाय।

जमीदारी-उन्मूलन कमेटीका यह ध्यान है कि जमीदारवर्गका उन्मूलन होनेपर काश्तकार वही लगान देता रहेगा जो वह आज दे रहा है। अतः उसकी स्थितिमे कोई परिवर्त्तन नही होगा और न उसे कोई सन्तोष हो सकेगा। यदि जमीदारवर्ग उठा देना है तो किसान यह समझता है कि उसका स्थान हमलोग ग्रहण करेगे और जो रकम जमीदार मालगुजारीके तौरपर देते थे वही हमलोग दिया करेंगे। लगानका जो वोझ किसानोपर आज है वह यदि घटनेवाला न हो तो इससे देहातोमे असन्तोष फैलेगा। जमीदारी उठ जानेपर भी किसानोको वही लगान देना पडेगा, यह वात उचित नही मालूम होती। हमारी सिफारिश यह है कि जमीदार आज जो मालगुजारी दे रहे है उससे अधिक किसानोको कुछ न देना पडे। इस सम्बन्धमे यह प्रश्न उठता है कि तव मुआविजेका वोझ कौन उठाये। सरकारने अव इसे लगान न कहकर मालगुजारी कहनेका तरीका इख्तियार किया है। इससे किसानोकी स्थितिमे कोई अन्तर नही पडता। सरकार यह कह सकती है कि जमीदारोको जो मुआवजा देना है उसका भार काश्तकार उठा ले। हमलोग इसके विरोधी है, क्योकि इसे हम एक दूसरे प्रकार-का शोपण ही समझते है। यदि यह भार उसके सिरोपर आगामी ४० वर्पतक वना रहा तो जमीदारके वदले सरकारके द्वारा उनका यह शोपण ही हुआ। हमारी सूचना यह है कि या तो यह वोझ स्वय सरकार उठा ले या अन्य शोषक वर्गोके कन्धोपर रखा जाय अर्थात् उद्योग-धन्धोके मालिकोपर करोका वोझ खूव वढाकर यह रकम वसूल की जाय। मैं तो यह भी पसन्द करूँगा कि ये काश्त या ये खाते किसानोको वेच दिये जायँ, क्योकि हमलोग यह नही चाहते कि किसानोमे जमीदार हो जाने की भावना भर जाय जवतक कि वे जमींदार माने जानेकी पुकार स्वयं न मचाये। उनपर लगानका वोझ यदि हलका हो जायगा तो उन्हें पर्याप्त सन्तोष होगा, साथ ही यदि

यह अधिकार किसीको न हो कि उनसे वेगारी ले सके और न उनकी वेदखलियाँ हो सकें यह कहना तो कोई दलील नही है कि मुआवजेका बोझ जब काश्तकारको ढोना है तब सरकार उससे लगान ही लेती रहेगी, न कि मालगुजारी।

हम लोकतन्त्रसे वँधे हुए है, अत. यह सर्वथा आवश्यक है कि मानवताका ध्यान रखा जाय और देहातोमे लोगोके जो परस्पर सम्वन्ध है उन्हे वदलकर एक नवीन लोकतन्त्रात्मक आधारपर स्थापित किया जाय। देहातोमे लोकतन्त्रात्मक चाल-ढाल, रहन-सहन चलाने तथा लोकतन्त्रकी परम्परा स्थापित करनेके लिए सहयोग का होना नितान्त आवश्यक है। सहयोग ही ग्राम-जीवनका आधार होना चाहिये ताकि ग्रामीण जनता परस्पर सहयोग करना सीखे, सहयोगसे उत्पादन करे और सहयोगसे ही अपने उत्पादनका क्रय-विक्रय करे। ग्राम-पंचायत ग्रामकी राजनीतिक, अदालती और आर्थिक सघटन-सस्था मानी जाय। इस तरह सहयोग आरम्भ कराना मैं बहुत ही आवश्यक समझता हूँ। सामूहिक खेतीके मैं विरुद्ध हूँ, कारण देहातोमे इसकी सम्भावना नही देख पड़ती। इसका वड़ा विरोध होगा जैसा कि रूसके अनुभवसे प्रकट है। हम यह भी जानते है कि सभी कम्युनिस्टो और फोर्थ इण्टरनेशनलके सदस्योने इसका परित्याग कर दिया है और यह निश्चय किया है कि जोर-जवर्दस्ती और हिंसासे काम लेनेके वजाय अधिक अच्छा तरीका यह है कि लोगोको समझा-वुझाकर, लाभ और सुविधा दिखाकर तथा प्रचार-कार्यके द्वारा लोगोको इस वातके लिए तैयार किया जाय कि वे एक रूप होकर सहयोगका अवलम्बन करे। कृषक अनुभवसे सीखते है। यदि पास-पडोसमे अच्छे प्रयोग-फार्म हो और कृषक यह देखे कि खेतीका यह ढंग अधिक अच्छा है और इससे अधिक उपज होती है तो वे भी उसका अनुकरण करने लगेगे। इसमे अवश्य ही कुछ समय लगेगा और आरम्भ अभीसे कर देना चाहिये। मेरे विचारमे, यह काम सरकारी तौरपर वहुत अच्छा नही होता। पहली वात यह है कि हमलोगोमें वह उत्साह और वह सत्साहस नही है जो देहातोमे नव-जीवनका सचार करनेके लिए अत्यन्त आवश्यक है। हम व्यक्तिप्रधान लोग है, फिर भी ग्राम-पंचायत-का कुछ प्रभाव तो अव भी जनताके चित्तपर है। यदि इस पचायत-पद्धतिका पुनरुद्धार किया जाय, उसके उस पुराने ढंगपर नही वल्कि आजकी आवश्यकताओको सामने रखकर एक नये ढगसे एक नवीन आधारपर यह काम हो तो मैं समझता हूँ कि लोग धीरे-धीरे उसे अपनायेगे।

लगानकी वसूलीका काम ग्राम-पचायतके द्वारा ही होना चाहिये। दो-तीन गाँव मिलकर एक सहयोगी सस्था वना सकते है, कारण वहुतसे गाँव वहुत ही छोटे-छोटे है। सहयोगी खेत वनानेके सम्वन्धमे गाँवके जन-समाजका जनमत लिया जाय, यदि समाजके दो-तिहाईसे अधिक वालिग लोग सहयोगी खेतीके पक्षमे हो तो सहयोगी खेतीका आरम्भ करा दिया जाय। ऐसे खेतोको विशेप अवसर और विशेष सुविधाएँ दी जानी चाहिये, ताकि दूसरे लोग भी धीरे-धीरे इसका अनुकरण करने लगे। यदि इस तरह सहयोग

चला तो इससे परस्पर सम्बन्धका एक नया ढंग निकल आयगा और इससे गाँववालोमें लोकतन्त्रकी वह भावना भर जायगी जिसकी इतनी आवश्यकता है ।

इस सम्बन्धका और एक पहलू है जिसका कृषिसे कोई सम्बन्ध न होनेपर भी बड़े महत्वका है । गाँवोकी अबतक इतनी उपेक्षा हुई है कि उन्हे सुधारने और एक वातावरण उत्पन्न करनेकी कोई चेष्टा नही की जायगी जिसमे गाँववाले अपनेको सुखी समझ सके तो गाँवोकी कोई उन्नति नही होगी । आजकी स्थिति यह है कि जो लोग शिक्षित हो लेते है वे गाँवोमे नही रहना चाहते । इससे गाँवोके कोई नेता नही होते और होते हैं तो वे ही पुराने ढगके आदमी । मैं समझता हूँ, यह बहुत ही आवश्यक है कि हमारे नवयुवक शिक्षा ग्रहण कर इस योग्य बने कि अपनी जनताकी सेवाके लिए गाँवोमे रह सकें । हम देखते हैं, हमारे प्रान्तमे जनताको साक्षर बनानेके लिए एक बहुत बडा आन्दोलन चला है । पर अनुभव यह बतलाता है कि जो लोग आज साक्षर होते है वे कुछ समय बाद निरक्षर हो जाते है, कारण जहाँ वे रहते है वहाँ कोई सास्कृतिक वातावरण नही है । अतः यह जरूरी है कि ये स्कूल और पाठशालाएँ समाज-जीवनके केन्द्र बने । उनके साथ पुस्तकालय और वाचनालय हो, साथ ही थियेटर और आमोद-प्रमोदके उपयुक्त साधन गाँवमे हो । मैं केवल अर्थकी दृप्टिसे इसका विचार नही करता, बल्कि सामाजिक और सास्कृतिक दृप्टिसे भी इसे देखता हूँ । ग्रामका सारा दृश्य एक मनोहर चित्र बने । इसके लिए यह आवश्यक है कि ये सब सुधार तुरत और एक साथ किये जायँ ।

अब कृषि-सम्बन्धी मजदूरकी बातपर मैं आता हूँ । इन मजदूरोकी हालत बहुत ही खराब है । कानूनसे उनकी कोई कमसे कम मजदूरी नही निश्चित हुई है । बहुतसे स्थान मैं जानता हूँ जहाँ हमारा यह आन्दोलन नही पहुँचा है और नवीन जागरण नही उत्पन्न हुआ है वहाँ जमीदार इन मजदूरोको ४ या ५ आने प्रतिदिन देते हैं । कही-कही १० या १२ आने अथवा एक रुपये तककी मजदूरी बढी है, पर सर्वत्र नही । इसलिए मेरी यह सूचना है कि कृषि-सम्बन्धी मजदूरकी कमसे कम मज़दूरी निश्चित करनेवाला कोई 'कम-से-कम मजदूरीका कानून' शीघ्र ही बन जाय । फिर जब नये सरकारी फार्म बन जायँ तब इन भूमिरहित मजदूरोको उन जमीनोपर बसनेको राजी किया जाय ।

तब भी उनकी आमदनीकी कमी पूरी करनेके लिए गृह-शिल्पके धन्धोकी आवश्यकता रहेगी ही । कृषि-सम्बन्धी मजदूरोका भाग्य तबतक सुधर नही सकता जबतक सरकार गृहशिल्पके धन्धे चलानेमे विशेप यत्नवान् नही होती । यदि यह काम सहयोगके आधार-पर हुआ तो मानवताके नाते यह भी एक विशेप लाभ होगा । पर कम-से-कम गृहशिल्पका उद्धार तो करना ही चाहिये ।

अनिवार्य गल्ला-वसूली योज़ना

अन्न और सिविल सप्लाईके मिनिस्टरने २३ अप्रैलको प्रेस कान्फरेन्समे सरकारी खाद्य-नीतिका समर्थन किया और डा० लोहियाकी आलोचनाओंका जवाब देनेकी कोशिश

की। डा० लोहिया एक योग्य अर्थशास्त्री है और विलक्षण वाद-विवादी है। वह अपनी खबर खुद ही ले सकते है। मुझे यकीन है कि जब वे अपने दौरेसे वापस आवेगे तो अपने आलोचकोको तर्कपूर्ण ढंगसे जवाब देगे।

जनताका तिरस्कार

मेरा यह वक्तव्य देना केवल इसलिए जरूरी हो गया कि वाद-विवादमे मेरा नाम खींच लाया गया और जनताके दिमागपर ऐसा प्रभाव डालनेकी कोशिश की गयी मानो इस मामलेमे सोशलिस्ट पार्टीकी जो नीति है उससे मेरा मतभेद है। यह सही है कि मैं कण्ट्रोल नीतिका बरावर समर्थक रहा हूँ और कण्ट्रोल-तोड नीतिका कट्टर विरोधी रहा हूँ जिसे प्रान्तीय सरकारोने चलाया और जिससे देशको बहुत नुकसान पहुँचा। यह भी सही है कि पिछले साल मै अनिवार्य गल्ला-वसूलीके पक्षमे था, लेकिन यह कहना ठीक नही कि मैं उस योजनाका पूरे तौरपर समर्थन करता था। मैं योजनाकी कुछ खास बुरी बातोके खिलाफ था और बरावर मैने इसकी ताईद की कि योजनामे जो खराबियाँ है उन्हे दूर किया जाय। उनदिनो गाँव-पंचायतोके अभावमे अनिवार्य वसूली ही एकमात्र व्यावहारिक उपाय थी। लेकिन अब पंचायते कायम हो गयी है। मैं इसका कोई कारण नही देखता कि जनताके इस संगठनको वसूलीका काम अपने ऊपर लेनेके लिए क्यो नही प्रेरित किया जाय।

अगर हमलोग जनतामे प्रजातान्त्रिक भावना भरना चाहते है और अगर हम चाहते है कि वे अपने मामलेका प्रवन्ध और अपने आर्थिक जीवनको खुद व्यवस्थित करे तो हमपर ही यह निर्भर करता है कि हम उन्हे सरकारकी आर्थिक नीतियोको अमलमे लाने लायक बनावें। जन-साधारणमे हमारा विश्वास विलकुल नहीं है और हमारा उनपर कुछ भी भरोसा नही है। यही कारण है कि हम उनपर जिम्मेदारी डालनेकी बात नही सोचते। किसानोमे सगठनात्मक प्रतिभाकी कमी नही है, हमें उन्हे केवल जगाना है और किसानोको उनकी प्रतिभासे परिचित करा देना है। अनेक सदियोसे इस प्रतिभाको दबाया गया है और अब उसे रचनात्मक काममे लगानेके लिए स्वतन्त्र वातावरणकी जरूरत है। मेरा पक्का विश्वास है कि बिना जनताके सक्रिय और जागरूक समर्थनके कोई भी बड़ा मसला नही हल हो सकता।

मुझे यह कहते हुए दु:ख है कि सवालके इस पहलूको सही पार्श्वभूमिमे नही देखा गया। यह काम कठिन हो सकता है, लेकिन विना जरूरी कोशिश किये किसीको हार कबूल नही करनी चाहिये। असलियत तो यह है कि सदियोसे पीड़ित और शोषित किसानोमे जो गतिहीनता और उदासीनता खास तौरपर पैदा हो गयी है उसे दूर करनेका सरकारने सुनहला मौका खो दिया।

सरकार 'माँ-बाप' बनी

लगता है कि सरकारके लिए जनताके सगठनका कोई उपयोग नही है। वह जनताके "माँ-बाप" के रूपमे काम करना चाहती है और यह महसूस करती प्रतीत नही होती कि

अगर जनता अपने मसले तय करनेमे खुद सक्रिय हिस्सा लेती है तो उसका कितना महत्व होता है। यही एक तरीका है जिसके जरिये सामाजिक अनुशासनकी सृष्टि की जाती है। हालत तो इतनी विगड गयी है कि कभी-कभी गांधी-स्मारक फण्डके लिए चन्दा उठानेका काम अफसरोपर छोड़ दिया जाता है। अभी-अभी फैजावादसे लौटा हूँ और मैं यह जानकर दंग रह गया कि वहाँ इस फण्डके लिए चन्दे उठानेमे स्थानीय अफसरोने प्रमुख हिस्सा लिया। आज भी वही दवाव और जवर्दस्तीका तरीका लागू किया जाता है और लोगोको यह जान कर आश्चर्य होगा कि जो लोग बन्दूक वगैरहके लाइसेन्सको नया करने या गोली खरीदनेके लिए परिमिटके लिए दरख्वास्त देते हैं उनसे अनिवार्य रूपसे चन्दा ले लिया जाता है। शान्ति और अहिंसाके प्रतीकके नामके साथ इस घृणित कार्यको जोड़ देना अपवित्रतासे कम नही है। वहुत महीने पहले मुझसे कहा गया कि जिला अफसरोंके पास चन्दा न उठानेका आदेश भेज दिया गया है, लेकिन मैं पाता हूँ कि कमसे-कम फैजावादमे तो इस आदेशका पालन नही किया जा रहा है। हर दृष्टिसे जवर्दस्ती चन्दा लेनेका यह घृणित कायदा फौरन् वन्द होना चाहिये।

वसूली योजनाके दोष

यह निश्चित वात है कि हमलोग गाँव-पंचायतोंद्वारा वसूली नीतिको, जिसके लिए कारण ऊपर वताये जा चुके हैं, अमलमें लानेका तरीका पसन्द करेंगे, लेकिन किसी वजहसे सरकार अगर यह कदम उठानेको तैयार नही है तो सोशलिस्ट पार्टी अनिवार्य वसूलीका विरोध नही करेगी बशर्ते कि वसूली-योजनाकी खराव वातें दूर कर दी जाती हैं। इस मामलेमे मुझे यह कहनेके लिए डा० लोहियाका अधिकार प्राप्त है कि वह इस विचारका समर्थन करते हैं। वारावंकीके गरीव किसानोने—उनके वीच कोई धनी किसान नही थे—जो मेमोरेण्डम प्रधान मन्त्रीके पास पेश किया उसमे यह साफ लिखा हुआ था कि वे गल्ला-वसूली नीतिको अमलमें लानेमे सरकारसे सहयोग करनको पूर्ण तैयार हैं। वे जो चाहते थे वह यह था कि वे प्रधान मन्त्रीका ध्यान अपनी उन तकलीफोकी ओर खींचना चाहते थे जो उन्हें होंगी अगर योजना मूल रूपमें ही कार्यान्वित हुई।

मन्त्रीजी जरा सोचें

किसी जिम्मेदार मन्त्री या प्रधान मन्त्रीके लिए किसानोंको भड़कानेका दोष सोशलिस्ट कार्यकर्त्ताओपर लगाना अशोभनीय है। साथ ही इस विनापर कि किसानोने अपने जिलेमें कायम किये गये सरकारकी गैर-सरकारी एजेन्सियोंको पूरा नजरअन्दाज किया उनकी माँगोंको सुननेसे इन्कार करना भी अशोभनीय है। जो पार्टी हुकूमतमें है उसकी गलतियों और धाँधलियोंसे हमारा राजनीतिक फायदा उठाना विल्कुल जायज है, लेकिन हमलोग उन लोगोंमेसे नही है जो अपने संकुचित राजनीतिक उद्देश्य सिद्ध करनेके लिए जनताकी मुसीवतोंसे फायदा उठाते हैं। हम जो करते हैं वह शोषितोंके हितके लिए करना पड़ता है जिनका हित-साधन हमारा उद्देश्य है और हम वड़े धनी किसानोंके हितके लिए ऐसा नही करते जैसा कि वताया गया है। सोशलिस्ट पार्टी वड़े और धनी किसानोंका कोटा वढ़ानेके

पक्षमें है लेकिन वह गरीब किसानोको जिनके पास फाजिल गल्ला नही है राष्ट्रीय संकटके नामपर शोषित होने नही दे सकती । शहरकी भलाईके लिए गाँवका युगोसे शोषण किया जा रहा है और अब वक्त आ गया है कि गाँव और शहरके भेदको मिटा दिया जाय । सोशलिस्टो और कम्युनिस्टोके विश्वासका यही आधार है और हमलोग अपने प्रति ईमानदार नही होगे अगर हमलोगोने वसूली-योजनाके उन हिस्सोका विरोध नही किया जिसके मुताबिक नौकरशाहोकी सुविधाके लिए गरीब किसानोको अपने थोड़ेसे अन्नसे हिस्सा बँटानेको मजबूर किया जाता है ।

प्रदर्शनका अर्थ समझो

मैं पूरी जिम्मेदारीके साथ यह बयान देता हूँ कि जो किसान १५) या उसके आसपास तककी सालाना लगान देते है उनके पास सरकारको देनेके लिए अतिरिक्त गल्ला नही है । मैंने सरकारी आँकडोका अध्ययन नही किया है जिसे मैं जानता हूँ कि किसी भी सिद्धान्तके अनुकूल बनाया जा सकता है, लेकिन मैं अपने व्यक्तिगत ज्ञान और अनुभवसे उपर्युक्त बातें कह रहा हूँ । मैं अवधके किसानोको काफी करीबसे जाननेका दावा करता हूँ और साथ ही मैंने गाँवके कुछ अहम सवालोका अध्ययन भी किया है । मेरे बयानकी सत्यताको जाननेके लिए केवल आसपासके गाँवोमे जानेकी जरूरत है ।

फिर, मैं यह समझ नही सकता कि जो किसान बिल्कुल ही कोई फसल नही उपजाते है उन्हें खुले बाजारसे अन्न खरीदकर सरकारको देनेके लिए क्यो मजबूर किया जाय । इसके साथ-साथ यह तो होना ही चाहिये कि जिस इलाकेमे वर्षाकी कमी या ज्यादा या पत्थर पड़नेके कारण फसल खराब हुई है वहाँसे वसूली नही करनेकी व्यवस्था की जाय ।

मैं चाहूँगा कि लखनऊमे जो प्रभावशाली प्रदर्शन हुआ, जैसा लखनऊके हालके इतिहासमे नही हुआ है, उससे खाद्य मन्त्री सही नतीजा निकाले और यह कहकर कि बुरे मतलबसे प्रदर्शनका आयोजन किया गया था नजर-अन्दाज नही करें । ये सुझाव बड़े अच्छे ख्यालसे दिये गये है ताकि गरीब किसानोके प्रति अन्याय नही हो जिसके हितकी रक्षा हर हालतमे होनी ही चाहिये ।

गाँवोंमें शोषितोंका संयुक्त मोर्चा कायम हो[1]

यद्यपि प्रान्तमें गाँव-पंचायतोंका संगठन जिस रूपमे किया गया है उसमें बहुतसी त्रुटियाँ हैं, किन्तु पंचायतोको जो भी अधिकार मिले हैं उनके जरिये बहुत कुछ काम हो सकेगा ।

---

१. पंच-सम्मेलनके प्रतिनिधियोंके कर्त्तव्यके सम्बन्धमें २९ मईको सम्मेलनमे दिया गया भाषण ।

क्रान्तिकारी अधिकार

गाँववालोको बालिग मतके आधारपर प्रतिनिधियोको चुननेका अधिकार देकर निस्सन्देह युक्तप्रान्तीय सरकारने एक बहुत बडा कदम उठाया है। बालिग मताधिकार एक क्रान्तिकारी अधिकार है, यह प्रजातन्त्रकी आधारशिला है, जम्हूरियतका बुनियादी पत्थर है। बिना जाति, सम्प्रदाय या सामाजिक हैसियतका भेद किये, सभी बालिग स्त्री-पुरुपोको एक दर्जा दिये बिना जम्हूरियत, प्रजातन्त्र कायम नही हो सकता।

विराट् जनजागरण

इस क्रान्तिकारी अधिकारको पाकर सदियोसे सतायी और कुचली हुई जनतामे एक नयी ताकत आयी। जो लोग इन्सान नही समझे जाते थे, जमीदारोके सामने चारपाईपर नही बैठ सकते थे और खुलकर अपनी रायका इजहार नही कर सकते थे वे नीच जातिके पुकारे जानेवाले लोग गाँव-सभाओके पंच और सरपच चुने गये।

ग्रामीण वर्गसंघर्ष

गाँव-पंचायतोके चुनावोमे 'ऊँच' और 'नीच' जातियोका संघर्ष वस्तुतः शोषको और शोषितोके बीच चलनेवाले वर्गसंघर्षका रूप है। यह शकल ऐसी नही जिसे मैं पसन्द करूँ, इसमे जो खतरे हैं उनसे शोषित जनताको आगाह करना होगा। पर गाँवोमें वर्गसघर्ष आरम्भमे 'ऊँची' जातियोके विरुद्ध 'नीची' जातियोके विद्रोहका रूप लेगा ही। देशके पिछले इतिहासको भुलाया नही जा सकता।

नयी चेतना जगाइये

समाजवादियोंको इस संघर्षको सही शकल देनी है। कुचला हुआ मजदूर आर्थिक एकाधिकारका दोष जातिकी ऊँचाईको देता है। वह यह नही देख पाता कि शोषक और शोषित 'ऊँची' और 'नीची' दोनो जातियोमे बँटे हुए हैं, किसीमे वे थोड़े हैं किसीमें ज्यादा। पुराने जमानेमे कौमियतका उसूल, राष्ट्रीयताका सिद्धान्त नही था। देहातका गरीब बिरादरीकी ही परिभाषामे सोचता है। हमे देहातकी शोषित जनताको समझाना है कि जाति, वंश और सम्प्रदायके भेदोंको भूलकर शोषक वर्गोके आर्थिक प्रभुत्वके विरुद्ध वे सयुक्त मोर्चा कायम करे। चूसे जानेवाले मेहनतकशोका बेलिहाज जात-पाँत और मजहब-मिल्लत एक खेमा बने।

अपढ़, पर नासमझ नहीं

यह धारणा कि चूंकि किसान अपढ है इसलिए वह गाँवका प्रबन्ध नही कर सकता ठीक नही है। किसानने दर्शनशास्त्र, अर्थशास्त्र और राजनीतिकी पोथियाँ न पढ़ी हों पर वह जिन्दगीकी किताबसे बहुत कुछ सीखता है। अपने हितकी बाते वह बहुत अच्छी तरह समझता है। यही कारण है कि कांग्रेसपरसे उसकी आस्था हट चली है। यही कारण है कि यद्यपि वह हमारी बात ध्यानसे सुनता है, पर हमारे ऊपर पूरा विश्वास करनेसे पहले हमे अच्छी तरह परख लेना चाहता है।

उदासी कैसे हटे ?

आज किसानोमे, और जनताके दूसरे वर्गोमे भी, वहुत वडी उदासी छायी हुई है । वे किंकर्त्तव्यविमूढ़ नजर आते हैं । मुल्ककी आजादीसे किसानोने वडी उम्मीदे वाँध रखी थी । वे रामराज्यका सपना देख रहे थे, किन्तु आज जनताकी मामूली जरूरते भी पूरी नही हो पाती । इस कारण लोगोके दिल टूट गये हैं । हमे इस निराशा और उदासीनताके वातावरणको वदलना है । इस वातावरणको वदलनेके लिए हमे जनतामे समानताकी भूख जगानी है । हमे एक ऐसी नयी दुनिया वसानी है जिसमे सवके लिए अवसरकी समानता होगी । इसी विश्वाससे ही बुझे हुए दिलोमे एक नयी शक्ति, एक नया उत्साह पैदा होगा ।

किसान अपनी जिम्मेदारीको ठीकसे निवाह सके इसके लिए उनकी शिक्षा जरूरी है । किसानोको शिक्षित करना सरकारका फर्ज है । हुकूमतकी वागडोर सँभालनेवाले अनेक नेता चुनावके नतीजोसे घवरा गये है । किन्तु सरकार अपना फर्ज अदा करे या न करे पचोको तो किसानोको राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय प्रश्नोकी शिक्षा देनी ही है ।

समाजवादियोंका कर्त्तव्य

यद्यपि वर्तमान गाँव-पचायतके अधिकार और साधन एक हदतक सीमित है फिर भी ये पंचायते ऐसी व्यवस्थापिका सभाएँ नही है जहाँ आपका कार्य केवल विरोधी दल बनाना हो । पंचायतोसे रचनात्मक कार्य भी साथ-साथ चल सकता है । आपको रचनात्मक कार्यमे लगना चाहिये । यदि आप विना जात-पाँत, सम्प्रदाय आदिका भेद किये ईमानदारीसे रचनात्मक कार्य करके अपनेको शोषित जनताका सच्चा सेवक और हमदर्द सिद्ध कर देगे तो वह आपको अपना साथी और रहवर समझेगी । अपने ऊँचे सिद्धान्तोको रखते हुए, लक्ष्यकी सिद्धिके प्रति दृढप्रतिज्ञ रहकर, सच्चे दिलसे जनताकी सेवा करते हुए, ग्रामीण जनतामे समताकी भूख जगाकर आप गाँव-पंचायतोको प्रजातन्त्रकी वास्तविक आधारशिला और समाजवादकी स्थापनाका साधन बना सकेंगे ।

जनताका आशा-दीप बुझ रहा है

मैं इधर कुछ अरसेसे तीन-चार वातोपर जोर दे रहा हूँ । सवसे मौलिक वात यह है कि देशमे निराशा और निरुत्साहका वातावरण छाया हुआ है और लोगोमें सामाजिक तथा राजनीतिक प्रश्नोके प्रति उदासीनता वढती जाती है । हमारे नवयुवक भी इस उदासीनताके शिकार होते जाते हैं । इस परिस्थितिके अनेक कारण हैं । नवार्जित स्वाधीनताका उल्लास किसीके हृदयमे नही है और इसी कारण नवीन रचनाके लिए उत्साहका भी अत्यन्त अभाव है । विना अदम्य उत्साहके कोई भी महान् कार्य सम्पन्न नही हो सकता और यही कारण है कि कोई भी योजना जो बनायी जाती है केवल कागजपर

रह जाती है कार्यान्वित नही होती है । राष्ट्र-निर्माणका कार्य बड़े महत्त्वका है और जबतक जनता उत्साहपूर्वक इस कार्यमे सलग्न नही होती तवतक इस दिशामें प्रगति नही हो सकती । आज इसी उत्साहकी कमी है । गवर्नमेण्ट राष्ट्र-निर्माणके लिए प्राय: अपने कर्मचारियोपर ही निर्भर रहना चाहती है । कदाचित् उसकी दृष्टिमें जनता एक उपास्यदेवके तुल्य है जिसका नाम जप और जयघोप मात्र करना चाहिये, किन्तु जो निष्क्रिय और कूटस्थ है । किन्तु वस्तुत: जनता जड़ और अचेतन नही है; आजके युगमे तो वह नित्य-प्रति अधिकाधिक सक्रिय होती जाती है । जनता ही स्रप्टा और विधाता है । उसकी उपेक्षा नही हो सकती । सब निर्माण और मगलके कार्योमे उसके सहयोगकी आवश्यकता है । इस सहयोगको प्राप्त करनेकी कोई विशेष चेप्टा नही हो रही है और न यह सहयोग प्राप्त ही हो सकता है जवतक कि उसके लिए भूमिका न तैयार कर ली जाय । जबतक निराशाका वातावरण रहेगा तवतक जनतामे उत्साह उत्पन्न नही होगा । अत: सबसे पहले इस वातावरणको बदलना होगा । वातावरणके बदलनेके लिए गवर्नमेण्टको सबसे पहले जनताको वस्तुस्थिति बतानी होगी और उससे त्याग करनेकी अपील करनी होगी । किन्तु गवर्नमेण्टके लोग सब्ज बाग ही दिखाया करते हैं और जनताको इस बातका निरन्तर आश्वासन देते रहते है कि बहुत जल्द ही दूध और शहदकी नदियाँ बहनेवाली हैं । कोई कहता है कि अपने प्रान्तका सहकारिताका आन्दोलन संसारमे सर्वश्रेप्ठ है; कोई कहता है कि अन्य देशोकी हालत हमारी अपेक्षा कही अधिक खराब है ।

चुनावके समय लम्बे-चौडे वादे किये गये थे और गवर्नमेण्ट बननेके बाद भी इनमे वृद्धि होती रही, किन्तु यह वचन अभीतक पूरे नही किये गये है और न उनमेसे बहुतोके पूरे होनेकी आशा ही है । वह वस्तुस्थिति बतानेसे घबराते हैं । इसका बुरा परिणाम यह होता है कि जब लोगोकी आशा भग्न हो जाती है और वह देखते है कि स्थिति सुधरनेके बदले बिगडती जाती है तो वह निराश हो जाते हैं और यह निराशा धीरे-धीरे उदासीनतामे परिवर्तित होती जाती है । गवर्नमेण्टको यह चाहिये कि जितना उसके लिए शक्य हो उतना ही बोझ उठावे और अपनी कठिनाइयोको जनताके सम्मुख रखे । साराश यह है कि वर्तमान स्थितिके बदलनेके लिए मिथ्या प्रचारकी भावनाको छोड़कर ठोस सत्यको चाहे वह अप्रिय ही क्यो न हो, अपनाना होगा । यह पहली शर्त्त है । दूसरी शर्त्त यह है कि जनतासे त्याग और तपस्याके लिए कहनेके पूर्व नेताओ और कर्मचारियोको सबसे पहले इसका उदाहरण पेश करना होगा । जनताकी मनोवृत्ति तवतक नही बदल सकती जबतक नेता और कर्मचारी अपने ऐशोआराममे काफी कमी करनेको तैयार न हो । यह एक ऐसी मोटी बात है कि जिसके समझनेमें कठिनाई नही होनी चाहिये । लेकिन यह तो आज शान दिखानेकी फिक्रमें हैं । मैं मानता हूँ कि पूंजीवादी युगमें जहाँ रुपया सबका मानदण्ड हो रहा है शायद विदेशोमें अपनी कद्र करानेके लिए कुछ बाहरी तडक-भड़ककी जरूरत हो, किन्तु स्वदेशमे अपनी हैसियतसे ज्यादा दिखावा सर्वथा अवांछनीय है । हमारा देश गरीब है, हमको अपनी पूँजी सचित करनी है । अत: हमको किफायतसारीसे काम लेना चाहिये और अपना जीवन बहुत सादा रखना चाहिये । इस एक सुधारसे हमारे राष्ट्रीय

जीवनमें वडा अन्तर पड जायगा। तदनन्तर सवसे पहले हमको २-३ मौलिक कामोको लेना चाहिये और उनको पूरा करनेमे सारी शक्ति लगा देनी चाहिये। अन्न-वस्त्रकी समस्या सवसे प्रथम समस्या है। ज्यो ही यह समस्या सुलझने लगेगी त्यो ही वातावरण वदलने लगेगा। इस समय होता यह है कि गवर्नमेण्ट यह दिखानेका प्रयत्न करती है कि वह सव कुछ कर सकती है और कर रही है। इससे अपनी स्वल्प शक्तियोको हम विखेर देते है। अन्न-वस्त्रकी समस्याके वाद लोक-शिक्षा तथा उच्च-शिक्षाका नम्वर आता है। लोक-शिक्षासे मेरा आशय केवल अक्षर-ज्ञानसे नही है। निरक्षरोको भी नित्यके प्रश्नोके सम्वन्धमे शिक्षा होनी चाहिये। युवकोकी ओर विशेषरूपसे ध्यान देना चाहिये।

संक्षेपमे मेरा यह कहना है कि जवतक जनताकी मनोवृत्ति तथा उसका भाव नही वदलता, हम कुछ नही कर सकते। हम सव जानते है कि आज निराशा छायी हुई है किन्तु उसको दूर करनेके लिए हमने कौन-सा कदम उठाया है? सार्वजनिक प्रश्नोमे वढती हुई अरुचिको रोके विना कुछ नही होगा। हो सकता है कि गवर्नमेण्ट यह समझती हो कि उसका इसमे कोई नुकसान नही है, किन्तु यही अरुचि समय आनेपर कुरुचिमे परिवर्तित हो सकती है। अत सर्वप्रधान समस्या मनोवैज्ञानिक है।

दूसरी वात जिसपर मैं जोर देता हूँ यह है कि लोकतन्त्रकी रक्षा और उन्नतिके लिए एक स्वस्थ विरोधी दलका होना आवश्यक है। काग्रेसके वाहर सवलोग इस आवश्यकताको स्वीकार करते है। किन्तु काग्रेसके भीतर अव भी वहुतसे व्यक्ति इसको विविध युक्ति देकर अनावश्यक ठहराते हैं। कुछका कहना है कि भारतीय प्रकृतिके यह विरुद्ध होगा। राजेन्द्र वावूका कहना है कि यद्यपि विरोधकी आवश्यकता है तथापि यह विरोध काग्रेसके भीतर ही मौजूद है, अत. काग्रेसके वाहर विरोधी दलकी आवश्यकता नही है। यह तर्क हमारी अल्प वुद्धिमे ठीक नही है। काग्रेसके भीतर जो लोग हैं वह उसके वहुमतसे वँधे हुए है। वह व्यवस्थापिका सभामे वहुमतके निर्णयके विरुद्ध कुछ कह नही सकते। आज तो अवस्था यह है कि हमारे विधानको एक अल्प समुदाय ही वना रहा है। पहले कांग्रेस पार्टी की वैठक होती है, उसमे वहुमतसे निर्णय हो जाता है और यही निर्णय विधान-परिपद्से स्वीकृत होता है। ऐसे भी अवसर आते है जव कि यदि जाँच की जाय तव मालूम होता है कि काग्रेसका अल्पमत और स्वतन्त्रमत मिलकर काग्रेसके वहुमतके निर्णयके विपक्षमे है। किन्तु उसको अपनी इच्छाके अनुरूप मत देनेकी स्वतन्त्रता नही है। विधानके वनानेमे पार्टीका ह्विप जारी होना सर्वथा अनुचित है। जव मैं कहता हूँ कि विरोधी दलकी आवश्यकता स्वीकार की जाय तव मेरा मतलव यह नही है कि विरोधी दलोके लिए कुछ सीटे छोड़ दी जायँ। मैं इतना ही चाहता हूँ कि इस सिद्धान्तको काग्रेस भी मुक्तकण्ठसे स्वीकार करे। मैं काग्रेससे कोई भिक्षा नही माँगता, क्योकि मैं जानता हूँ कि इस प्रकार सच्चे विरोधी दलकी सृष्टि नही हो सकती। काग्रेसने उदारतापूर्वक केन्द्रीय व्यवस्थापिका सभामे कुछ गैरकांग्रेसियोको भी ले लिया है, किन्तु इससे कही विरोधी पक्ष थोड़े पनप पाये है। यह व्यक्तिविशेप हैं जिनके पीछे न कोई विशेष प्रोग्राम है और न कोई सगठन।

न होगी। इस अधिकारको स्वीकार करनेका अर्थ केवल यह है कि राज्य भाषण आदिकी स्वतन्त्रता देता है और यह मानता है कि शान्तिमय सत्याग्रहका अधिकार व्यक्तियोको है। इस स्वीकृतिके बाद वह यह नही कह सकता कि यह सिद्धान्तत. गलत है। वह इतना ही कह सकता है कि सत्याग्रहका उद्देश्य पवित्र नही है अथवा उसके लिए कोई उचित कारण नही है।

या तो ऐसे मामले अदालतमे न जायँगे और यदि गये तो अदालत नाममात्रको दण्ड देगी, यदि ऐसे सत्याग्रहसे शान्तिभंग नही होती। यह अधिकार तब भी होना चाहिये जब राष्ट्रीय सरकार हो और लोक-तन्त्रात्मक सरकार हो। किन्तु आज कुछ लोग यह कहते सुने जाते है कि जब अपनी गवर्नमेण्ट हो गयी तो हडताल, सत्याग्रह आदिका अधिकार होना चाहिये। इसका परिणाम यह हो जाता है कि गवर्नमेण्ट और भी बेधड़क होकर गलत आज्ञाएँ प्रचारित करती जाती है। यह ठीक है कि लोकतन्त्रात्मक शासनमे ऐसे अवसर कम आने चाहिये और प्रत्येकको विशेष आवश्यकता पडनेपर ही इस अस्त्रका सोच-समझकर प्रयोग करना चाहिये। किन्तु आज तो प्रान्तके प्रान्त दफा १४४ या पब्लिक सेफ्टी ऐक्टके शिकार हो रहे है। गवर्नमेण्टने इस प्रकार अपनेको हास्यास्पद बना दिया है। यह कैसे विश्वास किया जाय कि समूचे प्रान्तमे इस विशेषाधिकारकी आवश्यकता है। किसी व्यापक अराजकताके चिह्न हमको दिखायी नही पडते। कलकत्तेमे अथवा हैदराबादके कुछ हिस्सोमे इसकी आवश्यकता हो सकती है। किन्तु कम्युनिस्टोका ऐसा कोई प्रभाव नही जिससे शान्तिभंगकी सर्वत्र आशङ्का हो। जनता उनके साथ नही है यह कई बार सिद्ध हो चुका है, फिर यदि सर्वत्र इस प्रकारके विशेपाधिकार बरते जावे तो यही सन्देह होता है कि गवर्नमेण्ट अन्य पार्टियोके काममे बाधा उपस्थित करना चाहती है। धीरे-धीरे भारत एक बड़ा कैदखाना होता जाता है। ऐसी अवस्थामे सत्याग्रहका अधिकार स्वीकार करना और भी आवश्यक है।

भिन्न-भिन्न राजनीतिक दलोका काग्रेसके साथ सहयोग होना तब तक सम्भव नही है जबतक इन बातोका निर्णय नही हो जाता। यदि काग्रेस किसी दलका सहयोग नही चाहती तो कोई हर्ज नही है, किन्तु जनताकी उपेक्षा करके वह भी जिन्दा नही रह सकती और जनताका सहयोग तभी उसे प्राप्त होगा जब वह किसी ऊँचे आदर्शको उसके सामने रखकर और स्वय उसपर चलकर उसकी उदासीनताको दूर करेगी और उसके बुनियादी सवालोको हल करेगी।

चौथा अध्याय

समाजवाद

चौथा अध्याय

समाजवादका लक्ष्य

समाजवादका ध्येय वर्गविहीन समाजकी स्थापना है। समाजवाद प्रचलित समाजका इस प्रकारका संगठन करना चाहता है कि वर्तमान परस्पर-विरोधी स्वार्थोवाले शोपक और शोषित, पीडक और पीडित वर्गोका अन्त हो जाय; वह सहयोगके आधारपर सगठित व्यक्तियोंका ऐसा समूह वन जाय जिसमे एक सदस्यकी उन्नतिका अर्थ स्वभावत दूसरे सदस्यकी उन्नति हो और वह मिलकर सामूहिक रूपसे परस्पर उन्नति करते हुए जीवन व्यतीत कर सके।

संसारकी आजादी

मानव-इतिहासके आरम्भसे अवतक समाजमे शोषक और शोपित वर्गोका सघर्ष चलता रहा है। मनुष्य सामाजिक प्रगतिके नियमोका दास वनकर कार्य करता रहा है; वह समाजके विकासकी दिशा वोधपूर्वक निर्धारित करनेमे असमर्थ रहा है। समाजवाद ऐसे शोपणमुक्त और स्वतन्त्र समाजकी रचना करना चाहता है जिसमे मनुष्य अपनी इस असमर्थताके दायरेसे ऊपर उठ सके और सामाजिक विकासका नियन्त्रण कर सके। कार्ल मार्क्सके शव्दोमे 'समाजवाद मनुष्यको विवशताके क्षेत्रसे हटाकर उसे स्वाधीनताके राज्यमे (from the realm of necessity to the realm of freedom) ले जाना चाहता है।"

समाजवाद ससारको आजाद करना चाहता है, व्यक्तित्वके विकासमे रुकावट डालनेवाले सामाजिक वन्धनोसे उसे छुटकारा दिलाना चाहता है। शोपणमुक्त समाजकी रचना करके, मौजूदा समाजकी प्रचलित दासता, विषमता और असहिष्णुताको सदाके लिए दूर करके, समाजवाद स्वतन्त्रता, समता और भ्रातृभावकी वास्तविक स्थापना करना चाहता है। स्वतन्त्रता, समता और भ्रातृभावके आदर्श तो पुराने ही है। प्राचीन कालमे सामाजिक स्वतन्त्रताके जो आन्दोलन समय-समयपर होते रहे हैं उनकी पताकापर ये ही आदर्श वाक्य अकित रहे है। यूरोपकी कायापलट करनेवाली महान् राज्यक्रान्ति—फ्रान्सीसी राज्यक्रान्ति—का भी मूलमन्त्र यही था लेकिन हम आज देखते है कि फ्रान्सीसी राज्यक्रान्तिके आदर्शोकी सिद्धि होनेके वाद भी विपमता दूर नही हुई है। सच तो यह है कि ये व्याधियाँ समाजमे पहलेकी अपेक्षा आज और भी वढ गयी है।

फ्रांसकी राज्यक्रान्ति

यहाँपर कुछ लोग यह प्रश्न कर सकते हैं कि जव दासता, विषमता और असहिष्णुताके भाव समाजमे आज विद्यमान हैं तो हम यह कैसे कह सकते है कि फ्रान्सकी राज्यक्रान्ति

सफल हुई ? इस प्रश्नका उत्तर ठीक-ठीक समझनेके लिए इस बातको अच्छी तरह समझ लेना होगा कि समता और स्वतन्त्रता आदि भावनाओका अर्थ क्या है ? समता आदि भावनाओंको निरपेक्ष (absolute) आदर्श, कभी न बदलनेवाला, नही कहा जा सकता। समाज, काल और देश-भेदसे इनके अर्थोमे भी अन्तर हो जाता है। फ्रान्सीसी राज्यक्रान्तिके विचारोंका इन नारोसे क्या अर्थ था, यह समझनेके लिए आवश्यक है कि हम यूरोपके उस समयके सामाजिक संगठनका अध्ययन करे और देखे कि उस समय यूरोपके समाजमे प्रचलित विषमता और दासताका स्वरूप क्या था ? हम देखते है कि फ्रान्सीसी राज्यक्रान्तिके समयके यूरोपमें सामन्तशाहीकी तूती बोलती थी। उस समय समाज छोटे-छोटे भू-भागोमे बँटा हुआ था। समाजके राजनीतिक और आर्थिक जीवन-पर राजाओं, जागीरदारो और महन्तोका प्रभुत्व था। गाँवोकी जनता कृषकदासो (serfs) का जीवन व्यतीत करती थी। उत्पादनकी शक्तियोको इस सामन्तवादी आर्थिक व्यवस्थामे अधिक फैलनेकी गुजाइश नही थी। व्यापारियोका वर्ग प्रभावशाली हो रहा था, लेकिन राजनीतिक शक्ति सामन्तोके हाथमे होने और आर्थिक दृष्टिसे जनसंख्याके प्रादेशिक खण्डोमें बँटे रहनेके कारण व्यापारके मार्गमे बाधा पडती थी। कृषकदासता प्रथा (serfdom) के प्रचलनके कारण कृषक जनताके पास इतनी आमदनी नही हो पाती थी कि वह व्यापारियोद्वारा अब अधिक मात्रामे पैदा की जानेवाली वस्तुएँ खरीद सके। साथ ही कृषकदास अपनी जमीनको छोडकर कारखानोमे काम करने भी नही जा सकते थे। ऐसी अवस्थामे व्यापारी पूँजीपति वर्गके लिए यह स्वाभाविक था कि वह एक ऐसी क्रान्तिका नेतृत्व करता जिसके फलस्वरूप सामन्तोकी ताकत खत्म होकर ऐसा प्रजातन्त्र स्थापित होता जिसमें राज्यकी सत्ता पूँजीपतियोके हाथमे आती और व्यापारके फैलावके लिए आजादी हासिल होती। फ्रान्सीसी राज्यक्रान्तिमें सामन्तवादी समाजकी विषमता और दासता दूर की गयी और इसी अर्थमें हम फ्रान्सीसी राज्यक्रान्तिकी सफलताकी बात भी करते है।

आधुनिक विषमताएँ

आज जब हम कहते है कि स्वतन्त्रता, समता आदिके आदर्शोको हमे सिद्ध करना है तो हमारा अर्थ उस अर्थसे भिन्न होता है जो कि फ्रान्सकी राज्यक्रान्तिके नेताओका था। जैसा कि हमने ऊपर देखा, फ्रान्सकी राज्यक्रान्तिका अर्थ उन सामन्तवादी विषमताओको हटाना था जो पूँजीवादके विकासके मार्गमे बाधक थी। आज हमारा ध्येय उन विषमताओ और बन्धनोको दूर करना है जो पूँजीवादके प्रसारसे उत्पन्न हुई है और जो आज उत्पादनकी शक्तियोको आगे बढ़नेसे रोक रही है।

पूँजीवादी प्रणालीके संसारव्यापी होनेके कारण आज ससारभरमे पूँजीपतियोका बोलबाला हो रहा है। प्राचीन कालके सामन्तोंका स्थान पूँजीपतियोने ले लिया है। राष्ट्र और संसारकी दौलत मुट्ठीभर पूँजीपतियोके हाथमे आ गयी है। लन्दन शहरके व्यापारी ब्रिटिश साम्राज्यभरकी आर्थिक बागडोर अपने हाथमे रखते है। फ्रांसकी

लाखोंकी आवादीपर राज्य करनेवाले दो सौ धनकुबेरोके परिवार है । यही हालत हर जगह पायी जाती है । हर राष्ट्र स्पष्टत. दो मुख्य शोपक और शोपित भागोमें बँट गया हैं । एक ओर तो लक्ष्मीके लाड़ले मुट्ठीभर पूँजीपति है जो शानदार महलोमे रहते है, जिन्हे सभ्यताकी सभी विभूतियोका सुख प्राप्त है, जो समाजके भाग्यविधाता समझे जाते है—जिनके अधिकारमे उत्पादन, विनिमय और वितरणके सभी साधन है । दूसरी ओर शोषित वर्गके वे वहुसख्यक अभागे लोग है, जिनकी एकमात्र पूँजी उनकी श्रमशक्ति है, जो लोग अपने परिश्रमसे समाजकी सभी वस्तुएँ पैदा करते है पर जिनको न पेट भरनेको अन्न और न तन ढकनेको कपडे है—जिनका कार्य अमीर पूँजीपतियोकी कृपापर निर्भर रहकर रात-दिन शोषणकी चक्कीमे पिसते रहना ही है ।

यो तो कहनेको कानूनकी निगाहमे शोषक और शोपित दोनो ही वर्गके लोग वरावर है, कानून सभीके साथ समान रूपसे न्याय करता है, लेकिन हममेसे हर कोई इस वातको जानता है कि गरीवोके साथ होनेवाला न्याय कितना पक्षपातसे भरा होता है और न्यायालयोमे रोज ही न्यायके गलेपर छुरी फिरा करती है । समाजमे पूंजीपतियोकी जो वर्गस्थिति है उसकी वदौलत अधिकारके सभी स्थानोपर पूँजीपतियोका ही एकाधिपत्य होता है । ये पूँजीवादी अधिकारी कितना भी निष्पक्ष होनेकी कोशिश क्यो न करे लेकिन स्वभावत: उनका दृष्टिकोण अपने वर्ग-स्वार्थसे रँगा हुआ होता है ।

भूखों मरनेकी आजादी

कहा जाता है कि पूँजीवादी प्रजातन्त्रकी स्थापनासे आजकी दुनियामे आजादी कायम हो गयी है, किन्तु श्रमजीवियोके लिए यह आजादी पूँजीपतियोकी शर्तपर अपना आत्म समर्पण करने या वदलेमे भूखो मरनेकी ही आजादी है । सच तो यह है कि आजकलके पूँजीवादी समाजमे साधारण मनुष्योके लिए जीवनकी कठिनाइयाँ सामन्तवादी युगकी अपेक्षा कई गुना ज्यादा वढ गयी है । गरीवी और अमीरी उस समाजमे भी वहुत दर्जेतक थी, किन्तु आजका-सा यह हाल न था कि एक तरफ सारी सम्पत्ति चन्द इने-गिने हाथमें इकट्ठा हो गयी है और दूसरी तरफ लाखो मेहनत करनेवाले परिवार भूखो मरते हैं । सामन्तवादी जमानेमे उत्पादनकी शक्तियोका आजका-सा विकास न था, जीवनकी वहुत-सी सुविधाएँ, जो आज मिल सकती है, प्राप्त न थी । पर आज तो हर देशमे वेकारोकी एक वहुत वड़ी फौज खडी हो रही है । जो लोग काममे लगे हुए है उनको अपने श्रमका पूरा मुआवजा मिलना तो दूर रहा उल्टे हमेशा उन्हे यह डर रहता है कि किसी भी क्षण के वेकारीके गिरोहमे फेक दिये जा सकते है ।

यह विषमता क्यों ?

आजकलके समाजकी यह भीपण विपमता क्यो ? इस विपमताका कारण यह है कि उत्पादन, विनिमय और वितरणके साधनोपर चन्द पूँजीपतियोका अधिकार है । उत्पादनके इन साधनोमे—मिलो, कारखानो और वैको आदिमे—काम करनेवालोका इन साधनोपर कोई अधिकार नही है । प्राचीन कालमे जव कि गृहशिल्प (cottage

industry) प्रणालीकी प्रधानता थी, आजकलकी भाँति वडे पैमानेपर पैदावार नही होती थी, उत्पादनके साधनोपर व्यक्तिगत अधिकार हुआ करता था और वहुत हदतक पैदावार करनेवाले व्यक्तिको अपनी पैदावारका लाभ मिलता था। आज वड़े पैमानेपर पैदावार होती है, पर उत्पादनके साधनोपर समाजका या उनमें काम करनेवाले आदमियोका कोई अधिकार न होकर व्यक्तिगत पूंजीपतियोका अधिकार होता है। फलस्वरूप सारा नफा इन व्यक्तिगत पूंजीपतियोकी ही जेवोंमें जाता है और मजदूरोको मुश्किलसे उनके पेट भरनेके लिए दिया जाता है।

पूंजीवादी प्रणालीका नतीजा न सिर्फ समाजके दूसरे लोगोके लिए ही वल्कि पूंजी-पतियोके लिए भी घातक होता है। चूंकि समाजका वहुसख्यक भाग परिश्रम करनेवालोंका है, जिनकी क्रयशक्ति (purchasing power) दिन-व-दिन घटती ही चली जाती है, इसलिए पूंजीपतियोको अपने कारखानेका माल वेचना दिन-व-दिन मुश्किल होता जाता है। यो तो किसी योजना (plan) के अनुसार पैदावार न होनेके कारण पूंजीवादी आर्थिक प्रणालीमे सकट आया ही करते थे, लेकिन श्रमिक जनताकी क्रयशक्तिके ह्रासके फलस्वरूप अव इस संकटने स्थायी रूप धारण कर लिया है। इस प्रकार उत्पादनकी शक्तियो और उत्पादनके साधनो तथा उत्पादनकी शक्तियो और विनिमयके वीच घोर असंगतियाँ उपस्थित हो गयी है। समाजवादका उद्देश्य इन्ही असमानताओ और असंगतियों-को दूर करना है।

अगर कुछ लोग यह समझते हो कि समाजवाद हर प्रकारकी आजादी या समानता कायम करने जा रहा है तो यह उनकी भूल होगी। समाजवाद पूर्ण समानता लानेका दावा नही करता। समाजवादी समाजमे भी समाजके सदस्योमे शारीरिक और मानसिक अन्तर रहेगे ही। समाजवाद यह अवश्य करेगा कि वह शोपक वर्गका अन्त करके, असमानता का आर्थिक आधार (economic basis) नष्ट कर देगा और सवको अवसरकी समानता प्रदान करेगा।

सामाजिक वर्गोका अर्थ

पहले वताया गया है कि समाजवादका ध्येय वर्गरहित समाजकी स्थापना है। यहाँपर यह स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि वर्ग शव्दसे हमारा अभिप्राय क्या है। वर्गके सम्वन्धमे वहुतसी मिथ्या धारणाएँ प्रचलित है। कुछ लोग यह समझते है कि समाजमें अमीर और गरीव ये दो वर्ग हमेशासे रहते आये है और समाजवादका उद्देश्य इन दोनो समूहोके अन्तरको मिटाकर समाजके सभी सदस्योमे आर्थिक एकरूपता स्थापित करना है। यह ठीक है कि हजारो वर्पोसे यह अमीरो और गरीवोका भेद चला आया है, मगर यह कहना गलत है कि हमेशा ऐसा रहा है और रहेगा। गरीवी कव शुरू हुई, क्यो शुरू हुई यही तो समाजवाद वताता है। इसीमे तो श्रेणी-सघर्पका रहस्य है।

भ्रमपूर्ण धारणाएँ

इसमे सन्देह नही कि समाजवाद जिस नयी सामाजिक व्यवस्थाकी कल्पना करता है उसमे आजकलकी भाँति भीषण आर्थिक विषमताएँ न पायी जायँगी, लेकिन इसका यह अर्थ निकालना भ्रमपूर्ण होगा कि समाजवादी आर्थिक एकरूपता कायम करना चाहते है। समाजवादका आदर्श हर व्यक्तिसे उसके योग्यतानुसार काम लेकर उसके आवश्यकतानुसार उपयोगकी वस्तुओका प्रवन्ध करना है। यह तो निश्चित ही है कि समाजके विभिन्न व्यक्तियोकी आवश्यकता भी विभिन्न होगी। ऐसी हालतमे सवकी आमदनी वरावर कैसे की जा सकती है? कुछ लोग वर्गोका अर्थ समाजमे प्रचलित विविध धन्धे या पेशे (vocations) समझते है। इन लोगोकी रायमे समाजवाद सभी पेशोको मिटाकर सवको एक पेशेका वना देना चाहता है। यह स्पष्टत. असम्भव कल्पना है। यह मुमकिन है कि समाजवादी व्यवस्थामे आजकल प्रचलित कुछ धन्धोकी जरूरत न पड़े। उदाहरणार्थ, समाजवादी समाजमे हमे फौजकी जरूरत न होगी। लेकिन जवतक समाजका अस्तित्व मौजूद है समाजके भीतर विभिन्न कार्योको सुचारु रूपसे चलानेके लिए श्रमविभाजन मौजूद रहेगा और फलस्वरूप अनेक पेशे भी मौजूद रहेगे। सव पेशोको हटाकर एक पेशा कायम करनेकी दलील वास्तवमे समाजवादके उन विरोधियोद्वारा दी जाती है जो इसके जरिये वड़ी आसानीसे यह सावित करना चाहते है कि वर्गरहित समाजकी रचना एक असम्भव कल्पना है।

वर्गकी परिभाषा

समाजवादी जब वर्गोका उल्लेख करता है तो वह समाजमे प्रचलित उन उत्पादन सम्वन्धो (production relations) को ध्यानमे रखता है जिनपर समाजकी आर्थिक-प्रणाली आश्रित होती है। वर्ग या सामाजिक वर्ग उन व्यक्तियोका समूह है जो सामाजिक उत्पादनमे एक प्रकारका कार्य करते है और उत्पादनके क्रममे लगे हुए दूसरे व्यक्तियोके साथ उनका सम्वन्ध भी एकही सा होता है। यह एक-सा सम्वन्ध श्रमके साधनोके सम्वन्धमे भी लागू होता है[1]। इससे हम यह भी समझ सकते है कि वितरणके क्षेत्रमे एक वर्गके सदस्योकी आमदनी भी प्राय एक सरीखी होगी। उदाहरणार्थ, हम आजके समाजमे मजदूरो और पूँजीपतियोको देखते है। सभी मजदूरोंके समूह, चाहे वे कपड़ेकी मिलोमे काम करते हो, खानोमे काम करते हो या और कही, एक ही श्रेणीमे गिने जायँगे। सामाजिक उत्पादनमे, आर्थिक वस्तुओकी पैदावारमे, इनका भाग एक-सा

---

1. A Social class is the aggregate of persons playing the same part in production, standing in the same relation towards other persons in the production process, these relations being also expressed in things (instrument of labour)—Bukharin in Historical Materialism.

है। ये सभी उत्पादनके साधनोसे रहित है अर्थात् मिलो या कारखानोके मालिक वे खुद नही है। सभी अपनी श्रमशक्ति बेचकर मजदूरी कमाते है। उत्पादनके क्रममे लगे हुए दूसरे लोगो अर्थात् मिलमालिको आदिके प्रति सामूहिक रूपसे इनका सम्बन्ध एक सरीखा है। इसलिए सभी समूहोके मजदूर एक ही मजदूर श्रेणीमे गिने जायँगे। इसी प्रकार पूँजीपतियोका भी एक वर्ग है। चाहे कपडेके मिलके मालिक हो, चाहे खानोके मालिक हो अथवा हथियारोके कारखानोके मालिक हो, सभी उत्पादनके क्रममे एक-सा भाग रखते है। ये सभी उत्पादनके साधनोके मालिक है, सभी मजदूरोकी श्रमशक्ति खरीदकर उससे नफा कमाते है। उत्पादनके क्रममे लगे हुए दूसरे समूहोके साथ उनका सम्बन्ध एकसा है।

आधारभूत वर्ग

यद्यपि अबतकका हर समाज उत्पादक सम्बन्धोके आधारपर कई वर्गोमे बाँटा जा सकता है, किन्तु आधारभूत रूपसे हर समाजमे दो ही वर्ग पाये जाते है—एक तो वे लोग जिनका स्थान समाजमे मालिकोका होता है और उत्पादनके साधनोपर जिनका एकाधिपत्य होता है, दूसरा वह वर्ग जिसका काम हुक्म बजा लानेका होता है, जो पहले वर्गके लिए दास बनकर काम करता है और उसके द्वारा शोषित किया जाता है। ये दोनो वर्ग परस्पर एक-दूसरेके विरोधी होते है। दोनो आधारभूत वर्गोमे सदा प्रत्यक्ष या परोक्ष रूपमे वर्गसंघर्ष जारी रहता है। प्राचीनकालमे दास और स्वतन्त्र मालिक, मध्ययुगमे सामन्तगण और कृपकदास (serf) और आजकलके पूँजीवादी समाजमे पूँजीपति और मजदूर इसी प्रकारके आधारभूत वर्ग है। इन आधारभूत वर्गोके अतिरिक्त भी समाजमे कई प्रकारके वर्ग पाये जाते है। परन्तु उन वर्गोका स्वार्थ अन्ततोगत्वा इन्ही आधारभूत वर्गोमेसे किसी एकके साथ होता है। इसमे शक नही कि कुछ वर्ग ऐसे भी पाये जाते है जिनका स्वार्थ थोडाबहुत दोनो वर्गोके साथ होता है, परन्तु इन दो आधारभूत वर्गोसे स्वतन्त्र इनका कोई अपना पृथक् स्वार्थ नही होता। प्रसिद्ध समाजवादी विद्वान् बुखारिनके मतानुसार समाजमे आधारभूतवर्गोके अतिरिक्त निम्नलिखित वर्ग पाये जाते है :—

मध्यम वर्ग (middle classes)—इस वर्गमे वे सामाजिक आर्थिक समूह आते है जो कि समाजकी संगठन-व्यवस्थाके लिए आवश्यक है। इन लोगोका स्थान आधारभूत शोषक और शोषित वर्गोके बीचका हुआ करता है। दिमागी काम करनेवाले श्रमिक इसी श्रेणीमे आते है।

परिवर्तनशील वर्ग (transition classes)—इन वर्गोमे वे समूह आते है जो प्राचीन समाज-व्यवस्थासे निकलते है, पर अब जिनकी शकल बदलती जा रही है और जो दिन-ब-दिन विरोधी वर्गोमे बँटते चले जा रहे है। किसानो और कारीगरोके वर्ग इसी प्रकारके है। दिन-ब-दिन इस वर्गके सदस्य निकलकर सम्पत्तिजीवी या मजदूर वर्गमें मिलते जा रहे है। धनी किसान व्यापारी बनता है और धीरे-धीरे पूरा पूँजीपति बन

बैठता है। इसके विपरीत गरीव किसान अपनी जमीन और खेतीके औजारोसे वञ्चित होकर दिन-व-दिन मजदूर वनता जा रहा है।

मिश्रित वर्ग (mixed classes)—इसमे ऐसे समूहोकी गणना होती है जिनका स्वार्थ किसी वातमे एक वर्गके साथ है और किसी वातमे दूसरे वर्गके साथ। उदाहरणार्थ,—रेलवेमे काम करनेवाला एक मजदूर जिसके घरपर अपना कुछ खेत भी है, इसी वर्गमें आता है। खेतपर मजदूरसे काम लेनेके कारण वह मालिक भी है और खुद मजदूरीका पेशा करनेके कारण मजदूर भी है।

इन वर्गोंके अलावा कुछ लोग ऐसे भी पाये जाते है जो उत्पादनके काममे कोई भाग नही लेते। ऐसे वर्गोंकी गणना त्यक्त वर्ग (declassed) समूहोमे की जाती है। भिखारी और आवारोकी गणना इन्हीमे करनी चाहिये।

मानव-समाजका विकास

समाजकी आदिम व्यवस्थामे मानव-समुदाय आर्थिक वर्गोंमे वँटा हुआ न था। मानव-समुदायके ऐतिहासिक विकासका सिहावलोकन करते हुए हम देखते है कि आदिम (primitive) समाज आर्थिक दृष्टिसे पारस्परिक सहयोगके आधारपर सगठित था। यह वह जमाना था जव कि लोग प्राय खानावदोशो (nomads) की जिन्दगी विताते थे। जगलके फल और जड़ी-वूटियाँ बटोरकर, चिड़ियो और जानवरोका शिकार करके और मछलियाँ पकडकर अपनी जीविका चलाया करते थे। उस समय लोग जो कुछ इकट्ठा करके लाते थे वह किसी व्यक्ति-विशेपकी सम्पत्ति न होकर समुदायकी सम्पत्ति होती थी जिसे वे लोग आवश्यकतानुसार आपसमे वाँट लेते थे। वादमे पशुओको पालकर उनका दुग्ध और मास भी भोजनके काममे लाते थे। जवतक आदमी खाना-वदोशीकी हालतमे घूमता रहा और खेती करना सीखकर व्यवस्थित जीवन नही व्यतीत करने लगा तवतक वर्ग-विभेदका भौतिक आधार (material basis) पूर्ण रूपसे नही तैयार हो पाया था।

वर्गोंकी उत्पत्ति

किन्तु धीरे-धीरे उत्पादनकी शक्तियोका आगे विकास हुआ, जीवनकी कठिनाइयोको सरल वनानेके प्रयत्नमे मनुष्यने खेती करना सीखा। खेतिहर वन जानेके वाद वह व्यवस्थित जिन्दगी विताने लगा। अव खानावदोशीकी अवस्थामे रहनेवाला वह ऐसा असहाय प्राणी नही रह गया जो पग-पगपर प्राकृतिक शक्तियोका शिकार वना रहता था। अव धीरे-धीरे वह प्रकृतिके रहस्योको जानने और उसके नियमोका पता लगाकर उसकी अथाह शक्तियोपर क्रमश' नियन्त्रण प्राप्त करने लगा। विज्ञान और कलाका आरम्भ हुआ। आरम्भिक यन्त्रोका आविष्कार हुआ। यद्यपि सहयोगपर आधारभूत पुराने

समाजके वहुतसे रस्मो-रिवाज अब भी कायम थे, पर वहुत-सी बातोमे तब्दीलियाँ भी हो गयी। कृषि और ऐसे औजारोके साथ जिनपर व्यक्ति अकेले ही काम कर सकता था, समाजके अन्दर श्रमका विभाजन भी वढता गया। वस्तुओका विनिमय (exchange) भी आरम्भ हुआ और विनिमयके नये-नये साधनोकी खोज हुई। पुरोहितो और योद्धाओ आदिकी श्रेणियाँ वन गयी।

अव आर्थिक सहयोगपर आधारभूत आदिम व्यवस्थाकी सामाजिक समानताका लोप होने लगता है। पहलेकी तरह जीवन-निर्वाहके साधनोको लोग अव सम्मिलित रूपमे इकट्ठा नही करते थे, फलस्वरूप आर्थिक उपजपर सवका समान स्वामित्व जाता रहा था। अव समाजमे गरीवो और अमीरोका भेद पैदा हो गया। जिन लोगोको समाजमे मुखियोका पद मिल गया था, जो लोग पुरोहित वन गये थे या जो लोग वलवान थे और लडाईमे गिरोहोके नेता वन सकते थे ऐसे लोग छल, वल, कौशलसे समाजके मालिक वन वैठे।

स्वामी और दास

उन दिनो विभिन्न जातियोंमें जमीन आदिके लिए लड़ाइयाँ वहुत होती थी। इन लड़ाइयोमे जो लोग पकडे जाते थे वे विजेताओके यहाँ दास वनकर काम करते थे। इस तरह समाजमे धीरे-धीरे दास और उनके मालिक-जैसे वर्ग पैदा हो गये। दासोकी संख्यामे वृद्धि होनेके और भी कई प्रकार थे, लेकिन मुख्य स्रोत जातियोका पारस्परिक युद्ध ही था।

ससारके विभिन्न भागोमे जिन आरम्भिक सभ्यताओका उदय हुआ उन सभीमे दासो और स्वामियोका वह वर्ग-भेद पाया जाता है। प्राचीन कालमे दासताकी प्रथाके प्रचलनसे ही स्वामी-वर्गके सुविधाप्राप्त सदस्योको यह अवसर मिल सका था कि वे अपनेको जीविका-निर्वाहके लिए आवश्यक दिन-रातके कठिन परिश्रमसे मुक्त करके ज्ञान-विज्ञान और कला-कौशलकी उन्नतिकी ओर लगा सके। अगर दासताकी प्रथा उस समय प्रचलित न होती जो ग्रीस, रोम तथा मिस्र और प्राचीन कालकी दूसरी सभ्यताएँ जिनपर आज हम गर्व करते हैं समृद्धिकी उस सतहपर न पहुँच सकती थीं जिसपर उन्हे हम पाते हैं। प्राचीन भारतमे भी दासताकी प्रथा विद्यमान रहनेके प्रमाण मिलते है। सभ्यताके आरम्भिक विकासके लिए दासताकी प्रथा एक ऐतिहासिक आवश्यकता (historic necessity) थी। उस युगमे जव यन्त्रोका आजकी भाँति विकास नही हो पाया था, जव जीवन-निर्वाहके लिए आवश्यक कम-से-कम साधनोको जुटानेके लिए लोगोको दिन-रात जी-तोड़ मेहनत करनी पड़ती थी, उस समय कला-कौशल आदिकी वृद्धि उसी हालतमे हो सकती थी जव कि मनुष्योके लिए समूहको सांस्कृतिक विकासके लिए अवसर प्रदान किया जाता। यही कारण है कि हम देखते हैं कि अरस्तू जैसा विद्वान् भी विना दासोके समाजकी कल्पना नही कर सकता था।

सामन्त और कृषकदास

धीरे-धीरे उत्पादक शक्तियोका विकास होता गया, दास-प्रथाके जमानेमे श्रमका जो विभाजन अस्तित्वमे आया था वह और भी फैलता और जड पकडता गया । खेती और व्यापारकी वृद्धि होती गयी । इन सबका स्वाभाविक परिणाम यह हुआ कि दासताकी प्रथाका भी स्वरूप बदला । अब वह सामन्तवादी युग आ जाता है जब कि बडे-बडे सामन्त योद्धाओं और पुरोहितोका समाजमे बोलबाला था । खेतीकी सारी जमीनपर इन्ही मठाधीशो या सामन्त सरदारोका कब्जा हुआ करता था और किसानोका बहुसख्यक समुदाय उनको अपना मालिक मानकर और बदलेमे उन्हे भूमि-कर प्रदान करके जमीनको जोतता था । पुरानी दासता-प्रथा जिसमे स्वामी अपने दासके शरीर और आत्माका मालिक हुआ करता था अब मिट गयी और उसका स्थान कृपकदास (serfdom) ने लिया । कृपकदासताके अनुसार किसानकी जमीन और किसानपर भी सिद्धान्तत स्थानीय सामन्तका अधिकार समझा जाता था । इन किसानोको सामन्तकी जमीनपर बेगार भी करनी पडती थी । इस समय समाजमे सामन्त (feudal lords) और कृपक (serf) ये दो आधारभूत वर्ग थे और जैसा कि हम आगे चलकर देखेगे इन दोनो बुनियादी तबकोमे जोरोकी कशमकश जारी थी ।

औद्योगिक क्रान्ति

इसी जमानेमे व्यापारियोका वर्ग भी बढ रहा था । इस समयतक वस्तुओका विनिमय काफी मात्रामे होने लगा था । इस विनिमयके वर्तमान माध्यम, सिक्कोका भी प्रचार हो चला था । प्राचीनकालमे जब कि सिक्कोका प्रचलन न था और गाय, घोडे आदि जानवर या कुछ कीमती वस्तुएँ विनिमयके माध्यमका काम करती थी तो उस हालतमे व्यापारके फैलावके लिए गुजाइश बहुत कम थी । सिक्कोका चलन हो जानेके बादसे व्यापार तेजीसे बढ चला । आरम्भमे राजधानीमे और बादको अन्य प्रमुख केन्द्रोमे इन व्यापारियो और व्यवसायिकोके सघ (guild) बन गये । इन व्यापार-सघोका काम वस्तुओकी कीमत निर्धारित करना, व्यापारियोके बीच अवाछनीय प्रतिस्पर्धाको रोकना, व्यापारकी दशाओका निरीक्षण तथा नियन्त्रण करना और व्यापारियोके आर्थिक झगडोका निपटारा करना आदि होता था ।

सामन्तशाही जमानेमे उत्पत्ति व्यक्तिगत रूपसे गृह उद्योगधन्धोके जरिये ही होती थी । छोटे-छोटे औद्योगिक केन्द्रोमे फैले हुए अपनी अपनी दूकानके अनेक मालिक होते थे । वे अपने परिवारवालो और उन लोगोकी सहायतासे जो काम सीखना चाहते थे अपना कारोबार चलाते थे । मालिकको खुद भी पूरा परिश्रम करना पडता था । पर ज्यो-ज्यो व्यापार बढता गया त्यो-त्यो औद्योगिक क्रान्तिके लिए पूर्वावस्था तैयार होती गयी । आरम्भमे बढती हुई माँगको पूरा करनेके लिए कुछ मालिकोने थोडे मजदूरोसे अपने घरपर मजदूरीपर काम लेना शुरू किया—उस ढगपर जिस ढगपर आज बनारसके रेशमके व्यवसायमे बहुतसे जुलाहे एक मालिकके कारखानेमे इकट्ठे होकर काम करते है ।

छोटे पैमानेके व्यक्तिगत उत्पादनके स्थानपर बड़े पैमानेके सामूहिक उत्पादनका बीज वृद्धि करनेके उपाय सोच निकाले जाते है और एक समय आता है जब भाप और बिजलीसे काम होने लगता है और बड़े पैमानेपर माल तैयार करनेवाले आधुनिक ढगके कारखाने तैयार हो जाते है। कुटीरशिल्प प्रणालीके स्थानपर बड़े पैमानेपर कारखानोंद्वारा विकसित यन्त्रोका सहारा लेकर उत्पादन करनेकी जो नयी प्रणाली प्रचलित हुई उसने औद्योगिक अवस्थाओमे एक क्रान्ति उत्पन्न कर दी, जिसे इतिहासकारोने औद्योगिक क्रान्ति कहकर पुकारा है। यह औद्योगिक क्रान्ति १८ वी शताब्दीके उत्तरार्धमे पहले-पहल यूरोपमें और यूरोपमे भी सबसे पहले इगलैण्डमे हुई।

इगलैण्डमे औद्योगिक क्रान्तिके सर्वप्रथम घटित होनेके कई कारण है। भापसे चलनेवाले यन्त्रोके लिए लोहे और कोयलेकी आवश्यकता थी, इंगलैण्डमें ये दोनो ही खनिज-पदार्थ पास-पास और बहुतायतसे मिलते है। इसी प्रकार समुद्री मार्गपर इंग्लैण्डकी सुविधापूर्ण भौगोलिक स्थिति, वहाँकी जलवायु, कुशल कारीगरोकी मौजूदगी, पूर्वके साथ इंगलैण्डका व्यापार आदि कारणोने इंगलैण्डमे औद्योगिक क्रान्तिको पहले जन्म दिया। पूर्वके साथ और विशेषकर हिन्दुस्तान और हिन्द महासागरके साथ इगलैण्डका जो व्यापार होता था उसकी बदौलत इंगलैण्डके पूँजीपतियोके पास काफी पूँजी इकट्ठी हो गयी थी जिसके कारण इंगलैण्डमे वे अपने व्यवसायको उत्तरोत्तर बढानेमे समर्थ हुए।

पूँजीपति और मजदूर

सामन्तवादी युगके बाद पूँजीवादका जमाना आता है। उत्पादनकी शक्तियोंके आगे विकासके मार्गमे सामन्तशाही आर्थिक प्रणालीमे रुकावट हो चली थी। समाजमें व्यापार बढ रहा था, पर सामन्तशाही ढाँचेमे उसके फैलावके लिए गुजाइश बहुत कम थी। समूचे राष्ट्र छोटे-छोटे भूखण्डोमे बँटे हुए थे, जिनका मालिक कोई सामन्त हुआ करता था। व्यापारके लिए आवश्यक कच्चे मालपर इन सामन्तोका अधिकार था। कारखानोमे जाकर काम करनेके लिए किसान स्वतन्त्र न थे, क्योकि वे कृपकदास होनेके नाते अपने मालिकोके खेतपर बेगार करनेके लिए बाध्य थे। जगह-जगह थोड़ी-थोड़ी दूरपर व्यापारियोसे उनके मालपर चुगी वसूल की जाती थी। ऐसी हालतमे व्यापार किस तरह पनप सकता था? इधर कृपक-दासतामे फँसे होनेके कारण किसानोका भी बुरा हाल था। फलस्वरूप, जैसा कि हम आगे देखेंगे, एक बड़ी प्रजातान्त्रिक क्रान्ति हुई जिसने समाजका ढाँचा ही बदल दिया। इस क्रान्तिके परिणामस्वरूप सामन्तवादके स्थानपर पूँजीवादकी स्थापना हुई। पूँजीवादी आर्थिक प्रणालीकी विशेषता यह है कि उत्पादन, विनिमय और वितरणके साधनो, यानी जमीन, मिलो, कारखानों, बैंको आदिपर चन्द पूँजीपतियोका कब्जा हो जाता है और समाजका बहुतसंख्यक वर्ग मजदूर बन जाता है। मजदूरवर्ग उत्पादनके साधनोसे वञ्चित रहनेके कारण उत्पादनके साधनोके मालिकों अर्थात् पूँजीपतियोके हाथ अपनी श्रमशक्ति बेचकर और बदलेमे मजदूरी प्राप्त कर जीवन निर्वाह करता है। गुलामी-प्रथाके युगमे जो स्थान मालिकोंका था और सामन्तशाही

प्रणालीमे जो सामन्तोका था वही स्थान वर्तमान आर्थिक प्रणालीमे पूँजीपतियोका हो जाता है। इसी प्रकार, गुलामो और कृपकदासोका स्थान मजदूर वर्ग लेता है। पूँजीपति और मजदूर ये आजकलके दो आधारभूत वर्ग है जिनमे आपसमे आज हमारी आँखोके सामने भीपण वर्ग-सघर्ष चल रहा है।

आर्थिक युग

ऊपर हमने सक्षेपमे यह दिखानेकी कोशिश की है कि आर्थिक उत्पादनकी शक्तियोके विकासके साथ-साथ किस प्रकार समाजकी आर्थिक प्रणालियाँ वदलती रही है और यह कि हर आर्थिक प्रणालीमे अपरिवर्तित रूपसे दो आधारभूत वर्ग यानी वुनियादी आर्थिक श्रेणियाँ मौजूद रही है। इन दोनो श्रेणियोके हित परस्पर एक दूसरेके विरुद्ध रहे है और प्रभुत्वशील (dominant) वर्ग दूसरे वर्गको दास वनाकर, उसकी श्रमशक्ति शोषण करके, अपने लिए जीवनकी सुविधाएँ प्राप्त करता रहा है। हमने देखा कि मनुष्य-समाजकी आदिम व्यवस्था सहयोगपर आधारित थी। उस समय सभी मिलकर जीविका-निर्वाहकी सामग्री एकत्र करते थे और सम्पत्तिपर सवका समान रूपसे अधिकार था। आगे चलकर व्यक्तिगत सम्पत्तिका उदय होनेपर, पहले दासता-प्रथा, फिर सामन्तशाही और अन्तमे पूँजीवादका जमाना आता है। इन तीनो युगोमे क्रमश. स्वामी और दास, सामन्त और कृपकदास और पूँजीपति और मजदूर यह परस्पर-विरोधी आधारभूत वर्ग पाये जाते है।

यहाँपर यह वात ध्यान देनेकी है कि जिस ढगसे एक युगके वाद दूसरे युगके आनेकी वात कही गयी है, ठीक उसी प्रकार सभी देशोके इतिहासमे स्पष्ट रूपसे एक युगके वाद पूर्ण रूपसे दूसरा युग काम करता हुआ नजर नही आता। प्रायः ऐसा होता है कि नयी आर्थिक व्यवस्थाके आ जानेपर भी प्राचीन आर्थिक व्यवस्थाके वहुत कुछ अश दूसरी व्यवस्थाके भीतर भी पाये जाते है। उदाहरणके लिए अगर हम अपने ही देशको ले तो यहाँपर हमे किन्ही-किन्ही स्थानोमे गुलामीके जमानेकी यादगार भी मिलेगी, सामन्तशाही जमानेका आर्थिक ढाँचा दिखायी पडेगा (विशेषकर देशी रियासतोमे) और पूँजीवादी आर्थिक प्रणालीके युगमे तो हम रह ही रहे है। अत , जव हम किसी युगकी वात करते है तव हमारा मतलव उस समयकी उस समाजमे प्रचलित प्रधान आर्थिक प्रणालीसे होता है।

वर्गविहीन समाज

जव कोई समाजवादी वर्गरहित समाजकी स्थापना करनेकी वात करता है तो उसका मतलव इन्ही आर्थिक वर्गोसे होता है। समाजवाद एक ऐसे समाजकी स्थापना करना चाहता है जिसमे परस्पर-विरोधी शोपक और शोषित आर्थिक वर्ग मिट जायँ और समाज सहयोगके आधारपर सगठित व्यक्तियोका सच्चा प्रजातन्त्र वने। जवतक समाजका ढाँचा इस प्रकारका वना रहेगा कि एक वर्ग दूसरेको दवाता रहेगा तवतक सामूहिक रूपसे समाजके सदस्योकी उन्नति नही हो सकती। समाजवादी समाजमे जव कि राजसत्ता फिर शोपित वर्गोके हाथमे आ जाती है और उत्पादनके साधनोपर सारे समाजका अधिकार हो

जाता है, मनुष्योके शोषणका आर्थिक आधार ही खत्म हो जाता है। अबतक समाजके विकासमे एक आर्थिक प्रणालीके बाद जो दूसरी आर्थिक प्रणालियाँ कायम हुई उनमे राज सत्ता एक वर्गसे निकलकर दूसरे नये वर्गके हाथमे आती रही है, उत्पादनके साधनोंपर वर्ग-विशेषका अधिकार होता आया है। किन्तु समाजवादी प्रणालीमे इसके विपरीत उत्पादनके साधनोपर समाजका ही अधिकार होता है और शोषक और शोषित दोनो ही वर्ग नष्ट हो जाते है। समाजवादी समाजमें राज्यका—जो कि अबतक शासकवर्गद्वारा शासित-वर्गके दमनका हिंसा-प्रधान अस्त्र रहा है— भी अस्तित्व न रहेगा। उस समय मनुष्य पहली बार पशुतुल्य जीवन त्यागकर मनुष्योचित जीवन शुरू करेगा। अबतक जिस प्रकार वह सामाजिक विकासकी शक्तियोका दास बनकर रहता आया है अपनी उस विवशताके दायरेसे ऊपर उठकर अब वह बोधपूर्वक अपनी प्रगतिकी दिशाको निर्धारित और नियन्त्रित कर सकेगा।

वर्ग-संघर्षकी आवश्यकता

हमारा वर्ग-विहीन समाज स्थापित करनेका लक्ष्य वर्ग-संघर्षके साधनको अपनानेसे ही सिद्ध हो सकता है। आज समाजमे शोषक और शोषित वर्गोके बीच जो सघर्ष चल रहा है उसमे हमारा फर्ज शोषित जनतामें ऐसी चेतना पैदा करना है कि शोषित-वर्गोकी लड़ाई आर्थिक न रहकर राजनीतिक बन जाय। हमे शोषित-वर्गोके सदस्योके मनमे यह बात बैठा देनी है कि जबतक समाजकी प्रचलित व्यवस्था कायम है और उत्पादनके साधनोपर पूंजीपतियोका कब्जा है तबतक उनकी हालत नही सुधर सकती।

वर्ग-चेतना क्या है ?

शोषक वर्गो, यानी जमीदार और पूंजीपति, तथा शोषित वर्गो, यानी किसान, मजदूर और दूसरे सताये हुए तबकोके बीच संघर्ष तो आज भी जारी है। परन्तु आज उनकी यह लडाई आर्थिक लडाई मात्र है। कारखानोके मजदूर बडी तादादमे संगठित रूपमे मालिकोसे मोर्चा लेते है और अपनी इस लड़ाईमे कुर्बानी भी बहुत करते है। लेकिन उनकी यह लडाई मजदूरीको बढाने, कामके घण्टे घटाने, अपने साथियोपर किये अत्याचारोको दूर करने या इसी प्रकारकी दूसरी शिकायतोको रफा करानेके लिए होती है। यहाँपर ध्यान देनेकी बात यह है कि मजदूरोकी यह सारी लड़ाई वर्तमान व्यवस्थाके भीतर केवल अधिकाधिक सुविधाएँ प्राप्त करनेके लिए ही होती है। मालिकोका कारखानोपर जो अधिकार है उसको वे चुनौती नही देते। हमे मजदूरोको समझाना है कि समाजके मौजूदा आर्थिक ढाँचेको कायम रखते हुए केवल छोटे-मोटे अधिकारोके लिए लड़नेसे ही काम न चलेगा, बल्कि सारी मजदूर जमातको सगठित होकर एक ऐसी लड़ाई लड़नी पड़ेगी, जिसमे मौजूदा आर्थिक व्यवस्थाका ही अन्त हो जाय और एक ऐसी नयी आर्थिक प्रणालीकी स्थापना की

जाय जिसमें आजकी तरह उत्पादनके साधनोपर किसी एक वर्ग-विशेषका अधिकार न हो, बल्कि समूचे समाजका अधिकार हो। ऐसे ही नये समाजमे हम युगोसे चले आते हुए शोषण और वर्ग-विभेदका अन्त कर सकेंगे और समाजके हर परिश्रमी सदस्य को उसके व्यक्तित्वके विकासका उचित अवसर प्रदान कर सकेंगे।

भारी भ्रम

समाजवादियोके विरुद्ध अनेक स्वार्थी और अनभिज्ञ लोगोके द्वारा, विशेषकर शोषक-वर्गके सदस्योद्वारा, यह अभियोग लगाया जाता है कि वे समाजके भीतर वर्ग-विद्वेषकी सृष्टि कर रहे हैं। इन लोगोके कथनानुसार समाजमे शान्ति कायम है किन्तु समाजवादी लोग विभिन्न वर्गोको आपसमे लडाकर अशान्ति पैदा करना चाहते है, वे शान्तिके शत्रु और घृणाके प्रचारक हैं, पर यदि हम वस्तुतः स्थितिकी जॉच करे तो इससे अधिक यथार्थतासे दूर और कोई वात न होगी। सच तो यह है कि जो लोग समाजवादियोके विरुद्ध इस प्रकारका अभियोग लगाते है वे न तो समाजकी वास्तविकतापर ध्यान देते है, न उन्हे सामाजिक विकासके नियमोका पता है और न वे वर्गयुद्धका ठीक-ठीक अर्थ ही समझते है। शोषकवर्गके अनेक सदस्य तो जान-बूझकर लोगोके मनमे भ्रम पैदा करनेके लिए ही ऐसी मन-गढन्त वातोका प्रचार करते हैं। वर्ग-युद्ध समाजवादियोका पैदा किया हुआ नही है। वह तो समाजमे हमेशा चलता रहता है और उसी समयसे चलता आया है जवसे वर्गोकी उत्पत्ति हुई। और यदि हम गम्भीरतापूर्वक, मार्क्सवादी व्याख्याकी रोशनीमे, अवतकके इतिहासका अध्ययन करे तो हमे पता चलेगा कि अवतक समाजमे जो प्रगति हुई है प्रगति की एक मजिलसे उठकर जव जव मानव-समाज एक दूसरी ऊँची-मजिलपर पहुँचा है, तव-तव यह कार्य वर्ग-संघर्षके द्वारा ही सम्पादित हुआ है। वर्ग-सघर्ष ही समाजिक प्रगतिका आधार रहा है। समाजवादी लोग वर्गसघर्षको पैदा नही करते और न वे उसको पसन्द ही करते है। उनका उद्देश्य तो जैसा कि हम कह चुके है, समाजका ऐसा संगठन करना है जिसमे परस्पर-विरोधी वर्गो और उनमे निरन्तर चलनेवाले वर्ग-संघर्षका अन्त हो जाय। लेकिन चूंकि हम किसी सामाजिक उद्देश्य की सिद्धि तभी कर सकते है जव कि हम सामाजिक प्रगतिके नियमोका अध्ययन करे, और उन नियमोके अनुसार अपने कार्यकी दिशा निर्धारित करे, इसलिए समाजवादियोको वाध्य होकर वर्ग-सघर्षको अपनाना पड़ता है। वर्ग-सघर्षके द्वारा ही समाजकी उन्नति होती आयी है, समाजवादी इस कठोर सत्यकी उपेक्षा नही कर सकते। ऐसी अवस्थामे जव कि समाजमे वर्ग-सघर्ष चल रहा है तव तो हमारे लिए केवल यही रास्ता वच रहता है कि हम यह चुन ले कि हमे शोषक और शोषित इन दोनो वर्गोमेसे किसका साथ देना है।

घृणाका प्रचार

समाजवादियोपर घृणा फैलानेका इल्जाम भी वेवुनियाद है। जो समाजवादी अन्ततोगत्वा वर्ग-विहीन समाजकी रचना करना चाहते है उनके सम्बन्धमे ऐसा किस

प्रकार कहा जा सकता है? इसके अतिरिक्त इस समय भी समाजवादी व्यक्तिगत घृणाको दूर करनेका ही प्रयत्न करता है। उदाहरणके लिए आज हम यह देखते हैं कि जब एक मजदूर अपने मालिकसे मजदूरीके लिए लडता है तब वह उसे घृणाकी दृष्टिसे देखता है, लेकिन समाजवादी मजदूरको यह बतलाता है कि अगर मजदूरको उचित मजदूरी नही मिलती तो इसमे दोष व्यक्तिगत रूपसे खास मालिकका नही है, बल्कि उस पूंजीवादी प्रणालीका है जिसने उत्पादनके साधनोको मुट्ठीभर पूंजीपतियोंके हाथमें दे दिया है। अगर मजदूरवर्ग शोषण-सम्बन्धसे मुक्ति चाहता है तो उसे वह व्यक्तिगत रूपसे पूंजी-पतियोको हानि पहुँचानेकी भावनासे काम करके या मशीनोको तोड़-फोडकर नही, बल्कि पूंजीवादी उत्पादन प्रणालीको मिटाकर और मशीनोंपर शोषित वर्गोका कब्जा करके ही मिल सकती है। इसी प्रकार समाजवादी मजदूरोमे चलनेवाली प्रतिस्पर्धा और घृणाको दूर करनेका प्रयत्न करते हैं। बेकारी और गरीबीके इस युगमे हर मजदूर दूसरे मजदूरको बीजरूपमे (potentially) प्रतिद्वन्द्वी समझकर उससे घृणा करता है, किन्तु समाजवाद मजदूरोको यह बतलाता है कि वे आपसमे सहयोग करके और सगठित होकर ही शोषण-रहित समाजकी रचना कर सकते हैं। व्यक्तिगत घृणाको दूर करनेके लिए समाजवादियोको श्रेय मिलना चाहिये। समाजमे प्रचलित शोषण सम्बन्धके प्रति समाजवादी जरूर घृणा पैदा करता है और उसे वह उचित समझता है, क्योकि वर्तमान दुर्दशाके प्रति घृणा उत्पन्न करके ही हम व्यक्तिके मनमे उस दुर्दशाके प्रति विद्रोह पैदा कर सकते है।

क्रान्ति क्या है?

ऊपर कहा गया है कि वर्ग-सघर्षके द्वारा ही अबतक समाज तरक्कीकी एक मंजिलसे दूसरी मजिलपर जाता रहा है। आर्थिक उत्पादनकी प्रणाली अपने विकासके क्रममे एक ऐसी अवस्थाको पहुँच जाती है कि उस ढाँचेके मातहत रहकर उत्पादनकी शक्तियाँ (forces of production) आगे उन्नति नही कर सकती; उनका विकास रुकने लगता है—उत्पादन-सम्बन्धों और उत्पादक शक्तियोंका विरोध चरम सीमापर पहुँच जाता है। उस समय उत्पादक शक्तियोके विकासके लिए यह आवश्यक हो जाता है कि पुराना आर्थिक ढाँचा नष्ट किया जाय और एक नयी आर्थिक प्रणाली कायम की जाय जिसमे उत्पादक शक्तियोके ऊपरसे वे बन्धन उठ जायँ जो कि उसके विकासको रोकते रहे है। पुरानी आर्थिक प्रणालीका नाश करके उसके स्थानपर एक नयी आर्थिक प्रणाली कायम करना एक ऐसी घटना है जो कि मामूली सुधारवाद (reformism) के रास्ते नही हो सकती। सुधारवादके जरिये किसी ढाँचेको तभीतक बदला जा सकता है जबतक ढाँचेकी बुनियादको कायम रखते हुए उसमे ऊपरी तब्दीलियाँ की जाती है। जब ढाँचेमे बुनियादी तब्दीलीका सवाल उठता है तब वे स्थिर स्वार्थवाले वर्ग जो यह देखते हैं कि उनकी सुविधाएँ बुनियादी तब्दीलीकी बदौलत खतम होनेवाली हैं, अपने प्राणोकी बाजी लगाकर, अपनी सारी ताकतके साथ, इस प्रकारकी तब्दीलीकी मुखालिफत करते

है। फलस्वरूप समाजके ढाँचेमे आधारभूत परिवर्तनकी ऐतिहासिक आवश्यकता क्रान्तिके द्वारा ही पूर्ण होती है।

इतिहासकी भौतिक व्याख्या

यहाँपर यह समझ लेना वहुत जरूरी है कि मनुष्यके विविध कार्यक्षेत्रोंमे भी विकासके लिए इन्ही क्रान्तियोके जरिये रास्ता साफ होता रहा है। एक सीमातक उन्नति करनेके वाद उत्पादनके क्षेत्रकी भाँति ही दूसरे क्षेत्रोमे भी तभी उन्नति हो सकती है जव कि आर्थिक उत्पादनके ढाँचेमे आधारभूत परिवर्तन हो। दूसरे शब्दोमे समाजका आर्थिक ढाँचा ही वह आधार या बुनियाद है जिसपर मनुष्यके अन्य कार्यक्षेत्रोकी प्रणालियाँ—राजनीति, आचारनीति, साहित्य, कानून आदि—खडी होती हैं। अगर मनुष्यके सामाजिक सगठनको घरकी उपमा दे तो हमें कहना पडेगा कि आर्थिक उत्पादनका ढाँचा अर्थात् जीवन-निर्वाहके लिए आवश्यक वस्तुओके पैदावारका तरीका, इस घरकी नीव है और मनुष्यके दूसरे कार्य—साहित्यिक, राजनीतिक, सास्कृतिक धार्मिक, आध्यात्मिक आदि—इसी घरका ऊपरी ढाँचा है।

उत्पादन-सम्बन्ध

समाजके इस बुनियादी आर्थिक ढाँचेका वर्णन करते हुए कार्लमार्क्सने अपने सुप्रसिद्ध ग्रन्थ "अर्थशास्त्रकी विवेचना"मे एक स्थलपर लिखा है—"समाजमे व्याप्त उत्पादन-व्यवस्थामे लगे हुए मनुष्य निश्चित सम्वन्ध स्थापित करते है जो कि निर्धारित (determined) रहते है–अर्थात् वे मनुष्योकी इच्छापर निर्भर नही होते—ऐसे उत्पादक सम्वन्ध जो कि उत्पादनकी भौतिक शक्तियोके विकासकी निश्चित अवस्थाके अनुरूप होते है। इन्ही उत्पादन-सम्वन्धोके योगसे समाजकी आर्थिक प्रणाली वनती है जो कि वह वास्तविक आधार होती है जिसपर वैधानिक और राजनीतिक भित्तिका निर्माण होता है।"[1]

मार्क्सके इस उद्धरणमे तीन वाते ध्यान देनेकी है। एक वात यह कि समाजके

---

1. In the social production which human beings carry on, they enter into definite relations, which are determined, that is to say, independent of their will—production relations which correspond to a definite evolutionary phase of the material forces of production. The totality of these production relations forms the economic structure of society, the real basis upon which a legal and political superstructure develops"—Karl Marx in "A Critique of Political Economy."

तैयार करते है, उन्हीके अनुरूप उत्पादन सम्बन्ध बनते है । सक्षेपमें उत्पादक शक्तियोके विकासके अनुरूप उत्पादक सम्बन्ध कायम होते है, उत्पादक सम्बन्धोको जोडकर समाजका आर्थिक ढाँचा बनता है और आर्थिक ढाँचेके आधारपर राजनीतिक और सास्कृतिक ढाँचेकी दीवार खडी होती है ।

विचारधारामें परिवर्त्तन

समाजके आर्थिक ढाँचेमे परिवर्तन होनेके साथ उसकी मानसिक विचारधारामे किस प्रकार एकदम परिवर्तन हो जाता है इसका एक उदाहरण जिससे इतिहासके विद्यार्थी ज्यादा अच्छी तरह परिचित है, सोलहवीसे उन्नीसवी शताब्दीका यूरोप है । इस समय यूरोपके आर्थिक ढाँचेमे परिवर्तन हुआ अर्थात् सामन्तशाहीका स्थान पूंजीवादने लिया । आर्थिक ढाँचेके इस परिवर्तनके साथ ही हमे यूरोपके समूचे विचारक्षेत्रमे भी क्रान्तिकारी वेगसे परिवर्तन दिखायी पडता है । राजनीतिक क्षेत्रमे सामन्तोका प्रभुत्व जाता रहता है, राजाका दैवी अधिकार (divine right of king) अब दन्तकथाकी कल्पनामात्र रह जाता है और राष्ट्रीयता तथा प्रजातन्त्रकी भावनाओका प्रादुर्भाव एवं प्रसार होता है । यदि हम ध्यानपूर्वक इस महान् राजनीतिक परिवर्तनके मूलकी खोज करेंगे तो हमे पता चलेगा कि प्रजातन्त्र और राष्ट्रीयताकी भावनाओका प्रसार इसीलिए हुआ कि उत्पादनकी शक्तियोके विकासके लिए इनकी आवश्यकता थी ।

सामन्तशाही कालके राजनीतिक ढाँचेमे वृहद् भूखण्ड या राष्ट्र जो भौगोलिक दृष्टिसे एक इकाई (unit) कहे जा सकते थे, अनेक छोटे-छोटे प्रादेशिक खण्डोमे बँटे हुए थे, जिनपर छोटे-छोटे जागीरदारो या सामन्तोका निरकुश शासन हुआ करता था । व्यापारियोको अपने मालपर एक ही राष्ट्रके भीतर एक प्रदेशसे दूसरे प्रदेशमे जानेके लिए कई बार चुगी अदा करनी पडती थी, जिससे पदार्थोका मूल्य बहुत बढ जाता था । साथ ही इन छोटे प्रदेशोके भीतर जो कच्चा माल, आवागमनके साधन—सडके, पुल, आदि होते थे उनका अपनी इच्छानुसार लाभ व्यापारी-वर्ग न उठा सकता था । अत व्यापारियो-के नये वर्गको यह आवश्यकता पडी कि वह ऐसी राज्य-पद्धति कायम करे जिसमे प्रभुताका विभाजन वशकी मर्यादाके आधारपर न होकर सम्पत्तिके स्वामित्वके आधारपर हो । यद्यपि कहनेको समाजके सभी शोपित वर्गोकी सहानुभूति प्राप्त करनेके लिए पूंजीपतियोने प्रजातन्त्रको जनताकी भलाईके लिए जनताके प्रतिनिधियोका शासन बतलाया, लेकिन हम यह स्पष्टत देख सकते है कि तथाकथित शासन वास्तवमे पूंजीवादी वर्गके प्रतिनिधियो-का शासन है जो कि जनताके हितोको ठुकराकर पूंजीपतियोके वर्गस्वार्थकी रक्षा करता है । मार्क्सके शब्दोमे "वर्तमान शासन-तन्त्रकी कार्यकारिणी समूचे पूंजीपति वर्गके हितोको देखनेवाली प्रवन्धक समिति ही है ।"[1] अर्थशास्त्रके क्षेत्रमे इसी समय ऐडम

1. The executive of the modern State is but a committee for managing the common affairs of the whole bourgeoisie—"Communist Manifesto".

स्मिथ, रिकार्डो आदि उस विचारधाराके अर्थशास्त्रियोंकी प्रधानता हुई जिन्होंने यह प्रतिपादित किया कि व्यापारकी वृद्धि और मजदूरोंका शोषण करके औद्योगीकरणकी वृद्धि करनेमें ही देशकी समृद्धि है। कानूनमें अब वंशमर्यादा और रुतबेका महत्त्व जाता रहा और आपसके एकरारकी आजादी (freedom of contract) पर जोर दिया जाने लगा। धर्म और आचार-नीतिके क्षेत्रमें अब 'शास्त्रवाक्य प्रमाणम्' माननेकी प्रथा लुप्त होने लगी और लोग हर बातको तर्क और विवेककी कसौटीपर कसने लगे। दार्शनिक विचारोंमें भी परिवर्तन हुआ। अध्यात्मवादके स्थानपर भौतिकवादका प्रसार हुआ। बर्कले, स्पिनोजा, फायरबाख आदि नये-नये दार्शनिकोंने बताया कि यह दृश्य जगत् अलौकिक पराभावनाकी माया न होकर प्रकृतिका ही विकास है। साहित्यके क्षेत्रमें अब यथार्थवादकी प्रधानता हुई।

इन परिवर्तनोंका महत्त्व हम तबतक ठीक नहीं समझ सकते जबतक हम अपने सामने इस सत्यको रखकर न चलें कि इस समय यूरोपके आर्थिक ढाँचेमें परिवर्तन होता है—सामन्तशाहीके स्थानपर पूँजीवादकी उत्पत्ति होती है। जो लोग इतिहासकी भौतिकवादी व्याख्याको स्वीकार करके नहीं चलते वे इस प्रश्नका उत्तर नहीं दे पाते कि आखिर ये परिवर्तन जो यूरोपीय समाजकी विचारधारामें देख पड़ते है अलग-अलग और पहले या बादमें क्यों हुए? ऐडम स्मिथका जन्म सौ साल पहले क्यों नहीं हुआ? या लूथर साहब एक सदीके बाद क्यों नहीं पैदा हुए? इतिहासकी भौतिकवादी व्याख्या ही इन महान् परिवर्तनोंके रहस्यकी व्याख्या करनेवाली एकमात्र कुंजी है। यूरोपमें सामन्तशाही पद्धतिके स्थानपर पूँजीवादी पद्धतिके प्रसार होनेपर मानव विचारधाराकी विभिन्न प्रणालियोंमें हम परिवर्तन होते देखते हैं। दूसरे युगों और दूसरे देशोंका अध्ययन भी इसी दृष्टिकोणसे करके ही सामाजिक परिवर्तनोंका रूप समझा जा सकता है।

मार्क्सवादका उदय

इसी जमानेमें जब कि पूँजीवादी उत्पादन-प्रणालीका व्यापक प्रसार हो जाता है, हम समाजको प्रगतिके नियमोंका वैज्ञानिक विवेचन करनेवाली एक नयी विचारधाराका अर्थात् मार्क्सवादका प्रादुर्भाव देखते है। सामाजिक विकासकी मीमासा करते हुए पूँजीवादी उत्पादन-प्रणालीके विकासके नियमोंका अध्ययन करके कार्ल मार्क्सने यह बतलाया कि संसारका विकास समाजवादकी ओर हो रहा है और यह नयी स्थिति वर्ग-संघर्षके जरिये ही आयेगी। मार्क्सने सामाजिक विकासके जो जो नियम हमारे सामने रक्खे वे सब प्राचीन कालसे ही समाजमें काम करते चले आ रहे थे। समाजकी आर्थिक-रचनाके अनुसार उसकी दूसरी विचारप्रणालियाँ बनती थी, प्रकृतिकी शक्तियोंका नवीन ज्ञान होनेपर और परिणामस्वरूप उत्पादक शक्तियोंका स्वरूप बदलनेपर, समाजका आर्थिक ढाँचा बदलता रहा है और उसके साथ ही समाजकी रचनामें सर्वांगीण परिवर्तन होता रहा है। यह परिवर्तन द्वन्द्वमान ढंगसे (dialectically) वर्ग-संघर्षके जरिये होता रहा है। मार्क्सकी विशेषता यह थी कि उसने, अपने साथी एंगेल्सकी सहायतासे वैज्ञानिक ढंगसे इन नियमोंकी विवेचना करते हुए, उन्हें एक विचार-पद्धतिमें

संग्रथित किया जिसे हृदयङ्गम करके हम समाजके भूत और वर्तमानके इतिहासको समझ सकते है और भविष्यके लिए अपना कर्तव्य निर्धारित कर सकते है।

जब मार्क्सने पहले-पहल यह बतलाया था कि दुनिया समाजवादकी ओर जा रही है तो पूँजीवादके समर्थक विद्वानोने मार्क्सके विचारोंका मजाक उडाया था, समाजवादको स्वप्नमात्र बतलाया था। आज हम अपनी आंखोके आगे देख रहे है कि किस प्रकार यह स्वप्न प्रत्यक्ष हो रहा है और मार्क्सका भविष्यकथन सत्य सिद्ध हो रहा है। आज संसारके छठे भागपर, रूसमे, समाजवादकी विचारधाराके अनुसार व्यावहारिक रूपमे समाजका संगठन हो रहा है। कई देशोमे मजदूरोकी पार्टियाँ ताकतमे आ चुकी हैं। वर्ग-सघर्षने अन्तर्राष्ट्रीय रूप धारण कर लिया है। प्रजातन्त्रवादी देशोमे धारा-सभाओकी लड़ाई अब सीधे टोरी और लेबर (मजदूर) पार्टीके बीच रह गयी है। बीचके लिबरल लोगोंका प्रभाव घटता ही चला जा रहा है। शोषित-वर्गके सदस्य शोषकोके स्वार्थोकी रक्षाके लिए बनायी गयी विचारधाराके प्रभावसे मुक्त हो रहे हैं।

समाजवादकी ओर

समाजवादका आदर्श सर्वसाधारणमे इतना जनप्रिय हो गया है कि उसके बड़ेसे बड़े विरोधीकी भी यह हिम्मत नही पड़ती कि वह खुलेआम समाजवादका विरोध कर सके। इसके विपरीत, बडेसे बडे प्रतिक्रियावादी सिद्धान्तोका प्रतिपादन भी समाजवादके नामपर किया जाने लगा है। हिटलर भी जर्मन जनतापर अपना प्रभाव जमाये रखनेके लिए अपने प्रतिगामी सिद्धान्तोका प्रचार 'राष्ट्रीय समाजवाद' (National Socialism) के नामपर ही करता था। जब कोई भी विचार सर्व-साधारणके मनपर काबू कर लेता है—और वह तभी काबू कर लेता है जब कि सार्वजनिक हितकी दृष्टिसे वह वांछनीय होता है—तो उसके विरोधियोको उससे खुलेआम लडनेकी हिम्मत नही होती और खुली लड़ाईके बदलेमे छिपी लडाईका रास्ता अख्तियार करते है। आज हिन्दुस्तानमे भी हम यही हालत देख सकते हैं। यहाँ भी भारतीय समाजवाद, वर्णाश्रम समाजवाद, मुस्लिम समाजवाद और वैदिक समाजवाद आदि तरह-तरहके समाजवादोका हवाला देकर यह कहा जाने लगा है कि मार्क्स और लेनिनद्वारा प्रतिपालित वैज्ञानिक समाजवाद विदेशी है और अपने देशमे उसकी आवश्यकता नही !

पूँजीवादकी ह्रासावस्था

ऊपरके उदाहरणसे यह बात स्पष्ट हो जाती है कि किस प्रकार आर्थिक रचनामें परिवर्तन होनेके साथ समाजकी समूची विचारधारामे परिवर्तन हो जाता है। इतिहासके किसी कालको भी लेकर उसका विश्लेषण करनेपर हमें यही नियम काम करता हुआ दिखायी देगा। आजकलकी अवस्थाका विश्लेषण करके देखे तो हमे पता चलेगा कि उत्पादनकी शक्तियो और उत्पादनकी अवस्थाओके बीचकी असगतियो (contradictions) के आत्यन्तिक रूपसे बढ जानेके कारण पूँजीवादी आर्थिक-रचना जर्जर हो रही है और परिणामस्वरूप वर्तमान पूँजीवादी सामाजिक भवनका ऊपरी ढाँचा भी

जर्जर हो रहा है। साहित्य, दर्शन, अर्थशास्त्र, राजनीति किसी क्षेत्रको क्यों न लें, हम देखेंगे कि विकासकी गति रुक गयी है और सभी क्षेत्रोंमें किंकर्तव्यविमूढ़ताका साम्राज्य हो रहा है। जब समाजकी आधारभूत आर्थिक प्रणाली उन्नति करती रहती है तभी उसके साथ दूसरे विचार-क्षेत्रोंमें भी उन्नति होती है और यह स्वाभाविक ही है कि जब आधार ही क्षीण और जर्जर हो जाय तो ऊपरी ढाँचा भी हिल जाय। राजनीतिके क्षेत्रका विचार करनेपर हम देखते हैं कि आज प्रजातन्त्रका ह्रास हो रहा है और उसके स्थानपर तानाशाही (dictatorship) की वृद्धि हो रही है तथा संकुचित राष्ट्रीयताकी भावना जोर पकड़ रही है।

आर्थिक क्षेत्रमें मुक्त अन्तर्राष्ट्रीय व्यापारका स्थान राष्ट्रीय आत्मनिर्भरता (autarchy) का सिद्धान्त ले रहा है। इस प्रकार अन्तर्राष्ट्रीयता और भ्रातृभावके विचारोंका प्रसार रुक गया है और सभी बड़े राष्ट्र एक महायुद्धकी तैयारीमें लगे हुए हैं जो कि किसी क्षण भी घटित हो सकता है। दर्शनके क्षेत्रमें रहस्यवादकी वृद्धिके रूपमें प्रतिगामिताका प्रचार हो रहा है। साहित्यमें आर्थिक रचनाका प्रतिबिम्ब निराशावाद, संशयवाद और स्वप्नलोकवादके रूपमें मिलता है। कवि और लेखक जीवनकी कटु यथार्थतासे घबराकर सुखद स्वप्नों और कल्पनाओंका मानसिक विश्व-निर्माण कर मनको सान्त्वना दे रहे हैं। इतिहासमें खोजकी प्रवृत्ति रुक गयी है। संक्षेपमें, जिस उत्साह और लगनके साथ पूंजीवादके विकासके कालमें उस प्रणालीके सार्थक विद्वान् काम कर रहे थे उस उत्साह और लगनका आज कहीं भी पता नहीं चलता।

इसके विपरीत, सोवियत रूसमें, जहाँ एक नयी समाजवादी आर्थिक रचनाका निर्माण हो रहा है, लोगोंके दिल एक नये उत्साहसे भरे हुए हैं। जहाँ पूंजीवादी देशोंमें लोग अपने भविष्यके बारेमें सशंक हैं, उसे अन्धकारमय समझते हैं, वहाँ रूसमें लोगोंके मन एक नयी आशा, एक नयी उमंगसे भरे हुए हैं और वे अपने भविष्यको सुखद एवं उज्ज्वल समझते हैं। चारों ओरसे पूंजीवादी राष्ट्रोंसे घिरे होने और पड़ोसी फासिस्ट राष्ट्रोंके आक्रमणका भय प्रतिक्षण बने रहनेके कारण रूसके निवासियोंको अपनी रक्षाकी तैयारीके लिए बहुत बड़ा त्याग करना पड रहा है। राष्ट्रीय सम्पत्तिका बहुत बड़ा अंश आज वे सैनिक तैयारीकी भेंट चढ़ानेको बाध्य हैं। किन्तु पूंजीवादी देशोंकी भाँति यह त्याग करते हुए उन्हें खेद और सन्ताप नहीं हो रहा है। उनका विश्वास है कि वर्तमानके सुखोंके इस त्यागके द्वारा वे अधिक समृद्ध और सुखद भविष्यका निर्माण कर रहे हैं।

द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद

जब हम कहते हैं कि समाजके आर्थिक ढाँचेकी बुनियादपर ही मनुष्यकी अन्य सभी क्षेत्रोंकी प्रणालीका ढाँचा खड़ा होता है—किसी समयका साहित्य, धर्म, राजनीति, कानून और दर्शन आदि उस समयके समाजमें प्रचलित आर्थिक ढाँचेके द्वारा निर्धारित होता

है—तो हमारा यह मतलब कदापि नही होता कि समाजका समूचा विकास पूर्ण रूपसे उत्पादन-सम्बन्धोपर ही निर्भर होता है और उसपर विचारोका कोई प्रभाव नही पडता। किसी समय समाजमे जो दर्शन, धर्म, कानून आदि प्रचलित है समाजके आगेके विकासमे इन सवका भी काफी प्रभाव पड़ता है, किन्तु साधारणतया इनका प्रभाव आर्थिक परिस्थिति-के प्रभावके मुकावले वहुत कम पड्ता है।

विचारोंका प्रभाव

किसी समाजकी विचार-प्रणालियोमे अर्थात् प्रचलित दर्शन, धर्म, राजनीति आदिमे उस समय आधारभूत परिवर्तन होता है जव कि समाजकी आर्थिक रचनामे आधारभूत परिवर्तन होता है। इस प्रकार जव एक विशेप प्रकारकी विचार-परम्परा जड़ पकड़ लेती है तो आगे समाजका जैसा विकास होता है उसपर उसकी छाप पड़ती ही है, किन्तु यह विशेप प्रकारकी विचार-परम्परा प्रधानत· स्वयं एक विशेप प्रकारकी आर्थिक रचनापर आश्रित होती है। संक्षेपमे जव-जव समाज तरक्कीकी एक मजिलसे दूसरी मजिलपर जाता रहा है तव-तव विचार-प्रणालियोकी दिशा प्रधानत. उस समयकी आर्थिक रचनाके द्वारा निर्धारित होती रही है।

आजकल तो आर्थिक तत्त्वका यह प्रभाव वहुतसे पूँजीवादी विद्वान् भी वहुत अशोंतक मानने लगे है। पर मार्क्सके समयमे लोग सामाजिक जीवनके विकासपर उसके आर्थिक जीवनका यह प्रभाव नही स्वीकार करते थे। उस समयके विद्वानोका यह ख्याल था, और आजकलके भी अनेक विद्वानोका है, कि समाजका विकास केवल मनोवैज्ञानिक तत्त्वोंके आधारपर ही होता है। एक महापुरुप पैदा होता है, वह समाजके हितको दृष्टिमे रखते हुए कुछ सामाजिक सिद्धान्तोको प्रतिपादित करता है, जिसके पीछे लोग चलते है। समयकी एक निश्चित अवधि वीत चुकनेके उपरान्त कुछ दूसरे महापुरुष पैदा होते है और उनके द्वारा फिर नये सिद्धान्त सामने रखे जाते है और इस प्रकारके सिद्धान्तोका प्रचलन होनेसे ही सामाजिक विकास होता है। जव नये महापुरुष पैदा होकर नये प्रकारके सिद्धान्त सामने रखते है तो इन नये सिद्धान्तोके आधारपर समाजका सारा ढाँचा—जिसमें आर्थिक ढाँचा भी शामिल है—फिर नये सिरेसे सगठित होता है। इस प्रकारसे समाजके विकासका क्रम चालू रहता है। मार्क्सने वतलाया कि किसी विशेष परिस्थितिमें विशेप प्रकारके नये सिद्धान्तोका प्रतिपादन करनेवाले महापुरुप स्वयं वदली हुई परि परिस्थितियोके परिणाम होते है और उनका सिद्धान्त भी समाजमे इसीलिए स्वीकार किया जाता है कि वह नयी परिस्थितियोके अनुकूल होता है।

एक गलतफहमी

जिस जमानेमे समाजके विकासकी विवेचना करते हुए विद्वान् लोग नये परिवर्तनोका सारा श्रेय विचारोको ही देते थे और सवसे महत्त्वपूर्ण और आधारभूत तत्त्व अर्थात् आर्थिक परिस्थितिकी उपेक्षा करते थे उस समय मार्क्स और उनके अनुयायियोके लिए यह स्वाभाविक ही था कि वे आर्थिक तत्वके प्रभावपर अधिक जोर देते। किन्तु अज्ञानवश और वहुत

अंशोंमें समाजवादके विरोधियोंद्वारा जानबूझकर गलतफहमी पैदा करनेवाले प्रयत्नोके कारण, कुछ लोगोमे यह भ्रम फैल गया है कि मार्क्सवादियोंके मतानुसार केवल आर्थिक तत्त्व ही सामाजिक जीवनके विविध रूपोको यन्त्रवत् निश्चित करता है और निरंकुश सर्वशक्तिमान् सत्ताकी भाँति जिधर चाहता है उनकी नकेल पकड़कर मोडता है। एगेल्सने खुद सन् १८९० मे "सोशलिस्ट एकेडेमी" के सम्पादकोको दो पत्र लिखे थे जिनमें उन्होने इस मिथ्या धारणाका खण्डन किया है और वताया है कि समाजके विकासमे विचारो-के महत्त्वको मार्क्सने इन्कार नही किया है; उन्होने सिर्फ यह वतलाया है कि प्रधान भाग आर्थिक तत्त्वका ही होता है।

द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद

इसके पूर्व कि हम उदाहरण देकर यह समझाये कि किस प्रकार उत्पादनके नये साधनोके व्यापक रूपमे प्रचलित होने और वर्गसंघर्षके चरमसीमापर पहुँचनेसे सामाजिक क्रान्तियाँ घटित होती रही है यह प्रासङ्गिक जान पडता है कि सक्षेपमे द्वन्द्वात्मक भौतिकवादकी व्याख्या कर दी जाय। मार्क्सवादके इस दार्शनिक पहलूकी जानकारीके विना हम सामाजिक विकासके नियमोको उनके यथार्थरूपमे नही समझ सकते। द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद वह दार्शनिक प्रणाली (methodology) है जो हमे उन आन्तरिक नियमोका ज्ञान कराती है जिनके अनुसार इस भौतिक जगतका विकास होता है, इस भौतिक जगत्के रहनेवाले प्राणियोका विकास होता है और उनके विचारोमे रूपान्तर होता है। द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद दृश्य जगत्की गति (motion) के नियमोकी व्याख्या करता है।

भौतिक अद्वैतवाद

द्वन्द्वात्मक भौतिकवादके अनुसार जगत्का जो कुछ व्यापार हमे इन्द्रियगोचर होता होता है वह किसी ऐसे स्वतन्त्र निरकुश और अलौकिक चेतन-सत्ताकी लीला या माया नही है जिसके सहारे या जिसकी आज्ञासे प्रकृति अपनी सृष्टि रचती है। मार्क्सवादके अनुसार, इसके विपरीत, भौतिक पदार्थ (matter) ही वह आदिम वीज सत्ता है जिसका रूपान्तर यह दृष्ट जगत् है। चेतनाका जो स्वरूप हम देखते है वह भौतिक पदार्थके रूपान्तरके क्रममे ही एक अवस्था-विशेपमे पैदा होता है। मार्क्सवादी दर्शन जड़ और चेतनकी पृथक्-पृथक् स्वतन्त्र सत्ता—द्वैतवाद—नही मानता; वह वतलाता है कि आदिम अवस्थासे अवतक पदार्थका जो रूपान्तर हुआ है उसके क्रमसे ही अवस्था विशेपमे चेतनाका प्रादुर्भाव होता है, अर्थात् चेतना विकासमान पदार्थका एक गुण है। दूसरे शब्दोमे हम मार्क्सवादी दर्शनको पदार्थवादी अद्वैतवाद कह सकते है।

निरन्तर परिवर्तन

आदिम पदार्थोके (जिसके विकासका ही स्वरूप जगत् है) रूपान्तरके क्रमका विचार करनेपर पहली वात जो द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद वतलाता है वह यह कि जगत्का सारा व्यापार शाश्वत परिवर्तनके क्रममे है। ससारकी हर एक वस्तुमे हर क्षण परिवर्तन

या रूपान्तर हो रहा है। अतएव यदि हम किसी वस्तुके यथार्थ रूपको समझना चाहें तो हम उसके किसी अवस्था-विशेषमे पाये जानेवाले रूपका अध्ययन करके ही यह ज्ञान नही प्राप्त कर सकते है। वस्तु-विशेपके यथार्थ रूपको समझनेके लिए हमे उसके विकासात्मक स्वभावको ध्यानमे रखकर ही उसका अध्ययन करना होगा। उदाहरणार्थ, आजके पूँजीवादी समाजको ही लें। अनेक पूँजीवादी विद्वान् वर्तमान समाजके नियमोका विश्लेषण करके यह वतलाते है कि पूँजीवाद क्या है। मार्क्सवादके अनुसार उनकी यह व्याख्या अधूरी ही समझी जायगी। पूँजीवादका वास्तविक स्वरूप समझनेके लिए हमें पूर्व प्रचलित सामन्तवादी व्यवस्थापर दृष्टिपात करना होगा, यह पता लगाना होगा कि पूँजीवादी सम्वन्धोका आरम्भ किन अवस्थाओमे और किस प्रकार होता है, यह देखना होगा कि पूँजीवादकी उत्पत्तिके वादसे उसके विकासमे अवतक कौनसे नियम काम करते रहे है और फिर यह देखना होगा कि पूँजीवादकी इस आखिरी मजिलमे पुराने नियम कहाँतक काम करते है और उसकी नयी विशेषताएँ क्या है। इसी दृष्टिसे अध्ययन करनेपर ही हम पूँजीवादी समाजके नियमोकी वैज्ञानिक व्याख्या कर सकते है। सक्षेपमे, मार्क्सवादी दर्शन हमे यह वतलाता है कि विश्वका व्यापार कोई वना-वनाया (ready made) खेल नही है, यह किसी ढाँचेके भीतर काम नही कर रहा है, इसका कोई स्थिर स्वरूप नही है,—सारा जगत् एक प्रक्रिया (Process) है और प्रतिक्षण उसमे रूपान्तर होता रहता है।

आन्तरिक विरोध या असंगति

भौतिक पदार्थका यह विकास या रूपान्तर एक सीधी रेखामे अर्थात् यन्त्रवत् (mechanically) नही होता। विकासकी प्रगतिमे हर क्षण आन्तरिक असगतियाँ (inner contradictions) उत्पन्न होती रहती है और इन्ही असगतियोके द्वारा ही नया रूपान्तर होता है। उदाहरणार्थ, अगर हम पूँजीवादसे पूर्व प्रचलित सामन्तवादको ले तो हम देखेगे कि सामन्तवादी समाजके भीतर जो आरम्भिक नियम काम कर रहे थे उन्हीके अनुसार विकास करते-करते सामन्तवादी प्रणाली पूँजीवादी प्रणालीके रूपमे परिणत नही हो गयी। इसके विपरीत हम देखते है कि सामन्तवादी प्रणालीके विकासकी अवस्था-विशेषमे ऐसी असगतियाँ उत्पन्न होती है जो कि प्रारम्भिक विकासके कालमे नही थी और ये ही असगतियाँ बढते-बढते ऐसा रूप धारण कर लेती है जब कि सामन्तवादी प्रणालीके भीतर घोर संघर्ष पैदा होता है और पूँजीवादी समाजकी स्थापना होती है। इसी प्रकार ससारके हर एक व्यापारका प्रतिक्षण नवीन रूपान्तर होता रहता है। एक समयमे जो साम्यावस्था (equilibrium) कायम रहती है उसीके भीतरसे नयी असगतियाँ उत्पन्न होती है जिनके गर्भमे प्रस्तुत साम्यावस्थाके विनाशके वीज मौजूद रहते है। इन असङ्गतियोके अंकुरके वढते-बढ़ते एक अवस्था ऐसी आती है जब प्रचलित साम्यावस्था नष्ट हो जाती है और एक नयी साम्यावस्था पैदा होती है। इस नयी साम्यावस्थाके भीतरसे फिर नयी असङ्गतियाँ उत्पन्न होती है और

वे बढ़कर इस नयी साम्यावस्थाका नाश करती है और उसके स्थानपर दूसरी नयी साम्यावस्थाकी स्थापना करती है। इस प्रकार एक साम्यावस्थाके स्थानपर, उसकी असंगतिका सृजन करनेवाली प्रकृतिके कारण हमेशा दूसरी नयी साम्यावस्था कायम होती रहती है और प्रगति अपने पथपर इसी प्रकार अग्रसर होती रहती है।

गुणात्मक परिवर्तन

ऊपर हमने बताया कि अवस्था-विशेषके भीतर जो असगतियाँ उत्पन्न होती है वे बढते-बढते ऐसा रूप धारण कर लेती है कि पुराने समाजका मूलत. नाश हो जाता है और नये समाजकी उत्पत्ति होती है। इस सम्बन्धमें हमें यह नियम ध्यानमें रखना चाहिये कि किसी वस्तुकी मात्रामें लगातार वृद्धि होनेपर ऐसी अवस्था आती है जब उसमें गुणका भेद (qualitative change) उत्पन्न हो जाता है। उदाहरणार्थ, सामन्तवादी समाजकी ही पुरानी अवस्थाको ले तो हम देखेंगे कि उसमें जो असगतियाँ उत्पन्न हो रही थी उनके गुणात्मक रूपसे बढ़ जानेपर ही एक समय ऐसा आया जब कि उसके स्थानपर पूँजीवादी प्रणाली स्थापित हो सकी। सामन्तवादी समाजमे कुछ व्यक्तियोंके पास रुपये इकट्ठे हो रहे थे, किन्तु उन रुपयोको पूँजी बनने का सौभाग्य तभी प्राप्त हो सका जब कि वह वातावरण तैयार हो गया जिसमें इन रुपयोकी बदौलत बड़े पैमानेपर मजदूरोकी श्रमशक्ति खरीदकर और उससे बनी हुई चीजें बेंचकर बदलेमें अतिरिक्त मूल्य (surplus value) उत्पन्न करना सम्भव हुआ।

परिवर्तनके सख्यात्मकके स्थानपर गुणात्मक रूप धारण करनेका एक बहुत सरल उदाहरण हमे पानीका मिलता है। जब पानीको गर्म करते है तो हम देखते है कि पानीके भीतर गर्मीकी मात्रा बढती रहती है फिर भी अवस्था-विशेषतक उसमें उबाल नही आता। किन्तु गर्मीकी काफी मात्रा इकट्ठी हो जानेपर पानीके भीतर गुणात्मक परिवर्तन हो जाता है; पानीका उबलना और भापका बनना शुरू हो जाता है। सामाजिक विकासके क्षेत्रमे देखनेपर पता चलता है कि उसमें भी एक व्यवस्थाके भीतर जो असंगतियाँ उत्पन्न होती रही है वे बढते-बढते एक ऐसी अवस्थामें पहुँच जाती है जब कि गुणात्मक परिवर्तन होता है। गुणात्मक परिवर्तनकी इस मञ्जिलमे पुराने समाजका रूपान्तर क्रमिक सुधार (reformism) के जरिये न होकर आकस्मिक वेगसे अर्थात् क्रान्ति (revolution) के द्वारा होता है। जिस प्रकार बच्चा माँके गर्भमे बढ़ता है, किन्तु लगभग नौ मासके उपरान्त एक दिन वह अचानक माताको कड़ी प्रसववेदना देते हुए बाहर निकल पडता है उसी प्रकार पुराने समाजके भीतर नये समाजकी अवस्थाएँ जब परिपक्व हो जाती है तो अचानक क्रान्तिके द्वारा नये समाजका जन्म होता है। क्रान्ति नये समाजकी प्रसववेदना है। एक समाजसे नये उन्नत समाजकी ओर जानेके लिए क्रान्ति एक अनिवार्य सीढ़ी है। मार्क्सवादका क्रान्तिकारी दर्शन हमे यही सिखलाता है।

समाजवादका मूलाधार—मानवता

भौतिकवादके सिद्धान्तको माननेके कारण समाजवादके विरुद्ध प्राय: यह आक्षेप किया जाता है कि समाजवाद केवल सकुचित आर्थिक दृष्टिकोणसे ही सब प्रश्नोपर विचार करता है और इसलिए वह कोई ऐसे आदर्श समाजके सम्मुख उपस्थित नही करता जिनकी पूर्तिके लिए मनुष्यको आत्मत्याग करना पड़े । अज्ञानवश लोग समाजवादपर यह लाञ्छन लगाते है, किन्तु इस इल्जाममे सत्यका लवलेश भी नही हे । प्रमुख समाजवादियोकी जीवनी ही इस इल्जामको झुठलाती है । वैज्ञानिक समाजवादके जन्मदाता मार्क्सका जीवनचरित्र जिन्होने पढा है वे इसे अच्छी तरह जानते है कि किस कष्टसे उसने अपनी जिन्दगी बसर की थी और आर्थिक कष्ट होते हुए भी उसने एक क्षणके लिए मानवसमाजकी सेवाके लक्ष्यको नही छोडा । उसकी जिन्दगीमे ऐसे मौके अक्सर आये जब घरमे खानेतकको न था, घरसे बाहर निकलनेके लिए कपडेतक न थे और कर्जके बोझसे वह पिसा जा रहा था । लेकिन वह सदा निश्चल भावसे अपनी साधनामे लगा रहा और सख्तसे सख्त मुसीबतमे भी सिद्धान्तोपर अटल रहा । लोग कह सकते है कि अपनी खप्तको पूरा करनेके लिए कार्ल मार्क्सने ये सब कष्ट सहे होगे पर जिन सिद्धान्तोंका उसने निरूपण किया है उनमे उच्च आदर्शोके लिए जगह नही है । आमतौरसे यह समझा जाता है कि समाजवाद महज़ रोटीके सवालको हल करनेकी कोशिश करता है और चूँकि वह इतिहासको वर्गसघर्षकी प्रक्रियामात्र मानता है इसलिए उससे किसी ऊँचे आदर्शकी आशा करना व्यर्थ है ।

भ्रमपूर्ण धारणा

हम प्रमुख समाजवादियोकी उक्तियोसे ही नही, वरन् समाजवादके मौलिक सिद्धान्तोके आधारपर यह दिखलानेका प्रयत्न करेगे कि लोगोकी यह धारणा बिलकुल गलत है । एक बार मार्क्सने स्वयं कहा था कि उसकी खाल इतनी मोटी नही है कि वह मानव समाजके कष्टोकी ओर अपनी पीठ फेर दे । हट्टेनने मार्क्सके बारेमे बिलकुल ठीक कहा है कि उसका हृदय इतना विशाल और कोमल था कि औरोकी अपेक्षा मानवसमाजके साधारणसे साधारण दु.ख भी उसको ज्यादा प्रभावित करते थे । जिस प्रकार भूकम्पमापक यन्त्र पृथ्वीके सूक्ष्मसे सूक्ष्म कम्पनका भी हिसाब रखता है उसी तरह मार्क्स मनुष्यके साधारणसे साधारण कष्टका हिसाब रखता था । समाजके इस अन्यायको वह बर्दास्त नही कर सकता था कि एक वर्गके लोग सम्पन्न और सुसस्कृत हो और दूसरे गुलामोकी तरह रातदिन मेहनत करनेपर भी जिन्दगीकी साधारण आवश्यकताओसे वचित रखे जायँ । जो श्रम करते है और समाजकी दौलतको पैदा करते है, जो पृथ्वीके गर्भसे सोना, चाँदी आदि धातु, कोयला और तेल निकालते है, जो कारखानेमे तरह-तरहका तिजारती माल तैयार करते है, जो रेल और जहाजद्वारा दुनियाके एक कोनेसे दूसरे कोनेतक माल पहुँचाते है, जो बड़े-बड़े महल खड़े करते है और इस पृथ्वीको सजाते है, वे स्वय जानवरोकी जिन्दगी गुजारते है, गन्दे और तंग मकानोमे रहते है, जहाँ हवाकी गुजर नही, मैले-कुचैले कपड़े

पहनते हैं और शिक्षासे वंचित रखे जाते हैं। समाजका वह अनाचार जो करोड़ों मानव-संतानको मानवतासे वंचित कर उन्हें जानवरकी-सी जिन्दगी बसर करनेके लिए मजबूर करता है, मार्क्सको चोट पहुँचाता था। मार्क्सने एक स्थलपर कहा है कि सर्वहारा मजदूरको रोजमर्राके भोजनकी अपेक्षा शौर्य, आत्मविश्वास, स्वाभिमान और स्वातन्त्र्यकी कहीं ज्यादा जरूरत है। रोजा लग्जेम्वर्गने फ्रेञ्ज मेहरिङ्गको एक पत्रमें लिखा था कि समाजवाद रोटीका सवाल नहीं है बल्कि एक सांस्कृतिक आन्दोलन है जो संसारमें एक महती विचारधाराको प्रवाहित करता है। इस सांस्कृतिक आन्दोलनका केन्द्र मानव है। मानव सर्वोपरि है। जो सिद्धान्त, वाद या विचार—चाहे वह कोई धर्म हो या दर्शन या अर्थशास्त्र—मानवके उत्कर्षको घटाता है वह मार्क्सको मान्य नहीं है।

धर्मकी अपूर्णता

मार्क्स मानवकी आत्मचेतनाको सबसे बड़ा देवता मानता है। फायरबाख़के समान मार्क्सका कहना था कि मनुष्य धर्मको बनाता है, न कि धर्म मनुष्यको और मानवेतर परम-पुरुषकी कल्पना मनुष्यके ख्याल और वहमका नतीजा है। इसमें वास्तविकता कुछ नहीं है, यह केवल मनुष्यका विकृत और ख्याली प्रतिरूप मात्र है। जितना ही अधिक मनुष्य ईश्वरको गुणोंसे विभूषित करता है उतना ही अधिक वह अपनेको खण्डित और विकलित बनाता है। मानवकी परिपूर्णतामें धर्म बाधक है। परलोककी सुन्दर कल्पनाका धर्म अपनी आजकी जिम्मेवारियोंसे बरी हो जाता है। धर्म आज रूढियों और स्थिर स्वार्थोंका समर्थक है। उसके अनुसार वर्तमान सामाजिक व्यवस्था ईश्वरकृत है और इसलिए वह सदाके लिए अपरिवर्तनशील है। धर्म वर्तमानको रक्षित रखना चाहता है और जिस समाजमें वर्ग-संघर्ष नित्य बढता चला जाता है उस समाजको वह अपने प्रचलित रूपमें अक्षुण्ण रखना चाहता है। आजकी सामाजिक और आर्थिक व्यवस्थामें मनुष्य अपनी पूर्ण ऊँचाईको नहीं पहुँच सकता, अपना पूर्ण विकास नहीं कर सकता, लेकिन धर्म इसी व्यवस्थाका पोषक और समर्थक है। धर्म परमेश्वरकी कल्पना कर मनुष्यको दुर्बल बना देता है, उसमें आत्मविश्वास उत्पन्न नहीं होने देता और उसकी स्वतन्त्रताका अपहरण करता है, जीवनकी ठोस हकीकतसे उसको अलग कर ख्याल और वहमकी काल्पनिक दुनियामें उसको नचाता है और उसकी आत्मचेतनाको पूर्णरूपसे विकसित नहीं होने देता। धर्मके बोझके तले मानव दबा पड़ा है, समाजवाद धर्मकी सच्ची मीमांसा कर धर्मकी कैदसे मनुष्यको नजात दिलाता है और इस तरह मानवताके गौरवको बढाता है।

पूँजीवादी प्रथाका दोष

जिस तरह धर्म मानवताको विकृत और खण्डित करता है उसी तरह उत्पादनकी पूँजीवादी प्रक्रिया मानव-श्रमके गौरवको नष्ट कर देती है। इस प्रक्रियामें मजदूर उत्पादन-के साधनोंसे पृथक् कर दिया जाता है। मजदूरका श्रम भी और तिजारती मालकी तरह बाजार-भावपर बाजारमें बिकता है। मजदूर मेहनत मशक्कत कर जो वस्तु तैयार करता है उसपर उसका प्रभुत्व नहीं होता। मजदूर उत्पन्न वस्तुको अपनेसे अलग समझता है।

यह श्रम उसके लिए स्वाभाविक नही है, इसलिए उसको उसमे रस नही आता। वह श्रम कर प्रसन्न नही होता और न उससे उसकी शारीरिक और बौद्धिक शक्तिका स्वच्छन्द विकास ही होता है। इससे उसका स्वास्थ्य अवश्य विगडता है और उसकी आत्माका हनन होता है। इसलिए श्रमिक अपने व्यक्तित्वको अपने श्रमसे वाहर ही अनुभव करता है। ऐसा श्रम मनुष्यको प्रकृति और अपने व्यक्तित्वसे अलग कर देता है। जितना ही अधिक वह श्रम करता है उतनी ही शक्तिशाली वह दुनिया वनती जाती है जिसका कि वह निर्माण करता है और उतना ही दरिद्र और अकिञ्चन वह स्वयं और उसका आन्तरिक संसार होता जाता है। ऐसे ही श्रमसे व्यक्तिगत सम्पत्तिकी उत्पत्ति होती है और उत्पादन-पर उन लोगोका ही प्रभुत्व होता है जो स्वय कुछ पैदा नही करते। पूंजीवादी आर्थिक व्यवस्थाकी यह एक मौलिक घटना है। इसीलिए एंगेल्सने कहा है कि इन्सानकी हैसियतसे चेतनापूर्वक उत्पादनकी प्रक्रियामे लगो, न कि वतौर क्षुद्र व्यक्तियोके जिनमे सामाजिक चेतना नही है और इसी तरह तुम तमाम कृत्रिम असंगतियो और विरोधोका अन्त कर सकोगे। इसीलिए मार्क्स कहते है कि मानव-समाजका उद्धार सामाजिक शक्तियोके ऐसे नवीन सगठनद्वारा ही हो सकता है जो मनुष्यको उन साधनोका मालिक वनावे जो उनको जीवन प्रदान करते है। इसीलिए समाजवाद व्यक्तिगत सम्पत्तिका निश्चित लोप चाहता है, क्योकि यह मनुष्यको अपने श्रमसे अलग करती है। व्यक्तिगत सम्पत्तिके लोपसे ही मानव-समाज मानवताके गुणोसे संयुक्त किया जा सकता है। इसी तरह पूर्ण चेतनाके साथ मानव सच्चे मनुष्यत्वको पुन. प्राप्त कर सकता है। मानवके स्वास्थ्यलाभके लिए समाजवादकी आवश्यकता है।

अर्थशास्त्रियोंका विकृत दृष्टिकोण

हमारे अधिकाश अर्थशास्त्री पूंजीवादका समर्थन करते है। उनमे इतिहासके ज्ञानकी कमी है। वे कोरे अर्थशास्त्री है। वे यह नही देखते कि मनुष्य उत्पादनकी शक्तियोकी वृद्धि करता हुआ आपसमे एक निश्चित सम्वन्ध स्थापित करता है और इस सम्वन्धका रूप और प्रकार निश्चित रूपसे वदलता है, जव उत्पादनकी शक्तियाँ वदलती हैं और उनकी वृद्धि होती है। आजकी उत्पादन-प्रणालीसे जो सामाजिक सम्वन्ध है वे तभी तक कायम है जवतक वर्तमान प्रणाली कायम है। अर्थशास्त्रके जो नियम उन्होने निश्चित किये है वे अटल और शाश्वत नही हैं। वे केवल वर्तमान प्रणालीको ही लागू होते है, एक विशेप ऐतिहासिक विकासकी अवस्थामे ही उन नियमोकी सत्यता है। अर्थशास्त्रके ये नियम ऐसे ऐतिहासिक सामाजिक सम्वन्धोके द्योतक है जो अस्थायी है। इन सम्वन्धोके वदलते ही नियम भी वदल जावेगे। इसलिए इन नियमोको अटल वनाना मूर्खता है। यदि ये नियम अटल होते तो सामाजिक और आर्थिक विकासकी सम्भावना ही न रह जाती।

आज समाजमे वेतरतीवी और अस्तव्यस्तता है। मनुष्य, मनुष्यके खिलाफ सघर्ष करता है और सव व्यक्ति, जो एक दूसरेसे अपने व्यक्तित्वके कारण ही अलग किये गये है सवके विरुद्ध सघर्प करते है। सामन्तशाही जमानेके नियन्त्रणो और वन्धनोसे मुक्त होकर

प्राथमिक शक्तियाँ अबाध गतिसे परिचालित होती हैं और यद्यपि जाहिर देखनेमें व्यक्ति स्वतन्त्र मालूम होता है, तथापि वास्तवमें वह गुलाम है। जो अवयव उससे पृथक् कर दिये गये हैं, जैसे सम्पत्ति, श्रम और धर्म उनकी अबाध गतिको वह भूलसे अपनी स्वतन्त्रता समझता है, किन्तु असलियत यह है कि कि यही अबाध गति उनकी गुलामी और मानवतासे उसके अलग किये जानेको जाहिर करती है।

पूँजीवादी राज्य

पूँजीवादी राज्यमें मनुष्यको जो राजनीतिक स्वतन्त्रता प्राप्त होती है उसका अर्थ केवल इतना ही है कि वह पूँजीवादी समाजका सदस्य और राज्यका नागरिक बन जाता है। वर्तमान राज्य (State) मनुष्यके साधारण अधिकारोंको स्वीकार करता है। राज्य राजनीतिक दृष्टिसे व्यक्तिगत सम्पत्तिको स्वीकार नहीं करता और इसलिए वोटका अधिकार प्रदान करनेमें वह जायदादका लिहाज नहीं करता। राज्यने जन्म, शिक्षा और व्यवसायके फर्कको भी राजनीतिक दृष्टिसे मिटा दिया जब उसने अपने विधानमें सबोंको समान रूपसे राजनीतिक अधिकार प्रदान किया। धर्मका अस्तित्व भी किसी प्रकार राज्यके पूर्ण विकासमें बाधक नहीं माना गया। किन्तु पूर्ण रूपमें विकसित राज्य प्रधानत. सामाजिक जीवनका ही प्रतिनिधित्व करता है, न कि मानवके भौतिक जीवनका। राज्य जब मनुष्यके साधारण अधिकारोंको स्वीकृत करता है तब उसका अर्थ केवल इतना ही होता है कि वह पूँजीवादी समाजके व्यक्तिके अस्तित्वको और साथ ही साथ मानव-जीवनके बौद्धिक और भौतिक अवयवोंकी अबाध गतिको स्वीकार करता है। इस प्रकार राज्य मनुष्यको धर्मके बन्धनोंसे नहीं मुक्त करता, वह केवल उसको धार्मिक स्वतन्त्रता अर्थात् किसी धर्मविशेषको अपने लिए चुन लेनेका अधिकार ही प्रदान करता है। इसी तरह राज्य केवल वोटका हक देनेमें सम्पत्ति, जन्म और व्यवसायके कृत्रिम भेदोंका लिहाज नहीं करता। किन्तु इस विधानसे व्यक्तिगत सम्पत्तिका लोप नहीं हो जाता। राजनीतिक स्वतन्त्रता मानवको स्वतन्त्र नहीं करती। मानव तो तभी स्वतन्त्र होगा जब उसका जीवन खण्डित न हो, जब उसके जीवनके बौद्धिक और भौतिक अवयव उससे पृथक् न कर लिये जायँ ; जब कि वह एक सामाजिक जीव होकर अपनी जिन्दगी बसर करे और अपना काम-काज देखे और जब मनुष्य अपनी प्राकृतिक शक्तियोंको सामाजिक शक्तियोंकी तरह संगठित कर सामाजिक शक्तिको राजनीतिक शक्तिके रूपसे अपनेसे अलहदा न करे। विविध खण्डशास्त्र जो मनुष्यके अवयवोंको उससे पृथक् कर उनका अध्ययन करते हैं, मानवताके आलोकमें क्षीण और सारहीन नजर आते हैं।

यथार्थवादी मार्ग

मानवताका सबसे बड़ा पुजारी होते हुए भी मार्क्स ख्याली घोड़े नहीं दौड़ाता, वह काल्पनिक जगत्मे स्वच्छन्द विचरण करना पसन्द नही करता। वह इस दुनियाकी ठोस हकीकतको ही अपने अनुसन्धानका आधार बनाता है। उसने किसी सुन्दर ससारकी कल्पना नही की है। वह पुरानी दुनियाको अँधेरेमे लाकर उसकी परीक्षा और आलोचना

करना चाहता है और इस तरह ऐतिहासिक विकासके सिद्धान्तोका निरूपण कर वह दुनियाकी तलाश करता है। अवतकके जो दर्शन हैं वह जीवनकी पहेलीका हल पका-पकाया तैयार रखते हैं, किन्तु मार्क्स सदाके लिए सब अवस्थाओका पहलेसे ही नही उत्तर दे देता। वर्तमान जगत्‌की आलोचना करना वह अपना काम समझता है और निहायत वेदर्दीके साथ वह इस कार्यको सम्पन्न करता है। वह नतीजोसे घवराता नही और अधिकारियोके साथ टक्कर लेनेसे भी नही डरता। उसकी शिक्षा है कि ऐतिहासिक विकासके क्रमको समझनेकी कुजी समाजमे है। मनुष्य सामाजिक है। संसारसे वाहर उसका अस्तित्व नही है। प्रत्येक सामाजिक व्यवस्थाका आधार उत्पादनकी क्रिया और वस्तु-विनिमय होता है। क्या उत्पन्न होता है, कैसे उत्पन्न होता है और उत्पन्न वस्तुओका विनिमय किस प्रकार होता है ये वाते निश्चित करती हैं कि उत्पन्न वस्तुओका वितरण कैसे होगा और समाजमे वर्ग-विभाजन किस प्रकार होगा। इस प्रकार सामाजिक परिवर्तन और राजनीतिक क्रान्तियोके अन्तिम कारणोकी तलाश मनुष्योके मस्तिष्कमे न होनी चाहिये, अपितु उत्पादनके प्रकार और विनिमयके परिवर्तनोमे। इन कारणोका पता युगके दर्शनमे नही किन्तु समयके आर्थिक सगठनमे मिलेगा। यह ज्ञान वढता जाता है कि वर्तमान सामाजिक संस्थाएँ बुद्धिसगत और न्याययुक्त नही है और यह इस वातका चिह्न है कि उत्पादनके तरीकोमे और वनिमयके प्रश्नोमे खामोशीके साथ ऐसे परिवर्तन होते रहे है जो सामाजिक व्यवस्थाके अव अनुकूल नही पडते। इससे यह भी स्पष्ट है कि जो उपाय उन वुराइयोको दूर कर सकते हैं जिनका पता चला है उनको भी किसी-न-किसी रूपमें उत्पादनकी वदली हुई अवस्थामे मौजूद रहना चाहिये। इन उपायोका वुद्धिवलसे ईजाद नही करना है किन्तु मौजूदा उत्पादनकी अवस्थामेसे तलाश करके निकालना है।

वर्तमान सामाजिक प्रणाली पूँजीवादी है। ज्यो-ज्यो इसका विकास होता जाता है त्यों-त्यो उत्पादनकी शक्तियो और उत्पादनके प्रकारका सघर्ष वढता जाता है। यह संघर्ष किसीकी इच्छाके अधीन नही है। यह उन लोगोकी भी इच्छाके परे है जो इस संघर्षको पैदा करते हुए मालूम होते हैं। वर्तमान प्रणालीकी वुराइयोको दूर करनेका साधन सर्वहारा मजदूर है। पूँजीवादी उत्पादन जहाँ मुट्ठीभर पूँजीपतियोमे सम्पत्तिको केन्द्रित करता है वहाँ वह अकिञ्चन मजदूरको भी पैदा करता है। मजदूरवर्गके पूँजीवादी समाजका एक वर्ग है जो सार्वभौमिक चरित्रवाला है क्योकि इसकी तकलीफे सार्वभौमिक हैं। यह किसी विशेष अधिकारकी माँग नही करता, क्योकि कोई खास अन्याय उसके साथ नही किया गया है क्योकि वह स्वय सरापा अन्याय है। यह वर्ग किसी इतिहास-सिद्ध अधिकारके नामपर अपील नही कर सकता, किन्तु मानवताके नामपर ही इसकी अपील होती है, यह वर्ग विना अन्य वर्गोके नजात दिलाये नजात नही पा सकता। यह वह वर्ग है जिसमे मानवताका सर्वथा लोप हो गया है और यह मानवताको पूरी तरह प्राप्त करके ही अपनेको पा सकता है। सर्वहारा मजदूरमे आत्मचेतनाकी कमी है। जव उसको उस प्रणालीका ज्ञान होगा जो उसको सदा सच्चे मानवकी पदवी प्रदान कर सकती है तव उसका निस्तार होगा। समाजवादका सिद्धान्त तभी एक शक्तिके रूपमे परिणत

हो सकता है जब जनता उससे प्रभावित हो और उसे अपनावे। जो सिद्धान्त जनताकी आवश्यकताओंकी पूर्ति करता है वही कार्यमे परिणत होता है। सर्वहारा मजदूरका लोप किये बिना मार्क्सवादी-दर्शनका सिद्धान्त कार्यरूपमे परिणत नही होता और मजदूर सिद्धान्तको कार्यरूपमे परिणत किये बिना अपना निस्तार नही कर सकता।

मजदूरवर्गका महत्त्व

पूँजीवादी समाजमें मजदूर इस ऐतिहासिक कार्यको सम्पन्न करता है। समाजवादी क्रान्तिका वही अग्रणी हे। किसी मजदूर या मजदूरवर्गका तात्कालिक उद्देश्य क्या है इससे कोई सम्बन्ध नही है। सामयिक पूँजीवादी समाजके सगठनमे उसका जो स्थान है वह उसको इस इतिहास-निर्दिष्ट कार्यके करनेके लिए कभी-न-कभी विवश करेगा। जब मजदूरवर्ग अपने कष्टको केवल कष्टके रूपमे नही देखता है, बल्कि उसका क्रान्तिकारी पहलू भी पहचानने लगता है उसी क्षणसे इतिहासको प्रगति मिलती है और मजदूरवर्ग चेतना-पूर्वक क्रान्तिके कार्यमे लग जाता है। क्रान्ति इतिहासके विकासके क्रमको बदल नही देती, किन्तु उसकी गतिको तीव्र कर देती है। मार्क्सके शब्दोमे क्रान्ति इतिहासकी रेलगाड़ी (locomotive of history) है। वह केवल इतिहासकी रफ्तारको तेज कर देती है।

जो लोग किसी सामाजिक व्यवस्थाकी खूबियोको सुरक्षित रखकर महज उनकी बुराइयोको दूर करना चाहते है वह भूल करते है। यह बुरा पहलू ही सघर्पको जन्म देकर इतिहासका निर्माण करता है। जो पूँजीवादी पद्धति दौलत पैदा करती है वही गरीबी और बेकारीको भी जन्म देती है। जिस मात्रामे पूँजीपतिकी वृद्धि होती है उसी मात्रामे परिणामस्वरूप मजदूरवर्गकी भी वृद्धि होती है।

इसलिए अच्छे पहलूको कायम रखकर बुरे पहलूको दूर करनेकी चेष्टा निरर्थक है। इस प्रकार हम एक ऊँचे दर्जेकी सामाजिक व्यवस्थाको जन्म नही दे सकते। इस तरह तो सामन्तशाहीका नाश और पूँजीवादी पद्धतिका जन्म कदापि न हुआ होता। यह तो इतिहासको निस्सार बनानेका ढग है।

मार्क्सने जनताको खोयी हुई मानवताको फिरसे पानेका उपाय ही नही बताया, किन्तु उसको इस कार्यके लिए तैयार भी किया। पुराने दार्शनिकोने जहाँ वस्तुस्थितिके बनानेकी चेष्टा की थी वहाँ मार्क्सका दर्शन समाजकी रूपरेखाको बदलनेका शास्त्र है। मानवताके लिए मार्क्स सदा लडता रहा और इसके लिए उसने अनेक कष्ट भी सहे। जो जनताको मानवतासे वचित रखते है उनके प्रति मार्क्सका क्रोध सात्विक क्रोध है। मेहरिंगने मार्क्सको दूसरा प्रोमेथियस बताया है। प्रोमेथियस पश्चिमी दर्शनकी जन्त्रीका सर्वोत्कृष्ट और सन्त शहीद हो गया है। प्रोमेथियस न इन्द्रके वज्रसे डरता था, न उसे धमकियोकी परवाह थी। वह तामाम देवताओको तिरस्कारकी दृष्टिसे देखता था। मुसीबत बर्दाश्त कर लेना उसे मंजूर था, लेकिन किसी हालतमे वह देवताओंकी गुलामी नही कर सकता था। कार्ल मार्क्सने मानवताको पुनः प्रतिष्ठित करनेके प्रयत्नोको नही छोड़ा। उसने

कभी पूँजीपतियोंकी नाराजगी या धमकियोकी परवाह नही की। लाख मुसीवतोके झेलनेपर भी वह कभी अपने पथसे विचलित नही हुआ। उसका दर्शन एक जीता-जागता दर्शन है जिससे मनुष्यको एक नवीन स्फूर्ति और प्रेरणा मिलती है। जो आज समाजमे पददलित, तिरस्कृत, अशिक्षित और दरिद्र है उनमें नये जीवनका सचार करना, उनके तमाविष्ट हृदयोमे एक नवीन ज्योतिको जगाना मार्क्सके दर्शनका ही काम है। यही दर्शन करोड़ो लोगोको मुक्ति-पथका निर्देश करता है। इसी मार्गके पथिक होकर लोग एक नूतन समाजकी सृष्टि करेगे जहाँ मानव मानव होकर रहेगा और ससारकी कोई भी शक्ति फिर उसकी मानवताका अपहरण न कर सकेगी।

वर्ग-संघर्षकी अनिवार्यता

पहले यह वताया जा चुका है कि समाजमे विकास उसकी आन्तरिक असङ्गतियोके जरिये होता है। यह असङ्गतियाँ जव अपनी चरम सीमापर पहुँच जाती है तो सामाजिक क्रान्ति घटित होती है। समाजको तरक्कीकी एक मंजिलसे दूसरी मजिलपर ले जानेवाली कोई रहस्यमयी शक्ति नही, वल्कि यही सामाजिक क्रान्ति होती है। यह भी कहा जा चुका है कि हमारे अवतकके सामाजिक ढाँचेमे, जो कि शोषक और शोषित वर्गोके आधारपर संघटित रहा है, यह क्रान्ति वर्गसघर्षकी चरम सीमापर पहुँचनेपर ही घटित होती रही है। आगे हम इतिहासके कुछ उदाहरणोद्वारा अपने इस कथनकी पुष्टि करनेका यत्न करेगे।

दासोंका विद्रोह

वर्ग-संघर्षका इस प्रकारका पहला उदाहरण हमे पुराने जमानेके गुलामो और उनके मालिकोके वीचमे मिलता है। आजकलके मजदूरी पानेवाले गुलाम यानी मजदूर श्रेणीके लोग जिस तरह अपनेको भलीभाँति सुसगठित करके लडते है, पुराने जमानेके गुलामोकी लडाई ठीक इसी तरहकी नही पायी जाती क्योकि आजकलके मजदूरकी तरह वे लोग वड़े-वड़े कारखानोमे वडी तादादमे काम न करके अलग-अलग व्यक्तिगत रूपसे अपने-अपने मालिकोके यहाँ काम करते थे। ऐसी हालतमे उनपर जो अत्याचार होता था वह उन्हे तत्कालीन आर्थिक रचनाका अवश्यम्भावी परिणाम मालूम नही होता था। कितने ही मालिक अपने गुलामोके साथ दयालुताका व्यवहार भी करते थे; अत स्वभावत. गुलाम लोग इस भ्रमके शिकार हो जाते थे कि उनपर होनेवाला अत्याचार स्वामीविशेषके निर्दय स्वभावका ही परिणाम है किन्तु गुलामोमे चेतनाका संचार होनेके मार्गमे इस कठिनाईके होते हुए भी वर्ग-सघर्प वढता ही गया और समाजमे भयकर विद्रोह हुए। दास-क्रान्तिका प्रमुख उदाहरण प्राचीनकालके रोममे देखनेको मिलता है। दासताकी प्रथा प्राचीनकालके भारतवर्षमे भी पायी जाती थी और यह प्रथा पूरी तरहसे अग्रेजी राज्यके आनेके वाद समाप्त हुई है।

कृषकोंका विद्रोह

दास-प्रथाकी समाप्तिके बाद हम सामन्तवादी युगमें आते है। इस जमानेमें भूमिके स्वामी सामन्तो और उनके लिए दासका काम करनेवाले कृपक दासोके बीच वर्ग-संघर्ष चलता है। आरम्भमे किसानोका क्रोध छिटफुट उत्पातोके रूपमे ही प्रदर्शित होता है। वे व्यापक पैमानेपर किसी विप्लवका संगठन नही कर पाते। पुराने जमानेके गुलामोकी तरह इन किसानोंके मालिक भी अलग-अलग होते हैं और किसानोको अलग-अलग खेतोपर काम करना पडता है। दूसरे, जिस जमानेकी हम बात कर रहे है उस जमानेमे आवागमनके साधनोका विकास भी आजकी तरह नही हो पाया था। अतएव आरम्भमें किसानोंके विद्रोहोका अलग-अलग स्थानोमे छोटे पैमानेपर छिटफुट रूपसे होना स्वाभाविक है। किन्तु आगे चलकर बार-बार अकाल पड़नेसे और किसानोकी आबादी बढ़नेसे जब किसानोका कष्ट परकाष्ठापर पहुँच जाता था और जमीनका पाना उनके लिए जीने मरनेका सवाल बन जाता था तब यह वर्ग-सघर्ष व्यापक और उग्ररूप धारण करता था। किसान-वर्ग यह अनुभव करने लग जाता था कि सामन्तवादीवर्गसे छीनकर और सामन्तशाहीके स्थानपर किसानोका राज्य कायम करके ही उनकी समस्या हल हो सकती है। किसानोके व्यापक विद्रोहोके कुछ मुख्य उदाहरण जर्मनीका 'कृपक युद्ध' (Peasant War of Germany) रूसका 'पूकोगाफ विद्रोह' और चीनका 'ताइपिङ्ग विद्रोह' (Taiping rebellion) है।

किसानोंकी विचारधारा

किन्तु, जैसा कि ऊपर कहे विद्रोहोके इतिहाससे पता चलता है, किसान लोग प्रचलित व्यवस्थाका विध्वंस अवश्य कर सकते हैं, वे नयी व्यवस्थाका निर्माण नही कर सकते। किसान आन्दोलनके प्रेरक आदर्श किसानोको आगे देखनेकी अपेक्षा पिछले जमानेकी ओर देखनेको बाध्य करते है। किसानवर्ग सामन्तवर्गके हाथसे जमीन तो जरूर छीननेको तैयार हो जाता है, किन्तु जब विप्लवके बाद समाजके पुनस्सङ्गठनका सवाल आता है तो वह पुराने जमानेकी व्यवस्थाको ही फिरसे चालू करनेकी कोशिश करता है। पुराने जमानेमें गाँवोका प्रबन्ध पचायतोके जरिये होता था। खेतीका प्रबन्ध भी पंचायते करती थीं। गाँवोकी जमीनपर व्यक्तियोका अलग-अलग स्वामित्व न होकर पंचायतका ही स्वामित्व समझा जाता था। इन पचायतोको सुविधानुसार जमीनका किसानोमे फिरसे बँटवारा करनेका अधिकार था। फ्रासमे इस प्रकारकी पंचायतोको कम्यून और रूसमे उन्हे मीर कहते थे। हिन्दुस्तानमे भी खेतीकी यह पंचायती प्रथा पायी जाती थी। जिन स्थानोमें इस पचायती प्रथाकी परम्परा किसानोके दिमागमे ताजी रही है वहाँके किसान विद्रोहके बाद फिरसे इसी पचायती प्रथाको लाना चाहते रहे हैं।

किसानोका उद्देश्य राजतन्त्रका विनाश भी नही था। इसके विपरीत धार्मिक विचारोमे रँगे होनेके कारण वे राजाको ईश्वरका अवतार समझते थे और उनका विद्रोह भी प्राय· ऐसे ही व्यक्तियोके नेतृत्वमे चलता था जो कि किसानोमें यह घोपणा करते थे कि ईश्वरने उनके मनमें नये बननेकी प्रेरणा की है। पूकोगाफ और ताईपिंग विद्रोहके

नेता इसी प्रकारके थे। आरम्भमें किसानोको इसका विश्वास ही न होता था कि राजा सामन्तवर्गके शोषणका समर्थक है। किसानोका विश्वास यह था कि उनपर जो अत्याचार होता है, उनकी माँगे जो स्वीकार नही की जाती वह भ्रष्ट राज्य-कर्मचारियो या बुरे स्वभाववाले स्थानीय सामन्तोके कारण ही। राजाको तो वे पृथ्वीपर सर्वन्यायकारी परमपिता परमात्माका साक्षात् अवतार मानते थे। किन्तु राजासे बार-बार फरियाद करनेपर भी जब उल्टे उनका दमन ही होता था, उनके प्रतिनिधि जेलोमे डाल दिये जाते या मौतके घाट उतार दिये जाते थे तब कही जाकर उनकी आखे खुलती थी। किन्तु फिर भी वे यह नही अनुभव करते थे कि उनको राजप्रथाका ही विनाश करना है, बल्कि अपने नेताको ही वे राजा स्वीकार कर लेते थे।

किसानोके विद्रोह दूसरे देशोकी तरह हिन्दुस्तानमे भी होते रहे है, किन्तु उनके शृंखलाबद्ध इतिहासके ठीक-ठीक न मिल सकनेका कारण यह है कि हमारे यहाँ ऐतिहासिक घटनाओका नियमित रूपसे वृत्तान्त रखनेकी प्रथा नही रही है। इसके अतिरिक्त बहुतसी बाते सरकारी कागजातके भीतर ही छिपी है जिनकी ठीक-ठीक छानबीन अंग्रेजी हुकूमतके हटनेके बाद ही की जा सकती है। विभिन्न प्रान्तोके जिलेके गजेटियरो (District gazetteers) की छानबीन करनेपर किसानोके अनेक विद्रोहोका पता चलता है, विशेषकर गुजरात और बिहार के भील, सन्थाल आदि आदिमनिवासी जातिके किसानो-द्वारा। इन विद्रोहोके नेता भी अक्सर ऐसे ही लोग होते थे जो यह कहते थे कि उन्हे किसी खास देवीसे विद्रोह करनेकी प्रेरणा मिली है। मुस्लिम शासन तथा ब्रिटिश शासनके आरम्भिक कालमे इस प्रकारके अनेक विद्रोहोका वर्णन मिलता है।

सम्पत्तिजीवी वर्गका महत्त्व

किसानोके विद्रोहने पुरानी व्यवस्थाको नष्ट करके नयी व्यवस्थाकी स्थापना करनेवाले आधारभूत युद्धका रूप तभी धारण किया जब कि सम्पत्तिजीवी वर्ग (bourgeoisie) ने भी इस युद्धमे हाथ बँटाया। यह हम पहले बता चुके है कि इस सम्पत्तिजीवी या पूंजीवादी श्रेणीके विकासके मार्गमे सामन्तवादी प्रथा किस प्रकार बाधक थी और यह कि इस श्रेणीके हितोकी रक्षा और वृद्धि तभी हो सकती थी जब कि सामन्तशाही वर्गके हाथसे निकलकर राजनीतिक प्रभुत्व इस वर्गके हाथमे आ जाय। सम्पत्तिजीवी वर्ग ऐसा नया उठता हुआ वर्ग था जिसके सदस्योकी सख्या बहुत थोडी थी। ऐसी हालतमे यह वर्ग पुराने सामन्तवर्ग-की ताकत खत्म करके अपनी ताकत उसी हालतमे कायम कर सकता था जब कि सामन्त-शाहीवर्गके साथ लडनेमे समाजके दूसरे वर्गो अर्थात् किसानो और कारीगरो आदिको भी वह अपनी ओर मिला सकता। यही कारण है कि सम्पत्तिजीवी वर्गने समता, स्वतन्त्रता और भ्रातृभावके नारे सामने रखकर किसानोकी सहानुभूति प्राप्त की और उनकी मददसे नये पूंजीवादी प्रजा-सत्तात्मक राज्यकी स्थापना की।

किसानोका वर्ग ऐसा नहीं है जिसके सभी सदस्योके हित एक समान हो। भूमिरहित या कम भूमिवाले छोटे किसानका स्वार्थ स्पष्टत. बड़े किसानके हितसे टक्कर खाता है।

किन्तु जब जमींदारोंके खिलाफ एक आधारभूत युद्ध छेड़ा जाता है तब समूचा किसान-तबका अपने वर्गके आन्तरिक विरोधोंको भूलकर एक होकर इस लडाईमें भाग लेता है।

ऊपर यह बतलाया गया है कि सामन्तवादी वर्गके खिलाफ किसान जो लड़ाई लड़ते हैं वह सामन्तशाही व्यवस्थाके खिलाफ बुनियादी लड़ाईकी सूरत तभी अख्तियार करती रही है जब पूंजीवादी वर्गके हाथोंमें लड़ाईका नेतृत्व रहा है। प्रजा-सत्तात्मक क्रान्तिका कार्यक्रम जहाँ पूर्णतया किसानोंके नेतृत्वमें ही चला है वहाँ व्यापारियोंको सामन्तशाही जमानेके मुकाबले तिजारतकी तरक्कीके लिए कुछ रियायतें भले ही मिल गयी हों, लेकिन पुरानी व्यवस्थाको हटाकर नयी व्यवस्थाकी स्थापनाका कार्यक्रम नहीं पूरा किया जा सका। चीनका ताइंपिंग विद्रोह इसी प्रकारके युद्धका नमूना था। किसानोंके नेतृत्वकी इस असफलताका कारण पूंजीवादी वर्गकी तरह उनके पास एक नयी विचारधाराका न होना था।

पूँजीवादी वर्गकी प्रतिगामिता

लेकिन ऐसे देशोंमें जहाँ विविध ऐतिहासिक कारणोंसे पूँजीवादका स्वाभाविक विकास रुक जाता है तो सम्पत्तिजीवी समुदाय क्रान्तिकारी नही रह जाता। उदाहरणार्थ हम अपने मुल्कको ही ले लें। विदेशी ब्रिटिश साम्राज्यवादने देशी पूँजीवादको पनपनेसे रोक रखा है और पूर्व प्रचलित सामन्तवादी ढाँचेको भी कायम रख छोड़ा है। स्वाभाविक अवस्थामें हमारे पूँजीपतियोंको सामन्तशाही विरोधी युद्धका नेतृत्व करना था। यह सम्पत्तिजीवी वर्गके हितमें है कि सामन्तशाही वर्गका—जमींदारों, जागीरदारों, महन्तों और राजाओंका जो भी प्रभुत्व देशके आर्थिक या राजनीतिक जीवनपर है वह हटे। हमारा देश किसानोंका देश है। उद्योगधन्धोंद्वारा तैयार होनेवाली चीजोंकी खपत यहाँ तभी हो सकती है जब कि इन किसानोंकी आमदनी बढायी जाय। किसानोंकी आदमनी बढ़ानेके लिए यह जरूरी है कि कृषक जनताका जो धन जमींदारों, नवाबों, महन्तों और राजाओंकी जेबमें चला जाता है उसे किसानोंके पास ही रहने दिया जाय। हमारे किसानोंकी क्रयशक्ति (purchasing power) प्रायः शून्यको पहुँच गयी है। बिना सामन्तशाही वर्गके शोषणको खतम किये हुए किसानोंकी आमदनी नहीं बढ़ायी जा सकती और फलस्वरूप उद्योगधन्धोंके विकासके लिए रास्ता साफ नहीं होता। इंग्लैण्ड और फ्रांसकी तरह हमारे पास ऐसे उपनिवेश भी नहीं हैं जहाँ हम अपने मालकी खपत कर सकें। हिन्दुस्तानमें उद्योगधन्धोंके विकासके लिए एक मात्र मार्ग उसकी आन्तरिक क्रयशक्तिका विस्तार करना, देशके अत्यधिक बहुमतकी अर्थात् किसानोंकी आमदनी बढाना है। लेकिन फिर भी हमारे देशके पूँजीपति सामन्तवर्गको समाप्त करनेके लिए होनेवाली लड़ाईके कार्यक्रमके साथ नहीं हैं। इसके विपरीत कितने ही पूँजीपति जमींदारी प्रथाके समर्थक हैं। अपने प्रान्तमें ही देखते हैं कि पूँजीपतियोंके सेनापति सर ज्वालाप्रसाद श्रीवास्तव काश्तकारी बिलके विरोधमें तालुकेदारोंका साथ देनेके लिए तैयार हैं।

उपनिवेशोंके पूँजीपति

मौजूदा जमानेमें जिन स्थानोंमें सम्पत्तिजीवी प्रजासत्तात्मक क्रान्ति नहीं हो पायी है उन औपनिवेशिक राष्ट्रोंके पूँजीपतियोंकी प्रतिक्रियावादिताके दो मुख्य कारण हैं।

एक कारण तो यह है कि सामन्तवादी वर्गके ही अनेक सदस्योने पूँजीवादी उद्योगधन्धोमें अपनी पूँजी लगा रखी है। हमारें प्रान्तके ही कई ऐसे जमीदार मिलेंगे जिनकी आमदनी जमीदारीके अलावा उद्योगधन्धोसे भी होती है। ऐसे पूँजीपतियोंका जमीदारी प्रथाका समर्थन करना स्वाभाविक ही है। दूसरी बात ध्यान देनेकी यह है कि मौजूदा जमानेमें स्वयं पूँजीवादी प्रथाके खिलाफ मजदूरोका आन्दोलन भी शुरू हो जाता है। पूँजीवादी प्रथाके ह्रास और सामाजिक क्रान्तिके इस युगमे पूँजीपति वर्ग यह देखता है कि सामन्तशाही आर्थिक प्रभुत्व मिटानेका अर्थ होता है उत्पादनके साधनोमे व्यक्तिगत सम्पत्तिका अन्त करनेके आत्मघातक सिद्धान्तको स्वीकार कर लेना, अगर पूँजीपतियोने जमीदारोकी सम्पत्ति छीनी जानेमे मदद दी तो उनकी सम्पत्ति भी खतरेमे पड़ जा सकती है। ऐसी हालतमे उत्पादनके साधनोपर व्यक्तिगत सम्पत्ति और उससे उत्पन्न होनेवाले सामाजिक शोषणको बनाये रखनेवाले पूँजीपति-वर्ग और सामन्तवादी-वर्ग दोनो एक हो जाते हैं। पूँजीपति-वर्ग प्रजासत्तात्मक क्रान्तिका नेतृत्व करनेके स्थानमे उसका विरोध करनेको तैयार हो जाता है।

श्रमजीवी वर्गका महत्त्व

ऐसी स्थितिमे पूँजीवादी वर्गके खिलाफ लडकर भी शोषित वर्ग प्रजासत्तात्मक क्रान्तिको सफल बनाते है। क्रान्तिको सफल बनानेका काम अब श्रमजीवीवर्ग दूसरे शोषितोके साथ मिलकर करता है। पहले कह आये है कि कृषकवर्गके पास ऐसी विचारधारा नही होती कि वह पुरानी व्यवस्थाका अन्त करके नयी व्यवस्था कायम करनेमे नेतृत्व ग्रहण कर सके। यद्यपि वह सामन्तशाही और पूँजीशाहीके दुहरे शोषणके बोझसे दबकर पहलेकी अपेक्षा भी अधिक क्रान्तिकारी बन जाता है, लेकिन फिर भी उसकी खास माँग जमीनकी ही होती है। उसको इस बातसे कोई प्रयोजन नही होता कि राजशक्ति किस वर्गके हाथमे जाती है। जो वर्ग किसानोकी इस आधारभूत माँगकी पूर्ति करनेके लिए तैयार हो उसीके पीछे किसान हो लेते है। फ्रासमे जो प्रजासत्तात्मक क्रान्ति हुई उसमे उसने पूँजीपतियोका नेतृत्व स्वीकार किया। रूसकी राज्यक्रान्ति इसके विपरीत श्रमजीवी वर्गके नेतृत्वमे हुई। श्रमजीवी वर्गका उद्देश्य पूँजीवादी व्यवस्थाका ही अन्त करना होता है। पूँजीवादी प्रणालीका अन्त करनेके सिलसिलेमे स्वभावत मजदूरवर्गको सामन्तवादी शोषणका अन्त करनेका कार्यक्रम भी रखना होगा।

क्रान्तिकारी बुद्धिजीवी वर्गका महत्त्व

उपनिवेशोमे प्रजासत्तात्मक क्रान्तिके कार्यक्रमको सफल बनानेमे बुद्धिजीवीवर्गके क्रान्तिकारी तबके (revolutionary intelligentia) का विशेष महत्त्व होता है। ऊपर हम कह आये हैं कि औपनिवेशिक देशोमे प्रजासत्तात्मक क्रान्ति श्रमजीवी-वर्गकी प्रधानतामे सफल होती है, किन्तु उपनिवेशोका मजदूर पूँजीवादी देशोके मजदूरोकी तरह शिक्षित नही होता। उसे बने हुए पूँजीवादी देशोके मजदूरोंकी तरह कई पीढ़ियाँ नही गुजर चुकी होती, उसका उतना व्यापक सगठन नही होता, विदेशी

मजदूरोकी तरह इन मजदूरोको पूँजीपतियोके खिलाफ लड़ाईका अनुभव नही होता। संक्षेपमें उपनिवेशोके मजदूरोंके भीतर आरम्भमे वह राजनीतिक चेतना और वह शक्ति नही पायी जाती जिससे वे प्रजासत्तात्मक युद्धमे सीधे नेतृत्व अपने हाथमे ले सके। मजदूरवर्गको अपनी शक्ति और महत्त्वका ज्ञान करानेका कार्य उपनिवेशोमें क्रान्तिकारी बुद्धिजीवीवर्गके सदस्योद्वारा सम्पन्न होता है। उपनिवेशोमे ही क्यो स्वतन्त्र पूँजीवादी राष्ट्रोमे भी मजदूरोकी राजनीतिक शिक्षाका कार्य गैरमजदूर श्रेणीके समाजवादी बुद्धि-जीवियोद्वारा होता है। मजदूरवर्गका नेतृत्व अगर उनपर ही छोड दिया जाय तो उनके अन्दर राजनीतिक चेतना आ ही नही सकती। वैसी हालतमे उनके भीतर केवल पूँजीपतियों-से सुधारवादी तरीकेसे लडकर सुविधाएँ प्राप्त करनेकी आर्थिक चेतना (trade union consciousness) ही आ सकती है। पूँजीवादी ढाँचेको कायम रखते हुए चन्द रियायतोके लिए ही मजदूरोको नही लडना है, वल्कि उन्हे पूँजीवादी व्यवस्थाके ही मूलसे लड़ना है, यह चेतना मजदूरोमे क्रान्तिकारी बुद्धिजीवीवर्गके द्वारा ही लायी जाती है।

मार्क्सवाद और पूँजीवादी विज्ञान

आज प्रत्येक पूँजीवादी देश असाधारण संकटकी अवस्थामे है। यह अवस्था क्षणिक और अस्थायी नही है। यह अवस्था पूँजीवादके अन्तका आरम्भ घोषित करती है। इस वार संकट आर्थिक दायरेतक ही सीमित नही है। आर्थिक आधारके ह्रासके साथ-साथ पूँजीवादकी समग्र सामाजिक और आर्थिक पद्धति छिन्न-भिन्न होने लगती है। ह्रासके स्पष्ट चिह्न और लक्षण पूँजीवादी विचार-पद्धतिके क्षेत्रमे भी देख पडते है। निराशा, प्रतिगामी भाव, आदर्शवादका प्रचलन, रहस्यवादकी पुनरुत्पत्ति, विज्ञान और वैज्ञानिक तरीकोका परित्याग और मध्ययुगके पण्डित और टीकाकारोके तरीकोका फिरसे प्रचार यह सव वाते इस वातका सवूत है कि पूँजीवादी विचार-पद्धतिके ध्वसका क्रम असाधारण रीतिसे गहरा है। यदि पूँजीवादी राष्ट्रोके आर्थिक संकटने उत्पादनको कई पीढियोंके पीछे फेक दिया है तो पूँजीवादी विज्ञानपर आये हुए सकटने विज्ञानको सैकडो वर्ष पीछे फेंक दिया है। समाजवादी रूसमे मार्क्सका वैज्ञानिक सिद्धान्त आज वृहत् जनसमुदायकी चीज हो रहा है और अन्वेपणका जो काम हो रहा है, उसके फलस्वरूप उन विशिष्ट नियमोका पता चल रहा है, जिनका आविर्भाव विभिन्न ऐतिहासिक समाजोके जीवनमें हुआ है। उधर पूँजीवादी राष्ट्रोमे पूँजीवादी पद्धतिके ह्रास और ध्वसके साथ-साथ पूँजीवादी इतिहास-विज्ञानका वुरा हाल हो रहा है। व्यवस्थाका सर्वथा अभाव और निराशाके भावका प्रावल्य पाया जाता है। इतिहासके क्षेत्रमे वैज्ञानिक रीतिसे खोजका काम करनेवालोकी सख्या घटती जाती है और प्राय ऐसे लोग मौलिक अनुसन्धानके कार्यको छोड़ते जाते है, इसलिए नही कि उनको अवकाश नही है, किन्तु इसलिए कि उनके लेख

और ग्रन्थोके प्रकाशनकी आशा नही है। धनकी विशेष कमी है। जनताकी अभिरुचि विकृत हो गयी है। व्यापारकी मनोवृत्ति यहाँ भी काम करती है। फ्रासमें अनेक लेखक इतिहासको उपन्यासके रूपमे लिखते हैं। इन ग्रन्थोमे प्राय: सत्यका ख्याल नही रखा जाता। समाजविज्ञानकी आज जो दुर्दशा हो रही है उसका ठीक अन्दाज तभी लग सकता है जब हम पिछली एक शताब्दीके इतिहासका सिंहावलोकन करे। यह दुरवस्था आज नही शुरू हुई है। फ्रासकी राज्यक्रान्तिका युग पूंजीवादी समाज-शास्त्रके सबसे अधिक विकासका काल था। उस समय उसका अनुसन्धान सामाजिक विकासके नियम और क्रमके बहुत नजदीक पहुँच गया था। मार्क्सने अपने पुरोगामी पूंजीवादी वैज्ञानिकोसे बहुत कुछ सीखा था। अपनी पूर्ण पद्धतिका निर्माण करनेमे मार्क्सने पूंजीवादी विद्वानोकी प्रणालियोके स्वास्थ्यकर, जीवनप्रद और क्रान्तिकारी तत्त्वोको सर्वहारा मजदूरकी विचार-पद्धतिमे परिवर्तित कर पूंजीवादी पद्धतिका विरोध करनेके लिए एक तीक्ष्ण शस्त्रका निर्माण किया था। मार्क्सवादके कतिपय मौलिक सत्योकी घोषणा मार्क्सने पहले पहल नही की थी, किन्तु पूंजीवादी वैज्ञानिकोने सर्वप्रथम उनकी सत्यता स्वीकार की थी। सार्वभौमिक दृष्टिका भौतिक आधार वर्ग और वर्गसंघर्ष द्वन्द्ववाद आदि सिद्धान्तोका निरूपण पहले ही हो चुका था।

क्रान्तिके जमानेमे ही इन विचारकोने समाज तथा सामाजिक विकासके सम्बन्धमे अपने विचारोंको स्पष्ट और विशद कर पाया था। इसके विपरीत १७वी शताब्दीकी विचारधारा प्राकृतिक विज्ञानके रंगमे रंगी हुई थी। नये युगके आर्थिक विकासका तकाजा था कि प्राकृतिक विज्ञानका विकास हो, क्योकि पूंजीवादी उत्पादन प्राकृतिक शक्तियोका उपयोग किये बिना सम्भव न था। प्राचीन युगकी विचारधाराकी विशेषता उसका दार्शनिक दृष्टिकोण था। मध्ययुग पण्डितो और टीकाकारोका युग था जो प्राचीन ग्रन्थोका भाष्य करनेमे अपनेको कृतकृत्य मानते थे। इन सबसे भिन्न नवीन युगके पूंजीवादियोका दृष्टिकोण व्यावहारिक था। बेकन (Bacon) प्राचीन और मध्ययुग दोनोकी विचार-पद्धतिसे समानरूपसे प्रहार करता है। बेकन (Bacon) का कहना है कि हमारे समाजका उद्देश्य प्रकृतिकी आन्तरिक शक्तियो और प्रेरक कारणोको समझना तथा प्रकृतिपर मनुष्यकी शक्तिका अत्यन्त विस्तार करना है। उस समय प्राकृतिक विज्ञानकी ओर सामान्यत. आकर्षण था। उस समय समाजशास्त्रका स्वतन्त्र अस्तित्व न था। उस समय समाज और मनुष्य-सम्बन्धी विचार पूर्णतया इस एकागी वैज्ञानिक विचारके प्रभावमे थे। कानून-विज्ञानकी बुनियाद एक ऐसा प्राकृतिक नियम समझा जाता था जो मानव-स्वभावसे उद्‌गत हुआ था और जो देश तथा कालके अवस्थाओसे सर्वथा स्वतन्त्र तथा सब मनुष्यो और राष्ट्रोके लिए सामान्य था।

अठारहवी शताब्दीका भौतिकवाद ससारको एक प्रक्रियाके रूपमे नही देखता था। उसको यह मान्य नही था कि संसार एक ऐसा पदार्थ है जिसमे निरन्तर विकास होता रहता है। उस युगमे प्रकृतिका उपयोग करनेके लिए यह काफी था कि प्रकृतिकी वर्तमान अवस्थाका अनुसन्धान किया जाय। इस कामके लिए उसको अतीत जाननेकी कोई जरूरत न

थी। मानव-समाजके इतिहासके विषयमे यही धारणा थी। जब कि ऐतिहासिक विकासका कोई ख्याल न था तो अतीतके इतिहासमे कहाँसे दिलचस्पी पैदा होती? डेजरटीज (Deseartes) का विचार था कि पुरानी किताबोंमे दिये हुए कहानी-किस्सोको पढना वक्त खराब करना है। उस समयका वह सामान्य विचार था कि मानव-समाज सब काल और सब देशोमे एकहीसा होता है और इस प्रकार इतिहाससे कोई नयी बात नही मालूम होती। मान्टेस्क्यू (Montesque) जलवायुके प्रभावको स्वीकार करते थे पर इससे आगे वह भी नही गये थे। ऐतिहासिक विकासके सिद्धान्तोको कोई नही मानता था। यह समझा जाता था कि मनुष्यको प्रभावित करने तथा उसके आचार और रिवाजको बदलनेके लिए सामाजिक जीवन और मानव-इतिहासके अध्ययन-की जरूरत नही है बल्कि इसके लिए मानव-प्रकृतिका अध्ययन जरूरी है जो उस समयके ख्यालके बमूजिब अपरिवर्तनशील था। हालबैख (Holbach) का कहना था कि मानव-यन्त्रके कार्य सदा उन्ही नियमोसे नियन्त्रित होते है जो प्रकृतिके समस्त जीवोमें निहित है। प्राकृतिक नियमका ख्याल समाजको भी लागू किया गया। उस समय लोग इसका स्वप्न देख रहे थे कि हम आचार-विज्ञानका निर्माण कर उसके आधारपर एक आदर्श कानून-पद्धतिका निर्माण करेगे। इस दृष्टिके अनुसार यह सोचना वाजिब न था कि सामाजिक जीवनकी घटनाओपर नजर डालना मनुष्यके वास्तविक स्वभावका ज्ञान प्राप्त करनेमे बाधा उपस्थित करता है। 'हालबैख' और 'हेल्टवेटियस' के विचारसे हमारा अज्ञान और उससे भी ज्यादा निश्चित सामाजिक समूहोके स्वार्थ मानवप्रकृतिकी सच्ची आवश्यकताओके स्पष्ट ज्ञानको नही होने देते। इसलिए मनुष्यकी आवश्यकताओकी जहाँतक हो सर्वमान्य बनानेका प्रयत्न होना चाहिये अर्थात् उनको असाधारण सामाजिक घटनाओसे पृथक् रहना चाहिये। हालबैख प्राकृतिक आचार और राजनीतिके सिद्धान्त कायम करना चाहते थे।

प्राकृतिक विज्ञानकी दूसरी दिशा बुद्धिपरत्व है। प्रकृतिकी शक्तियोका संचालन करनेके लिए उसके नियम जानना जरूरी है और उसके नियम केवल शुद्ध तर्ककी सहायतासे जाने जा सकते है। इसी दृष्टिको समाजमे भी लागू किया गया। सामाजिक जीवनकी मानव-प्रकृतिको जानकर ही प्रभावित किया जा सकता है। समाजका अपना इतिहास है और उसका विकास होता है। इन बातोसे इनकार करके वास्तविक ज्ञानका दरवाजा ही बन्द कर दिया गया। यही माना गया कि केवल तर्क सामाजिक जीवनकी बुराइयोको खोज सकता है और उनको हटा कर प्राकृतिक नियमोके अनुसार सामाजिक जीवनका निर्माण कर सकता है। सामाजिक जीवनका केवल एक क्षेत्र इन विचारोके अधीन नही लाया जा सका। यह अर्थशास्त्रका क्षेत्र था। इस शास्त्रको विकसित करनेकी पूँजीवादी समाजको उतनी ही आवश्यकता थी जितनी कि प्राकृतिक विज्ञानकी। उसके व्यावहारिक महत्वके कारण यही एक ऐसा समाजशास्त्र था, जो बहुत जल्द इन विचारोके प्रभावसे बरी हो सका। १७वी शताब्दीके मध्यमे ही इंग्लैण्ड के अर्थशास्त्री विलबेन पेटी (Wilbain Petty) ने आर्थिक घटनाओको समझानेमे शुद्ध तर्कका आश्रय न लेकर

संख्या, नाप और तौलसे काम लिया। वह पहला व्यक्ति था जिसने यह उद्घोषित किया कि द्रव्य नही किन्तु श्रम सामाजिक सम्पत्तिका मूल है।[1]

इंग्लैण्डमे जहाँ औद्योगिक क्रान्ति हो रही थी आर्थिक घटनाओके विश्लेषणको प्रमुख स्थान दिया जा रहा था। फ्रासमे, जो राज्यक्रान्तिकी ओर अग्रसर हो रहा था, आर्थिक घटनाओके सामाजिक पहलूपर विचार हो रहा था। फ्रासके फिजियोक्रैट्स (Physiocrats) की आर्थिक पद्धतिका आरम्भ वितरण-परिक्रियासे होता है और यद्यपि फ्रासकी आर्थिक पद्धतिमे कृपिका प्रधान स्थान होनेसे फिजियोक्रैट्सकी पद्धति एडम स्मिथ (Adam Smith) से वहुत पिछड़ी हुई है तथापि इनके पास—चाहे वह आरम्भिक अवस्थामे ही क्यो न हो—समाजके वर्गीकरणका स्थान मौजूद था। क्वेसने (Quesney) ने समाजको वर्गोमे वॉटा था। टर्गो (Turgot) ने पूँजीपति तथा श्रमजीवी वर्गोको परस्परविरुद्ध वतलाया था। नेकर (Neeker) के निवन्धोमे यह विचार निश्चित रूपसे पाया जाता है कि उत्पादनके साधनोके मालिक और अपने श्रमसे अपने जीवन निर्वाह करनेवाले श्रमजीवी वर्गके परस्पर सघर्पमे कानूनके सरक्षणमें पूँजीपति अपने अधिकारोके वलपर श्रमजीवीको दवाते है।

टर्गो और नेकरमे वर्गीकरण और वर्गसघर्षके विचार पाये जाते है और यह भी कि जव क्रान्ति होती है तो वर्गोके आन्तरिक विरोध और भी प्रकट हो जाते है, जिनके कारण सामाजिक विकासके क्रमका विशद रूप हमको मिलता है। वारनार (Barnare) की दृष्टिमे मानव-इतिहास वर्गसघर्षका इतिहास है। यह दृष्टि ऐतिहासिक भौतिकवादके अत्यन्त सन्निकट है। वह इन्साइक्लोपीडिस्ट (Encyclopidists) के दर्शनका विरोधी था, क्योकि यह दर्शन ऐतिहासिक सत्यकी उपेक्षा कर महज कयासपर आश्रित था। यह दार्शनिक घटनाओकी परीक्षा न कर केवल कयाससे ही काम लेते थे। वारनार (Barnare) के अनुसार सामाजिक जीवनका सदा विकास होता रहता है। वह ऐसे नियमोकी सम्भावनासे इनकार करता है जो सदाकालीन हो और जो जीवनकी प्रत्येक अवस्थामे लागू हो सके। उसका कहना था कि कानून लोगोकी इच्छापर निर्भर नही करते, किन्तु किसी विशेप समाजके विकासकी अवस्थापर निर्भर करते है। एक नियम जो अच्छा है वह दूसरे समय भिन्न अवस्थामे हानि पहुँचानेवाला भी हो सकता है। वारनार सामाजिक घटनाओका वर्ग आधार ढूँढता है, किन्तु वह समाजके वर्गीकरणके उत्पादनके सम्वन्धको नही वल्कि सम्पत्तिके सम्वन्धोको मूल कारण समझता है। उसके लिए समाजका सारा जीवन सम्पत्तिमे केन्द्रित है। वर्ग-सघर्ष उसके लिए सम्पत्तिके विविध प्रकारोका सघर्प है। इस दृष्टिसे वह मानव-इतिहासकी आलोचना करता है। उसके विचारमे प्रारम्भिक कालकी समानता सम्पत्तिके अभावके कारण थी। सम्पत्तिके विकासके साथ-साथ असमानताका जन्म होता है। किसान वडे जमीदारोके चगुलमे फँसता है। चल सम्पत्ति, जिसकी वृद्धि व्यापार व्यवसायके द्वारा होती है, पूँजीपतियोका आधार है।

---

१. 'सघर्ष' २४ फरवरी, सन् १९४१ ई०

बड़े पैमानेकी जमींदारी सामन्तोंका आधार है। सम्पत्ति-विहीन श्रमजीवी समाजसे वहिष्कृत हैं। वारनारका कहना है कि जबसे सम्पत्तिके नये प्रकार उत्पन्न होने लगते हैं, तभीसे राजनीतिक नियमोंमें क्रान्तिकी तैयारी शुरु हो जाती है। सम्पत्तिका नया वितरण शक्तिको नये ढंगसे तकसीम करता है। सेन्ट साइमन (St Simon) भी लगभग इन विचारोंका माननेवाला था। वर्गविकासके साथ-साथ वह विज्ञानको भी ऐतिहासिक विकासका कारण मानता था। यह भी सच है कि वह धर्मके प्रभावसे मुक्त न हो सका तथापि वह वारनारके दृष्टिकोणको गहरा रंग देता है। वारनारकी तरह वर्ग-विभाजनके मूलमें वह अनिश्चित सम्पत्ति नहीं पाता, किन्तु उत्पादनके साधनोंके रूपमें ही सम्पत्तिको इसका मूल कारण समझता है। क्रान्तिके कारण पूंजीवादियोंका सामाजिक और राजनीतिक दृष्टिकोण बदलने लगा था। वारनार और सेन्ट साइमन उनके प्रतिनिधि मात्र थे। क्रान्तिका प्रभाव फ्रांसतक ही सीमित न रहा, जर्मनीमें भी वर्गसंघर्षकी दृष्टिसे सामाजिक विकासकी परीक्षा होने लगी। इंग्लैण्डमें यह बात किसीसे छिपी न थी कि दो वर्गोंके बीच राज्यशक्तिके लिए संघर्ष चल रहा है। सामाजिक दृष्टिकोणमें जो परिवर्तन हुआ उसका प्रभाव विज्ञानपर भी पड़ा। प्रकृतिपर भी विकासका सिद्धान्त लागू किया गया। औद्योगिक क्रान्तिके कारण इंग्लैण्ड और फ्रांसमें विज्ञानकी वृद्धि हुई और राजनीतिक प्रश्नोंका तात्कालिक उत्तर देना पड़ा। जर्मनी आर्थिक क्षेत्रमें पिछड़ा हुआ था। राजनीतिक दृष्टिसे वह बढ़ा हुआ था कि एकता अभीतक कायम नहीं हुई थी, अभी वहां क्रान्ति होनेको थी और पूंजीवादी-वर्ग आगे चलकर राजनीतिक दृष्टिसे कमजोर पाया गया। वहाँ अलबत्ता व्यावहारिक झुकाव न था बल्कि अब भी आदर्शवाद-का जोर था। वहाँ विकास और क्रान्तिके नवीन विचार इस सूक्ष्म दार्शनिक रूपमें देखे और परखे गये। विकासके क्रमका अन्वेषण आगे चलकर जर्मनीमें भी हुआ, किन्तु वही आदर्शवादी दर्शनके रूपमें, वारनारने द्वन्द्ववाद (dialectic) का जिक्र सरसरी तौरपर ही किया था, किन्तु जर्मनीके दार्शनिकोंने उसको विकसित रूप दिया।[1]

फ्रांसकी क्रान्तिके दिनोंमें तथा उसके १० वर्षके बादके जमानेमें पूंजीवादी सामाजिक और ऐतिहासिक विचार-पद्धति अपनी चोटीतक पहुँच गयी थी। यही वह जमाना था जब ऐतिहासिक भौतिकवादकी मुख्य दलीलोंकी चर्चा हवामें थी। इसी सिद्धान्तको विकसित कर मार्क्सने पीछेसे अपनी पद्धति गठित की थी।

इसलिए यह जरूरी था कि हम दिखलाते कि पूंजीवादी विचारशैली सदासे ऐसी बाँझ और बेदम न थी जैसा कि वह आज हो गयी है। एक समय था जब वह अपने अन्वेषणमें सामाजिक विकासके मौलिक नियमके करीब पहुँच गयी थी। मार्क्सने इस बातको स्वयं स्वीकार किया था। सन् १८५२ में उसने वेडमेयरको लिखा था—

"आधुनिक समाजमें वर्गोंके अस्तित्व तथा वर्ग-संघर्षकी खोजका श्रेय मुझको नहीं है। मुझसे बहुत पहले पूंजीवादी इतिहास-लेखकोंने इस वर्ग-संघर्षके ऐतिहासिक विकासका

---

१. 'संघर्ष' ३ मार्च, सन् १९४१ ई०

वर्णन किया था, और पूँजीवादी अर्थशास्त्रियोने वर्गोके आर्थिक ढाँचेका । मैंने जो कुछ नवीन किया वह यह था कि मैंने प्रमाणित कर दिया कि वर्गोका अस्तित्व उत्पादनके विकास-क्रमकी विशेष ऐतिहासिक अवस्थासे सम्बद्ध है, और वर्गसघर्ष निश्चित रूपसे श्रमजीवी वर्गके अधिनायकत्वमे परिणत होता है, और यह अधिनायकत्व अस्थायी है और तभीतक रहता है जबतक वर्गविहीन समाजकी स्थापना नही हो जाती ।"

इन नवीन सिद्धान्तोके कारण जो पूँजीवादी विचारकोको स्वीकृत न थे उन्हे अपनी जगहसे हटना पडा और वे फिर मानव-सिद्धान्तकी ओर झुके । कुछ हदतक पूँजीवादियोका खुदपसन्दीका स्वभाव और मनोवृत्ति उनको सामाजिक नियमोका स्पष्ट ज्ञान प्राप्त करने नही देती । किन्तु उनके दृष्टिकोणमे जो गहरा परिवर्तन उपस्थित हो गया है उसको समझनेके लिए महज इतना काफी नही है । इस परिवर्त्तनका मुख्य कारण यह था कि सामन्तशाहीपर विजय प्राप्त करनेके उपरान्त पूँजीपतियोको क्रान्ति या क्रान्तिके सिद्धान्तोकी जरूरत बाकी न रही । एक नये दुश्मन अर्थात् श्रमजीवी वर्गके मुकाबिलेमें आ जानेसे वर्गसंघर्षकी तरफ उसका रुख बदल गया । क्रान्ति और वर्गसघर्ष बिलकुल ठीक है जबतक वे पूँजीपतियोके स्वार्थोकी हिमायत करते है । किन्तु जब वे पूँजीपतियोका विरोध करने लगते है तब वे हानिकारक हो जाते है और उनका दबाना वाजिब हो जाता है । बारनार भी जो साधारणतया गहरी सूझका आदमी था अपने सिद्धान्तको छोड़नेको तैयार हो गया, जब एक बार क्रान्ति उसकी राजनीतिक योजनाकी सीमाका उल्लघन कर गयी । बारनार सम्पत्तिका जबर्दस्त समर्थक था, यही हाल गुइजो (Guizot), मिग्ने (Mignet) और थीरी (Thierry) नामक ऐतिहासिकोका है । जब मध्यम श्रेणीका विरोध करनेके लिए श्रमजीवी वर्ग आगे आया तब इतिहास-लेखकोके लिए वर्गसघर्ष एक शर्मकी बात हो गयी और सामाजिक शान्ति इनको अभीष्ट होने लगी । इतिहासके क्षेत्रमे बारनार अद्वैत दृष्टिका माननेवाला था, किन्तु गुइजोकी द्वैत दृष्टि थी । वह सामाजिक उन्नतिमे और व्यक्तिगत उन्नतिमे अन्तर करता था और इन दोनोको एक दूसरेसे स्वतन्त्र मानता था । वह इतिहासमे दैवी योजनाका हाथ देखने लगा था । विकासवाद जिसका १९वी शताब्दीके पूर्वार्धमे बडा जोर था, जाहिरा एक उन्नतिशील सिद्धान्त था, खासकर अपरिवर्तनशील मानव-स्वभावके विचारोके मुकाबिलेमे । किन्तु वास्तवमे विकासवादका उपयोग आरम्भसे ही प्रतिक्रियाके समर्थनमे होने लगा था, जहाँतक क्रान्तिकारी वर्ग सिद्धान्तके विरोधका सवाल था । जब क्रान्तिका मार्ग पूँजीपतियोके स्वार्थका सहायक न रह गया किन्तु उनके लिए खतरनाक हो गया तब यह कहा जाने लगा कि समस्त संसारकी उन्नति विकासद्वारा होनी चाहिये न कि क्रान्तिद्वारा ।

पूँजीवादी विज्ञानका मार्ग अब प्रतिक्रियाका मार्ग हो गया । उसने क्रान्तिकारी वर्ग सिद्धान्तको छोड़ दिया । सेन्ट साइमनकी सामाजिक शिक्षा और हेगेलकी दार्शनिक शिक्षा उस नये सम्मान और विचारके फल थे जो क्रान्तिके युगमे पैदा हुए थे, किन्तु इनकी भी द्वैत दृष्टि थी और यद्यपि यह नये दृष्टिकोणसे प्रभावित हुए थे तथापि यह पुराने तास्सुब और विचारशैलीसे अपनेको मुक्त नही कर सकते थे । सेन्टसाइमनका वर्गसिद्धान्त पिछली

शताब्दीके शुद्ध आदर्शवादसे मिश्रित था। हेगेलकी शिक्षामें अतीतका प्रभाव स्पष्ट पाया जाता है, क्योंकि वह आध्यात्मिक विकासके आदर्शवादी रहस्यमय प्रकारको विकासके द्वन्द्ववादसे मिलाती है। इस द्वैतभावके कारण इन दोनों शिक्षाओंका परिणाम एकसा ही हुआ। दोनो शिक्षाओके लाजिमी नतीजेसे जो घबराये नहीं वह समाजवादके सिद्धान्तोके माननेवाले हो गये। दूसरी ओर जिन पूंजीवादी शास्त्रियोंने वर्ग और द्वन्द्ववादसम्बन्धी शिक्षाका परित्याग किया उन्होंने इन शिक्षाओंका केवल अग ग्रहण किया जो आदर्शवादी था। मार्क्स साइमनवादियोंका उत्तराधिकारी था, जिन्होंने वर्तमान पूंजीवादी समाजकी शोषण परिक्रियाको समझ लिया था और जो उनके स्थानमे ऐसे सघ कायम करना चाहते थे जिनमे शोपणके लिए कोई स्थान न हो। किन्तु किस प्रकार ऐसे सघ कायम हो सकते है, इस सम्बन्धमे उनके विचार काल्पनिक थे। अपना उद्देश्य प्राप्त करनेके लिए उन्होंने श्रमजीवी वर्गकी ओर ध्यान न दिया किन्तु वे मनुष्यकी सदिच्छापर निर्भर करते रहे इस कारण उनकी शिक्षा काल्पनिक और निस्सार हो गयी।

जहाँ सेन्ट साइमनके अनुयायियोमे वामपक्षी समाजवादी थे वहां आगस्टाइन थीरी (Augustine Thierry) और आगस्टे कैन्टो (Auguste Counte) दक्षिण पूंजीवादी थे। थीरीके प्रतिगामी विचार हम ऊपर देख चुके है। कान्टे विधेयवाद (positivism) का सस्थापक था। उसकी विचारप्रणालीमें वर्गसिद्धान्त, संघर्प या क्रान्तिका उल्लेख भी नहीं है। उसके अनुसार समाजका आकार तदनुरूप विचारके विकासकी अवस्थापर निर्भर करता है। उसका कहना है कि वहुदेववादके अनुरुप सैनिकवाद, आध्यात्मिक अवस्थाके अनुरूप साम्राज्यवाशाहीके विविध स्थायी रूप और विधेयवाद (positivism) के अनुरूप व्यवसायवाद है।

अव सामाजिक घटनाओकी परीक्षाके स्थानमे मनोवैज्ञानिक (psychological) हेतुओकी छानवीन होने लगी। पूंजावादी ऐतिहासिकोमे यह परिवर्तन अहेतुक नही है। उनमेंसे एक भी यह वात न समझ सका कि सामाजिक मनोविज्ञान स्वयं सामाजिक परिस्थिति और सामाजिक जीवनकी घटनाओसे उत्पन्न होता है। वास्तविक जीवनकी घटनाओका अनुसन्धान न करना और समाजशास्त्र तथा इतिहासको मनोविज्ञानके दर्जेपर ले आना उस प्रयत्नका फल है जो वर्गसंघर्पके उल्लेखको इतिहाससे मिटा देना चाहता है। सामाजिक विकासके वास्तविक नियमोके अन्वेपणसे पूंजीपतियोका तो अव भला होनवाला था नही, इसलिए उन्हे अवसे सामान्य तर्कोसे ही काम लेना था जो कुछ भी न वतलावे न समझावे। इसीलिए सामाजिक श्रेणियोका विचार वहिष्कृत कर दिया गया, इतिहासमे आध्यात्मिक तत्वको जरूरतसे ज्यादा महत्व दिया जाने लगा, और ऐसे भी शास्त्री पैदा हुए जिन्होंने इतिहासकी सारी प्रक्रियाको कुछ महापुरुपोका खेल वताना शुरू किया जो अपनी इच्छाके अनुसार अद्भुत रचना-शक्तिके जरिये मानव-समाजके भाग्यका फैसला करते है।[१]

---

१. 'सघर्प' १० मार्च, सन् १९४१ ई०

मार्क्स और नियतिवाद

अपने मूलरूपमे नियतिवादका प्रश्न जीवस्वातन्त्र्यवादसे उत्पन्न हुआ प्रश्न था। क्या मनुष्य स्वतन्त्र कर्ता है अथवा वह अवश होकर कार्य करता है ?

कर्मस्वातन्त्र्यवादके विरोधमे यह तर्क उपस्थित किया गया था कि यदि सर्वशक्तिमान् ईश्वरने मनुष्यकी सृष्टि उसके स्वभावकी सारी आवश्यकताओको पूरा करके की है, तो मनुष्यको दण्ड देनेका उसको नैतिक अधिकार नही है। इसके उत्तरमे प्रतिपक्षी मानव-प्रतीति, मनुष्यके अनुभवका प्रमाण देते थे। वास्तविक जीवनमे मनुष्य जानते है कि वह विकल्पोमेंसे चुनाव करते है। वह यह भी जानते है कि मनुष्यकी सद्गति या दुर्गति होती है और प्रयोजन-विशेषके लिए बुद्धिपूर्वक यत्नशील होनेसे मौलिक सुधार भी होता है। कर्मस्वातन्त्र्यका केवल इतना अर्थ है कि मनुष्य दो विकल्पोमेंसे अपनी इच्छाके अनुसार किसी एकको चुननेकी योग्यता रखता है।

प्रतिपक्षका कहना है कि यदि कर्मस्वातन्त्र्य है, तो इसका अपनी परिधिमें इतना सामर्थ्य तो होना चाहिये कि वह सर्वशक्तिमान्के आशयको व्यर्थ कर दे। किन्तु उस अवस्थामे ईश्वरका सर्वशक्तिमत्त्व जाता रहेगा। चूँकि यह अचिन्त्य है और ऐसी कल्पना करना मनुष्यके लिए पाप है, अत मनुष्य स्वतन्त्र कर्ता नही है।

कालविन (Calvin) के कट्टर अनुयायियोका भी यही मत था कि मनुष्यका वास्तविक स्वातन्त्र्य किसी अशमे भी स्वीकार करना ईश्वरके सर्वशक्तिमत्वपर आक्रमण करना होगा। इससे विश्वकी धर्मताको भी व्याघात पहुँचेगा। जीव नही समझ सकता कि ईश्वरने क्यो किसीकी नारकीय गति आरम्भसे ही निश्चित की है और दूसरोके लिए भगवत्प्रसादवश मोक्ष नियत किया है। इससे केवल इतना ही सिद्ध होता है कि यह व्यवस्था दैवकृत है।

बहुत पीछे जब अपराध करनेवालेके साथ दयाका व्यवहार करनेकी माँग पेश की गयी तब यह विवाद पुन. उठ खड़ा हुआ। सुधारकोकी ओरसे इसपर जोर दिया गया कि चूँकि अपराधीका स्वभाव और चरित्र उसकी परिस्थिति तथा शिक्षा-दीक्षापर निर्भर करता है और वह उसके लिए उत्तरदायी नही है, अत बदला लेनेके भावसे उसको दण्ड देना निष्ठुर और बुद्धिके प्रतिकूल है। उनका कहना है कि मनुष्य सर्वथा वशगत गुण और परिस्थितिका फल है। वह अवश और असहाय है। परिस्थिति तथा वशके अनुसार ही उसका निर्माण होता है। जिस प्रकार घडीकी सुइयाँ अवश है उसी प्रकार मनुष्य अवश है।

कालविनके जिन अनुयायियोका इसके सदृश मत है उनमे और इन सुधारकोमे केवल इतना ही वैशिष्ट्य है कि जहाँ कालविनके अनुयायी मनुष्यका संचालन करनेवाली शक्तिको ईश्वर कहते है वहाँ यह सुधारक उसे प्रकृति, शिक्षा-दीक्षा या वशगत गुण या परिस्थिति कहते है। दोनो अवस्थाओमे मनुष्यकी कर्तृत्वशक्ति शून्यके समान हो जाती है और वाह्यशक्ति जो सचालन करती है अनन्त हो जाती है।

क्या मार्क्सको ऐसे विचारोके साथ कोई सहानुभूति थी ? उन्होने इन विचारोके

ऐतिहासिक महत्त्वको जाना, किन्तु साथ-साथ उन्होंने इनकी मर्यादा और भ्रान्तताको भी पहचाना, उन्होंने यह भी देखा कि इन मतोके प्रतिपक्ष भी समान रूपसे एकांगी और भ्रान्त है।

चाहे हम प्रतीतिके प्रमाणको अभ्रान्त माने और मनुष्यकी इच्छाको निर्विशेष और परिपूर्ण माने अथवा प्रतीतके प्रमाणको भ्रान्त मानें, फल एक ही होता है। पहले पक्षमे मानवी इच्छा, दूसरे पक्षमे ईश्वर, परिस्थिति आदि अनन्तका स्थान लेती है तथा इनका प्रतिपक्ष शून्यका स्थान लेता है। दोनो अवस्थाओमे हम प्रधान प्रश्नकी अवहेलना करते है, क्योकि हम अकारण ही प्रतिवादकी एक कोटिको दवा देते है और यही मुख्य प्रश्न है, जिसका हमको विचार करना है। यह मानवी इच्छा और दैवका प्रतिवाद है।

दार्शनिक, नीतिज्ञ तथा समाजशास्त्रविद् चाहे विविध रूपसे इस समस्याको हल करनेकी चेष्टा करे तथापि सबका इसमें ऐकमत्य होगा कि एक शृङ्गको ध्वस्त करके असामंजस्यसे भागना अनुचित होगा। चाहे आप मानवेच्छाके अस्तित्वका अथवा सत्ताका प्रतिपेध करे—चाहे उसे ईश्वर कहे या परिस्थिति या अन्य कुछ, प्रश्नका विवेचन नही होता।

मार्क्सने स्पष्ट देखा कि प्रश्नका ठीक रूप नही है। वास्तविक जीवनकी भूमिमे मनुष्य और उसकी परिस्थितिके बीच क्रिया प्रतिक्रिया का सम्बन्ध होता है। परिस्थितिका सर्वशक्तिमत्त्व स्वीकार करनेका अर्थ मनुष्यका प्रतिपेध करना है। मानवी इच्छाकी निर्विशेष निरपेक्षता स्वीकार करना मनुष्यका सर्वशक्तिमत्त्व स्वीकार करने और परिस्थितिका प्राय. अभाव माननेके वरावर है। युक्तियुक्त फल प्राप्त करनेके लिए दोनोके सक्रिय अन्योन्य सम्वन्धको समझना होगा।

हाब्ज (Hobbes) तथा अन्य भौतिकवादियोने पहले ही देख लिया था कि मानवी इच्छा-शक्तिमे निर्मर्यादित "स्वतन्त्रता" आरोपित करना सदोष है। शक्ति और स्वतन्त्रता अभिन्न है। प्रत्येक वस्तु उसी हदतक स्वतन्त्र है जिस हदतक उसको कार्य करनेकी शक्ति है, किन्तु प्रत्येक वस्तुकी उतनी ही शक्ति होती है और हो सकती है, जितनी शक्ति उसकी प्रकृति रख सकती है।

वृक्ष अपनी वृद्धि करनेमे स्वतन्त्र है, किन्तु इसी शर्तके साथ कि उसकी परिस्थितियाँ वृद्धिके अनुकूल है। पुन: यह उसी तरह और उसी परिमाण मे वढ़ सकता है, जितना उसकी प्रकृतिके लिए सम्भव है। यह स्पष्ट है कि वृक्षमे पखने नहीं उग सकते, इसकी स्वतन्त्रता उसको नही है।

'मनुष्य अपनी परिस्थितिके अधीन है' इस वादका क्रान्तिकारी उपयोग तव था जव इसका उपयोग ऐसे राजाओके विरुद्ध किया जाता था, जो प्रजाके साथ अन्याय और अत्याचारका व्यवहार करते थे और जो यह कहकर अपनी वर्बरताका समर्थन करते थे कि साधारण जन इस योग्य नही है कि उनको स्वतन्त्रता दी जाय। प्रजाका शोषण करनेवालोके विरुद्ध भी यह वाद उपयोगी सिद्ध होता था, जो यह तर्क करते थे कि यह मूर्ख अपने पैसों और अवकाशका सदुपयोग करना नही जानते और इसलिए इनकी नितान्त आवश्यकताओंकी

पूर्तिके अतिरिक्त इनको पैसा नही देना चाहिये और इनको अवकाश भी नही मिलना चाहिये ।

किन्तु यह वाद भयावह हो जाता है जब यह मर्यादाका उल्लंघन करता है । पहले तो इस वादसे अत्याचार करनेवालो और प्रजाका शोपण करनेवालोको अच्छा वहाना मिल जाता है, फिर इससे दूसरा प्रश्न उत्पन्न होता है । इसका इलाज क्या है ?

फाएरवाख (Feuerbach) पर मार्क्सका जो तीसरा वाद (thesis) है उसका इसी प्रश्नसे सम्वन्ध है ।

"परिस्थितियोके वदलने और शिक्षाके वारेमे जो भौतिकवाद है वह भूल जाता है कि मनुष्य परिस्थितियोको वदलता है और यह कि शिक्षककी स्वयं शिक्षा होनी चाहिये ।"——मार्क्स

यहाँ रावर्ट ओवन (Rebert Owen) से सकेत है । उनका यह दावा था कि "समुचित उपायोंका अवलम्ब लेकर अच्छे-से-अच्छा और वुरे-से-वुरा मानव-चरित्र समाज या ससारको पेश किया जा सकता है ।" उनका यह भी कहना था कि यह उपाय विद्यमान है और यदि वह लोग जिनका समाज मे प्रभाव है चाहे तो इनका उपयोग कर सकते हैं । किन्तु इससे यह परिणाम निकलता था कि यह प्रभावशाली लोग इन उपायोसे काम नही लेते और न लेगे । इनका स्वभाव और चारित्र्य ही ऐसा वन गया है जो इनको दूसरी ओर ले जाता है ।

इससे यह पहेली निकली कि रावर्ट ओवनका 'चारित्र्य' कहाँसे आया, यदि वह उन्ही परिस्थितियो और शिक्षा के फल हैं । यदि उनका स्थान उस वर्गमे है जो प्रभाव रखता है, तो उनका स्वभाव और उनकी प्रवृत्ति दूसरोसे भिन्न क्यो है और यदि वह उस वर्गके हैं, जिसके स्वभावको वदलनेकी जरूरत है, तो उन्होने ऐसे स्वभावको कहाँसे पाया, जिसको पुष्ट करनेकी आवश्यकता है, न कि वदलने की ?

मार्क्सने इसका यह हल निकाला कि मनुष्य और परिस्थितियाँ दोनो परिवर्तनशील और अस्थिर है तथा दोनोका सदा अन्योन्य सक्रिय विरोध होता रहता है और इससे वृद्धि-विकास होता है:—

"इतिहासकी प्रत्येक मजिलपर हम एक भौतिक परिणाम पाते हैं । यह उत्पादक शक्तियोका जोड है; यह व्यक्तियोका प्रकृतिके साथ सम्वन्ध तथा व्यक्तियोका अन्योन्य सम्वन्ध है, जिसका इतिहासने निर्माण किया है । यह सम्वन्ध क्रमागत है । यह भौतिक परिणाम उत्पादक शक्तियोका समूह, पूंजीके विविध रूप तथा विविध अवस्थाएँ हैं । एक ओर प्रत्येक नयी पीढी इस समूहमे परिवर्तन करती है और दूसरी ओर यह समूह उस पीढीके जीवनकी अवस्था निर्धारित करता है तथा उसको निश्चित और विशेष स्वभाव प्रदान करता है । जिस प्रकार मनुष्य परिस्थितियोको वनाता है उसी प्रकार परिस्थितियाँ मनुष्यको वनाती हैं ।"—(German Ideology)

मार्क्सके कैपिटल (Capital, Vol. I, Chap. viipp 156-7) मे भी इन परस्पर-विरोधी सम्वन्धका इसी प्रकार उल्लेख है :—

"श्रम एक प्रक्रिया है जिसमे प्रकृति और मनुष्य दोनों हिस्सा लेते हैं। इस प्रक्रियामें मनुष्य स्वत· उन भौतिक प्रतिक्रियाओंका जो उसके और प्रकृतिके बीच होती हैं आरम्भक होता है और वह उनका नियन्त्रण और नियमन करता है। वह स्वयं प्रकृतिकी एक शक्ति है पर वह अपनेको प्रकृतिके विरुद्ध खडा करता है। वह अपने हाथ-पैर हिलाता है तथा दिमाग को सक्रिय बनाता है, जिसमे वह अपनी आश्यकताओंके अनुरूप प्रकृतिके उत्पादकोंको आत्मसात् कर सके। वाह्य ससारपर इस प्रकार क्रिया कर और उनको वदलकर वह अपने स्वभावको भी वदलता हैं। वह अपनी प्रसुप्त शक्तियोकी वृद्धि करता हैं और उनको अपने अधीन कर स्वेच्छाके अनुसार काम करनेके लिए विवश करता है।"

इन दो अवतरणो से यह स्पष्ट है कि मार्क्सवाद नियतिवाद (Deter minism) नही है। यह कहना कि मनुष्य प्रकृतिको वदलता है, अपने स्वभावको वदलता हैं और अपनी प्रसुप्त शक्तियोका विकास करता है, इस कथनका उल्टा है कि मनुष्य घड़ीकी सुइयो-की तरह अवश है। साथ-ही-साथ यह कहना कि मनुष्य यह सव तभी कर सकता हैं जव वह प्रकृतिपर सक्रिय प्रतिक्रिया करता है, यह कहना कि वह परिस्थितियोको उसी हदतक वना सकता है, जिस हदतक परिस्थितियाँ मनुष्यको वनाती हैं, यह माननेके वरावर है कि नियतिवादमे भी सत्यका अश है।

मार्क्सवाद नियतिवादके महत्त्वपूर्ण और यथार्थ अंशका ग्रहण करता है। सक्षेपमे इतिहासका जो वाद मार्क्स एगल्सका है वह एक आकारमे नियतिवादी है, किन्तु केवल इस शर्तपर कि वह साथ-ही-साथ अनियतिवादी भी है, अर्थात् वह आध्यात्मिक और यान्त्रिक प्रश्नका सर्वथा अतिक्रमण करता है और विरोध विकासद्वारा वस्तुत· भौतिक हो जाता है।

यही वात आर्थिक आकारोके लिए भी सच है। मार्क्स एंगल्सने यथार्थ देखा कि समस्त सामाजिक क्रियाके लिए आर्थिक क्रियाका पूर्व होना नितान्त आवश्यक है, किन्तु उन्होने एक क्षणके लिए भी इसका प्रतिपेध करनेकी कल्पना नही की थी कि अन्य क्रियाओंका सद्भाव है और अन्तिम परिणामके उत्पादनमे यह भी हेतु है। इसके विपक्षमे उन्होने देखा कि आर्थिक क्रियाका एक मुख्य उद्देश्य यह है कि ऐसी योग्यता प्रतिपादित की जाय जिससे आर्थिक क्रियाकी आवश्यकता चाहे अल्पकालके लिए ही क्यो न हो, न रहे। उन्होने यह भी देखा कि आर्थिक क्रियाओका महत्त्व इसमे है कि वह आर्थिक क्रियाओसे इतर क्रियाओकी विविधता और इयत्ताको उत्तरोत्तर वढाती जाती हैं तथा सामाजिक और राजनीतिक चेष्टाएँ और प्रयत्न वहुधा आर्थिक परिवर्तनको उत्तेजन देकर आर्थिक क्रियाओके विकासको उत्तेजित करते है और उनके स्वरूपको निश्चित करते हैं।

सक्षेपमे मार्क्स एगल्सका वाद न शुद्ध आर्थिक है और न आर्थिकसे भिन्न है। यह दोनो है और इसलिए द्वन्द्वात्मक (Dialectical) है।

एंगल्सने स्पष्ट रूपसे नियतिवादका प्रत्याख्यान किया है। मार्क्स और एंगल्सने स्पष्ट रूपसे इसका प्रतिपेध किया है कि उन्होने कभी भी यह कहा है कि ऐतिहासिक महत्त्वके सम्बन्ध और शक्तियाँ केवल आर्थिक होती हैं। जिस वादकी यह प्रतिज्ञा है

कि केवल आर्थिक तथ्य और शक्तियोंका ही मानव समाजकी ऐतिहासिक उत्तरोत्तर उन्नतिपर वास्तविक प्रभाव पडता है, उसी वादके लिए हम सचमुच 'आर्थिक नियतिवाद' इस आख्याका व्यवहार कर सकते है। इसलिए यह सिद्ध होता है कि यह मार्क्स और एंगल्सका सिद्धान्त नही था।[१]

---

१. टी० ए० जैक्सनके एक लेखके आधारपर।

पाँचवाँ अध्याय

शिक्षा

पाँचवाँ अध्याय

युवकोंका समाजमें स्थान और भारत

सामान्यत' उन समाजोमे, जहाँ स्थिरता ग्रा गयी है ग्रौर जहाँ विकासकी गति अत्यन्त मन्द है, वृद्धोकी सबसे अधिक प्रतिष्ठा होती है । ऐसे समाजमे वृद्धोका ही नेतृत्व होता है ग्रौर उनका ग्रनुभव ही समाजका मुख्य ग्राधार होता है । चीन ग्रौर भारतके समाज इसके उदाहरण है । हमारे पूर्वजोका कहना है कि वह सभा ही नही है जहाँ वृद्ध नही है । ऐसे समाज की शिक्षा-प्रणालीमे लोक-परम्पराका वडा महत्त्व होता है । वहाँ शिक्षाके नये प्रकारोकी परखका प्रश्न ही नही उठता । जिनकी सस्कृति ग्रौर जिनका इतिहास प्राचीन है, उनकी यही कथा है । जवतक समाजके ग्राधारभूत मौलिक सिद्धान्तोके परिवर्तन का प्रश्न नही उठता ग्रौर जवतक समाज के ग्रार्थिक ढाँचेमे क्रान्तिकारी परिवर्तन नही होता, तवतक यही ग्रवस्था वनी रहती है ।

किन्तु जव समाजकी ऐसी ग्रवस्था हो जाती है कि उसको जीवित रहनेके लिए ग्रपनी पुरानी पद्धतिको वदलनेके लिए विवश होना पडता है, तव उसके सामाजिक ग्रौर ग्राध्यात्मिक मूल्य भी वदलने लगते है । नूतन समाजके ग्रारम्भक प्राय युवक ही होते हैं, कम-से-कम उनके सहयोगके विना नूतन समाजकी प्रतिष्ठा नही होती । इसका कारण यह है कि युवकमे साहस, शौर्य, तेज ग्रौर त्यागकी भावना प्रवल होती है । वह ग्रभी ससारके कीचडमे नही फँसा है, इसलिए वह वस्तुस्थितिकी भी उपेक्षा कर ग्रादर्शके लिए ग्रात्म-वलिदान करनेके लिए उद्यत हो जाता है। इसका एक कारण यह भी है कि उसकी ग्रभी कोई ऐसी दृष्टि नही वनी है जो उसको समाजकी नवीन ग्रावश्यकताग्रोके समझनेसे रोके । इसके विपरीत इन ग्रावश्यकताग्रोका उसे विशेष ग्रनुभव होता है । ग्रतीतसे नाता तोडनेमे उसे वह कठिनाई नही होती जो वृद्धोको होती है ।

जिस समाजमे ऐसी ग्रवस्था उत्पन्न होने लगती है, वहाँ नये समाजका उपक्रम करनेके लिए युवकोका ग्रान्दोलन ग्रारम्भ हो जाता है ग्रौर युवक ग्रपनी सस्थाएँ वनाने लगते है । जवतक ऐसी ग्रवस्था उत्पन्न नही हो जाती, तवतक किसी समाजमे युवक-ग्रान्दोलनकी सृष्टि नही होती । युवक-ग्रान्दोलनका होना, न होना इसपर भी ग्राश्रित है कि उस जाति-विशेषका क्या स्वभाव है ग्रौर उस समाजकी परम्परा क्या रही है । यदि लोग समयसे सुधार करनेके ग्रभ्यस्त है ग्रौर सकटकी ग्रवस्थाको टालना जानते है तो युवक-ग्रान्दोलन कदाचित् न भी हो । किन्तु जो जाति क्रान्तिप्रिय है ग्रौर जहाँके समाज-नेता काफी दूरदर्शी नही है तथा ग्रपने कट्टरपनके कारण समझौतेके लिए तैयार नही हो पाते, वहाँ युवक-ग्रान्दोलन ग्रौर सगठनका होना ग्रनिवार्य हो जाता है ।

साधारणत समाजको नवयुवकोकी प्रसुप्त शक्तियोका उपयोग करनेकी ग्रावश्यकता

नही पडती । वृद्ध होनेपर वह पुरानी पीढीका स्थान लेते हैं । किन्तु जव किसी समाजके जीवन-मरणका प्रश्न उपस्थित हो जाता है, जैसा कि युद्धके समय होता है, तव युवकोकी प्रसुप्त शक्तियोका उपयोग किये बिना संकट टल नहीं सकता । जव कभी कोई आकस्मिक संकट आ जाता है अथवा समाजको नवीन दृष्टिकी आवश्यकता होती है, तव युवकोके शक्ति-भण्डारका उपयोग करना ही पड़ता है ।

आज पुराने युगका अन्त हो रहा है और हम एक नवीन युगमें प्रवेश कर रहे हैं, सारे संसारका यही हाल है । यह संक्रमण-काल हे । युद्धके पश्चात् जीवनके मूल्य सर्वत्र वदल रहे हैं । पुरानी सस्थाएँ जीर्ण-शीर्ण हो रही हैं और उनके आधारभूत विचारोपरसे लोगोकी आस्था उठती जा रही है । समाजको एक नये दर्शनकी आवश्यकता है, जो उसका पथ-प्रदर्शक हो ।

उद्देश्यकी आवश्यकता

यो तो प्रत्येक समाज नवीन परिस्थितिके अनुकूल अपना आचरण और व्यवहार बदलनेका प्रयत्न करता है, किन्तु जवतक किसी महान् उद्देश्यकी गम्भीर अनुभूति नहीं होती, तवतक समाजमे सामञ्जस्य और स्थिरता नही आती और उसकी समग्रता नष्ट होने लगती है । इस नवीन दर्शनमे नवयुवकोकी ही आस्था होती है । उन्होंने ही इन नवीन मूल्योकी सृष्टि की है और उन्हीको उनके अनुसार जीवन व्यतीत करना है ।

यही कारण है कि हम सर्वत्र देखते हैं कि नवयुवक समाजका नेतृत्व करने आगे आ रहे है । नव समाजमे, जिसका इतिहास पुराना नही है, नवयुवकोका स्वागत होता है और वह शीघ्र ही अधिकारारूढ हो जाते है, किन्तु पुरातन समाजमे वृद्धोका वही पुराना स्थान अव भी चला आता है । उसमे युवकके अधिकार स्वीकार नही किये जाते ।

इसलिए नवयुगके लानेमे देर होती हैं । युवकोको अपनी कल्पनाके वलसे नयी नीति वनानेका अवसर नही मिलता । अतः उनका असन्तोप वढता है और वह अपनी शक्तियों-का सदुपयोग रचनात्मक कार्यमे न कर, टीकाटिप्पणी और आलोचनामे ही उन्हे नष्ट कर देते है । इससे समाजका अहित ही होता है ।

यह ठीक है कि पुरानी परम्पराकी रक्षाके लिए वृद्धोका रहना भी आवश्यक है, किन्तु उनको यह स्वीकार करना चाहिये कि अव समय आ गया है जब उन्हे युवकोको जिम्मेदारी-के पदोपर वैठाना चाहिये ।

अपने देशमे यह वात अभीतक पूरी तरह नही मानी गयी है, किन्तु जवतक हम युवकों-का अधिकार स्वीकार न करेगे, तवतक नये समाजकी रचनाका काम सफल न होगा । वर्माके मन्त्रिमण्डलमे प्राय युवक ही है और आगसानकी अवस्था केवल वत्तीस वर्षकी थी । किन्तु हमारे यहाँके केन्द्रीय मन्त्रिमण्डलमे एक भी ऐसा व्यक्ति नही है, जिसे युवक कहा जा सकता है । काग्रेसकी वर्किंग कमेटीका भी यही हाल है । पण्डित जवाहरलालने अपने सभापतित्वमे तीन-चार युवकोको स्थान दिया था, किन्तु उनके हट जानेके वाद वे लोग भी हटा दिये गये । हमारे पुराने नेताओको युवकोके साथ मिलकर काम करनेमे

असुविधा होती है, इसमे केवल एक अपवाद हैं—पण्डित जवाहरलाल । जवाहरलालजीने नयी नीतिका सूत्रपात किया था और वह सदा इस वातको अनुभव करते है कि युवकोके अधिकारको स्वीकार करना चाहिये, किन्तु कोई परम्परा नही वन पाती ।

यदि युवकोका अधिकार स्वीकार कर लिया जाय तो इसके कई लाभ है । पहली वात तो यह समझनेकी है कि जो आज अधिकारारूढ हैं उनका कर्त्तव्य है कि वे अपने उत्तराधिकारियोको आजसे तैयार करें । अन्यथा इन वृद्धोके हट जानेपर उनकी जगह लेनेवाले योग्य अनुभवी व्यक्ति न मिलेगे । दूसरी बात यह है कि भारतके स्वतन्त्र होनेपर जो वड़ी जिम्मेदारी देशपर आ गयी है, उसको सहन करनेकी शक्ति कुछ वृद्धोको छोडकर अन्य वृद्धोमे नही है । पुन नूतन समाजकी रचनाका और प्रचलित सामाजिक पद्धतिको तोड़नेका युवकमे सामर्थ्य है । जो समाज नया उपक्रम करना चाहता है और जिसको क्रान्तिकारी परिवर्तनकी आवश्यकता है, उसको युवकका सहयोग अवश्य चाहिये और यह सहयोग युवकके अधिकारको स्वीकार करके ही प्राप्त हो सकता है ।

स्वतन्त्र राष्ट्रके विद्यार्थियोको हडताल करते हम नही सुनते । उनको इसकी आवश्यकता नही होती । परतन्त्र राष्ट्रके विद्यार्थी राजनीतिक आन्दोलनोमे खूब भाग लेते है । उनको समय-समयपर प्रदर्शन और हडताल करनी पडती है, राजाके अधिकारियों-के साथ सघर्ष होनेसे उनको गोली भी खानी पडती है । ऐसे वातावरणमे रहनेसे उनकी एक विशेष प्रकारकी मनोवृत्ति वन जाती है ।

किन्तु जब राष्ट्र स्वतन्त्र हो जाता है, तब यही मनोवृत्ति हानिकारक सिद्ध होती है । राष्ट्रके सचालकोका कर्त्तव्य है कि वदली हुई परिस्थितिमे वे ऐसे विधानो और उपायोका अवलम्व ले जिनसे युवकोकी मनोवृत्ति वदले और वह अपनी शक्तियोका विनियोग रचनात्मक कामोमे करे । पहले तो पुराने अभ्यासको छोडना कठिन होता है और दूसरे जव समाजके नेता पुरानी वृत्तिको वदलनेका प्रयास नही करते, तब कठिनाई और वढ़ जाती है । पुरानी मनोवृत्तिको वदलनेका उपाय युवकके अधिकारको स्वीकार करना है । यदि आजकी पीढी आनेवाली पीढीकी शिक्षा-दीक्षाका भार अपने ऊपर न लेगी और उसको विकासका अवसर न देगी, तो वह इतिहासके सम्मुख दोपी ठहरायी जायेगी ।

राष्ट्र-निर्माणका कार्य अभी आरम्भ भी नही हुआ है । प्रत्येक दिशामे हमको प्रगति करनी है । शताब्दियोका रास्ता थोडे वर्पोमे तय करना है । लोकतन्त्रकी स्थापनाके लिए सार्वजनिक शिक्षाकी आवश्यकता है । इसके लिए अस्पृश्यताका निवारण और जातपातके कठोर वन्धनोको तोडना भी जरूरी है । लोकतन्त्र अभ्यासका विषय है, केवल लोकतन्त्रका पाठ पढनेसे और उसका नारा लगानेसे उसकी स्थापना नही होती ।

इसलिए सहयोगका प्रचार कर सामाजिक सम्वन्धोको वदलना तथा नयी आर्थिक पद्धतिको प्रतिष्ठित करना नितान्त आवश्यक है । सुन्दर भविष्यके निर्माणके लिए आज सर्वसाधारणसे त्यागकी अपील करनी है, किन्तु जवतक कोई ऐसा उद्देश्य समाजके सम्मुख नही रखा जाता जिसके लिए लोग श्रम करे, तवतक त्यागकी आशा करना व्यर्थ है ।

इन सब कामोके लिए युवककी आदर्शप्रियता, उसकी निर्भीकता, उसका साहस और उसकी लगन चाहिये । यह तभी हो सकता है जब हम युवकके अधिकारको स्वीकार करें ।

यदि हम इस विषयमे अपने कर्त्तव्यका पालन न करेगे तो भय है कि हमारा युवक कही गैरजिम्मेदार न हो जाय ।

विद्यार्थी समाजकी उच्छृखलता विदेशी शासनसे लडनेका एक अनिवार्य फल है । एक अर्थमे कांग्रेस-कार्यकर्त्ता भी उच्छृखल थे । किन्तु स्वतन्त्रताकी जो कीमत हमको अदा करनी थी, उसमे यह भी शामिल था ।

युवकको अधिकार दो

लेकिन अब समय आ गया है जब विद्यार्थियोको आत्म-शासनके महत्त्वको समझना चाहिये । आजकी उच्छृखलताके बदलेमे कोई सार वस्तु नही मिलती । इतना ही नही, उससे समाजका अनिष्ट ही होगा । यह उच्छृखलता युवकके अधिकारको स्वीकार करनेसे ही दूर होगी ।

इस सम्बन्धमे एक बात और विचारनेके योग्य है । युवक शक्तिका भण्डार होता है । जिस परिस्थितिमे रहता है उससे वह अत्यन्त प्रभावित होता है । वह भावप्रवण होता है तथा शूरता दिखानेके किसी अवसरको वह छोडना नही चाहता । यदि उसका समाज स्वतन्त्र होनेकी चेष्टा कर रहा है, तो वह उसीमे लग जाता है और यदि उसका समाज साम्प्रदायिक युद्धमे लगा है, तो वह उसका अगुआ बनना चाहता है । यदि इस दृष्टिसे देखा जाय, तो युवक न प्रगतिशील है और न प्रतिक्रियावादी । वह किसी भी नये काममे लगाया जा सकता है । शर्त यह है कि उसकी भावना पूरी होनी चाहिये और उसे कामका मौका मिलना चाहिये ।

इसलिए यदि हम युवककी शक्तिका सदुपयोग नही करेगे तो दूसरे उसका दुरुपयोग करेगे । फासिस्ट राष्ट्रोने युवककी शक्तिके महत्त्वको समझा और अपने उद्देश्यकी पूर्तिके लिए उसका दुरुपयोग किया ।

क्या हम राष्ट्र-निर्माणके कार्यके लिए युवकोंके अधिकारको स्वीकार नही करेगे ? मैं यह जानता हूँ कि प्रत्येक अधिकारके साथ कर्त्तव्य होता है । किन्तु आजकी परिस्थितिमें अधिकारको स्वीकार करके ही कर्त्तव्यकी बात कही जा सकती है । स्थूल सत्य यह है कि आजकी किसी भी समस्याका समाधान युवकोंके सहयोग बिना समुचित रूपसे नही हो सकता ।[1]

विद्यार्थियोंका राजनीतिमें स्थान

हमारे देशमे विद्यार्थियोकी अनेक सस्थाएँ है । इनमेसे दोको छोडकर शेष सब साम्प्रदायिक है । दो सस्थाएँ जिनमे सब सम्प्रदायके विद्यार्थी सम्मिलित हो सकते है

१. 'जनवाणी' ७ जनवरी १९४९ ई०

'स्टूडेण्ट्स काग्रेस' और 'स्टूडेण्ट्स फेडरेशन' है। पहली राष्ट्रीय काग्रेसकी समर्थक है और इसका विद्यार्थी-समाजपर सबसे अधिक प्रभाव है। दूसरी कम्युनिस्टोके प्रभावमे है, किन्तु कम्युनिस्टोकी राष्ट्र-विरोधी नीति और अवसरवादिताके कारण उसका प्रभाव विलुप्त हो गया है। सम्प्रदायवाद हमारे देशका एक विशेष रोग है। इसलिए साम्प्रदायिक राजनीतिक संस्थाओके साथ-साथ विद्यार्थियोकी भी साम्प्रदायिक सस्थाएँ सगठित हो गयी है, किन्तु इनका सगठन क्षीण और दुर्बल है। इन सस्थाओमे लीगी विद्यार्थियोकी सस्थाकी प्रधानता है, पर यह भी अभीतक समुचित रूपसे सगठित नही हो पायी है। राष्ट्रीय मुसलिम विद्यार्थियोकी भी अपनी सस्था हे। यह लीगी विद्यार्थियोकी संस्थाका जवाब है। अन्य साम्प्रदायिक सस्थाएँ काग्रेसके विरुद्ध नही है, किन्तु साम्प्रदायिक प्रश्नोके सम्बन्धमे उनकी दृष्टि सकुचित है, राष्ट्रीय नही है। इस प्रकार केवल लीगी और कम्युनिस्ट विद्यार्थियोकी सस्थाएँ काग्रेस-विरोधी है। इस समय लीग, कम्युनिस्ट पार्टी और डा० अम्वेडकरकी शिड्यूल्ड कास्ट पार्टीका गठ बन्धन-सा हो गया है। इस सयुक्त मोर्चेका एकमात्र आधार काग्रेसका विरोध करना है, अन्यथा इन विविध दलोके उद्देश्य और उनकी कार्यप्रणाली असमान हे। सयुक्त मोर्चेका यह एक नवीन, विकृत और निकृष्ट रूप है।

यूरोपके देशोमे राजनीतिक दलोसे सम्बद्ध विद्यार्थियोकी संस्थाएँ होती है। किन्तु प्रत्येक दलसे सम्बद्ध विद्यार्थी-सस्थाका होना आवश्यक नही है। प्राय॰ कम्युनिस्ट और सोशलिस्ट ही अपने विद्यार्थी सदस्योके लाभके लिए ऐसी स्स्था वनाते है। अन्य दलोमे इस ओर उपेक्षाका भाव देखा जाता है। जहाँ कही कम्युनिस्ट वहुत कमजोर होते है, वहाँ अन्य किसी विद्यार्थी-सस्थामे घुस जाते है और धीरे-धीरे विविध ढगसे उसको अपने अधिकारमे ले आते है। ऐसा इग्लैण्डमे भी हुआ। वहाँके मजदूर दलकी ओरसे सन् १९३० के लगभग विश्वविद्यालयोके उन विद्यार्थियोके लिए, जो मजदूर दलकी राजनीति स्वीकार करते थे, युनिवर्सिटी लेवर फेडरेशन नामकी एक सस्था स्थापित की गयी थी। किन्तु मजदूर दलने इस सस्थामे काफी दिलचस्पी नही ली और इस कारण कम्युनिस्टोको उसपर अधिकार जमानेका सुयोग मिला। गत महायुद्धके प्रारम्भ होनेपर कम्युनिस्टोके प्रभावसे इस संस्थाने सन् १९४० मे जर्मनीके विरुद्ध युद्ध प्रारम्भ करनेकी नीतिकी निन्दा की और जर्मनीसे सुलह करनेकी मॉग पेश की। उस समय आर्थर ग्रीनउड फेडरेशनके सभापति थे। ज्यो ही उनका ध्यान उक्त प्रस्तावकी ओर आकृष्ट किया गया, त्यो ही उन्होने अपने पदसे इस्तीफा दे दिया। इसपर सम्मेलनने यह घोपित किया कि मिस्टर ग्रीनउड तथा मजदूर नेता युद्धका समर्थन कर समाजवाद तथा मजदूर वर्गके हितोके साथ दगा कर रहे है। इस सम्मेलनके वाद ही मजदूर दलसे फेडरेशनका सम्वन्ध विच्छिन्न हो गया। गत सम्मेलनमे उसका नाम 'स्टूडेण्ट लेवर फेडरेशन' रखा गया। नाम वदलनेका कारण यह वताया गया कि विश्वविद्यालयोके अतिरिक्त ट्रेनिङ्ग कालेजोके विद्यार्थियोको भी सम्मिलित करना है किन्तु वास्तविक कारण यह था कि अपनी युद्धकालीन नीतिके

कारण संस्था बदनाम हो गयी थी। इस वर्ष इस संस्थाने मजदूर दलसे पुनः सम्बद्ध होनेकी प्रार्थना की, पर यह प्रार्थना अस्वीकृत हुई।

इसी प्रकार हमारे देशमे भी गत युद्धके आरम्भ होनेपर स्टूडेण्ट्स फेडरेशनमे फूट पड़ गयी थी। यहाँ राजनीतिक दलोसे सम्बद्ध विद्यार्थी-सस्थाएँ नही थी। विद्यार्थी-समाजकी एक ही प्रधान सस्था थी। परतन्त्र देशमे साम्राज्यवादका सफल विरोध करनेके लिए विविध वर्गोंका सयुक्त मोर्चा आवश्यक होता है। काग्रेस ही यह संयुक्त मोर्चा है। इसके भीतर रहकर ही भिन्न-भिन्न विचारधाराके दल संयुक्त मोर्चेको पुष्ट और सबल बनाते है। ऐसी अवस्थामे काग्रेसके भीतर रहनेवाले राजनीतिक दल अलग-अलग विद्यार्थी-संस्थाओका निर्माण नही करते। कांग्रेसके समान वह सब एक ही विद्यार्थी-सस्थामे रहकर काम करते है। किन्तु मुसलिम लीगकी घातक नीतिके कारण यहाँ साम्प्रदायिक विद्यार्थी-सस्थाएँ बनने लगी। लीगने यह कार्य आरम्भ किया और उसकी देखादेखी अन्य सम्प्रदायोने भी अपनी-अपनी अलग संस्था बना डाली। युद्धके पहले कम्युनिस्ट भी औरोके साथ एक ही सस्थामे काम करते थे। किन्तु, क्योकि वह अपनेको क्रान्तिका एक मात्र ठेकेदार समझते है, इसलिए जब कभी उनको क्रान्तिकी सम्भावना प्रतीत होती है, तब वह उन सब सस्थाओपर एकाधिकार प्राप्त करनेकी चेष्टा करते हैं, जिनका उपयोग वह समझते है कि क्रान्तिके लिए किया जा सकता है और यदि वह इसमे सफलताकी आशा नही रखते तो सस्थामे फूट डाल देते है और उसको दो टुकडोमें विभक्त कर देते है। इसी नीतिके अनुसार कम्युनिस्टोने नागपुरके अधिवेशनमे भेदकी ऐतिहासिक आवश्यकताको बताते हुए फेडरेशनको दो भागोंमे विभक्त कर दिया। कम्युनिस्ट और उनके हमराही एक ओर थे और दूसरी ओर थे राष्ट्रवादी विद्यार्थी जिनमे काग्रेस समाजवादी भी शामिल थे।

अगस्त सन् ४२ के आन्दोलनके कारण राष्ट्रवादी विद्यार्थी जेलोमे बन्द कर दिये गये और क्योकि कम्युनिस्टोका उस समय 'जनयुद्ध' का नारा था और वह विदेशी साम्राज्यवादसे सहयोग कर रहे थे इसलिए वह जेलोके बाहर थे। इस परिस्थितिका उन्होने पूरा-पूरा लाभ उठाया, किन्तु यह लाभ चिरस्थायी न हो सका। अपनी देश-विद्रोही नीतिके कारण वह बहुत बदनाम हो गये और विद्यार्थी-समाजमे उनका प्रभाव धीरे-धीरे कम होने लगा। उनके दुर्भाग्यसे राष्ट्रवादी विद्यार्थियोने सन् ४४ में अपने संगठनको सुदृढ किया और स्टूडेण्ट्स काग्रेसको जन्म दिया।

इसी प्रकार इंगलैण्डमे भी फेडरेशनका प्रभाव घटने लगा। विश्वविद्यालयोंके जिन विद्यार्थियोने युद्धमे भाग लिया उनकी दृष्टि नूतन अनुभवोके कारण अन्य विद्यार्थियोंकी अपेक्षा अधिक परिपक्व हो गयी और उनके नेतृत्वमे केम्ब्रिज, आक्सफोर्ड और लन्दनके विद्यार्थियोकी समाजवादी सोसाइटियाँ बनने लगी और इनका सम्बन्ध फेडरेशनसे न होकर स्थानीय मजदूर दलसे होने लगा।

इसमे सन्देह नही कि इन स्थानोमें अन्य सस्थाएँ भी हैं, जो कम्युनिस्टोके प्रभावमे है और जो एस० एल० एफ० (S. L. F,) से सम्बद्ध है। यदि इंग्लैण्डका मजदूर दल

इस विषयमे अपनी कोई व्यापक नीति स्थिर करे और समस्त देशके लिए अपनी सरक्षतामें विद्यार्थियोकी कोई सस्था स्थापित करे तो कम्युनिस्टोका प्रभाव तेजीसे कम हो सकता है। किन्तु मजदूर दलकी उदासीनताके कारण काम नही हो रहा है। यह उदासीनता विद्यार्थी-सस्थाओंतक ही सीमित नही है। किन्तु युवक-सघके विपयमे भी ऐसी ही उदासीनता पायी जाती है। पहले एक लेवर लीग आव् यूथ (Labour League of Youth) था, किन्तु कुछ समयसे यह सस्था मृत-सी है और मजदूर दल उसको फिरसे संगठित करनेमे कोई निश्चित मत नही रखता।

अभी हालमे जो मजदूर सम्मेलन वोर्नमथ (Bournemouth) मे हुआ था वहाँ लीगको फिरसे सगठित करनेके प्रश्नपर विचार किया गया, किन्तु प्रस्ताव गिर गया। तिसपर भी जगह-जगह मजदूर युवकोके समूह वन रहे है और शीघ्र ही मजदूर दलको इस विपयमे कोई-न-कोई निश्चय करना पड़ेगा।

एक राष्ट्रीय संस्थाका न होना वहाँके मजदूर विद्यार्थियोको खटकता है और वह इस वातका प्रयत्न कर रहे है कि मजदूर दल इस कमीको शीघ्र पूरा करे। अभी करीव पाँच महीने हुए कि केम्ब्रिज यूनिवर्सिटी लेवर क्लवने मजदूर दलके सहयोगसे समाजवादी युवकोका एक अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन किंग्स कालेजमें आमन्त्रित किया था, जिसमे हालैण्ड, वेलजियम, फ्रास, नार्वे, स्वीडन, डेनमार्क और इटलीसे प्रतिनिधि आये थे। कई अन्य देशोके भी प्रतिनिधि वुलाये गये थे, किन्तु कुछ कठिनाइयोके कारण वह सम्मिलित न हो सके। सम्मेलनमे आये हुए प्रतिनिधियोने जो विवरण दिया, उससे पता चलता है कि यूरोपके विविध देशोमे विद्यार्थी तथा युवक सस्थाओकी अच्छी उन्नति हो रही है और इस विषयमे व्रिटिश मजदूर दल वहुत पिछडा हुआ है। अन्य देशोमे इग्लैण्डकी अपेक्षा कही वड़े पैमानेपर युवक-सगठन वन चुके है और यह केवल विश्वविद्यालयोतक ही नही सीमित है। इटलीमे सोशलिस्ट युवक-सस्थाके सदस्योंकी सख्या एक लाखसे ऊपर है, वेलजियममे २० हजारसे ऊपर और नार्वेमे ५० हजारसे ऊपर है। अनेक देशोके युवकोने गत युद्धमे भूमिगत (गुप्त) आन्दोलनमे अच्छा भाग लिया था और अपनी वीरता, साहस और सगठन-शक्तिका परिचय दिया था। यह वात इटलीपर विशेप रूपसे लागू है और यही कारण है कि वहाँके युवक-सघका सोशलिस्ट पार्टीमे अच्छा प्रभाव है।

इस कान्फरेन्समे एक वडे महत्त्वके प्रश्नपर विचार हुआ। प्रश्न यह था कि इन विद्यार्थियो और युवक-सस्थाओका अपनी पार्टीसे क्या सम्वन्ध रहे। यह प्रश्न हमारे लिए भी महत्त्वका है। हमको केवल स्टूडेण्ट्स काग्रेसके सम्वन्धमे ही विचार करना है। हमारे यहाँ प्रश्नका रूप यह है कि इस विद्यार्थी-संस्थाका राष्ट्रीय काग्रेससे क्या सम्वन्ध हो? क्या स्टूडेण्ट्स काग्रेस राष्ट्रीय काग्रेससे स्वतन्त्र हो? क्या उसको अपनी नीति निर्धारित करनेकी और उस नीतिको स्वीकृत करानेके लिए राष्ट्रीय काग्रेसपर दवाव डालनेकी स्वतन्त्रता दी जाय?

उक्त कान्फरेन्समे आये हुए प्रतिनिधियोमे इस विपयपर तीव्र मतभेद था। इटली,

बेलजियम और फ्रांसके प्रतिनिधि इन संस्थाओंको अपनी नीति स्थिर करनेकी स्वतन्त्रता देनेके पक्षमे थे, किन्तु नार्वे, स्वीडन, डेनमार्क, इग्लैण्ड और हालैण्डके प्रतिनिध इस मतके विरुद्ध थे। उनका कहना था कि ऐसी स्वतन्त्रता देनेसे पार्टी और युवक-संस्थामें भेद होनेका बडा भय है। डेनमार्क, नार्वे और स्वीडनमे युवकोका सगठन मजदूरदलद्वारा हुआ है, किन्तु इनका मुख्य काम शिक्षासम्बन्धी रहा है। पार्टीसे भिन्न इनकी कोई नीति नही है और नीति निर्धारित करना इनका काम नही है। ये संस्थाएँ केवल नये सदस्योकी भर्ती करती है। जब इनको पर्याप्त ज्ञान प्राप्त हो जाता है और राजनीतिक कार्यका कुछ अनुभव हो जाता है, तब उनको दलभुक्त होनेके लिए प्रोत्साहित किया जाता है।

गत अप्रैलमे परफिगुअन, फ्रास (Perfiguan, France) मे जो सोशलिस्ट यूथ इण्टर नेशनल (Socialist Youth International) स्थापित हुआ था, वहाँ भी ऐसा ही भेद प्रकट हुआ था। सार्वदेशिक मजदूर युवक सस्थाके अभावमें इस सम्मेलनमे इंग्लैण्डका कोई प्रतिनिधि न था। किन्तु Presidium मे एक स्थान इंग्लैण्डके लिए सुरक्षित रखा गया है। इण्टर नेशनलकी अगली बैठक गत सितम्बरमें पेरिसमे होनेवाली थी। हमारे यहाँ भी इस प्रश्नपर मतभेद है। स्टूडेण्ट्स काग्रेस कभी-कभी राजनीतिक प्रश्नोपर अपना स्वतन्त्र मत प्रकट करती है, यद्यपि ऐसे अवसर कम ही आते है। प्रश्न यह है कि स्टूडेण्ट्स काग्रेसको ऐसी स्वतन्त्रता देनी चाहिये अथवा नही। जावितेसे स्टूडेण्ट्स काग्रेस राष्ट्रीय काग्रेससे सम्बद्ध नही है, किन्तु उसके सदस्य यही मानते है कि यह सस्था काग्रेसकी नीतिको स्वीकार करती है तथा किसी अवस्थामें उसका विरोध नही करेगी। सच यह है कि इसी कारण आज इसका इतना प्रभाव है। इस प्रभावको अक्षुण्ण रखनेके लिए आवश्यक है कि वह कांग्रेसका विरोध न करे, फिर भी यह प्रश्न शेष रह जाता है कि स्टूडेण्ट्स काग्रेसको राजनीतिक प्रश्नोपर अपने स्वतन्त्र विचार प्रकट करने तथा नये सुझाव करनेका अधिकार होना चाहिये या नही? हमारे देशके कुछ नेता ऐसी स्वतन्त्रता नही देना चाहते, किन्तु अभीतक अधिकृत रूपसे काग्रेसकी ओरसे कुछ कहा नही गया है। हम देखेगे कि यूरोपके जिन देशोकी युवक सस्थाएँ ऐसी स्वतन्त्रताकी माँग पेश करती हैं, ये वे देश है जहाँके नवयुवकोने युद्धके जमानेमे संगठित रूपसे शत्रुओका तीव्र प्रतिकार किया था और अपने साहस, त्याग और शौर्यके कारण ख्याति पायी थी। इस कारण उनमे आत्मविश्वास बढा और उन्होने अपना महत्त्व समझा। अब वह अपना स्वतन्त्र मत रखना चाहते है और अपनी पार्टीके निश्चयोको प्रभावकारी करना चाहते है। उनकी दष्टिमे शिक्षाका कार्य उनके लिए काफी नही है। वे अपना मुख्य कार्य राजनीतिक समझते है। इसका यह अर्थ नही है कि उनका अपनी पार्टीमे विश्वास नही है, किन्तु इसका अर्थ केवल इतना ही है कि वे पार्टीकी नीति निर्धारित करनेमे हाथ बँटाना चाहते है। युद्धकालीन नये अनुभवोंके कारण उनकी दृष्टि पुराने नेताओकी अपेक्षा नवीन है और वे समझते है कि यदि नीति स्थिर करनेमे वे सहायक हो, तो पार्टीके लिए कदाचित् अधिक हितकर हो। पार्टीके प्रति वे वफादार है, किन्तु वे यह चाहते है कि पार्टीकी नीतिको प्रभावित करनेका उनको अधिकार हो। युद्धके कारण जो असाधारण अवस्था उत्पन्न

हुई, उसके कारण इन देशोके युवकोको वे कार्य करने पडे, जो शायद शान्तिकी अवस्थामें न करने पडते और इसी कारण उनको नेतृत्वका भी अवसर मिला ।

दूसरी ओर वे देश जो इस मतका विरोध करते है वे ऐसे है, जहाँ परम्पराके प्रति बड़ा आदर है और जहाँके युवकोको राजनीतिक चेतनाके विकासका ऐसा अवसर नही मिला । इसके अलावा इन देशोमे या तो गुप्त आन्दोलन नही हुए या ये आन्दोलन उतने उग्र और प्रबल नही थे ।

हमने संक्षेपमे इस अन्तरका कारण बताया । किन्तु प्रश्न यह है कि इन संस्थाओके लिए इष्ट क्या है ? इसमे सन्देह नही कि जब हम इस प्रश्नका निर्णय करे, हमको देश-विशेषकी परिस्थिति तथा वहाँके युवकोकी मनोवृत्तिको ध्यानमे रखना होगा । हम इनकी सर्वथा उपेक्षा नही कर सकते । अब फर्मानोका युग नही है । इसके अलावा पुरानी पीढी और नयी पीढीमे इतना अन्तर है कि पुरानी पीढीके वे लोग जो नयी पीढ़ीके सम्पर्कमें नही आये है और जिनको उनका विश्वास नही प्राप्त है वे उनकी मनोवृत्तिको ठीक-ठीक समझ भी नही सकते । ऐसी अवस्थामे उनको इस प्रश्नका निर्णय करनेमें धैर्यसे काम लेना चाहिये । १९४२ के आन्दोलनमे प्रमुख भाग लेनेके कारण तथा विद्यार्थी-आन्दोलनका मुख्य ध्येय राजनीतिक होनेके कारण हमारे देशके विद्यार्थियोने राजनीतिक क्षेत्रमे अपना स्थान बना लिया है । यही अवस्था चीनकी रही है । इसलिए यदि वे कुछ स्वतन्त्रताकी माँग करे तो इसपर हमको आश्चर्य न होना चाहिये । हम चाहते है कि कुछ स्वतन्त्रता उनको दी जाय । इसमे कई लाभ है । पहले तो ऐसा करनेसे उनका आप्यायन होगा । पुन. काग्रेसके नेताओको युवकोके विचारोसे अवगत होनेका अवसर मिलता रहेगा । पर इस स्वतन्त्रताकी मर्यादा भी निश्चित कर देनी होगी । जबतक कोई प्रश्न विचार-कोटिमे हो तबतक उसपर अपना विचार व्यक्त करनेके लिए स्टूडेण्ट्स काग्रेसको स्वतन्त्रता रहनी चाहिये, किन्तु जब राष्ट्रीय काग्रेस उस प्रश्नपर अपना निश्चय दे दे, तब वाद-विवाद बन्द हो जाना चाहिये । इसके अलावा कार्यमे एकता होनी चाहिये । इसमे भिन्नता ठीक नही है । ऐसा होनेसे परस्परका सम्बन्ध कटु हो जायगा, जो देशके लिए हानिकर होगा । इस समय स्टूडेण्ट्स काग्रेस राष्ट्रीय काग्रेससे सम्बद्ध नही है । हम समझते है कि जाब्तेका सम्बन्ध मुनासिब भी न होगा । इसलिए मर्यादित स्वतन्त्रता देना और भी ठीक होगा ।[1]

योग्य शिक्षकोंकी कमी

अभी कुछ दिन हुए ट्रेनिंग कालेज प्रयागके विद्यार्थियोका चुनाव करनेके लिए गवर्नमेण्टद्वारा नियुक्त कमेटीकी बैठकमे सम्मिलित होने मै प्रयाग गया था । आवेदन-पत्रोके देखनेसे पता चला कि प्रथम श्रेणीके विद्यार्थियोकी सख्या बहुत थोड़ी है, एक प्रकारसे

1. 'जनवाणी' जनवरी, सन् १९४७ ई०

नहींके बराबर है। इधर मैंने सुन रखा था कि योग्य शिक्षक नहीं मिलते, उनका नितान्त अभाव है। एक ओर शिक्षाका विस्तार हो रहा है, दूसरी ओर नये स्कूलोंके लिए अच्छे शिक्षकोंके मिलनेमें बड़ी कठिनाई होती है। मालूम होता है अध्यापकके पेशेके लिए आकर्षण बहुत कम हो गया है। गत महायुद्धके जमानेमें कई नये विभाग खुले जिनमें प्रवेश पानेके लिए विशेष योग्यताकी आवश्यकता न थी, किन्तु पुरस्कार अध्यापकके पुरस्कार-की अपेक्षा कहीं अधिक था। सुशिक्षित युवकोंकी कमीके कारण हर तरहके लोग इन विभागोंमें भर्ती किये गये। युद्धके समाप्त होनेके पश्चात् भी नित्य नये विभाग खुलते जाते हैं। इन नयी नौकरियोंका पुरस्कार भी अच्छा है। इनके लिए अवश्य ग्रैजुएट होनेकी शर्त रखी गयी है। जाँचसे मालूम हुआ कि इन नये स्थानोंके लिए अधिक योग्य व्यक्ति उम्मीदवार होते हैं, दूसरा कारण यही है कि इनको अच्छा पुरस्कार मिलता है। उधर वेतन (Pay) कमीशनने सब वर्गके कर्मचारियोंके पुरस्कारमें वृद्धि की है। यह ठीक है कि अध्यापकोंके पुरस्कारमें भी वृद्धि हुई है, किन्तु इनका पुरस्कार दूसरे वर्गोंकी अपेक्षा कम है। यही कारण है कि अध्यापनके कार्यके लिए योग्य शिक्षकोंकी कमी होती जाती है। उच्च श्रेणीमें उत्तीर्ण होनेवाले प्रतिभाशाली विद्यार्थी प्रान्तीय सिविल सर्विस, इण्डियन सिविल सर्विस या पुलिस सर्विसमें चले जाते हैं, क्योंकि इनकी परीक्षा होती है और सिफारिशका वह महत्त्व नहीं रह गया है जो पहले था। जो इन स्थानोंको नहीं पा सकते थे उनमेंसे ही छँट-छुँटकर कुछ अध्यापक हो जाते थे। किन्तु निम्न श्रेणीके अध्यापकों-के मिलनेमें इतनी कठिनाई नहीं होती थी, पर इधर कुछ वर्षोंसे नौकरीके कुछ नये सीगे खुल जानेसे इनके मिलनेमें भी कठिनाई हो गयी है।

यदि समाजमें लोकतन्त्रकी स्थापना करनी है तो जनताको शिक्षित करना आवश्यक हो जाता है। सार्वजनिक शिक्षा ही जनतन्त्रका आधार है। किन्तु यदि शिक्षाके सब विभागोंके लिए योग्य शिक्षक नहीं मिलेंगे तो शिक्षाके विस्तारकी उचित व्यवस्था नहीं की जा सकती। लोकतन्त्रके लिए प्राथमिक शिक्षा अब पर्याप्त नहीं समझी जाती। प्रत्येक व्यक्तिको कमसे कम मौलिक शिक्षा (basic education) मिलना चाहिये, जिसमें वह समाजके प्रति अपने कर्तव्यको समझ सके और शासनमें हाथ बँटा सके।

प्राचीन कालमें शिक्षा देनेका भार ब्राह्मण, बौद्ध भिक्षु, पादरी या मौलवियोंपर था। समाजमें उनके लिए बड़ा सम्मान था। केवल भोजन और वस्त्र लेकर ही वह समाजकी शिक्षाकी व्यवस्था करते थे। दानशील व्यक्ति और राज्यकी ओरसे इनकी संस्थाओंको सहायता मिलती थी। गाँवमें भिक्षु या ब्राह्मण अपनी टोली खोल देते थे और बालकोंको प्रारम्भिक शिक्षा देते थे। जगह-जगह उच्च शिक्षाकी भी व्यवस्था थी। मठ या संघारामोंमें बड़े पैमानेपर शिक्षाका आयोजन होता था। इस प्रकार पुराने समाजमें कम व्ययसे ही शिक्षाके प्रसारका कार्य होता था। जो शिक्षक थे उनको समाज आदरकी दृष्टिसे देखता था। किन्तु आज मनुष्यका मापदण्ड रुपया हो गया है। जिसके पास अधिक धन है उसीका आदर है। स्कूलके अध्यापकको न अच्छा वेतन मिलता है, न समाजमें उसका आदर ही है और न उसको कोई अधिकार ही प्राप्त है। ऐसी अवस्थामें प्रतिभाशाली

व्यक्तिके लिए अध्यापकका कार्य आकर्षक नही है। राष्ट्रीय आन्दोलनमे जो उच्च शिक्षाप्राप्त लोगोकी कमी है, उसका एक कारण यह भी है कि प्रथम महायुद्धके वाद सरकारी कर्मचारियोके वेतनमें अति मात्रामे वृद्धि हुई और सिविल सर्विसकी परीक्षा यहाँ भी होने लगी। शिक्षाके क्षेत्रमे योग्य शिक्षकोकी कमीका कारण भी यही है।

यह चिन्ताका विषय है और इसपर गम्भीरताके साथ विचार करनेकी आवश्यकता है। हमारा भविष्य उज्ज्वल हो इसके लिए अध्यापनके कामको आकर्षक वनाना पडेगा। आज जव समाजका आर्थिक कष्ट वढ गया है और रुपयोमे मनुष्यकी कीमत आँकी जाती है, तब पुरस्कारकी वृद्धिका प्रश्न अध्यापकके लिए भी महत्त्वका हो जाता है। पुन: नये अधारपर समाजकी व्यवस्था एकाएक नही हो सकती। जीवनके प्रेरक हेतु एकाएक वदले नही जा सकते। कमसे कम पूंजीवादी समाजमे धनका महत्त्व रहेगा ही। ऐसी अवस्थामे केवल अध्यापकसे त्यागकी आशा रखना ही व्यर्थ है। अत अध्यापनके कार्यको आकर्षक वनानेका एक ही तरीका है और वह है उसके वेतनमे समुचित वृद्धि। हमारी कठिनाई और भी बढ जाती है जव हम देखते है कि पुलिस आदि विभागमे पुरस्कारकी कही ज्यादा वृद्धि हुई है। यदि समान योग्यताके लोगोका समान वेतन हो तो असन्तोष नही होता। असमानताके कारण असन्तोष वढता है। यह मनुष्यका स्वभाव है। वेतन-वृद्धि करते समय इस वातपर कही भी ध्यान नही दिया गया है। समाजमे शान्ति-स्थापनके कार्यको शिक्षाकी अपेक्षा अधिक महत्त्व दिया जाता है। यह सव जगहका हाल है। ससारमे सर्वत्र अध्यापकको सवसे कम पुरस्कार मिलता है। निम्न श्रेणीके अध्यापकोका हाल और भी वुरा है। हमारे देशकी अवस्था इस दृष्टिसे और भी गिरी हुई है। यहाँ विश्वविद्यालयके प्रोफेसरका पुरस्कार प्रारम्भिक स्कूलके शिक्षकके वेतनका २० गुना है, जव कि इग्लैण्डमे केवल ६ गुना है। इग्लैण्डमे प्रारम्भिक स्कूलके शिक्षकको उतना ही वेतन मिलता है, जितना उद्योग व्यवसायमे कार्य करनेवाले मजदूरको। अभी गवर्नमेण्ट आफ इण्डियाके 'पे कमीशन' ने यह सिफारिश की है कि अशिक्षित मजदूरकी गुजारे लायक मजदूरी आज ५५) रु० मासिक होनी चाहिये और इसे गवर्नमेण्टने स्वीकार कर लिया है। किन्तु हमारे यहाँ प्राथमिक स्कूलके अध्यापकको कुल जमा ३२) रु० मिलता है। यह ठीक है कि केन्द्रीय गवर्नमेण्टकी आमदनी कही ज्यादा है और वह इतना मासिक पुरस्कार नियत कर सकती है, किन्तु ऐसा करनेसे प्रान्तीय गवर्नमेण्टकी दिक्कते वढ जाती है। आमदनीके कुछ सीगे जो प्रान्तोके होने चाहिये आज केन्द्रीय गवर्नमेण्टके हाथमे है। प्रान्तीय गवर्नमेण्टको इन्हे केन्द्रसे वापिस लेना चाहिये और आयके नये द्वार भी खोज निकालने चाहिये। इसके विना अध्यापकोके पुरस्कारमे और वृद्धि नही हो सकेगी और विना इसके उनको आप सन्तुप्ट न कर सकेगे।

हमने इस प्रश्नके महत्त्वकी ओर ऊपर सकेत किया है और यह कहा है कि यह प्रश्न और देशोको भी परेशान कर रहा है। अमेरिकामे यह प्रश्न विकट रूप धारण कर रहा है। गत एक वर्पमें ६००० स्कूल वन्द हो चुके है। इस वर्प ७५,००० वच्चोकी पढ़ाईका प्रवन्ध नही किया जा सका है। इसके अतिरिक्त ५० लाख वच्चोकी पढाईका जो थोडा-वहुत

प्रवन्ध हो सका है, वह नहीके वरावर है। अधिकतर इन वच्चोकी पढ़ाई अधूरी होगी और वह अपना समय वहुत कुछ वरवाद ही करेंगे। समझा जाता है कि अवस्था और भी विगड़ती चली जायेगी। 'न्यूयार्क टाइम्स' अखवारके शिक्षा-सम्पादक वेजामिन फाइन (Benjamin Fine) ने ६ महीने खर्च करके इसकी जाँच की है और एक लेखमाला प्रकाशित की है जिससे इस प्रश्नपर काफी रोशनी पडती है। उनका निष्कर्ष यह है कि यद्यपि हमारे पब्लिक स्कूलोपर एक भी हवाई आक्रमण नही हुआ है तथापि "वह उसी प्रकार नष्ट-भ्रष्ट हो रहे है जैसे भारी वाम्वरोसे वह हो सकते थे।"

वेजामिन फाइन लिखते है कि सामान और इमारतकी स्कूलोमे नितान्त कमी है। पुनः सन् १९४० से ७०,००० प्रतिवर्षके हिसावसे अध्यापक अपना पेशा छोड़ रहे हैं। मिसूरी राज्यमें केवल २ प्रतिशत अध्यापक वच गये हैं और यदि सारे देशका हिसाव लगाया जाय तो सन् १९४१ का आधा स्टाफ रह गया है।

इनका स्थान जिन लोगोने लिया है वह विलकुल निकम्मे है। हर जगह यही शिकायत सुननेमे आयी कि अध्यापकोकी नितान्त कमी है। कई जगहोमे कई मुख्य विषयोकी पढाई वन्द करनी पड़ी है। कही-कहीं तो अध्यापक केवल हाजिरी लेते हैं, इससे ज्यादा कुछ करनेकी उनकी योग्यता ही नही है। एक ओर तो अध्यापकोकी माँग वढ रही है और दूसरी ओर अध्यापकोकी सख्या घटती जाती है। कालेजके विद्यार्थियोमेसे केवल ७ प्रतिशत अध्यापक होना चाहते हैं, जहाँ एक समय २२ प्रतिशत कालेजके विद्यार्थी अध्यापककी शिक्षा लिया करते थे।

वेजामिन फाइनका कहना है कि इस संकटका कारण अध्यापकोका कम वेतन है। अमेरिकामे अध्यापकका औसत साप्ताहिक वेतन ३७.०२ डालर है, वाशिंगटन नगरमें कूडा जमा करनेवाला जो मजदूरी पाता है उससे यह ३.३७ डालर अधिक है। टैक्सी ड्राइवरोका पुरस्कार अध्यापकके पुरस्कारसे अधिक है। डिट्राओ (Detroit) में कुत्ते पकड़नेवालोका वेतन २४८४ डालर वार्षिक है जव कि उसके अध्यापक २०९४ डालर ही वर्षमे पाते है।

मिस्टर फाइनका कहना है कि अनपढ जनताकी सहायतासे लोकतन्त्रका काम नही चल सकता। जनता इस समस्याकी गम्भीरताका धीरे-धीरे अनुभव करने लगी है और कई स्टेट अध्यापकोके पुरस्कारमे वृद्धि करनेका प्रस्ताव कर रहे है।

ऐसी अवस्थामे अध्यापकोका अपनी युनियन वनाना स्वाभाविक है। कही-कही अध्यापक हड़तालकी धमकी दे रहे हैं। मिस्टर फाइन कहते हैं कि जवतक उनके पुरस्कारमे वृद्धि नही होती तवतक वह लड़कोका पढाना छोडते ही जायँगे और कोई दूसरा काम तलाश कर लेंगे। अमेरिकामे तो दूसरे काम भी मिल जाते हैं। वहाँ भी अभीतक इस समस्याको ठीक-ठीक हल करनेका प्रयत्न नही किया गया है। जव धनी अमेरिकाका यह हाल है तो निर्धन भारतका क्या कहना। हमारे यहाँ भी अध्यापकोके वेतनमे कुछ वृद्धि हुई है, किन्तु वह पर्याप्त नही है। गवर्नमेण्टकी कठिनाइयोसे हम परिचित हैं। प्रश्न ऐसा सुगम नही है, किन्तु हमको उसे भुला नही देना चाहिये। सहानुभूतिके साथ हमको इस प्रश्नपर

विचार करना चाहिये और अध्यापकोकी अवस्थाको जहाँतक हम उन्नत कर सकें उसे उन्नत करना चाहिये। प्रश्न केवल इतना ही नही है कि अध्यापकोके साथ भी न्याय होना चाहिये, किन्तु इससे कही अधिक गम्भीर है। हमको तो अभी लोकतन्त्रकी स्थापना करनी है और जनसाधारणको शिक्षित बनाना है। अनिवार्य शिक्षा ही जनतन्त्रकी आधारशिला है और इसकी सफलता योग्य शिक्षकोपर निर्भर है। अत: नये समाजकी नीव योग्य अध्यापक-वर्ग है। इस वर्गके महत्त्वको समझकर उसकी आवश्यकताओको पूरा करना और अध्यापकके कामको आकर्षक बनाना राज्यका कर्तव्य है। कही भी इस दृष्टिसे अबतक विचार नही किया गया था, क्योकि अध्यापकोके मिलनेमे कठिनाई नही होती थी। गत युद्धके कारण ही यह समस्या उत्पन्न हो गयी है। युद्धकी आवश्यकताओको पूरा करनेके लिए हर जगह नयें विभाग खोलने पड़े और अच्छा वेतन नियत करना पडा। आर्थिक कष्टके बढ जानेसे पुरस्कार-वृद्धिका प्रश्न भी उपस्थित हो गया। जिन विभागोको आर्थिक महत्त्व दिया गया, उनका वेतन भी ज्यादा रखा गया। युद्धके समय जब व्यय घटानेका प्रश्न आता है तब शिक्षापर जो रकम खर्च की जाती है उसमे ही सबसे पहले कमी की जाती है। संस्कृतिपर ही पहला वार होता है, कमसे कम उसके विस्तारकी बात युद्धके जमानेमे नही सोची जाती। समाजकी रक्षाका प्रश्न प्रधानता ले लेता है और इस नयी मनोवृत्तिके कारण शिक्षाकी उपेक्षा की जाती है। इसमे बडा खतरा है। हमको यह सोचना होगा कि एक नूतन समाजका गठन करनेके लिए क्या परमावश्यक है। रक्षाका विधान करना पहला कर्तव्य है, किन्तु इसके पश्चात् अन्न-वस्त्रका प्रबन्ध तथा शिक्षाकी व्यवस्था होनी चाहिये। हमारे देशमे जहाँ केवल १५ प्रतिशत लोग साक्षर है, वहाँ तो यह प्रश्न बहुत ही महत्त्व रखता है।[1]

क्या धार्मिक शिक्षा हमारी शिक्षा-संस्थाओं-द्वारा दी जानी चाहिये ?

पुरानी दुनियामे धार्मिक शिक्षा बच्चोकी शिक्षाका एक अविच्छिन्न अग मानी जाती थी। देवमन्दिर या गिरजाघर समाजके जीवनका केन्द्र हुआ करता था और जिस धर्मके माननेवाले जो लोग होते उसी धर्मके द्वारा उनके मन, बुद्धि और हृदयोका नियमन होता था। सत्तत्वका स्वरूप तथा पदार्थोके मूल्योका मान इत्यादि सभी बातें धार्मिक विश्वाससे ही निर्धारित होती थी। पारलौकिक जीवनकी आशा और मोक्ष पानेका आश्वासन होनेसे मनुष्य ऐहिक जीवनका भार प्रसन्न और धीर होकर वहन करते थे। पर धीरे-धीरे विज्ञानने आकर यह सारा ढंग बदल डाला और धर्मके स्थानमे बुद्धिका युग प्रवर्त्तित हुआ। विज्ञान और उसकी कार्यप्रणालीके प्रगमनके साथ मनुष्यका ऐहिक जीवन सुखी

---

१ 'जनवाणी' मई सन् १९४७ ई०

और समृद्ध बना सकनेकी एक विशेष आशा संचारित हुई। यही कारण है कि विज्ञान और प्रगति एक चीज समझे जाने लगे। विज्ञानके भरोसे स्वर्गतकको दखल कर लेनेकी बात लोग सोचने लगे। इससे एक नया आश्वासन मिला, एक नया विश्वास जाग उठा। फलतः धीरे-धीरे धार्मिक विश्वास क्षीण होने लगे और मठ-मन्दिरो या गिरजाघरोका पहलेका-सा प्रभाव मनुष्योके हृदयोपर नही रह गया। विज्ञानके प्रभावके अतिरिक्त और भी कई महत्त्वपूर्ण बाते ऐसी जुट गयी जिनसे ऐसी स्थिति बन गयी। नये सामाजिक वाद निकल पड़े और नये आर्थिक और राजनीतिक सिद्धान्तोने मनुष्योके मनोको अपने वशमे कर लिया। साधारण मनुष्यने अपनी दीर्घकालीन निद्रा और उदासीनता त्याग दी और नया जीवन पाकर वह सर्वत्र चलने-फिरने लगा। धीरे-धीरे कर्मक्षेत्रके केन्द्रपर उसने अपना प्रभाव डाला। इन सबसे एक ऐसी परिस्थिति उत्पन्न हो गयी जिसमे उसकी कोई उपेक्षा नही कर सकता था। वह अब पारलौकिक जीवनकी अपेक्षा इसी अपने ऐहिक जीवनकी बात अधिक सोचने लगा। स्वाभिमान और मानव-गौरवकी एक नवीन बुद्धि उसमे जागी और वह अपने अन्दर एक ऐसी शक्ति अनुभव करने लगा जिससे इस दुनियामे वह अपना जीवन अधिक सुखी बना सकता है। पर अनुभवसे उसने यह सीखा कि धार्मिक सस्थाएँ शोषितो और दलितोंका पक्ष करनेके बजाय यथावत् स्थितिका ही समर्थन किया करती है और जनताकी आर्थिक तथा सामाजिक दु.स्थितिके आमूल परिवर्तनका सदा विरोध ही करती है। उसने यह भी देखा है कि धर्माचार्योके ये पीठ सरकारके महज पुछल्ले बन गये है और राष्ट्रोके पारस्परिक युद्धोमे ये अपनी-अपनी सरकारका ही पक्ष लेकर अपने अनुयायियोको दूसरे राष्ट्रवालोकी हत्या करनेका उपदेश किया करते है। इसके अतिरिक्त, लिखे-पढे लोग भी धार्मिक अनुष्ठान और पूजा-पाठ आदि धर्मके बाह्य अंगोको अनावश्यक समझने लग गये। ये लोग अज्ञेयवादी बने और इलहाम अथवा ईसाकी ऐतिहासिकता जैसे प्रश्नोकी चर्चा भी श्रद्धा विरहित तर्ककी कसौटीपर करनेमे इन्हें कोई सकोच नही होता था। ऐसी प्रतिकूल परिस्थितिमे धार्मिक विश्वासोका नष्ट होना ही अनिवार्य था। जिस किसी भी देशमे पाश्चात्य संस्कृति और विचारपद्धति घुसी, वहाँ एक नया सशयवाद उठ खड़ा हुआ और पुराने विश्वास उखडने लगे।

हिन्दुस्तानमे जब ब्रिटिशोका राज्य हुआ तब यहाँ सार्वजनिक शिक्षाकी एक ऐसी पद्धति चलायी गयी जिससे धार्मिक शिक्षा पहले-पहल अलग कर दी गयी। शिक्षा अंग्रेजीकी दी जाय या प्राचीन संस्कृतिकी इसके वाद-विवादमें अंग्रेजोकी जीत हुई और ईस्ट इण्डिया कम्पनीने अंग्रेजी शिक्षा और पाश्चात्य विज्ञानसे हिन्दुस्तानके लोगोको लाभान्वित करनेका सकल्प किया। सार्वजनिक शिक्षालयोमे धार्मिक शिक्षा देनेकी कोई व्यवस्था नही की जा सकती थी, क्योकि विभिन्न धर्मसम्प्रदायोके लडके इन विद्यालयोमे पढने आते थे। अत इन दुस्तर कठिनाइयोके कारण विदेशी सरकारने सार्वजनिक विद्यालयोमे केवल धर्म-निरपेक्ष शिक्षाकी ही व्यवस्था की। इस नीतिके कारण मुसलमान समाज बहुत कालतक इस नवीन शिक्षा-पद्धतिसे कोई लाभ नही उठा सका, कारण वह अपने धार्मिक विश्वासों और सिद्धान्तोका विशेष कायल था और इस सिद्धान्तको माननेवाला था कि धार्मिक

शिक्षा शिक्षाका अविच्छिन्न अंग है। नवीन शिक्षाने पूर्वी और पश्चिमी संस्कृतियोंके बीच संघर्ष उत्पन्न कर दिया और इसके फलस्वरूप नये सांस्कृतिक, धार्मिक और सामाजिक आन्दोलन चल पड़े। हिन्दुस्तानकी बुद्धि बहुत अस्थिर हो गयी और हमारे सामाजिक तथा धार्मिक विश्वासोंका नया मूल्याङ्कन होने लगा। पुरातन धार्मिक पद्धतियोंपरसे शिक्षित लोगोंका विश्वास उठ चला और पश्चिमके नये राजनीतिक और सामाजिक तत्त्वज्ञान हमारे आदर और मानके पात्र हुए।

मुसलिम समाजने धीरे-धीरे अपने आपको इस नवीन शिक्षापद्धतिके अनुकूल बहुत कुछ बना लिया, पर वह बार-बार सरकारसे यह आग्रह करता रहा कि मुसलिम विद्यार्थियोंके लिए धार्मिक शिक्षाका कुछ प्रबन्ध अवश्य होना चाहिये। सरकारने इस हदतक यह बात मान ली कि उसने ऐसे साम्प्रदायिक विद्यालय पृथक् रूपसे स्थापित करनेको प्रोत्साहन देना स्वीकार किया जहाँ धार्मिक शिक्षा दी जा सके। पर सार्वजनिक विद्यालयोंका धर्म-निरपेक्ष स्वरूप ज्योंका त्यों बना रहा। लोकमतके आदरार्थ थोड़ी रियायत अवश्य ही की गयी और अब जो नियम प्रचलित है वह यह है कि सरकारी स्कूलों और कालेजोंमें धर्मनिरपेक्ष शिक्षाके बँधे हुए समयको छोड़कर अन्य समयमें निम्नलिखित शर्तोंपर धार्मिक शिक्षा दी जा सकती है—

१—स्कूल या कालेजका कोई अध्यापक धार्मिक शिक्षाका काम नहीं कर सकता, पर धार्मिक शिक्षक जो कोई होगा, संस्थाके मुख्य चालकके अधीन रहेगा।

२—जिस सम्प्रदायकी बात हो उसी सम्प्रदायको इसकी समुचित व्यवस्था करनी होगी और इस शिक्षाके लिए होनेवाला खर्च चलाना होगा।

३—अपने बच्चोंको धार्मिक शिक्षा दिलाना या न दिलाना बच्चोंके माता-पिताकी मर्जीपर होगा।

सहायताप्राप्त शिक्षा-संस्थाएँ चाहें तो अपने यहाँ इस शर्तपर धार्मिक शिक्षा दे सकती हैं कि विवेक-बुद्धिके सर्वमान्य अधिकारोंका आदर बना रहे।

स्कूलोंमें धार्मिक शिक्षाके प्रश्नपर समय-समयपर सरकारद्वारा नियुक्त कमेटियोंने बार-बार विचार किया है, पर इस विषयमें कोई साग्रह और सार्वधिक माँग नहीं देख पड़ती।

१९३८ में युक्त प्रदेशकी सरकारने प्रारम्भिक और उच्च शिक्षाके पुनस्सघटनका विचार करनेके लिए जो कमेटी नियुक्त की थी उसने इस प्रश्नका विचार किया था। उसकी मुख्यतः यही राय रही की इसकी कोई आवश्यकता नहीं है। पर मतैक्यके लिए उसने इसका निर्णय सरकारपर छोड़ दिया, क्योंकि राज्यकी नीतिके साथ यह प्रश्न सम्बद्ध है।

जबसे राष्ट्रीय सरकार स्थापित हुई है तबसे इस प्रश्नका फिरसे विचार होने लगा है और मौलाना अब्दुल कलाम आजाद जैसे महान् व्यक्ति जो न केवल हमारे शिक्षा-मन्त्री हैं प्रत्युत उदार भाव और प्रगतिशील विचारके पूर्ण और गतिमान् विद्वान् हैं उनका भी समर्थन हालमें ही इसे प्राप्त हुआ है।

नये जमानेकी बुराइयोंको दूर करनेके लिए आमतौरपर धार्मिक शिक्षाका ही उपाय

बतलाया जाता है। पाश्चात्य देशोमें लोगोका विश्वास विज्ञानपरसे और इसलिए इस उन्नतिपरसे भी उठ चला है, क्योकि विज्ञानका दुरुपयोग हो रहा है और कुपथमे उसकी प्रवृत्ति है। उन देशोमे आजकल धर्म और गुप्त विद्याकी ओर लोगोकी रुचि फिरसे हो रही है। लोग कोई ऐसी चीज चाहते है जिसपर वे अपना विश्वास टिका सकें, पर पुराने धर्म-सम्प्रदायोसे उन्हे सन्तोष नही होता। वे कोई नया धर्म, नया इलहाम ढूँढ़ रहे है, पर यह धर्म या इलहाम उन्हे मिले, इससे पहले वे निराशावादी तत्त्वज्ञानोसे घिर रहे है। कुछ जीवनकी कठिन वस्तुस्थितियोसे भागकर गुप्त विद्या और पुराने धार्मिक विश्वासोका आश्रय ढूंटते है, कुछ जीवनको दु खमय देख निराश होकर बैठ जाते है। किसीमें वह जीवन-विश्वास नही रह गया जिसकी जीवनके लिए सबसे अधिक आवश्यकता है। मनुष्य केवल तर्कसे नही जी सकता; उसे धारण करने और प्रेरणा पानेके लिए विश्वासकी आवश्यकता होती है। पर यह विश्वास धर्म-निरपेक्ष होना चाहिये और उससे भविष्यके लिए आध्यात्मिक आश्वासन मिलना चाहिये।

परन्तु हमारे देशकी हालत अभी इस दर्जेतक नही पहुँची है। हम अभी-अभी स्वाधीन हुए है और अभी हमने अपनी यात्राका आरम्भ किया है। हमे कई नवीन प्रश्न हल करने है और निर्माणका काम हमारे सामने है। हमे स्वाधीनता और प्रगतिपर विश्वास है। निराशा या संशयसे हम ग्रस्त नही है। पर एक भिन्न प्रकारके सांस्कृतिक संकटने हमे घेरा है। हमारी समाज-नीतिके पुराने रोग पहलेसे बहुत ही अधिक उग्ररूपमे उभड़ पड़े है और हमे नष्ट किया चाहते है। ये रोग है दलवाद, जातिवाद, सम्प्रदायवाद और प्रान्तवाद। गैरसरकारी सेनाओको गैरकानूनी करार देने और सम्प्रदायमूलक राजनीतिक सघटनोपर रोक लगाने मात्रसे यह बुराई समूल नष्ट होनेवाली नही है। बीमारी अस्थि-मज्जाके अन्दर घुसी बैठी है। हमे अपने बच्चोको नवीन शिक्षा देनी होगी और समस्त जनताका मन ही बदलना होगा। तभी कोई महान् कार्य बन सकता है। अपने नवयुवकोको हमे ऐसा बनाना होगा कि धार्मिक द्वेष और शत्रुताका सम्प्रदाय उनपर अपना कोई असर न डाल सके। उन्हे लोकतन्त्र और अखण्ड मानवताके आदर्शोकी दीक्षा देनी होगी, तभी हम साम्प्रदायिक सामञ्जस्य और सद्भाव चिरन्तन आधारपर स्थापित कर सकेंगे।

साम्प्रदायिक मेल उत्पन्न करनेकी सदिच्छासे ही कदाचित् स्कूलोके पाठ्यक्रममे धार्मिक शिक्षाके समावेशकी बात कही जाती है। पर लोग क्षमा करे, मुझे यह कहना ही पड़ता है कि यह दवा बीमारीसे भी अधिक घातक साबित होगी। धार्मिक शिक्षाके समर्थनमे यह कहा जा सकता है कि सभी धर्म मूलत: एक है और सही दृष्टिसे देखा जाय तो ऐसा धर्म एकत्व-साधनकी ही एक शक्ति है। मैं मानता हूँ कि कुछ सर्वव्यापक तत्त्व ऐसे है जो सब धर्मोमे समान है। पर ऐसे भी कुछ तत्त्व है जो एक-एक सम्प्रदायके अपने-अपने विशेष है। जनता जिस धर्मको समझती और पालन करती है वह तो विशिष्ट विधियुक्त कर्म और पूजा-पाठ ही है और ये सब सम्प्रदायोके अलग-अलग है। सीधी और सच्ची बात यही है कि धर्म समाजकी एक घातक शक्ति है।

राष्ट्रीय सरकारका काम यह है कि वह इन विभिन्नताओको पीछे कर दे और सबके

लिए समान चीजोको आगे करे जो सबको मिलाती और विभिन्न प्रकारके लोगोको एकत्वमे बाँधती है। स्कूलोके पाठ्यक्रममे धार्मिक शिक्षाका समावेश करनेसे ये साम्प्रदायिक भेद विशेषरूपसे उन बच्चोके सामने आयेगे जिन्हे इन भेदोका अभी कोई ज्ञान नही है। यह कहा जा सकता है कि धार्मिक शिक्षाका एक स्वास्थ्यकर प्रभाव होता है और धर्माध्यापक यदि योग्य हुए तो धार्मिक शिक्षाका कोई वैसा अनर्थकारी परिणाम नही हो सकता। पर यह कहते हुए लोग इस बातको भूल जाते है कि ऐसे धर्माध्यापक जो धर्मके बाह्यागकी अपेक्षा मूलतत्त्वके अधिक विश्वासी है, बहुत ही कम है। कुछ लोगोका यह बौद्धिक विश्वास हो सकता है कि सब धर्म मूलत' एक है, पर इनके हृदयोमे भी अपने ही वैयक्तिक धर्मकी श्रेष्ठताका विश्वास जमा हुआ होता है। आजके शिक्षित लोग तो, धर्म शब्दके वास्तविक अर्थमे, धार्मिक रह ही नही गये है, यद्यपि अपने राजनीतिक स्वार्थोके साधनमें इन धार्मिक विश्वासो और भावोसे काम लेते उन्हे कोई संकोच नही होता।

फिर यह बात भी हमे ध्यानमे रखनी चाहिये कि कोई बच्चा धर्म और चरित्रकी बाते मौखिक शिक्षासे नही सीखा करता। उसके चारो ओर जो परिस्थिति होती है उसीसे उसको प्रेरणा मिलती है। दर्जेमे बैठकर जो मौखिक शिक्षा वह कानसे सुनता है उससे उसका चरित्र उतना प्रभावित नही होता, बल्कि उसके अध्यापको, माता-पिताओं और पड़ोसियोके चरित्र उसपर अपना पूरा प्रभाव डालते है। अत , उदाहरणार्थ, यदि हम अपने बच्चोको सेवा-भाव सिखाना चाहे तो सेवा-भावके गुणोकी प्रशसा करनेसे बच्चोके वैसे भाव नही बनेगे, बल्कि उन्हे सेवा करनेके अवसर देनेसे दूसरोकी सेवा करनेमे जो सुख और अनान्द है वह उन्हे प्राप्त होगा।

साम्प्रदयिकताको दूर करनेका एक मात्र उपाय सबका जीवनध्येय. एकसा बनाना और सबके लिए सहयोगयुक्त प्रयासके अवसर निर्माण करना है। पथ-भ्रष्ट युवकको उसकी भूल दिखाने और रास्तेपर ले आनेका तरीका यही है कि कर्ममय जीवनकी उसकी सहज इच्छाको नष्ट करे और राष्ट्रके हितार्थ और शिष्टताके साथ अपने जीवन-निर्वाहार्थ उसे कोई उपयोगी कार्य सौपे। हिन्दुस्तानका इतिहास एक नवीन कार्यको लेकर पुन लिखना होगा और हमारी समान सास्कृतिक परम्परा एक एक बच्चेतक पहुँचानी होगी। सामाजिक लोकतन्त्र हमे वह विश्वास प्रदान करता है जिससे हम जी सकते है और इस विश्वासके बलपर मानव अखण्डता साध सकते हैं और अन्तमें उन कृत्रिम दीवारोको ढाह सकते हैं जो हमलोगोको एक दूसरेसे अलग करनेके लिए धर्म और जात-पातने खडी की है। हमे अपनी समान राष्ट्रीयताको सिद्ध करनेके लिए किसी इलहामसे कोई सान्त्वना पानेकी आवश्यकता नही है। इलहामोके दिन लद गये। उनकी परख हो चुकी, वे खरे नही उतरे। हमारा यह नवीन युग हमसे वह नया कार्य कराना चाहता है जो वर्तमान धर्मसम्प्रदायोके द्वारा पूरा नही हो सकता। किसी समन्वययुक्त धर्मसे भी काम नही चलेगा चाहे वह कितना ही प्रवुद्ध और वैज्ञानिक क्यो न हो। धर्म और विज्ञानका कोई युक्तिसगत मेल बैठाना भी सम्भव नही प्रतीत होता।

लोकतन्त्र और मानव तथा सामाजिक मानसे मूलांकन, इन दो बातोपर विश्वास ही

हमारे लिए वस है। यदि यह विश्वास है तो विज्ञानके वलसे हम मानव अस्तित्वके उद्देश्योको सिद्ध कर सकते है।

शिक्षा देनेवालेका यह काम है कि शिक्षापद्धतिमे नया सुधार करे और पाठ्यक्रमके अतिरिक्त ऐसे काम निकाले जिससे वच्चेको स्कूलके अन्दरकी परिस्थितिसे ही उन सामाजिक आदर्शो और चारित्रिक दृष्टान्तोकी शिक्षा मिले जो राष्ट्रको उत्तम वनानेमे साधक होते है। हमारी शिक्षा ऐसी होनी चाहिये जिससे विचारो और भावोकी एकता परिपुष्ट हो ताकि मन वुद्धि और हृदयकी एकता साधित हो सके।

धार्मिक शिक्षासे लोग और भी अधिक हठधर्मी और साम्प्रदायिक वनेगे, वह उदार और व्यापक दृष्टि उनकी न होगी जो राष्ट्रीय एकताके लिए इतनी आवश्यक है।

साम्प्रदायिकतासे हमारे राष्ट्रको जो खतरा है उसे जो लोग समझते और उसकी तीव्र वेदना अनुभव करते है उन्हे चाहिये कि वे एकत्र होकर इस दैत्यसे जूझनेके साधन और उपाय करे। दूरदर्शी और विश्वासी नेता ही इस सास्कृतिक संकटसे तारनेमे हमारी मदद कर सकेगे।'

युवकोंको संदेश

दक्षिण एशियाके विभिन्न देशोकी युवक संस्थाओके उन प्रतिनिधियोका मैं हार्दिक अभिवादन करता हूँ जो कलकत्तेमे इस उद्देश्यसे एक सम्मेलनमे एकत्र हो रहे हैं कि स्वाधीनता और सम्यक् जीवनके निमित्त युवक समानरूपसे जो सघर्ष चला रहे हैं उसके वलकी वृद्धि हो। विदेशी साम्राज्योके विरुद्ध किये जानेवाले संघर्पमे इन देशोके युवक सदा ही आगे रहे है। इनमेसे कुछ देश स्वाधीन हो भी चुके हैं और दूसरे वडी कठिन परिस्थितियोका सामना करते हुए अपनी लड़ाई अनवरत जारी रखे हुए है। पर इतिहास क्या फैसला देगा यह स्पष्ट है और साम्राज्योके दिन गिनतीके रह गये हैं।

जिन देशोको स्वाधीनता प्राप्त हो चुकी है उन देशोमे युवकोके सघर्पका एक नवीन अध्याय आरम्भ हुआ है। वहाँ अव यह सघर्प राजनीतिक स्वाधीनताके लिए नही रहा। अव जो सघर्प है वह रोटी और शान्तिके लिए है। वहाँ युवकोको जो लडाई लड़नी है वह दरिद्रता, अज्ञान और शोपणसे है। युवकोको जीवनके विभिन्न क्षेत्रोमे नेतृत्व करने योग्य अपने-आपको वनाना है। राष्ट्रके नेताओका यह कर्त्तव्य है कि वे युवकोके अधिकार माने। मानव-इतिहासका जव एक नवीन अध्याय वन रहा है और जव हमे एक नवीन समाज-रचना निर्माण करनी है तव यह युवकोका ही काम है कि यशस्विताके साथ इस भारको उठा ले। इस नये कार्यमे यौवनसुलभ वल, साहस, त्याग और वुद्धिमत्ताकी आवश्यकता है। वुद्धिमत्ता विविध मानव-अनुभवोसे ही प्राप्त होती है। इसे छोड़ अन्य

---

१. लखनऊ रेडियोसे ता० १-३-४८ को दिया हुआ भाषण।

सभी गुण युवकोमे यथेष्टरूपसे मिलते है । बुद्धिमत्ता भी प्राप्त करनेका युवक यत्न करेगे जव वे विश्वास और उत्तरदायित्वके पदोपर वैठाये जायेगे ।

अत इस सम्मेलनमे उपस्थित प्रतिनिधियोसे मैं यह अनुरोध करूँगा कि वे राजनीतिक सघर्पकी ओर आवश्यकतासे अधिक ध्यान न दे । उन्हे यह स्मरण रहे कि राजनीतिक स्वाधीनता प्राप्त कर लेनेसे ही क्रान्ति पूर्ण नही होती । युवक-आन्दोलनके उद्देश्य इतने विशाल हो कि उनमे ऐसे सास्कृतिक और सामाजिक आन्दोलनका भी समावेश हो जाय कि जिससे सामाजिक न्याय और वौद्धिक उन्नतिका राज्य प्रतिष्ठित हो । इस नये ढग और ढाँचेमे युवक अपना काम तभी वखूवी कर सकते है और राष्ट्रके सामाजिक और सांस्कृतिक जीवनमें अपना रुतवा वढा सकते है जव कि वे अपनी नीति नये ढगपर सुधार ले और अपनी रचनात्मक क्षमताका प्रमाण दे । दक्षिण पूर्व एशियामे स्वाधीनताके उद्योगके फलस्वरूप जो नवीन राज्य निर्मित हो रहे है उनपर अपने जन्मकालसे ही वहुत वडी कठिनाइयोका सामना करनेका दु सह भार आ पडा है । इन कठिनाइयोको पार करनेके लिए राज्यके अधिकारोकी महत्ता व्यक्तिके अधिकारोको दवाकर वढायी जा रही है। संकटका सामना करनेके लिए राज्यको वलवान् तो वनाना ही होगा, पर जनताको और भी अधिक वलवान् वनाना होगा, यदि हम चाहते है कि लोकतन्त्र सुदृढ अधारपर प्रतिष्ठित हो । इन नवीन सकटोका सामना सफलताके साथ तभी किया जा सकता है जव हम जनताके अधिकारोको माने और उसमे स्वाभिमान और आत्मगौरवकी नयी चेतना जगाकर उसे प्रतिक्रियाकी शक्तियोके विरुद्ध सघटित करे ।

हिन्दुस्तानमे इस समयकी सवसे वड़ी आवश्यकता साम्प्रदायिकता और दलवादिताको जडमूलसे उखाड फेकना है । हिन्दुस्तानके युवकोको धर्मनिरपेक्ष लोकतन्त्र राज्यके हकमें अपना सघर्प जारी रखना है । जो युवक अपने इस नवप्राप्त स्वाधीनतापर उपस्थित संकटको देख रहे है उनका यह कर्त्तव्य है कि सुसवटित होकर प्रतिक्रयाकी अन्धशक्तियोको परास्त करनेका पूरा प्रयास करे । युवकोमेसे ही एक दल पथभ्रष्ट हो चुका है और युवक-सस्थाओका यह सर्वप्रधान कर्त्तव्य है कि अपने उन पथभ्रष्ट भाइयोको फिरसे अपने अन्दर ले आये । यदि यह सीमित कार्य पूरा हो गया तो मुझे विश्वास है कि लोकतन्त्रका भविष्य उज्ज्वल है । युवकोको एक वहुत वडे उत्तरदायित्वका निर्वाह करना है । मुझे आशा और भरोसा है कि वे अवसरको समझकर ऊपर उठेगे और अपने कर्त्तव्य-पालनमे उत्तीर्ण होगे ।

मैं सम्मेलनकी हर तरहसे सफलता चाहता हूँ ।

जन-शिक्षा

१

लोकतन्त्र केवल एक शासन-पद्धति ही नही है, वल्कि वह एक जीवन-प्रणाली है । अतएव लोकतान्त्रिक आदर्शोको केवल राजनीतिक क्षेत्रतक ही सीमित नही रखा जा सकता,

मानव-जीवनके प्रत्येक क्षेत्रमे उनको प्रतिष्ठित करना आवश्यक है। अगर कोई नवजात राष्ट्र दूसरे देशोकी लोकतान्त्रिक शासन-पद्धतिका ही अनुकरण करता है और केवल उसीको प्रगतिका सूचक मान लेता है, तो वह कदापि सच्चा लोकतान्त्रिक शासन स्थापित करनेमे सफल नही हो सकता। इसके लिए देशमे लोकतान्त्रिक भावनाका होना आवश्यक है। लोकतन्त्र मनुष्यके अभ्यास और परम्पराका विषय है जो काफी लम्बे और कठिन प्रयासके फलस्वरूप प्राप्त होती हैं। लोकतान्त्रिक परम्पराका निर्माण किया जाता है और और जनतामे तदनुकूल भावनाएँ विकसित की जाती हैं। जो समाज विविध धर्म और जातिगत भेदभावसे जर्जर हो गया है और जिसमे कुल, सम्पत्ति, जाति और धर्मपर आधारित विशेष स्वार्थोकी सृष्टि हो गयी है, उसके अन्दर लोकतान्त्रिक जीवनचर्याका निर्माण करनेके लिए और भी सजग प्रयासकी आवश्यकता होती है। जनतामे लोकतान्त्रिक आदर्शोके प्रति सुदृढ आस्था होनी चाहिये और उनसे ही उसका सारा जीवन-क्रम और व्यवहार अनुप्राणित होना चाहिये।

यह सत्य है कि जबतक जनतामे सामाजिक और राजनीतिक चेतना उत्पन्न नही हो जाती तबतक लोकतान्त्रिक पद्धतिकी सफलता सम्भव नही है। इसका तो उद्देश्य ही यही है कि राष्ट्रके राजनीतिक जीवनमे सबलोग विवेकपूर्वक और सक्रिय रूपसे भाग लें। राजनीतिक और आर्थिक समस्याओके प्रति जनताकी उदासीनताको दूर करना होगा और सार्वजनिक कार्योमे उसकी दिलचस्पी पैदा करनी होगी। इसलिए लोकतान्त्रिक शासन-व्यवस्थाकी स्थापनाके लिए व्यापक शिक्षा सबसे आवश्यक है। जनताकी सांस्कृतिक और शिक्षा-सम्बन्धी कमियोको सर्वप्रथम दूर करना पडेगा और सभी श्रेणियोमे साक्षरताका व्यापक प्रसार करना होगा। सास्कृतिक दृष्टिसे पिछडी श्रेणियो और क्षेत्रोपर विशेष ध्यान देना होगा और उनको शीघ्रातिशीघ्र सुसंस्कृत समाजके समकक्ष लानेके लिए कोई भी कसर उठा नही रखनी चाहिये। जबतक जन-सस्कृतिका निर्माण नही हो जाता तबतक ऐसे स्वतन्त्र समाजकी स्थापना भी नही हो सकती है जिसमे प्रत्येक नागरिक सार्वजनिक कल्याणके लिए परस्पर सहयोग कर सके।

किन्तु साक्षरता इस दिशामे पहला कदम है। इससे केवल बुद्धिका कपाट खुल जाता है। साक्षर हो जानेपर कोई व्यक्ति केवल साधारण किस्से-कहानियाँ पढ सकता है, किन्तु वह शिक्षित नही हो सकता और न अपने व्यवहारोको सामाजिक और विवेकयुक्त ही कर सकता है। वह राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक समस्याओका भी अध्ययन नही कर सकता जिनसे आज चारो ओर उथल-पुथल मची हुई है। ऐसी साक्षरतासे व्यावसायिक वर्ग अनुचित लाभ उठाते हैं और केवल मुनाफा कमानेके लिए ढेरके ढेर ऐसे सस्ते और भद्दे साहित्यको प्रकाशित करते हैं जिनसे केवल मनुष्यकी दुष्प्रवृत्तियोको उत्तेजना मिलती है। इस प्रकारके पुस्तक-व्यवहारसे जिसकी आजकल काफी धूम है, जनता शिक्षित नही होती, बल्कि पथभ्रष्ट होती है। केवल साक्षर समाजसे भी काफी खतरा है और आसानीसे वह अधिनायको और अधिकाराकाक्षियोके जालमे फँस सकता है। श्रीवालासने ठीक कहा है कि "राजनीति उपचेतन समाजका दुरुपयोग है।" समाजके ये

प्रवंचक अपने संकुचित राजनीतिक स्वार्थोकी सिद्धिके लिए प्रचारके ऐसे हथकण्डोका उपयोग करते है जिससे विभिन्न राष्ट्रोके बीच घृणा और द्वेष उत्पन्न हो । किसी भी राष्ट्रकी जन-शिक्षामे पत्रोका महत्त्वपूर्ण स्थान है । पत्रोके द्वारा ही साधारण जनताको सार्वजनिक घटनाओकी जानकारी प्राप्त होती है और जनमत तैयार होता है । स्वतन्त्र राष्ट्रोमे विभिन्न राजनीतिक पार्टियाँ अपने सिद्धान्तो और कार्यक्रमका प्रचार करनेके लिए अपना पत्र प्रकाशित करती है । इनका उद्देश्य मतदाताओको शिक्षित करना होता है, न कि मुनाफा कमाना । अक्सर उनसे काफी घाटा होता हे जिसे चन्दा या पार्टीके कोषसे पूरा किया जाता है । किन्तु जब जनता साक्षर हो जाती है तो समाजमे कुछ ऐसे समाचारपत्रोका भी आविर्भाव होता है जिनका उद्देश्य जनताको शिक्षित करना नही, वल्कि अपनी अर्थ-सिद्धि होता है । वे प्रेम, हत्या तथा अन्य अपराधोके उत्तेजनापूर्ण और सनसनीदार समाचार प्रकाशित करते है और इस प्रकार मनुष्यकी दुष्प्रवृत्तियोको जगाकर अपना घृणित स्वार्थ-साधन करते है । ऐसे पत्रोसे भयकर प्रतिस्पर्द्धा करनी पड़ती है । इससे मानव-प्रकृतिका पतन होता है, न कि उत्थान और उद्दात्तीकरण । जन-शिक्षामे उन्हे कोई दिलचस्पी नही होती है और न उनका यह उद्देश्य ही होता है । ये मानव-प्रकृतिकी कमजोरियोसे अपने राजनीतिक उद्देश्योकी पूर्ति करना चाहते है । यद्यपि अभीतक हमारे देशमे ऐसे पत्रोका उदय नहीं हुआ है, किन्तु इसमे अधिक समय नही लगेगा । एक दूसरे प्रकारके पत्रोका भी हमारे देशमे आविर्भाव हो रहा है जो औद्योगिक वर्गके स्वार्थोका प्रतिनिधित्व करते है । हमारे राष्ट्रके उद्योगपति अपना कोई राजनीतिक सगठन नही वनाते है । समाचारपत्रोको अपने हाथमे रखना ही उनके लिए अधिक लाभ-दायक होता है इस प्रकार वे प्रत्यक्ष या परोक्ष, अनेक रूपोमे सरकार और जनताको प्रभावित करते है । यहाँके उद्योगपतियोकी ओरसे इधर बहुतसे समाचारपत्र प्रकाशित हुए है और राजनीतिक पार्टियोके लिए अव अपने पत्रोका सचालन दिन-प्रति-दिन कठिन होता जा रहा है । विज्ञापनदाताओमे भी वर्ग-चेतना वढ़ती जा रही है और अव वे वामपक्षी पत्रोको विज्ञापन देना पसन्द नही करते ।

जनताको राजनीतिक विपयोकी शिक्षा तभी समुचित रूपसे प्राप्त हो सकती है, जंव कि उसे विभिन्न प्रकारकी विचार-धाराओको भलीभाँति समझने और उनमे निर्णय करनेका अवसर मिले । राज्यका कर्तव्य है कि वह जनताको ऐसी मौलिक शिक्षा प्रदान करे जिससे उसके अन्दर विवेचनात्मक शक्तिका विकास हो और उसमे आत्मनिर्णयकी क्षमता आ सके । इसमे नागरिक शिक्षाका सवसे महत्त्वपूर्ण स्थान है जिसमे न केवल राष्ट्रीय वल्कि अन्तर्राष्ट्रीय कर्तव्योका पालन करनेकी भी शिक्षा दी जानी चाहिये । स्मरण रहे कि हमलोग अव विश्व-सघकी ओर अग्रसर हो रहे है और हमारी सभी शिक्षा-योजनामे वह दृष्टिकोण निहित रहना चाहिये । हमलोग विश्वके अन्य भागोमे होनेवाली घटनाओके प्रति आँखे मूँदकर अकेले नही रह सकते । हमारी शिक्षा-पद्धति ऐसी होनी चाहिये कि हम आजके विश्वमे सुरक्षा और सुखके साथ जीवन व्यतीत कर सके । हमें अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति, सद्भाव और भ्रातृत्वकी स्थापना करने तथा अपने दायित्वका निर्वाह

करनेके लिए सदैव प्रयत्न करना चाहिये। यद्यपि यह कार्य महान् है, किन्तु पूर्ण और सम्पन्न जीवन व्यतीत करनेके लिए इसकी पूर्ति आवश्यक है। अगर हम साहसके साथ और सचेत होकर अपने कर्तव्यका पालन करेंगे तो निस्सन्देह हमारा भविष्य उज्वल है।

इस दृष्टिसे हमारी शिक्षा-प्रणालीमें क्रान्तिकारी परिवर्तन होना चाहिये। मानव-कल्याणके हेतु अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति और सहयोग प्राप्त करनेके लिए एक नये जीवन-दर्शन और नये प्रयासकी आवश्यकता है। तात्पर्य यह कि हमारी जन-शिक्षा-योजना इस प्रकारकी होनी चाहिये जिससे जीवनके प्रति स्वस्थ और असाम्प्रदायिक दृष्टिकोण बन सके, उसमें लोकतान्त्रिक और मानवीय मूल्योंकी प्रतिष्ठा हो और सामाजिक व्यवहारके नवीन सस्थानोका निर्माण हो। साथ ही शिक्षामें जीवन-पर्यन्त-प्रगति होनी चाहिये। हमलोग एक परिवर्तनशील जगत्मे रहते है। इसलिए समय-समयपर हमारे मनोभावो और विचारोंकी पुनर्व्यवस्था आवश्यक है। साहित्यिक शिक्षाके अतिरिक्त राज्यका यह कर्तव्य है कि वह समय-समयपर जनताको महत्त्वपूर्ण सार्वजनिक समस्याओंकी भी शिक्षा दे। उदाहरणस्वरूप सरकारको चाहिये था कि वह विधान-परिषद्द्वारा प्रस्तुत संविधानपर प्रत्येक नगर और गाँवमे सार्वजनिक रूपसे विचारविमर्श करनेकी व्यवस्था करती। वास्तवमे यह जनताके लिए काफी उपयोगी शिक्षा होती। यद्यपि विधान-परिषद्का संगठन बालिग मताधिकारपर नही हुआ है और जनतासे उसे सत्ता प्राप्त नही हुई है, किन्तु अगर सरकार देशभरमे विधानपर सार्वजनिक रूपसे विचार-विमर्शका अवसर और सुविधा प्रदान करती तथा जनतामे इसकी ओर दिलचस्पी उत्पन्न करती तो उससे विधानकी कुछ आधारभूत त्रुटियोका अवश्य परिमार्जन हो जाता। सन् १९३६ के सोवियत् विधानपर इसी प्रकार पहले ग्राम-पञ्चायतो और मजदूर-पंचायतोंद्वारा विचार-विमर्श हुआ था। इससे उनके अन्दर काफी चेतना आ गयी थी। इस प्रकार वहाँ राज्यकी ओरसे जनताको सचमुच एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण राजनैतिक शिक्षा दी गयी थी। इसके विपरीत हमारे देशमे नया विधान चन्द दिनोंमे तैयार हो जायगा, किन्तु उसमे जनताको जरा भी दिलचस्पी नही है। इसके लिए राजनीतिक प्रश्नोपर जनताकी उदासीनताका बहाना बिलकुल व्यर्थ है। जनता बिलकुल अनभिज्ञ है और विधान-निर्माणमे दिलचस्पी न लेनेका उसपर आरोप नहीं लगाया जा सकता। ऐसे महत्त्वपूर्ण प्रश्नोपर जिज्ञासा उत्पन्न करना सरकारका प्रमुख कर्तव्य है। डिसरैलीके शब्दोमे जनता-जनार्दनकी शिक्षा हमारा प्रधान कर्तव्य है, और उनके प्रति अपने इस कर्तव्यको पूरा करनेमे हम अभीतक असफल रहे है। हमें जनताको यह बताना है कि किस प्रकार आज उसका भाग्य-निर्माण हो रहा है, उसके अधिकारो और कर्तव्योका घोषणा-पत्र तैयार हो रहा है। इसी तरहसे हम उनके अन्दर उन नवीन अधिकारो और उद्देश्योके प्रति चेतना उत्पन्न कर सकेंगे जो भविष्यमें स्वतन्त्र हिन्दुस्तानकी आधारशिला होगी।

कहनेका तात्पर्य यह है कि राज्यको ऐसे सभी अवसरोका जब कि महत्त्वपूर्ण प्रश्नोपर जनताको शिक्षित किया जा सकता है, उपयोग करना चाहिये। साक्षरता-आन्दोलनकी अपेक्षा यह जन-शिक्षाका अधिक प्रभावशाली तरीका होगा। साथ ही इस कार्यमें राज्यको

शिक्षाके सभी साधनोका उपयोग करना चाहिये। हिन्दुस्तानमे जन-शिक्षाकी केवल योजना तैयार करनेके अतिरिक्त और बहुतसे कार्य करने है। लोकतान्त्रिक विचारधारामें समानताका भाव सन्निहित है। यह केवल राजनीतिक विषयोतक ही सीमित नही है, बल्कि इसकी परिणति जीवनके अन्य क्षेत्रोकी ओर भी है। इसके लिए शिक्षा और जीवन-निर्वाहका समान अवसर होना चाहिये और कुल, सम्पत्ति तथा अर्थनीतिपर आधारित भेदभावोका उन्मूलन और सामाजिक न्यायका होना भी आवश्यक है। लोकतन्त्रका क्षेत्र तबतक विस्तृत होता रहेगा जबतक कि सम्पूर्ण मानवजीवनमे यह व्याप्त न हो जाय।

हमारे देशमे अभी लोकतान्त्रिक प्रगतिका केवल श्रीगणेश हुआ है। यहाँ तो सामाजिक असमानता और वर्णभेद ही हिन्दू-समाजका आधार रहा है। इसके बहुसख्यक समुदायको अभीतक सभ्यताके सूर्योदयका दर्शन भी नही हुआ है और हमलोग उनके साथ अब भी मानवेतर प्राणियोके समान बर्ताव करते है। आदिवासियोकी जो सास्कृतिक दृष्टिसे बहुत पिछडे हुए हैं, नैतिक और भौतिक अवस्था सुधारनेके लिए अभीतक कुछ भी प्रयत्न नही किया गया है। ये सामाजिक और सास्कृतिक असमानताएँ जन-जीवनमे लोकतान्त्रिक भावनाओके विकासमे बहुत बडी बाधा हैं। और जबतक इन सस्थाओ और परम्पराओके जिनपर यह भेदभाव और अमानुषिक व्यवहार कायम है, विरुद्ध पूरी शक्तिसे अनवरत संघर्ष नही किया जायगा, तबतक नये लक्ष्यकी प्राप्तिकी ओर प्रगति असम्भव है।

जन-शिक्षाके प्रसार और ऐसे कानूनोके निर्माणके साथ ही, जिससे तमाम सामाजिक असमानताओका उन्मूलन हो जाता है, हमे ग्रामीण जनतामे लोकतान्त्रिक विचारो और व्यवहारोको विकसित करनेके लिए देहातोमे जोरदार सहकारी आन्दोलन चलानेकी आवश्यकता पड़ेगी। सहकारितासे केवल यह आर्थिक लाभ ही नही है कि वह मध्यम श्रेणीके मुनाफेका अन्त कर कृपिको अधिक लाभदायक बना देती है, बल्कि इसके द्वारा नवीन सामाजिक सम्बन्धोका एक सस्थान भी तैयार होता है जो प्रतिस्पर्धाके बजाय सहयोगपर आश्रित है और जनतामे भ्रातृभाव उत्पन्न करता है।

इन उद्देश्योकी प्राप्तिके लिए गैरसरकारी सस्थाएँ जो भी काम कर रही हो, किन्तु राज्यका प्रधान कर्तव्य है कि वह अपनी राजनीतिक विचारधाराके मौलिक सिद्धान्तो और तदनुकूल आचार-शास्त्रकी जनताको व्यापक शिक्षा दे। इस तरीकेसे ही जनताके सामाजिक कार्य विवेकपूर्वक होगे और इसी प्रकारकी शिक्षा उन प्रतिक्रियावादी शक्तियो-द्वारा उत्पन्न सकटसे भी राज्यकी रक्षा कर सकेगी जो समय-समयपर अपना सिर उठाकर उन मानवीय मूल्योको ही विनष्ट कर देना चाहती है जिनकी सुरक्षा तथा विकासका दायित्व राज्यपर है।[१]

---

१. आल इण्डिया रेडियो, लखनऊ, सन् १९४८ ई०

आगरा विश्वविद्यालय

उपकुलपतिजी, स्नातकवृन्द, देवियो और सज्जनो,

मैं आगरा विश्वविद्यालयके अधिकारियोका कृतज्ञ हूँ कि उन्होने मुझे आजके समारम्भके अवसरपर स्नातकोको सम्बोधितकर भाषण देने के लिए आमन्त्रित किया है। प्रत्येक विद्यार्थीके जीवनमे समावर्तन-संस्कारका दिन चिरस्मरणीय होता है और इसलिए यह उचित है कि इस अवसरपर एक अनुष्ठानका विधान हो। प्राचीन कालमे हमारे गुरुकुलोमे यह महत्त्वपूर्ण सस्कार मनाया जाता था। इस संकारके जो मन्त्र तैत्तिरीय शिक्षामे पाये जाते है उनसे उत्कृष्ट शिक्षा नही हो सकती। वे उदात्त विचार आज भी नवीन है और हमारा पदप्रदर्शन कर सकते है। उनसे गुरु-शिष्यके परस्पर मधुर सम्बन्धका पता चलता है और सबसे विशिष्ट बात यह है कि शिक्षाको हमारे पूर्वज गुरु और अन्तेवासियोका सम्मिलित कर्तव्य समझते थे। शिक्षाके क्षेत्रमे विद्यालयके अध्यापक, विद्यार्थी और व्यवस्थापक एक दूसरेके सहयोगी है। इस पुराने भावको हमे फिरसे जगाना है। जितनी ही अधिक मात्रामे इस भावको अपनायेगे उतनी ही अधिक मात्रामे हमको शिक्षाके क्षेत्रमे सफलता प्राप्त होगी। तैत्तिरीय शिक्षामे दिये हुए उपदेशसे श्रेष्ठतर उपदेश क्या हो सकता है। थोड़ेसे चुने हुए शब्दोमे कुलपति अन्तेवासियोको एक सारगर्भित उपदेश देता है। समावर्तनके अवसरपर उपदेश देनेका अधिकार कुलपतिको ही है, कि बाहरसे किसी प्रिय व्यक्तिको आमन्त्रित करनेका रिवाज-सा पड़ गया है। इस प्रथाके अनुसार आपने यह कर्तव्य इस वर्ष मुझे सौपा है। यद्यपि मैंने अपने जीवनके विशिष्ट भागको विद्यापीठकी सेवामे व्यय किया है तथापि आपके विश्वविद्यालयके विद्यार्थियोसे निकट सम्पर्कमे आनेका मुझे अवसर नही मिला है। इस दृष्टिसे मै इन स्नातकोको उपदेश देनेका अपनेको अधिकारी नही समझता। किन्तु जब आपने मुझे इस कार्यके लिए निमन्त्रित किया है तो मैं अपने अनुभवके अनुसार कुछ शब्द आपसे निवेदन करूँ।

पूर्व इसके कि मै शिक्षाके सम्बन्धमे अपने कुछ विचार आपके सम्मुख रखूं मेरा यह प्रिय कर्तव्य है कि मैं उन नवीन स्नातकोको बधाई दूं जिन्होने आज पदवी प्राप्त की है। उनके जीवनमे यह एक विशिष्ट दिन है। उनमेसे बहुतसे कार्य-क्षेत्रोमे प्रवेश करेगे और जो शिक्षा उन्होने प्राप्त की है उसका अच्छेसे अच्छा उपयोग करनेका उनको अवसर मिलेगा।

जो स्नातक अपनी शिक्षा समाप्त करके आज यहाँसे बाहर जा रहे है उनके ऊपर एक विशेष उत्तरदायित्व है। हमारा देश आज स्वतन्त्र है। हमको एक नवराष्ट्रका निर्माण करना है। इस महान् कार्यके लिए हमको जीवनके विविध क्षेत्रोमें ऐसे विद्याचरण-सम्पन्न नवयुवकोकी आवश्यकता है जो सेवाभावसे प्रेरित होकर राष्ट्रके उत्थानके कार्यके लिए अग्रसर हो, हमारे समाजकी अनेक आवश्यकताएँ है। आजके युगमे राज्य की कल्पना ही बदल गयी है। आज राज्यका केवल इतना ही कर्तव्य नही है कि वह प्रजाके जान-मालकी रक्षा करे और उनसे कर वसूल करे। समाजके विविध विभागोको पुष्ट और समुन्नत

करना आज उसका कर्तव्य हो गया है। यह वहुजन समाज का युग है, यह लोकतन्त्र और स्वतन्त्रताका युग है। आधुनिक कालमे वहुजनके हितोकी उपेक्षा नही की जा सकती। आज यह सम्भव नही है कि हम साधारण जनको शिक्षासे वञ्चित रखे। सस्कृति और ज्ञान कतिपय उच्च वर्गोतक ही सीमित नही रखे जा सकते। जवसे उद्योग-व्यवसायके युगका उपक्रम हुआ है तवसे सर्वसाधारणकी शिक्षाका भी आयोजन हुआ है। लोकतन्त्रकी आधार-शिला सार्वजनिक शिक्षा है। यह शिक्षा अभी निम्नतम अवस्थामे है। सर्वसाधारणकी शिक्षाकी कल्पना आरम्भमे प्राथमिक शिक्षातक ही सीमित थी। इससे सर्वसाधारणके लिए ज्ञानके द्वारका उद्घाटन अवश्य हुआ। किन्तु जवतक सवके लिए माध्यमिक तथा उच्च शिक्षा सुलभ न हो जावे तवतक इससे लाभकी अपेक्षा हानि ही अधिक होती है। सर्वसाधारणकी जानकारीमे थोडी वृद्धि अवश्य होती है, किन्तु वह इस प्रकार सुसस्कृत और सुसयत नही वन सकते। पुन. व्यवसायी लोग व्यापारके लाभके लिए उनकी रुचिको विकृत कर देते है। वह इस प्रकाके समाचार संगृहीत करते है जिससे अधम 'स्व' को प्रोत्साहन मिलता है। किन्तु धीरे-धीरे यह कल्पना मान्य होने लगती है कि यदि लोकतन्त्रको उन्नत करना है तो सर्वसाधारणकी शिक्षा भी उन्नत होनी चाहिये। हमारा देश तो इतना निर्धन है कि आज सर्वसाधारणकी अनिवार्य प्राथमिक शिक्षाके व्ययका भार ही सहन करना कठिन है। किन्तु यह निश्चत है कि हमको आज ही नव-समाजका आरम्भ करना है। एक स्वतन्त्र समाजके आधारको दृढ़ वनानेके लिए तथा सुन्दर भविष्यका निर्माण करनेके लिए लोकतन्त्रके इस उपकरणको समर्थ वनाना है। यदि आज माध्यमिक शिक्षा सर्वसाधारणके लिए सुलभ नही हो सकती तो प्राथमिक शिक्षणका का सूत्रपात तो करना ही चाहिये। हमे हर्ष है कि हमारे प्रान्तमे इस कार्यका श्रीगणेश हो गया है तथा १० वर्षमे इस उद्देश्यको पूरा करनेका निश्चय किया गया है। यदि हमारा शिक्षित समुदाय अपने कर्त्तव्यको पहचाने और इस कार्यमे योग दे तो कम समयमे यह प्रारम्भिक कार्य समाप्त हो सकता है और व्ययमे भी कमी हो सकती है। प्रत्येक शिक्षित व्यक्ति अपना-अपना काम करते हुए निरक्षरोको साक्षर बना सकता है। मुहल्लेमे, दफ्तरमे, हाटमे, गाँवके चौपालोमे, पाठशालामे, मन्दिर-मसजिद्मे, सर्वत्र यह कार्य अवैतनिक रूपसे किसी परिमाणमे हो सकता है। आशा है जो नवयुवक आज शिक्षा समाप्त कर जीवनमे प्रवेश कर रहे है वह इस कार्यके महत्त्वको समझेगे और साक्षरताके आन्दोलनमे सक्रिय भाग लेगे।

आज हम एक क्रान्तिकारी युगमे रह रहे है। सारा ससार इतिहासके चौराहेपर खडा है। हमारी पुरानी सस्थाएँ, हमारे क्रमागत विश्वास, जीवनके प्रति हमारी दृष्टि, हमारे सामाजिक मूल्य, हमारी विचार-पद्धति, हमारी अर्थ-नीति और समाज-नीति सव परिवर्तित हो रहे है। एक युगकी परिसमाप्ति तथा नवयुगका उपक्रम हो रहा है। ऐसे संक्रमणकालमे हम रह रहे है। ऐसे संकटके समयमें वुद्धि-विभ्रम होना स्वाभाविक है। प्रत्येकके लिए अपने कर्त्तव्यको निश्चित करना कठिन होता है। मनुष्य भय, संशय, अनिश्चितता तथा सुरक्षाके अभावके कारण चिन्ताग्रस्त होता है और वहुतसे ऐसी अवस्थामे

वास्तविकताका सामना करनेसे घबराते हैं तथा सुदूर अवनिमे अपना मुँह छिपाते हैं। हमारे दुर्भाग्यसे हमारे देशमे जो साम्प्रदायिक कलह आरम्भ हो गया है वह हमारे कार्यको और भी दुष्कर कर देता है। जनताका ध्यान मौलिक प्रश्नोसे हट कर गौण प्रश्नोकी ओर चला जाता है और इस विपाक्त तथा दूपित वातावरणमे जीवनके समाजिक मूल्य और नैतिकता भी नष्ट हो जाते हैं। विद्वेपकी इस अग्निको बुझाना शिक्षितोंका काम है। इससे भी अधिक आवश्यकता है उन उच्च मान्यताओकी रक्षा करना जिनके आधारपर ही एक सुदृढ और जन-तन्त्रात्मक राष्ट्रकी रचना हो सकती हैं। यदि हमारे नवयुवकोका, जिनके हाथमे नेतृत्व आनेवाला है, जीवनके मूल्योके प्रति आदरभाव नही होगा तो इस देशका भविष्य आशाप्रद नही हो सकता। प्रत्येकको अपने दिलको टटोलना है और आत्म-समीक्षा करनी है। हमे. सन्देह नही कि हमको अपने राष्ट्रको सवल वनाना है, इतना सुदृढ वनाना है कि उसका कोई वाल वाँका न कर सके। किन्तु यह इसलिए जिसमे एक स्वस्थ, सुसस्कृत समाज चिरकालतक मानवताका निरन्तर विकास कर सके। अत. जहाँ हमारे नवयुवकोको सैनिक-शिक्षा लेकर अपनेको देश-रक्षाके कार्यके लिए उपयुक्त वनाना है वहाँ उनको अपने समाजकी अवस्थाका अध्ययन कर अपनी समस्याओका समाधान करनेकी योग्यता भी अपनेमे प्रतिपादित करनी है। इस युगमे सफलताकी कुञ्जी आत्मसंयम साहस और सद्‌वुद्धिमे है। हमारी अर्थनीति इतनी पुरानी पड गयी है कि आज वह हमारी उन्नतिमे वाधक हो रही है। आर्थिक और सामाजिक विपमताके कारण हमारा समाज छिन्न-भिन्न हो रहा है। कठोर वर्णव्यवस्था, अस्पृश्यता, दरिद्रता और निरक्षरता हमारे समाजके अभिशाप हैं। नवयुवकोको परस्परके भेद-भावको मिटाना है तथा आर्थिक सगठनमे क्रान्तिकारी परिवर्तन कर देशकी दरिद्रता और वेकारीको दूर करना है। पुन: लोकतन्त्रकी भावनाको पुष्ट करनेके लिए सहकारिताका आन्दोलन अत्यन्त आवश्यक है। लोकतन्त्रके हम अभ्यस्त नही हैं और इसीलिए अभी इसकी परम्परा भी प्रतिष्ठित नही हुई है। अत परस्पर सहयोगकी भावनाको पुष्ट कर हम लोकतन्त्रको स्थायी वना सकते हैं तथा गाँवोमे एक नवीन जीवनका संचार कर सकते हैं। यह सव समाज-सेवाके काम नवयुवकोको करने है। यह तभी सम्भव है जव जीवनका कोई गम्भीर उद्देश्य हो और जनताकी हमारी दृष्टिमे प्रधानता हो। प्रत्येक व्यक्ति राष्ट्र-निर्माणके कार्यमे अपनी योग्यताके अनुसार भाग ले सकता है। यदि हम अपने उज्ज्वल भविष्यमे निष्ठा रखते हैं और इस वातका ज्ञान रखते है कि अपने देशके भाग्यके निर्माणमे हमारा क्या दान हो सकता है तभी हमको कार्य करनेका उत्साह मिल सकता है। नवयुवकोमे काम करनेकी अपूर्व शक्ति, उत्साह और साहस होता है। इसके साथ-साथ यदि सामाजिक आवश्यकताओंका ज्ञान भी हो और लक्ष्य हो तो हमारे नवयुवक आजकी कठिनाइयोका सामना कर सकते हैं। मुझे आशा है कि हमारे स्नातक एक नवीन दृष्टि और एक नवीन विचार-पद्धतिको लेकर जीवन मे प्रवेश करेंगे। मै जानता हूँ कि उनका पथ कंटकाकीर्ण है, उनको वनकटी करना है, उनको एक नूतन समाजकी रचना करनी है और उनके साधन और उपकरण स्वल्प और अपर्याप्त है। किन्तु यदि उनकी दृढ़ निष्ठा है और वह सत्संकल्पको लेकर अध्यवसायके

साथ आगे बढनेको तैयार है तो मुझे अपने देशका भविष्य गौरवमय प्रतीत होता है । इस शुभ संकल्पमे मै उनके साथ हूँ और मैं उनकी सफलताके लिए प्रार्थी हूँ और मेरी शुभ कामनाएँ उनके साथ है ।

अब आपकी अनुमतिसे विश्वविद्यालयकी शिक्षाके महत्त्वके सम्बन्धमे तथा उसकी क्या आवश्यकताएँ है इस सम्बन्धमे कुछ निवेदन करना चाहता हूँ । मैं ऊपर कह चुका हूँ कि लोकतन्त्रकी स्थापनाके लिए सर्वसाधारणकी शिक्षाकी परम आवश्यकता है । किन्तु इसका यह आशय नही है कि इससे उच्चशिक्षाके महत्त्वमे किसी प्रकारकी कमी आ जाती है । एक सम्पूर्ण शिक्षा-पद्धतिका हमको विकास करना है । शिक्षाके प्रासादकी आधार-शिला सर्वसाधारणकी प्राथमिक शिक्षा है । किन्तु जिस भवनका निर्माण इस आधारपर होता है उसके कई तल्ले है और सबसे ऊँचा तल्ला विश्वविद्यालयकी शिक्षा तथा हर प्रकारकी गवेषणाका है । राज्यका कर्त्तव्य है कि वह शिक्षाके प्रत्येक अगको पुष्ट करनेका प्रयत्न करे । शिक्षाका एक निरन्तर क्रम चलता रहता है और सब अग एक दूसरेसे सम्बद्ध है । अत· एकको दुर्वलकर हम दूसरेकी पुष्टि नही कर सकते । विश्वविद्यालयकी शिक्षामे उसका चरमोत्कर्ष पाया जाता है । एक सामान्य नागरिकका विकास करना तथा एक सामान्य सास्कृतिक दायादकी शिक्षाको सर्वसाधारणके लिए सुलभ कर देना सर्वसाधारणकी शिक्षाका उद्देश्य होना चाहिये । किन्तु विना उच्चशिक्षाका उचित विधान किये राष्ट्रीय जीवनके विविध क्षेत्रोके लिए विशेपज्ञ नही मिल सकते । आज विज्ञानका युग है । विज्ञानके द्वारा ही हमने प्रकृतिपर विजय पायी है ।

आज विज्ञानके बलसे मनुष्यकी दरिद्रता दूर की जा सकती है, बियाबानको हम चमन बना सकते हैं । आज मानवी शक्तिकी महती वृद्धि हुई है । यह विश्वास होने लगा है कि यह शक्ति असीम है । आज कोई भी परिवर्तन असम्भव नही प्रतीत होता है । इसके कारण आधुनिक वैज्ञानिक तथा यान्त्रिक पद्धतिने उन लोगोकी दृष्टि मौलिक रूपसे बदल दी है जो राज्यकी शक्ति सचालित करते हैं । फलस्वरूप राज्यशक्तिके मदसे उन्मत्त लोगोने समाजके लिए दुर्घटनाएँ उपस्थित कर दी हैं जो भयावह हैं ।

आज समाजमे असामञ्जस्य है । यह असामञ्जस्य तबतक दूर नही होगा जबतक हम इस बातको स्वीकार नही करते कि मनुष्यकी शक्तिकी कुछ आवश्यक सीमाएँ हैं, वह अपरिमित नही है तथा मनुष्योका एक दूसरेपर जो अधिकार हो उसकी भी सीमा मर्यादित हो जानी चाहिये । एक ओर उद्योग-व्यवसायके मालिक है, दूसरी ओर श्रमिकोका समुदाय है । इनके हितोमे तीव्र विरोध है । यह विरोध जनतन्त्रको छिन्न-भिन्न करता है । यदि समता और जनतन्त्रको सबल बनाना है तो सामाजिक सगठनका वह नमूना जिसे १९ वी शताब्दीके व्यवसाय-सगठनने कायम किया है, बदलना चाहिये ।

मुझे खेद है कि मै विषयान्तरमे चला गया । मैं निवेदन कर रहा था कि आज हम अपनी समस्यायोको विज्ञानकी सहायताके विना नही हल कर सकते । अत. राष्ट्रकी उन्नतिके लिए विज्ञानकी शिक्षाकी उन्नति करना तथा गवेपणाकी समुचित व्यवस्था करना राज्यका कर्त्तव्य है । राष्ट्र-निर्माणका काम विविध विद्याओके विशेपज्ञोके विना,

नही चल सकता। यह ठीक है कि छात्रवृत्ति देकर विदेशमे विद्यार्थी भेजे जा रहे हैं किन्तु कतिपय कठिनाइयोके कारण इनकी संख्या स्वल्प ही हो सकती है। अतः, आजकी अवस्थाको देखते हुए अपने देशमे विविध प्रकारकी शिक्षाकी विशेष व्यवस्था करनी होगी और कुछ कालके लिए बाहरसे भी विशेषज्ञ बुलाने होगे। केन्द्रीय गवर्नमेण्टको विश्वविद्यालयोंकी शिक्षाके व्ययका एक अच्छा भाग देना चाहिये चाहे वह विद्यालय प्रान्तीय विषय ही क्यों न हों। इस सहायताके बिना विश्वविद्यालयोंकी तात्कालिक आवश्यकताओंकी न पूर्ति हो सकती है और न उनका विकास ही। केन्द्रीय गवर्नमेण्टको स्वयं इस समय एक बड़ी संख्यामे विशेषज्ञोंकी आवश्यकता है और सदा रहेगी। यह विशेषज्ञ प्रान्तोंके विश्वविद्यालयोंसे ही आते हैं। इनकी संख्या अल्प है। आबादीके २२०६ मेंसे केवल एक व्यक्ति युनिवर्सिटीकी शिक्षा पाता है, जब कि रूसमे अनुपात ३०० मेंसे १ है। अतः राज्यका काम सुकर करनेके लिए तथा विविध सामाजिक सेवाओंका आयोजन करनेके लिए विशेषज्ञोंकी संख्यामे द्रुतगतिसे वृद्धि होनी चाहिये। इस कार्यका महत्त्व सर्वसाधारण-की शिक्षासे भी इस समय अधिक है। इसके लिए पोस्टग्रेजुएटकी शिक्षा तथा वैज्ञानिक अन्वेषणका समुचित प्रबन्ध तत्काल होना चाहिये। किन्तु इस कार्यके लिए प्रचुर परिमाणमें धन चाहिये। हमारे देशके विश्वविद्यालय आर्थिक सहायताके लिए राज्यपर निर्भर करते है। यह सत्य है कि हमारे देशमे दानका बड़ा महत्त्व है और इसकी परम्परा भी है। किन्तु दानका विविध रूप है और जो कुछ ब्रह्मदान मिलता है वह प्राय. स्थानीय विद्यालयोको जाता है। इस अवस्थामे केन्द्रीय गवर्नमेण्टका विशेष कर्त्तव्य है और हमारी प्रान्तीय गवर्नमेण्टको भी सहायताकी रकमको उचित मात्रामे बढ़ाना चाहिये। यह सन्तोषका विषय है कि माननीय शिक्षामन्त्रीने हालमे युनिवर्सिटी ग्रान्ट्स कमेटीका संगठन किया है और वैज्ञानिक अन्वेषणके कार्यके लिए भी एक समिति नियुक्त की है।

हमारा देश इतना विस्तृत है कि यहाँ परीक्षा लेनेवाले विश्वविद्यालयोकी भी अत्यन्त आवश्यकता है। यहाँ उच्चशिक्षा थोड़ेसे चुने हुए केन्द्रोमे नही केन्द्रित की जा सकती। लार्ड हैलडेनका तो यहाँतक विचार है कि इंगलैण्ड ऐसे छोटे देशमे भी ऐसे विश्वविद्यालय अनिवार्य है। इसलिए आगरा विश्वविद्यालयकी नितान्त आवश्यकता है। किन्तु यहाँ भी अन्वेषणको प्रोत्साहन मिलना चाहिये।

एक दूसरा विषय जिसकी ओर मैं आपका ध्यान दिलाना चाहता हूँ शिक्षाका माध्यम है। अब समय आ गया है जब हमको राष्ट्रभाषाके द्वारा ऊँची-से-ऊँची शिक्षाका आयोजन कर लेना चाहिये। जब राज काजकी भाषा बदल गयी है तब तो यह काम तेजीसे होना चाहिये। शिक्षाका माध्यम यथासम्भव तत्काल बदल जाना चाहिये। इसका यह अर्थ नही है कि हमको किसी विदेशी भाषाका अब सहारा नही लेना है। विदेशी भाषाकी आवश्यकता बहुत दिनोतक बनी रहेगी, किन्तु वह शिक्षाका माध्यम न होगी और शिक्षाके कार्यक्रममें उसको गौण स्थान प्राप्त होगा। इस सम्बन्धमे यह भी कहना आवश्यक है कि अपनी भाषामे सब विषयकी ऊँची-से-ऊँची पुस्तकें लिखी जानी चाहिये। किन्तु यह काम किसी एक विश्वविद्यालयके बसका नहीं है। इसके लिए यदि गवर्नमेण्टकी ओरसे कोई

आयोजन हो और उसमें सब विश्वविद्यालयो तथा अन्य साहित्यक संस्थाओका सहयोग लिया जाय तो अति उत्तम हो । एक निश्चित योजनाके अनुसार यह काम होना चाहिये और पाठ्यपुस्तकोकी रचना जल्द-से-जल्द हो जानी चाहिये । अंग्रेजीके द्वारा हमको यूरोपीय ज्ञान अबतक मिलता रहा है, पर स्वतन्त्र होनेके पश्चात् हमारा प्रत्यक्ष सम्बन्ध सब राष्ट्रोसे हो गया है । ऐसी अवस्थामे अपने देशमे ससारकी विविध भाषाओकी शिक्षाकी व्यवस्था हमको करनी होगी । यदि सब विश्वविद्यालय मिल-जुलकर इस कामको आपसमे बाँट ले तो यह काम सुचारु रूपसे चल सकता है ।

विद्यार्थियोकी सख्या निरन्तर बढती जाती है और इसलिए अध्यापक और विद्यार्थी का सम्पर्क भी कम होता जाता है । यह अवस्था अवाञ्छनीय है । परस्परका सम्पर्क बढ़ानेके लिए Tutorial पद्धतिका विस्तार एक अच्छा उपाय है । किन्तु यह पद्धति बड़ी महँगी है और इस कारण इसका विस्तार कठिन है जबतक कि धनका प्रबन्ध न हो । पुन. इस पद्धतिका तभी पूरा लाभ उठाया जा सकता है जब विद्यार्थी इसको अपने कालेजके जीवनका केन्द्र समझे । हालत यह है कि विद्यार्थी इसको पाठ्यक्रमका एक सामान्य अंगमात्र समझते है और जबतक परीक्षाका स्वरूप नही बदलेगा तबतक अधिकांश विद्यार्थी शिक्षाको वह महत्व नही देगे जो उन्हे देना चाहिये । इतना कहनेपर भी यह मानना पड़ेगा कि इस पद्धतिसे कुछ विद्यार्थियोको लाभ अवश्य होता है । अत समस्या यह है कि इस पद्धतिको जारी करनेके अतिरिक्त और क्या करना चाहिये जिससे विद्यार्थी अध्यापकोके निकट सम्पर्कमें आये ।

अनुशासनका प्रश्न भी इससे सम्बद्ध है । आज चारो ओरसे इस बातकी शिकायत होती है कि विद्यार्थियोमे संयमकी कमी हो गयी है । इसके क्या कारण है ? इसपर हमको विचार करना है, क्योकि बिना रोगका निदान जाने रोगका उपशम नही हो सकता । इस संयमकी कमीके अनेक कारण है । जीवनकी अनिश्चितताके कारण समाजकी सब श्रेणियोमे असन्तोष पाया जाता है । समाजके मौलिक आधारके सम्बन्धमे ही तीव्र मतभेद है । महायुद्धके पश्चात् आर्थिक कठिनाइयाँ और बढ गयी है और इसका मनोवृत्तिपर बुरा प्रभाव पडता है । आज हमारे देशमे सरकारी विभागोमे भी कुशलता और अनुशासनकी कमी आ गयी है । सारा देश इस रोगसे ग्रस्त है । आर्थिक कठिनाइयोको बिना दूर किये पूर्णरूपसे सयमका पुन. प्रतिष्ठित होना सुगम नही है । जहाँतक विद्यार्थियोका सम्बन्ध है उनके साथ सहानुभूतिपूर्वक व्यवहार कर तथा उनके निकट सम्पर्कमे आकर हम इस शिकायतको बहुत कुछ दूर कर सकते है । विद्यार्थियोको ऐसी शिक्षा देनी चाहिये जिसमें वह आत्मसंयमके महत्त्वको समझे । बाहरसे अनुशासनका आरोप प्राय. व्यर्थ हुआ करता है । हमारे विद्यालयोका वातावरण ही ऐसा होना चाहिये जिसमे असयमके उदाहरण बहुत कम हो जायें ।

हमारे विद्यार्थियोको भी समझना चाहिये कि उनको अपने राष्ट्रको सबल बनाना है तथा एक नूतन समाजका निर्माण करना है । समाजके वही नेता और निर्माता होगे । किन्तु आत्म-संयमके बिना कोई भी व्यक्ति किसी जिम्मेदारीके कामको निभा नही सकता ।

शिक्षाकालका उनको अच्छे-से-अच्छा उपयोग करना चाहिये, चरित्रगठन और शरीर-सम्पत्तिके साथ-साथ अपने देशकी वर्तमान समस्यायोका अध्ययन करना चाहिये तथा जनताके निकट सम्पर्कमे आना चाहिये । आजकी समस्याएँ नवीन है और जनताकी अभिलाषाओ और आवश्यकताओंको जाने विना कोई भी कुशल शासक नही हो सकता । राष्ट्रके उत्थानके लिए विपुल सख्यामे विद्याचरण-सम्पन्न स्त्री-पुरुप चाहिये जो विविध कार्योमे निपुण हो और जिन्होने सेवाका व्रत लिया हो ।

एक प्रश्न हमारे सम्मुख यह है कि किस प्रकार उन निर्धन विद्यार्थियोके लिए उच्च शिक्षा सुलभ कर सकते है जिनमे प्रतिभा है और जो उसके अधिकारी सिद्ध हो चुके है । उच्च शिक्षाको गरीब-अमीर सबके लिए सुलभ होना चाहिये । यह ठीक है कि सभी विद्यार्थी युनिवर्सिटी शिक्षाके अधिकारी नही है । अनुत्तीर्ण विद्यार्थियोकी बडी संख्या इसका प्रमाण है । किन्तु इसका कारण है कि विविध शिल्पकी शिक्षा प्रदान करनेकी समुचित व्यवस्था अबतक नही हो पायी है । जब ऐसी व्यवस्था हो जायेगी और जीविकाके विविध द्वार खुल जायँगे तब स्वत. ही सब विद्यार्थी युनिवर्सिटीमे प्रवेश न लेगे । किन्तु वे विद्यार्थी जो उसके अधिकारी है उससे क्यो वञ्चित रखे जायँ केवल इसलिए कि उनके पास साधनोकी कमी है । ऐसे विद्यार्थियोकी शिक्षा केवल नि·शुल्क ही न होनी चाहिये वरन् उनके भरण-पोपणका भार भी समाजको उठाना चाहिये । विलायतकी युनिवर्सिटियोमे ४१ प्रतिशत विद्यार्थियोको किसी न किसी रूपसे सहायता दी जाती है, किन्तु हमारे यहाँ ५ प्रतिशतसे अधिक विद्यार्थियोको नि शुल्क शिक्षा नही दी जाती । इस अनुपातमे वृद्धि होनी चाहिये । यह तभी सम्भव है जब गवर्नमेण्टकी ग्राण्ट बढे और साथ-साथ विश्वविद्यालय अपनी वृद्धि आप करनेके उपाय सोचें । गवर्नमेण्टके सम्मुख अनेक काम है और उनमेंसे कई समान रूपसे आवश्यक है । उसकी आय भी सीमित है । अत. केन्द्रीय गवर्नमेण्टको युनिवर्सिटी-शिक्षाके लिए पर्याप्त धन देना चाहिये जिसमे गरीब विद्यार्थियोको भी पूरी सहायता दी जा सके तथा पोस्टग्रेजुएट-शिक्षा और गवेपणाका उचित प्रबन्ध किया जा सके । गरीब विद्यार्थियोकी सहायताके लिए हमारे प्रान्तके धनवान सज्जनोको पर्याप्त संख्यामे छात्रवृत्ति देनी चाहिये । विद्यादानसे बढकर कोई दान नही है और इसके पानेके सबसे बड़े अधिकारी वह प्रतिभावान विद्यार्थी है जो दरिद्रताके कारण अपनी शक्तियोके विकासका अवकाश नही पाते । प्रान्तके डिस्ट्रिक्ट बोर्ड और म्युनिसिपल बोर्डोको भी इस दिशामे कुछ करना चाहिये । उन्हे अपने जिले और शहरके उन विद्यार्थियोमेसे कुछको चुनकर छात्रवृत्ति देनी चाहिये जो उसके पात्र है ।

मैने कुछ ऐसे प्रश्नोके ऊपर चर्चा की है जो मुझे अत्यन्त आवश्यक मालूम पडे । किन्तु विश्वविद्यालयोको सफलता तभी मिल सकती है जब अध्यापकोका पुरस्कार ऐसा हो जिससे उनको सन्तोष हो और उनके चित्तकी एकाग्रता हो सके । आज वस्तुओका मूल्य इतना बढ़ गया है कि लेक्चररका काम आजके वेतनमे किसी प्रकार नही चल सकता । अतः पुरस्कारमे उचित वृद्धि सब वर्गके अध्यापकोको हो जानी चाहिये; ऐसा होनेसे ही हमारे अध्यापक दत्तचित्त होकर शिक्षाका काम कर सकते है । उचित पुरस्कारके न

मिलनेसे हमारे यहाँ योग्य शिक्षकोकी नितान्त कमी है और यह कमी तभी पूरी हो सकती है जब शिक्षकोकी आर्थिक अवस्थामे सुधार किया जाय। ऐसा करनेसे ही हम उनको समाजमे सम्मानका स्थान दिला सकते है।

मैं एक वार फिर उन सव स्नातकोको वधाई देता हूँ जो आज डिग्री ले रहे है। विद्यालयमे रहकर वौद्धिक और नैतिक शिक्षा उन्होने प्राप्त की है। उसका उचित उपयोग करनेका अब समय आया है। मै आशा करता हूँ कि जिस किसी क्षेत्रमे वह काम करे वह कार्यकुशल सिद्ध होगे और अपने व्यवहार और चरित्रसे अपने विश्वविद्यालयका गौरव वढावेगे। मै उनकी उन्नतिकी कामना करता हूँ और प्रार्थी हूँ कि उनको जीवनमे सफलता प्राप्त हो।[1]

अध्यापकोंका कर्त्तव्य

सर मॉरिस गॉयर, स्वागत-समितिके अध्यक्ष एवं सदस्यो, देवियो तथा सज्जनो,

विश्वविद्यालयोके अध्यापकोके इस सम्मेलनका सभापतित्व करनेके लिए जो दया और उदारताके साथ आपने मुझे आमन्त्रित किया है उससे मैं अपनेको गौरवान्वित समझता हूँ।

आपलोग देशके विभिन्न भागोसे पधारे है एक ऐसी समस्याका समाधान करनेके लिए जो आप सवकी सार्वजनिक समस्या है, किन्तु इससे भी वढकर आपलोगोके पधारनेका हेतु है अपने अन्दर भावनाओका वह एकीकरण करना जिसके द्वारा आप अपने उद्देश्योको प्राप्त कर सके और उन आदर्शोको चरितार्थ कर सके जो आप सवके आदर्श है। मै एक विश्वविद्यालयका अध्यक्ष हूँ, पर मेरा काम मुख्यत शासनात्मक है। फिर भी मैं आपको विश्वास दिलाऊँगा कि मै आपके साथ सम्वन्ध जोडनेका दावा कर सकता हूँ, क्योकि मेरे जीवनका सर्वश्रेष्ठ अश एक राष्ट्रीय विश्वविद्यालयमे अध्यापन करनेमे वीता है। मैं मुख्यतः अध्यापकोकी विरादरीमे ही हूँ और अध्यापक होनेके ही नाते मैं आपके आह्वानपर यहाँ उपस्थित हुआ हूँ। आपके सम्पर्कमे आने और आजकी सवसे अधिक जरूरी समस्याओके विषयमे विचार-विमर्श करनेके इस अवसरका मै स्वागत करता हूँ।

यह सत्य है कि हमलोगोने राजनीतिक स्वतन्त्रता प्राप्त कर ली है, पर ऐसा प्रतीत होता है मानो अव भी हमलोग पुरानी दुनियामे ही है। यह कहते वडा खेद होता है कि मुझे देशमे अपने चारो ओर वह युवकोचित उल्लास और साहसका वातावरण नही दीखता जिसके द्वारा एक नवजात राष्ट्र अनुप्राणित होता है। ऐसा लगता है कि अभी हमलोगोमे अपने नये जन्म और नयी स्थितिकी चेतना नही जागी है। खेदकी वात है कि हम पुरानी विचारधारामे ही पडे है और अपने नये उत्तरदायित्व और कर्त्तव्योको ठीक-ठीक

[1] ८ नवम्वर सन् १९४७ ई० को पदवीदानके अवसरपर दिया हुआ भाषण।

नही समझ रहे है। हमारे विचार-क्रममे गति नही है और हममे वह सामाजिक चेतना भी नही है जिसके द्वारा ही हम अपनी समस्याओको ठीक तरहसे समझ सकते है। हम ऐसे समयमे है जो सतत परिवर्तनका युग है। इसमे अब गतिहीन जड़ीभूत समाजकी मध्ययुगीन भावनाका कुछ काम नही रहा, और यदि हममे अपनी नयी परिस्थितियो और नयी आवश्यकताओंके साथ सामंजस्य स्थापित करनेकी बुद्धिमानी और साहस नही है तो फल अवश्य ही घातक होगा।

यदि हम सर्वनाशसे बचना चाहते है तो हमे इस नयी चुनौतीका सामना करना ही है और यह तभी सम्भव होगा जब हम आत्मपरितोषकी वृत्ति और बौद्धिक जड़त्वको त्यागकर वर्तमान समस्याको नयी रुचि एवं नये दृष्टिकोणसे देखना आरम्भ करें। इस सम्बन्धमे अध्यापकोका दायित्व सबसे बढकर है। हमलोग नवभारतके नागरिक बननेके पात्र नही रहेंगे यदि हम इस अवसरके स्तरतक ऊपर उठ न सके और अपने कर्तव्योका पालन नैतिकताके साथ न करें।

इस लक्ष्यकी सिद्धिके लिए हमे पहले अपना शिक्षा-सिद्धान्त फिरसे निर्धारित करना होगा और नये ढंगसे शिक्षा-पद्धति चलानी होगी। मध्ययुगीन शिक्षामे धनिक-वर्गकी प्रधानता थी, अब इस युगकी शिक्षा मुख्यत जनतन्त्रात्मक होगी। यदि हम अपना जीवनक्रम सुखमय और सुव्यवस्थित बनाना चाहते है तो हमे शिक्षा-सम्बन्धी नवीन सिद्धान्त और जीवन-सम्बन्धी नवीन मान्यताएँ स्वीकार करनी होगी। शिक्षाका सच्चा ध्येय ऐसे व्यक्तित्वके निर्माण एवं विकासमे सहायता पहुँचाना है जिसमे ज्ञान, सहज प्रवृत्तियाँ और भाव एकीभूत होकर एक सम्पूर्ण जीवन बने। साथ ही इस पूर्ण विकसित व्यक्तित्वके लिए यह आवश्यक है कि सामाजिक जीवनके साथ घनिष्ठ सम्बन्ध स्थापित हो। समाजका अङ्ग होकर ही व्यक्ति अपनी पूर्णता प्राप्त कर सकता है। हमारी गति शनै.-शनैः एक विश्व-समाजकी ओर है, और यदि हम इस विश्व-समाजके नागरिककी भाँति रहना किंवा व्यवहार करना नही सीख जाते, तो आनेवाले युगकी चुनौतीका सामना हम नही कर सकेंगे। इसके साथ ही सामाजिक और आर्थिक संस्थाएँ उत्तरोत्तर इतनी पेंचीली होती जा रही है कि यदि प्रत्येक नागरिक वर्त्तमान समस्याओकी ओर अपेक्षित अभिरुचिके साथ ध्यान नही देगा, तो हमें दु खद स्थितिका अनुभव करना होगा। अतएव अध्यापक-वर्गको नये संसारमे बहुत महत्त्वपूर्ण कर्त्तव्यपालन करने है। अब वे जनताके प्रतिदिनके जीवनसे पृथक् नही रह सकते। उन्हे समाजकी बौद्धिक एवं व्यावहारिक समस्याओके सम्बन्धमे सतर्क और सचेष्ट रहना होगा। विश्वविद्यालयका वह पुराना वातावरण जिसमे केवल बौद्धिक अध्ययन एव विकास हुआ करता था, अब एकदम बदलना होगा। अध्यापकवर्गको अपनी उदासीनता, विराग, आलस्य और निष्क्रियताका त्याग करना पड़ेगा और देशकी राजनीतिक एवं सामाजिक समस्याओके समाधानमे सक्रिय भाग लेना होगा। आगे बढ़कर उसे नये समाजकी व्यवस्थामे सक्रिय योग देना होगा। उसे यह निर्णय करना होगा कि पुरानी सस्कृति और शिक्षा-सिद्धान्तका कितना अंश सुरक्षित रखना है और कितना अश केवल रूढ़िगत महत्त्वका, पर यथार्थमे नि.सार होनेसे निकाल

फेकना है । इस क्षेत्रमे सफल होनेके लिए आवश्यक है कि अध्यापक-वर्गमे नवीन उद्देश्यो और आदर्शोपर दृढ विश्वास और आस्था हो और इन्हे प्राप्त करनेके लिए वह उत्साहके साथ दृढप्रतिज्ञ होकर पूरा प्रयत्न करे ।

अध्यापक-वर्ग अपने कर्त्तव्य और व्रतका पूर्ण परिपालन कर सके, इसके लिए उसका स्तर उन्नत करना होगा और उसकी जीविकाकी ऐसी व्यवस्था करनी होगी कि आर्थिक कठिनाइयोसे मुक्त होकर वह एकचित्त हो अपने जीवन-कर्त्तव्यके पालनमे लग सके । उसकी बौद्धिक और अध्ययनगत स्वतन्त्रता अक्षुण्ण रखनी होगी और सभी प्रस्तुत विषयोपर अपने विचार प्रकट करनेकी स्वतन्त्रता उसे देनी होगी । सव विपयोमे उसका रुख तटस्थ तो नही हो सकता, पर उसकी विचारधारा पूर्वग्रहदूषित न हो, हर चीजको वह निष्पक्ष होकर देख सके । छात्रोके समक्ष किसी विपयपर दूसरोके विचार और दृष्टिकोण सत्यता और सचाईके साथ रख सके । अध्यापक-वर्गकी विचारधारा किसीके द्वारा दवायी न जाय और न कोई अधिकारी राजनीतिक दल उसे विवश कर उससे अपने विशेष स्वार्थोकी सेवा ले । विचारोकी स्वतन्त्रता नितान्त रूपसे आवश्यक है, क्योकि जवतक अध्यापक और उसके छात्रोके बीच विचारो और भावनाओका उन्मुक्त आदान-प्रदान नही होता तवतक ऐसे सामाजिक जीवनका विकास नही हो सकता जो गतिशील हो । हम अपने विद्यार्थी-वर्गमे विनय एवं शीलके होनेकी अपेक्षा करते है । पर यह किसी वाह्य शक्ति किंवा अधिकारका फल न हो प्रत्युत उनकी अपनी आन्तरिक प्रवृत्तियोसे ही उद्भूत और विकसित हो । इस प्रकार उनमे स्वतन्त्ररूपसे सोचने और कार्य करनेकी शक्ति वढेगी ।

किन्तु इस प्रकारके सच्चे शिक्षा-सिद्धान्तोको चरितार्थ करनेमे उपयोगी होनेके लिए अध्यापकको स्वय अपनेको फिरसे शिक्षित करना और उसे जो कार्य और व्रत पालन करना है उसके लिए उपकरण एकत्र करके सन्नद्ध होना पडेगा । प्रत्येक व्यक्तिके लिए शिक्षाका एक निरन्तर क्रम होना चाहिये । ससारके द्रुतगामी परिवर्तनको देखते हुए हमे भी समय-समयपर अपनी विचार-बुद्धिको फिरसे उसके साथ मिलानेकी आवश्यकता है । अध्यापक अपने आपको सुसगठित भी करे ताकि वे शिक्षासमस्याओपर विचारविमर्श करनेके लिए वारम्वार एकत्र हो सके । यही उपाय है जिसके द्वारा वे अपने वैध स्वत्वोकी रक्षा कर सकते है और समाजके सुधार एव उन्नयनके क्षेत्रमे अपना प्रभाव डाल सकते है । हम इस वातकी ओर भी आपलोगोका ध्यान दिलाना चाहते है कि देशमे एक ऐसे राष्ट्रीय सघटनके होनेकी आवश्यकता है, क्योकि अभी ऐसा कोई सगठन नही है जिसमे देशके सभी वर्गोके अध्यापकोका समावेश हो । यह सत्य है कि विभिन्न कोटिकी पाठशालाओ और अध्यापकोके संगठन अलग-अलग भी हो सकते है, परन्तु यह कोई कारण नही है कि सभी कोटियो एव वर्गोके अध्यापक मिलकर अपनी एक राष्ट्रीय सस्था न वनाये । यह आवश्यक है कि सब प्रकारके अध्यापक अपनी एक प्रकारकी एकताका अनुभव करे । इस प्रकार वे अध्यापक जो अध्यापकोके क्रममे सवसे नीचे है, अपनेसे वडे अध्यापकोके सम्पर्क, राय एवं पथ-प्रदर्शनसे लाभान्वित होगे और यह अनुभव करेगे कि सभी अध्यापक मिलकर एक

सम्मिलित बिरादरीमें शामिल हैं। साथ ही इस प्रकारके सम्पर्कसे अध्यापकोंके उन्नयन और सुधार-कार्यको बल और प्रगति प्राप्त होगी।

जब अध्यापकोंकी एक राष्ट्रीय संस्था स्थापित हो जायगी तभी वे अध्यापन करनेवाले लोगोंके विश्वव्यापी संगठनकी बात सोच सकेंगे। सन् १९४९ के अगस्त मासमें न्यूयार्कमें ऐसी एक संस्थाकी स्थापना एक सम्मेलनके अवसरपर हुई थी, जिसमें ३० राष्ट्रोंके प्रतिनिधि सम्मिलित हुए थे। इस संस्थाकी स्थापना ठीक समयसे ही हुई थी। शिक्षामात्र एक सहयोगी प्रयास है और सहकारिताके उपायोंके अनुसरणद्वारा ही हम वैज्ञानिक एवं सांस्कृतिक शोधके कार्यका विस्तार करनेकी आशा कर सकते हैं। मानव-कल्याणको अग्रसर करनेके निमित्त भी अन्तर्राष्ट्रीय सहकारिता और सहानुभूतिपूर्ण समझदारीकी आवश्यकता है। यह बात भी स्पष्ट है कि राष्ट्रोंके बीच जो आपसकी गलतफहमी है उसे दूर करके और समानताके सिद्धान्तपर आधारित पारस्परिक कल्याणभावनाके ही द्वारा हम स्थायी शान्ति एवं सुरक्षा स्थापित करनेकी आशा कर सकते हैं। भारतवर्षके लिए यह वाञ्छनीय नहीं होगा कि वह सबसे पृथक् और इस अन्तर्राष्ट्रीय प्रयासके बाहर रहे। उक्त संस्थाके ध्येय प्रशंसनीय हैं। उसका उद्देश्य है कि संसारकी जितनी अध्यापकों-की संस्थाएँ हैं सबमें ऐक्य स्थापित हो जाय ताकि सभीको बिना किसी भेदभावके पूर्ण एवं निर्बाध शिक्षा प्राप्त हो सके। अध्यापकोंका स्तर ऊँचा उठे और अन्तर्राष्ट्रीय सहकारिताके लिए उपयुक्त सुयोग प्रशस्त हो। किन्तु मेरा विनम्र मत है कि सबसे पहले हम एक ऐसी राष्ट्रीय संस्था स्थापित करें जिसमें भारतवर्षके सभी कोटियोंके अध्यापक आ जायँ, ताकि विश्वव्यापी संगठनमें भारतका समुचित प्रतिनिधित्व हो सके और यह संस्था देशके अध्यापकोंकी बिरादरीका प्रतिनिधित्व कर सके।

मैं जानता हूँ, बहुतसे अध्यापक इस विचारके हैं कि अध्यापकोंका संगठन न केवल अनावश्यक है, अपितु यह उनके लिए अशोभन है, क्योंकि उनकी समझमें इसमें ट्रेड युनियन-वादकी गन्ध आती है। मेरा मत इसके विपरीत है। हड़ताल करना अध्यापकोंके गौरवके लिए अनुचित जँच सकता है, पर मुझे ऐसा कोई कारण नहीं दीखता कि अपने हितोंकी रक्षाके लिए और साथ ही सांस्कृतिक उद्देश्योंकी उन्नतिके लिए अध्यापक अपनेको सुसंगठित क्यों न बनावें। हर जगह ऐसी संस्थाएँ हैं। अध्यापकोंको अपनी स्वयं शिक्षाके लिए भी इनकी आवश्यकता होती है। मेरी समझमें नहीं आता कि यदि अध्यापक अपने लिए अपनी संस्थाद्वारा जीविकाका समुचित स्तर प्राप्त करनेका प्रयत्न करता है तो उसके लिए यह अप्रतिष्ठाकी बात क्यों समझी जाती है। हमें भूलना नहीं चाहिये कि अध्यापकोंका वेतन सबसे कम है। पर दूसरे पेशोंके लोगोंके साथ जिन्हें इनके बराबर ही योग्यता प्राप्त करनी पड़ती है, यदि इनकी तुलना की जाय तो सामाजिक स्तरकी दृष्टिसे अध्यापकगण दूसरोंकी अपेक्षा नीचे मिलते हैं। मुख्यतः यही कारण है कि प्रत्येक देशमें ट्रेंड अध्यापकोंकी बहुत ही कमी है और यहाँ युद्धके बादसे सभी देशोंमें प्राथमिक पाठशालाओंके अध्यापकोंका काम बहुत नीचे गिरा है। संयुक्त राज्य अमेरिका जैसे समुन्नत देशमें भी प्राथमिक

पाठशालाओके लिए अध्यापकोकी कमी है और इसका कारण यही बताया जाता है कि इस वृत्तिमे आर्थिक लाभकी कमीके कारण पर्याप्त आकर्षण नही रहा ।

इस युगमे जब कि जीवनकी बहुमूल्य वस्तुएँ धनिकोके ही घर भरती हैं और धन ही सब बातोका मापदण्ड बन गया है तब बेचारा अध्यापक अपने वेतनमे वृद्धि और अपने जीवनका स्तर सुधारनेके लिए आन्दोलन करता है तो इसमे वह दोषका भागी नही। अध्यापक समाजकी धुरी है, क्योकि शिक्षा राष्ट्रके पुनरुज्जीवनकी सभी योजनाओका महत्त्वपूर्ण अग है । अतएव सरकार और स्थानीय अधिकारी दोनोके लिए उचित है कि ऐसी व्यवस्था करे कि नयी योजनामे अध्यापकवृन्द अपने उचित स्थान एवं स्तरपर आसीन हो । अच्छीसे अच्छी ऐसी व्यवस्था करनी चाहिये जिसमे अध्यापक अपनी अध्यापनवृत्ति त्यागकर अच्छे वेतन और जीवनके उत्तम उपकरणोकी प्राप्तिके लिए अन्यत्र न चले जायँ । जब मै देखता हूँ कि हमारे उत्तम-से-उत्तम अध्यापकोमेसे लोग विश्व-विद्यालय छोडकर सरकारी नौकरी या उद्योग-धन्धोमे काम करनेके लिए चले जाते हैं जिसके कारण राष्ट्रकी शिक्षाको बडा धक्का पहुँचता है तो मुझे बड़ी वेदना होती है ।

इस प्रसगमे मै यह भी कह देना चाहता हूँ कि सारे देशमे विश्वविद्यालयोके अध्यापकोंका केवल एक ही सगठन होना वाछनीय है ।' मुझे मालूम हुआ है कि अखिल भारतीय विश्वविद्यालयाध्यापक सघ (All India University Teachers' Federation) नामकी एक सस्थाका जन्म हो चुका है । गत वर्ष इसका सम्गेलन हुआ था । उसने अपना विधान बना लिया है और आगामी वर्षके प्रारम्भमे ही यह अपना प्रथम अधिवेशन करने जा रहा है । यह सत्य है कि कुछ विश्वविद्यालय अभी इसमे सम्मिलित नही हुए है और अभी इसका कार्य ठीक तरहसे प्रारम्भ नही हो पाया है । आशा है कि हमारा यह सम्मेलन इसपर ध्यान देगा और यह स्थिति नही आने देगा कि ऐसी दो सस्थाएँ बन जायँ जो परस्पर प्रतिद्वन्द्विता एव ईर्ष्या करने लगे । दोनो सस्थाओके सूत्रधारोको चाहिये कि दोनोके सगठनको एक और सुसगत करनेके लिए जो कुछ सत्यताके साथ सम्भव हो, अवश्य करे । मै नही जानता कि इनके बीच वे कौनसे महान अन्तर है, जिनके कारण दोनो एक दूसरेसे अभीतक पृथक् हे, चाहे जो अन्तर हो, वे इतने महत् नही हो सकते कि उनके कारण ऐक्य स्थापित न हो सके । मै नही समझता कि उनके दृष्टिकोण भिन्न हैं। जब उद्देश्यो और ध्येयोमे ऐक्य है तो कोई कारण नही है कि सगठनगत ऐक्य क्यो न स्थापित हो । यदि दोनो ओर सद्भावना हो, तो मुझे आशा है कि इस सस्थाके सगठनके पूर्व ही दोनो सस्थाएँ मिलकर एक हो जायँगी । स्थानिक स्वार्थकी तथा ऐसी ही अन्य बाते कभी-कभी व्यवधान उपस्थित कर सकती है, पर ये बाते ऐसी नही है कि उनका अतिक्रमण सम्भव न हो । मै इस उत्तम कार्यमे अपनी सेवा अर्पित करता हूँ और आपलोगोसे तथा उस दूसरी सस्थाके सदस्योसे अपील करता हूँ कि इस उद्देश्यकी सिद्धिमें मेरे साथ सहयोग करे । आशा है, आपलोग इस विषयपर एक प्रस्ताव रखेगे और ऐसे नियम भी निर्धारित करेंगे जिनके द्वारा विश्वविद्यालयोके अध्यापकोके बीच ऐक्य स्थापित हो सके । यदि

हम एक साथ होनेके लिए सभी सम्भव उपायोका उपयोग नही करते तो हमारा श्रीगणेश शुभ नही होगा ।

मुझसे यह भी अपेक्षा है कि जिन समस्याओकी चर्चा मै इस अभिभाषणमे करूँगा उनके विषयमे अपने मत भी प्रकट करूँ । मुझे निश्चय है कि आप उनपर ध्यान देगे और उनके विषयमे विचार करेगे । ऐसी भी समस्याएँ है जिन्हे आप वहुत महत्त्वपूर्ण समझेंगे, किन्तु इस अल्पकालीन अधिवेशनमे उनपर विचार-विमर्शके लिए पर्याप्त समय नहीं मिल सकेगा । जैसा कि आपके परिपत्रसे सुस्पष्ट है आप लोग विशेष रूपसे इस प्रश्नपर विचार करना चाहते हैं कि विश्वविद्यालयोमे शिक्षणका माध्यम क्या हो ।

इस अन्तिम प्रश्नपर ही मैं सर्वप्रथम विचार करूँगा, क्योंकि इसीपर सरकार एवं विश्वविद्यालयोका विशेष ध्यान है, अत. इसका समाधान तुरत होना चाहिये । यह तो सभी मानते हैं कि कमसे-कम हाई स्कूलकी शिक्षातक मातृभाषाको ही शिक्षाका माध्यम रखना चाहिये । किन्तु विश्वविद्यालयमे पहुँचनेपर शिक्षाका माध्यम क्या हो, इस विषयमे एकमत नही है । इण्टर-युनिवर्सिटी वोर्डने तो मातृभाषाको विश्वविद्यालयमे भी शिक्षाका माध्यम रखनेके विरुद्ध मत प्रकट किया है । परन्तु सेण्ट्रल ऐडविजरी वोर्ड आव् एजुकेशनने यह राय दी है कि उच्चतर शिक्षालयोमे भी मातृभाषाके ही द्वारा शिक्षा दी जाय और इण्टरयुनिवर्सिटी वोर्ड उसके साधन और उपाय सूचित करे । यह सिफारिश इस विषयकी खोज करनेकी ही सिफारिश थी । इस क्षेत्रमे एक कदम और आगे वढा, जव अखिल भारतीय शिक्षा-सम्मेलनने अपने जनवरी सन् १९४८ वाले अधिवेशनमे वाइसचांसलरो और कुछ विशेपज्ञोकी एक समिति इस विषयपर सुनिश्चित विचार देनेके लिए नियुक्त की । इस समितिकी वैठक सन् १९४८ के मई मासमे हुई और वहुत कुछ विचार-विमर्शके वाद यह निश्चय हुआ कि विश्वविद्यालयोकी शिक्षा भी मातृभाषाके ही माध्यमद्वारा दी जाय । इस समितिके समक्ष एक विचार यह रखा गया था कि विश्वविद्यालयोमे राष्ट्रभाषाको शिक्षाका माध्यम वनाया जाय, किन्तु उन लोगोने इसे स्वीकार नही किया । समितिसे यह कहा गया कि अग्रेजी भाषाने कम-से-कम एक काम वहुत अच्छा यह किया कि उससे हम सवको विचार करने और उन्हे व्यक्त करनेका एक माध्यम मिला और इस प्रकार देशमे एक एकीकरण सिद्ध हुआ । देशके सभी विश्वविद्यालयोमें एक ही माध्यम रखनेकी महत्त्व-पूर्ण उपयोगितापर जोर दिया गया था और यह भी कहा गया था कि इस प्रकार जो सुभीता प्राप्त होगा वह राष्ट्रभाषाका केवल साधारण ज्ञान प्राप्त करनेके लिए उसे अनिवार्य रूपसे पढानेसे नही सिद्ध हो सकेगा । मेरी समझमे नही आता कि राष्ट्रभाषाको यदि विश्व-विद्यालयोमे शिक्षाका माध्यम नही वनाया जाता तो राष्ट्रीय महासभाका कार्य किस प्रकार सम्पादित किया जायगा । राष्ट्रभाषा अपने समुचित स्तरपर तभी स्थापित हो सकेगी और राष्ट्रीय महासभा एवं अन्य राष्ट्रीय सभाओमे विचार-विमर्शका समुचित माध्यम तभी वन सकेगी, जव उसे सभी विश्वविद्यालयोमे शिक्षाका माध्यम वना दिया जायगा । इसके साधारण ज्ञानके द्वारा ही व्यवस्थापिका सभाओमे होनेवाले विचार-संघर्षोमे सदस्य अपना पूर्ण सहयोग देनेमे समर्थ नही होगे । महासभामें बहुतसे महत्त्वपूर्ण एवं पेचीदे

राजनीतिक और अर्थशास्त्र-सम्वन्धी प्रश्नोपर वाद-विवाद होता है और जबतक किसीको उसकी भाषाके माध्यमसे अपने सर्वोत्तम विचार व्यक्त करनेका अभ्यास नही होता, तवतक उसे परामर्शोमे भाग लेनेमे सकोच होगा और यदि किसी प्रकार उसने कुछ साहस किया भी तो उसका भाषण भटकता हुआ और अप्रभावशाली होगा और इस प्रकार वह सदस्य भाषणकलाकी दक्षतासे कोई प्रभाव नही पैदा कर सकेगा। ऐसे सदस्यमे एक कमी सदैव बनी रहेगी। सम्भव है कि उसमे विपय-विशेपके सम्वन्धमे चलनेवाले विचार विमर्शमे महत्वपूर्ण योग देनेकी क्षमता हो, पर सभामे उसके मतका कोई प्रभाव इसलिए नही पडेगा कि वह राष्ट्रभापामे अपने विचार उन्मुक्तरूपसे विना किसी हिचकिचाहटके व्यक्त करनेकी क्षमता नही रखता। जव राष्ट्रका सव कार्य राष्ट्रभाषाके द्वारा होने लगता है तभी राष्ट्रके भाव, और आदर्श सव एक जीवन वनते है। सोवियत रूसका उदाहरण हमारे सामने विद्यमान है। वहाँ रूसी भापा प्रान्तीय भाषाओके साथ ही एक अनिवार्य विषयकी भाँति आरम्भसे ही पढ़ायी जाती है।

यदि कोई अपनी भापाके विपयमे पक्षपात रखता है तो यह वात स्वाभाविक ही है और समझमे आने लायक है। मै यह भी जानता हूँ कि जिन लोगोकी मातृभाषा पर्याप्त रूपसे समृद्ध है, उनके लिए तो किसी दूसरी भापाको उच्चतर शिक्षाके माध्यमके रूपमें स्वीकार करना और भी कठिन हो जाता है। किन्तु जो लोग सदैव यह समझते रहे हैं कि अग्रेजोसे हमारा सम्पर्क भगवानकी देन और छिपा हुआ वरदान है, और जिन्होने अग्रेजी शिक्षाकी वडी प्रशसा इसीलिए की है कि उसने देशके एकसूत्रीकरणमे वडा काम किया है, उन्हे तो हमारे राष्ट्रीय जीवनकी नयी व्यवस्थामे राष्ट्रभाषाको वही स्थान देनेमे कोई संकोच न होना चाहिये। मै यह स्पष्ट कर देना चाहता हूँ कि मेरे प्रस्तावकी परिधि वहुत सीमित है, क्योकि मै यह नही चाहता कि राष्ट्रभापा माध्यमिक शिक्षाके माध्यमके रूपमें अथवा प्रान्तीय सरकारोके शासनके कामोकी भाषाके रूपमे स्वीकार की जाय। मैं समझता हूँ कि आज शायद यह सम्भव भी नहीं है कि दूसरे प्रान्तोके लोगोको यह प्रस्ताव स्वीकार्य हो सके। किन्तु मुझे निश्चय है कि बहुत दिनोके पूर्व ही उन्हे स्वानुभवसे यह विश्वास हो जायगा कि हमलोगोमेसे कुछने जो प्रस्ताव राष्ट्रके सामने रखा है उसका अनुसरण किये विना अपने देशका काम आगे नही चलेगा। फिर भी, मैं कहता हूँ, हमें इस विषयमे अपने दिमाग खुले रखने चाहिये और स्थानीय भावनाओको ऐसे समय अपने ऊपर अधिकार नही जमाने देना चाहिये जव हम राष्ट्रीय महत्वकी किसी समस्याके विषयमे कोई निर्णय करते हो। मैं यह भी स्वीकार करता हूँ कि जवतक कि हममे विश्वविद्यालयोके लिए शिक्षाके माध्यमके विपयमे एकमत नही होता तबतकके लिए राष्ट्रीय महासभामे सदस्योको उसी भाषामे वोलनेकी स्वतन्त्रता दी जाय जिसमे वे वोलना चाहे। स्पष्ट है कि ऐसे मामलोमे कोई वात अनिवार्य नही की जा सकती और दूसरोके मनमे विश्वास पैदा करके ही तथा प्रचारद्वारा ही कार्यसिद्धिकी आशा की जा सकती है।

जिस प्रकार राष्ट्रभाषाको उच्चतर शिक्षाके माध्यमके रूपमे स्वीकार कर लेनेसे सारे देशके लिए विचार करने और उसे व्यक्त करनेके लिए एक माध्यम मिल जायगा उसी

प्रकार एक ही लिपिद्वारा अन्तर्प्रान्तीय एकताकी भावना उत्पन्न करने और उसे अग्रसर करनेमे भी सहायता मिलेगी । हम सब जानते है कि भाषा और लिपिमें कोई अविच्छेद सम्बन्ध नही है और इन दिनो जब रोमन लिपिके प्रयोगके लिए विश्वव्यापी आन्दोलन चल रहा है, मैं नही समझता कि इस देशकी भाषाओके लिए एक ही लिपिकी मांग करना कोई बहुत बडी माँग करना है । यह तो बहुत ही सौम्य प्रस्ताव है, इसे स्वीकार करनेमे कोई हिचकिचाहट न होनी चाहिये । इसकी सुविधाएँ सुस्पष्ट है । हमारे लिए एक दूसरेकी भाषाओ और साहित्योका ज्ञान आवश्यक है, क्योकि इस प्रकार अन्तर्प्रान्तीय विरोध और दुर्भावना दूर करनेमे और राष्ट्रीयताकी भावना उत्पन्न और विकसित करनेमें सहायता मिलेगी । हमलोग ऐसे युगमें है और संसारकी इस युगमें ऐसी अवस्था है कि हममेसे प्रत्येकके लिए पड़ोसी राष्ट्रोकी रहन-सहन, सस्कृति और जीवनक्रमकी यत्किंचित् जानकारी प्राप्त करना भी आवश्यक है । तब अपने ही देशके विभिन्न प्रान्तोमे रहनेवाले अपने देशभाइयोके सांस्कृतिक जीवनको समझना कितना अधिक महत्त्वपूर्ण है यह सभी समझ सकते है । पारस्परिक सहानुभूति और सद्भावना बहुत सुगम हो जायगी, यदि हम विभिन्न प्रान्तीय भाषाओके लिए एक ही लिपि स्वीकार कर ले । यह एक व्यापक सुधार है, पर इसका फल भी बहुत व्यापक होगा । सच तो यह है कि यदि हम यह सुधार प्रवर्तित नही करते तो राष्ट्रहितकी ही हम उपेक्षा करते है अथवा उसकी ओरसे आँखे बन्द किये हुए है । मेरी समझमे सब भाषाओके लिए एक ही लिपिका प्रश्न वही महत्त्व रखता है जो सारे देशके लिए एक राष्ट्रभाषाका प्रश्न । यह भी आवश्यक है कि सभी भारतीय भाषाओके लिए एक ही वैज्ञानिक शब्दावली बनायी जाय । हमारी एकताके मार्गमे जितने कृत्रिम व्यवधान है, उन सबको ही हटानेके लिए हमे सन्नद्ध होना है । पुनरुज्जीवनवाद (Revivalism) से हमारा काम नही चलेगा । हमे आगे देखना होगा और ऐसे सब परिवर्तन करने होगे जो स्वस्थ राष्ट्रीय जीवनके लिए नितान्त आवश्यक है । वर्गवाद और प्रान्तवादसे ऊपर उठनेका साहस और सुविचार हममे होना चाहिये और सब चीजोको विशाल दृष्टिसे देखते हुए दृढताके साथ राष्ट्रहितकी नीतिको जानना चाहिये ।

कोई यह न समझे कि मैं भाषाके आधारपर प्रान्तोके पुनस्संगठनके विरुद्ध हूँ । मैं उन लोगोमेसे हूँ जो यह मानते है कि देशके लिए संघीय विधान (Federal Constitution) सबसे अधिक व्यावहारिक होगा, क्योकि यह हमारे इतिहास एवं परम्पराके सर्वथा अनुकूल है । मानव-बुद्धिमे हमारी इतनी आस्था है कि उसके द्वारा हम अपने संघीय विधानमे ऐसी बातोका समावेश कर सकेंगे कि देशकी एकता अक्षुण्ण रखी जा सके । साथ ही सबके लिए एक ही सामाजिक और आर्थिक नीति, सभी जातियो और धर्मोके लोगोंके लिए एक ही कानून, एक ही राष्ट्रभाषा और एक ही राष्ट्रलिपि, ये सब ऐसे साधन है जिनके लिए राष्ट्रीय एकता स्थापित की जा सकती है । इससे बहुत अधिक महत्त्वपूर्ण तो जनताके सभी वर्गोमे जनतन्त्रीय भावना भर देना है । सब प्रकारकी असमानताओंको दूर कर देना चाहिये और सभी वर्गोके लिए आत्म-विकासके समान अवसर मिलने चाहिये । यही नही, जो लोग सांस्कृतिक दृष्टिसे पिछड़े हुए है उनका विशेष ध्यान रखना चाहिये,

ताकि उनकी पिछडी स्थितिका यथासम्भव शीघ्र ही निराकरण हो जाय। स्वतन्त्रता और समानताकी भावनाके साथ-साथ एकताकी भावनाका भी प्रादुर्भाव होता है, और कोई कारण नही है कि जिन बातोने आज हमे एक दूसरेसे अलग कर रखा है उन्हे हटा देनेपर हम विभाजक वृत्तियोको काबूमे न रख सके।

अब हम सक्षेपमे उन दो-एक बातोका विचार करेगे जिनका सम्बन्ध विश्वविद्यालयकी शिक्षासे है। यह युग ही विज्ञान और विशिष्ट विषयोके विशिष्ट अध्ययनका है। वैज्ञानिक साधनोके उपयोगद्वारा आज हमारी समस्याओमेसे अनेकोका समाधान हो सकता है। उदाहरणके लिए आप हमारी गरीबी, रोग, निरक्षरता, कृषि और उद्योग-धन्धोके वैज्ञानिक आधारपर सगठनकी समस्याओको ले सकते है। विज्ञानके द्वारा प्राकृतिक शक्तियोका उपयोग समाजके हितके लिए किया जा सकता है और विज्ञान हमे युक्तियुक्त विचार करना भी सिखाता है। मनुष्यकी सहज प्रवृत्तियाँ उसकी बुद्धिको दबा रखती है, अत इस ठीक रास्तेपर चलनेका अभ्यास करा देनेसे हम उन्हे अपने वशमे रख सकते है। इस सम्बन्धमे समाज-विज्ञानका महत्त्व स्पष्ट है। यह विज्ञान अभी शैशवावस्थामे है, पर अध्ययन और अनुसन्धानके विषयके नाते इसका महत्त्व बढता जा रहा है। विज्ञान और मनोविज्ञानके नवीन सिद्धान्तोने मानव-प्रकृति तथा जगतसम्बन्धी हमारी धारणाओको बदल डाला है। मनुष्य और प्रकृतिके विषयमे हमारे परम्परागत ज्ञानको अपना स्थान विज्ञानको देना होगा। हमे अपनी बौद्धिक विचार-पद्धति विकसित करनी होगी और जीवनकी जनतन्त्रात्मक रीति ग्रहण करनी होगी। इस उद्देश्यकी प्राप्तिके लिए आवश्यक है कि प्रारम्भसे ही हमारे पाठ्यक्रममे विज्ञानका अनिवार्य स्थान रहे और सामाजिक विज्ञानोके उच्च अध्ययनको उत्साहित कर पूर्ण प्रश्रय दिया जाय। ऐसी व्यवस्था होनी चाहिये कि अधिकाधिक सख्यामे वैज्ञानिक पैदा हो और प्रत्येक विश्वविद्यालयमे सभी क्षेत्रोमें वैज्ञानिक शोधका समुचित प्रबन्ध हो।

यह दुर्भाग्यकी बात है कि राजनीतिज्ञो एव युद्धप्रवर्तकोद्वारा विज्ञानका बहुत ही जघन्य दुरुपयोग किया जा रहा है। सकुचित राष्ट्रीय भावनाओके कारण जो ससारव्यापी सघर्षके मूलमे है, और जो राष्ट्रीय गर्व एव पक्षपातका पृष्ठपेषण करती है, विज्ञानका उपयोग शत्रुराष्ट्रके नाश और दूसरे राष्ट्रोकी आर्थिक स्थितिको अधिकारगत करनेके लिए किया जाता है। विज्ञान उसी दशामे वरदान स्वरूप है जब वह मानवीय मान्यताओके साथ सम्बद्ध रहे। यदि हमारे वैज्ञानिक समाजके प्रति अपने दायित्व समझते है तो वे हीन भावनाओ और प्रवृत्तियोका परित्याग कर देगे और युद्धके प्रवर्तकोके हाथो अपनेको औजारोकी भाँति जानेसे इनकार कर देगे, और विज्ञानका इस प्रकारका दुरुपयोग नही होने देगे। तब मनुष्यके प्राणोका मूल्य समझा जायगा और विनाशकारी साघातिक इजनोका निर्माण समाप्त हो जायगा। किन्तु यह तभी सम्भव है जब साधारण जनताको समुचित ढगकी शिक्षा दी जाय, और वह राजनीतिज्ञोकी चाले समझ सकनेके लिए पर्याप्त रूपसे ज्ञानवती एव बुद्धिसम्पन्न हो जाय और उनके द्वारा चालित होनेसे इनकार कर दे। अब सामाजिक विज्ञानोकी ओर अधिकाधिक ध्यान दिया जा रहा है, इससे यह आशा

करनी चाहिये कि वह समय दूर नही है जब हम इन नये विज्ञानोकी सहायतासे मानव-कल्याणके लिए समाजगत सम्बन्धोका नियमन कर सकेगे। इससे स्पष्ट हो जाता है कि हमारी सभ्यताकी रक्षा तभी हो सकती है जब राष्ट्रके नेतृत्वमे शिक्षा भविष्यमें अधिकाधिक भाग लेने लगे।

इतिहास बताता है कि राष्ट्रीय भावनाके निर्माणमे पाठशालाका बहुत महत्त्वपूर्ण भाग रहा है। पाठशालाके द्वारा राष्ट्रके प्रति-श्रद्धाकी भावना सबल होती रही है और राष्ट्राभिमान और अपने राष्ट्रकी महत्ताके विषयमे अत्यधिक आस्था पैदा होती रही है। फासिस्ट देशोमे जहाँ नये नेताओने जनतन्त्रीय एवं पार्लमेण्टरी भावनाओके विरुद्ध जनताको, भड़काया और "अधिकारिणी जाति" की मिथ्या कल्पनाका सृजन किया, यह राष्ट्रीय भावना निम्नकोटिकी होकर जघन्य होती गयी। इन लोगोने स्वतन्त्रता, समानता और भ्रातृत्वकी भावनाओपर प्रहार किया, इतिहासमें विपर्यय उपस्थित किया और नवयुवकोको बरगलाकर उन्हे पापपूर्ण सिद्धान्तोमे दीक्षित किया। आज ससारमें राष्ट्रगत लोभ और राष्ट्रगत घृणाकी भावना अत्यधिक हो गयी है। बडे खेदकी बात है कि हम युद्धके सबक भूल गये। निश्चय ही हम विकासक्रममे 'यूथ'की स्थितिसे बढकर राष्ट्रकी स्थितितक पहुँच गये है और इस अर्थमे हमने कोई छोटा लाभ नही उठाया है। किन्तु अभी हमारी कुछ यूथगत सहज प्रवृत्तियाँ सबल है, शायद पहलेसे अधिक शक्तिमान् है; केवल बाह्य लक्षण, पताकाएँ किंवा नारे बदले है। अतएव आवश्यक है कि सभी शिक्षा-प्रवर्तक इस झूठी और भयावह राष्ट्रीयताकी भावनाका विरोध करे। पूर्णरूपसे जनतन्त्र व्यवहारमे लाया जाय तभी राष्ट्रीयताको भ्रामक मार्गोमे जानेसे रोका जा सकता है। अतएव हमारे लिए यही शोभन है कि विद्यार्थी-समाजके बीच जनतन्त्रीय अभ्यासके विचारो और भावनाओका प्रचार करें, ताकि राष्ट्रके नवयुवकोके लिए जनतन्त्र एक वास्तविक धर्मगत बात बन जाय, यहाँ तक कि इसी भावनाओसे उनका सारा जीवनक्रम एवं व्यवहार अनुप्राणित हो।

एक और बात है जिसकी चर्चा इस भाषणको समाप्त करनेकेपूर्व करनी उचित होगी। अध्यापकोका काम केवल बुद्धि-सम्बन्धी शिक्षा देना और चरित्रके विकासमे योग देना ही नही है; उन्हें अपने छात्रोमें समाजके प्रति दायित्वकी भावना भी पैदा करनी है। किन्तु विश्वविद्यालयोके विस्तारके कारण और पुराने विश्वविद्यालयोकी जन-सख्या चरमावधितक पहुँच चुकी है इस कारण अध्यापकोका यह काम अधिक कठिन हो गया है। छात्रो और अध्यापकोके बीच सम्पर्कके अवसर दिन प्रतिदिन कम होते जा रहे है। छात्रावासोमे स्थानकी कमीके कारण भी विश्वविद्यालयोको गुरुकुल (residential universities) बनाना दुस्साध्य एव असम्भव हो रहा है। ट्यूटोरियल क्रम बडा खर्चीला है और कही-कही तो यह विचार किया जाता है कि इसके द्वारा भी अभीप्ट सिद्ध नही हो सकेगा। इस बातकी चर्चा करनेमे मेरा अभिप्राय यही है कि और बातोके साथ आप इस विषयपर भी विचार करे। आप इस समस्याका चाहे जो समाधान निकाले, इसका कोई कारण नही दिखायी देता कि प्रस्तुत अवसरोका उपयोग विद्यार्थी-समाजमें

सामूहिक जीवनकी भावनाको अधिक समृद्ध वनानेमे न किया जाय । गुरुकुलकी परम्परा (residential system) का शिक्षागत महत्त्व तो इसीमे है कि छात्रावासोमे ही हम सहकारिता, सहानुभूति एव भाईचारेके वहुमूल्य पाठ पढते है जो सामूहिक जीवनके लिए वहुत ही सहायक होते है ।

विश्वविद्यालयकी शिक्षाके सम्पूर्ण प्रश्नका विचार करनेके लिए भारत-सरकारने एक कमीशन नियुक्त किया है। इसके परामर्शोकी वडी अभिरुचिके साथ राह देखी जायगी और हम वडी उत्सुकताके साथ इसकी सिफारिशोकी प्रत्याशा करते रहेगे ।

मै जानता हूँ कि आपका भार वहुत वडा है और आपके दायित्व वडे महत्त्वपूर्ण है । आपको केवल वैज्ञानिक, विशेषज्ञ अनेक पेशोके लिए उपयुक्त लोग और अध्यापक पैदा करना ही नही है, अपितु आपको विचारो और मानवीय समस्याओके लिए नेता भी पैदा करना है; और सवसे वढकर तो यह करना है कि विश्वविद्यालय रचनात्मक विचारो और भावनाओका केन्द्र वन जाय, जिसके हो जानेसे ही जनतन्त्रीय समाजकी स्थापना एव प्रतिष्ठा कायम रखनेमे सहायता मिल सकती है ।

आज आपलोगोका एक विशिष्ट स्थान है और आपलोगोकी कार्यप्रणाली हमारा भविष्य निर्धारित करनेवाली है । मुझे आशा है कि आप निर्भय रूपसे और साहसके साथ अपने दायित्व पूर्ण करनेकी और शिक्षा-क्रमको ऐसा वनानेकी शक्ति रखते है कि हम जीवनमें वे सामाजिक एव आध्यात्मिक महत्त्व प्राप्त कर सके जिनके कारण मानव-जीवन उदात्त होता है ।[1]

विश्वविद्यालय दें : नवयुगके नागरिक[2]

विश्वविद्यालयोकी शिक्षाका उद्देश्य केवल विभिन्न पेशोमे काम करनेवाले व्यक्तियो (वकीलो, डाक्टरो आदि), कारीगरो, वैज्ञानिको और शासन-प्रवन्ध करनेवालोको तैयार करना नही वरन् जीवनके प्रति विस्तृत दृष्टिकोण रखनेवाले, समझदार, सुसस्कृत नागरिक भी तैयार करना है । विश्वविद्यालयोसे यह भी आशा की जाती है कि वे विचार और मानव-सम्वन्धोके क्षेत्रमे नेतृत्व करनेवाले व्यक्तियोको जन्म देगे और सवसे वढकर उनमे रचनात्मक विचारोके ऐसे केन्द्र वननेकी आशा की जाती है जिनके द्वारा ही आजके कष्ट और सघर्षके युगमे नवीन सामञ्जस्यकी स्थापनामे हमे सहायता मिल सकती है । विश्वविद्यालयोका यह अन्तिम कर्तव्य सर्वोपरि महत्त्वका है, क्योकि आजके तीव्र परिवर्तन और विच्छिन्नताके युगमे नयी सामाजिक चेतना और गतिशील चिन्तन ही सामाजिक रोगका विश्लेषण करके उसका उचित निदान ढूंढ सकता है ।

---

१. All India University Teachers' Convention के दिल्ली अधिवेशन-मे ४ दिसम्वर १९४८ को सभापति पदसे दिया हुआ भाषण ।

२. लखनऊ विश्वविद्यालयके रजत्-जयन्ती-समारोह (१९४९) के अवसरपर ।

प्राचीन संस्थाओंका विघटन

परम्परागत मूल्यो और आदर्शोपरसे लोगोकी निष्ठा उठती जा रही है और पुरानी संस्थाएँ सर्वत्र ध्वस्त होती दृष्टिगोचर होती है। नये युगमे जीवित रहनेके लिए, नये सन्तुलन और सघटनके लिए हमे सतत प्रयत्नशील रहना है। समाजका नवीन सन्तुलन और सघटन तभी सम्भव है जब कि हम नयी समाजिक आवश्यकताओ और आकाक्षाओकी पूर्तिमे सहायक होनेवाले नये मूल्योको स्वीकार करनेमे बुद्धिमत्ता और साहसका परिचय दे। हमारे अध्यापकोको अपनी पुरानी उदासीनता और उपेक्षाकी मनोवृत्तिका परित्याग कर देश और समाजके नवनिर्माणसम्बन्धी प्रश्नोमे क्रियात्मक रुचि लेनी पड़ेगी।

विश्वविद्यालयोको केवल अपने छात्रोको विद्यादान करके सन्तुष्ट नही होना है वरन् वयस्क शिक्षा तथा इस प्रकारके दूसरे कार्योमे रुचि लेकर समाजके प्रति अपने उत्तरदायित्व-का निर्वाह करना है। अध्यापकोको विशुद्ध पठन-पाठनके कार्यतक ही अपनेको सीमित न रखकर आगे बढना चाहिये और देशकी सामाजिक और राजनीतिक समस्याओका हल ढूँढनेमे योग देना चाहिये। समाजके प्रति अध्यापकोका यह भी उत्तरदायित्व है कि वे अपने विद्यार्थियोको जनतान्त्रिक ढगसे आचरण करनेकी शिक्षा दे और उनमे दृढ नागरिक भावना भरे। राष्ट्रीय साहित्यके विकासका कार्य भी अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है और इसकी पूर्तिमे भी उन्हे हाथ वँटाना है।

अतीतकी उपासनाका खतरा

समाजकी सबसे बडी सेवा जो आज विश्वविद्यालय कर सकते है वह है प्रतिक्रियावादकी शक्तियोसे संघर्ष करनेमे उसकी सहायता करना। नवयुवकोको गुमराह होनेसे बचाकर उन्हे विवेक और बुद्धिमानीका मार्ग दिखाना सबसे आवश्यक है। आज धर्म और संस्कृतिके नामपर हमारे नौजवानोकी घृणा और द्वेषकी भावनाओको उभाड़ा जा रहा है और मानवतावादी मूल्योकी उपेक्षा करना सिखाया जा रहा है। धार्मिक पक्षपात विहीन, असाम्प्रदायिक लोकतान्त्रिक राज्यकी कल्पनाका मखौल उड़ाया जाता है और नवयुवकोको आगे आनेवाले भविष्यकी ओर देखनेके वजाय सुदूर अतीतकी ओर दृष्टि मोडनेको कहा जा रहा है। यदि अतीतको पुनरुज्जीवित करनेका आन्दोलन नवयुवकोको अपनी ओर आकर्पित करनेमे सफल हुआ तो मेरी रायमे देशके लिए यह सबसे वडे खतरेकी बात होगी। इस प्रकारका आन्दोलन यद्यपि घोपित रूपसे सांस्कृतिक आन्दोलनके रूपमे आरम्भ होता है, किन्तु अन्तमे वह राजनीतिक रूप धारण करता है और चूँकि उसकी जडे जनतामे नही होती इसलिए अपने लक्ष्यकी पूर्तिके लिए जनताको साथ लेनेके स्थानपर वह दूसरे 'सुगम' मार्ग अपनाता है। इस प्रकारका आन्दोलन नवयुवकोमे अपूर्व स्फूर्तिका संचार करता है, उनकी सोयी हुई शक्तिको जगाता है, किन्तु इस शक्तिका सदुपयोग देशकी सामाजिक और आर्थिक समस्याओका समाधान करनेमे न लगाकर साम्प्रदायिक विद्रोह तथा कलह की वृद्धि करनेमें हुआ करता है। यह आन्दोलन जीवनमे नवयुवकोके दृष्टिकोणको

विकृत कर देता है, उनकी विवेक-वुद्धिको कुंण्ठित कर देता है और उन्हें आजके समाजकी जटिल समयस्याओंको समझनेके अयोग्य वना देता है।

हिन्दुस्तानकी राष्ट्रीय स्वयसेवक सघ तथा मिस्रके इख्वानुल मुसल्मीन सरीखी संस्थाओंके इतिहाससे हमे शिक्षा लेनी चाहिये। इख्वानुल मुसलमीन आरम्भमें प्राचीन सस्कृतिके उद्धारका लक्ष्य रखकर चलनेवाला विशुद्ध सास्कृतिक आन्दोलन था। उसका उद्देश्य कुरानकी संस्कृतिपर आधारित राज्यकी स्थापना था। किन्तु यह आन्दोलन धीरे-धीरे राजनीतिक रूप धारण करता गया और अपने उद्देश्यकी सिद्धिके लिए उसने अनेक अवसरोपर आतंकवादका सहारा लिया। राष्ट्रीय स्वयंसेवक सघके सम्वन्धमे भी यह भविष्य कथन किया जा सकता है कि यह शीघ्र ही राजनीतिक सस्थाका रूप धारण करेगा, अन्यथा समाप्त हो जायगा। यदि हम राष्ट्रको एक भयकर सकटसे वचाना चाहते है तो शिक्षाविदोका यह कर्त्तव्य हो जाता है कि वे हमारे नवयुवकोमे जनतन्त्रकी भावनाको कूटकर भर दे और उन्हे जीवनके प्रति विवेकपूर्ण एवं वैज्ञानिक दृष्टिकोणसे विचार करनेका अभ्यस्त वनाये।

अनुशासनकी समस्या

आजकल छात्रोमे अनुशासनहीनताकी शिकायत प्राय· सुननेको मिलती है। इस अनुशासनहीनताके अनेक कारण हैं। हम एक उलझन और संघर्षसे भरे जमानेमे रह रहे है। जीवनकी आधारभूत मान्यताओंके सम्वन्धमे पढे-लिखे लोगोमे एक राय नही है। लोगोकी निष्ठा परस्पर-विरोधी विचारधाराओंके प्रति है। आर्थिक कठिनाइयाँ और वेकारी उत्साहभग्नताको जन्म देती है। समाजकी विशृंखलता स्वभावत विद्यार्थियोमे प्रतिविम्वित होती है। अनुशासनहीनताको दूर करनेका उपाय यही है कि छात्रोके जोशको रचनात्मक कार्यमे लगाया जाय और शिक्षको और शिक्षार्थियोके वीच घनिष्ठ सम्पर्क स्थापित हो।

शिक्षा एक सहकारी प्रयत्न है जिसमे अध्यापक और छात्र दोनो ही भाग लेते है। दोनोमे आदर्शकी एकता होनेपर ही शिक्षा-संस्थाओंमे सच्चे अनुसाशनकी स्थापना सम्भव है। अनुशासनहीनताको समाप्त करनेके लिए हमे अनुशासनकी पुरानी धारणामे भी संशोधन करना होगा और शिक्षको और शिक्षार्थियोके बीच सौहार्द स्थापित करना होगा, किन्तु अनुशासनहीनताकी समस्या मूल रूपसे नये सामाजिक सघटनकी समस्याके साथ हल हो सकेगी।

परीक्षाकी घड़ी

हम ऐसे युगमे रह रहे है जव कि संघर्ष और विच्छिन्नता हमारे राष्ट्रीय और अन्तरराष्ट्रीय जीवनकी स्वाभाविक विशेषता वन गयी है। किन्तु समाजके इस असन्तुलनके कारण हमारा यह परम कर्त्तव्य हो जाता है कि हम नये सामञ्जस्यकी स्थापनाके लिए पूरी शक्तिके साथ प्रयत्नशील हो। कुछ लोग भग्नोत्साह होकर निष्क्रिय हो रहे है अथवा रहस्यवादकी गोदमे शरण ले रहे है और कुछ लोग मनुष्य और समाजके कल्याणके लिए

कार्य करनेका इसे सबसे बड़ा अवसर देखते हैं। इतिहास आज सबकी कड़ी परीक्षा ले रहा है। हमें इतिहासके उस महान् आन्दोलनका साथ देना है जो आजकी सभी परीक्षाओं और संकटोंके बावजूद अन्तमें समाजको एक नया संघटन प्रदान करेगा और सार्वभौमिक शान्ति और समृद्धिके युगका लानेवाला सिद्ध होगा। प्रत्येक शिक्षाकेन्द्रको इसी उद्देश्यकी सिद्धिके लिए प्रयत्नशील होना है।

छठा अध्याय

संस्कृति

छठा अध्याय

हमारा आदर्श और उद्देश्य

भारतीय समाजमे महान् परिवर्तन होनेवाले है । देशमे नवजीवन हिलोर ले रहा है। भारतकी अवरुद्ध जीवनशक्ति अव फिर वेगवती हो चली है। भारतका नया मानव अपने सपने सार्थक करनेको निकल पडा है । इस नवजीवन-प्रवाहको रोकनेका प्रयत्न निरर्थक है । इसे रोकनेका प्रयत्न सफल नही हो सकता । इस तरह सामाजिक शक्ति नष्ट करनेसे व्यक्तियो तथा समूहोको रोकना है । सामाजिक शक्तिकी दिशा निर्धारित करनी है, उसका नियन्त्रण करना है । पुराने आदर्शोसे आज पथनिर्देश नही हो पाता । पुरानी परम्परासे आज सहारा नही मिलता । आज नये नेतृत्वकी आवश्यकता है । समाजवाद ही यह नया नेतृत्व प्रदान कर सकता है। जनताके विस्तृत तथा व्यापक हितके आधारपर निर्मित यह सम्पूर्ण सामाजिक सिद्धान्त ही हमारा पथप्रदर्शन कर सकता है । जनजागरण तथा जनक्रान्तिकी रीति ही समाजके समुचित विकासका साधन वन सकती है ।

समाजवादका सवाल केवल रोटीका सवाल नही है । समाजवाद मानव-स्वतन्त्रताकी कुंजी है । समाजवाद ही एक स्वतन्त्र सुखी समाजमे सम्पूर्ण स्वतन्त्र मनुष्यत्वको प्रतिष्ठित कर सकता है। समाजवाद ही श्रेणी-नैतिकता तथा मात्स्य-न्यायके वदले जनप्रधान नैतिकता तथा सामाजिक न्यायकी स्थापना कर सकता है । समाजवाद ही स्वतन्त्रता, समता और भ्रातृभावके आधारपर एक सुन्दर, सवल मानव-सस्कृतिकी सृष्टि कर सकता है ।

ऐसी सभ्यता तथा सस्कृतिकी स्थापना उत्पादनके साधनोपर सामाजिक स्वामित्व स्थापित करते ही नही हो जायेगी । इसके लिए पुनर्निर्माण कार्य ही समुचित रीतिसे करना होगा । मानव-प्रतिष्ठाकी रक्षाके लिए नागरिक स्वतन्त्रता तथा उत्तरदायित्वपूर्ण प्रजातान्त्रिक राजनीतिक व्यवस्थाकी आवश्यकता होगी । सुन्दर और सम्पूर्ण मनुष्यत्वकी सृष्टि तभी हो सकती है जव साधन भी सुन्दर हो, मानवोचित हो । उद्देश्य और साधन परस्पर सम्वद्ध तथा परस्पर निर्भर होते है । दोनोका अपना-अपना महत्त्व है ।

इसके अतिरिक्त इतने कालके सामाजिक विकासके वाद जो मौलिक मानवीय सत्य प्रतिष्ठित हो गये है, उनपर जोर देना, उन्हे समाजके पुनर्निर्माणमे उचित स्थान दिलानेका प्रयत्न करना नितान्त आवश्यक है। इनकी अवहेलना करके सभ्य और सुन्दर सामाजिक जीवन नही चलाया जा सकता । श्रेणी नैतिकताके नामपर सभी पुराने आदर्शो और सिद्धान्तोका वहिष्कार उचित नही । समाजके दीर्घकालीन अनुभव तथा संचित ज्ञान-का निरादर अनुचित होगा । इसके विपरीत पुराने आदर्शो और प्राचीन सस्कृतिका अध्ययन आवश्यक है । हमारी नवीन सस्कृतिके निर्माणमे इनका वहुत वडा हाथ होगा ।

'जनवाणी' इस सर्वोत्तम सामाजिक कर्त्तव्यकी पूर्ति करनेकी चेष्टा करेगी। समाजवाद के आलोकसे समस्त सामाजिक जीवनको जगमग कर देना और सभी सामाजिक समस्याओ-का समाधान प्रस्तुत करना 'जनवाणी' का उद्देश्य होगा।' 'जनवाणी' समाजके सम्पूर्ण सर्वाङ्गीण विकासका साधन बननेका प्रयत्न करेगी। इस प्रकार समाजके राजनीतिक, आर्थिक, सांस्कृतिक और कलात्मक जीवनसे सम्बन्ध रखनेवाले सभी विषयोपर समुचित प्रकाश डालनेका प्रयत्न 'जनवाणी' करेगी।

हम इस पवित्र कार्यमे सभी जनोत्कर्षके प्रेमियो और जनशक्तिके पुजारियोके सहयोगकी प्रार्थना करते है।[१]

प्रगतिशील साहित्य

वैसे तो प्रगतिशील साहित्यकी परिभाषाके सम्बन्धमे अब भी विवाद चला आता है; किन्तु मोटे तौरपर यह कहा जा सकता है कि जीवनके केन्द्रमे मानवको प्रतिष्ठित करके चलनेवाला साहित्य प्रगतिशील साहित्य है। जीवन और मानव एक दूसरेको प्रभावित करते है, परस्पर अन्योन्याश्रित होते है। इनकी पारस्परिक क्रिया-प्रतिक्रियासे ही सामाजिक परिवर्तन होते है। समाजके भीतर क्रियाशील रहते हुए भी अपनेको अलगसे देखने, आत्मनिरीक्षण करनेकी आवश्यकता सदैव होती है। किन्तु उससे पृथक् रहकर, जीवन प्रवाहसे हटकर व्यक्ति अपना विकास नही कर सकता। समाजके भीतर रहकर व्यक्तिको सामूहिक हितको दृष्टिमे रखते हुए एक मर्यादा, बन्धन एवं अनुशासन स्वीकार करना पड़ता है। मनुष्य और पशुमे एक मुख्य भेद यह भी है कि मनुष्यका जीवन अपने समाजसे मर्यादित होता है। अत. सच्चे साहित्यकारका कर्तव्य हो जाता है कि वह मनुष्यको समाजसे पृथक् करके, अमूर्त मानवताके स्वतन्त्र प्रतीकके रूपमे सीमित न कर उसे सामाजिक प्राणीके रूप मे देखे—ऐसे समाजके सदस्यके रूपमे जिसमे निरन्तर सघर्ष हो रहा है और इन संघर्षोके कारण जो प्रतिक्षण परिवर्तनशील है।

कहा जाता है कि कलाकार 'स्वान्त· सुखाय' रचना करता है। प्रत्येक रचनात्मक कृतिद्वारा रचयिताको एक प्रकारका आन्तरिक सन्तोष या सुख प्राप्त होता है, इस अर्थमें यह धारणा यथार्थ मानी जा सकती है। किन्तु यदि इसका अर्थ यह लगाया जाय कि कलाकारका और कोई उद्देश्य नही होता तो यह धारणा भ्रमपूर्ण होगी। अपने अध्ययन तथा अनुभूतिके अनुसार प्रत्येक व्यक्ति एव कलाकारका एक दर्शन, जीवनकी व्याख्याका एक विशेष दृष्टिकोण होता है और उसकी रचनाके पीछे यह दृष्टिकोण छिपा रहता है। जीवनके इस दृष्टिकोणके अनुसार कलाकार जीवनको एक विशेष दिशामे प्रकटित होते देखना चाहता है। कलाकारके मनमे यह बात स्पष्ट हो अथवा अस्पष्ट, किन्तु उसकी

१. 'जनवाणी' दिसम्बर, सन् १९४६ ई०

रचनामें भी उसकी यह अभिलाषा अपेक्षाकृत सुप्त अथवा चैतन्य रूपमे विद्यमान रहती है। हमारा जीवन पृथक्से दिखायी पड़नेवाले अनेक क्षेत्रोमे बँटा हुआ है। इन पृथक् क्षेत्रोके भीतर और इनमे परस्पर नाना प्रकारके सघर्ष हो रहे है। दर्शन अथवा जीवन-सम्बन्धी दृष्टिकोण इस सघर्ष और पृथक्तासे ऊपर उठकर सभीको एक सूत्रमें सम्बद्ध करके और उन्हे यथास्थान रखकर समूचे जीवन-क्षेत्रका एक सम्बद्ध दृश्य (Unified view) प्रस्तुत करता है। यह जीवन-दर्शन जितना ही सुलझा हुआ होगा, साहित्यिक अथवा कलाकारकी रचना सामाजिक प्रगतिमे उतनी ही सहायक हो सकेगी। जीवनके अन्तर्गत अनेक प्रकारके धर्मो—व्यक्ति, कुल, राष्ट्र तथा विश्व—के वीच एक प्रकारका संघर्ष जान पड़ता है। साथ ही उनमे एक प्रकारकी अन्योन्याश्रयता, शृङ्खला और परम्परा भी दिखायी देती है। वस्तुत· यह सघर्ष तभी दिखायी पड़ता है जब हम अन्योन्याश्रयताको दृष्टिसे ओझल कर देते है और इन धर्मोको मर्यादित नही कर पाते, उनका उचित सामञ्जस्य नही कर पाते। उदाहरणार्थ राष्ट्र-धर्मका हमे उससे भी उच्चतर विश्व-धर्मके साथ सामञ्जस्य करना पडेगा। सामञ्जस्य होनेपर राष्ट्रधर्मका सर्वथा लोप नही होता, वह केवल मर्यादित स्थान ग्रहण करता है। राष्ट्रधर्म और विश्वधर्मके वीच गहराईमे न जाकर केवल सतहपरसे देखनेपर जो सघर्ष दृष्टिगोचर होता है उसका लोप होता है। चूँकि व्यक्ति राष्ट्र अथवा विश्वका अंग है, अत· राष्ट्र और विश्वके विकासके साथ ही व्यक्तिको अपने पूर्ण विकासका अवसर प्राप्त होता है। जीवनके केन्द्रमे मानवकी प्रतिष्ठाकी मूल भावनाको लेकर चलनेवाले प्रगतिशील साहित्यिकके लिए विश्वव्यापी जीवन-दृष्टिकोणका होना आवश्यक है।

प्रत्येक युगकी सामाजिक व्यवस्था अपनी आवश्यकताओके अनुसार एक विशेष जीवन-दृष्टिकोणको जन्म देती है। प्राचीनकालमे भी, चाहे पौर्वात्य जगत् हो अथवा पाश्चात्य, जवतक एक प्रकारकी आर्थिक सस्थाएँ और परम्पराएँ प्रचलित रही, उनमें क्रान्तिकारी परिवर्तन नही हुए, तवतक समाजमे इस जीवन-दृष्टिकोणके सम्वन्धमे भी सहमति रही। किन्तु इस निरन्तर परिवर्तनशील संसारमे समाजकी वढती हुई आवश्यकताओकी पूर्तिके लिए उसकी भौतिक आर्थिक मूलभित्तिमे परिवर्तन होता रहता हे और इस मूलभित्तिपर निर्मित विचारोका प्रासाद भी नया रूप ग्रहण करता रहता है। विचार-धाराका तीव्र सघर्ष प्राचीनके विनाश और नवीनके उदयकी सन्धि-वेलामे होता है। प्राचीनके गर्भसे ही नवीनका सृजन करनेवाली शक्तियाँ जन्म लेती है। समाजको अतीतकी ओर ले जानेवाली तथा भविष्यकी ओर ले जानेवाली शक्तियोमे सघर्ष होता है। प्राचीनके गर्भसे निकलकर नवीन भविष्यका निर्माण करनेवाली शक्तियाँ प्रवलतर होती जाती है। विरोधी शक्तियोके क्रमिक विकासके प्रसगमे हमे समाजमे गुणात्मक परिवर्तन, कई स्तरोके एक साथ उल्लघन अथवा उत्क्रान्तिके दर्शन होते है। वे विचारशील व्यक्ति जिनके तीव्र सवेदनशील कोमल मानस-पटपर क्षुद्रसे क्षुद्र घटनाएँ भी अपना प्रभाव अंकित कर जाती है, नये परिवर्तनोके क्रम-विकासके साथ समाजको नये विचार देते है।

नयी व्यवस्थाकी स्थापनाके साथ प्राचीनका सर्वथा लोप नही हो जाता। अर्वाचीनके

भीतर भी प्राचीन वहुत कुछ वना रहता है। नवीन और प्राचीनमें एक नैरन्तर्य, एक शृङ्खला, एक परम्परा वनी रहती है। पूँजीवादमें भी वहुत दुर्वल और क्षीण रूपमें सामन्तवाद वहुत दिनोतक वर्तमान रहता है और समाजवादकी स्थापनाके साथ भी वहुत दिनोतक पूँजीवादकी कतिपय विशेपताएँ सम्वद्ध रहेगी। विनाश और निर्माणके क्रममें अतीत, वर्तमान और भविष्यके वीच उनको आपसमे जोड़नेवाली एक अटूट कड़ी वनी रहती है। प्रगतिशील साहित्यक इस ऐतिहासिक सत्यको हृदयंगम करते हुए अतीतका सर्वथा परित्याग नही करता; साधक तत्वोको वह चुन लेता है, वाधक तत्वोंका परित्याग करता है। मनुष्य स्वभावत. परम्परापूजक होता है और जो जाति जितनी ही प्राचीन होती है, उसके भीतर अपनी संस्कृतिकी श्रेप्ठताकी भावना उतनी ही अधिक वद्धमूल होती है। अतः भारत-जैसे प्राचीन देशमे हमे नवीन संस्कृतिके निर्माणकी दृष्टिसे अतीतके साधक एवं समर्थक तत्वोका उपयोग करना ही चाहिये।

अतीतकी अनेक विचार-पद्धतियाँ जो आज हमे प्रतिगामी प्रतीत होती है, अपने समयके समाजके लिए वडी कल्याणप्रद रही है। भौतिकवाद तथा यथार्थवादको मानकर चलनेवाली विचारधाराएँ ही जन-कल्याणके मार्गका अनुमरण करती रही है और इसके विपरीत आध्यात्मिक अथवा 'विज्ञानवादी' विचार-धाराएँ सदैव अप्रगतिशील रही है, ऐसा सोचना उचित न होगा। विज्ञानवाद भी विशेप कालमे प्रगतिशीलताका द्योतक था। उदाहरणके लिए हम वौद्धकालकी अप्रतिष्ठित निर्वाणकी कल्पनाको लें। निर्वाणकी इस कल्पनाके अनुसार साधक निर्वाणमे प्रवेशकी क्षमता रखते हुए भी सामाजिक कल्याणकी भावनासे प्रेरित होकर अपनेको उससे वचित रखता है, जव कि असंख्य जीव दु.खसे आहत हो और क्लेश-पाशमें फँसे हुए हो, ऐसी अवस्थामे केवल अपने वैयक्ति मोक्षकी ओर ध्यान देना उसे क्षुद्र प्रतीत होता है। निष्काम कर्मकी भावना भी इसी कालमे जन्म लेती है। कर्म वन्धनका हेतु है। विना कर्मका परित्याग किये हुए मनुष्य आवागमनके चक्रसे छुटकारा पाकर मोक्षकी प्राप्ति नही कर सकता। किन्तु विना कर्ममे प्रवृत्त हुए साधक जन-समूहका उद्धार भी नही कर सकता। जन-कल्याणकी दृष्टिसे कर्ममें प्रवृत्त होनेकी आवश्यकता तथा कर्मके स्वाभाविक परिणामगत वन्धनोसे निर्लिप्त रहनेके उद्देश्यमें सामञ्जस्य स्थापित करनेकी दृष्टिसे निष्काम कर्मके सिद्धान्तकी उत्पत्ति हुई। प्रथम शताव्दी ईसा पूर्वसे चतुर्थ एव पञ्चम शताव्दीका काल निश्चय ही भारतीय इतिहासका एक अत्यन्त गौरवपूर्ण अध्याय है। इस कालमे भारतीय जीवनके प्रत्येक विभागमे सक्रियताके दर्शन होते है। इस समय निवृत्ति-मार्गमे विश्वास रखनेवाले भी प्रवृत्तिपथपर चलते दिखायी पडते है। भारतीय साधुओने मध्य एशियामे भारतीय संस्कृतिके अखण्ड राज्यकी स्थापना इसी कालमे की थी। विदेशोसे भारतका व्यापारिक सम्वन्ध भी इसी कालमे सुदृढ हुआ।

जहाँ हमें अपने देशके गौरवपूर्ण अतीतके उन तत्त्वोको ग्रहण करना है जो वर्तमान कालमें पुरुपार्थको प्रेरणा देनेवाले है, वहाँ आजकी अवस्थामे भार वननेवाली परम्पराओका परित्याग कर हमे हल्का होना है और नवीन जीवनके विकासमान मूल्योको अपनाना है। ये नवीन मूल्य कहाँसे आते है, उनका उपक्रम या सूत्रपात कहाँसे होता है, इस वातकी

खोज करनेकी आवश्यकता नही है । आज सारा ससार एक इकाईका रूप धारण कर रहा है । सभी देशोकी समस्याएँ बहुत कुछ समान-सी है । पूँजीवादी शोषणसे त्राण पानेकी समस्या ही संसारके अधिकाश देशोकी समस्या है । यह स्पष्ट है कि हमारे देशमे आज जो परिस्थिति है, वह दूसरे जिन देशोमे हमारे देशसे पूर्व आयी और उस परिस्थितिका जो हल दूसरे देशोने पहले निकाला, उन देशोसे हमे प्रेरणा ग्रहण करनी ही होगी । नवीन या विदेशी होनेके कारण ही किसी जनकल्याणकारी विचार या मूल्यका परित्याग नही किया जा सकता । संस्कृतियाँ जब जीर्ण पड जाती है, तो नयी संस्कृतियोके साथ संघर्ष होनेसे ही उनका कायाकल्प होता है । अपने पुराने रत्न जो कर्ममे रहते है, वे भी इस सघर्पसे परिष्कृत होते है । जब कि सारा विश्व आज पूँजीवादी विपमताकी चक्कीमे पिसते हुए समान यातना भोग रहा है, यह स्वाभाविक है कि इस यातनासे परित्राण पानेके लिए एक समान विचारधारा अपनायी जाय । जो लोग नवीन मूल्योको ग्रहण करनेसे भागते हैं और विचारधारा-सम्बन्धी सघर्पसे घबराते है, वे अपनेको विकासके पथसे विरत करते है । समाजमे विभिन्न स्वार्थोके संघर्पके कारण निरन्तर परिवर्तन होता रहता है और इस संघर्पके फलस्वरूप ही समाज विकासके पथपर नये कदम बढाता है । यदि क्रमागत विचारो और संस्थाओको बिना आलोचनाके स्वीकार कर लिया जाय तो भावी विकासका मार्ग अवरुद्ध हो जाता है । समाजके अन्तर्गत विभिन्न स्वार्थोके सघर्प और उसके फलस्वरूप समाजमें होनेवाले परिवर्तनकी प्रक्रियाका अध्ययन करके हम सामाजिक विकासमे बोधपूर्वक सहायता दे सकते है ।

पूँजीवादके ह्रासके इस युगमे और महायुद्धके उपरान्त राष्ट्रीयताका अन्त नही हो रहा है—जैसा कि कुछ लोगोका विचार है । प्रत्येक युद्धके पश्चात् राष्ट्रीयताकी जबर्दस्त लहर आया करती है । किन्तु राष्ट्रीयताकी भावना भी अभिशाप नही है, यदि वह संकीर्ण, आक्रमणशील राष्ट्रीयता न हो और विश्व-धर्मसे मर्यादित होकर चल सके । साहित्यिकोका कर्तव्य जनताको चिन्ताशील बनाना और मर्यादित राष्ट्रीयताके सच्चे रूपको समझाना है । उस सकुचित, विकृत राष्ट्रीयतासे जनताको छुटकारा दिलाना है जिसमे जाति अथवा देशको अनावश्यक और अस्वाभाविक प्रधानता दे दी जाती है और जो वर्तमान सामाजिक समस्याओके हलमे बाधक है । एक लम्बी अवधितक स्वातन्त्र्य-सग्राममे रत रहनेके कारण हमारे देशमे राष्ट्रीयताका जोर होना स्वाभाविक है । किन्तु अनुभवने सिद्ध यही किया है कि इस राष्ट्रीयताकी जड़े गहरी नही थी । यह राष्ट्रीयता देशके बँटवारेको रोकनेमें असमर्थ रही और बँटवारेके परिणामस्वरूप उसने जो रूप ग्रहण किया है, उसका समन्वय विश्व-धर्मके साथ करनेमे हमे काफी कठिनाईका सामना करना पडेगा । प्रान्त, समुदाय और जातियोंके बीच कलह भारतका पुराना रोग रहा है, बँटवारेके बाद वह फिर उभड़ना चाहता है । प्रगतिशील साहित्यिकोका कर्तव्य इस विकृत राष्ट्रीयताके खतरोको पहचानने-की चेतना जनतामे उत्पन्न करना है । ससारमे एक नये महायुद्धकी तैयारियाँ हो रही है । यदि महायुद्ध छिड़ा और हिन्दुस्तान और पाकिस्तानके रहनेवाले एक दूसरेसे बदला लेनेके ही चक्करमे रहे तो दोनोका विनाश निश्चित है । यदि हम चाहते है कि आनेवाले

युद्धमे तटस्थ रहकर उसकी विभीपिकाओसे अपने देशकी रक्षा करे तो हमे तटस्थ राष्ट्रोके एक तृतीय शिविरका निर्माण करना होगा। हम कमसे कम दक्षिण-पूर्वीय एशियाके नव स्वतन्त्रता-प्राप्त राष्ट्रो तथा स्वतन्त्रता-प्राप्तिके लिए युद्धरत राष्ट्रोका तीसरा शिविर स्थापित कर सकते है। किन्तु दूसरे राष्ट्रोको हम अपने साथ तभी ला सकते है जव कि हम घरेलू झगडेमे फँसकर अपनी समस्त शक्ति उसीमे नष्ट न कर दें, जव हम अपनी दृष्टिको उदार वनावे। यदि भारत प्रतिशोधकी भावनासे ऊपर न उठ सका, यदि उसने आर्थिक क्षेत्रमे ऐसी प्रगतिशील नीति न अपनायी जिसके द्वारा वह अपने उत्पादन सकट आदिके प्रश्नोको हल करनेके साथ अपनेको सुदृढ वनानेमे समर्थ हो और अपने पडोसी राष्ट्रोको भी महायुद्धमे तटस्थ रहनेके लिए तैयार न कर सका, तो हमारा भविष्य वहुत अन्धकारमय सिद्ध हो सकता है। प्रगतिशील साहित्यिकोको देशको इस विपत्तिकी पूर्व सूचना देनी है। साहित्यिक अपने कर्त्तव्यका तभी निर्वाह कर सकता है जव कि वह जीवनका गहराईसे अध्ययन करे, वह समाजकी जीवनसरितामे ऊपरी तलपर संचारित होनेवाली प्रवृत्तियोतक ही अपनी दृष्टिको सीमित न रखे, अन्त:सलिला सरस्वती-की भाँति नीचे रहकर प्रच्छन्न रूपसे कार्य करनेवाली शक्तियोका भी अध्ययन करे। यह अध्ययन जन-जीवनसे अलग रहकर नही किया जा सकता; प्रगतिशील साहित्यिकको जीवनकी समस्याओका अध्ययन करना होगा, अपनी रचनाओमे उसे समाजके वर्तमान रूपका चित्रण करना होगा, जनताकी मूक अभिलाषाओको वाणी देनी होगी, इतिहासका अध्ययन करके उसकी जीवन-प्रदायिनी शक्तियोका समर्थन करते हुए जनताका मार्ग-प्रदर्शन करना होगा। साहित्यक अपनेको जनताका पथ-प्रदर्शन करने योग्य तभी वना सकता है, जव कि वह अपनेको जीवन-संघर्षसे सर्वथा पृथक् न रखे, उसमे जनसाधारणके साथ अपना तादात्म्य स्थापित करनेकी क्षमता हो, वह इतिहासका वैज्ञानिक अध्ययन करके उसके विकासकी दिशाको पहचाननेमे समर्थ हो, उसकी जीवन-दृष्टि सही हो। इतने गुणोके अभावमे कितने ही कलाकार, जो प्रथम महायुद्धके उपरान्त प्रगतिशील साहित्यिकोके शिविरमे प्रविष्ट हुए थे, आज दिशाभ्रमित होकर भटक रहे है। युद्धकालमें तथा उसके पश्चात् पुरानी मान्यताओको भंग होता देखकर वे अवसाद, खिन्नता और विचार कुण्ठाको प्राप्त हो रहे है। स्वस्थ जीवन-दृष्टिकोणके अभावमे वे पलायनवादका सहारा ले रहे है। कोई रोमन कैथलिक दर्शनकी शरण ले रहा है, कोई भारतीय योगके प्रति आकर्पित हो रहा है। कितने ही किंकर्तव्यविमूढ होकर केवल नैराश्य भावनाको व्यक्त कर रहे है। कारण-कार्यकी शृङ्खला और सामाजिक सम्वन्धोकी ठीक धारणा न होनेके कारण कितने ही कलाकार विज्ञानको ही वर्तमान सास्कृतिक पतनके लिए उत्तरदायी मान वैठे है। जीवन-सघर्पसे भागनेवाले कलाकार आकस्मिक कारणोसे भले ही प्रगतिशीलोकी कोटिमे आ जायँ, किन्तु उनकी प्रगतिशीलता क्षणिक ही होगी। जीवन-संघर्षसे पृथक् रहकर सच्चे और प्रगतिशील साहित्यकी सृष्टि सम्भव नही है। किन्तु इस कथनका यह तात्पर्य कदापि नही कि कलाकारके लिए राजनीतिक सघर्पमे लिप्त होना आवश्यक है। संघर्पके इतने निकट रहना कि वह उसका निरीक्षण कर सके, उसके लिए आवश्यक है।

किन्तु संघर्षके सम्वन्धमे निष्पक्ष सम्मति वना सकने और साहित्य-सृजनके लिए अवकाश प्राप्त करनेके लिए सघर्षमे सक्रिय भाग लेनेसे कलाकारको वचना पड़ता है । स्वास्थ्यप्रद साहित्य-सृजन ही जनान्दोलनमे कलाकारका योग है । नवीन समाजके निर्माणके लिए सघर्ष सभी क्षेत्रोमे हो रहा है । साहित्यिक क्षेत्रमे कलाकारोको उस साहित्यका विरोध करना है जिसकी दृष्टि केवल अतीतकी ओर है, जो प्राचीनता और परम्पराका अन्ध-पुजारी है, जिसकी आस्था विश्वके प्रति नही, वर्तमान भारतके प्रति नही, वल्कि प्राचीन भारतके किसी कल्पित विकृत रूपके प्रति है, जो सकुचित अकर्षणशील राष्ट्रीयताका प्रचार कर रहा है । इस प्रसंगमे प्रगतिशील कलाकारोको यह नही भूलना है कि उनकी रचनाएँ भोड़ा प्रचार न होकर मर्मस्पर्शी, प्रभावोत्पादक उच्च कलाकृतियाँ हो । कला सोद्देश्य होती है । प्राय: प्रत्येक रचनाके पीछे एक सन्देश होता है, इस व्यापक अर्थमे तो सभी कला-कृतियाँ प्रचारका साधन कही जा सकती है । किन्तु कलाकृतिको प्रभावोत्पादक वनानेके लिए यह आवश्यक है कि उसे प्रत्यक्ष प्रचारका साधन न वनाया जाय । दूसरी वात जिसे प्रगतिशील साहित्यिकोको ध्यानमे रखनी है, यह है कि जहाँ कथावस्तु और विवेचना उनकी अपनी वस्तु होगी और नवीन शैलियोको भी वे अपनायेगे, वहाँ दीर्घकालसे आचार्यो-द्वारा पुष्ट की जानेवाली शैली, टेकनिक, छन्द एव शब्द-विन्यास आदिकी भी वे सर्वथा उपेक्षा नही कर सकते । प्राचीन साहित्यकी टेकनिक सम्वन्धी विशेषताओको उन्हे अपनाना होगा ।

जैसा कि आरम्भमे कहा जा चुका है, सारा ससार आज शोषणकी चक्कीमे पिसकर समान यातना भोग रहा है और उसकी मुक्तिकी स्थापनामे सहायता देना प्रगतिशील साहित्यका ध्येय है, मानव-मात्रकी एकता और उसकी सिद्धिके लिए शोषणमुक्त सामाजिक व्यवस्थाकी आवश्यकता इन आदर्शोकी भित्तिपर हमे एक नवीन सस्कृतिका निर्माण करना है । नवीन सस्कृतिके निर्माणमे हमे प्राचीन संस्कृतिके साथ उसकी परम्पराको भी दिखलाना है । हमारी प्राचीन भारतीय सस्कृति नवीन व्यवस्थाकी स्थापनामे सर्वथा वाधक न होकर अनेक अशोमे साधक है । मानव-मात्रकी एकता, 'वसुधैव कुटुम्वकम्'का आदर्श इस देशमे वहुत पुराना है । वस्तुत. जो कार्य श्रमण-धर्मने आध्यात्मिक क्षेत्रमें मानवकी एकताको स्वीकार करते हुए किया था, वही कार्य भौतिक क्षेत्रमे समाजवादको स्वीकार करके हमे सम्पन्न करना है ।'

---

१. 'जनवाणी' अक्तूवर, सन् १९४८ ई०

संस्कृतवाङ्मयका महत्त्व और उसकी शिक्षा[1]

माननीय सभापति महोदय, माननीय शिक्षा-सचिवजी, श्रीमान् कुलपतिजी, विद्वद्वृन्द, स्नातक वन्धुओं तथा देवियो और सज्जनो,

आपने उपाधि-वितरणोत्सवके शुभ अवसरपर दीक्षान्त भापणके लिए निमन्त्रित कर मुझे गौरवान्वित किया है। इस कृपाके लिए मै आपका अत्यन्त कृतज्ञ हूँ।

काशी भारतका सवसे प्राचीन नगर और विद्यापीठ है। इसकी शिक्षाकी परम्परा अक्षुण्ण रही है और यह सदासे भारतीय सस्कृति और संस्कृत विद्याका प्रधान केन्द्र रहा है। आज भी इसका सारे देशमे आदर है। काशीके इस सस्कृत महाविद्यालयने विशेप रूपसे प्रसिद्धि प्राप्त की है। इस विद्यालयको अनेक प्राच्य और प्रतीच्य विद्वानोने सुशोभित किया है और यह उन्हीकी प्रकाण्ड विद्वत्ता और साधनका फल है कि इस विद्यालयकी कीर्ति समस्त भारतवर्पमे फैल गयी है। स्थापनाके आरम्भकालसे ही इस सस्थाका एक उद्देश्य संस्कृत ग्रन्थोका संग्रह करना भी रहा है और इस उद्देश्यमे इसको विशेप रूपसे सफलता मिली है। डाक्टर वेनिसके उद्योगसे सन् १९१४ मे ग्रन्थागारके लिए सरस्वती भवनकी स्थापना हुई थी और यह हर्पका विपय है कि इस पुस्तकालयमे हस्तलिखित प्राचीन पुस्तकोकी संख्या ५०००० से अधिक है। यह संग्रह विशेप रूपसे उल्लेखनीय है और सरस्वती-भवनसे जो ग्रन्थमाला प्रकाशित होती है उसमें अवतक इस संग्रहके दो सौ उपादेय ग्रन्थ प्रकाशित हो चुके है।

मै अपनेको भाग्यशाली समझता हूँ कि मैने इस विद्यालयके प्रिंसिपल डाक्टर वेनिस, पं० केशव शास्त्री और प्रो० नार्मनसे सस्कृत, प्राकृत, पाली तथा पुरातत्वकी शिक्षा प्राप्त की थी तथा इस महाविद्यालयके गोलोकवासी म. म श्रीराम शास्त्री तैलग और प० जीवनाथ मिश्रसे अलंकार-शास्त्र तथा न्यायका अध्ययन भी किया था। भारतीय संस्कृति और प्राचीन इतिहासके प्रति जो मेरी श्रद्धा थी वही मुझको यहाँ खीच लायी थी। उस कालका स्मरण कर मुझे आज भी अपूर्व आनन्द होता है, क्योकि इन विद्वानोके चरणोमे बैठकर मैंने अपनी प्राचीन सस्कृतिका थोडा-वहुत ज्ञान प्राप्त किया था और आधुनिक आलोचना और अन्वेपणके प्रकारका अध्ययन किया था। जो व्यक्ति अपनी ज्ञान-परम्परा तथा अतीतके इतिहासका ज्ञान नही रखता वह सभ्य और शिष्ट नही कहला सकता, क्योकि वर्तमानका मूल अतीतमे है और विना उसको जाने वर्तमान कालके सामाजिक जीवनमें वुद्धिपूर्वक सहयोग करना कठिन है। अत· मै इस संस्थाका अत्यन्त ऋणी हूँ। एक और दृष्टिसे भी उन दिनोकी स्मृति वड़ी मधुर है। जो विदेशी विद्वान् यहाँ अध्यापनका कार्य करते थे, वह संस्कृत विद्याके परम अनुरागी थे और उन्होने इस महाविद्यालयके पण्डितोसे प्राचीन शास्त्रोका ज्ञान प्राप्त किया था। इस कारण यहाँका वातावरण अन्य विद्यालयोसे सर्वथा भिन्न था।

---

१. काशी सस्कृत महाविद्यालयके समावर्तन संस्कारके अवसरपर दिया गया दीक्षान्त भापण।

यह प्रसन्नताका विपय है कि प्रान्तकी गवर्नमेण्टने इस विद्यालयको संस्कृत विश्व-विद्यालयका रूप देनेका निश्चय किया है। अब समय आ गया है कि इस सस्थाका लक्ष्य अधिक व्यापक और समयके अनुरूप बनाया जावे। भारतीय और प्रतीच्य विद्वानोके सहयोगसे सस्कृतवाङमयका उद्धार हो रहा है। इस शुभ कार्यका श्रीगणेश यूरोपीय विद्वानोने किया था। किन्तु गत ३० वर्षोमे भारतीय विद्वानोने अपूर्व उत्साह और लगनसे अन्वेषण और शोधके कार्य मे विशिष्ट भाग लिया है। राजनीतिक चेतनाके साथ-साथ राष्ट्रीय आधारपर सास्कृतिक जीवनको आश्रित करनेका भी प्रयत्न किया गया है। प्राचीन इतिहास और सस्कृतिके अध्ययनमे विशेप अभिरुचि उत्पन्न हो गयी है और भारतीय विद्वानोने पाश्चात्य शिक्षाद्वारा अन्वेपणकी वैज्ञानिक पद्धतिको सीखकर साहित्य, भापा, धर्म तथा सामाजिक सस्थाओका अध्ययन किया है।

आज भी इस कार्यमे यूरोपीय विद्वान् अपना दान दे रहे है। किन्तु इसमे सन्देह नही कि स्वतन्त्र होनेपर हमारा उत्तरदायित्व बहुत बढ़ गया है। हमारा कर्त्तव्य है कि संस्कृत विद्याके अध्ययनको हम पाठचक्रममे विशिष्ट स्थान दे और अन्वेषणके कार्यको प्रोत्साहन दे। आधुनिक युगके दो महापुरुषोके कारण तथा अपनी प्राचीन सस्कृतिके कारण हमारा संसारमे आदर है। यह खेदका विषय होगा यदि हम इस आवश्यक कर्त्तव्यकी ओर उचित ध्यान न दे और सस्कृतवाङमयकी रक्षा और वृद्धिके उदासीनता दिखावे। सस्कृतवाङमय आदर और गौरवकी वस्तु है और उसका विस्तार और गाम्भीर्य हमे चकित कर देता है। हमको उसका उचित गर्व होना चाहिये। सस्कृत संसारकी सबसे प्राचीन आर्य-भाषा है जिसका वाङमय आज भी विद्यमान है। ऋग्वेद हमारा सबसे प्राचीन ग्रन्थ है। रामायण और महाभारत ससारके अनुपम और बेजोड काव्य है। यही हमारी सस्कृतिकी मूलभित्ति है। अनेक नाटक और काव्योकी सामग्री इन्ही ग्रन्थोसे उपलब्ध हुई है। महाभारत वेदके समान पवित्र माना जाता है। (इतिहासपुराण पञ्चम वेदाना वेदम्) महाभारत हमारी प्राचीन संस्कृतिका भाण्डार है। इसमे प्राचीन आचार-विचार, रीति-नीति, आदर्श और सस्थाओका इतिहास उपनिवद्ध है। यह दर्पणके समान है जिसमे प्राचीन भारतका जीवन प्रतिबिम्बित होता है। कालकी दृष्टिसे रामायण एक उत्कृष्ट ग्रन्थ है। इसलिए वाल्मीकिको आदिकवि कहते है। इसमे माधुर्य और प्रसाद-गुण है और यह उत्तम काव्यका प्रतिमान समझा जाता है।

इसी कारण रामायण और महाभारतके अनेक सस्करण है। रामोपाख्यान यवद्वीप, सुमात्रा, कम्बोडिया, चम्पा, स्याम, चीन और तिब्बतमे प्रचलित था। यवद्वीपकी रामायण-के कुछ अश भट्टिकाव्यका अनुवाद है और कुछ अश उसके आधारपर लिखे गये है। तिब्बतमे जो रामायणका सस्करण प्राप्त हुआ है उसकी कथा रामायणी कथासे भिन्न है। जैनियोमे भी रामायणके दो सस्करण है :—एक वाल्मीकिका अनुसरण करता है, दूसरा बौद्ध-कथासे प्रभावित है। इसी प्रकार महाभारतकी कथा किसी न किसी रूपमे बृहत्तर भारतके कई देशोमे प्रचलित थी। भारतीय भाषाओने तुलनात्मक भाषा-विज्ञानको जन्म

दिया है। व्याकरण शास्त्र भी इस देशमे चरमविकासको पहुँचा है। रुसी विद्वान् श्चेरवात्स्कीके शब्दोंमे पाणिनिकी अष्टाध्यायी मानवी बुद्धिकी सर्वश्रेष्ठ कृतियोंमेंसे है।

उपनिषदोकी विचारधारा और साधना ससारके अलभ्य रत्नोमें से है। भारतमें जिन विशिष्ट विचार-धाराओने जन्म लिया है उन सबका मूल स्थान उपनिषदोमे है। उपनिषद्के वाक्योमे गाम्भीर्य, मौलिकता और उत्कर्ष पाया जाता है और वह प्रशस्त, पुनीत और उदात्त भावसे व्याप्त है। मैक्समूलरका कथन है कि उपनिषद् प्रभातके प्रकाश और पर्वतोकी शुद्ध वायुके समान है। जिस प्रकार जब हिमानीसे पुण्यसलिला भगवती भागीरथी उद्गत होकर पर्वतमालामे घूमती हुई प्रवाहित होती है तब उनमे स्नान करनेसे बाह्य और आभ्यन्तरकी विशुद्धि होती है और एक क्षणके लिए ऐसी प्रतीति होती है मानो सकल वासनाका क्षय हो गया हो, सकल शरीर प्रीति-रससे आप्लुत और सकल चित्त कुल चेतनाकी भावनासे वासित और व्याप्त हो गया हो, उसी प्रकार उपनिषद्वाक्योमे अवगाहन कर एक नया चैतन्य और एक नयी प्रेरणा मिलती है। यह वाक्य कभी बासी नही होते, कभी पुराने नही पड़ते। यह सदा नूतन और सदा नवीन हैं। उपनिषद् वह स्तम्भ है जिसपर प्रतिष्ठित सस्कृत विद्या और भारतीय संस्कृतिका दीपक सदा प्रकाश देता रहता है। यह हमारी अचल निधि है, यही हमारा जयस्तम्भ है।

संस्कृतवाङमयकी व्यापकता भी अद्भुत है। इसके अन्तर्गत अनेक शास्त्र और विद्याएँ है। इसकी धारा अविच्छिन्न रही है। सस्कृतवाङमयमे मैं पाली और प्राकृतका भी समावेश करता हूँ। एक समय था कि जब सस्कृतका विशाल क्षेत्र था। मध्य एशियासे लेकर दक्षिण पूर्ण एशियाके द्वीपोतक संस्कृतका अखण्ड राज्य था। उस समय विविध सम्प्रदायोके विद्वान् संस्कृतमे ही ग्रन्थ-रचना करते थे और शास्त्रार्थ भी संस्कृतमे होता था। इस विशाल क्षेत्रपर भारतीय सस्कृतिका अपूर्व प्रभाव पडा था। यवद्वीपका प्राचीन साहित्य सस्कृतपर आश्रित था और स्याम, लंका, मलय, जावा, हिन्दचीन आदिकी भाषाओपर सस्कृतका प्रभाव आज भी स्पष्ट है। इसी कालमे भारतीयोने इन द्वीपोमे उपनिवेश बसाये थे। मध्य एशियामे बौद्धधर्मके साथ-साथ भारतीय भाषा, लिपि, दर्शन और कला भी गयी थी। तिब्बतका बौद्ध वाङमय भारतीय और भोटके पण्डितोके सहयोगसे तिब्बती भाषामे अनूदित हुआ था और तिब्बती लिपि भी भारतकी देन है। आज भी तिब्बतके मठोंमे प्राचीन सस्कृतके ग्रन्थ पूजे जाते हैं। दिङनागका न्यायमुख और आलम्बन परीक्षा, धर्म-कीर्तिका प्रमाणवार्त्तिक आदि कई ग्रन्थ वहाँसे उपलब्ध हुए हैं। महापण्डित श्री राहुल सांकृत्यायन तिब्बतके मठोसे ५१० हस्तलिखित संस्कृत पोथियोकी सूची लाये है। अनेक भारतीय ग्रन्थ एशियामे पाये गये है। सिंकिआंगका प्रान्त जो आज रेगिस्तान है, एक समय हराभरा प्रदेश था और उसके नगरोमे बौद्धोके अनेक विहार और चैत्य थे जहाँ समृद्ध पुस्तकागार और कलाकी वस्तुएँ थी। इस स्थानपर अनेक भाषाओका समागम और मिलन होता था। इस प्रदेशसे संस्कृत, प्राकृत, तथा अन्य अपरिचित भाषाओके ग्रन्थ उपलब्ध हुए है। स्टाइनने भारतकी ओरसे खोजका

काम किया था। पुराने विहारोके भग्नावशेपसे बौद्ध मूर्त्तियाँ तथा रेशम, कागज और कपड़ापर अनेक चित्र प्राप्त हुए है। इन खोजोसे एक विलुप्त सभ्यताका पता लगा है। तुर्फान, कूचा,खुतन तथा अन्य स्थानोसे विपुल सामग्री प्राप्त हुई है। यह ग्रन्थ भूर्जपत्र, कागज, चमडा या लकडीपर लिखे गये है। इनकी लिपि गुप्तकालीन अथवा खरोष्ट्री है। बौद्धोके सस्कृत आगमके कई ग्रन्थ यहाँ पाये गये है तथा मातृचेटके दो प्रसिद्ध स्तोत्र-ग्रन्थ भी मिले है जिनकी प्रशंसा चीनी पर्यटक इत्सिङ्ग करता है। यहीसे अश्वघोपके नाटकोके अंश प्राप्त हुए है। खुतनका राजकाज भारतीय भाषाओमें होता था और यहाँके राजाओके नाम भारतीय थे। काराशरका प्राचीन नाम अग्निदेश था। कूचासे ही बौद्धधर्म चीन गया था। प्रसिद्ध कुमारजीव कूचाका ही अधिवासी था। कूचाकी सस्कृति भारतीय थी। यहाँ तन्त्र व्याकरणका अध्ययन होता था।

अफगानिस्तानमे सन् १९२२ से प्राचीन खुदाईका काम हो रहा है। हड्डामे अनेक स्तूप, चैत्य और मूर्त्तियाँ पायी गयी है। वामियानमे बुद्धकी विशाल मूर्त्तियाँ तथा भित्ति-चित्र मिले है। यहाँपर भूर्जपत्रपर लिखित सस्कृत ग्रन्थ भी मिले है। यह महासाघिक विनयग्रन्थ तथा महायानके अभिधर्म ग्रन्थोके अंश है। कावुलके उत्तर-पश्चिम खैरखानिह पर्वतपर एक मन्दिरके भग्नावशेष मिले है जो गुप्तकालीन मन्दिरकी रचनाका स्मरण दिलाते है। यहाँ श्वेत संगमरमरकी सूर्यकी एक प्रतिमा भी मिली है जो चतुर्थ शताब्दी-की है।

कम्वोडिया (कम्वुज देश) जो हिन्दचीनमे समाविष्ट है ९०० वर्पतक भारतीय संस्कृतिका एक केन्द्र रहा है। यहाँ सस्कृतके लेख पाये गये है। यहाँके स्थापत्यमे विष्णु, राम और कृष्णकी कथाएँ सञ्चित है। भारतीय कलाका सौन्दर्य यहाँ निखरा है।

कहाँतक कहे, दूर-दूर प्रदेशोमे भारतीय ग्रन्थ पाये गये है। मैक्समूलरके एक जापानी शिष्यने जापानके एक मन्दिरमे सुखावती व्यूहकी पोथी पायी थी। चीन और मंगोलियामे बौद्धधर्मके साथ-साथ भारतीय सस्कृति भी गयी थी। चीनके साहित्यका अध्ययन करनेसे भारतके सम्वन्धमे वहुत-सी बाते विदित होगी। कुछ काल पहले चीनी पर्यटक च्वंग-च्वग-को गयाके सघारामके आचार्यद्वारा लिखित पत्र और उसका उत्तर प्रकाशित हुआ था।

इस सम्वन्धमे यह नही भूलना चाहिये कि बौद्धधर्म भारतीय था और उसकी संस्कृति भारतीय थी। अवैदिक होते हुए भी बौद्ध और जैन धर्मका कर्म तथा कर्मफलमे विश्वास था और दोनो नास्तित्ववादका खण्डन करते थे। पुन भारतके सव मोक्षशास्त्र चिकित्सा-शास्त्रके तुल्य चतुर्व्यूह है। हेय, हान, हेयहेतु और हानोपाय, यह चार सव मोक्षशास्त्रोके प्रतिपाद्य है। यही चार व्यूह योगसूत्रमे है। न्यायके यही चार अर्थपद है अर्थात् पुरुपार्थ स्थान है। वुद्धके यही आर्यसत्य है। इन्ही चार अर्थपदोको सम्यक् रीतिसे जानकर नि.श्रेयस्की अथवा निर्वाणकी प्राप्ति होती है। सव अध्यात्म विद्याओंमे इन चार अर्थपदोका वर्णन पाया जाता है। सभी शास्त्र समान रूपसे स्वीकार करते है कि तत्त्वज्ञान अर्थात् सम्यक् दर्शन योगकी साधनाके विना नही होता। न्यायदर्शनमे कहा है कि समाधि-विशेषके अभ्याससे तत्वसाक्षात्कार होता है।

यह आत्म-संस्कारकी विधि है। जन्मान्तरमें उपचित धर्मप्रविवेकसे योगाभ्यासका सामर्थ्य उत्पन्न होता है। यह धर्मवृद्धिकी पराकाष्ठाको प्राप्त होता है (प्रचय काष्ठागत) और उसकी सहायतासे समाधि-प्रयत्न प्रकृष्ट होता है। तब समाधिविशेष उत्पन्न होता है। वैशेषिक सूत्रमे भी कहा है कि आत्मकर्मसे मोक्ष होता है। आत्मकर्मके अन्तर्गत श्रवण, मनन, योगाभ्यास, निदिध्यासन, आसन, प्राणायाम और शम-दम हैं। योगकी साधना बौद्ध, जैन दोनो धर्मोमे पायी जाती है। प्राणायामसे काम और चित्तकी प्रश्रब्धि होती है और जिस प्रकार न्यायशास्त्र प्राणायाम और अशुभ संज्ञाकी भावनाको विशेष महत्व देता है उसी प्रकार बौद्धागममे भी उनको विशिष्ट स्थान दिया गया है। इनसे काम रागका प्रहाण और नाना प्रकारके अकुशल वितर्कोंका उपशम होता है। मैत्री भावनाका भी माहात्म्य विशिष्ट है। इस प्रकार योगकी साधना वैदिक तथा अवैदिक धर्मोको एक सूत्रमे बाँधती है और यह साधना सबको समान रूपसे तभी स्वीकार हो सकती थी जब सबके भौतिक विचारोमे भी किसी-न-किसी प्रकारका सादृश्य हो। मेरी धारणा है कि विविध सम्प्रदायोके होते हुए भी यदि हमारे देशमे धर्मके नामपर रक्तपात नहीके तुल्य हुए है तो उसका एक कारण यह भी है कि इनकी मोक्षकी साधना समान रही है और जिस युगमें भक्तिमार्गका प्रभाव बढा उस युगमे बौद्ध धर्ममे भी उपासनाका प्राबल्य था।

मैंने इसका उल्लेख इस कारण किया कि कहीं आप बौद्ध और जैन आगमकी उपेक्षा न करें। इन ग्रन्थोमें भारतीय समाजशास्त्रके इतिहासके लिए प्रचुर सामग्री मिलती है और बौद्ध तथा जैन विद्वानोने न्याय, दर्शन, व्याकरण और काव्यके विकासमे विशिष्ट भाग लिया है।

ऐसे भारतीय वाङमयका संरक्षण तथा प्रचार करना हमारा आपका कर्त्तव्य होना चाहिये। मैंने भारतीय संस्कृतिके विस्तारका यत्किंचित् विवरण इस कारण दिया जिसमें हमारे स्नातकोंको इसकी समृद्धि और मूल्यका ज्ञान हो।

यह कार्य इस महाविद्यालयका प्रधान लक्ष्य होना चाहिये। किन्तु यह कार्य तबतक सम्पन्न नही हो सकता जबतक हम आलोचना और गवेषणाकी आधुनिक पद्धतिको न स्वीकार करें। अन्वेषणके कार्यके लिए यहाँ वृहत् आयोजन करना होगा। हम अपनी निधिकी रक्षा और उसका मूल्यांकन ठीक-ठीक नही कर सकेंगे जबतक संस्कृत विश्वविद्यालयमे संस्कृतके साथ पाली, प्राकृत, चीनी, भोट, तथा कतिपय पाश्चात्य भाषाओ-की शिक्षाकी व्यवस्था न की जायगी। पुनः आज नवीन शास्त्रोका उदय हुआ है और प्राचीन विद्याएँ विकसित होकर प्रौढ़ावस्थाको प्राप्त हुई है। अनुसन्धानके कार्यके लिए इनमेसे जिन शास्त्रो और विद्याओका जितना ज्ञान आवश्यक हो उतना हमारे विशेषज्ञोंको प्राप्त करना चाहिये। उदाहरणके लिए भाषा-विज्ञानके सिद्धान्तोको जाने बिना हम प्राचीन ग्रन्थोंका कई स्थलपर ठीक-ठीक अर्थ नही लगा सकते। वैदिक साहित्यको समझनेके लिए अनेक जातियोके सांस्कृतिक इतिहासका तथा उनकी भाषाका जानना भी आवश्यक है। भारतमे अनेक जातियाँ समय-समयपर आती रही है जो भारतीय समाजमे घुल-मिल गयी है। उनके आचार-विचारका प्रभाव आर्योकी संस्कृतिपर पड़ा है। उत्तर-पश्चिममें

अनेक धर्म और सस्कृतियोका मिलन तथा परस्पर आदान-प्रदान हुआ है । वहाँकी कलापर यूनानी और ईरानी कलाका प्रभाव पडा था । गान्धारमे अनेक शैलियोका विकास हुआ था और इनकी पूर्ण निष्पत्ति खुतन, कूचा, तुर्फान आदि कलाके प्रसिद्ध केन्द्रोमे हुई थी । इस प्रदेशमे बौद्ध धर्मका सस्पर्श ईरानी, मागी आदि धर्मोसे हुआ था । अत इस युगके धर्म और सस्कृतिके इतिहासको जाननेके लिए इन विविध धर्मो और सस्कृतियोंका ज्ञान आवश्यक है । भारतीय समाजशास्त्रकी रचनाके लिए आज केवल इतना पर्याप्त नही है कि हम विविध ग्रन्थोके आधारपर पर तथ्योका सग्रह करे, किन्तु साथ-साथ पश्चिमके समाजशास्त्र, नृतत्व आदि उपयोगी शास्त्रोमे प्रतिपादित सिद्धान्त तथा उनमे एकत्र की हुई सामग्रीको जानना भी आवश्यक है ।

इस महाविद्यालयमे इस कार्यके लिए अनेक सुविधाएँ है । सबसे बडी बात तो यह है कि आपके पास एक बृहत् पुस्तकालय है जिसमे हस्तलिखित और मुद्रित ग्रन्थोका अच्छा सग्रह है । हस्तलिखित पुस्तकोका सूचीपत्र तैयार किया जा रहा है और प्राचीन पुस्तकोके प्रकाशनकी भी व्यवस्था की गयी है । काशी सस्कृत-शिक्षाका प्रसिद्ध केन्द्र है और प्राचीन शैलीके अनेक विद्वान् यहाँ प्रवचन करते हैं । नवीन शैलीके संस्कृत-विद्वानोके सहयोगकी परम आवश्यकता है । पिछले ३० वर्षोमे जिन भारतीयोने सस्कृत विद्याके उद्धारका स्तुत्य कार्य किया है उनमे अधिकाश वही है जिन्होने पश्चिमके गवेषणाके प्रकारोको सीखा है और जिन्होने नये ढगसे शिक्षा प्राप्त की है । इनके सहयोगसे यहाँके स्नातक भी इस कार्यके लिए तैयार किये जा सकते है । इसकी अत्यन्त आवश्यकता है । मै जब काशीमे विद्यार्थी था तब सस्कृत कालेजके कुछ शास्त्री फ्रेंच, जर्मन, पाली आदि पढा करते थे और उनको छात्रवृत्ति दी जाती थी । किन्तु इनकी सख्या बहुत थोडी थी । अब इसी कार्यको बड़े पैमानेपर करनेकी आवश्यकता है । इसके लिए इन भाषाओके अध्यापन तथा छात्रवृत्तियो-की उचित व्यवस्था होनी चाहिये ।

अपने प्राचीन ग्रन्थोके प्रामाणिक सस्करण भी अभी नही निकल पाये है । महाभारत जैसे प्राचीन ग्रन्थका कोई प्रामाणिक सस्करण न हो यह कितनी लज्जाकी बात है । किन्तु भाण्डारकर ओरियण्टल रिसर्च इन्स्टीट्यूट इस कमीको पूरा कर रहा है । इसका आरम्भ सन् १९१९ मे हुआ था और आज भी यह कार्य समाप्त नही हुआ है । यह कार्य जितना कठिन और महान् है उतना ही इसका महत्त्व भी है । अशुद्ध पाठके आधारपर जो विविध निष्कर्ष निकाले गये थे वह सदोष पाये गये है । जब आदिपर्वका वैज्ञानिक सस्करण सन् १९३३ मे प्रकाशित हुआ था तब उसपर ससारके विद्वानोने बडा सन्तोष प्रकट किया था और उसे सस्कृत-भाषा-विज्ञानके इतिहासकी सबसे महत्त्वपूर्ण घटना बताकर डा० सुक्थकरकी प्रशसा की गयी थी । आधुनिक वैज्ञानिक पद्धतिकी जानकारीके बिना यह महत्त्वपूर्ण कार्य नही हो सकता था । पुराणोमे भी शोधका बहुत काम करना है । हस्तलिखित पोथियोकी खोज भी जारी रहनी चाहिये और उनकी रक्षाका उचित विधान होना चाहिये । विज्ञानकी सहायताके बिना यह साधारण-सा कार्य भी नही हो

सकता। जो पोथियाँ जीर्ण-शीर्ण हो रही हैं उनकी रक्षाका एकमात्र उपाय उनका चित्र लेना है। माइक्रोफिल्म और फोटोस्टैट कैमराकी सहायतासे यह कार्य सुकर हो गया है। इस सम्बन्धमे मुझे एक निवेदन करना है कि गवर्नमेण्टको इण्डिया आफिस लाइब्रेरीमे संगृहीत भारतीय पुस्तकोंकी वापसीकी चेष्टा करनी चाहिये। समाचारपत्रोंसे ज्ञात होता है कि ऐसी कुछ चेष्टा की जा रही है। यदि यह सत्य है तो यह परम सन्तोषका विषय है। इंगलैण्डके अतिरिक्त अन्य देशोंमे जो ग्रन्थ गये है उनका चित्र प्राप्त करनेका प्रयत्न होना चाहिये। एक ऐसा भी कानून बनाना चाहिये कि भारतसे बाहर कोई प्राचीन ग्रन्थ, चित्र या कलाकी वस्तु न जावेगी।

मेरी संस्कृत विश्वविद्यालयकी कल्पना यह है कि यहाँ प्राचीन शास्त्रोंके स्वाध्याय-प्रवचनके साथ-साथ गवेषणाकी पूरी व्यवस्था की जाय और इस सम्बन्धमे जिन भाषाओं और नवीन शास्त्रोंकी शिक्षाकी आवश्यकता हो उसका भी प्रबन्ध किया जाय। इस गवेषणाके कार्यमे पुरातन और नवीन शैली, दोनोंके विद्वानोंका सहयोग प्राप्त किया जाय तथा विद्यालयसे निकले हुए आचार्योंको छात्रवृत्ति देकर अन्वेषणके कार्यके लिए तैयार किया जाय। यहाँ ऐसी भी व्यवस्था होनी चाहिये जिससे अन्य विश्वविद्यालयोंके विद्वान् यहाँ आकर अनुसन्धानके कार्यमें योग दे सके। किन्तु इस व्यवस्थामे पूरा लाभ तभी होगा जब यहाँके पाठ्यक्रममे उचित परिवर्तन किये जायेंगे। आजके युगमे पुरानी पद्धतिकी संस्कृतकी शिक्षा तभी अपने उद्देश्यको चरितार्थ कर सकती है जब शास्त्रोंकी शिक्षाके साथ-साथ मौलिक शिक्षाकी भी व्यवस्था की जाय। प्रत्येक विद्यार्थीको केवल अपनी जीविकाका ही उपार्जन नही करना है, किन्तु उसे एक नागरिकके कर्त्तव्योंका भी पालन करना है और इससे भी बढकर उसे मनुष्य बनना है और मनुष्य भी पुराने युगका नहीं, आजके युगका जब समाजने अपने सामञ्जस्यको खो दिया है, जब विचारोंमे संघर्ष चल रहा है और एक प्रकारकी अनिश्चितता है जिसके कारण जीवनके प्रति कोई स्पष्ट और उत्कृष्ट दृष्टि नही बन पाती। वह मनुष्य क्या है जो अपनी मातृभाषाके साहित्यसे परिचित नही है, जो एक शास्त्रका विशेषज्ञ होनेके लोभमे अपने साहित्य और कलाकी अमरकृतियों की उपेक्षा करता है? वह मनुष्य क्या है जो संसारके इतिहाससे अपरिचित है, जिसको वर्तमान समस्याओं और घटनाओंका ज्ञान नही है? वह अपने विषयका विशेषज्ञ हो सकता है। यदि वह विज्ञानका विद्यार्थी है तो वह कुशल शिल्पी हो सकता है, यदि वह संस्कृतका शास्त्री या आचार्य है तो वह पौरोहित्य या अध्यापनका कार्य कर सकता है, किन्तु दोनो दूसरोंका उपकरण ही बन सकते हैं और समाज और राजनीतिके संचालनमे वह अपनेको असमर्थ पाते है। इसका कारण यह है कि वह अपने धन्धेको जानते है, किन्तु शिक्षा और जीवनके परम उद्देश्यको नही जानते। उनकी दृष्टि व्यापक नही है और न उनकी शिक्षाका क्षेत्र इतना विस्तृत है कि उनको जीवनके विविध क्षेत्रोंके लिए सामान्य रूपसे तैयार करे। इसलिए प्रत्येक विद्यार्थीके लिए ऐसी पाठ्य-पद्धति होनी चाहिये जिसकेद्वारा यह सामान्य किन्तु परम आवश्यक ज्ञान उसको दिया जा सके। इस दृष्टिसे डाक्टर भगवानदास-समितिके अभिस्तावों तथा निष्कर्षोंका मैं सामान्य रूपसे स्वागत करता

हूँ। नवीन विषयोके समावेशकी वात तो दूर रही, वर्तमान प्रणालीके अनुसार सस्कृत-वाङमयका भी एकाङ्गी अध्ययन ही हो पाता है।

अत. पाठ्यक्रमके क्षेत्रको दो प्रकारसे हमे विस्तृत करना चाहिये। एक—संस्कृत-विद्याकी पाठ्य विधिको व्यापक और सर्वाङ्गीण वनाना। दो—पाठ्यविधिमे आधुनिक विषयोका तथा, हिन्दी, इतिहास, भूगोल, राजशास्त्र, गणितका समावेश करना। साथ-साथ विद्यार्थियोमें तुलनात्मक और आलोचनात्मक अध्ययनकी प्रवृत्ति उत्पन्न करनी चाहिये। इन सिद्धान्तोके आधारपर पाठ्य-पद्धतिका पुनर्निर्माण होना चाहिये, किन्तु इस वातका ध्यान रखना चाहिये कि ज्ञानके गाम्भीर्यमे कमी न हो तथा गाम्भीर्यकी रक्षा करते हुए आवश्यक मात्रामे उसका विस्तार भी हो। जितना आधुनिक ज्ञान एक साधारण विद्यार्थीके लिए नितान्त आवश्यक है उतना तो सस्कृत पाठशालाओके छात्रोको भी अर्जित करना चाहिये।

मैं एक दूसरे आवश्यक कार्यकी ओर आपका ध्यान दिलाना चाहता हूँ, यह है सस्कृत-वाङमयका हिन्दीमे अनुवाद। यदि हिन्दी भाषामे हमारे प्राचीन ग्रन्थ-रत्नोका अनुवाद प्रस्तुत हो तो इससे भारतीय सस्कृतिके प्रचारमे वड़ी सहायता मिलेगी। आधुनिक भाषाओकी आप उपेक्षा नही कर सकते। सारा राज-काज इन्ही भाषाओमे होने जा रहा है। धीरे-धीरे राष्ट्रभापा विश्वविद्यालयोमे शिक्षाका माध्यम हो जायगी। आपको मातृभाषाका तिरस्कार नही करना चाहिये। अव वह समय नही रहा जव किसी लेखक या कविसे प्रश्न किया जाय कि तुम सस्कृतका परिहार कर हिन्दीमे गद्य या काव्य-रचना करनेमे क्यो प्रवृत्त हुए हो। इसका उत्तर राजशेखर और गोस्वामी तुलसीदासजी दे गये है। राजशेखरके अनुसार सस्कृतवन्ध परुष और प्राकृतवन्ध सुकुमार है। वह आगे चलकर कहते है कि उक्तिविशेप ही काव्य है भाषा चाहे जो हो। राजशेखरके समयमे सस्कृत काव्य कृत्रिम और क्लिष्ट हो गया था, यह उसके ह्रासकी अवस्था थी। रामायण, महाभारत, महाभाष्य और शकरभाष्यकी शैली भला दी गयी थी, काव्यका प्रसाद गुण विलुप्त हो गया था। भामहका कहना है कि काव्यको क्लिष्ट और दुरूह नही होना चाहिये, उसके समझनेके लिए किसी टीकाकी आवश्यकता न होनी चाहिये। वह इतना सरल हो कि साधारण पढे-लिखे लोग, वालक और स्त्रियाँ भी उसे समझ सके। गद्यका प्राण ओज है (ओजः गद्यस्य जीवितम्) जव सस्कृत किसी वर्गकी भी वोलचालकी भापा न रह गयी तो उसमे कृत्रिमताका आ जाना स्वाभाविक है। तव पाण्डित्य-प्रदर्शन ही एकमात्र काव्य-रचनाका उद्देश्य रह गया और काव्य हृदयग्राही न रहा। माधुर्य और प्रसाद गुण मातृ भापाके साहित्यमे ही सुगमताके साथ आ सकता है। अत मातृभापामे साहित्य-सर्जन करनेमे हमको गौरवका अनुभव करना चाहिये।

मैने अपनी वुद्धिके अनुसार यह वतानेकी चेष्टा की है कि सस्कृत विश्वविद्यालयका क्या उद्देश्य और क्या कार्यक्रम होना चाहिये। यहाँ मैं यह स्पष्ट कर देना चाहता हूँ कि इस विश्वविद्यालयमे उन सव विषयोके अध्ययनकी व्यवस्था साधारणत करनेकी कोई आवश्यकता नही है जिनका प्रवन्ध अन्य विश्वविद्यालयोमे होता है। वहाँका पठन-पाठन

अब राष्ट्रभाषामे होगा । अतः जिनको उन विषयोकी शिक्षा लेनी है वह वहाँ जा सकते है । इसकी सुविधा अवश्य होनी चाहिये किन्तु संस्कृत विश्वविद्यालयका एक विशेष लक्ष्य है जिसकी पूर्ति अन्य विश्वविद्यालयोमे नहीं हो रही है । एक प्रकारसे यह विद्यालय भी है और प्राच्य विद्याके अन्वेषणका एक प्रतिष्ठान भी है । ज्ञान-राशि अनन्त है, उसकी सीमा नही है । इधर अनेक नवीन शास्त्रोकी प्रतिष्ठा हुई है और ज्ञानका विस्तार इतना बढ़ गया है कि बिना अन्तर्राष्ट्रीय सहयोगके गवेषणाका कार्य दुष्कर हो गया है । ज्ञानके सदृश दूसरी पवित्र वस्तु नही है । अत. विदेशियोसे उसके लेनेमे संकोच नही होना चाहिये । प्राचीन कलमें भी हमने स्वाध्याय और प्रवचनमे कृपणता नही दिखायी थी । आज भी हमको उसी उदार बुद्धि तथा व्यापक दृष्टिसे काम लेना चाहिये । इसीमे हमारा मगल है । इसी प्रकार भारतकी सर्वतोमुखी प्रतिभाका उन्नयन होगा ।

सस्कृतका आदर और सम्मान अधिकाधिक बढता जायगा । ससारके प्रत्येक प्रतिष्ठित विश्वविद्यालयमें सस्कृतकी शिक्षाका समुचित प्रबन्ध किया गया है । पाश्चात्य जगत्के विद्वान् गवेषणाके कार्यमे हमसे कही आगे बढे हुए है, उनमे ज्ञानकी पिपासा है; जहाँसे ज्ञान मिल सकता है वहाँसे लेनेमे उनको तनिक भी संकोच नही होता । हममें या तो मिथ्या गर्व और चित्तोद्रेक है अथवा आत्मावसाद है । दोनोका परिहार कर संस्कृतवाङमयके संरक्षण और प्रचारमे हमको प्राणपणसे लग जाना चाहिये । जो विद्यार्थी अपनी शिक्षा समाप्त कर उपाधि ले रहे है उनका इस विषयमे विशेष उत्तरदायित्व है ।

मैं जानता हूँ कि किस विषम परिस्थितिमें आप स्नातक अपना पठन-पाठन करते है । प्रवाहके विरुद्ध होते हुए भी आप संस्कृत विद्याकी रक्षामे जो लगे हुए है यह स्तुत्य है । आपके जीविकानिर्वाहके लिए कुछ अन्य वृत्तियोका द्वार अब खुल जाना चाहिये । केवल पौरोहित्य और अध्यापनकी प्रवृत्तियाँ पर्याप्त नही है । इस दृष्टिसे आपको कतिपय अन्य परीक्षाओमे सम्मिलित होनेकी सुविधा प्रदान करनी चाहिये । इस दृष्टिसे भी पाठशालाओं-की पाठन-विधिमे परिवर्तन करना आवश्यक प्रतीत होता है । पाठ्य-ग्रन्थावली संशोधन समितिने अपने निश्चयोमे इस बातका भी ध्यान रखा है । आपकी आर्थिक अवस्थाको सुधारना तथा आपको देशकी आवश्यकताओकी पूर्तिके लिए समर्थ बनाना समाजका कर्त्तव्य है ।

इतने विद्यार्थियोंको विविध उपाधि और पदवियोसे विभूषित होते देखकर मुझे प्रसन्नता होती है । मै आपका शुभचिन्तन करता हूँ और प्रार्थना करता हूँ कि आप समाजमे अपनी योग्यताके अनुरूप स्थान पाकर शीघ्र कार्यमे नियुक्त हो जायँगे और जो प्रतिज्ञाएँ आज आपने स्वीकार की है उनकी सदा रक्षा करेगे ।

जिस युगमे हम रह रहे है उसकी अपनी विशेषता है । हमारी सभ्यतापर आधुनिक विज्ञानका गहरा प्रभाव पड़ा है । आज सकुचित विचार-धारासे हमारा कल्याण नही हो सकता है । हमारी दृष्टि साम्प्रदायिक और प्रान्तीय न होकर राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय होनी चाहिये । हममें इन हीन प्रवृत्तियोंसे ऊपर उठनेका सत्साहस और सद्विवेक होना चाहिये । प्राचीन सस्कृतिके उत्कृष्ट अंशोकी रक्षा करते हुए हमको आधुनिक युगके

सामाजिक और आध्यात्मिक मूल्योको अपनाना होगा। राष्ट्रीय एकताके लिए किसी विशेष भाषा या लिपि का अनुचित पक्षपात छोडकर केवल राष्ट्रहितसे प्रेरित होना होगा। जनतन्त्रकी भावनासे प्रेरित होकर हमको सब काम करने होगे। हमारा चिन्तन वैज्ञानिक होगा और हम ज्ञानकी निरन्तर वृद्धि करते रहेगे। जिस कुशल चेतनासे प्रेरित होकर प्राचीन ऋषियोने सकल समाजके कल्याणके लिए सत्पथका उद्घाटन किया था उसी कुशल चेतनाकी भावना कर उन्ही आर्य और उदात्त भावोसे प्रेरित होकर हम आजकी आवश्यकताओकी पूर्तिके लिए व्रती हो और बहुजन समाजके हित-सुखका विधान कर अभ्युदय और नि श्रेयसकी प्राप्तिके लिए यत्नवान् हो। तभी हम अपना कल्याण और विश्वका कल्याण कर सकेगे। तभी संसारमे शान्ति, तुष्टि और पुष्टि होगी। आशा है आप ईप्सित फल प्राप्त करेगे और सस्कृत विश्वविद्यालयका यह शुभसंकल्प विद्वज्जनोका सहयोग प्राप्त कर सफल होगा।

प्रवर्त्तता प्रकृतिहिताय पार्थिव.,
सरस्वती श्रुतमहतां महीयसाम् ॥

सार्थो नन्दतु सज्जनानां सकलो वर्ग. खलाना पुन-
र्नित्यं खिद्यतु भवतु ब्राह्मणजन· सत्याशी: सर्वदा।
मेघो मुञ्चतु सचितमपि सलिल सस्योचित भूतले
लोको लोभपराङमुखोऽनुदिवसं धर्मे मतिर्भवतु च ॥[1]

---

१. 'जनवाणी' फरवरी, सन्, १६४६ ई०
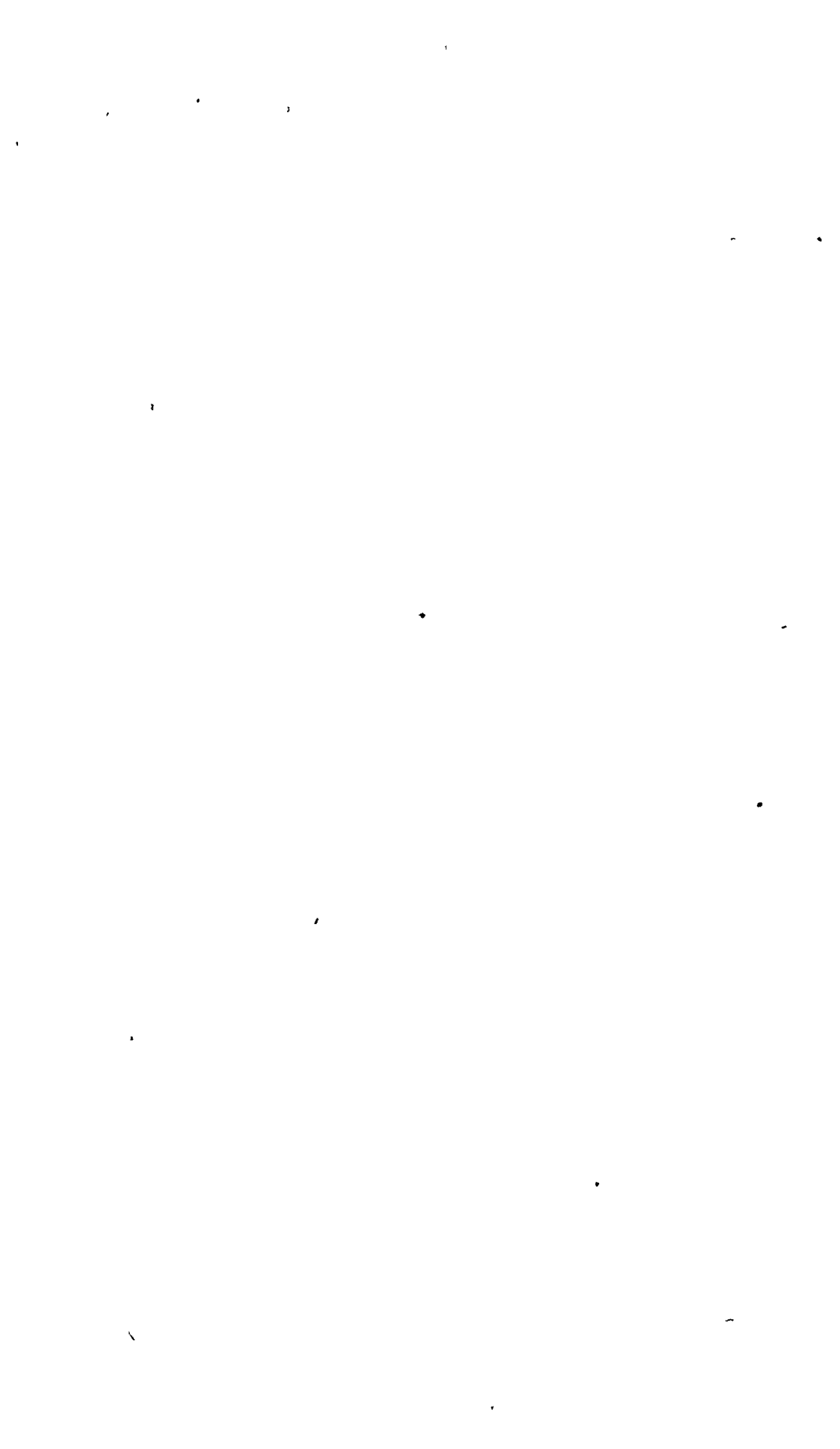
सातवाँ अध्याय

अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थिति

सातवाँ अध्याय

सोवियत रूसकी एशिया-सम्बन्धी नीति

सोवियत रूसकी एशिया-सम्वन्धी नीतिको भलीभाँति समझनेके लिए सन् १९१७ (वि० स० १९७४) की रूसकी राज्यक्रान्तिके प्रमुख नेता लेनिनके विचारोका थोडा-वहुत जानना आवश्यक है। यह प्रसिद्ध ही है कि लेनिन साम्यवादी और पूंजीवादका विरोधी था। वह समाजके ऊँच-नीचके भेदको मिटा देना चाहता था और जिन विविध श्रेणियो या वर्गोमे मानव-समाज आज विभक्त है उनको मिटाकर केवल श्रमजीवी-वर्गका आधिपत्य प्रतिष्ठित करना चाहता था। सोवियतकी शासन-पद्धति इस राज्यक्रान्तिका फल है, और सोवियत शासन-यन्त्रपर श्रमजीवियोका आधिपत्य और नियन्त्रण है। इस शासन-पद्धतिने लेनिनके विचारोको कार्यान्वित करनेका यथासाध्य प्रयत्न किया है। यह स्पष्ट ही है कि यूरोपके पूंजीवादी राष्ट्र इस प्रयोगको विफल करनेकी प्राणपणसे चेष्टा करेगे और उन्होने ऐसा किया भी। लेनिनको केवल आन्तरिक विरोधका ही सामना नही करना पड़ा, अपितु यूरोपीय राष्ट्रोके विरोधका भी मुकावला करना पडा। यूरोपके प्रधान राष्ट्रोने सोवियत रूससे राजनीतिक सम्वन्ध क्या, व्यापारिक सम्वन्ध भी, स्थापित रखना उचित न समझा और उन्होने सोवियत रूसको वदनाम करनेमे कोई तरीका उठा न रखा। सोवियत रूसकी कार्य-प्रणालीके सम्वन्धमे तरह-तरहकी मिथ्या, अनर्गल और कपोलकल्पित वातोके फैलानेका निन्द्य प्रयत्न किया गया। रूसका आर्थिक अवरोध किया गया। यहाँतक की दवाई और वच्चोके लिए दूधका जाना भी वन्द कर दिया गया। डेनिकिन, ऐडमिरल कोलचक और रैङ्गल आदि विरोधियोको हर प्रकारकी सहायता दी गयी। सन् १९२० ईसवी (विक्रम स० १९७७) मे पोलण्डनिवासियोको भी यूरोपके राष्ट्रोने रूसके विरुद्ध सहायता दी। स्वभावत लेनिनकी क्रोधाग्नि प्रज्वलित हो उठी और उसने इन पूंजीवादी राष्ट्रोको हर प्रकारसे क्षति पहुँचानेका निश्चय किया। जव यूरोपने सोवियतसे नाता तोडा तव लेनिनने विवश होकर एशियाकी ओर दृष्टिपात किया और सोवियत-शासनने अपना यह मन्तव्य प्रकट किया कि वह एशियाके देशोके साथ व्यापारिक तथा राजनीतिक सम्वन्ध स्थापित करेगा।

वहुत अनुशीलन और मननके वाद लेनिन इस सिद्धान्तपर पहुँचा था कि वर्तमान युगका 'आर्थिक साम्राज्यवाद'[1] पूंजीवादकी आखिरी मन्जिल' है। उसने अपने इस विचारकी साङ्गोपाङ्ग विवेचना 'इम्पीरियलिज्म' नामक पुस्तकमे की है। उसने इस ग्रन्थमे अपना यह मत प्रकाशित किया है कि वर्तमान युगमे पूंजीवाद एक अन्धी गलीमे प्रवेश कर चुका है, जहाँ उसके लिए आगे जानेका मार्ग नही है, पूंजीवाद अपने कर्त्तव्यको

---

१. इकनामिक इम्पीरियलिज्म (Economic imperialism.)

पूरा कर चुका है। अव इसके बाद साम्यवादकी स्थापना निर्विवाद और अवश्यम्भावी है। साम्यवादियोका मत था कि साम्यवादकी प्रतिप्ठा उन्ही देशोमे हो सकती है, जहाँ व्यवसायके द्वारा पूँजीवादका प्रसार पर्याप्त परिमाणमे हो चुका हो। इसके अतिरिक्त राप्ट्रीयताके क्षेत्रमे वे केवल यूरोपके ही अधीन राप्ट्रोको स्वतन्त्र करानेकी इच्छा रखते थे। अफ्रीका और एशियाके राप्ट्रोको वे उपेक्षा-भावसे देखते थे। इन महाद्वीपोके परतन्त्र राप्ट्रोको स्वतन्त्र करानेकी उनको फिक्र न थी। पर इन सव विषयोमे लेनिनका विचार कुछ दूसरा ही था। लेनिनका कहना था कि आज संसारमें विविध देशोके आर्थिक जीवनका परस्पर इतना घनिष्ठ सम्वन्ध हो गया है कि पुरानी प्रथाके साम्यवादियोका यह कहना कि पूँजीवाद-प्रधान देशोमे ही साम्यवादका प्रयोग सफल हो सकता है, गलत है। उसका मत था कि आज उन्ही देशोमें साम्यवादका प्रसार सुलभ है, जहाँ साम्राज्यवादकी शक्ति वहुत प्रवल नही है। इसी कारण रूसमे सवसे पहले यह प्रयोग सफल हो सका, क्योंकि रूस साम्राज्यवादी प्रधान राप्ट्रोमे सवसे निम्न श्रेणीका राप्ट्र था। उसका यह भी कहना था कि यदि दो सवल साम्राज्यवादी राप्ट्रोमे परस्पर युद्ध हो, तो जो राप्ट्र इस युद्धमे परास्त और विताडित होगा उस क्षीण और दुर्वल राप्ट्रमे भी साम्यवादका प्रयोग चलाया जा सकता है। जव साम्यवादके कट्टर विरोधी साम्राज्यवादी राप्ट्र है जव यह सिद्धान्त स्थिर हुआ कि जहाँ साम्राज्यवाद निर्वल होगा वहाॅ साम्यवादका प्रवेश सुलभ हो जायगा, तव साम्राज्यवादको आघात पहुँचाना और उसको ध्वंस करनेका उद्योग करना रूसके साम्यवादीके लिए आवश्यक हो गया। यूरोपके साम्राज्यवादी राप्ट्रोकी शक्तिका मुख्य स्रोत एशिया और अफ्रीकाके वे देश है जो आज उनके अधीन है। इन्ही अधीन देशोके आर्थिक जीवनपर प्रभुत्व पाकर आज वे परिपुष्ट हो रहे है। उनका व्यवसाय इन्ही अधीन देशोकी वदौलत चलता है। ये देश उनके व्यवसायके लिए एक मण्डी है और उनको कच्चा माल देते है, जिस सामग्रीका उपयोग कर ये राप्ट्र अपनी तिजारत चलाते है। यदि साम्राज्यवादका अन्त करना है तो एशिया और अफ्रीकाके राप्ट्रीय आन्दोलनोकी सहायता करना सोवियत रूसका कर्त्तव्य हो जाता है। आज एशियाके कई राप्ट्रोमे जागृतिके चिह्न दीख पड़ते हैं। उनमे एक नवीन जीवनका संचार हो रहा है। वे आत्म-गौरवको पहचानने लगे है और अपने देशको स्वतन्त्र देखना चाहते हैं। इन राप्ट्रीय आन्दोलनोकी शक्ति क्रमशः वढती ही जाती है। सोवियत रूसने इन आन्दोलनोको उत्तेजित करनेकी नीति निर्धारित की। जहाँ पुरानी प्रथाके साम्यवादी एशियाकी उपेक्षा करते थे वहाँ रूसके साम्यवादियोको एशियाकी ओर अधिक ध्यान देना पड़ा और उन्होने एशियामे साम्राज्यवादके विरुद्ध प्रचारका कार्य आरम्भ किया और एक ऐसा संघ सगठित किया जो साम्राज्यवादका विरोध करे। आर्थिक साम्राज्यवाद ससारके लिए भयानक है—इस वातको पहले थोडेसे विद्वान् ही पहचानते थे। एशियाके लोग तो प्राय यह भी नही जानते थे कि साम्राज्यवाद क्या चीज है, पर लेनिनने एशियाके लोगोको इसकी भीपणता वतलायी और उनको सतर्क कर दिया। आगे चलकर लेनिनने एशियाके स्वतन्त्र राप्ट्रोके साथ जो सन्धियाँ की, उन सन्धिपत्रोमे साम्राज्यवादका उल्लेख

पाया जाता है। लेनिनने एशिया और अफ्रीकाके देशोको तीन भागोमे बाँटा। पहले विभागमे वे देश आते है जहाँ वर्तमान युगकी वैज्ञानिक व्यवसाय-पद्धतिका उपक्रम नही हुआ है, पर जो साम्राज्यवादी राष्ट्रोद्वारा पददलित हो रहे है और ग्रसे जाते है। दूसरे विभागमे वे देश परिगणित है जहाँ इस नवीन व्यवस्था-पद्धतिका उपक्रम तो हो गया है, पर उसका विशेष रूपसे विकास नही हुआ है। तीसरी कोटिमे वे देश आते है जहाँ इस पद्धतिका काफी चलन हो गया है। पहले प्रकारके देशोके सम्बन्धमे लेनिनकी यह नीति थी कि वहाँ केवल राष्ट्रीय आन्दोलनको सहायता देकर सबल बनाना चाहिये और साम्यवाद-प्रचारका प्रयत्न न करना चाहिये। दूसरे प्रकारके देशोमे वह साम्यवादका प्रचार करना तो चाहता था, पर वह इस बातका पक्षपाती न था कि उस देशके साम्यवादी राष्ट्रीय आन्दोलनका नेतृत्व ग्रहण करे। तीसरे प्रकारके देशोके सम्बन्धमे उसकी यह स्पष्ट राय थी कि इनमे केवल एक साम्यवादी दलकी सृष्टि करना ही पर्याप्त न होगा, अपितु इस दलको राष्ट्रीय आन्दोलनका नेतृत्व भी ग्रहण करना चाहिये। भारतके सम्बन्धमे उसका विचार था कि यहाँ यूरोपीय महासमरके बादसे नवीन व्यवसाय-पद्धतिकी अच्छी तरक्की हुई है और इसलिए भारतमे साम्यवादका प्रचार सुलभ है। इसीलिए भारतको उन्होने तीसरी कोटिमे रखा था। इस समय भारतमे राष्ट्रीय आन्दोलनपर मध्यमश्रेणीके लोगोका ही अधिकतर अधिकार है। यहाँके कम्युनिस्ट अभी इतनी शक्तिका सग्रह नही कर पाये है कि वे भारतकी राष्ट्रीय सस्था काग्रेसपर अधिकार प्राप्त कर सके। पर चीनका उदाहरण हमारे सामने है। चीनको साम्राज्यवादसे छुटकारा दिलानेमे रूसकी अच्छी खासी सहायता थी। रूसने जारके समयके अपने सारे अधिकारोका परित्याग कर दिया था। उसने चीनियोकी राष्ट्रीय सस्था कुओमिन्ताङ्गका नवीन ढगसे सघटन करनेमे सहायता दी थी तथा रण-शिक्षा देनेके लिए रूससे सुयोग्य शिक्षक भी भेजे थे। चीनके नेता सनयातसेनने सोवियतकी सहायताको मुक्तकण्ठसे स्वीकार किया था और यदि आज चीन स्वतन्त्र राष्ट्र कहलानेके योग्य हो गया है, तो इसका बहुत कुछ श्रेय सोवियत रूसको है। सोवियत रूसने ही चीनको प्रचारकी नवीन पद्धति बतायी और साम्राज्यवादका विरोध करनेमे उसकी हर प्रकारसे सहायता की। पर आज हम क्या देखते है? चीनका राष्ट्रपति च्यागकाई शेक जिसने रूसमे रणशिक्षा प्राप्त की थी आज सोवियत रूसका विरोध करनेपर तुला हुआ है और जिन साम्राज्यवादी राष्ट्रोसे छुटकारा पानेके लिए चीन कल रूसका सहारा ले रहा था आज उन्हीसे मित्रता स्थापित कर रहा है। इसका कारण यही है कि कम्युनिस्ट दल कुओमिन्ताङ्गपर प्रधानता पाना चाहता था और उसकी यह इच्छा थी कि चीनमे जो नयी व्यवस्था कायम हो उसमे साम्यवादके सिद्धान्तोके अनुसार कार्य किया जाय। पर यह बात च्यागकाई शेक और उनके अनुयायियोको पसन्द न थी। च्यागकाई शेक पुराने विचारोका समर्थक था और साम्यवादके प्रभावको बढता हुआ नही देख सकता था। उसने कम्युनिस्टोका घोर विरोध किया और उनके ऊपर नाना प्रकारके अत्याचार किये। यहाँतक कि चीन और रूसके बीच युद्ध होनेकी आशका बढती जाती है और लडाईके बादल उमडे चले आ रहे है। च्यागकाई शेक यद्यपि अपने कई साथियोकी अपेक्षा कही अच्छा है,

तथापि उसमे महत्त्वाकाक्षा और आत्मोत्कर्षकी भावना प्रवल है। वह किस प्रकार कम्युनिस्ट दलके उत्कर्षको सहन कर सकता था ? और जव उसके लिए इस दलका विरोध करना आवश्यक हो गया, तव उसने रूसके विरुद्ध अपनेको सवल वनानेके लिए इंगलैण्ड ऐसे साम्राज्यवादी राष्ट्रसे मित्रता स्थापित की। यदि चीनका कम्युनिस्ट दल राष्ट्रीय आन्दोलनका सूत्र अपने हाथमे लेनेकी चेष्टा न करता और केवल सहायता देकर ही अपना सन्तोष कर लेता तो यह विरोध कदाचित आज खड़ा न होता। पर सोवियत रूससे ऐसी आशा रखना व्यर्थ है, क्योकि वास्तवमे वह राष्ट्रवादका विरोधी है और यदि वह किसी राष्ट्रको स्वाधीन होनेमे सहायता देता है तो केवल इसी विचारसे कि उससे साम्यवादपर आघात पहुँचेगा और यदि परिस्थिति अनुकूल हुई तो साम्यवादका प्रयोग करनेके लिए नवीन क्षेत्र भी हाथ लगेगा। हमको यह भी याद रखना चाहिये कि साम्यवादी-का विश्वास है कि किसी स्थानपर साम्यवादकी स्थिरताके लिए यह नितान्त आवश्यक है कि सर्वत्र साम्यवादका प्रचार हो और इसलिए उसकी स्वाभाविक प्रवृत्ति उसको साम्यवाद-की प्रतिष्ठाकी ओर ले जाती है। साथ-साथ यह भी है कि साम्यवादीके लिए साम्यवादका सिद्धान्त प्रधान है; और सव वाते गौण है।

इन सिद्धान्तोके अनुसार और रूसकी परिस्थितिके अनुकूल सोवियत शासनको एशियाके सम्वन्धमे एक नवीन नीतिका अवलम्वन करना पड़ा और इस नीतिको सफल वनानेके लिए अनेक प्रकारके आयोजन भी करने पडे। सोवियत शासनने इस वातकी घोषणा की कि उसकी पद्धति और नीति जारकी गवर्नमेण्टकी पद्धति और नीतिसे सर्वथा विभिन्न है और वह उन अत्याचारोको नही होने देगा जो पुराने समयमे जारकी गवर्नमेण्ट-द्वारा प्रजापर किये जाते थे। उसने रूसके साम्राज्यके भीतर रहनेवाली जातियोंको आत्म-निर्णयका अधिकार दिया। जहाँ पुराने समयमे यूक्रेनियन, जार्जियन और पोलकी अल्प-संख्यक जातियोंको पददलित किया जाता था, उनकी भाषा और सस्कृतिको वलपूर्वक मिटा देनेका उद्योग किया जाता था वहाँ सोवियत शासनने उनको इस वातकी स्वतन्त्रता दी कि वे अपनी भाषा और संस्कृतिका पूर्णरूपसे विकास करे। सस्कृतिकी स्वतन्त्रता और आर्थिक सहयोग[1] इन दो सिद्धान्तोके आधारपर सोवियत शासनने अल्प-संख्यक जातियोके जटिल प्रश्नको निपटानेका प्रयत्न किया। इस नीतिका फल यह हुआ कि जातिगत वैमनस्य, जो सस्कृतिके विरोधके कारण हुआ करता था, वहुत कम हो गया। जिन जातियोकी कोई साहित्यकी भाषा न थी उन्होने अपनी वोलचालकी भाषाको साहित्यकी भाषा वनानेका प्रयत्न किया और इस प्रयत्नमे सोवियत शासनने उनकी पूरी सहायता की। इसके अतिरिक्त सोवियत शासनने एशियाके राष्ट्रोकी स्वतन्त्रता स्वीकार की और उनकी स्वतन्त्रताकी रक्षा करनेका वचन दिया और एशियाके राष्ट्रोंको यूरोपके साम्राज्यवादका विरोध करनेके लिए सघटित किया। इसी नीतिके अनुसार सोवियत रूसने ब्रिटिश साम्राज्यवादको कमजोर करनेके लिए मिस्र और भारतको अलग करता हुआ तुर्की, फारस

---

१. लोकल कल्चरल सेलफ डिटर्मिनेशन एण्ड इकनामिक कोआपरेशन Local cultural self-determination and economic co-operation.

और अफगानिस्तानका एक सघ खडा कर दिया। जारोके समयसे ही इन तीन मुस्लिम राष्ट्रोपर अपना-अपना अधिकार जमानेके लिए इग्लैण्ड और रूसके बीच एक गहरी प्रतिद्वन्द्विता चली आती थी और यद्यपि अब जारका शासन उठ गया था तथापि आपसके विरोधके कारण यह स्पर्धा पहलेकी अपेक्षा और भी अधिक बढ गयी थी। पर सोवियत रूस इन राष्ट्रोको दबाना नही चाहता था। यही नही, वह उनकी रक्षा और सहायता करना चाहता था। एशियाके साम्राज्यवादी राष्ट्र जापानकी भी उसने उपेक्षा नही की। वह तरह-तरहके प्रलोभन देकर जापानको भी सन्तुष्ट करना चाहता था। सक्षेपमे वह बाल्टिकसे लेकर पैसिफिकतक एक ऐसे सघको तैयार करना चाहता था जिसमे परस्पर आर्थिक सहयोग हो और जो समान रूपसे साम्राज्यवादका विरोध करनेके लिए प्रस्तुत हो। यह नीति एक दिनमे सफल नही हो सकती थी। बहुत अध्यवसाय और धैर्यके साथ निरन्तर काम करते रहनेके उपरान्त ही इस नीतिका प्रभाव दिखलायी पडा। पर पूर्व इसके कि इस नीतिका कोई असर पडे, इस बातकी आवश्यकता थी कि सोवियत रूस एशियाके राष्ट्रोका विश्वास-पात्र बने। इसके लिए उसने अनेक उपाय किये। एशियाके लोगोकी कांग्रेस बुलानेका आयोजन किया गया। पहली कांग्रेस सन् १९२० (वि० सं० १९७७) मे बाकूमे हुई थी। कम्युनिस्ट इण्टरनेशनल[१]की ओरसे जिनोवीव[२]ने इस कांग्रेसमे जो भाषण दिया था उसका सार यही था कि एशियाके लोगोको एक साथ मिलकर यूरोपके साम्राज्यका विरोध करना चाहिये। इसके पश्चात् कई बार एशियाके श्रमजीवियोकी कांग्रेसे भी की गयी। एक कांग्रेस सन् १९२७ (वि० स० १९८४) मे हैंकाऊ[३]मे हुई थी, जिसमे चीन, जापान, कोरिया, ओशेनिया और ईस्ट इण्डीजके श्रमजीवियोके प्रतिनिधि सम्मिलित हुए थे। इन कांग्रेसोका उद्देश्य साम्राज्यवादके विरुद्ध प्रचार करना और एशियाकी विविध जातियोमे परस्पर भ्रातृभावकी स्थापना करना था। इन कार्योका प्रभाव ग्रेटब्रिटेनपर तत्काल ही पडा और सन् १९२० (वि० स० १९७७) मे लायड जार्जकी गवर्नमेण्टने रूससे मेल करनेका प्रस्ताव किया, क्योकि उन्होने देखा कि यदि हम ऐसा नही करेगे तो एशियामे हमारा प्रभाव बहुत घट जायगा। सन्धिकी जो शर्ते लाड जार्जने सोवियतके प्रतिनिधि क्रासिन[४]के सामने रखी थी उनमेसे एक शर्त यह भी थी कि सोवियत रूस एशियामे—विशेषत भारत और अफगानिस्तानमे—ब्रिटिश साम्राज्यके विरुद्ध आन्दोलन नही करेगा। पर कई घटनाएँ ऐसी हो गयी जिनके कारण उस समय रूस और इग्लैण्डके बीच कोई समझौता नही हो सका। समझौतेकी बातचीत कभी चलती थी और कभी बन्द हो जाती थी। पूर्व इसके कि कोई समझौता हो सके रूसने तुर्की, फारस और अफगानिस्तानसे इग्लैण्डके प्रभावको हटा दिया। सन् १९१९ (वि० स० १९७६) मे इग्लैण्ड का एशियामे बहुत बडा दबदबा था। उसके साम्राज्यका बहुत विस्तार हो गया था। यूरोपके अन्य राष्ट्रोकी अपेक्षा उसकी आर्थिक स्थिति बहुत

---

१. Communist International. २. Zinoviev. ३. Hankow. ४. Crassin.

अच्छी थी। अरब उसके नियन्त्रणमे था; ईराक और पैलेस्टाइनपर राष्ट्र-संघकी ओरसे उसको मैण्डेट[1] मिल चुके थे; तुर्कोका साम्राज्य छिन्न-भिन्न कर दिया गया था; फारसका मैदान साफ पाकर १६१६ (वि० सं० १६७६) के समझौते[2] के द्वारा फारसपर अपना नियन्त्रण सुदृढ करने और अपने अधिकारका विस्तार करनेकी चेष्टा की गयी। काकेसस, ट्रैन्स काकेशिया, ट्रैन्स कैस्पिया और तुर्कीस्तान उनके कब्जेमें था। इंग्लैण्डके कुछ राजनीतिज्ञ यह कहने लग गये थे कि हम काकससकी पर्वतमालाको ब्रिटिश साम्राज्यकी रक्षाकी उत्तरी सीमा बनायेंगे। यह अवस्था सन् १६१६ (वि० सं० १६७६) में थी। पर दो वर्षके भीतर ही काया-पलट हो गया। अफगानिस्तानकी स्वतन्त्रताको ब्रिटिश सरकारको मानना पड़ा और अफगानिस्तानकी परराष्ट्र-नीति ब्रिटिशके अधीन न रहकर अफगानिस्तानके बादशाहके अधीन हो गयी। फारसकी मजलिसने लार्ड कर्जनके समझौतेको ठुकरा दिया और वहाँ सन् १६२१ ईसवी (वि० सं० १६७८) में राज्य-क्रान्ति हो गयी। तुर्क कमालपाशाके नेतृत्वमें ग्रीक लोगोंके विरुद्ध बहादुरीके साथ लडे और उनपर पूरी विजय प्राप्त की। प्रधान मित्र-राष्ट्रोंने अंगोराकी गवर्नमेण्टको सुलहकी बातचीतके लिए आमन्त्रित किया और लोसानकी कान्फरेंस[3] मे सेव्रेकी अपमानजनक सन्धि[4] बदल दी गयी। तुर्कोकी लगभग वह सब माँगें स्वीकृत हुईं जो उन्होंने २८ जनवरी, सन् १६२० (१५ माघ सं० १६७७) के 'टर्किश नेशनल पैक्ट' में पेश की थी। सन् १६२१ (वि० सं० १६७८) मे सोवियत रूसने फारस, तुर्की अफगानिस्तान और बुखारासे सन्धियाँ की। जारके समय के सुलहनामे जिनके द्वारा रूसने इन देशोंमें तरह-तरहके अधिकार प्राप्त किये थे, रद कर दिये गये। जो सुलहनामा फारसके साथ हुआ था उसकी मुख्य-मुख्य शर्तें नीचे दी जाती है—

१. सोवियत शासन जारकी अत्याचारकी नीतिका सदाके लिए परित्याग करता है और उसकी यह इच्छा है कि फारसके लोग स्वतन्त्र और प्रसन्न रहे, और उनके देशपर उनका अक्षुण्ण अधिकार रहे और इसलिए वे सन्धियाँ और शर्तनामे रद किये जाते है, जो फारसके लोगोंके अधिकारोको कम करनेके अभिप्रायसे किये गये थे।

२. सोवियत शासन जारकी उस नीतिको न्यायके विरुद्ध और बुरा समझता है जिसका उद्देश्य एशियाके राष्ट्रोंका बन्दरबाँट करनेके लिए यूरोपके और राष्ट्रोके साथ सन्धि करना था। इसलिए सोवियत शासन इस नीतिका सर्वथा परित्याग करता है और घोषित करता है कि वह किसी ऐसे कार्यमे भाग नही लेगा जिसका उद्देश्य फारसके अक्षुण्ण अधिकारको कमजोर करना हो और वह उन सब सन्धियोको रद करता है जो जारकी गवर्नमेण्टने फारसको नुकसान पहुँचानेके लिए अन्य शक्तियोके साथ की थी।

३. सोवियत शासन जारकी गवर्नमेण्टकी उस आर्थिक नीतिको अस्वीकार करता है जिसको वह फारसके सम्बन्धमे बर्तती थी और जिसका उद्देश्य, आर्थिक उन्नतिकी दृष्टिसे नहीं, बल्कि दासताकी शृङ्खलामे बाँधनेकी दृष्टिसे, फारसको कर्ज देना था। सोवियत

---

१. Mandate. २. ऐंग्लोपर्शियन ऐग्रीमेण्ट Anglo Persian agreement. ३. Lausanne conference. ४. Treaty of Sveres.

शासन इसलिए अपने सब हकोको छोड़ता है और घोषित करता है कि ये कर्जे वसूल नही किये जायँगे ।

४. सोवियत शासन पूँजीवादकी एशिया-सम्बन्धी नीतिकी खुले शब्दोमे निन्दा करता है और उसकी यह सम्मति है कि इस नीतिके कारण ही एशियाके निवासियोको अनेक कष्ट सहने पड़े हैं ।

५ सोवियत शासन फारसके आन्तरिक मामलोमे किसी प्रकारका हस्तक्षेप न करेगा ।

६. सोवियत रूस और फारसके बीच व्यापारिक सम्बन्ध स्थापित होगा ।

जो सन्धि तुर्कीके साथ हुई उसकी पहली धारामे इस बातका स्पष्ट उल्लेख पाया जाता है कि दोनों पक्षोको साम्राज्यवादका विरोध करना है और दोनोका स्वार्थ यह चाहता है कि उनमें आपसमे मित्रता स्थापित हो । सन् १९२५ (वि० स० १९८२) मे पेरिसमे सोवियत रूस और तुर्कीके दर्मियान एक दूसरी सन्धि हुई थी जिसके द्वारा दोनो पक्ष इस बातके लिए वचन-बद्ध हुए कि वे एक दूसरेके विरुद्ध किसीकी सहायता नही करेगे । दो वर्ष बाद एक व्यापारिक सन्धि भी हुई ।

अफगानिस्तानके साथ जो सन्धि सन् १९२१ (वि० स० १९७८) मे हुई उसके द्वारा सोवियत रूसने अफगानिस्तानकी स्वतन्त्रता और आत्म-निर्णयके अधिकारको स्वीकार किया । सन् १९२६ (वि० स० १९८३) मे एक सुलहनामा और हुआ जिसके जरियेसे उन्होने यह निश्चय किया कि वे एक दूसरेपर आक्रमण नही करेगे और एक दूसरेके विरुद्ध किसीके साथ सन्धि नही करेगे और एक दूसरेके विरुद्ध किसी आर्थिक अवरोधमें सम्मिलित न होगे और वे किसी ऐसी गवर्नमेण्टकी न तो सहायता करेगे और न उसका साथ देगें जो उनमेसे किसीके आन्तरिक मामलोमे हस्तक्षेप करे । यदि उनमेसे किसीका किसी तीसरे राष्ट्रके साथ झगडा हो तो दूसरा उदासीन रहेगा । उनमेसे कोई अपने राज्यके भीतरसे किसी प्रकारका लडाईका सामान या फौज न जाने देगा जिसका प्रयोग दूसरेके विरुद्ध किया जाय ।

पूर्वीय एशियामे सोवियत रूसको एक मित्र-राष्ट्रकी आवश्यकता थी । जापान यद्यपि सबल राष्ट्र था तथापि उसकी नीति साम्राज्यवादकी थी । उसको अपने व्यापारके लिए कच्चे बाने और मण्डियोकी आवश्यकता थी । यूरोपीय युद्धसे लाभ उठाकर उसने शान्तुङ्ग ले लिया और सन् १९१५ (विक्रम सं० १९७२) मे चीनके सामने इक्कीस माँगें रखी जिनको चीनी सरकारको विवश होकर स्वीकार करना पडा । सन् १९१८ (विक्रम सं० १९७५) मे जापानने व्लाडीवास्टकपर आक्रमण कर दिया । सोवियत रूसके विरुद्ध कोलचककी सहायताके लिए साइबेरियामे उसने अपनी सेना भेजी थी; सखलीनके उत्तरी भागपर, तेलके चश्मोके लोभसे, उसने अधिकार जमा लिया था । जापानकी शक्तिको बढता हुआ देखकर सयुक्त राष्ट्र अमेरिका और ग्रेट ब्रिटेन भयभीत हो गये थे । वे जापानकी शक्तिको बढानेमे सहायता देना नही चाहते थे । इग्लैण्ड और जापानके बीच जो सन्धि हुई थी उसकी अवधि बीत चुकी थी । सयुक्त राष्ट्र अमेरिका और जापानके बीच अच्छा सम्बन्ध नही था और इंग्लैण्ड इस सन्धिकी अवधिको बढाकर अमेरिकाको नाराज करना

नही चाहता था। वाशिङ्गटन कान्फरेन्सकी कार्यवाहीसे आरम्भमें आपसका मनोमालिन्य और भी बढ गया था। सन् १९२४ (विक्रम स० १९८१) मे सयुक्त राष्ट्र अमेरिकाने एक कानून बनाकर जापानके निवासियोको अमेरिकामे आकर बसनेसे रोक दिया। इन सब कारणोसे जापानकी राजनीतिक स्थिति रूसके अनुकूल होती गयी और सोवियत रूसने इस स्थितिसे पूरा लाभ उठाकर जापानके साथ रियायते करके जापानसे मित्रता कर ली। पूर्व इसके कि रूस और जापानकी सन्धि हुई रूसने सन् १९२४ (विक्रम सं० १९८१) मे चीनसे सन्धि की। सन् १९२० (विक्रम स० १९७७) ही मे सोवियत शासनने इस बातकी घोषणा की थी कि रूस उन सब अधिकारोंका परित्याग करनेको तैयार है जिनको जारकी गवर्नमेण्टने चीनमे प्राप्त किया था और इसके लिए वह कोई मुआवजा भी न लेगा। इसके बादसे ही चीनकी राष्ट्रीय सरकार और सोवियत रूसके बीच मित्रता बढने लगी। चीन विदेशियोद्वारा पदे-पदे अपमानित हो रहा था। इस अवज्ञा और तिरस्कारको अब वह सह नही सकता था। साम्राज्यवादी राष्ट्रोसे उसको कोई आशा न रही। उसने सोवियत रूसकी ओर हाथ बढ़ाया और सन् १९२४ (विक्रम सं० १९८१) मे दोनो राष्ट्रोके बीच एक सन्धि हुई जिसके द्वारा रूसने उन सब अधिकारोका परित्याग किया जो उसे प्राप्त थे। कानो और जगलातमे जो हक रूसको मिले थे वे बिला मुआवजेके वापस कर दिये। इस प्रकार सन् १९२० (विक्रम सं० १९७७)) की घोषणाको सोवियत रूसने अक्षरश: सत्य प्रमाणित कर दिया। चाइनीज ईस्टर्न रेलवेके सम्बन्धमे आपसमे यह निश्चय हुआ कि इसका प्रबन्ध रूसी और चीनी दोनोंके हाथमें रहेगा। इस सन्धिका संयुक्त राष्ट्र अमेरिकाने विरोध किया था। पर चीनने इसका यह उत्तर दिया कि यह हमारी घरेलू बात है, इसमे किसी दूसरेको हस्तक्षेप करनेका अधिकार नही है। रूसने चीनके साथ समानताका व्यवहार किया और कराखाँको अपनी ओरसे राजदूत नियुक्त किया। यह पहला ही अवसर था कि किसी राष्ट्रकी ओरसे राजदूतकी हैसियतका कोई अधिकारी चीनमे नियुक्त किया गया हो। अपने अधिकारोकी रक्षा करनेमे चीनकी राष्ट्रीय सरकार-को सोवियत रूसने हर तरहकी सहायता पहुँचायी। रूसका प्रभाव चीनमे धीरे-धीरे बढने लगा और जब सन् १९२५ (विक्रम सं० १९८२) मे चीनी प्रजातन्त्रके अध्यक्ष डाक्टर सनयात सेनकी मृत्यु हुई तब इस सम्बन्धको और भी मजबूत करनेके लिए रूसने उसकी यादगारमे एक विश्वविद्यालय खोला। साम्राज्यवादी राष्ट्र रूसके इस बढ़ते हुए प्रभावको देखकर घबडा गये। उन्होने कहना शुरू किया कि सोवियत रूस लोगोको भड़काता है और उसके बहकानेमे आकर कुली हडताल कर देते है। इसके उत्तरमे कराखाँने कहा था कि "हमारा यह प्रभाव प्रचार-कार्यका फल नही है बल्कि उस न्यायानुमोदित नीतिका फल है जिसको कि सोवियत रूस चीनके साथ बरत रहा है। हमने इस नीतिको केवल शब्दोद्वारा ही नही व्यक्त किया है बल्कि इस नीतिको कार्यान्वित करके यह दिखला दिया है कि हम चीनके साथ न्यायका व्यवहार करना चाहते है। यदि हमारा यही अपराध है तो हम इसे स्वीकार करते है और हम इसके लिए लज्जित नहीं है बल्कि हमको इसका गर्व है।" एक दूसरे मौकेपर कराखाँने अमेरिकाके एक सम्वाददाताके पूछनेपर कहा था कि

"हम प्रचार तो अवश्य करते है, पर इस प्रचारके लिए हमको कुछ खर्च नही करना पडता। अभी उस दिन कुछ चीनी विद्यार्थी मुझसे मिलने आये थे। मैने चाय पिलाकर उनकी वैसी ही खातिर की थी जैसी कि मैं आपकी कर रहा हूँ। पर जब वे अमेरिकन लिगेशनमें आपके कौसलसे मिलने गये तब वे स्वयं उनसे नही मिले और एक निम्नश्रेणीके कर्मचारीको उनसे बात करनेके लिए नियुक्त कर दिया और वह कर्मचारी भी उनसे अच्छी तरह नही मिला। हमारा यही प्रचारका कार्य है। तुमलोग बेवकूफ हो। इतना भी नही जानते कि मनुष्यके हृदयपर किस प्रकार अधिकार पाया जाता है।" यहाँपर हमे इस बातका विस्तारपूर्वक उल्लेख करनेकी आवश्यकता नही है कि किस प्रकार सोवियत रूसकी सहायतासे चीनकी राष्ट्रीय संस्था कुओमिन्ताङ्गका फिरसे संघटन हुआ और चीनके मजदूर और किसान राष्ट्रीय आन्दोलनमे सम्मिलित हुए; और फलतः चीनने अपने खोये हुए कुछ अधिकारोको फिरसे प्राप्त किया। चीनकी सन्धिके छ महीने बाद ही सन् १९२५ (विक्रम सं० १९८२) मे रूस और जापानकी सन्धि हुई जिसके जरिये रूसने सखलिन द्वीपके उत्तरी भागमे निकलनेवाले तेलके पचास फी सदी हिस्सेको जापानको देना स्वीकार किया, और अपने राज्यके भीतर खानोसे धातु निकालने और जंगलोसे लकड़ी इत्यादि लेनेकी रियायत दी। जापानने सखलिनके उत्तरी भागसे अपनी फौज हटा ली। दोनो पक्षोने एक दूसरेके विरुद्ध प्रचार कार्य न करनेका वचन दिया। इस प्रकार जापान और रूसमे मित्रता स्थापित हुई।

सोवियत रूसकी एशिया-सम्बन्धी नीतिके प्रयोगका यह संक्षेपमे विवरण है। हमने देखा कि एक समय इस नीतिकी सफलता हर दिशामे हुई और ब्रिटिश गवर्नमेण्टका प्रभाव एशियामे बहुत घट गया। इसी कारण सन् १९२१ (विक्रम सं० १९७८) में इंग्लैण्ड रूससे एक व्यापारिक सन्धि करनेके लिए विवश हुआ था। पर यह सन्धि अधिक दिनोतक टिक नही सकी। एक दूसरेकी शिकायत करने लगे कि सन्धिकी शर्ते पूरी नही की जा रही हैं और जब बोनरलाकी कजर्वेटिव गवर्नमेण्टके हाथमे इंग्लैण्डकी शासनकी बागडोर आयी तब आपसका झगडा और भी बढ गया। अंग्रेजोने कई नयी माँगे पेश की जिनमेसे एक माँग यह भी थी कि काबुल और तेहरानसे सोवियतके प्रतिनिधि वापस बुला लिये जायँ। इग्लैण्डने सोवियत रूसको लडाईकी धमकी भी दी थी। सोवियत लड़ाईके लिए तैयार नही था, इसलिए उसने प्रतिनिधियोके वापस बुलानेकी शर्तको छोडकर प्राय सब मुख्य-मुख्य शर्ते स्वीकार कर ली थी: इस तरह लडाई तो टल गयी, पर कोई बात निश्चित रूपसे तय न हो सकी और आपसके व्यवहामे रूखापन पाया जाने लगा। फ्रासके रूरके आक्रमणके कारण इग्लैण्डके लिए रूससे तत्काल लडना लाभदायक न था। सन् १९२३ (विक्रम स० १९८०) मे इगलैण्डमे मजदूर सरकार आ गयी और उसके प्रधान मन्त्री रैमसे मैकडोनाल्डने सुलहकी बातचीत फिरसे शुरू की और बहुत वाद-विवादके बाद आपसके झगडे बहुत-कुछ तय हो गये और अगस्त सन् १९२४ (विक्रम स० १९८१) के आरम्भमे दो सन्धियोपर हस्ताक्षर हुए, पर रैमसे मैकडोनाल्ड पार्लमेण्टकी स्वीकृति चाहते थे। पर पूर्व इसके कि यह विषय पार्लमेण्टमे विचारार्थ उपस्थित किया जाय, एक

और भरोसा जाता रहता है, जब उसको अपना भष्यि संकटमय दीख पड़ता है, जब श्रम और बुद्धि दोनोका पुरस्कार लोगोको नही मिलता और बेकारी बढती है तथा जनतामे निराशा और विरोधके भाव प्रादुर्भूत होते हैं, तब समझिये कि पुरानी सभ्यताका 'रोजे हिसाब' आ गया है । जब जनता सजग होकर विद्रोहके लिए उठ खड़ी होती है, तब सभ्यता-को या तो जनतासे समझौता करना पड़ता है या वह उससे लड़नेको तैयार हो जाती है । इस संघर्षका परिणाम अनिश्चित होता है ।

पूँजीवादका ह्रास

यह पूंजीवादके ह्रासका युग है । इस युगमे समाजके बहुत थोड़े लोगोंको ही अपने व्यक्तित्वके पूर्ण विकासके लिए अवकाश मिलता है, प्रायः लोग अपनी व्यर्थताका ही अनुभव करते हैं । उनका व्यक्तित्व क्षत-विक्षत, विशीर्ण और विकल होता है । पूंजीवाद सम्पत्तिके अधिकारोकी रक्षा करता है; व्यक्तियोके अधिकारोकी रक्षा करनेमे यह समर्थ नही है । हकीकत यह है कि पूंजीवाद आर्थिक क्षेत्रमे जनताको बाजारके नियमोके अधीन कर देता है और उन ऐहिक और आध्यात्मिक मूल्यो (values) के अधीन कर देता है जो पूंजीवादी सत्ताके स्वभावके अनुकूल है । और जीवनके ये मूल्य जनताके निजके अनुभवोको अभिव्यक्त नही करते । ये मूल्य भूमि और यन्त्रोके उन स्वामियोके अनुभवको अभिव्यक्त करते है जो पूंजीवादी समाजपर प्रभुत्व रखते है । अत. जनता व्यक्ति रूपसे अपनी तुच्छताका अनुभव करती है । जिन संस्थाओका वह उपकरणमात्र है उनका विरोध किये बिना वह अपने व्यक्तित्वको सिद्ध नही कर सकती । जनताका वह पुराना विश्वास कि उसके साथ सामाजिक न्याय हो रहा है, लुप्त होता जाता है और इसी कारण एक व्यवस्थित समाजका संचालन दुष्कर होता जाता है । जनता सजग हो गयी है । वह अपने अधिकारोको पहचान गयी है और सगठित हो रही है । टाकविल (Tocque-ville) ने ठीक कहा है :—

"आरम्भमे जनताने प्रत्येक राजनीतिक संस्थाको बदलकर अपनी अवस्थाको उन्नत करनेकी चेष्टा की, किन्तु प्रत्येक परिवर्तनके बाद उसने पाया कि उसकी स्थितिमे कोई परिवर्तन नही हुआ है या परिवर्तनकी गति इतनी मन्द है कि उससे उसको सन्तोप नही है । अन्तमे यह सत्य उसपर एक-न-एक दिन प्रकट होगा कि जिसने उसकी अवस्थाको अपरिवर्तन शील, जड और स्थिर बना दिया है, वह राज्यका शासन-विधान नही है, किन्तु इसकी जिम्मेदारी समाजके अटल नियमोपर है । अत॰ यह स्वाभाविक है कि जनता एक-न-एक दिन स्वत यह प्रश्न करेगी कि क्या उसको उन नियमोके बदलनेका अधिकार और सामर्थ्य नही है ?"

जनताका जागरण

टाकविलने स्पष्ट देखा कि व्यक्तिगत सम्पत्तिकी पद्धति मानव समतामे बाधा उत्पन्न करती है । हमारी वर्तमान आर्थिक और राजनीतिक पद्धतिके द्वारा एक गुट या समुदायके हित ही सुरक्षित रहते है, क्योकि वह वैयक्तिक स्वामित्वको एक पवित्र

वस्तु मानती है। किन्तु सर्वसाधारणके लिए यह पद्धति अनिष्टकारी है। इस पद्धतिके अधीन रहते हुए जनताका जीवन नीरस और शुष्क हो जाता है। लोग अपनी तुच्छताका अनुभव करते है और उनको इससे बचनेकी राह भी नजर नही आती। यह पद्धति जनताका अपने पूर्ण विकासके लिए आह्वान नही करती, क्योकि वह डरती है कि ऐसे आह्वानका क्या परिणाम होगा। उसका निश्चित मत है कि यदि जनताने इस प्रकारको सुना और उसपर अमल किया तो उनकी खैरियत नही। अतः इसमे आश्चर्य करनेका कोई कारण नहीं है कि जो समाज अपने सदस्योके व्यक्तित्वके विकासको इस प्रकार रोकता है वह उन भावोको उभारनेमे समर्थ नही होता जिनके उभरने और व्यक्त होनेसे ही कोई पद्धति सुदृढ होती है।

समाजपर प्रभुत्व रखनेवाला वर्ग जनतासे भयभीत हो जाता है। वह अपने स्थिर स्वार्थोकी रक्षाके लिए अपने देशके स्वातन्त्र्यको भी खतरेमे डालनेसे नही हिचकता। इस युद्धने यह सिद्ध कर दिया है कि देशकी आजादीकी रक्षा विना वर्ग स्वार्थका परित्याग किये नही हो सकती। फ्रासके एक समुदायने हिटलरका स्वागत इसलिए किया कि कही जनता विद्रोहकर उस समुदायके स्थिर स्वार्थोका लोप न कर दे।

दूसरी ओर जनता स्वयं अपना नेतृत्व करनेमे असमर्थ होती है। वह नेताकी तलाशमें होती है। वह कोई साहसिक कर्म करना चाहती है। समाजकी सस्थाओपर जो उसकी आस्था थी, वह नष्ट हो चुकी होती है और उसका मोह टूट चुका होता है। इस अवसरपर जनताकी मनोवृत्तिसे अनुचित लाभ उठाकर प्रतिक्रिया जनताके सम्मुख एक नवीन आशा और एक साहसिक कर्मके रूपमे उपस्थित होती है। प्रतिक्रिया नाना प्रकारके प्रलोभन देती है और उसके कार्यक्रममे प्रत्येक पीड़ित वर्गके लिए कोई न कोई लुभानेवाली योजना होती है। जनता इस अपीलको सुनती है, क्योकि यह उसको अपनी व्यर्थतासे बचनेका रास्ता दिखाती है। वह प्रतिक्रियावादियोके जालमे आ जाती है और उनका अनुसरण करती है। यह सच है कि प्रतिक्रियाके नायक सच्चे मसीहा नही है। उनके पास कोई दिव्य सन्देश नही है जिससे जनताका कल्याण हो सके। किन्तु जनता एक नवीन सन्देशकी भूखी होती है और जिस तरह एक रोगी जो अपने जीवनसे निराश हो चुका है, जडी-बूटी बेचनेवाले और तन्त्र-मन्त्र करनेवाले नीमहकीमकी शरणमे जाता है, उसी तरह निराश जनता सन्देशसे आकृष्ट हो उस नायककी ओर दौडती है और इसका विचार-विमर्श नही करती कि यह सन्देश झूठा है या सच्चा। यही अवस्था जर्मनीके लोगोकी हुई। हिटलरके उत्थानका रहस्य इसीमे है

संघर्ष और विरोध

किन्तु यह मोह-माया वहुत दिनोतक नही चल सकेगी। मित्रराष्ट्रोने फासिज्मपर विजय प्राप्त की है। इससे यह सम्भव है कि शासक वर्ग कुछ दिनोतक चैनसे बैठने पाये, किन्तु वह वहुत दिनोतक आराम नही लेने पायेगे। विजयसे बढी हुई उनकी प्रतिष्ठा अधिक कालतक प्रचलित सस्थाओमे जनताके पुराने विश्वासको पुनर्जीवित न कर सकेगी। ससारमे सर्वत्र जनताका विश्वास क्रमागत संस्थाओपरसे उठता जाता है। पुरातन

विश्वास और परम्परागत ऐहिक और पारलौकिक मूल्योंका खोखलापन और उनकी निस्सारता जनतापर प्रकट होती जाती है। आधुनिक युगकी बेचैनीका यही कारण है। क्रान्तिके युगमें ऐसा सदा होता है। मौलिक परिवर्तनके लिए किये गये उद्योगके साथ-साथ संघर्ष, विरोध, समाजका वैकल्य और उसकी विशीर्णता भी होती है। गम्भीर शक्तियाँ काम कर रही हैं और उन्हींके कारण यह संघर्ष और विरोध होता है। किन्तु लोग इन गम्भीर कारणोंकी खोज नहीं करते। वह कुछ व्यक्ति विशेषको ही दोषी ठहराते हैं। ये व्यक्तिविशेष इन शक्तियोंके केवल तात्कालिक प्रतीक हैं। अतः इनको भला-बुरा कहनेसे कुछ लाभ नहीं और न यह विचार ही यथार्थ है कि इन व्यक्तियोंके न होनेपर विरोध शान्त हो जायेगा।

अतः प्रश्न यह है कि हम यह तथ्य समझते हैं या नहीं कि वर्तमान युगमें समाजके जो पुरुषार्थ हैं वह अब सबको समानरूपसे स्वीकृत नहीं हैं। ऐसी दशामें यदि समझनेसे काम न लिया गया और जनताको यह विश्वास न दिलाया गया कि उसके साथ सामाजिक न्याय होगा तो समाजमें विप्लव होगा।

समाजके उत्पादनके सम्बन्ध उत्पादनकी शक्तियोंके विरोधमें हैं। भविष्यमें समाज-को, यदि वह आन्तरिक क्रान्तिसे बचना चाहता है तो यह तय करना होगा कि समताकी परिधिमें ही स्वतन्त्रताका अन्वेषण किया जा सकता है। समयसे यदि व्यवस्थित लोकसत्ताकी बुनियादें नहीं डाली गयी तो यह कार्य सम्पन्न न हो सकेगा।

फासिज्मका उत्थान और प्रसार ही दिखाता है कि मानव-इतिहासका एक युग समाप्त हो रहा है। यूरोपीय सभ्यतापर उसके प्रभुत्वका स्थापित होना ही इस बातका प्रमाण है कि यूरोपकी बुनियादोंमें कोई घातक दुर्बलता है।

यूरोपका शासकवर्ग

खेद है कि यूरोपका शासकवर्ग इस रिक्त-स्थानके बाद भी इस सत्यको नहीं पहचान पा रहा है। वह अब भी पूँजीवादी प्रथासे चिपका हुआ है और युगधर्मको पहचानकर अपनी गतिविधिको बदलनेको तैयार नहीं है। लोकतन्त्रकी दुहाई देनेवाले ये पूँजीपति भी उसी समयतक लोकतन्त्रके भक्त हैं जबतक लोकतन्त्र उनके विशेषाधिकारोंको संशयमें नहीं डालता। ये सोच भी नहीं सकते कि कोई दूसरा भी कानून, कोई दूसरे प्रकारके अधिकार और अन्य सामाजिक तथा आध्यात्मिक मूल्य हो सकते हैं। उनकी यह मूढ़ता सर्वनाशका कारण है।

हिटलरकी सत्ताका अन्त करके भी यह निश्चित रूपसे नहीं कहा जा सकता कि फासिज्म-के बीजका विनाश हो गया है। जबतक फासिज्मके मूल कारणका उन्मूलन नहीं होता तबतक इसके बार-बार उदय होनेकी आशंका बनी रहती है। फासिज्मका सफल विरोध करनेका एकमात्र उपाय वह विश्वास है जो उस विभीषिकाका अतिक्रमण कर सकता है जिसे फासिज्म विजितोपर लादता है। इस विश्वासकी जड़ें पूँजीवादी लोकसत्ताकी जड़ोंसे ज्यादा गहरी होनी चाहिये। पूँजीवादी लोकतन्त्रके विशीर्ण होनेपर ही फासिज्म अधिकारारूढ़ हुआ। अतः एक ऐसी नवीन आर्थिक तथा राजनीतिक व्यवस्थाके कायम

होनेपर ही, जिसके द्वारा सामान्य जनता अपनी परिपूर्णताका अनुभव करे, ससारमे शान्ति और सुख स्थापित हो सकता है। अव पुरानी आर्थिक पद्धतिसे काम नही चलनेका। स्वतन्त्र व्यापारका युग चला गया है। युद्धकालमे जो राज्यका नियन्त्रण वढ गया है वह युद्धकी समाप्तिपर विलुप्त नही हो जायेगा। व्यवस्थित योजना समाजकी स्वतन्त्रताका अपहरण कर लेगी यदि यह योजना जनताके लाभके लिए प्रगतिशील शक्तियोद्वारा नही प्रस्तुत की जाती। पूँजीपतियो द्वारा तैयार की गयी व्यवस्थित योजना उनके एकाधिकारको सुदृढ करके लोकतन्त्रका अन्त कर देगी। दूसरी वात जो ध्यान देने योग्य हैं यह है कि आजकी अन्योन्याश्रित और परस्पर सम्वन्धित दुनिया उन खतरोको अव और नही उठा सकती जो स्वतन्त्र राज्यमे (Sovereign States) के अस्तित्वके कारण वढते जाते हैं। जवतक प्रत्येक महान् राष्ट्र अपने कुछ अधिकारोको छोड़नेको तैयार नही हो जाता, तवतक अन्तर्राष्ट्रीय समाज गठित नही हो सकता। राजनीतिक प्रश्नोका महत्त्व अधिक समझा जाता है, आर्थिक प्रश्नोका नही। किन्तु मौलिक प्रश्न आर्थिक हैं। यूरोपके छोटे-छोटे राज्य हो तो कुछ हर्ज नही, किन्तु यदि ये छोटे-छोटे राज्य आर्थिक और सैनिक दृष्टिसे एक दूसरेसे स्वतन्त्र रहना चाहे तो यूरोपमे शान्ति स्थापित करना सम्भव न हो सकेगा। अन्तर्राष्ट्रीय समाजकी स्थापनाके लिए राष्ट्रीयताका वर्तमान विकृत रूप वदलना होगा। उसका प्राधान्य सास्कृतिक क्षेत्रतक ही सीमित रखना होगा। राजनीतिक तथा आर्थिक क्षेत्रमे उसकी प्रधानता हानिकर होगी।

राज्योका अधिकार अक्षुण्ण रखकर तथा वर्तमान अर्थनीतिका अतिक्रमण किये विना हम ससारमे शान्तिकी स्थापना न कर सकेंगे। एक वात और। ससारकी कल्याणकारी दृष्टिके साथ साम्राज्यवादका असामञ्जस्य है। अमेरिकाके प्रसिद्ध राजनीतिज्ञ स्वर्गीय वेडल विल्की (Wendell Willkie) के शब्दोमे "स्वतन्त्र" शब्द अविभाज्य है। यदि हम उसका उपभोग करना चाहते है और उसके लिए लडना चाहते हैं तो हमे सवको समान रूपसे स्वतन्त्रता प्रदान करनेके लिए तैयार रहना चाहिये——चाहे वह अमीर हों या गरीव, चाहे वह हमसे सहमत हो या नही, चाहे वह किसी भी जाति या वर्णके क्यो न हो। ससारके सव भाग एक दूसरेसे सम्वद्ध हैं और कोई भी राष्ट्र अकेले अपने पूर्ण विकासको नही प्राप्त कर सकता।

इन सिद्धान्तोको ध्यानमे रखकर यदि हम यूरोपकी ओर दृष्टिपात करे तो हमको पता चलेगा कि ये सिद्धान्त पूर्णरूपेण कार्यान्वित नही हो रहे है। प्रत्येक महान् राष्ट्र अपने अधिकारोको अक्षुण्ण रखना चाहता है। यूरोपको इकाई मानकर यूरोपके आर्थिक जीवनका एक नया संगठन वनानेकी ओर भी ध्यान नही है। यह ठीक है कि पूर्वी यूरोपके देशोकी पुरानी आर्थिक पद्धति नष्ट की जा रही है तथा पश्चिम यूरोपके देशोमे यत्रतत्र उद्योग-व्यवसायका समाजीकरण अथवा नियन्त्रण हो रहा है, किन्तु समग्र यूरोपको इकाई मानकर जनताकी दृष्टिसे एक नवीन व्यवस्था स्थापित करनेका विचार दृष्टिगोचर नही होता। इसमे हेतु यह है कि युद्ध राष्ट्रीयताके भावको प्रवल कर देता है तथा परस्परका द्वेप और वैमनस्य मुख्य समस्याओपरसे ध्यान हटा लेता है। लोग अपने क्षुद्र अधिकारोको

अक्षुण्ण रखना चाहते है और अपने जीवनको अपने इच्छानुसार चलानेमें ही स्वतन्त्रताका अनुभव करते है। किन्तु आजकी आवश्यकताका तकाजा है कि हम अपनी क्षुद्र गण्डीसे ऊपर उठे तथा सामुदायिक जीवनमे ही अपनी परिपूर्णता देखे। इसका यह अर्थ नही है कि राष्ट्र अपनी विशेपता नष्ट कर दे, किंतु इनका यह अर्थ है कि हम राष्ट्रकी मर्यादाको समझे। अन्यथा आजके युगमे विकृत राष्ट्रीयता आराजकताका स्वरूप धारण कर लेगी। यूरोपमे जो अनर्थ हो रहा है उसका कारण यही है। एक और वात है जिसकी ओर ध्यान दिलाना आवश्यक है। यूरोपके साम्राज्यवादी राष्ट्र आज भीप्सा साम्राज्यके स्वप्न देख रहे है। वे अपने-अपने साम्राज्य छोडना नही चाहते। इगलैण्डका प्रमुख पत्र 'इकानोमिस्ट' लिखता है—"ब्रिटेन, फ्रांस और हालैण्डकी सम्पत्ति तथा महत्ताके लिए सुदूर पूर्वकी इनको आवश्यकता है . . . ।

"इस वातको स्पष्ट कर देना चाहिये कि ये शक्तियाँ अपने-अपने साम्राज्यका परित्याग करनेका इरादा नही रखती। इसके प्रतिकूल वे यह घोपित करना चाहती है कि मलाया ईस्ट इण्डीज और फ्रेंच इण्डोचाइनाको फिरसे जीतना और अपने साम्राज्यमे सम्मिलित करना उनका मुख्य ध्येय है।

"इस सम्बन्धमे मित्रराष्ट्र अमेरिकाके मनमे कोई सन्देह रहने देना अनुचित होगा, क्योकि इससे उसको आगे चलकर विश्वासघातका दोपारोप करनेका अवसर मिलेगा।"
—१६ सितम्वर, १९४४।

इस मनोवृत्तिको देखते हुए ससारका भविष्य सुन्दर और सुखद नही मालूम होता।

यूरोपका युद्ध समाप्त हो गया है किन्तु क्रान्तिकी अवस्था अभी समाप्त नही हुई है। यदि जनताको अपनी शक्तियोको उन्मुक्त करनेका अवसर मिला तो कुछ आशा की जा सकती है। इगलैण्डमे मजदूर दलकी जीत एक शुभ लक्षण है। इससे यूरोपकी प्रगतिशील शक्तियोको प्रेरणा मिलेगी।

किन्तु किसी ऐसे विराट् आन्दोलनके चिह्न दिखायी नही पड़ते जिसका विशाल लक्ष्य हो और जो वर्तमान युगकी आवश्यकताओको पूरा करता हो।[1]

एशियाके स्वतन्त्रता-आन्दोलनकी एक रूप-रेखा

एशियाके प्राचीन देशोके स्वतन्त्रता-आन्दोलनका इतिहास तीन-चार घटनाओसे सम्बद्ध है। पहली घटना रूस-जापानका १९०४ का युद्ध है। इस युद्धमे जापानकी विजय हुई। यह विजय एशियाकी यूरोप विजय मानी गयी। इसके पूर्व एशियाकी जातियोमें यह दृढ विश्वास जम गया कि यूरोपकी शक्तियोके आगे एशियाको सिर झुकाना ही पडेगा और एशिया यूरोपका मुकाविला कर नही सकता। इस धारणाके कई कारण थे।

---

१. 'रानी' अगस्त सन् १९४५ ई०।

कई वार एशियाके राष्ट्रोने अपनी रक्षा करनेके लिए प्रयत्न किये, पर वे कई वार विताड़ित हुए। उनकी फौजी शक्ति यूरोपके राष्ट्रकी फौजी शक्तिके सामने वेकार साबित हुई। उन्होने यह समझ लिया कि यूरोपका मुकाविला करनेकी शक्ति उनमे नही है। चीन जैसे विशाल साम्राज्यको भी यह कटु अनुभव प्राप्त हुआ। एक समय था जव कि चीनके सम्राट् अपने पड़ोसी राज्योके अधिपति थे और उनसे खिराज वसूल किया करते थे। वह समझते थे कि उनका प्रतिद्वन्द्वी जगत्मे कोई नही है। जिस संसारसे वे परिचित थे, उस ससारपर वे प्रभुत्व करते थे और चीनियोकी यह धारणा थी कि उनके समान सभ्य जाति संसारमे नही है। कमसे-कम यूरोपके लोगोको तो वर्वर ही मानते थे। १८ वी शताब्दीमे जव इगलैण्डके वादशाहने व्यापारकी सुविधाएँ प्राप्त करनेके लिए चीनके सम्राट्के पास एक मिशन भेजा तव सम्राट्ने जो उत्तर दिया वह विचारणीय है। उन्होने कहा कि इगलैण्डमे कोई ऐसी वस्तु नही होती जिसकी चीनियोको आवश्यकता हो, इसलिए हमको किसी विदेशी मालकी आवश्यकता ही नही है। हाँ, कोई जाति सभ्य नही कहला सकती, यदि वह रेशम, चाय और चीनी-वर्तनका व्यापार नही करती। यदि इंगलैण्डको इन वस्तुओकी आवश्यकता है तो हम थोड़े परिमाणमे इन वस्तुओको दे सकते है, किन्तु हमको यूरोपके किसी मालकी जरूरत नही है।

एशियाके अधःपतनका युग

यह युग एशियाके अध पतनका युग था। हर जगह निश्चेष्टता और अकर्मण्यताका राज्य था। लोगोमे किसी प्रकारकी नवीन चेतना एवं प्रेरणा न थी। एशियाके लोग यूरोपकी उदीयमान नयी शक्तियोकी तनिक भी जानकारी नही रखते थे और उनको उपेक्षाकी दृष्टिसे ही देखते थे। इसके प्रतिकूल यूरोपमे एक नवीन जागृति हो रही थी। विज्ञानके युगका आरम्भ हो गया था। जीवनके प्रत्येक क्षेत्रमे नये विचार प्रवेश पा रहे थे। लोगोमे एक नया उत्साह था। हर दिशामे खोज और अन्वेषण हो रहे थे। जीवनकी धारा प्रस्फुटित हो समाजको पुष्ट कर रही थी। भौगोलिक खोजकी उत्कट अभिलाषाने नयी दुनियाको खोज निकाला था। इसके फलस्वरूप नये-नये विज्ञानोकी प्रतिष्ठा हुई और व्यापारकी समृद्धि हुई। यूरोपके लोग विश्व-विजयके लिए निकल पडे। धीरे-धीरे आर्थिक क्षेत्रमे क्रान्ति हुई और यन्त्रयुगका सूत्रपात हुआ। पूंजीवादी सत्ताकी स्थापनासे यूरोपके राष्ट्रोकी फौजी शक्ति वहुत वढ गयी और वे दुर्वल राष्ट्रोको ग्रसने और सताने लगे। चीनका वन्दर वँटवारा हो गया। एशियाके दुर्वल राष्ट्र जो इन नयी शक्तियोसे अपरिचित थे और जो तमाविष्ट हो अहम्मन्यताके नशेमे चूर थे, अपने घरको न सँभाल सके। एक-एक करके यूरोपके राष्ट्रोने एशियाके देशोको अपने अधीन किया, या कम-से-कम उनके आर्थिक जीवनपर प्रभुत्व स्थापित किया। यूरोपीय साम्राज्यवादका एशियामे वोलवाला हो गया। यूरोपकी सस्कृतिका प्रभाव भी वढने लगा। एशियाके लोगोने धीरे-धीरे अपनी तुच्छताको स्वीकार किया और उनकी यह धारणा हो गयी कि हम यूरोपका मुकाविला नही कर सकते। जव किसी जातिकी ऐसी मनोवृत्ति हो जाय तो उसका उद्धार किस प्रकार हो!

जापानने सबक सीखा

जापान ही एक ऐसा देश था जो साम्राज्यवादके चंगुलसे बच सका। उसने यूरोपीय संस्थाओंको अपनाया, यूरोपीय ढगकी सेना सुसज्जित की और उद्योग-व्यवसायकी उन्नति कर अपनेको सुदृढ बनाया। स्वभावत सारे एशियामे वह आदरका पात्र बन गया, लोग समझने लगे कि बिना यूरोपीय सस्थाओंको अपनाये परित्राण पाना सम्भव नही है। चीनने भी जापानसे सबक सीखा और यूरोपीय ढंगपर अपनी सेना और शासन-प्रणालीको बदलनेका प्रयत्न किया। जापान और अमेरिकामे शिक्षा प्राप्त करनेके लिए विद्यार्थी भेजे गये और चीनी क्रान्तिकारियोने जापानमे अपना अड्डा बनाया, किन्तु इतना होनेपर भी यह विश्वास नही था कि एशियाके लोग यूरोपके मुकाबलेमे खडे हो सकेगे।

किन्तु रूस-जापानके युद्धने यह दिखा दिया कि एशियाके राष्ट्र भी तैयार होनेपर यूरोपके राष्ट्रोका मुकाबिला कर सकते है। इससे यह सिद्ध हुआ कि ऐसी कोई नैसर्गिक त्रुटियाँ एशियाके लोगोमे नही है, जिसके कारण वह सदा असफल रहे। खोया हुआ आत्म-विश्वास फिर लौट आया, आत्म-ग्लानि दूर हुई और जातीय जागरणका युग आरम्भ हुआ। इसी समयसे एशियाके जीवनका एक नया पृष्ठ आरम्भ होता है। रूस-जापान युद्धने बिजलीका-सा असर किया। हर जगह जागृतिके चिह्न दीख पडने लगे और राष्ट्रीय उत्थानके लिए प्रयत्न शुरू हो गये। चीनकी मचू-गवर्नमेण्टने शासनमे सुधार करने आरम्भ कर दिये और आगे चलकर विधान बनानेके लिए एक कमीशन भी नियुक्त किया गया था। इसी समय भारतमे स्वदेशी और बहिष्कारका आन्दोलन आरम्भ हुआ तथा कांग्रेसमे एक नये दलका जन्म हुआ, जिसने पूर्ण स्वतन्त्रताको अपना उद्देश्य घोषित किया। पुराने नेताओका विश्वास था कि अंग्रेज भारतके कल्याणके लिए शासन करते है और जब हिन्दुस्तानी इस बातको प्रमाणित कर देगे कि उनमे शासन करनेकी योग्यता प्रतिपादित हो गयी है तब अंग्रेज स्वेच्छासे शासन उनके सुपुर्द कर विलायत लौट जायँगे। आज हमको यह सुनकर हँसी आती है और आश्चर्य होता है कि इतने बडे नेता जिनकी विद्वत्ता और नीतिज्ञतामे कोई कमी न थी, कैसे इस तरहके बालोचित विश्वासको अपना सकते थे। वे तो राजनीतिका क ख ग भी न जानते थे। कोई भी दूसरे देशपर उसके लाभके लिए राज्य नही करता।

भारतीय राजनीतिकी सबसे बडी तात्कालिक आवश्यकता इस बातको समूल नष्ट करना था। यह काम नये दलने किया। उसने 'भिक्षा देहि' की पुरानी नीतिकी धज्जियाँ उडा दी। उसने आत्म-निर्भरताका पाठ पढाया। लोकमान्य तिलकने बताया कि जो अपने पैरोपर अपने-आप नही खडा होता ईश्वर भी उसकी मदद नही करता। अंग्रेज व्यापारके लिए भारत आये है, इसलिए स्वदेशी और बहिष्कारके अस्त्रका प्रयोग कर उनके मर्मस्थलपर आघात पहुँचाना चाहिये। असहयोगकी भी चर्चा हुई है और पूर्वी बगालमे इसका प्रयोग भी छोटे पैमानेपर हुआ। औपनिवेशिक स्वराज्यके स्थानमे पूर्ण स्वतन्त्रताके ध्येयका प्रचार किया गया।

सन् १९०६ ई० मे ईरानमे भी हलचल हुई । ईरान रूसकी सन् १९०५ की क्रान्तिसे भी प्रभावित हुआ । सन् १९०८ मे युवक तुर्क-पार्टीका संघटन हुआ ।

प्रथम यूरोपीय युद्ध

दूसरी घटना जिसका समस्त एशियापर प्रभाव पड़ा सन् १९१४ का यूरोपीय महायुद्ध था । इस युद्धके समाप्त होते ही क्रान्तिकी लहर सर्वत्र दौड गयी । इस वार कई नये देश भी क्रान्तिके प्रभावमे प्रथम बार आये ।

युद्ध क्रान्तियोकी धात्री समझी जाती है । सन् १९१४ के युद्धमे एशियाकी कई कौमोने भाग लिया था । यूरोपके राष्ट्र एशियायी फौजका उपयोग गोरी जातियोके विरुद्ध नही करते थे, किन्तु सन् १९१४ मे स्थितिसे विवश होकर उनको ऐसा भी करना पडा । एशियाके लोग यूरोपियनोके प्रत्यक्ष सम्पर्कमे आये और जो कुछ उन्होने देखा उससे यह निष्कर्ष निकाला कि पश्चिमकी सभ्यता एशियाकी सभ्यतासे उत्कृष्ट नही है । राष्ट्रीय भावनाके प्रवल होनेसे और प्राचीन इतिहासकी अभिज्ञता प्राप्त करनेसे उसमे अपने अतीतके गौरवपर गर्व उत्पन्न हो गया था और उनका अत्यावसाद लुप्त हो गया था ।

रूसकी क्रान्तिका भी बड़ा प्रभाव पडा । सन् १९१६ मे महात्माजीने सत्याग्रहका प्रयोग किया और वादमे खिलाफतका आन्दोलन शुरू हुआ । इसी वर्ष मिस्र और चीनमे विराट राष्ट्रीय आन्दोलनोंका जन्म हुआ । मिस्रका आन्दोलन सन् १९२२ मे समाप्त हुआ और मिस्रको स्वतन्त्रता मिली, तथापि यह स्वतन्त्रता असली न थी । मिस्र-इगलैण्डकी एक सन्धि हो गयी, इसकी शर्तोके अनुसार अग्रेज स्वेज नहरकी रक्षाके लिए एक फौजी दस्ता रखते है, सूडानपर उनका आधिपत्य है और युद्धके अवसरपर मिस्र इगलैण्डको खाद्य-पदार्थ और अन्य सामग्री तथा मिस्रमे प्रवेश देनेके लिए वाध्य है । अन्तर्राष्ट्रीय मामलोमे मिस्रकी स्वाधीनता नाममात्रकी ही रही है । मिस्रके आन्तरिक मामलोमे भी इंगलैण्ड समय-समय पर हस्तक्षेप करता रहा है । कभी यह हस्तक्षेप प्रत्यक्ष रूपसे होता है ; कभी वादशाह फारुकके द्वारा लोकमत व्यर्थ कर दिया जाता है । इसी युद्धके दौरानमे ब्रिटिश टैकोकी मददसे वादशाह नहसपाशाको प्रधान मन्त्री वनानेके लिए विवश किये गये और जब काम निकल गया और यह देखा गया कि नहसपाशा स्वतन्त्र रीतिसे काम करते है तब वादशाहको यह स्वतन्त्रता दी गयी कि वे प्रधान मन्त्री वदल दे । सानफ्रासिस्को कान्फरेसमे मिस्रके प्रतिनिधियोका वोट ब्रिटिश सरकारके अधीन था । अभी हालमे मिस्रने अंग्रेजी हुकूमतसे एक समझौता किया है, जिसके अनुसार मिस्र 'स्टर्लिङ्ग क्षेत्र' (Sterling Bloc) के अन्तर्गत सम्मिलित कर लिया गया है । इसका फल यह होगा कि कतिपय ब्रिटिशबाजारोमे अमेरिकी डाहलरका वहुतायतसे प्रवेश न हो सकेगा ।

सन् १९१९ मे चीनमे जिस आन्दोलनका आरम्भ हुआ, उसकी परिसमाप्ति सन् १९२६-२७ की क्रान्तिके रूपमे हुई । सन् १९२७ मे दक्षिणसे लेकर उत्तरतकका प्रदेश क्रान्तिकारियोके हाथमे आ गया और यदि कुओमिताङ्गमे फूट न पडी होती तथा कम्युनिस्टों-से झगड़ा न शुरू हुआ होता तो चीन अवतक वहुत-कुछ स्वतन्त्र हो गया होता । वादके कई साल चीनके गृह-कलहमे ही वरवाद हुए और पीछेसे तो जापानका आक्रमण भी शुरू

हो गया। भारतमे खिलाफतका जो आन्दोलन हुआ, उसने मुस्लिम राष्ट्रोको अत्यन्त प्रभावित किया।

आर्थिक मन्दीका असर

तीसरी घटना विश्वव्यापी आर्थिक मन्दी (Economic Depression) की है। यह सन् १९२९ मे अमेरिकासे शुरू हुई और बहुत जल्द ससार भरमे फैल गयी। उपनिवेशो तथा पराधीन देशोमे इसका और भी वुरा प्रभाव पड़ा, क्योकि साम्राज्योंने अपने सकटको इनपर टालनेका प्रयत्न किया। इससे जनता क्षुब्ध हुई और क्रान्तिकी लहर कई जगहोमें फिर उठी। सन् १९३०' मे भारतमे नमक-सत्याग्रहका जो आन्दोलन हुआ वह भी इसीका फल था। इस समय मिस्र तथा अरबके कुछ देशोमे भी थोड़ा-बहुत आन्दोलन हुआ। फिलिस्तीनमें तो अरबोने दण्डीयात्राका अनुकरण किया। आन्दोलनका ध्येय ब्रिटिश मालका बहिष्कार भी था। सन् १९३० मे चीनमे भी कुछ प्रयास हुआ था, पर परिस्थिति किसी विराट् आन्दोलनके अनुकूल न थी। सच तो यह है कि इन घटनाओसे प्रत्येक देश उतना ही लाभ उठा सकता है, जितना कि उसकी निजी तैयारी उसको उठाने देती है।

संसारव्यापी वर्तमान युद्ध

चौथी बड़ी घटना संसारव्यापी युद्ध है जो अभी समाप्त हुआ है।

युद्धकी समाप्तिपर ही प्राय. क्रान्तियाँ होती है। छोटे-छोटे देशोके लिए तो और भी कठिनाई होती है। भारतमे काग्रेस सन् १९२७ से ही युद्धके खतरेकी ओर हमारा ध्यान आकृष्ट करती आयी है। त्रिपुरी कांग्रेसमे देशको तैयार करनेका भी प्रस्ताव पास हुआ, यद्यपि इस दिशामे कुछ किया नही गया।

सन् ४२ का आन्दोलन

सन् ४२ मे जो स्थिति थी उसमे सत्याग्रह-संग्रामके लिए उपयुक्त वातावरण था। सन् १९४२ का आन्दोलन सब पिछले आन्दोलनोसे बढ चढकर हुआ। यदि यह आन्दोलन न होता तो भारतका राजनीतिक जीवन बिलकुल शिथिल पड़ जाता और हम राजनीतिक दौड़मे पीछे पड़ जाते। इस आन्दोलनके द्वारा भारतवर्ष एशियाकी स्वतन्त्रताका प्रतीक बन गया और भारतका प्रश्न संसारके मानचित्रपर आ गया। इस आन्दोलनसे हमारी राजनीतिक चेतना प्रबल रूपसे जमी, किन्तु यदि हम सावधानीसे काम न लेगे, तो जो कुछ हमने कमाया है, उसे भी खो देगे।

अंग्रेज राजनीतिज्ञोंकी हरकते

अग्रेज राजनीतिज्ञोकी कोशिश हमको हर तरहसे कमजोर करनेकी है। पाकिस्तान और देशी राज्योको अक्षुण्ण करनेका प्रयत्न इसके प्रमाण है। वह एक ऐसा विधान चाहते है, जिसमे स्थिर और न्यस्त स्वार्थोका बोलबाला हो और जिसमे उन्नतिशील शक्तियोको बहुत कम अवसर मिले। जो अवस्था मिस्रकी १९२२ मे थी, वही अवस्था यह हमारी भी करना चाहते है। वह नाममात्रको हमे स्वाधीनता देना चाहते है। इस उद्देश्यकी पूर्ति के लिए तरह-तरहकी चाले चली जा रही है। हमको यह न भूलना चाहिये कि मिस्रमे

जो पहला चुनाव हुआ था, उसमे कई प्रकारकी रुकावटे डाली गयी थी, जैसे कि हमारे यहाँ आज डाली जा रही है । मिस्रमे वादशाहसे दवाव डलवाकर और अनेक रूपमे अपना दवाव डालकर अग्रेजोने कई वाद वफ्द पार्टी (Wafd Party) को पदच्युत् किया और उसके स्थानमे ऐसे राजनीतिज्ञोको शासनारूढ किया जो वफ्द पार्टीके लोगोकी अपेक्षा अधिक कावूमे थे। वहाँ जो गवर्नमेण्ट आज शासन करती है वह किसी एक पार्टीकी गवर्नमेण्ट नही है, किन्तु कई छोटे-छोटे समूहोकी सम्मिलित गवर्नमेण्ट है और ये लोग सदा अग्रेजोकी इच्छाके अनुसार कार्य करनेको तैयार रहते है । भारतमे भी कुछ ऐसी ही कोशिश हो रही है, पर यह चेष्टा सफल नही होगी, क्योंकि सन् १९४२ के आन्दोलनने लोगोको सजग कर दिया है और काग्रेस अत्यन्त लोकप्रिय हो गयी है । इस आन्दोलनके कारण मुसलमानोमे भी कांग्रेसका प्रभाव कुछ वढ़ा है । आनेवाला चुनाव इसकी सत्यताको सिद्ध करेगा ।

वैज्ञानिक क्षेत्रमें भय

जो जमात आजादीके लिए त्याग करती है उसका आनदर सभी करते है, किन्तु हमको भय वैधानिक क्षेत्रमे है । एक गलत कदम उठानेसे वही सिलसिला शुरू हो जायगा जो मिस्रमे सन् १९२२ के वादमे शुरू हुआ था । राष्ट्रीय पचायत (Constituent Assembly) के सम्वन्धमे सतर्कताकी जरूरत है । काग्रेसको किसी ऐसी विधान-परिपद्में भाग न लेना चाहिये जिसका निर्माण सच्चे आधारपर नही किया गया है और जिसको सर्वाधिकार प्राप्त नही है । वालिग मताधिकारके आधारपर चुनी हुई परिषद्मे ही हमको जाना चाहिये जव उस परिपदको अपने भविष्यके निर्माणका पूरा अधिकार प्राप्त हो ।

एशियामें उथल-पुथल

युद्धके समाप्त होते ही दक्षिण-पूर्वी एशियाके देशोमे उथल-पुथल आरम्भ हो गयी है । ऐसा होना स्वाभाविक था । हालैण्ड और फ्रास अपने साम्राज्यको छोडना नही चाहते, किन्तु जनता अपनी गुलामीको सहन नही करती और वह साम्राज्यसे मोरचा ले रही है । यूरोपका वह पुराना रोव खत्म हो चुका है और लोगोका राजनीतिक चैतन्य वढ गया है । संसारमे अभी शान्ति स्थापित होनेकी सम्भावना नही दिखायी देती । जवतक युद्धके कारण दूर नही किये जाते, तवतक शान्तिकी स्थापना असम्भव है । मित्रराष्ट्र शत्रुओका विनाश करनेके लिए अस्त्र-शस्त्रका निर्माण कर सकनेकी सामर्थ्य रखते थे, किन्तु शान्तिकी प्रतिष्ठा करनेकी योग्यता उनमे नही पायी जाती । कूटनीतिज्ञतासे शान्ति कायम नहीं होगी । युद्धोका अन्त तभी होगा जव साम्राज्य और पूंजीवादका अन्त कर सच्चे लोकतन्त्रकी स्थापना होगी । किन्तु अभी जनताको और कष्ट सहने है । हर जगह अशान्ति है । जनताकी दवी हुई शक्तियोको जैसे ही उभरनेका अवसर मिला, वैसे ही जगह-जगह विद्रोह होगे । कुछ विद्रोह सफल होगे, कुछ कठोरताके साथ दवा दिये जायँगे और कुछके साथ समझौता होगा ।

भारत यदि क्रान्तिके मार्गसे च्युत न हुआ तो उसके लिए कई अवसर निकट भविष्यमे ही आयेंगे। इस समय हममे दृढ़ताकी आवश्यकता है और इस वातकी आवश्यकता है कि ८ अगस्त सन् ४२ के प्रस्तावको सदा हम ध्यानमें रखें।[1]

पेरिसका शान्ति-सम्मेलन

सन् १९१८ के पेरिस-सम्मेलन और सन् १९४६ के पेरिस-सम्मेलनमें एक बहुत बड़ा अन्तर है। शान्तिकी कुंजी जर्मनी है। जर्मनीके प्रश्नके निपटारेपर यूरोपका भाग्य निर्भर करता है। सन् १९१८ के सम्मेलनने सबसे पहले जर्मनीके प्रश्नका निपटारा किया। इस प्रश्नके सम्बन्धमे मित्रराष्ट्रोमे मौलिक मतभेद न था। सभी जर्मनीकी रण-शक्तिको फिरसे जिन्दा होने देना नही चाहते थे। मित्रराष्ट्रोके साम्राज्यवादको जर्मनीकी रणशक्तिसे खतरा था और वे इस खतरेको सदाके लिए खत्म करनेमे एकमत थे। इसलिए उन्होने सबसे पहले इस प्रश्नका फैसला किया। इस निश्चयसे सम्मेलनका काम सुगम हो गया और मित्रराष्ट्रोको जर्मनीके सहयोगी राष्ट्रोपर सन्धि लादनेमें कोई कठिनाई नही हुई। पर इस वार विजयी राष्ट्र जर्मनीके प्रश्नपर एकमत नही है और चूँकि वह इस प्रश्नपर आपसमे समझौता नहीं कर पाते, इसलिए वार-वार कान्फरेन्सके कामको रोक देना पड़ता है। किन्तु यदि मित्रराष्ट्र विना कुछ किये ही उठ जायँ तो भी अच्छा न होगा। मित्रराष्ट्र अपने मतभेदको दूर नही कर पाते, तथापि वे यह समझते है कि सम्मेलनके विफल होनेका वड़ा बुरा परिणाम होगा। यूरोपके निवासी शान्ति चाहते हैं और यदि सम्मेलनका अधिवेशन अनिश्चित तिथिके लिए टाल दिया तो लोग अधीर हो जायँगे और मित्रराष्ट्रोंका प्रभाव क्षीण हो जायगा। इस अनिष्टसे अपनेको वचानेके लिए गौण प्रश्न वैदेशिक सचिवोकी कौंसिलके सिपूर्द कर दिये गये है। सन्धियोंके मसविदे तैयार करनेका काम इस कौंसिलके सुपुर्द था। अव उसे अन्य प्रश्नोको भी अपने हाथमे लेना पड़ा है। इसके अलावा सम्मेलनके कार्यक्रममें तत्काल इटलीके उपनिवेशोके वँटवारेका प्रश्न सम्मिलित नही है। इसे इसलिए छोड दिया गया है कि इसपर वहुत झगड़ा है। वैदेशिक सचिवोकी कौंसिलने इस प्रश्नका निर्णय करनेका प्रयत्न किया था। कौंसिल चाहती थी कि कुछ राष्ट्रोको इन उपनिवेशोका ट्रस्टी वना दिया जाय। किन्तु जब रूसने सिरेनेका (Cyrenaica) के लिए अपना दावा पेश किया तव मिस्टर वेविन इतने भयभीत हो गये कि उन्होंने कार्यक्रमसे इस प्रश्नको ही हटा दिया। वे अफ्रीकामे सोवियत रूसका प्रवेश सहन नही कर सकते।

इस सवका परिणाम यह है कि मुख्य प्रश्नका विचार आगेके लिए टाल दिया गया है। उसके लिए एक दूसरा सम्मेलन वुलाना पड़ेगा। वर्तमान सम्मेलन गौण प्रश्नो और

१. विश्वमित्र' २६ नवम्बर, सन् १९४५ ई०।

सन्धियोके मसविदोंपर विचार करेगा। जहाँ सन् १९१८ के सम्मेलनने सबसे पहले मुख्य प्रश्नका निर्णय किया था वहाँ वर्तमान सम्मेलन गौण प्रश्नोको पहले ले रहा है।

वैदेशिक सचिवोको मसविदोके तैयार करनेमे ११ महीने लगे थे, इससे स्पष्ट है कि इनका काम कितना कठिन रहा होगा। अब यदि इनके आपसके समझौते सम्मेलनमे नहीं माने जाते तो फिर जिच उत्पन्न हो जायगी। यूरोपकी अस्त-व्यस्तताको दूर करनेमे जो विलम्ब हो रहा है, उससे यूरोपके लोग अधीर हो रहे है। यह लोकमतका ही प्रभाव था कि वैदेशिक सचिव किसी-न-किसी तरह मसविदेपर राजी हो सके थे। इटली, हंगरी, रूमानिया, बुलगारिया और फिनलैण्डके साथ जो सन्धियाँ होंगी उनके मसविदोपर सम्मेलन विचार करेगा। अन्य प्रश्नोपर विचार करनेके लिए दूसरे सम्मेलन बुलाये जायँगे।

सम्मेलनको वैदेशिक सचिवोकी कौसिलको फिरसे ये मसविदे सिपुर्द कर देने पडे थे; और इस समय न्यूयार्कमे कौसिलकी बैठक हो रही है। कौसिलके सामने मसविदोके अतिरिक्त अन्य प्रश्न भी है। मुख्य इनमे पाँच है—(१) ट्रीस्टके स्वतन्त्र प्रदेशके लिए विधान बनानेका प्रश्न, (२) डैन्यूब नदीमे यातायातकी सबको स्वतन्त्रता देनेका प्रश्न, (३) बालकनमे स्वच्छन्द व्यापारका प्रश्न, (४) हरजानेका प्रश्न और (५) ग्रीसकी सीमाओको निर्धारित करनेका प्रश्न। न्यूयार्कसे जो समाचार आ रहे है उनसे पता चलता है कि इनमेसे एक प्रश्नका भी निर्णय नही हो रहा है और किसीको नही मालूम कि इन प्रश्नोका समझौता कैसे हो सकेगा। आपसका मतभेद बढ़ता ही जाता है। सम्मेलनमे ही दो दल बन गये है। एकमे इगलैण्ड,अमेरिका और इनके साथी है। दूसरेमे रूस और उसके साथी है। पेरिस सम्मेलनने यह दिखा दिया है कि इन दलोकी नीतिमे मौलिक अन्तर है। सम्मेलनके बडे राष्ट्रोके प्रतिनिधियोको अपना मत स्पष्ट रूपसे प्रकट करनेके लिए बाध्य कर, सुलह और समझौतेके कामको और भी दुष्कर कर दिया गया है, क्योकि एक बार अपना निश्चित मत प्रकाश्य रूपसे दे चुकनेके पश्चात् उसमे हेर-फेर करना कठिन हो जाता है। ये दोनो दल एक दूसरेसे दूर होते जा रहे है। सन्धियोके मसविदोपर इन दलोका विचार हो रहा है, किन्तु यहाँ भी गाडी रुक गयी है। इटलीकी सरकारने मसविदेके सम्बन्धमे एक नोट तैयार किया है, जो १५ नवम्बरको कौसिलको दिया जायगा।

कौसिलने जब ये मसविदे पहली बार तैयार किये थे तब चारो वैदेशिक सचिवोने एक प्रकारसे उनको सम्मेलनमे पास करानेका इकरार किया था और इस विचारसे उन्होने दो-तिहाई वोटके सिद्धान्तको स्वीकार किया था। यदि ऐसा निश्चय न होता और केवल बहुमतका सिद्धान्त लागू किया जाता और छोटे राज्य हिस्सा लेना चाहते तो ये मसविदे सम्मेलनमे पास नही हो सकते थे, क्योकि सम्मेलनमे सोवियत रूसका अल्पमत है। जब ये मसविदे विचारके लिए सम्मेलनके सामने आये तब मिस्टर बेविन उपस्थित नही थे। उनकी अनुपस्थितिमे आस्ट्रेलियाके प्रतिनिधि डा० ईवाट (Evatt) ने यह प्रस्ताव उपस्थित किया कि जिन सशोधनोको बहुमत प्राप्त हो उनका वही मूल्य ठहराया जाय जो उन संशोधनोका हो जिनको दो-तिहाई वोट मिले। इस बातको सोवियत प्रतिनिधि कैसे मान सकते थे, क्योकि उनकी ओरसे कौसिलमें समझौते हो चुके थे। वह दो-तिहाई

वोटके सिद्धान्तपर अड़ गये। ऐसा मालूम पड़ा मानो दोनो समूहोमे सघर्ष हो जायगा। ऐसी अवस्थामे ब्रिटिश प्रतिनिधियोने यह समझौता पेश किया कि जो संशोधन वहुमतसे पास हो, वे भी कार्यक्रममे स्थान पाये और जिनको दो-तिहाई वोट मिलें उनपर भी गम्भीरतासे विचार किया जाय। इस विचारसे आपसका मनमुटाव और सन्देह और भी वढ गया। रूसियोका विचार है कि अंग्रेज और अमेरिकन प्रतिनिधियोकी रजामन्दीके विना डा० ईवाट ऐसा दुस्साहस नही कर सकते थे।

यह वाद-विवाद व्यर्थहीका था, क्योकि अन्तमे चार वड़े राष्ट्रोपर ही सव निर्भर करता है। छोटे राज्य यदि यह समझे कि उनके वोटसे जो निश्चय होंगे वे सम्मेलनके निश्चय मानें जायँगे तो यह उनकी भूल होगी। उनके अधिकार सीमित है और यही तथ्य है कि जो चार वड़े राष्ट्र करेगे वही होगा। इनमें समझौता होना चाहिये और यही नही हो रहा है। इस संघर्षमे वहुत समय नष्ट हुआ।

जव वेविन साहव वापस आये तव उन्होने वैदेशिक सचिवोकी एक मीटिंग की और वे सुलहसे काम करे इसका प्रयत्न किया। किन्तु कौसिलमे फिर झगड़ा हो गया है और काम आगे नही वढ रहा है।

अन्तर्राष्ट्रीय दलवन्दी

हमने ऊपर इसका उल्लेख किया है कि सम्मेलनमे दो दल है। ये पूर्वी और पश्चिमी व्लाकके नामसे पुकारे जाते है। परस्परके सम्वन्ध और सन्देहके अनेक कारण है। यह कहना कि महायुद्ध समाप्त हो गया है, ठीक न होगा। नाजियोपर जवतक विजय नहीं प्राप्त हुई थी तवतक किसी प्रकार मित्रराष्ट्र मिल-जुलकर काम कर रहे थे। किन्तु नाजियोकी हारके वादसे ही वे आपसमे झगडने लगे है। ग्रेट ब्रिटेन और संयुक्तराष्ट्रके पास सारे संसारमे जहाँ तहाँ हवाई और समुद्री अड्डे है। किन्तु रूस अड्डोंके लिए अपना दावा पेश करता है तव ये उसको सन्देहकी दृष्टिसे देखने लगते है। अमेरिकाकी नौशक्ति सवसे प्रवल है और इसलिए वह चाहता है कि समुद्रपर सवको स्वतन्त्रता प्राप्त हो। किन्तु उसका कहना है कि डार्डनेल्समे रूसको स्वतन्त्रा न दी जानी चाहिये, नही तो वह भूमध्य-सागरमे चला आयेगा। रूसकी आर्थिक पद्धति सामुदायिक (Collectivist) है, किन्तु हंगरीमे वह राजनीतिक शक्तिका उपयोग अपनी आर्थिक स्थितिको प्रवल वनानेमे करता है।

ग्रेट ब्रिटेन अपने लिए तो इटलीके एक-दो उपनिवेश चाहता है, पर सोवियत रूसको इन उपनिवेशोमे हिस्सा नही देना चाहता है। पेरिसके सम्मेलनमे वही हो रहा है जो जर्मनीमे हो रहा है। जर्मनीकी एकता माननेके लिए फ्रांसको छोड़कर तीन वड़े राष्ट्र तैयार है और वे यह भी मानते है कि जर्मनीके उद्धारके लिए उसकी आर्थिक एकता जरूरी है। किन्तु रूर (Ruhr) के सम्वन्धमे मोलोटोवका कहना है कि व्यवसायके इस क्षेत्रका नियन्त्रण चारो शक्तियाँ मिलकर करे। उनका विचार है कि पश्चिमके राष्ट्र जर्मनीके युद्धके साधनोका विनाश नही चाहते और वे अकेले पश्चिमी व्लाककी अधीनतामे रूरका निर्माण करना चाहते है, जिससे भावी युद्धमे वे उसका उपयोग सोवियतके विरुद्ध कर सके।

इसलिए मोलोटोवका अनुरोध है कि रूरके प्रबन्धमे रूसका भी हाथ हो और इसी कारण वे रूरकी व्यावसायिक शक्तिको किसी दूसरे आधारपर बढने देना नही चाहते । मोलोटोव जर्मनीकी एकताके पक्षमे है और जर्मनीसे रूरको अलग करनेकी जितनी योजनाएँ है उन सबका वह विरोध करते है । उनका यह ख्याल है कि विभाजनका फल यह होगा कि रूर अकेले पश्चिमके नियन्त्रण मे आ जायगा । इसके विपरीत फ्रास रूरको जर्मनीसे अलग करना चाहता है । मोलोटोवकी नीतिसे फ्रासके कम्युनिस्टोको काफी परेशानी होती है । जब रूरने अमेरिकाके प्रस्तावको नही माना तो अमेरिका और इगलैण्डने अपने क्षेत्रोको एक कर लिया । वे आशा करते है कि इसमे आगे चलकर रूसी क्षेत्रभी शामिल हो जायगा ।

हरजानेके प्रश्नपर संघर्ष है । मोलोटोवका कहना है कि क्रीमिया सम्मेलनके निश्चयके अनुसार रूसको हरजानेके लिए केवल जर्मन सामान ही नही दिया जायगा, किन्तु वह वर्तमान व्यावसायिक उत्पत्तिसे भी अपना हरजाना पूरा करेगा । मोलोटोवका यह भी कहना है कि अमेरिकाने यह मान लिया था कि सोवियत रूसको १० हजार मिलियन डालर हरजानेके मिलेगे । अबतक यह विचार था कि पौट्सडैमके समझौतेके बाद क्रीमियाके निश्चय रद्द हो गये है । पौट्सडैमका निश्चय ...... जर्मनीके उत्पादनके साधनोको धीरे-धीरे इतना घटा देता है कि जर्मन लोग केवल साधारण यूरोपीय स्टैडर्डके अनुसार रह सके । इस निश्चयका यह अर्थ होना चाहिये कि वर्तमान उत्पत्तिसे हरजानेकी रकम नही वसूली जायगी । जब कहा जाता है उत्पत्तिको बढाना चाहिये तब मोलोटोव इसकी आवश्यकताको स्वीकार करते हुए कहते है कि इसमे बहुत दिनोतक पर्याप्त वृद्धि नही की जा सकती है और यदि वृद्धि आवश्यक है तो यह बात इस शर्तपर स्वीकार की जा सकती है कि नाजियोके प्रभावको कडाईके साथ नष्ट किया जाय और जर्मनीकी युद्ध-शक्तिको निर्मूल कर दिया जाय ।

जर्मन आज भूखो मर रहे है और जब ऐसी अवस्थामे रूसकी ओरसे ब्रिटिश क्षेत्रके और कारखानोकी माँग पेश होती है, तो ग्रेट ब्रिटेन समझता है कि उससे जर्मनोको जिन्दा रखनेका खर्च बर्दाश्त करनेको कहा जाता है ।

मोलोटोवकी शिकायत है कि अग्रेज और अमेरिकन क्षेत्रमे फासिज्म को निर्मूल करनेकी चेष्टा पूरी तरह नही हो रही है और न लोकतन्त्रकी आधार-शिला ही ठीक तरह रखी जा रही है । यहाँ हमको स्मरण रखना चाहिये कि लोकतन्त्रसे रूसका अर्थ यह है कि जनताके हितकी दृष्टिसे उचित आर्थिक सुधार किये जायँ । उनके मतमे बिना इसके कोई प्रजातन्त्र शासन सम्भव नही है । इसके विपरीत अमेरिकनोका मत है कि पहले राजनीतिक परिवर्तन होने चाहिये और फिर नये शासनको आर्थिक सुधार करनेकी स्वतन्त्रता रहनी चाहिये । किन्तु जब इंगलैण्डमे मजदूर सरकार है तो आर्थिक परिवर्तन करनेमे एटली साहबको कठिनाई नही होनी चाहिये ।

अमेरिकाकी नीति

अब हम अमेरिकाकी नीतिपर विचार करे । इंगलैण्डका साम्राज्य तो ह्रासकी अवस्थामे है, वह दुर्बल और क्षीण हो रहा है । किन्तु अमेरिकाका 'डालर इम्पीरियलिज्म'

तेजीसे बढ़ रहा है। अमेरिकाका साम्राज्यवाद संसारके लिए एक बड़ा खतरा बनता जाता है। हम जानते है कि अमेरिका कम्युनिज्मका सबसे बडा विरोधी रहा है। आज कई पत्र खुलेआम रूसके विरुद्ध ऐटम बमका प्रयोग कर उससे लडाई मोल लेनेके लिए उत्सुक है। वे चाहते है कि पूर्व इसके कि रूस ऐटम बमकी खोजमे सफल हो और नये हथियार तैयार कर सके उसके विरुद्ध लड़ाई ठन जानी चाहिये। इंगलैण्डमे भी कुछ 'टोरी' इस तरहकी बात करते देखे गये है। पुनः 'वैटिकन' की ओरसे सोवियत यूनियनके विरुद्ध जेहाद बोल दिया गया है। चीनमे अमेरिका वहाँके कम्युनिस्टोके विरुद्ध च्यांगकाईशेककी सहायता कर रहा है। अमेरिकाने प्रशान्त महासागरको अपना प्रभावक्षेत्र बना लिया है, जिस प्रकार सोवियत रूसने पूर्वी यूरोपको अपना प्रभावक्षेत्र बना लिया है। रूस निकट पूर्व और सुदूर पूर्वमे अपने प्रभावका विस्तार कर रहा है। इन प्रदेशोमे अमेरिकाका भी स्वार्थ है। जापानमे अकेले अमेरिकाका अधिकार है और वह पासके द्वीपोमे अड्डे बना रहा है। इस प्रकार हम देखते है कि अमेरिका और रूसके संघर्षके क्षेत्र बढते जाते है। रूसको अमेरिकासे डरनेका पर्याप्त कारण है। अमेरिकाकी कम्युनिस्ट-विरोधी नीतिने उसको और सशंक कर दिया है। अमेरिकाके पास ऐटम बम है। उसकी नौ-शक्ति सबसे बड़ी है और उसके पास उद्योग और व्यवसायके प्रचुर साधन है। इसके विपरीत रूसपर बार-बार पश्चिमसे आक्रमण हुए है और आज वह देखता है कि हर जगह उसके विरुद्ध फौजी तैयारी हो रही है। आज उसकी आर्थिक अवस्था गिरी हुई है। उसे अभी लड़ाईके जख्म भरने है। उजड़े हुए स्थानोको फिरसे आबाद करना है। अमेरिकाकी शक्ति बहुत प्रबल हो गयी है। उसकी दोनो पार्टियाँ पूंजीवादी पार्टियाँ है। रूस विस्तारके लिए अवकाश चाहता है और उसके लिए उसको कोई उचित बहाना चाहिये। समझमे नही आता कि अमेरिकाको किससे भय है। उसपर आक्रमण करना किसीके लिए भी सम्भव नही है। तिसपर भी वहाँके कुछ पत्रकार और राजनीतिज्ञ रूसपर आक्रमण करनेकी बात किया करते है। बुलिट साहब (Bullit) तो कहते है कि लड़ाई शीघ्र आरम्भ हो जानी चाहिये। वैलेसका पत्र जो हालमे प्रकाशित हुआ है यह सिद्ध करता है कि अमेरिका निश्चित रूपसे रूसके विरोधमे अग्रसर हो रहा है। वैलेस लिखते है कि अमेरिका हजारों मीलके फासलेपर हवाई और समुद्री अड्डे बना रहा है, जिनका उपयोग केवल रूसके विरुद्ध ही हो सकता है। रूसको पता है कि कुछ फौजी सलाहकार भावी युद्ध रोकनेके लिए युद्धकी सलाह दे रहे है। रूसको मिस्टर बिर्न्सके विचार अवगत है। वह जानता है कि उनकी नीति रूसियोसे समझौता करनेकी नही है; किन्तु वह इतनी शक्ति संगठित करना चाहते है जिससे रूसको दबना पडे और वह अमेरिका-की बात माननेके लिए विवश हो जाय। वैलेसने इस नीतिका विरोध किया था। वैलेसका कहना है कि सबको नये आधारपर परस्परके सन्देहोको दूर करनेका प्रयत्न और समझौता करना चाहिये। किन्तु मिस्टर ट्रूमन (Truman) ने वैलेसको उनके पदसे हटाकर यह स्पष्ट कर दिया है कि वह बिर्न्सकी गलत नीतिको जारी रखना चाहते है। अमेरिका हर जगह अपने ढंगसे ही अपनी शर्तोपर सुलह चाहता है और इसमे इंगलैण्ड उसके साथ है।

बिर्न्स इसको नही छिपाते कि वह ४० लाखकी फौज तैयार रखना चाहते है। कोरिया और फिलिस्तीनमे लोकतन्त्रका गला घोटा जा रहा है और चीनमे गृहयुद्ध हो रहा है। मध्यपूर्वसे रूसको निकालनेका उद्योग हो रहा है। डार्डनेल्सके सम्बन्धमे भी रूससे मतभेद है। रूस समझता है कि उसकी रक्षाके प्रश्नसे केवल रूस, रूमानियाँ,बुलगारिया और तुर्कीका ही सम्बन्ध रहे। जिस प्रकार डैन्यूबसे रूस बाहरवालोको निकालना चाहता है, उसी प्रकार वह काले सागरमे बाहरी शक्तियोका दखल नही चाहता। अमेरिका डार्डनेल्सके प्रश्नको तुर्की और इगलैण्डका प्रश्न मानता है और इसलिए वह इस मामलेमें इंगलैण्डका समर्थन करता है।

रूसकी नीति

हमने सक्षेपमे यह दिखानेकी चेष्टा की है कि किन कारणोसे समझौता नही हो रहा है और दल बन रहे है, जो भावी युद्धकी सूचना देते है। ब्रिटिश और अमेरिकन प्रचार इस आशयका होता है कि अकेले रूसके कारण समझौता नही हो रहा है तथा रूसकी नीति अपने राज्यका विस्तार करना है। हम रूसकी वर्तमान नीतिके हर हालतमे समर्थक नही है, किन्तु हम इगलैड और अमेरिकाको कुछ ज्यादा ही दोषी समझते है। सोशलिस्ट स्टेट होनेके नाते हम यह अवश्य पसन्द नही करते कि रूस इन साम्राज्यवादी राष्ट्रोकी नीतिका अनुकरण करे तथा आत्मरक्षाके लिए ठीक उसी तरह व्यवहार करे जिस तरह ये राष्ट्र करते है। हम यह अवश्य स्वीकार करते है कि रूसको साम्राज्यवादी अमेरिकासे भय है और भयसे प्रेरित होकर ही आज उसकी नीति निर्धारित होती है। जिस प्रकार इंगलैण्डकी कोई स्थायी वैदेशिक नीति नही है, जो सिद्धान्तोपर आश्रित हो, उसी प्रकार रूसकी नीति किसी सिद्धान्तपर आश्रित नही है। आत्मरक्षाके भावसे प्रेरित होकर ही रूस आज अपनी नीति बनाता है। किसी नये युगके उपयुक्त जीवनके नये मूल्योको ध्यानमें रखकर नही। यह बड़े दु खकी बात है। ससारके एकमात्र सोशलिस्ट राज्यका इस बुरी तरह राज्यशक्तिकी कूटनीतिमे पड़ जाना हमको अखरता है। हम चाहते है कि राजनीतिके दाँव-पेचको छोडकर वह स्थायी शान्तिके लिए प्रयत्नशील हो।

शान्तिका पथ

पर स्थायी शान्ति फौजी, प्रबन्ध प्रभावक्षेत्र और हवाई अड्डोसे नही कायम होती। वह तो इस बदलते हुए युगमे अब पुराने तरीकोसे नही कायम होगी। नये युगकी माँग कुछ और ही है, नये समाजके सामाजिक मूल्य कुछ और ही है। इनको पहचानना, इनके उपयुक्त नवीन सस्थाओकी प्रतिष्ठा करना तथा इनके लिए मार्ग प्रशस्त करना हमारा काम होना चाहिये। आज जो प्रयत्न हो रहे है वे सब व्यर्थ है। जो मुख्य प्रश्न है उनकी जटिलताके कारण आज उनकी उपेक्षा की जा रही है और गौण प्रश्नोको प्रधानता मिल रही है। वास्तविकतापर परदा डाला जा रहा है और बुद्धिमत्ता इसीमे समझी जाती है कि कैसे दूसरोकी आँखोमे धूल झोकी जाय। स्पष्टवादिता एक बडा दुर्गुण समझा जाता है। ऐटम बमका प्रश्न मुख्य प्रश्न है। इसकी चर्चा बहुत थोड़ी होती है। वैज्ञानिकोका

यह कहना सत्य है कि नये आविष्कारों और विज्ञानके तथ्योको गुप्त नही रखना चाहिये, उन्हे प्रकाशित कर देना चाहिये। उनका यह भी कथन ठीक है कि ऐसी विद्याका ही प्रचार हो जो शिव है, जो समाजका कल्याण करती है। युद्धके लिए, मनुष्य जातिके संहारके लिए, सभ्यता-शालीनताको विनष्ट या कलुषित करनेके लिए विज्ञानका उपयोग नही होना चाहिये। इस प्रश्नको पेरिस-कान्फरेसमे प्रथम स्थान देना चाहिये था, किन्तु हमारी बातपर राजनीतिज्ञ हँसेगे। आज वह भले ही हँस ले, पर वह समय दूर नही है जब उनको रोना पड़ेगा। यदि केवल थोड़ेसे व्यक्तियोकी बात होती तो हमको विशेष चिन्ता नही होती, किन्तु मुट्ठीभर राजनीतिज्ञोंकी मूर्खता और दुष्टताके कारण सारे समाजको रोना पड़ेगा। हम प्रभावक्षेत्रोके बनानेके विरुद्ध है और हरजानाके दिलानेके भी पक्षमें हम नही है, विशेषकर ऐसी अवस्थामे जब कि पराजित राष्ट्र भूखो मर रहे है। नाजियोंको दण्ड देना चाहिये, उनके प्रभावको नष्ट कर देना भी आवश्यक है, किन्तु समस्त जातिको दण्ड देना कहाँका न्याय है? लोगोको अपने देशसे बहिष्कृत करना और उनसे गुलामोकी तरह काम लेना कहाँतक उचित है? जर्मनीको बरबाद कर, उसकी आर्थिक पद्धतिको छिन्न-भिन्नकर उसके टुकड़े-टुकडेकर यूरोप सुखकी नीद नही सो सकेगा। आज वह जमाना नही रहा जब दूसरोको दुखी कर कोई देश सुखी हो सके। यूरोपकी संमृद्धि जर्मनीकी समृद्धिपर निर्भर है। यह कोई कल्पना नही है और न कोई आदर्शवादिता ही है। यह स्थूल सत्य है। सारा ससार एक हो रहा है। एक अंगका फोड़ा सारे शरीरको विकल कर देता है।

इंगलैण्डकी मजदूर-सरकारकी वैदेशिक नीति टोरियोकी नीतिसे विशेष भिन्न नही है। ग्रीसमे किस प्रकार प्रजातन्त्रका गला घोटा गया और पुराने राजवंशको गद्दीपर बिठाया गया, यह हमसे छिपा नही है। राजाके वापस आ जानेसे सन् १९३६ का जमाना जब प्रतिक्रियाका बोलबाला था, फिरसे वापिस आ सकता है। यह भी है कि इंगलैण्ड अपने साम्राज्यकी रक्षाके लिए अमेरिकाका पुछल्ला बन रहा है। अमेरिका आस्ट्रेलिया और न्यूजीलैण्ड की रक्षाके लिए पैसिफिकमे रूसको बढने नही देता। अमेरिकाके हितके लिए इगलैण्ड, लेवैण्ट (Levant) और मध्यपूर्वकी जिम्मेदारी अपने ऊपर लेता है। इगलैण्डकी औपनिवेशिक नीति भी प्रगतिशील नही है। रगका भेद आज भी किया जा रहा है जब कि सरकार सोशलिस्ट कहलाती है। पुरानी नीति और परम्पराका परित्याग किये बिना आजकी समस्याओका हल नही हो सकता।

दोनो दल एक दूसरेसे भयभीत है और इसलिए युद्धकी तैयारीमे लगे है। दोनों अपनी रक्षाकी व्यवस्था कर रहे है। यदि इंगलैण्ड और अमेरिका पश्चिमी राष्ट्रोका गुट बना रहे है, तो रूस पूर्वी यूरोपको अपने अधीन कर चुका है। वह चाहता है कि उत्तरमें फिनलैण्डसे लेकर नीचे तुर्की-सीरियाकी सीमातक पश्चिमी ब्लाकके विरुद्ध एक बाँध खडाकर दिया जाय ताकि पूँजीवादी प्रभाव प्रवेश न कर सके। प्रत्येक देश इसी उद्योगमे लगा है। प्रत्येक पक्ष अपने लिए सबसे अधिक लेना चाहता है और दूसरेको सबसे कम देना चाहता है। इसलिए रूस डार्डनेल्ससे पश्चिमी ब्लाकको अलग रखना

चाहता है, यद्यपि उसकी नीतिका फल यह होगा कि तुर्की अपनी स्वतन्त्रता खो देगा। इधर इंगलैण्ड रूसको डार्डनेल्ससे अलग रखना चाहता है। खतरेके जो प्रदेश है, उनमें छीना-झपटी चल रही है। हमारी रायमे प्रश्नका हल यह है कि इन सब स्थानोको किसी एकका प्रभाव-क्षेत्र नही बनने देना चाहिये। किन्तु इनपर अन्तर्राष्ट्रीय अधिकार होना चाहिये। इस नीतिको समान रूपसे वर्तना चाहिये। तेलके चश्मोके लिए जो होड है उसे रोकना चाहिये। तेलके चश्मे उस देशकी मिलकियत हो जहाँ वे पाये जाते हो, किन्तु सब राष्ट्रोको अपनी-अपनी आवश्यकताके अनुसार उचित दाम देनेपर उसमे हिस्सा मिलना चाहिये और इस विषयके सारे अधिकार एक अन्तर्राष्ट्रीय सस्थाके हाथमे होने चाहिये। यूरोपके पुनर्निर्माणके लिए भी सबकी रायसे योजनाएँ बननी चाहिये।

पेरिस-सम्मेलन सफल होता नही दीखता। खिचाव बढता जाता है। बार-बार सम्मेलनको मुलतवी करना पडता है या झगडेके कामोको कौसिलके सिपुर्द करना पडता है। मालूम होता है कई सम्मेलन करने पडेगे। समझौतेका कोई आधार नजर नही आता। सहयोग तभी सम्भव है जब कोई ऐसा उद्देश्य हो, जिसके अधीन अन्य सब उद्देश्य हो सके। कोई ऐसे सिद्धान्त सबको मान्य नही है, जिनके आधारपर कुछ निश्चय किये जा सके। कमसे कम इतना तो हो कि सवाल अलग-अलग न लिये जायँ। सब सवालोको एक साथ लेना चाहिये, जिसमे एक-सा फैसला हो सके। छोटे राष्ट्रोके अधिकारका प्रश्न भी विचारणीय है। इस समय जो कुछ निर्णय होते है उन्हे वैदेशिक सचिव कर लेते है। उनकी स्वीकृति सम्मेलनसे ली जाती है। जब यह हाल है तो लोकमतको कौन पूछता है? छोटे राष्ट्र स्वतन्त्र नही है। वे किसी-न-किसी महाराष्ट्रके साथ है। सारा ढग लोकतन्त्रके विरुद्ध है। इस ढंगको बदलनेकी जरूरत है। यदि पहले सिद्धान्त स्थिर कर लिये जाँय और उनके अनुसार पक्षपातरहित हो काम किया जाय तो सफलताकी आशा हो सकती है।

जर्मन राजनीतिकी दिशा[1]

जर्मनीके उस भागमे जो सोवियत रूसके अधिकारमे है, रूसियोके प्रभावसे एक 'सोशलिस्ट युनिटी पार्टी' स्थापित हुई है। इसका आधार 'सोशल डेमोक्रेटिक पार्टी और कम्युनिस्ट पार्टी' की एकता है। कहा जाता है कि वास्तवमे इन दलोमे एकता नही हुई है, किन्तु रूसी अधिकारोके दबावमे आकर सोशल डेमोक्रेट इस नयी पार्टीमे सम्मिलित होनेके लिए बाध्य हुए है। डाक्टर के० शुमाखेर (Dr K. Schumacher) जो जर्मनीके पश्चिमी भागोके सोशल डेमोक्रेटिक सस्थाओके नेता है, इस एकताका विरोध कर रहे है। उन्होने हनोवर और फ्रैंकफुर्टमे अपने दलके अधिकारियोके सम्मेलन किये थे; जहाँ इस एकताके विरोधमे प्रस्ताव पास किये गये है। उनका कहना है कि समस्त जर्मनीकी पार्टी काग्रेसको ही एकताके प्रश्नका निर्णय करनेका अधिकार है। उनका आग्रह है कि

१. 'जनवाणी' जनवरी १९४७ ई०

एकताके सम्वन्धमें कोई निश्चय तभी हो सकेगा, जव जर्मनीके विभिन्न विभागोंका, जिनमे मित्रराष्ट्रोने जर्मनीको वाँट रखा है, लोप हो जायगा और जव उनके अधिकारका इन विभागोमे अन्त हो जायगा। कम्युनिस्टोका कहना है कि सोशल डेमोक्रेटोके पुराने नेता अभी पुराने झगड़ोको नही भूले है और इसीलिए वह एकताके कट्टर विरोधी है। कम्युनिस्ट यह आशा करते थे कि यदि यह एकता आरम्भमें केवल रूसी विभागमे ही स्थिर रूपसे कायम हो जाय,तो यह नयी पार्टी समस्त जर्मनीमे सवसे प्रवल पार्टी होगी। किन्तु हालके चुनावोसे उनकी इस आशापर पानी फिर गया है। वर्लिनके चुनावका फल यह हुआ है कि सोशल डेमोक्रेटिक पार्टीको ४८.२ प्रतिशत वोट मिले है। इस नयी पार्टीका तृतीय स्थान है और उसको केवल १९.३ प्रतिशत वोट मिल सके है। इसी प्रकार अन्य विभागोमे भी जो अमेरिकन, ब्रिटिश और फ्रेंच अधिकारमे है सोशलिस्टोका वहुमत है। सोशलिस्ट युनिटी पार्टीका वहुमत केवल रूसियोद्वारा अधिकृत विभागमे है। इससे इस आक्षेपको पुष्टि मिलती है कि रूसी क्षेत्रमे जो चुनाव हुए है, वे स्वतन्त्रतापूर्वक नही हुए है। चुनावमें अधिकारियोने अपने अधिकारका दुरुपयोग किया है।

परिणाम यह है कि रूसी विभागको छोड़कर अन्य विभागोमे जनताने कम्युनिज्मके विरुद्ध अपना मत दिया है और सोशल डेमोक्रेट कम्युनिस्टोके साथ एकता करनेके पक्षमें वह नही है। अत. जव जर्मनीकी एकता स्थापित होगी, तव रूसियोंकी छत्रछायामे काम करनेवाली 'सोशलिस्ट-युनिटी पार्टी' की राजनीतिक शक्ति प्रवल न हो सकेगी। हालके चुनाव इसका स्पष्ट संकेत कर रहे है। इसका परिणाम यह भी हो सकता है कि यह देखकर कि अव सोशलिस्ट युनिटी पार्टी द्वारा कार्य सिद्ध नही हो सकता, सोवियत रूस इस संस्थाकी भविष्यमे उपेक्षा करे और जर्मनीमे हर जगह कम्युनिस्ट पार्टीका ही एक मात्र सहारा ले।

हम एकताके पक्षमे है, यदि इसका विश्वास हो कि यह एकता स्थायी होगी और कम्युनिस्ट पार्टी आगे चलकर विश्वासघात नही करेगी। किन्तु इस पार्टीका अवतकका इतिहास ऐसा नही रहा है, जिससे हमको ऐसा भरोसा हो सके। मजदूर-आन्दोलनकी एकतासे मजदूर वर्गका वल वढता है इसमे सन्देह नही है। किन्तु ऐसी पार्टीसे क्या आशा की जाय, जो एकताके लिए उसी समय हाथ वढाती है, जव उसको गरज होती है, पर जो अपना मतलव निकल जानेपर किसी समय भी धोखा दे सकती है। इसके उदाहरण इतिहासमे भरे पड़े है। सोशल डेमोक्रेटोको वदनाम करना सुलभ है। किन्तु इसका सारा दोष उन्हीके मत्थे नही मढा जा सकता। जवतक कम्युनिस्ट इस वातका पुष्ट प्रमाण नही देते कि उन्होने अपने रवैयेको सदाके लिए वदल दिया है, तवतक कही भी इन दो दलोमे एकता नही हो सकती। यह दूसरी वात है कि अनुचित दवाव डालकर, जोर-जवर्दस्तीसे, कही-कही दिखाऊ एकता कायम हो जाय।

यह ठीक है कि रूसी विभागसे अन्यत्र सोशल डेमोक्रेटोको वहाँके अंग्रेज और अमेरिकन अधिकारियोका सहारा मिला है और यह भी सच है कि इगलैण्डमे मजदूरदलकी जो विजय हुई है, उससे भी सोशल डेमोक्रेटोको अपनी स्वतन्त्रता वनाये रखनेमे सहायता

मिली है। किन्तु यह भी निर्विवाद है कि सोशल डेमोक्रेटिक पार्टी एक-दो स्थानोको छोड़कर कही भी कम्युनिस्टोके साथ एक दल बनानेको तैयार नही है।

सोशलिस्ट युनिटी पार्टीके प्रोग्रामके कुछ अश हम यहाँ उद्धृत करते है :—

'केवल एक ही शक्ति ऐसी है जो प्रतिक्रियाकी शक्तियोपर अर्थात् मिलिटरिज्म (सैनिकवाद) और फासिज्मपर अन्ततोगत्वा विजय प्राप्त कर सकती है और यह शक्ति समस्त मजदूर-वर्गकी सम्मिलित शक्ति है, जब उसको किसान तथा कामकाजी बुद्धिजीवी-वर्गका घनिष्ठ और दृढ सहयोग प्राप्त होता है।

"वर्तमान अवस्थामे, जहाँ हिटलरशाहीने अपने युद्धकालीन अपराधोके कारण तथा अन्य राष्ट्रोकी जनताके विरुद्ध असख्य दुष्टाचार कर जर्मन राष्ट्रोकी एकताको खतरेमे डाल दिया है, वहाँ केवल समस्त फासिज्म विरोधी तथा प्रजातान्त्रिक देशव्यापी शक्तियोकी एकता ही राष्ट्रीय एकताका प्रतिनिधित्व कर सकती है।"

"पार्टीका लक्ष्य प्रजातान्त्रिक मार्गद्वारा ही समाजवादकी स्थापना करना है। किन्तु यदि पूँजीवादी वर्ग लोकतन्त्रकी भूमिका परित्याग करेगा तो यह क्रान्तिकारी उपायोका अवलम्बन ग्रहण करेगी।"

युनाइटेड पार्टी आत्मनिर्भर और स्वतन्त्र होगी। जर्मनीकी मजदूर जनताके हितोके अनुसार और जर्मनीकी विशेष स्थितिको दृष्टिमे रखकर ही उसकी नीति और कार्य करनेकी शैली निर्धारित और विकसित होगी। अपने निम्नतम तथा उच्चतम कार्यक्रमको सफल बनानेके लिए उसको अपना स्वतन्त्र मार्ग ढूँढ निकालना होगा और इस मार्गका आधार जर्मन जातिके विकासकी विशेषताएँ होगी। राज्यके पुराने ढाँचेका पूर्ण ध्वस करके तथा जर्मनीका लोकतन्त्रात्मक विकास करके कदाचित् ऐसे नवीन और विशेष आधारोका सृजन होगा, जिनसे मजदूरवर्गके हाथमे राजसत्ता क्रमशः आयेगी तथा समाज-वादकी स्थापना होगी।

"दिन-दिनके सघर्षमे उसका जो दान होगा उसमे तथा अपने सामाजिक गठनमें युनाइटेड पार्टी, मजदूर-वर्गकी पार्टी और समस्त मजदूर जनताकी पार्टी होगी। उसकी आन्तरिक व्यवस्था सम्पूर्ण रूपसे प्रजातान्त्रिक होगी। जर्मन जातिके जो सच्चे राष्ट्रीय हित है, उनकी वह रक्षा करेगी और शान्ति-प्रेमी राष्ट्रोके समुदायमें जर्मनीको पुन. सम्मिलित करानेसे ही यह कार्य सम्पन्न हो सकेगा।

"मजदूरवर्गके आन्दोलनकी जो सुन्दर परिपाटी चली आयी है, उसीके अनुसार युनाइटेड पार्टी मजदूरोको जो अन्तर्राष्ट्रीयता मान्य है, उसमे प्रतिपन्न होगी और उसका सच्चे हृदयसे समर्थन करेगी और इसी भावसे वह पूँजीवादी देशोके तथा सोवियत यूनियनके मजदूर आन्दोलनके साथ दृढ सम्बन्ध स्थापित करनेकी चेष्टा करेगी। जिस प्रकार सर्वत्र शान्ति, लोकतन्त्र, प्रगति तथा समाजवादको समुन्नत करना उसका कर्त्तव्य है, जिस प्रकार जातीय अथवा राष्ट्रीय घृणा और विद्वेष अतिराष्ट्रीयता और सोवियत विरोधी प्रचारका शक्तिभर विरोध करना उसका कर्त्तव्य है, उसी प्रकार अपने संघर्षके लिए अन्य देशोके मजदूर -आन्दोलनका समर्थन प्राप्त करना भी उसका कर्त्तव्य होगा।"

उक्त प्रस्ताव बड़े महत्त्वका है । हमको स्मरण रखना चाहिये कि यह सम्मिलित पार्टीका निश्चय है । अत स्थानीय कम्युनिस्ट पार्टी भी इस प्रस्तावमे निर्दिष्ट किये गये सिद्धान्तोको स्वीकार करती है और यह भी मानना होगा कि सोवियत रूसकी इस प्रस्तावपर मुहर है । किन्तु ये सिद्धान्त अवतक कम्युनिस्टोको मान्य नही रहे है । इन्हीके न माननेसे यूरोपमे समाजवादियो और कम्युनिस्टोमे एकता नही हो पायी है और मजदूर-आन्दोलनमें फूट पडती रही है । इस प्रस्तावमे एक सिद्धान्त यह निरूपित किया गया है कि प्रजातान्त्रिक मार्गद्वारा ही समाजवादकी स्थापना करना हमारा लक्ष्य होना चाहिये और हिंसाका प्रयोग तभी करना चाहिये जव पूर्वोक्त मार्गपर चलना पूँजीपतियोद्वारा असम्भव कर दिया जाय । किन्तु अवतककी नीतिका आधार तो यही रहा है कि हिंसाका प्रयोग अनिवार्य है और मजदूरवर्गके अधिनायकत्वके विना समाजवादकी स्थापना असम्भव है । वैधानिक ढगसे समाजवाद प्रतिष्ठित हो सकेगा, इसकी कल्पना कम्युनिस्टोने कभी नही की थी । दूसरा महत्त्वका सिद्धान्त यह है कि पार्टी आत्मनिर्भर और स्वतन्त्र होगी । अर्थात् दूसरे शव्दोमें वह मास्कोका मुँह न ताकेगी, उसके इशारेपर नही चलेगी और उसकी वैदेशिक नीतिका पुछल्ला नही वनेगी । पुनः उसकी नीति अपने देशकी जनताके हितोंको ध्यानमे रखकर ही और उसकी विशेष स्थितिपर विचार करके ही निश्चित होगी, किन्तु आजतक तो इसके प्रतिकूल ही आचरण हुआ है । अपनी नीतिके निश्चित करनेकी स्वतन्त्रता कम्युनिस्ट पार्टियोको कही भी नही रही है और वे सदा सोवियत रूसके इशारेपर और उसीके राष्ट्रीय हितोको प्रधान मानकर काम करती रही है । समाजवादियो और कम्युनिस्टोके वीच विवाद का यह मुख्य विपय रहा है ।

तीसरा सिद्धान्त जिसका हम उल्लेख करना चाहते है पार्टीका वह निश्चय है जिसके अनुसार उसकी आन्तरिक व्यवस्था सम्पूर्ण रूपसे प्रजातान्त्रिक होगी । अवतक जनतान्त्रिक केन्द्रीकरण (democratic centralism) का सिद्धान्त मान्य था, जो विगड़ते-विगड़ते एक अधिनायकत्वके सिद्धान्तके रूपमे परिणत हो गया । ट्राटस्कीके शव्दोमें "पार्टीका सगठन पार्टीका ही स्थान ले लेगा, केन्द्रीय समिति संगठनका स्थान ले लेगी और अन्तमे अधिनायक केन्द्रीय समितिका स्थान ले लेगा ।' इस सम्वन्धमे ट्राटस्कीने एक स्थानपर लिखा था कि ऐसा अनुमान करनेका लोभ संवरण करना शायद कठिन है कि स्टालिनिज्मका मल वोलशेविकोके केन्द्रीय नियन्त्रणके सिद्धान्त (Centralism) में निहित है ।

विचारणीय प्रश्न यह है कि क्या कम्युनिस्ट पार्टीके सिद्धान्तोमे इधर कुछ ऐसा हेर-फेर हुआ है अथवा अपनी अवसरवादिताके सिद्धान्तके अनुसार सोशल डेमोक्रेटोकी शंकाके निवारणार्थ तथा उनको एकताके लिए प्रोत्साहित करनेके लिए ही उक्त पार्टीके कार्यक्रममें इन सिद्धान्तोको प्रविष्ट किया गया है । जिस प्रकार अमेरिकाके आक्षेपोंको दूर करनेके लिए जिससे वह पूरी तरह युद्धमे सहायता प्रदान करे, तृतीय इण्टरनेशनलके तोड़नेका स्वांग रचा गया और सोवियत रूसके अनेक गिर्जे खोल दिये गये, धर्म-स्वातन्त्र्यकी घोपणा की गयी तथा धर्माचार्यका आदर-सत्कार किया गया, क्या उसी प्रकार अपनी शक्तिको

बढानेके लिए तो कही ये सिद्धान्त नही घोषित किये गये है ? हमको तो इसमे सच्चाईकी बहुत कमी मालूम होती है । यदि वस्तुत. नीतिमे कोई क्रान्तिकारी परिवर्तन हुए है, तो इनकी घोषणा सर्वत्र क्यो नही की जाती और यह नीति सर्वत्र क्यो नही वरती जाती ? यदि ये सिद्धान्त कम्युनिस्टोको मान्य हो तो एकताके स्थापित होनेमे बहुत देर न लगे । यह नही कहा जा सकता कि ये सिद्धान्त मौलिक नही है और विशेप देश या कालमें ही लागू होते है । आजके युगमे इनका व्यापक प्रयोग होनेसे ही सर्वत्र एकता स्थापित हो सकती है । पर कठिनाई तो यह है कि कम्युनिस्ट ऐसी घोषणा करनेसे रहे और इसका भी क्या ठीक कि कब वे अपनी नीति बदल देगे । कम्युनिस्टोकी कलाबाजियोसे हम अच्छी तरह परिचित है । अपनी नीतिमे आकाश-पातालका अन्तर करनेमे इनको कोई परेशानी नही मालूम होती । पाकिस्तानके प्रश्नके सम्बन्धमे ही इन्होने कितनी बार अपनी नीतिको बदला है । वस्तुस्थिति नही बदलती पर ये बदलते रहते है और यह पता नही चलता कि आखिर ये किस भूमिपर खडे है । हमारे ही देशमे श्री जयप्रकाशनारायणने इनसे एकता करनेके लिए भगीरथ प्रयत्न किया और कोई बात उठा नही रखी । किन्तु तृतीय इण्टर-नेशनल और रूस तथा पार्टीके भीतर लोकतन्त्रकी व्यवस्थाके प्रश्नको लेकर ही एकता न हो सकी ।[१]

आस्ट्रिया

आस्ट्रियामे सोवियत रूस आर्थिक और राजनीतिक नियन्त्रण प्राप्त करनेके प्रयत्नमे लगा हुआ है । आस्ट्रियाकी वर्तमान सरकार पश्चिमी यूरोपके मित्रराष्ट्रोके पक्षमे है और उसके द्वारा ये राष्ट्र रूसकी नीतिको विफल करनेकी चेष्टामे है । आपसके इस मन-मुटाव और विरोधका कुफल आस्ट्रियाकी जनताको भोगना पडता है और उसकी इस घातक नीतिके कारण ससारकी प्रधान शक्तियोकी मैत्री भी सन्दिग्ध हो जाती है ।

सन् १९४३ मे मास्कोकी जो घोषणा हुई थी उसके द्वारा ससारकी प्रमुख शक्तियोने आस्ट्रियाकी स्वाधीनताको स्वीकार कर लिया था और यह घोषणा की थी कि आस्ट्रियाके जिस लोकतन्त्रको डालफसने और पीछेसे नाजियोने विनष्ट किया था, उसका पुनरुद्धार करनेके लिए पूरा अवसर दिया जायगा । इस घोषणाके फलस्वरूप चुनाव हुए और डाक्टर फिग्लकी सम्मिलित सरकारको सब शक्तियोने अपनी स्वीकृति दी । आस्ट्रिया-मे सोशलिस्ट पार्टीका बडा तेजीके साथ पुनरुद्धार हुआ और सच तो यह है कि जिन वर्षोमें वहाँ नाजियोका शासन था, सोशलिस्टोका प्रभाव वास्तवमे बढ गया । इन विविध सुविधाओके कारण आस्ट्रियाका पुनरुद्धार बडी सुगमताके साथ हो सकता था । किन्तु ऐसा नही हुआ है । पुरानी अवस्था बहुत धीरे-धीरे वापस हो रही है । अमेरिकन क्षेत्रके कुछ हिस्सोके अतिरिक्त सर्वत्र लोग भूखे है । क्षेत्रोमे विभक्त होनेके कारण मालका

१. 'जनवाणी' जनवरी, सन् १९४७ ई०

एक प्रदेशसे दूसरे प्रदेशमें जाना वहुत कठिन हो रहा है। कोई सम्मिलित आर्थिक नीति नहीं स्थिर हो पाती। मित्रराष्ट्रोमें परस्पर मतभेद होनेके कारण सरकारको पग-पगपर विरोधका सामना करना पडता है। इस स्थितिका उत्तरदायित्व किसी न-किसी अंशमे वहाँकी सरकारपर भी है। यदि वह निष्पक्ष भावसे कार्य करती तो कदाचित् मित्रराष्ट्रोके परस्पर विरोधको शान्त कर सकती। किन्तु डाक्टर फिग्लके मन्त्रिमण्डलका सुझाव ऐंग्लो-अमेरिकन समुदायकी ओर है। डाक्टर फिग्ल और उनके साथी इस तथ्यको भूल गये है कि उनके देशकी आर्थिक पद्धति डैन्यूवकी पद्धतिसे पृथक नही की जा सकती और आस्ट्रियाके उद्योग-व्यवसायके साधनका अधिकाश सोवियत रूसके क्षेत्रमे है, अत: रूसके लिए आस्ट्रियापर आर्थिक दवाव डालना वहुत सुगम है और यह दवाव डाला जा रहा है। इसका यही फल होनेवाला है कि पूर्वी व्लाकमें आस्ट्रिया पूरी तरह जज्व हो जायगा। रूस चाहता है कि व्यापारके सम्वन्धमें उनका आस्ट्रियाके साथ समझौता हो जाय। किन्तु आस्ट्रियाकी सरकार इसके लिए तैयार नही है। उनका कहना है कि जवतक मित्र राष्ट्रोंमें मतभेद कायम है, वह अकेले रूससे समझौता नही करेगी। इस कारण रूस आस्ट्रियाकी सरकारको इंगलैण्ड और अमेरिकाका उपकरण वननेका दोपी ठहराता है।

इस झगड़ेका एक दूसरा कारण भी है। पूर्वी आस्ट्रियामे जर्मनीकी जो पूंजी लगी है, उस सवको रूस अपने अधीन करना चाहता है और उसे हरजानेके रूपमे ले लेना चाहता है। जो उद्योग-व्यवसाय आन्श्लुस (Anschluss) के वादसे आस्ट्रियाकी पूँजीकी सहायतासे कायम किये गये है, उनको भी रूस ले लेना चाहता है। रूसका यह दावा स्वीकार नही किया जा सकता, क्योंकि सन् १९३८ और सन् १९४५ के वीच आस्ट्रियाके आर्थिक साधनो-का ७५ प्रतिशत अनिवार्य रूपसे जर्मन युद्ध यन्त्रका अपरिहार्य अग वना लिया गया था। रूसके इस दावेके जवावमे इंगलैण्ड और अमेरिकाका कहना है कि उसी जर्मन पूंजी और व्यवसायके पाने का रूस हकदार है जो आन्श्लसके पहलेसे आस्ट्रियामे लगी थी और कायम थी। वह उन व्यवसायोको भी इसमे शामिल करते है जो पीछेसे जर्मन पूंजीकी सहायतासे कायम हुए। रूसकी इस माँगको व्यर्थ करनेके लिए आस्ट्रियाकी पार्लमेण्टने २६ जुलाई सन् १९४६ को कुछ चुने व्यवसायोके राष्ट्रीकरणका कानून वना दिया है। रूसी क्षेत्रमे तेलके कुएँ है उनका राष्ट्रीकरण हो गया है, इसी प्रकार डैन्यूव स्टीमशिप कम्पनीका और विजलीके व्यवसायके भागोका जिनकी मिलकियत जर्मनोकी है राष्ट्रीकरण हुआ है। सोवियत रूस इनको अपनी मिलकियत घोपित कर चुका है। उसकी शिकायत है कि केवल उन्ही व्यवसायोंका राष्ट्रीकरण हुआ है जो रूसी क्षेत्रमे पाये जाते है। उनका कहना है कि जिन व्यवसायोमें पश्चिमी राष्ट्रोकी पूँजी लगी है वे राष्ट्रीकरणसे वच गये है। इस प्रकार आस्ट्रियाकी हुकूमतको पक्षपात दोपी ठहराता है। यह वात कुछ अंशमे ठीक भी है, किन्तु यह सर्वथा सत्य नही है कि कोई भी ऐसा व्यवसाय राष्ट्रीकरणके लिए नही चुना गया है, जिसमे पश्चिमके राष्ट्रोकी पूंजी लगी हो। उदाहरणके लिए जिस्टर्सडार्फ (Zistersdorf) के तेलके कुओमे ब्रिटिश, डच और अमेरिकन फर्मोंके स्वत्व है। इसी तरह 'लेडर वैंक' मे वहुत-कुछ फ्रेंच पूंजी लगी हुई है। वस्तुत. आस्ट्रियामें पश्चिमकी

वहुत कम पूँजी लगी हुई है। वाद-विवादके पश्चात् अन्तमें चार प्रधान राष्ट्रोमें यह समझौता हो चुका है कि राष्ट्रीकरणका प्रोग्राम कानूनका रूप ले लेगा यदि एक मासके भीतर चारो राष्ट्र एक स्वरमे आक्षेप नही करते।

सच तो यह है कि इन महान् राष्ट्रोके आपसके झगड़ोके कारण गरीव आस्ट्रियाको क्षति पहुँच रही है। हर एक उसको अपना साधन वनाना चाहता है, जव कि सवको केवल आस्ट्रियाको दृष्टिमे रखकर काम करना चाहिये। यह स्पष्ट है कि आस्ट्रियाकी आर्थिक पद्धति डैन्यूवसे वँधी हुई है और इस प्रदेशमे सोवियतका प्राधान्य है। इसी कारण रूसके आर्थिक दवावके आगे आस्ट्रियाको सिर झुकाना पड़ेगा अथवा उसकी आर्थिक अवस्था विगड जायगी, इस कारण रूस आस्ट्रियाकी सहायता विशेष रूपसे कर सकता है। डैन्यूवके राज्योके साथ व्यापार करनेकी स्थिति पश्चिमी राष्ट्रोकी पहले नही रही है और आज भी नही है। इसके अलावा राजनीतिक दृष्टिसे रूस आस्ट्रियाको अपने साथ रखना चाहता है, क्योकि यूरोपके पश्चिम पूर्व भागकी रक्षा करनेमे आस्ट्रियाका वड़ा उपयोग है।

आस्ट्रियाकी प्रधान पार्टियाँ सोशलिस्ट और कैथलिक पीपुल्स दोनो ही सोवियत रूसके पक्षमे नही है। किन्तु वे अन्त तक पश्चिमी समुदायमे तभी रह सकते है जव कार्यरूपमें पश्चिमी राष्ट्र उसके सच्चे सहायक प्रमाणित हो। पर इसकी आशा कम है और यदि रूस चाहे तो उसकी स्थिति ऐसी है कि वह आस्ट्रियाको पूर्ण सहायता दे सकता है। पर यह वह तभी करेगा जव आस्ट्रिया पूर्वी समूहमे शामिल हो जाय। जवतक वह इसके लिए तैयार नही होता, तवतक रूसका आर्थिक दवाव जारी रहेगा और शायद अन्तमें आस्ट्रियाको हार माननी पड़ेगी।[1]

मिस्रकी राजनीतिक पार्टियाँ

हमको अपने पडोसी राष्ट्रोका वहुत कम ज्ञान है। यूरोपके इतिहासको जाननेकी इच्छा हममे वडी प्रवल है। वहाँकी राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक स्थितिको जाननेके लिए हम सदा उत्सुक रहते हैं, किन्तु अपने पडोसी राष्ट्रोमे क्या नवीन आन्दोलन हो रहे है और उनके जीवनमे क्या परिवर्तन हो रहे है इसके जाननेके लिए हममे समान रूपसे उत्सुकता नही पायी जाती। यह सच है कि यूरोपका इतिहास जाननेके लिए पर्याप्त सामग्री है जव कि एशियाके राष्ट्रोका इतिहास जाननेके साधन वहुत कम है। इसमे भी सन्देह नही कि हमारी चेतनाका प्रेरक यूरोप रहा है। पर भविष्यमे हमको अपने पड़ोसियोसे ज्यादा काम पडेगा और इसलिए इस वातकी आवश्यकता है कि हम उनकी भाषा, सस्कृति तथा इतिहासका ज्ञान प्राप्त करे। इस दृष्टिसे हम 'जनवाणी' मे अपने पडोसी राष्ट्रोकी वर्तमान स्थितिका विवरण समय-समयपर दिया करेगे। इस टिप्पणीमे हम मिस्र देशकी राजनीतिक पार्टियोका सक्षिप्त विवरण दे रहे हैं।

1. 'जनवाणी' जनवरी, सन् १९४७ ई०

मिस्र एक कृषि-प्रधान देश है। अधिकांश जनता खेतीपर निर्भर करती है। एक ओर विपुल संख्यामे खेतमे काम करनेवाले लोग है जिन्हे 'फलाहीन' कहते हैं, दूसरी ओर मुट्ठीपर बड़े-बडे जमीदार है जिन्हे 'पाशा' कहते है। 'फलाहीन' की आर्थिक अवस्था दयनीय है। इनकी आयका अनुमान लगभग १५०) रु० वार्षिक है। शहरमे काम करनेवाले मजदूरोंकी अवस्था इनसे कुछ बहुत अच्छी नही है। अन्न, वस्त्र तथा अन्य वस्तुओका मूल्य बहुत बढ गया है। पाशाओकी सम्पत्तिका हिसाब बताना बहुत कठिन है; क्योकि गवर्नमेण्ट इसका कोई हिसाब नही बताती। बादशाह फारुककी सम्पत्ति १५ करोड़से १८ करोड़ रुपया आँकी जाती है। कुछ पाशाओकी सम्पत्ति इससे भी अधिक होगी।

मिस्रके यह दो प्रधान वर्ग हैं। इनके बीच एक छोटा-सा मध्यमवर्ग भी है। वर्गके आधारपर पार्टियाँ है। जनताकी पार्टी 'वफ्द' पार्टी है। यह सबसे अधिक लोकप्रिय है। दूसरी ओर पाशाओंकी कई पार्टियाँ है। इन्हें अमीरोका क्लब कहना चाहिये। इनको जनताका समर्थन प्राप्त नही है, तिसपर भी वह चुनावमें छल-कपटसे अपना बहुमत कर लेती है। मिस्रमे चुनावमे बडी धाँधली होती है। पुलिस अनपढ, सहमे हुए गरीब किसानों-को मोटरोमें भर लेती है, उन्हे चुनावके स्थानपर ले जाती है और उनसे गवर्नमेण्टके आदमियोको वोट दिलाती है। इस कष्टके लिए वोटरोको कुछ बखशीश दे दी जाती है।

कई पाशा अपनी पूँजी उद्योग-व्यवसायके क्षेत्रमे लगाये हुए है। उदाहरणके लिए सिदकी पाशा, जिसने गत सितम्बरमे प्रधान मन्त्रीके पदसे त्यागपत्र दिया था, मिस्रका एक बहुत बड़ा पूँजीपति है। वह 'Egyptian Federation of Industry' का संस्थापक और अध्यक्ष है। वह १८ बडी कम्पनियोका डाइरेक्टर है। इन पूँजीपतियोकी एक पार्टी है जिसे 'सआदी' कहते हैं। इसका नेता नोक्राशी पाशा है जो इस समय प्रधान मन्त्री है और जिसने सुदानके प्रश्नको यू० एन० ओ० के पास निर्णयके लिए भेजा है। पाशाओकी एक दूसरी पार्टी है जो उदार दलके माने जाते है और जो विधानवादी है। जब मिस्र तुर्की साम्राज्यमे शामिल था उस समय अच्छे कुलके तुर्क मिस्रमे बस गये थे और उनके पास बड़ी-बड़ी जमीदारियाँ थी। यह दल ऐसे ही पाशाओंका दल है। इस दलका बादशाह फारुकसे घनिष्ठ सम्बन्ध है। यह दोनो दल चाहते है कि व्यापारके क्षेत्रमे वह इंगलैण्डसे स्वतन्त्र हो और उनको अमेरिकासे व्यापार करनेकी स्वतन्त्रता हो। विदेशी विनिमयपर अग्रेजोका जो नियन्त्रण है उससे वह स्वतन्त्र होना चाहते हैं, किन्तु वह अभी अंग्रेजोकी साझेदारीको तोड़ना नही चाहते। अग्रेजोके हिस्सेदार बनकर ही उन्होने उद्योग-व्यवसायके क्षेत्रमे इतनी उन्नति की है किन्तु इस साझेदारीमे उनकी हैसियत छोटी है। वह अपनी हैसियतको तो बढाना चाहते है, किन्तु समझते है कि यदि अग्रेजोकी साझेदारी खत्म हो गयी तो उनको कठिनाइयोका सामना करना पडेगा और उनकी पूँजी उतनी सुरक्षित न होगी। एक कारण और है जिससे वह अंग्रेजोके बिना अपनेको कमजोर पाते है। मिस्रमे मजदूर-आन्दोलन बल पकड़ रहा है और मजदूरोकी बेचैनी बढ़ती जाती है। समाजमे अशान्ति बढ़ती जाती है। बेकारोंकी सख्या ६ लाख हो गयी है। इन पाशाओंका

ख्याल है कि कम्युनिस्ट विचारोके फैलनेके कारण यह स्थिति दिनपर दिन विगडती जायगी। इस वढती हुई वेचैनीका मुकावला करनेमे वह अपनेको कमजोर पाते है और इसलिए वह इंगलैण्डका सहारा ढूँढ़ते है। वादशाह फारूक स्वयं अंग्रेजोके वड़े विरोधी है, किन्तु अपने स्वार्थोकी रक्षाके लिए उनको अंग्रेजोका मुँह ताकना पड़ता है। अंग्रेज स्थिर स्वार्थोंके रक्षक समझे जाते है। उन्होंने आखिर युनानमें उसके वादशाहको लाकर वैठा ही दिया। जनताकी वढती शक्तिका अवरोध करनेके लिए इन छोटे-छोटे देशोके राजाओ और अमीरोको इंगलैण्डका आश्रय लेना पड़ता है।

पूँजीपतियों और जमीदारोकी इन पार्टियोंके विरुद्ध लोकप्रिय 'वफ्द पार्टी है। यदि चुनावके समय किसानोंको स्वतन्त्र छोड दिया जाय तो किसी चुनावमे भी वफ्दको सुगमतासे कम-से-कम ६० प्रतिशत वोट मिल सकते है। सन् १९१९ से यही दल अधिकाश मिस्रियोके राष्ट्रीय भावोको व्यक्त करता रहा है। गाँवोमे किसी और दलोका प्रवेश भी नही हुआ है, इसके प्रमुख व्यक्तियोमे भी जमीदार और कुछ पूँजीपति है। जमीदार तो अंग्रेजोका इसलिए विरोधी है, क्योकि अंग्रेज रुईकी कीमत गिरा देता है, रुईकी खरीदपर उसका एकाधिपत्य है और सुदानमें रुईकी जो खेती होती है वह आधुनिक ढगसे होती है और उसपर अंग्रेजका एकमात्र अधिकार है। रुईकी फसल ही मिस्रकी खास फसल है और यदि रुईकी कीमत अच्छी न मिले तो जमीदारको असन्तुष्ट होनेका पर्याप्त कारण है। जो थोडे-वहत व्यवसायी वफ्द पार्टीमे है उनका विचित्र हाल है। आरम्भमे वह वफ्दमें सम्मिलित होते है क्योकि वह अंग्रेजोके विरुद्ध है, किन्तु जव वफ्दकी नीतिका झुकाव जनता की ओर अधिक होता है तव वह भयभीत होकर पार्टी छोड़ देते है और एक नयी पार्टीको जन्म देते है या किसी दलमे सम्मिलित नही होते।

'वफ्द' के इस पक्षको हम 'वफ्द' का दक्षिण पक्ष कह सकते है, किन्तु 'वफ्द' का एक वाम पक्ष भी है और वही उसकी जान है। इसमे मजदूर, नवयुवक, विद्यार्थी और उदार विचारके शिक्षित लोग शामिल है। इस पक्षके प्रभावसे 'वफ्द' पार्टीके उद्देश्य केवल राजनीतिक नही है, किन्तु सामाजिक भी होते जाते है। दक्षिण पक्षी इस प्रभावको वढनेसे रोकते है।

वफ्दके जो नेता जमीदार है वह किसानो और मजदूरोको केवल साधारण रियायतें देना चाहते है, किन्तु किसी मौलिक सुधारके लिए तैयार नही है। वामपक्षी मिस्रकी स्वाधीनताके साथ-साथ जनताकी आर्थिक स्थितिमे पर्याप्त सुधार करना चाहते है और वेकारीको दूर करना चाहते हैं, इस पक्षको कभी-कभी स्वतन्त्र रीतिसे भी कार्य करना पडता है। गत वर्ष मजदूर और विद्यार्थियोकी एक कमेटी वनी थी जिसने देशकी पूर्ण स्वाधीनता और कर्मचारियोके लिए अधिक वेतनका नारा देकर देशव्यापी हड़ताल करना चाहा था।

समझौतेकी जो वातचीत इंगलैण्ड और मिस्रके वीच चल रही थी वह फिलहाल वन्द हो गयी है। सुदानके सवालपर कोई समझौता नही हो सका है। वफ्दका इतना जोर है कि पूँजीपतियोकी पार्टीको इस प्रश्नपर समझौता करनेका साहस नही होता। सिदकी

पासाने गत २८ सितम्बरको त्यागपत्र दे दिया था और नौकराशी पाशाने इस प्रश्नको यू० एन० ओ० के सम्मुख पेश करनेका निश्चय किया है। यदि इनको अब अंग्रेजोके लिए वफ्दका भय न हो तो शायद यह इस प्रश्नपर समझौता कर लेते। एक ही रास्ता है कि वफ्दके नेता नहास पाशासे बातचीत करें। यह तो स्पष्ट है कि उनको अपनी शर्ते कुछ बदलनी होगी। वफ्दके नेताओंको ऐसा कोई भय नही है जैसा कि नौकराशी पाशाको था। इनको तो अपने वामपक्षसे भय है किन्तु अभी कदाचित् 'वफ्द' के दक्षिणपक्षी नेता अपने अनुयायियोको अपने साथ कुछ दिन और रख सके यदि अंग्रेज इनको पहलेकी अपेक्षा अच्छी शर्त्ते दे सके।

सुदानको मिस्रमें अंग्रेज मिलाना नही चाहते। किन्तु यदि मिस्रसे कोई समझौता होना है तो सुदान-सम्बन्धी नीतिमें कुछ-न-कुछ परिवर्तन करना ही पड़ेगा। कहा जाता है कि कुछ महीने पहले अंग्रेजोकी ओरसे निम्नलिखित शर्ते नहासको दी गयी थी— (१) अंग्रेजी सेना दो वर्षमे मिस्रको खाली कर देगी, (२) रक्षाके लिए अग्रेज और मिस्रियोंका एक सम्मिलित बोर्ड होगा, (३) उत्तरी सुदान मिस्रका प्रभावक्षेत्र होगा और दक्षिणी सुदान अंग्रेजोका। पता नही कि यह समाचार कहाँतक सत्य है। किन्तु यदि ऐसी कोई बातचीत हुई है तो यह नही मालूम है कि नहासने इसका क्या उत्तर दिया। वह भी अपने वामपक्षसे भयभीत होगे। जिस आधारपर मिस्रका अंग्रेजोंसे समझौता हो यह स्पष्ट है कि वह तभी स्थायी हो सकता है जब 'वफ्द' उसको स्वीकार करे। यदि 'वफ्द' का अंग्रेजोसे कोई समझौता हुआ जो 'वफ्द'के वामपक्षको स्वीकार नही है तब 'वफ्द' पार्टी में भेद होनेका भय है। हो सकता है कि उस समय वफ्दके दो टुकड़े हो जायँ और उसके वामपक्षका स्वतन्त्र संगठन हो। किन्तु आजकी अनिश्चित अवस्थामें कुछ कहा नही जा सकता। आनेवाले महीनोमे स्थिति स्पष्ट होगी जब अंग्रेज 'वफ्द' के नेताओंसे बातचीत करेंगे।[1]

फिलिस्तीन और भारत

फिलिस्तीनमें यहूदियो और अरबोका झगड़ा एक अरसेसे चल रहा है। दोनो ओरके विप्लवकारियोने फौजी संगठन तैयार किये है। इनमें यहूदियोंके सगठन अधिक मजबूत और कार्यकुशल है। यहूदियोके सगठनोके नाम Irgun और Noganab है। अरबोने इनके जवाबमे दो संगठन तैयार किये है, यह 'निजात' और फतवा' नामसे प्रसिद्ध है। दोनो संगठनोमे कुल मिलाकर मुश्किलसे १०,००० नवयुवक होगे। इनके पास हथियार हैं और यह फौजी वर्दी खुलेआम पहनते है, यद्यपि कानूनके अनुसार फिलिस्तीनमे कोई भी व्यक्ति ऐसा कपड़ा नही पहन सकता जिसके सम्बन्धमे विदेशी वर्दी होनेका शक किया जा सके। एक दूसरे कानूनके अनुसार विना लिखित आज्ञाके कोई भी व्यक्ति खुलेतौरपर ऐसा कोई कपड़ा नही पहन सकता और ऐसा कोई विशिष्ट चिह्न धारण नही कर सकता जो

१. 'जनवाणी' फरवरी, सन् १९४७ ई०

यह सूचित करता हो कि वह व्यक्ति किसी राजनीतिक या सामाजिक संगठनका सदस्य है। किन्तु इन संगठनोके नवयुवक एक राजनीतिक संस्थाके सदस्य है और जो वर्दी यह धारण करते है वह अमेरिकनोकी वर्दी है। आश्चर्य है कि इनके विरुद्ध कोई कानूनी कार्यवाही नही की जाती। एक अधिकारीने प्रेस कान्फरेन्समे कहा था कि हाई कमिश्नर इस कानूनको अभी लागू नही करना चाहते। अधिकारियोके इस आचरणसे अनेक प्रकारके सन्देह होते है। समझदार लोगोका ख्याल है कि इन सगठनोको कानूनकी अवहेलना इसलिए करने दिया जाता है, क्योकि फिलिस्तीनके आधिकारी चाहते है कि अरब-यहूदियोका झगड़ा चलता रहे और अरबोमे सार्वजनिक आन्दोलन वामपक्षी न होने पावे। इस सन्देहकी पुष्टि एक और बातसे भी होती है। 'फतवा' नामक सगठनका अध्यक्ष पहले सी० आई० डी० का इन्स्पेक्टर था और उसका पिता पुलिसका कर्मचारी है। मुफ्तीका भतीजा, जमाल हुसैनी, जो हालमे यहूदियोद्वारा मार डाला गया है, 'फतवा' का सस्थापक था। युद्धकालमे वह रोडीशियामे नजरबन्द था और जबसे वह वापिस आया, निरन्तर यहूदियोका विरोध करता रहा और ब्रिटिश नीतिका विरोध करना उसने एक प्रकारसे छोड दिया था। यह काफी सन्देह उत्पन्न करनेवाली बात थी और राष्ट्रीय नवयुवक उसके सम्बन्धमे यह धारणा बनाने लग गये थे कि वह यहूदियोके विरुद्ध अग्रेजोसे मित्रता करना चाहता था। स्वयं मुफ्तीके सम्बन्धमे इस प्रकारका सन्देह किया जाने लगा है और अबके जिम्मेदार अरबोका यह विश्वास है कि चूंकि मुफ्ती सोवियत रूसका विरोधी है, अग्रेज एक दिन सोवियत विरोधी अरब नेताके रूपमे उसका स्वागत करेगे। इस सम्बन्धमे यह बताया जाता है कि फिलिस्तीनके पोलिटिकल इण्टेलिजेन्स विभागके अफसर पेरिससे मिस्र या लेबनन, मुफ्तीको भगा लाना चाहते थे और यह भी ध्यान देनेकी बात है कि जब मुफ्ती सिकन्दरियामे थे तब उन्होने केवल टाइम्स पत्रके मध्यपूर्वस्थित सम्वाददातासे मुलाकात की थी। इन सब बातोके आधारपर कहा जाता है कि मुफ्तीका अग्रेजोके साथ समझौता हो गया है। पता नही इसमे कहाँतक असलियत है। किन्तु एक बात निर्विवाद है कि अंग्रेज इन फौजी सगठनोके विरुद्ध कार्यवाही न करके अरब-यहूदी झगड़ोको उत्तेजना देना चाहते है। यह नीति ऐसी खुली है कि शकाका कोई स्थल नही है। यह भी सत्य है कि साम्प्रदायिक झगड़ोको उत्तेजना देनेसे सार्वजनिक आन्दोलनका रूप बदलने लगता है तथा क्रान्तिकारी चेतना और भावनाकी वृद्धि नही हो पाती। इससे प्रगतिशील शक्तियो-की गति अवरुद्ध हो जाती है, जो नि सन्देह अधिकारियोके लिए लाभकारी है। फिलिस्तीनका उदाहरण बताता है कि कुछ ऐसी ही बात हमारे देशमें भी हो रही है। सन् १९३९ मे हमारे प्रान्तमे खाकसारोकी वर्दी पहनकर और बेलचा लेकर आम सडकोपर कवायद करनेसे रोका नही जाता था, जब कि काग्रेसके स्वयसेवकोके विरुद्ध ऐसा ही काम करनेपर कानूनी कार्यवाही की जाती थी, हम यह देख चुके है। आज जो हिन्दू-मुसलिम दगे बड़े पैमानेपर हो रहे है इसमे विदेशियोका छिपा हाथ हो तो हमको आश्चर्य न होगा। मुसलिम लीगकी नीतिको देखते हुए यही कहना होगा कि उनका नेशनलगार्ड महज सामान्य स्वयंसेवकोकी जमात नही है, उनके कार्यालयमे 'हेलमट' का पाया जाना इस बात का प्रमाण

है कि इन स्वयंसेवकोंको फौजी शिक्षा दी जाती थी। फिलिस्तीनके अरब संगठन भी बालचर-सस्था होनेका बहाना करते है पर वास्तविकता हमसे छिपी नही है। आज जब साम्प्रदायिक विद्वेष इतना बढ गया है तव साम्प्रदायिक आधारपर किसी प्रकारका फौजी सगठन होने देना वडा खतरनाक है। हम समझते है कि नेशनल गार्ड वनानेकी प्रेरणा लीगको फिलिस्तीनसे मिली है। हिटलरका उदाहरण भी उसके सामने रहा है। फासिस्ट नीतिके अनुसरणका यही परिणाम है, किन्तु यह नीति देशके लिए कितनी घातक है यह हमारे मुसलमान नवयुवक नही समझते। उन्हे समझना चाहिये कि अंग्रेजोकी गुलामी एक बहुत वडा अभिशाप है, जिससे छुटकारा पाना हिन्दुओसे लडनेतथा पाकिस्तान-की माँग करनेकी अपेक्षा कही ज्यादा जरूरी है। फिलिस्तीनके नवयुवक इस बातको समझने लगे है कि यहूदियोकी अपेक्षा अग्रेजी राज उनका कही वड़ा दुश्मन है। काश कि हमारे मुसलिम नवयुवक भी ऐसा समझते।[१]

ईराकके राजनीतिक दल और उनकी स्थिति

गत महायुद्धमे ईराकके शासनने जनताकी राजनीतिक प्रवृत्तिपर नियन्त्रण लगा दिया था। किन्तु लोकतन्त्रकी सर्वत्र चर्चा होनेके कारण तथा मित्रराष्ट्रोकी विविध घोषणाओके फलस्वरूप जनताकी, विशेषकर नवयुवकोकी, राजनीतिक चेतनामे असाधारण वृद्धि हुई थी। युद्धके समाप्त होनेपर इंगलैण्डमे साधारण चुनाव हुआ और इसमे मजदूर दलकी विजय हुई। इस विजयसे ईराककी जनताको प्रेरणा मिली और उसको अपने भविष्यके सम्बन्धमें आशा बँधी। किन्तु ईराककी हूकमतने जनतान्त्रिक स्वतन्त्रता प्रदान करनेके लिए कोई कदम नही उठाया। जव कि जनता निराश हो रही थी अकस्मात् रिजेण्ट अव्दुल इलाहने गत वर्ष यह घोषित किया कि यदि षड्यन्त्रोको रोकना है तो लोकतन्त्रात्मक शासनकी स्थापना करनी होगी। इस घोषणाको कार्यान्वित करनेके लिए रिजेण्टने सर्वसाधारणको राजनीतिक दलोमे संगठित करनेकी स्वतन्त्रता प्रदान की और इस वातका आश्वासन दिया कि इस कार्यमें राज्यकी ओरसे कोई वाधा नही उपस्थित की जायगी। रिजेण्टने अपना यह मन्तव्य भी प्रकाशित किया कि उनकी इच्छा है कि गवर्नमेण्ट-का जल्द-से-जल्द चुनाव हो जिसमे आर्थिक सुधार किये जा सके और सामाजिक न्याय हो सके। जिस समय यह घोषणा हुई थी उस समय ऐजरवैजाँमे विद्रोह हो रहा था। वहुतसे लोगोको ऐसा सन्देह था कि ईराककी जनताकी बढ़ती हुई बेचैनीको रोकनेके लिए ही यह चाल चली गयी थी। शीघ्र ही इस सन्देहकी पुष्टि हुई, क्योकि गवर्नमेण्टकी ओरसे युद्ध कालीन असाधारण कानून रद्द नही किये गये, राजनीतिक दलोपर लगायी गयी रोक वैसी ही कायम रही और गवर्नमेण्टका नया चुनाव भी नही हुआ। यह अवस्था ऐजरबैजाँ के विद्रोहके समाप्त होनेके ६ महीने वादतक कायम रही।

---

१. 'जनवाणी' फरवरी, सन् १९४७ ई०

३० जून सन् १९४६ को गवर्नमेण्टने त्यागपत्र दे दिया और तौफीक अल सुवैदीने नया मन्त्रिमण्डल स्थापित किया। नये शासनने युद्धकालीन असाधारण कानूनोको रद्द कर दिया, राजनीतिक दलोपरसे रोक उठा ली और प्रेसको स्वतन्त्रता दे दी। इसका फल यह हुआ कि ईराकमे ५ दल संगठित हुए। दक्षिण पक्षमे इण्डिपेडेन्स पार्टी है, जिसके प्रमुख सदस्य वह लोग है जो नाजियोसे सहानुभति रखनेके कारण युद्धकालमे नजरवन्द कर लिये गये थे।

मध्यमे लिवरल पार्टी है और इसमे गवर्नमेण्टके समर्थक सम्मिलित है। वामपक्षकी पार्टियोमें 'नेशनल डिमाक्रेटिक पार्टी,' 'नेशनल युनियनपार्टी' और 'पीपुल्स पार्टी' के नाम विशेषरूपसे उल्लेखनीय है, इन पार्टियोके कार्यक्रम लोकतन्त्रके सिद्धान्तोपर आश्रित है। यह सव दल आर्थिक विकासके लिए योजनाकी आवश्यकताको स्वीकार करते है। सव ईराकसे विदेशी सेनाओके हटानेकी माँग पेश करते है और सभी फिलिस्तीनमे एक स्वतन्त्र अरब राज्य देखना चाहते है। राजनीतिक दृष्टिसे ही ये दल वामपक्षीय है, क्योकि आर्थिक क्षेत्रमे ये जमीनके राष्ट्रीयकरणका समर्थन नही करते, उल्टे व्यक्तिगत सम्पत्तिकी रक्षा करना चाहते है। इनमें जो अन्तर है वह लक्ष्यप्राप्तिके उपायोके सम्वन्धमे है। कम्युनिस्ट पार्टीका सगठन करनेकी राज्यने आज्ञा नही दी।

इन प्रगतिशील पार्टियोके अपने-अपने दैनिक पत्र थे जिनमे यह निरन्तर ईराकके विधानको यथार्थ रूपमे कार्यान्वित करनेपर जोर देते थे और जनताके चुने हुए प्रतिनिधियोके शासनकी माँग पेश करते थे। इससे प्रतिक्रियावादी-वर्ग भयभीत हो गया और उसने सुवैदी गवर्नमेण्टके विरुद्ध षड्यन्त्र रचना आरम्भ किया। इसका परिणाम यह हुआ कि ३० मई सन् ४६ को कुछ व्यक्तियोने अरशद अल उमरीके नेतृत्वमे नयी गवर्नमेण्ट कायम की। उमरीने इस वातकी घोषणा की कि उसकी गवर्नमेण्ट किसी दलविशेपकी गवर्नमेण्ट नही है और वह केवल नये चुनाव करानेके लिए शासनारूढ हुई है।

किन्तु थोडे समयमे ही यह वात स्पष्ट हो गयी कि वह किसी-न-किसी वहानेसे प्रगतिशील दलो और उनके पत्रोपर प्रहार करना चाहता था। वगदादके गोलीकाण्डके पश्चात् गवर्नमेण्टका इन दलोके साथ सघर्ष और तीव्र हो गया। इनके अनेक सदस्य गिरफ्तार कर लिये गये और पार्टियोके सगठित होनेमे तरह-तरहकी वाधाएँ उपस्थित की जाने लगी। प्रगतिशील देशोको दवानेकी चेष्टाएँ होने लगी। 'नेशनल डेमोक्रेटिक पार्टी' के नेतापर मुकदमा चलाया गया और उनको जेलकी सजा दी गयी। पार्टीका मुखपत्र भी वन्द कर दिया गया। तदनन्तर नेशनल युनियन पार्टीके चार सदस्य गिरफ्तार किये गये और उसके मुखपत्रका प्रकाशित होना वन्द हो गया। ईराकके विधानके अनुसार शासन नही हो रहा है। विना उचित कारणके लोग पकड लिये जाते है, लोकमत दवाया जाता है और वैधानिक उपायोका अवलम्वन करनेसे विविध राजनीतिक दल रोके जाते है। जिस गवर्नमेण्टने शासनारूढ होनेपर यह घोपणा की थी कि वह पार्लमेण्टको भंग कर नया चुनाव करानेके लिए आयी है वही गवर्नमेण्ट चुनाव कराना तो दूर रहा, आज निरकुश शासन कर रही है और जनतापर अत्याचार करती है। इस स्थितिसे

ऐसे लोगोको प्रोत्साहन मिलता है जो अवैधानिक तरीकोंसे काम लेना चाहते है। ईराकका विधान लोकतन्त्रात्मक है और यदि उसके अनुसार कार्य किया जाय, तो समाजकी उन्नति हो सकती है। किन्तु आज ईराकका मुख्य प्रश्न यह है कि विधानकी रक्षा होगी या नही।

प्रश्न यह है कि ब्रिटिश गवर्नमेण्ट इस स्थितिके लिए कहाँतक उत्तरदायी है। ईराककी स्वतन्त्रता नाममात्रको है। ईराकके साथ अंग्रेजोंकी जो सन्धि सन् १९३२ में हुई थी, उसके द्वारा अंग्रेजोने कई अधिकार अपने हाथमे रख लिये थे। युद्धकालमे उनका प्रभाव और बढ गया था। अंग्रेज नही चाहते कि ईराककी जनताके लाभके लिए राज्यकी ओरसे सुधार किये जायँ। लोगोंका विश्वास है कि वर्तमान शासकोको ब्रिटेनका समर्थन प्राप्त है। लोगोका यह भी कहना है कि उसीके इशारेपर आज ईराकमें लोकमत दवाया जा रहा है और नागरिक स्वतन्त्रताका अपहरण हो रहा है। यह अवस्था प्रायः सभी अरब देशोमे पायी जाती है। यह कोई आकस्मिक घटना नही है। ऐसा ख्याल किया जाता है कि सोवियत रूसके प्रभावको घटानेके लिए तथा अपनी फिलिस्तीन सम्वन्धी नीतिके विरोधको रोकनेके लिए ब्रिटिश हुकूमत इस सामान्य नीतिको वरत रही है।[१]

एशियाई सम्मेलन

अभी दिल्लीमे एशियाई सम्मेलनका जो प्रथम अधिवेशन समाप्त हुआ है, वह वड़े महत्त्वका है। इस सम्मेलनको आशातीत सफलता प्राप्त हुई है, यह वात सभीने मुक्त कण्ठसे स्वीकार की है। इसका आयोजन 'इण्डियन काउंसिल आव् वर्ल्ड अफेयर्स' ने किया था। इस सस्थाका उद्देश्य भारतीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय घटनाओका अध्ययन करना है। एशियाके देशोकी ऐसी आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक समस्याओपर विचार करनेके लिए यह सम्मेलन आमन्त्रित किया गया था, जो सबको सामान्य है। इस प्रकार विवादग्रस्त विषयोपर इस सम्मेलनमे विचार नही किया जा सकता था। इसके अतिरिक्त सम्मेलन वुलानेमे एक उद्देश्य यह था कि उन उपायो और साधनो का अध्ययन किया जाय, जिनके द्वारा एशियाके विविध देशोके वीच निकटका सम्वन्ध स्थापित हो सके।

सम्मेलनमे एशियाके सभी देशोसे प्रतिनिधि वुलाये गये थे। इनमे मध्य एशियाके सोवियत रिपब्लिक, जापान, कोरिया और आउटर मगोलिया भी शामिल थे। प्रायः सभी देशोके प्रतिनिधियोने सम्मेलनमे भाग लिया था। खेद है कि जापानको अपने प्रतिनिधि भेजनेकी सुविधा नही दी गयी। जापानको इस सम्मेलनसे बाहर रखनेकी चेष्टा गर्हित है। हम समझते है कि जापानको सम्मेलनमे शरीक होने देनेसे लोकतन्त्रको लाभ ही होता। जिस जापानके शासकोकी महत्त्वाकाक्षा एशियाका अधिनायक वननेकी थी, उस देशके प्रतिनिधि एशियाई सम्मेलनमे दूसरोसे कोई ऊँचा स्थान नही पा सकते थे।

१. 'जनवाणी' मार्च, सन् १९४७ ई०

उनको पहली वार वरावरीके दर्जेपर दूसरे प्रतिनिधियोसे वातचीत करना पड़ता और उनको यह अनुभव हो जाता कि नवीन एशियामे साम्राज्यवाद और अधिनायकत्वको स्थान नही है ।

एशियाके विविध देशोंके प्रतिनिधियोके अतिरिक्त आस्ट्रेलियासे तथा इंगलैण्डसे 'इन्स्टीट्यूट आव् इण्टरनेशनल अफेयर्स' ('Institute of International Affairs') की ओरसे तथा न्यूयार्कके 'इन्स्टीट्यूट आव् पैसफिक रिलेशन्स' ('Institute of Pacific Relations') की ओरसे दर्शक आये थे ।

पहले दिन सम्मेलनका खुला इजलास वड़े समारोहके साथ हुआ । श्रीमती सरोजिनी नायडूने सभानेत्रीका आसन ग्रहण किया तथा पं० जवाहरलाल नेहरूने सम्मेलनका उद्घाटन किया । प्रत्येक देशके प्रतिनिधमण्डलके नेताने अपने-अपने देशकी ओरसे सन्देश पढा, जिसमे सम्मेलनका स्वागत किया गया था । खुले इजलासके समाप्त होनेपर निम्नलिखित प्रश्नोपर विचार करनेके लिए विविध कमेटियोका संगठन किया गया—

१. एशियाके राष्ट्रीय आन्दोलन ।

२. जातिगत (racial) समस्याएँ, विशेषरूपसे जातीय संघर्षका प्रश्न ।

३. प्रवासकी समस्या और प्रवासियोके साथ व्यवहार और उनकी स्थितिका प्रश्न ।

४. औपनिवेशिक अर्थनीतिसे राष्ट्रीय अर्थनीतिमे सक्रमण ।

५. एशियाके देशोका औद्योगिक विकास और कृपिका पुर्ननिर्माण ।

६. एशियाके मजदूरोकी समस्या और सामाजिक सेवाओकी व्यवस्था ।

७. एशियाकी सास्कृतिक समस्याएँ विशेष रूपसे शिक्षा, कला, स्थापत्य, वैज्ञानिक अनुसन्धान और साहित्यकी समस्या ।

८. स्त्रियोका समाजमे स्थान और एशियाके स्त्री-आन्दोलन ।

इन विषयोपर विविध उपसमितियोमे विचार किया गया और निवन्ध भी पढ़े गये ।

एशियाके विविध देशोके स्वातन्त्र्य-आन्दोलनके इतिहासपर प्रकाश डाला गया । यह स्पष्ट है कि इस विपयमे कुछ अधिक नही किया जा सकता था । एक तो सम्मेलनका स्वरूप राजनीतिक नही था और उसने राजनीतिक प्रश्नोको छोड़ देनेका निश्चय किया था । दूसरे आजकी परिस्थितिमे सहानुभूति प्रदर्शित करनेके अतिरिक्त कुछ विशेप किया नहीं जा सकता । एशियावासियोमे आज जो अपूर्ण जागृति देख पड रही है उसके कारण तथा मुख्यत इस कारण कि यूरोपके साम्राज्यवादने ही सकल एशियाको अभिमत और त्रस्त किया था एशियाके देशोमे परस्पर सहानुभूति पायी जाती है । सम्मेलनने परस्पर सांस्कृतिक और आर्थिक सम्वन्धको सुदृढ करनेका निश्चय कर उस सहयोग और वास्तविक सहानुभूतिकी नीव डाली है, जिसके आधारपर आगे चलकर राजनीतिक सम्वन्ध भी कायम होगे ।

जातिगत संघर्ष (racial conflict) का प्रश्न भी हमारे लिए कम महत्त्वका नही है । फिलिस्तीन तथा पूर्वी एशियाके देशोंमे इस प्रश्नका निपटारा शीघ्र हो जाना चाहिये ।

फिलिस्तीनके अरब यहूदियोके प्रवासको कुदृष्टिसे देखते है, क्योंकि उनका ख्याल है कि फिलिस्तीनमे यहूदी राज्य कायम करनेका यह एक सगठित प्रयत्न है । तुर्कोने इस प्रश्नको सन् १९२४ मे ही हल कर लिया था । पूर्वी एशियाके देशोमें हिन्दुस्तान और चीनके लोग बडे पैमानेपर बस गये है, प्राचीन कालमे इन देशोका सास्कृतिक सम्बन्ध था, किन्तु पिछले १५० वर्षोमे जो प्रवास हुआ है, वह प्रधानत: आर्थिक कारणोसे अपढ मजदूरोका हुआ है । यूरोपीय सत्ताने अधीन देशोके आर्थिक साधनोका अपने लाभके लिए उपयोग करनेकी इच्छासे इस प्रस्तावका सदा स्वागत किया है और उसे प्रोत्साहन दिया है । किन्तु आज जब ये देश स्वतन्त्र हो रहे है, ये प्रवासी वहाँके निवासियोद्वारा अच्छी दृष्टिसे नही देखे जाते । यह समझा जाता है कि ये वहाँके अधिवासियोकी आर्थिक उन्नतिमे बाधक है ।

इस प्रकार जातिगत सघर्ष और विरोध उत्पन्न होता है और इसके मूलमें आर्थिक कारण है । पुन· इन प्रवासियोकी आँखे सदा अपने देशकी ओर लगी रहती है और वे उससे अपने अधिकारोकी रक्षा चाहते है । उचित तो यह है कि वे जिस देशमे आकर बस गये है, उसे ही अपना देश समझे और वहाँकी गवर्नमेण्टसे ही न्यायकी माँग करें । प्रवासियोकी मनोवृत्ति भी अधिकारियोंके विरोधको बढ़ाती है ।

आज हम देखते है कि यह जातिगत समस्या बर्मा, लका, मलय, श्याम और हिन्द-चीनमे उग्र रूपमे पायी जाती है । इन देशोके अधिवासी हिन्दुस्तानी और चीनियोको बराबरीके अधिकार नही देना चाहते और उनपर कई प्रकारके नियन्त्रण लगाते है ।

वैज्ञानिक दृष्टिसे जाति-विशुद्धि नामकी कोई वस्तु नही है । सदासे जातियोंका सम्मिश्रण होता आया है । यह भी धारणा मिथ्या है कि एक जाति विशिष्ट है और दूसरी निकृष्ट । जो जातिगत विरोध इस समय पाया जाता है, उसका कारण आर्थिक है । किन्तु यह भी सत्य है कि एक जातिके लोग दूसरी जातिके लोगोको अपनेसे निकृष्ट मानते है । जातियोके पारस्परिक सम्बन्धका इतिहास जाननेसे तथा निकट सम्पर्कमे आनेसे यह अज्ञान दूर हो जायगा । हमको यह भी स्वीकार करना चाहिये कि किसी देशके निवासियों को प्रवास कर दूसरे देशका आर्थिक शोषण करनेका अधिकार नही है । सम्मेलनका सुझाव है कि सब नागरिकोको कानूनकी दृष्टिमे समान अधिकार मिलने चाहिये, उनको धार्मिक स्वतन्त्रता प्राप्त होनी चाहिये, समाजमे किसी जातीय समूहके साथ भेद-भाव नही होना चाहिये तथा उन सब विदेशियोके साथ समानताका व्यवहार होना चाहिये जो देशमे आकर बस गये है । एक प्रस्ताव यह भी किया गया था कि इन सुझावोकी सिफारिश इन देशोकी गवर्नमेण्टको करनी चाहिये और उनसे अनुरोध करना चाहिये कि वे उन्हे कार्यान्वित करे किन्तु सम्मेलनका निर्णय किसी विशेष प्रस्तावके स्वीकार करनेके विरुद्ध था । प्रवासके सम्बन्धमे उपसमितिमे मतभेद था । यद्यपि यह सबको स्वीकार था कि प्रत्येक देशको प्रवासको सीमित करनेका अधिकार है, तथापि सबका समान रूपसे यह मत था कि प्रवास को बिलकुल बन्द कर देनेसे आपसका विद्वेष बढेगा । यह भी साधारणत. सबको स्वीकृत था कि एक समयमे कोई व्यक्ति एक ही देशका नागरिक हो सकता है और प्रवासी नागरिक बन जानेपर अपनी मातृभूमिसे रक्षाकी याचना नही कर सकता है ।

एक दूसरे महत्त्वका प्रश्न जिसपर उप समितिमे विचार किया गया अर्थनीतिसे सम्बन्ध रखता है। एशियाके विविध देशोमे व्यापारका सम्बन्ध कैसे स्थापित किया जाय ? क्या एशिया आर्थिक दृष्टिसे इकाई माना जा सकता है ? औपनिवेशिक अर्थनीतिसे राष्ट्रीय नीतिमे सक्रमण किस प्रकार हो ? देशके आर्थिक विकासमे विदेशी पूंजीका क्या स्थान होना चाहिये ? इत्यादि प्रश्नोपर उपसमितिने विचार किया। उपसमितिकी रायमे कुछ विशेष शर्तोके साथ ही विदेशी पूंजीका उपयोग हो सकता है। मुनाफेको सीमित करना तथा गुजारे लायक उचित मजदूरी दिलाना आवश्यक है। उपसमिति रिपोर्टका यह भी कहना है कि विदेशियोके राजनीतिक प्रभावसे सर्वथा स्वतन्त्र होनेपर ही संक्रमण उचित रूपसे हो सकता है। राष्ट्रीय अर्थनीतिकी प्रतिष्ठाके लिए कृषिकी ढंगसे उन्नति करना, गृह-उद्योगोको वैज्ञानिक ढगसे संगठित करना, सहयोग-विकास करना, विदेशोसे व्यापार स्थापित करना तथा माल ले जानेके लिए जहाजोका प्रवन्ध करना, गुजारे लायक उचित मजदूरी निश्चित करना, उद्योग-व्यवसायकी उन्नति करना इत्यादि कार्य आवश्यक है। इस कार्यको सम्पन्न करनेके लिए यह भी आवश्यक समझा गया है कि एशियाके विविध देश आर्थिक नीतिका विकास मिल-जुलकर करे और एक आवाजसे अन्तर्राष्ट्रीय सस्थाओके सामने उसका समर्थन करे।

यह स्वीकार किया गया है कि एशियामे खेती वहुत पिछडी हुई है। कई देशोमें युद्धकालमे जो वरवादी हुई है, उसके कारण नयी समस्याएँ उठ खडी हुई है। उपसमितिकी रायमे खेतके पैदावारको वढाना अति आवश्यक है और इसके लिए नवीन उपायो और साधनोसे काम लेना जरूरी है। अच्छा वीज, अच्छी खाद और अच्छे औजारका उपयोग अत्यन्त आवश्यक है। वह भूमि जो ऊसर-वजर पडी है या किसी कारण खेतीके काममे नही आ रही है, उसको खेतीके उपयुक्त वनाना चाहिये। कृषिकी उन्नतिमे राज्यका विशेष कर्त्तव्य है। इसके लिए गरीव किसानोकी पूंजीसे सहायता करनी होगी। भारतका व्यापार इस समय विदेशियोके हाथमे है। इस अप्राकृतिक अवस्थाको वदलना होगा। किसानोकी अवस्थामें सुधार होना भी आवश्यक है। पैदावारकी विक्रीका ऐसा प्रवन्ध होना चाहिये, जिसमे पूरा मुनाफा किसानोको ही मिले। खेत-मजदूरोको भी जमीन दिलानेकी व्यवस्था होनी चाहिये। इस सम्वन्ध मे फिलिस्तीनकी सामूहिक खेती जो यहूदियोद्वारा कम्यूनके अधीन होती है तथा मध्य एशियाके सोवियत रिपब्लिकोकी सामूहिक खेतीकी प्रशसा रिपोर्टमे की गयी है। भूमि-सम्वन्धी मौलिक सुधारोके विना खेतीकी उन्नति नही हो सकती यह वात रिपोर्टमे स्वीकार की गयी है। औद्योगिक विकासके सम्वन्धमे एशियाकी वर्तमान स्थितिका विचार किया गया। उद्योगका विकास एशियामे वहुत कम हुआ है और अवतक ये देश मुख्यतया कच्चा माल वाहर भेजते रहे है और तैयार माल वाहरसे मँगाते रहे है। इस कारण इसकी अर्थनीति अवतक औपनिवेशिक रही है। एशियाकी स्वतन्त्रताकी रक्षाकी दृष्टिसे भी इस स्थितिको वदलना है। उसी मात्रामे हम अपनी स्वतन्त्रताकी रक्षा करनेमे समर्थ होगे जिस मात्रामे हम अपना औद्योगिक विकास कर सकते है। पूंजीका प्रश्न तथा सामान विशेष महत्त्वका है। ऐसा प्रतीत होता है कि

विकासके लिए विदेशसे पूँजी लेनी पड़ेगी। किन्तु कुछ शर्तोके साथ ही विदेशी पूँजी लेनी चाहिये जिसमें अपने आर्थिक जीवनपर विदेशियोका नियन्त्रण न हो सके।

सम्मेलनके कार्यको स्थायी रूप देनेके लिए एक संगठनका निर्माण किया गया है। इसका नाम एशियाई सम्बन्ध संघ होगा और इसके उद्देश्य इस प्रकार होगे—

(क) समूचे एशिया और संसारके साथ उनके सम्बन्धके दृष्टिकोणसे एशियाई समस्याओके अध्ययन तथा ज्ञानकी अभिवृद्धिका प्रयत्न।

(ख) एशियावासियोमें आपसमे तथा एशिया और शेष संसारके बीचमे मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध तथा सहयोगकी स्थापनाके लिए कार्य।

(ग) एशियावासियोकी उन्नति एव कल्याणके लिए प्रयत्न।

इस उद्देश्यकी पूर्तिके लिए एक अस्थायी साधारण समितिकी स्थापना की गयी है। एशियाके प्रत्येक देशमे संघकी शाखाएँ होगी। सघकी शाखाओका रूप गैरसरकारी होगा और उनके उद्देश्य संघसे मिलते-जुलते होंगे। संघ और उसकी शाखाएँ एशियाई तथा अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओका अध्ययन करेगी, किन्तु उनका दल विशेपसे सम्बन्ध न होगा और न वे राजनीतिक प्रचारमे लगेगी।

सम्मेलनका अगला अधिवेशन चीनमे सन् १९४९ मे होगा। इस संगठनके प्रथम सभापति पं० जवाहरलाल नेहरू होगे।

यह कहना अत्युक्ति न होगी कि एशियाके लिए यह घटना बड़े महत्त्वकी है। प्राचीन कालमे जब यातायातकी सुविधाएँ न थी भारतवासी अपने पड़ोसी राष्ट्रोसे सांस्कृतिक तथा व्यापारिक सम्बन्ध रखते थे; एक समय था जब मध्य एशियासे लेकर दक्षिण-पूर्व एशियाके द्वीपोतक तथा चीन, जापान, कोरिया और मंगोलियामे भारतीय सस्कृतिका प्रचुर प्रसार तथा प्रभाव था। भारतीय भाषा, लिपि, कला, दर्शन और धर्मका अक्षुण्ण प्रभाव इस विशाल भूखण्डपर था। यहाँ एक समय सस्कृतका आधिपत्य था। यह हमारा उज्ज्वल काल था। ९ वी १० वी शतीमे भी जब भारतकी अवनति द्रुतिगतिसे हो रही थी हम अपना सस्कृति-सम्बन्ध चीन, तिब्बत आदि देशोसे बनाये हुए थे, किन्तु जब रेल, तारकी सुविधाएँ हमको प्राप्त है, हमारा यह पुराना सम्बन्ध छिन्न-भिन्न हो गया है। आज हम अपने पड़ोसियोके सम्बन्धमे बहुत कम जानकारी रखते है। आज यूरोपका हमारे जीवनपर प्रभुत्व पाया जाता है। उसकी पूंजीवादी, अर्थनीति ससारपर छायी हुई है। उसकी विचारधारा और उसका इतिहास हमको विशेपरूपसे प्रभावित करता है। इस अप्राकृतिक स्थितिको बदलनेकी चेष्टा दो बार पहले भी काग्रेसके नेताओद्वारा की गयी थी, पर यह सब प्रयत्न विदेशी गवर्नमेण्टने व्यर्थ कर दिये।

किन्तु अब एशियाके लोगोको दबाकर नही रखा जा सकता। यह शुभ प्रयत्न शुभ घडीमें हो रहा है। सम्मेलनका भविष्य उज्ज्वल है, क्योकि यह हमारी एक बडी आवश्यकता-की पूर्ति करता है। हम आशा करते है कि एशियाके सब देशोके सम्मिलित उद्योगसे हमारा वह पुराना सम्बन्ध फिरसे शीघ्र स्थापित होगा और एशियावासी ससारको एक नया

मार्ग दिखावेगे जिससे संसारका व्यथित हृदय शान्ति प्राप्त करेगा और राष्ट्र-राष्ट्रके बीच सौहार्द तथा भ्रातृत्वका सम्बन्ध स्थापित होगा ।[1]

हिन्द चीन और कम्युनिस्ट पार्टी

'न्यूज वीक' नामक अमेरिकन पत्रके युद्ध-सम्वाददाता श्री हेरल्ड आइजैक्स (Harold Isaacs) सन् १९४५ मे हिन्द-चीन गये थे । उनकी लिखी हुई 'नो पीस फार एशिया' नामक पुस्तक अभी प्रकाशित हुई है, इसमे उन्होने हिन्द-चीनके स्वतन्त्रता-सग्रामका रोचक वर्णन दिया है । लेखकका कहना है कि "वियत नाम' रिपब्लिक फ्रेंच साम्राज्यवादके मुकावलेमे कमजोर है, क्योकि वह विलकुल अकेली पड़ गयी है । उसके पीछे जनताकी शक्ति अवश्य है और वह स्वतन्त्र होनेका दृढ़ निश्चय रखती है तथा उसको इसका दृढ़ विश्वास है कि उसका पक्ष न्यायसंगत है । यह जनताकी वहुमूल्य सम्पित्ति है, किन्तु आजके राजनीतिक वाजारमे इससे कुछ खरीदा नही जा सकता । ......" 'वियत नाम' का काम केवल स्वतन्त्रताकी प्राप्तिसे नही चल सकता । उसको दूसरोकी सहायताकी आवश्यकता है । उसको एक ऐसे ससारका अंग वनना पड़ेगा जो उसको अपनी आवश्यकताओको पूरा करनेके लिए अपने साधनका पुन संगठन करने दे । यदि ऐसा संसार उसको नही मिलता तो कमसे कम कोई ऐसा शक्तिशाली मित्र तो हो जिसपर वह भरोसा कर सके ।

"चीनियोपर तो अव वह भरोसा कर नही सकता । रूसियोका क्या हाल है ? क्या वह हिन्द-चीनको राजनीतिक सहायता पहुँचावेगे, मुझे तो कोई ऐसा अनम-निवासी (Annamite) नही मिला जिसका ऐसा विचार हो । मै अनेक कम्युनिस्टोसे भी मिला । यह भी अपने साथी राष्ट्रवादियोकी तरह ही निराश ही थे । रूसियोके सम्वन्धमे वह अपने विचार नि.संकोच होकर प्रकट करते थे, उनमेसे जो वडे कट्टर किस्मके कम्युनिस्ट थे वह भी, जैसे ड्रान वान गिआओ (Dran Van Giau), यह स्वीकार करते थे कि रूसियोने अपने सिद्धान्तो और विचारोके मामलेमे वहुत ज्यादा ढील दे दी है और समझौते किये हैं । ड्रानका कहना था कि रूसियोसे अनमको किसी प्रकारकी सहायताकी आशा न रखनी चाहिये । एक-दूसरे अनम-निवासी कम्युनिस्टने कुछ कटुताके साथ यह कहा कि 'रूसी सवसे पहले और सर्वोपरि रूसी राष्ट्रवादी है । वह हममे तभी दिलचस्पी लेगे जव हमसे उनका कुछ काम निकले । हमारा यह दुर्भाग्य है कि तत्काल हमसे उनका कुछ काम नही निकलता ।'

"मैंने उससे पूछा कि फ्रासीसी कम्युनिस्टोका क्या हाल है । उसने एक नफरतकी साँस ली और कहा कि फ्रेंच कम्युनिस्ट पहले फ्रासीसी है और उपनिवेशोपर फ्रेंच-शासन वनाये रखनेके पक्षमे है और पीछे कम्युनिस्ट है । सिद्धान्त रूपमे वह हमारे पक्षका समर्थन

---

१. 'जनवाणी' मार्च, सन् १९४७ ई०

करते हैं, किन्तु व्यवहार मे कुछ और ही है। अनमके एक चोटीके कम्युनिस्ट नेताने थोरे (Thorez—फ्रेंच कम्युनिस्ट पार्टीका नेता) के सम्बन्धमे हिकारतसे यह कहा कि वह इस पक्षमे है कि अनम-निवासी अन्तमे अपनी स्वतन्त्रता प्राप्त करे ("finally arrive at their independence"), वह कुढ कर हँसा और उसने कहा कि क्या अच्छा रबड़दार लचीला वाक्य है। आप इसे कोई आकार दे सकते है और इसका कोई अर्थ कर सकते हैं। हम इन सज्जनोपर निर्भर नही कर सकते। इस समय फ्रासमे इनकी पार्टी सबसे अधिक प्रभावशाली है, किन्तु देखिये फ्रासीसी इस समय हिन्द-चीनमे क्या कर रहे हैं।" ..."हिन्द चीनमे मुट्ठीभर फ्रेंच कम्युनिस्ट है, सैंगो (Saigon) में केवल २० थे। मेरे अनमनिवासी कम्युनिस्ट मित्रने मुझे बताया कि इसमेसे केवल एक उनके साथ सहयोग करता था। शेष तटस्थ रहे, इन फ्रेंच कम्युनिस्टोने हिन्द-चीनकी कम्युनिस्ट पार्टीके लिए एक पत्र तैयार किया था। फ्रेंचोका नगरपर कब्जा होनेके दो दिन बादका अर्थात् २५ सितम्बर-का, यह पत्र था, मै इस पत्रको पढ पाया था, किन्तु इसकी नकल न रख सका। मैंने उससे नोट ले लिये थे। इस पत्रका आशय इस प्रकारका था :—"इस पत्रमे अनम-निवासी कम्युनिस्टोको यह सलाह दी गयी थी कि पूर्व इसके कि वह जल्दीमे कुछ करें उनको चाहिये कि यह निश्चय कर ले कि, उनका संघर्ष 'सोवियत नीतिकी आवश्यकताओको पूरा करता है या नही ? इस पत्रने साथ-साथ उनको चेतावनी दी कि अन्य देशकी स्वतन्त्रताके लिए 'समयसे पूर्व जो कार्यवाही' होगी वह कदाचित् 'सोवियत की योजनाके अनुकूल न हो।' सोवियतकी योजनामे यह हो सकता है कि वह फ्रासको अपना पक्का दोस्त बनाना चाहता है और उस अवस्थामे अनमका स्वतन्त्रताका आन्दोलन इस योजनाकी सफलतामे बाधक होगा। इसीलिए फ्रेंच कम्युनिस्टोने धैर्य रखनेकी नीतिका अनुसरण करनेको कहा था।"

पुस्तकके ये उद्धरण इस बातका ताजा प्रमाण पेश करते हैं कि सोवियत रूसकी वैदेशिक नीतिको कार्यान्वित करनेके लिए ही कम्युनिस्ट पार्टियोका उपयोग किया जाता है। यह प्रसन्नताकी बात है कि हिन्दचीनमे जो कुछ हो रहा है उसकी जिम्मेदारी फ्रांसपर भी है। वह इससे नही बरी किये जा सकते। उनका गवर्नमेण्टमे होते हुए केवल तटस्थ रहना पर्याप्त नही है। फ्रासके कम्युनिस्टोकी इसमे दोहरी चाल है। एक तो यह कि इस प्रकार वह सोवियत रूसकी वैदेशिक नीतिके विरुद्ध कोई कार्यवाही नही करते और रूसको सन्तुष्ट रखते है, दूसरे वह अपने देशके अन्य दलोके मुकाबलेमे अपनेको समान रूपसे राष्ट्रवादी सिद्ध करना चाहते है, यह लोग भी साम्राज्यवादी भावनासे सर्वथा मुक्त नही है।

फ्रेंच कम्युनिस्ट यदि हिन्द-चीनकी कोई सहायता नही कर सकते तो न करें, किन्तु हिन्द-चीनवासियोको भुलावेमे लाना और उनपर यह दबाव डालना कि सोवियत रूसके हितोकी रक्षाके लिए उनको स्वतन्त्रताके आन्दोलनको स्थगित करना चाहिये सर्वथा अनुचित है।

ऐसा मालूम पड़ता है कि जबतक एशियाके सब देश स्वतन्त्र नही हो जाते तबतक

यूरोपके देशोकी समाजवादी और कम्युनिस्ट पार्टियोके साथ हमारा सहयोग नही हो सकता। इसका कारण यह है कि यूरोपकी यह विधि पार्टियाँ या तो सोवियत रूसके आदेशपर काम करती है या स्वयं अपने-अपने साम्राज्यका सर्वथा परित्याग करनेके लिए तैयार नही हैं। एशियाके जो देश आज अपनी स्वतन्त्रताके लिए लड रहे हैं, उन देशोकी समाजवादी पार्टियोका एक सम्मेलन होना आवश्यक है। इससे एक दूसरेको प्रोत्साहन और बल मिलेगा। इस सम्मेलनमे सबके स्वार्थ और हित परस्पर-विरोधी न होंगे और न कोई एक पार्टी दूसरेको दबा सकेगी, जिनके उद्देश्य और हित समान है, जिनकी विचार-धारा एक है और जो एक दूसरेके साथ समानताका व्यवहार करनेको तैयार है, उन्हीका एक सम्मेलन होना चाहिये। हिन्द-चीनकी अवस्थाने ऐसे सम्मेलनकी आवश्यकताको और भी महत्त्व दे दिया है। हम अकेले है, हमारा कोई साथी नहीं है, यह भाव हिन्द-चीनके समाजवादी नेताओके दिलसे दूर कर देना चाहिये, एशियाई कानफरेन्सके अवसरपर इसकी कुछ चर्चा हुई थी। हम आशा करते है कि सोशलिस्ट पार्टी एशियाके समाजवादियोका सम्मेलन बुलानेकी आयोजना करेगी।[१]

अमेरिकाका नया साम्राज्यवाद

प्रेसिडेण्ट ट्रूमन (Truman) की नीति एक नये साम्राज्यका निर्माण करना है और वह इस साम्राज्यकी सीमाएँ ऐसी चाहते है जिनसे मध्यपूर्वका तेल अमेरिकाके लिए सुरक्षित रहे। वह देखते है कि ब्रिटिश साम्राज्यका अन्त हो रहा है और भविष्यमे ब्रिटेन प्रथम श्रेणीकी शक्ति नही रह जायगा। जिन जगहोको ब्रिटेन खाली कर रहा है उनको अमेरिका भरना चाहता है। अमेरिकाको भय है कि यदि वह ऐसा नही करेगा तो इन स्थानोमे सोवियत प्रभाव बढेगा। अबतक ब्रिटेन भूमध्यसागरकी एक शक्ति रहा है। अब अमेरिका उसका स्थान ले रहा है। मध्यपूर्वके तेलके चश्मोपर अमेरिकाकी नजर है। ईरानसे लेकर फिलिस्तीनके बन्दरगाहोतक तेलका विस्तृत क्षेत्र है। इसका अमेरिकाके लिए बडा महत्त्व है। इसके लिए अमेरिकाको ग्रीसकी राजनीतिमे अपना हाथ रखना पड़ता है। वह रूसको अपना प्रतिद्वन्द्वी समझता हैं। वह समस्त संसारपर अपना प्रभुत्व जमाना चाहता है। साम्राज्यशाही मनोवृत्तिका परितोष थोडेसे नही होता है। अपनी असीम शक्तिकी अमेरिकाको चेतना है। उसने अपनी पुरानी उदासीनताको तिलाञ्जलि दे दी है। जहाँतक अमेरिका और रूसकी विचारधाराका प्रश्न है दोनो एक दूसरेके विरोधी है। दोनो राज्योकी अर्थनीति और राजनीतिमे आपसका संघर्ष है। अमेरिका सदासे ही 'कम्युनिज्म' का विरोधी रहा है। किन्तु इधर यह विरोध बहुत बढ गया है। आज तो प्रेसिडेण्ट ट्रूमनके हुक्मसे अमेरिकामे सरकारी नौकरियोसे कम्युनिस्टोकी छँटनी

---

१ "जनवाणी' मई, सन् १९४७ ई०

हो रही है। सरकारी कर्मचारियोकी राज्यनिष्ठाकी जाँच हो रही है। जिस संस्थाके सम्वन्धमें अटर्नी जनरल यह सम्मति दे कि यह फासिस्ट या कम्युनिस्ट है उस संस्थाके सदस्य सरकारी मुलाजमत नही कर सकते। ऐसी सस्थाओंकी सूची प्रकाशित नहीं की जायगी और इस प्रकार इन संस्थाओंको अपनी सफाई देनेका अवसर नही मिलेगा। अमेरिकाके बाहर जहाँ कही उसको कम्युनिस्टोके प्रभावके वढनेकी आशका होती है वहाँ हस्तक्षेप करना चाहता है। ग्रीस और तुर्कीको धन और युद्ध-सामग्रीसे सहायता देनेका यही रहस्य है। चीनमे कम्युनिस्टोके भयके कारण ही कुओमितागको सहायता दी जा रही है। चीन और जापान तो एक प्रकारसे उसकी सरहद हैं। इनपर वह किसीकी वक्र दृष्टि नही वर्दाश्त कर सकता। पैसिफिकके कई द्वीप उसने प्राप्त कर लिये है और इनमे वह अपने फौजी अड्डे वना रहा है। यही क्या, भावी युद्धमे चीन और जापानतक उसके अड्डे वन जायँगे। अफ्रीकाका महाद्वीप भी उसकी नजरसे नही वच पाया है। इसमे सन्देह नही कि 'अमेरिकाकी शती' का आरम्भ हो गया है। किन्तु यह शती संसारके कल्याणके लिए नही होगी। वस्तुतः अमेरिकाके वढते हुए प्रभावसे ससारका अमंगल ही होगा। आज अमेरिका सर्वत्र प्रतिक्रियाका ही समर्थन कर रहा है। ग्रीसके राजवंश और वहाँकी नृशस और दुराचारी गवर्नमेण्टकी धन और युद्ध-सामग्रीसे सहायता करना प्रतिक्रिया का समर्थन करना नही है तो क्या है? अमेरिकाकी सहायतासे ग्रीसकी वह शक्तियाँ और संस्थाएँ जो लोकतन्त्रके पक्षमे है शासनको अपने हाथमे ले सकती है। किन्तु अमेरिकाके नायक इसके लिए तैयार नही है, क्योकि उनका कहना है कि यह आन्तरिक मामलोमे हस्तक्षेप करना होगा। ग्रीसके उत्तरी भागमे जो विद्रोह हो रहा है उसके दवानेमे अमेरिकन विशेपज्ञोंकी सहायतासे ग्रीसकी आर्थिक अवस्थामे भी सुधार होगा। किन्तु इन उपायोसे लोकतन्त्रको जो क्षति पहुँचेगी उसका अनुमान नही किया जा सकता। साथ-साथ कम्युनिस्टोका प्रभाव भी वढेगा। जव राजकी पुलिस और फौज जनतापर अत्याचार करेगी तो निरुपाय होकर जनता उन्ही कम्युनिस्टोकी शरणमे जायेगी जिनके प्रभावको कम करनेके लिए इन उपायोका अवलम्ब लिया जा रहा है। अमेरिकाकी ओरसे सवलोग सशंक हो गये है और कोई यह विश्वास नही करता कि यह सहायता निःस्वार्थ भावसे दी जी रही है। इसलिए जो कोई इस गवर्नमेण्टका साथ देगा वह जनताका विश्वास खो वैठेगा। उसे लोग 'रायलिस्ट' या फासिस्ट समझेगे। यदि ग्रीसकी सहायता करनेमे कोई राजनीतिक कारण न होता तो अमेरिका युगोस्लावियाकी भी अन्नसे सहायता करता, पर युगोस्लाविया रूसके प्रभावमे है और इसलिए वह सहायता पानेका अधिकारी नही है। पहले युद्धके वाद भी अमेरिकाने इसी आधारपर यूरोपके देशोको सहायता दी थी और आज अव 'अमेरिकाकी शती, का सूत्रपात हो गया है तव तो इस आधारपर काम करनेका और भी कारण है।

इसी प्रकार अमेरिकाने तुर्कीको सहायताका वचन दिया है। वह रूसको भूमध्य-सागरकी ओर वढनेसे रोकना चाहता है। तुर्कीका शासन भी लोकतन्त्रके आधारपर नही है। वहाँ एक प्रकारका सामन्तशाही अधिनायकत्व है, पर अमेरिकाने ब्रिटेनकी

पुरानी नीतिको अपना लिया है और जिस प्रकार ब्रिटेन तुर्कीकी रक्षा रूससे सदा करता आया है, उसी प्रकार आज अमेरिका रूसको डार्डनेल्ससे दूर रखना चाहता है ।

यह ख्याल किया जाता था कि युद्धके वाद इटलीमे 'वैटिकन' (Vatican) का प्रभाव वहुत घट जायगा । सन् १९२९ के समझौतेके वादसे मुसोलिनीको वैटिकनका समर्थन प्राप्त था । ससारके सभी कैथलिक ईसाइयोपर वह भरोसा कर सकता था । किन्तु मुसोलिनीके अन्तके वाद यह आशा की जाती थी कि प्रतिक्रियाके इस गढका भी पतन होगा । किन्तु वैटिकनके उत्कर्पको जो तात्कालिक धक्का पहुँचा था उससे वह अपनेको सँभाल सका है और इसका कारण अमेरिका है ।

पोपने अपनी नीतिमे इधर परिवर्तन किया है । शताब्दियोतक वैटिकनकी नीति यूरोपके कैथलिक देशोसे ही सम्वन्ध रखती थी । किन्तु आज पोपको यह मालूम पड़ता है कि भविष्यमे प्रोटेस्टेण्ट अमेरिका ही उसका घनिष्ठ मित्र होगा और उससे ही उसको धनकी सहायता प्राप्त होती रहेगी । इसीलिए गत फरवरी मासमे 'कार्डिनलो' के चुनावमें पोपने इटलीके उम्मीदवारोकी उपेक्षा कर उत्तरी और दक्षिणी अमेरिकाके लोगोको ही चुना है ।इसी प्रकार युगोस्लाविया, रूमानिया और जर्मनीके लिए अमेरिकाके कैथलिक ही 'वैटिकन' के राजदूत चुने गये है । यह नीति इस वातको प्रदर्शित करनेके लिए वर्ती गयी है कि वैटिकनकी नीति अमेरिकाकी नीतिसे सम्वद्ध है । इस नीतिका पुरस्कार भी वैटिकनको मिला है । अमेरिकाके राजनीतिज्ञ 'वैटिकन' का समर्थन करते है और इटली निवासी यह समझने लगे है कि यदि वैटिकनका विरोध किया जायगा तो इटलीको अमेरिकासे आर्थिक सहायता नही मिलेगी ।

इस प्रकार हम देखते है कि सर्वत्र अमेरिकाका समर्थन प्रतिगामी शक्तियोको ही प्राप्त है । फासिस्ट और रायलिस्ट इस नीतिका स्वागत कर रहे है और उनको यह आशा हो रही है कि उनके अव अच्छे दिन आनेवाले है । किन्तु उदार दल और समाजवादी दल वहुत चिन्तित है । जो लोकतन्त्रके समर्थक है वह कम्युनिस्टोकी अपेक्षा कही अधिक परेशान है । उनका ख्याल है कि इस नये साम्राज्यवादका अर्थ युद्धकी पुनरावृत्ति हे । उनका कहना है कि फ्रैकोके प्रति भी अमेरिकाका रुख वदलेगा । वह यह भी समझते है कि यूरोपके ध्वस्त प्रदेशोकी सहायता राजनीतिक शर्तोके साथ ही की जायगी । सवसे अधिक भय तो इस वातका है कि यू० एन० ओ० की संस्था निरर्थक हो जायगी । अमेरिका और रूस दोनो इस सस्थाकी तभीतक परवाह करते है जवतक उनका इससे काम निकलता है । सामुदायिक सुरक्षाकी कोई प्रणाली वन नही पाती । जो गति लीग आव् नेशन्सकी हुई वही इसकी भी होनेवाली है । अभी पेरिसमे जो सम्मेलन हुआ था वह विफल हो गया । मिस्टर मार्शलके प्रस्तावको मोशियो मोलोटोवने स्वीकार नही किया, किन्तु इगलैण्ड और फ्रासमे समझौता हो गया है और इसी प्रस्तावके अनुसार वह मिलकर कार्य करेगे । रूस को छोडकर अन्य यूरोपीय राष्ट्रोको इनकी ओरसे निमन्त्रण दिया जायगा और शीघ्र ही इनका एक सम्मेलन पेरिसमे होगा । यू० एन० ओ० दो भागोमे विभक्त हो रहा है और

प्रत्येक भाग अपने ढंगसे काम करना चाहता है। ऐसी अवस्थामें जिस उद्देश्यसे यह संगठन बनाया गया था वह विफल हो रहा है।

यद्यपि ब्रिटेनमें मजदूर पार्टीकी गवर्नमेण्ट है और वह साम्राज्यका परित्याग करता जाता है,तथापि उसका जो सम्बन्ध रूससे है और रूसका जो सम्बन्ध अमेरिकासे है उसके कारण वह भी मध्यपूर्वपर दाँत लगाये बैठा है। जब ब्रिटेन मिस्र और भारतको छोड़ रहा है और जर्मनी और जापान बहुत समयके लिए पंगु हो गये हैं तब भूमध्यसागरपर अपना नियन्त्रण कायम रखनेका प्रयत्न करना कुछ समझमें नही आता। इसका एक ही कारण हो सकता है और वह यह कि ब्रिटेन इस क्षेत्रमे रूसको घुसने देना नही चाहता। इसीलिए अंग्रेज ग्रीस नही छोड़ते और अरब लीग ऐसी प्रतिगामी संस्थाका संरक्षण करते हैं। ईराक, शाम और नज्दमें अंग्रेज अरब जमींदारोंका साथ दे रहे हैं और इब्न सऊदको वार्षिक रकम देते हैं।

बताया जाता है कि ट्रूमैनका नया सिद्धान्त अमेरिकाकी जीवनप्रणालीकी रक्षाके लिए है और इसकी आवश्यकता इसलिए है कि इस प्रणालीको आज रूससे भय है। किन्तु सत्य तो यह है कि यह सिद्धान्त घातक सिद्ध हो रहा है। यदि अमेरिकाकी जीवन-प्रणालीका आधार लोकतन्त्र और स्वतन्त्रता है तो अमेरिकाको संसारकी प्रगतिशील शक्तियोंका नेतृत्व करना चाहिये। किन्तु इसके विपरीत हम देखते हैं कि वह सर्वत्र प्रतिक्रियाका समर्थन करता है।

यदि 'कम्युनिजम' के विस्तारको रोकना ही उद्देश्य है तो इसका यह तरीका नही है। यह मानना पड़ेगा कि आज यूरोप और एशियाके आर्थिक जीवनमें क्रान्ति हो रही है। इसके साथ योग देनेसे, न कि इसका विरोध करनेसे, अमेरिकाका उद्देश्य सफल हो सकता है। किन्तु क्रान्तिसे सहयोग करनेका अर्थ होता है यूरोपमे समाजवादका समर्थन करना और पुराने प्रतिगामी और लोकतन्त्र-विरोधी शासनोका अन्त करना।

किन्तु वास्तविकता यह है कि लोकतन्त्र और स्वतन्त्रताके नामपर एक नये साम्राज्य-वादका जन्म हो रहा है। युद्धके समाप्त होनेपर सबको अमेरिकासे बड़ी आशाएँ थी। लोग समझते थे कि अमेरिकाकी सहायतासे सब जगह लोकतन्त्र शासनकी स्थापना होगी और अटलाण्टिक चार्टरके सिद्धान्तोके अनुसार काम होगा। किन्तु जब यूरोपके राष्ट्रोने अपने औपनिवेशिक साम्राज्यकी रक्षाके हेतु एशियामें अपनी सेनाएँ भेजी तो अमेरिकाने इसका विरोध नही किया। जर्मनीमे वह नाजीवादका उन्मूलन न कर सका। उसने यू० एन० आर० आर० ए० मे भाग लिया। किन्तु पीछे उसने उसका गला घोट दिया और यूरोपके भूखे-नंगोंकी सहायता इस शर्तके साथ की कि वह उन शासकोका समर्थन करेंगे जिन्हें अमेरिका पसन्द करता है।

यू० एन० ओ० का अन्त हो रहा है और संसारकी शान्ति खतरेमें है। संघर्ष अनिवार्य होता जाता है। प्रत्येक युद्धके समय यही कहा जाता है कि यह युद्ध लोकतन्त्रके लिए लड़ा जाता है, किन्तु देखनेमे यही आता है कि प्रत्येक युद्धके पश्चात् नये साम्राज्यवादका

जन्म होता है जो संसारमे शान्ति स्थापित होने नही देता। पूंजीवाद किसी-न-किसी अवस्थामे जीवित रहता चला आया है। यदि एक पूंजीवादी राष्ट्रका नाश होता है तो दूसरा बलशाली होकर उसका स्थान लेता है। आज अमेरिकाका नया साम्राज्यवाद आगे आ रहा है। अमेरिका मे भी प्रेसिडेण्टकी नीतिके विरुद्ध आवाज नही उठ रही है। यह कुछ कम परेशान करनेवाली बात नही है।[1]

---

१. 'जनवाणी' जून, सन् १९४७ ई०

आठवाँ अध्याय

स्फुट विचार

आठवाँ अध्याय

मेरे संस्मरण

मेरा जन्म सम्वत् १९४६ मे कार्तिक शुक्ल अष्टमीको सीतापुरमे हुआ था। हमलोगोका पैतृक घर फैजाबादमे है, किन्तु उस समय मेरे पिता श्री बलदेव प्रसादजी सीतापुरमे वकालत करते थे। हमारे खानदानमे सबसे पहले अंग्रेजी शिक्षा प्राप्त करनेवाले व्यक्ति मेरे दादाके छोटे भाई थे। अवधमे अंग्रेजी हुकूमत सन् १८५६ मे कायम हुई। इस कारण अवधमे अंग्रेजी शिक्षाका आरम्भ देरसे हुआ। मेरे बाबाका नाम बा० सोहनलाल था। वह पुराने कैनिङ्ग कालेजमे अध्यापकका कार्य करते थे। उन्होने मेरे पिता और मेरे ताऊको अंग्रेजीकी शिक्षा दी। पिताजीने कैनिङ्ग कालेजमे एफ० ए० कर वकालतकी परीक्षा पास की थी। आँखोकी बीमारीके कारण वह बी० ए० नही कर सके। मेरे बाबा उनको कानूनकी पुस्तके सुनाया करते थे और सुन-सुनकर ही उन्होने परीक्षाकी तैयारी की थी। वकालत पास करनेपर वह सीतापुरमे मेरे बाबाके शिष्य मुन्शी मुरलीधरजीके साथ वकालत करने लगे। दोनो सगे भाईकी तरह रहते थे। दोनोकी आमदनी और खर्च एक ही जगहसे होते थे। मुन्शीजीके कोई सन्तान न थी। वह अपने भतीजे और मेरे बडे भाईको पुत्रके समान मानते थे। मेरे जन्मके लगभग दो वर्ष बाद मेरे दादाकी मृत्यु हो जानेके कारण पिताजीको सीतापुर छोड़ना पड़ा और वह फैजाबादमे वकालत करने लगे।

जब वह सीतापुरमे थे, तभी उनकी धार्मिक प्रवृत्ति शुरू हो गयी थी। किसी संन्यासीके प्रभावमे आनेसे ऐसा हुआ था। वह बड़े दानशील और सात्विक वृत्तिके थे। वेदान्तमे उनकी बड़ी अभिरुचि थी और इस शास्त्रका उनको अच्छा ज्ञान था। सन्यासियोका सत्सग सदा किया करते थे। जिस समय उन्होने शिक्षा प्राप्त की थी, उस सनय फारसीका प्रचलन था। किन्तु अपनी संस्कृति और धर्मका ज्ञान प्राप्त करनेके लिए उन्होने सस्कृतका अभ्यास किया था। वह एक नामी वकील थे। किन्तु वकालतके अतिरिक्त भी उनकी अनेक दिलचस्पियाँ थी। बालकोके लिए उन्होने अंग्रेजी, हिन्दी और फारसीमे पाठ्य पुस्तके लिखी थी। इनके अतिरिक्त उन्होने कई संग्रह-ग्रन्थ भी प्रकाशित किये थे। अंग्रेजीकी प्राइमर तो उन्होने मेरे बड़े भाईको पढ़ानेके लिए लिखी थी। मेरा विद्यारम्भ इन्ही पुस्तकोसे हुआ था। उनको मकान बनाने और बाग लगानेका भी शौक था। हमारे घरपर एक छोटा-सा पुस्तकालय भी था। जब मैं बडा हुआ तो गर्मीकी छुट्टियोमे इनकी देख-भाल भी किया करता था। मैं ऊपर कह चुका हूँ कि मेरे पिताजी धार्मिक थे और इस नाते सनातनधर्मके उपदेशक, संन्यासी और पण्डित मेरे घरपर प्रायः आया करते थे। किन्तु पिताजी काग्रेस और सोशल कान्फरेन्सके कामोमे भी थोड़ी बहुत दिलचस्पी लेते

थे। मेरे प्रथम गुरु थे पण्डित कालीदीन अवस्थी। वह हम भाई-बहनोंको हिन्दी, गणित और भूगोल पढाया करते थे। पिताजी मुझसे विशेष रूपसे स्नेह करते थे। वह भी मुझे नित्य आध घण्टा पढाया करते थे। मै उनके साथ प्रायः कचहरी जाया करता था। मुझे याद है कि वह मुझे अपने साथ एक वार दिल्ली ले गये थे। वहाँ भारतधर्म-महामण्डलका अधिवेशन हुआ था। उस अवसरपर पण्डित दीनदयालु शर्माका भाषण सुननेको मिला था। उस समय उसके मूल्यको आँकनेकी मुझमे वुद्धि न थी। केवल इतना याद है कि शर्माजीकी उस समय वडी प्रसिद्धि थी।

मैंने घरपर तुलसीकृत रामायण और समग्र हिन्दी महाभारत पढा। इनके अतिरिक्त वैताल पच्चीसी, सिंहासन, वत्तीसी, सूरसागर आदि पुस्तकें भी पढी। उस समय चन्द्रकान्ताकी बड़ी शोहरत थी। मैंने इस उपन्यासको १६ वार पढा होगा। चन्द्रकान्ता सन्ततिको जो २४ भागमे है, एक वार पढा था। न मालूम कितने लोगोने चन्द्रकान्ता पढनेके लिए हिन्दी सीखी होगी। उस समय कदाचित् इन्ही पुस्तकोका पठन-पाठन हुआ करता था। १० वर्षकी आयुमे मेरा यज्ञोपवीत संस्कार हुआ। पिताजीके साथ नित्य मैं सन्ध्या-वन्दन और भगवद्गीताका पाठ करता था। एक महाराष्ट्र ब्राह्मण मुझको स्वसर वेदपाठ सिखाते थे और मुझको एक समय रुद्री और सम्पूर्ण गीता कण्ठस्थ थी। मैंने अमरकोश और लघुकौमुदी भी पढी थी। जव मैं १० वर्षका था अर्थात् १८९९ मे लखनऊमें काग्रेसका अधिवेशन हुआ था। पिताजी डेलीगेट थे। मैं भी उनके साथ गया था। उस समय डेलिगेटका 'वैज' होता था कपडेका फूल। मैंने भी दरजीसे वैसा ही एक फूल वनवा लिया और उसको लगाकर अपने चचाजाद भाईके साथ 'विजिटर्स गैलरी' में जा वैठा। उस जमानेमे भाषण अंग्रेजीमे होते थे और यदि हिन्दीमे होते तव भी मै कुछ ज्यादा न समझ सकता। ऐसी अवस्थामे सिवाय शोर-गुल मचानेके मैं कर ही क्या सकता था। दर्शकोने तंग आकर मुझे डॉटा और पण्डालसे भागकर मैं वाहर चला आया। उस समय मैं काग्रेसके महत्त्वको क्या समझ सकता था। किन्तु इतना मैं जान सका कि लोकमान्य तिलक, श्री रमेशचन्द्र दत्त और जस्टिस रानाडे देशके वड़े नेताओमे से है। इनका दर्शन मैंने प्रथम वार वही किया। रानाडे महाशयकी तो सन् १९०१ में मृत्यु हो गयी। दत्त महाशयका दर्शन दोवारा सन् १९०६ में कलकत्ता काग्रेसके अवसरपर हुआ।

मै सन् १९०२ मे स्कूलमे भरती हुआ। सन् १९०४ या १९०५ मे मैंने थोड़ी वंगला सीखी और मेरे अध्यापक मुझको कृत्तिवासकी रामायण सुनाया करते थे। पिताजीका मेरे जीवनपर वड़ा गहरा असर पड़ा। उनकी सदा शिक्षा थी कि नौकरोके साथ अच्छा व्यवहार किया करो, उनको गाली-गलौज न दो। मैंने इस शिक्षाका सदा पालन किया। विद्यार्थियोमे सिगरेट पीनेकी वुरी प्रथा उस समय भी थी। एक वार मुझे याद है कि अयोध्यामे कोई मेला था। मैंने शौकिया सिगरेटकी एक डिविया खरीदी। सिगरेट जलाकर जो पहला कश खीचा तो सर घूमने लगा। इलायची, पान खानेपर तवीयत सँभली। मुझे आश्चर्य हुआ कि लोग क्यो सिगरेट पीते है। मैंने उस दिन से आजतक

सिगरेट नही छुआ। हाँ, श्वासके कष्टको कम करनेके लिए कभी-कभी स्ट्रैमोनियमके सिगरेट पीने पड़े है। मेरे पिताजी सदा आदेश दिया करते थे कि कभी झूठ न बोलना चाहिये। मुझे इस सम्बन्धमे एक घटना याद आती है। मैं बहुत छोटा था। कोई सज्जन मेरे मामूंको पूछते हुए आये। मैं घरके अन्दर गया। मामूंसे कहा कि आपको कोई बाहर बुला रहा है। उन्होंने कहा कि जाकर कह दो कि घरमे नही है। मैने उनसे यह सन्देशा ज्यो का-त्यो कह दिया। मेरे मामूं बहुत नाराज हुए। मैं अपनी सिधाईमें यह भी न समझ सका कि मैने कोई अनुचित काम किया है। इससे कोई यह नतीजा न निकाले कि मैं बड़ा सत्यवादी हूँ। किन्तु इतना सच है कि मैं झूठ कम बोलता हूँ। ऐसा जब कभी होता है तो लज्जित होता हूँ और बहुत देरतक सन्ताप बना रहता है। पिताजीकी शिक्षा चेतावनीका काम करती है। मैं ऊपर कह चुका हूँ कि मेरे यहाँ अक्सर साधु-संन्यासी और उपदेशक आया करते थे। मेरे पिताके एक स्नेही थे। उनका नाम था पं० माधवप्रसाद मिश्र। वह महीनो हमारे घरपर रहा करते थे। वह बँगला भाषा अच्छी तरह जानते थे। उन्होने 'देशेर कथा' का हिन्दीमे अनुवाद किया था। यह पुस्तक जब्त कर ली गयी थी। वह हिन्दीके बड़े अच्छे लेखक थे। वह राष्ट्रीय विचारके थे। मैं इनके निकट सम्पर्कमे आया। मेरा घरका नाम 'अविनाशी लाल' था। पुराने परिचित आज भी इसी नामसे पुकारते है। मिश्रजीपर बँगला भाषाका अच्छा प्रभाव पडा था। उन्होने हम सब भाइयोके नाम बदल दिये। उन्होने ही मेरा नाम 'नरेन्द्रदेव' रखा। सनातन धर्मपर प्राय. व्याख्यान मेरे घरपर हुआ करते थे। सन् १९०६ मे जब मै एण्ट्रेंसमे पढ़ता था, स्वामी रामतीर्थका फैजाबाद आना हुआ और वह हमारे अतिथि हुए। उस समय वह केवल दूधपर रहते थे। शहरमे उनका व्याख्यान ब्रह्मचर्यपर हुआ था और दूसरा व्याख्यान वेदान्तपर मेरे घरपर हुआ था। उनके चेहरेपर बड़ा तेज था। उनके व्यक्तित्वका मुझपर बड़ा प्रभाव पडा और बादको मैने उनके ग्रन्थोका अध्ययन किया। वह हिमालयकी यात्रा करने जा रहे थे। मिश्रजीने उनसे कहा कि सन्यासीको किसी सामग्रीकी क्या आवश्यकता। इतना कहना था कि वह अपना सारा सामान छोडकर चले गये और पहाडसे उनकी चिट्ठी आयी कि "राम खुश है।"

हमारे स्कूलमे एक बड़े योग्य शिक्षक थे। उनका नाम था—श्रीदत्तात्रेय भीकाजी रानाडे। उनका मुझपर बडा प्रभाव पडा। उनके पढ़ानेका ढंग निराला था। उस समय मैं ८ वी कक्षामे था। किन्तु अंग्रेजी व्याकरणमे हमारे दर्जेके विद्यार्थी १० वी कक्षाके विद्यार्थियोके कान काटते थे। मैं अपनी कक्षामे सर्वप्रथम हुआ करता था। मेरे गुरुजन भी मुझसे प्रसन्न रहा करते थे। किन्तु सस्कृतके पण्डित महाशय अकारण मुझसे और मेरे सहपाठियोसे नाराज हो गये और उन्होने वार्षिक परीक्षामे हमलोगोको फेल करनेका इरादा कर लिया। हमलोग बड़े परेशान हुए। उस समय मेरी कक्षाके अध्यापक मास्टर राधेरमण लाल स्कूल लाइब्रेरीके लाइब्रेरियन थे। इनका भी हमलोगोपर बहुत अच्छा प्रभाव पड़ा था। अपने जीवनमे एक बार यह विरक्त हो गये थे। इनके घरपर हमलोग प्राय: जाया करते थे। यह अपने विद्यार्थियोको बहुत मानते थे। लाइब्रेरीकी कुंजी मेरे

सुपुर्द थी और मै ही पुस्तके निकालकर दिया करता था। मुझे याद आया कि पण्डितजी दो वर्षके कैलेण्डर अपने नाम ले गये है। ख्याल आया कही इन्ही वर्षोके एण्ट्रेन्सके प्रश्नपत्रसे प्रश्न न पूछ बैठें। मैने अपने सहपाठियोके साथ बैठकर उन प्रश्नपत्रोको हल किया। देखा गया कि उन्ही प्रश्नपत्रोसे सब प्रश्न पूछे गये हैं। परीक्षा-भवनमे पण्डितजीने मुझसे पूछा कि कहो कैसा कर रहे हो? मैंने उत्तेजित होकर कहा कि जीवनमे ऐसा अच्छा परचा कभी नही किया। उन्होने कोर्सके बाहरके भी प्रश्न पूछे थे। मुझे उन्हे विवश होकर ५० मे ४६ अंक देने पड़े और कोई भी विद्यार्थी फेल न हुआ। यदि मैं लाइब्रेरियन महाशयका सहायक न होता तो अवश्य फेल हो गया होता।

सन १९०५ में पिताजीके साथ मैं बनारस काग्रेसमे गया। पिताजीके निकट सम्पर्कमे आनेसे मुझे भारतीय सस्कृतिसे प्रेम हो गया था। यह मौखिक प्रेम था। उसका ज्ञान तो कुछ था नही, किन्तु इसी कारण आगे चलकर मैने एम० ए० मे संस्कृत ली। १९०४ मे पूज्य मालवीयजी फैजाबाद आये थे। भारतधर्म-महामण्डलसे सम्बन्ध होनेके नाते वह मेरे पिताजीसे मिलने घरपर आये। गीताके एक-आध अध्याय सुने। मेरे शुद्ध उच्चारणसे बहुत प्रसन्न हुए और कहा कि एण्ट्रेन्स पासकर प्रयाग आना और मेरे हिन्दू बोर्डिङ्ग हाउसमे रहना। पूज्य मालवीयजीके दर्शन प्रथम बार हुए थे। उनका सौम्य चेहरा और मधुर भाषण अपना प्रभाव डाले बिना रहता नही था। यद्यपि मैने सेण्ट्रल हिन्दू कालेजमे नाम लिखानेका विचार किया था, किन्तु साथियोके कारण उस विचारको छोड़ना पड़ा। एण्ट्रेन्स पास कर मै इलाहाबाद पढने गया और हिन्दू बोर्डिग हाउसमे रहने लगा। मेरे ३-४ सहपाठी थे। हमको एक बड़े कमरेमे रखा गया। छात्रावासमे रहनेका यह पहला अवसर था।

वङ्ग-भङ्गके कारण काग्रेसमे एक नये दलका जन्म हुआ था, जिसके नेता लोकमान्य तिलक, श्री विपिनचन्द्र पाल आदि थे। उस समय तक मेरे कोई खास राजनीतिक विचार न थे। किन्तु कांग्रेसके प्रति आदर और श्रद्धाका भाव था। मैं सन् १९०५ मे दर्शकके रूपमे कांग्रेसमे शरीक हुआ था। प्रिंस आव् वेल्स भारत आनेवाले थे और उनका स्वागत करनेके लिए एक प्रस्ताव गोखलेने कांग्रेसके सम्मुख रखा था। तिलकने उसका घोर विरोध किया। अन्तमे दबावमे उसे वापिस ले लिया, किन्तु उस समय पण्डालसे बाहर चले आये। विरोधकी यह पहली ध्वनि सुनायी पड़ी। सन् १९०६ मे कलकत्तेमे कांग्रेसका अधिवेशन हुआ। प्रयाग आनेपर मेरे विचार तेजीसे बदलने लगे। हिन्दू बोर्डिङ्ग हाउस उग्र विचारोका केन्द्र था। पण्डित सुन्दरलालजी उस समय विद्यार्थियोके अगुआ थे। अपने राजनीतिक विचारोके कारण वह विश्वविद्यालयसे निकाले गये। उस समय बोर्डिङ्ग हाउसमे रात-दिन राजनीतिक चर्चा हुआ करती थी। मैं बहुत जल्द गरम दलके विचारका हो गया। हममे से कुछ लोग कलकत्तेके अधिवेशनमे शरीक हुए। रिपन कालेजमे हमलोग ठहराये गये। नरम-गरम दलका संघर्ष चल रहा था और यदि श्री दादाभाई नौरोजी सभापति न होते तो वही दो टुकड़े हो गये होते। उनके कारण यह संकट टला। इस नवीन दलके कार्यक्रमके प्रधान अङ्ग स्वदेशी-विदेशी मालका बहिष्कार

ग्रौर राष्ट्रीय शिक्षा थे। काग्रेसका लक्ष्य वदलनेकी भी वातचीत थी। दादाभाई नौरोजीने ग्रपने भापणमें 'स्वराज' शव्दका प्रयोग किया ग्रौर इस शव्दको लेकर दोनो दलोमे विवाद खड़ा हो गया। यद्यपि पुराने नेता वहिष्कारके विरुद्ध थे, उनका कहना था कि इससे विद्वेप ग्रौर घृणाका भाव फैलता है, तथापि वङ्गालके लिए उनको भी इसे स्वीकार करना पड़ा।

जापानकी विजयसे एशियामे नव-जागृतिका ग्रारम्भ हुग्रा। एशियावासियोने ग्रपने खोये हुए ग्रात्मविश्वासको फिरसे पाया ग्रौर ग्रंग्रेजोंकी ईमानदारीपर जो वालोचित विश्वास था, वह उठने लगा। इस पीढीका ग्रंग्रेजी शिक्षित-वर्ग समझता था कि ग्रग्रेज हमारे कल्याणके लिए भारत ग्राया है ग्रौर जव हमको शासनके कार्यमे दक्ष वना देगा, तव वह स्वेच्छासे राज्य सौपकर चला जायगा। विना इस विश्वासको दूर किये राजनीतिमें प्रगति ग्रा नही सकती थी। लोकमान्यने यही काम किया। इस नये दलकी स्थापनाकी घोपणा कलकत्तेमे की गयी। इसकी ग्रोरसे कलकत्तेमे दो सभाएँ हुई। एक सभा वड़ा-वाजारमे हुई थी। उसमे भी मैं मौजूद था। इस सभाकी विशेषता यह थी कि इसमें सव भाषण हिन्दीमे हुए थे। श्री विपिनचन्द्र पाल ग्रौर लोकमान्य तिलक भी हिन्दीमे वोले थे। श्री पालको हिन्दी वोलनेमे कोई विशेप कठिनाई नही प्रतीत हुई, किन्तु लोकमान्यकी हिन्दी टूटी-फूटी थी। वड़ावाजारमे उत्तर भारतके लोग ग्रधिकतर रहते है। उन्हींकी सुविधाके लिए हिन्दीमे ही भाषण कराये गये थे। वङ्गालमे इस नये दलका ग्रच्छा प्रभाव था। कलकत्तेकी काग्रेसके वाद सयुक्तप्रान्तको सर करनेके लिए दोनो दलोमे होड़ लग गयी। प्रयागमे दोनो दलोके वड़े नेता ग्राये ग्रौर उनके व्याख्यानोको सुननेका मुझको ग्रवसर मिला। सवसे पहले लोकमान्य ग्राये। उनके स्वागतके लिए हमलोग स्टेशनपर गये। उनकी सभाका ग्रायोजन थोड़ेसे विद्यार्थियोने किया था। शहरके नेताग्रोमेसे कोई उनके स्वागतके लिए नही गया। उनकी सवारीके लिए एक सज्जन घोडागाडी लाये थे। हमलोगोने घोडा खोलकर स्वयं गाडी खीचनेका ग्राग्रह किया, किन्तु उन्होने स्वीकार नही किया। लोकमान्य के शव्द थे—'Reserve that enthusiasm for a better cause.—इस उत्साहको किसी ग्रौर ग्रच्छे कामके लिए सुरक्षित रखिये।' एक वकील साहवके ग्रहातेमे उनका व्याख्यान हुग्रा था। वकील साहव इलाहावादसे वाहर गये हुए थे। उनकी पत्नीने इजाजत दे दी थी। हमलोगोने दरी विछायी। एक विद्यार्थीने 'वन्दे मातरम्' गान गाया ग्रौर ग्रग्रेजीमे भापण शुरू हुग्रा। लोकमान्य तर्क ग्रौर युक्तिसे काम लेते थे। उनके भाषणमे हास्यरसका भी पुट रहता था। किन्तु वह भावुकतासे वहुत दूर थे। उन्होने कहा कि ग्रंग्रेजी मसल है कि ईश्वर उसीकी सहायता करता है जो ग्रपनी सहायता करता है। तो क्या तुम समझते हो कि ग्रग्रेज ईश्वर से भी वड़ा है? इसके कुछ दिनो वाद श्री गोखले ग्राये ग्रौर उनके कई व्याख्यान कायस्थ पाठशालामे हुए। एक व्याख्यानमे उन्होने कहा कि ग्रावश्यकता पड़नेपर हम टैक्स देना भी वन्द कर सकते है। इसके वाद श्री विपिनचन्द्र पाल ग्राये ग्रौर उनके ४ ग्रोजस्वी

व्याख्यान हुए। इस तरह समय-समयपर किसी-न-किसी दलके नेता प्रयाग आते रहते थे। लाला लाजपतराय और हैदररजा भी आये। नरम दलके नेताओमे केवल श्री गोखलेका कुछ प्रभाव हम विद्यार्थियोपर पड़ा। हमलोगोने स्वदेशीका व्रत लिया और गरम दलके अखबार मँगाने लगे। कलकत्तेसे दैनिक 'वन्दे मातरम्' आता था, जिसे हम बड़े चावसे पढा करते थे। इसके लेख बड़े प्रभावशाली होते थे। श्री अरविन्द घोष इसमे प्राय. लिखा करते थे। उनके लेखोने मुझे विशेष रूपसे प्रभावित किया। शायद ही उनका कोई लेख होगा जो मैने न पढा हो और जिसे दूसरोको न पढाया हो। पाण्डिचेरी जानेके बाद भी उनका प्रभाव कायम रहा और मैं 'आर्य' का वर्षो ग्राहक रहा। बहुत दिनो-तक यह आशा थी कि वह साधना पूर्ण करके बङ्गाल लौटेगे और राजनीतिमे पुन: प्रवेश करेगे। सन् १९२१ मे उनसे ऐसी प्रार्थना भी की गयी थी। किन्तु उन्होने अपने भाई बारीन्द्रको लिखा कि सन् १९०८के अरविन्दको बङ्गाल चाहता है। किन्तु मैं सन् १९०८ का अरविन्द नही रहा। यदि मेरे ढङ्गके ९९ भी कर्मी तैयार हो जायँ तो मैं आ सकता हूँ। बहुत दिनोतक मुझे यह आशा बनी रही, किन्तु अन्तमे जब मैं निराश हो गया तो उधरसे मुँह मोड़ लिया। उनके विचारोमें ओजके साथ-साथ सच्चाई थी। प्राचीन संस्कृतिके भक्त होनेके कारण भी उनके लेख मुझे विशेष रूपसे पसन्द आते थे। उनका जीवन बड़ा सादा था। जिन्होने, अपनी पत्नीको लिखे उनके पत्र पढे है, वह इसको जानते है। उनके सादे जीवनने मुझको बहुत प्रभावित किया। उस समय लाला हरदयाल अपनी छात्रवृत्ति छोड़कर विलायतसे लौट आये थे। उन्होने सरकारी विद्यालयोमे दी जाने-वाली शिक्षा-प्रणालीका विरोध किया था और 'हमारी शिक्षासमस्या' पर १४ लेख पंजाबीमे लिखे थे। उनके प्रभावमे आकर पजाबके कुछ विद्यार्थियोने पढना छोड़ दिया था। उनके पढ़ानेका भार उन्होने स्वय लिया था। ऐसे विद्यार्थियोकी सख्या बहुत थोड़ी थी। हरदयालजी बड़े प्रतिभाशाली थे और उनका विचार था कि कोई बडा काम बिना कठोर साधनाके नही होता। Edwin Arnold की 'Light of Asia' को पढकर वह बिल्कुल बदल गये थे। विलायतमे श्री श्यामजी कृष्ण वर्माका उनपर प्रभाव पड़ा था। उन्होने विद्यार्थियोके लिए दो पाठ्यक्रम तैयार किये थे। इन सूचियोकी पुस्तकोको पढ़ना मैंने आरम्भ किया। उग्र विचारके विद्यार्थी उस समय रूस-जापान युद्ध, गैरीबाल्डी और मैजिनीपर पुस्तके और रूसके आतंकवादियोके उपन्यास पढा करते थे। सन् १९०७ मे प्रयागमे रामानन्द बाबूका "Modern Review" भी निकलने लगा। इसका बड़ा आदर था। उस समय हमलोग प्रत्येक बगाली नवयुवकको क्रान्तिकारी समझते थे। बँगला साहित्यमें इस कारण और भी रुचि उत्पन्न हो गयी। मैंने रमेशचन्द्र दत्त और बंकिमके उपन्यास पढे और बँगला-साहित्य थोड़ा-बहुत समझने लगा। स्वदेशीके व्रतमे हम पूरे उतरे। उस समय हम कोई भी विदेशी वस्तु नही खरीदते थे। माघ-मेलाके अवसरपर हम स्वदेशीपर व्याख्यान भी दिया करते थे। उस समय म्योर कालेजके प्रिंसपिल जेनिंग्स साहब थे। वह कट्टर एंग्लो-इण्डियन थे। हमारे छात्रावासमे एक विद्यार्थीके कमरेमे खुदीराम बोसकी तसवीर थी। किसीने प्रिंसिपलको इसकी सूचना

दे दी। एक दिन शामको वह आये और सीधे मेरे मित्रके कमरे मे गये। मेरे मित्र कालेजसे निकाल दिये गये। किन्तु श्रीमती एनी वेसेण्टने उनको हिन्दू कालेजमें भरती कर लिया।

धीरे-धीरे हममेसे कुछका क्रान्तिकारियोसे सम्बन्ध होने लगा। उस समय कुछ क्रान्तिकारियोका विचार था कि I C. S. मे शामिल होना चाहिये, ताकि क्रान्तिके समय हम जिलेका शासन सँभाल सके। इस विचारसे मेरे ४ साथी इगलैण्ड गये। मैं भी सन् १९११ मे जाना चाहता था, किन्तु माताजीकी आज्ञा न मिलनेके कारण न जा-सका। इधर सन् १९०७ मे सूरतमे फूट पड चुकी थी और काग्रेससे गरम दलके लोग निकल आये थे। कन्वेशन वुलाकर काग्रेसका विधान वदला गया। इसे गरम दलके लोग कन्वेशन काग्रेस कहते थे। गवर्नमेण्टने इस फूटसे लाभ उठाकर गरम दलको छिन्न-भिन्न कर दिया। कई नेता जेलमे डाल दिये गये। कुछ समयको प्रतिकूल देख भारतसे वाहर चले गये और लन्दन, पेरिस, जिनेवा और वर्लिनमे क्रान्तिके केन्द्र वनाने लगे। वहाँसे ही साहित्य प्रकाशित होता था। मेरे जो साथी विलायत पढने गये थे, वह इस साहित्यको मेरे पास भेजा करते थे। श्री सावरकर की War of Indian Independence' की एक प्रति भी मेरे पास आयी थी और मुझे वरावर हरदयालका 'वन्दे मातरम्', वर्लिनका 'तलवार' और पेरिसका 'Indian Sociologist' मिला करता था। मेरे दोस्तोमे से एक सन् १९१४ की लडाईमे जेलमे वन्द कर दिये गये थे तथा अन्य दोस्त केवल वैरिस्टर होकर लौट आये। मैंने सन् १९०८ के वादसे काग्रेसके अधिवेशनोमे जाना छोड़ दिया, क्योकि हम-गरम दलके साथ थे। यहाँतक कि जव काग्रेसका अधिवेशन प्रयागमे हुआ, तव भी हम उसमे नही गये। सन् १९१६ मे जव काग्रेसमे दोनो दलोमे मेल हुआ तव हम फिर काग्रेसमे आ गये।

वी० ए० पास करनेके वाद मेरे सामने यह प्रश्न आया कि मै क्या करूँ। मै कानून पढ़ना नही चाहता था। मै प्राचीन इतिहासमे गवेषणा करना चाहता था। म्योर कालेजमे भी अच्छे-अच्छे अध्यापकोके सम्पर्कमे आया। डाक्टर गंगानाथ झाकी मुझपर वड़ी कृपा थी। वी० ए० मे प्रोफेसर व्राउनसे इतिहास पढा। भारतके मध्ययुगका इतिहास वह वहुत अच्छा जानते थे। पढाते भी अच्छा थे। उन्हीके कारण मैने इतिहासका विषय लिया। वी० ए० पास कर मै पुरातत्व पढने काशी चला गया। वहाँ डाक्टर वेनिस और नारमन ऐसे सुयोग्य अध्यापक मिले। क्वीस कालेजमे जो अग्रेज अध्यापक आते थे, वह संस्कृत सीखनेका प्रयत्न करते थे। डाक्टर वेनिस-ऐसा पढानेवाला कम होगा। नारमन साहवके प्रति भी मेरी वडी श्रद्धा थी। जव मै क्वीस कालेजमे था, तव वहाँ श्री शचीन्द्रनाथ सान्यालसे परिचय हुआ। विदेशसे आनेवाला साहित्य वह मुझसे ले जाया करते थे। उनके द्वारा मुझे क्रान्तिकारियोके समाचार मिलते रहते थे। मेरी इन लोगोके साथ वडी सहानुभूति थी। किन्तु मै डकैती आदिके सदा विरुद्ध था; मै किसी भी क्रान्तिकारी दलका सदस्य न था। किन्तु उनके कई नेताओसे परिचय था। वे मुझ पर विश्वास करते थे और समय-समयपर मेरी सहायता भी लेते रहते थे। सन् १९१३ मे जव मैंने एम० ए० पास किया, तव मेरे घरवालोने वकालत पढनेका आग्रह किया। मैं इस पेशेको पसन्द नही

करता था। किन्तु जब पुरातत्त्व विभागमे स्थान न मिला, तब इस विचारसे कि वकालत करते हुए मैं राजनीतिमे भाग ले सकूँगा, मैंने कानून पढा।

सन् १९१५ मे मैं एल० एल० बी० पास कर वकालत करने फैजाबाद आया। मेरे विचार प्रयागमे परिपक्व हुए और वही मुझको एक नया जीवन मिला। इस नाते मेरा प्रयागसे एक प्रकारका आध्यात्मिक सम्बन्ध है। मेरे जीवनमे सदा दो प्रवृत्तियाँ रही है;—एक पढ़ने-लिखनेकी ओर, दूसरी राजनीतिकी ओर। इन दोनोमे संघर्ष रहता है। यदि दोनोकी सुविधा एक साथ मिल जाय तो मुझे बड़ा परितोष रहता है और यह सुविधा मुझे विद्यापीठमे मिली। इसी कारण वह मेरे जीवनका सबसे अच्छा हिस्सा है जो विद्यापीठकी सेवामे व्यतीत हुआ और आज भी उसे मैं अपना कुटुम्ब समझता हूँ।

सन् १९१४ मे लोकमान्य मण्डाले जेलसे रिहा होकर आये और अपने सहयोगियोंको फिरसे एकत्र करने लगे। श्रीमती बेसेण्टका उनको सहयोग प्राप्त हुआ और होमरूल लीगकी स्थापना हुई। सन् १९१६ मे हमारे प्रान्तमे श्रीमती बेसेण्टकी लीगकी स्थापना हुई। मैंने इस सम्बन्धमे लोकमान्यसे बातें की और उनकी लीगकी एक शाखा फैजाबादमें खोलना चाहा। किन्तु उन्होने यह कहकर मना किया कि दोनोके उद्देश्य एक है, दो होनेका कारण केवल इतना है कि कुछ लोग मेरे द्वारा कायम की गयी किसी संस्थामे शरीक नही होना चाहते और कुछ लोग श्रीमती बेसेण्टद्वारा स्थापित किसी संस्थामे नहीं रहना चाहते। मैंने लीगकी शाखा फैजाबादमे खोली और उसका मन्त्री चुना गया। इसकी ओरसे प्रचारका कार्य होता था और समय-समयपर सभाओका आयोजन होता था। मेरा सबसे पहला भाषण अलीबन्धुओकी नजरबन्दीका विरोध करनेके लिए आमन्त्रित सभामे हुआ था। मैं बोलते हुए बहुत डरता था। किन्तु किसी प्रकार बोल गया और कुछ सज्जनोने मेरे भाषणकी प्रशसा की। इससे मेरा उत्साह बढा और फिर धीरे-धीरे संकोच दूर हो गया। मैं जब सोचता हूँ कि यदि मेरा पहला भाषण बिगड गया होता तो शायद मैं भाषण देने का फिर साहस न करता।

मैं लीगके साथ-साथ कांग्रेसमे भी था और बहुत जल्दी उसकी सब कमेटियोमे बिना प्रयत्नके पहुँच गया। महात्माजीके राजनीतिक क्षेत्रमें आनेसे धीरे-धीरे कांग्रेसका रूप बदलने लगा। आरम्भमे वह कोई ऐसा हिस्सा नही लेते थे। किन्तु सन् १९१९ से वह प्रमुख भाग लेने लगे। खिलाफतके प्रश्नको लेकर जब महात्माजीने असहयोग आन्दोलन चलाना चाहा तो असहयोगके कार्यक्रमके सम्बन्धमे लोकमान्यसे उनका मतभेद था। जून १९२० मे काशीमे ए० आई० सी० सी० की बैठकके समय मैंने इस सम्बन्धमे लोकमान्यसे बाते की। उन्होने कहा कि मैंने अपने जीवनमे कभी गवर्नमेण्टके साथ सहयोग नही किया ; प्रश्न असहयोगके कार्यक्रमका है। जेलसे लौटनेके बाद जनतापर उनका वह पुराना विश्वास नही रह गया था और उनका ख्याल था कि प्रोग्राम ऐसा हो जिसपर जनता चल सके। वह कौंसिलोके बहिष्कारके खिलाफ थे। उनका कहना था कि यदि आधी भी जगहे खाली रहे तो यह ठीक है। किन्तु यदि वहाँ जगहे भर जायँगी तो अपनेको प्रतिनिधि कहकर सरकारपरस्त लोग देशका अहित करेगे।

उनका एक सिद्धान्त यह भी था कि काग्रेसमे अपनी बात रखो और अन्तमे जो उसका निर्णय हो उसे स्वीकार करो। मै तिलकका अनुयायी था, इसलिए मैंने काग्रेसमें कौसिल-बहिष्कारके विरुद्ध वोट दिया। किन्तु जब एक बार निर्णय हो गया तो उसे शिरोधार्य किया। वकालतके पेशेमे मेरा मन न था। नागपुरके अधिवेशनमे जब असहयोगका प्रस्ताव पास हो गया तो उसके अनुसार मैंने तुरन्त वकालत छोड दी। इस निश्चयमे मुझे एक क्षणकी भी देर न लगी। मैंने किसीसे परामर्श भी नही किया, क्योकि मैं काग्रेसके निर्णयसे अपनेको बँधा हुआ मानता था। मैंने अपने भविष्यका भी ख्याल नही किया। पिताजीसे एक बार पूछना चाहा, किन्तु यह सोचकर कि यदि उन्होने विरोध किया तो मै उनकी आज्ञाका उल्लङ्घन न कर सकूँगा। मैंने उनसे भी अनुमति नही माँगी। किन्तु पिताजीको जब पता चला तो उन्होने कुछ आपत्ति न की। केवल इतना कहा कि तुमको अपनी स्वतन्त्र जीविकाकी कुछ फिक्र करनी चाहिये और जबतक जीवित रहे, मुझे किसी प्रकारकी चिन्ता नही होने दी। असहयोग आन्दोलनके शुरू होनेके बाद एक बार पण्डित जवाहरलाल फैजाबाद आये और उन्होने मुझसे कहा कि बनारसमे विद्यापीठ खुलने जा रहा है। वहाँ लोग तुम्हे चाहते हैं। मैंने अपने प्रिय मित्र श्री शिवप्रसादजीको पत्र लिखा। उन्होने मुझे तुरन्त बुला लिया। शिवप्रसादजी मेरे सहपाठी थे और विचार-साम्य होनेके कारण मेरी उनकी मित्रता हो गयी। वह बडे उदार हृदयके व्यक्ति थे। दानियोमे मैने उन्हीको एक पाया जो नाम नही चाहते थे। क्रान्तिकारियोकी भी वह धनसे सहायता करते थे। विद्यापीठके काममे मेरा मन लग गया। श्रद्धेय डाक्टर भगवानदासजीनेमुझपर विश्वास कर मुझे उपाध्यक्ष बना दिया। उन्हीकी देख-रेखमें मै दो वर्षतक छात्रावासमे ही विद्यार्थियोके साथ रहता था। एक कुटुम्ब-सा था। साथ-साथ हमलोग राजनीतिक कार्य भी करते थे। कराचीमे जब अलीबन्धुओको सजा हुई थी, तब हम सब बनारसके गाँवमे प्रचारके लिए गये थे। अपना-अपना बिस्तर बगलमे दबा, नित्य पैदल घूमते थे। सन् १९२६ मे डाक्टर साहबने अध्यक्षके पदसे त्याग-पत्र दे दिया और मुझे अध्यक्ष बना दिया। बनारसमे मुझे कई नये मित्र मिले। विद्यापीठके अध्यापकोसे मेरा बडा मीठा सम्बन्ध रहा है। श्री श्रीप्रकाशजीसे मेरा विशेष स्नेह हो गया। यह अत्युक्ति न होगी कि वह स्नेहवश मेरे प्रचारक हो गये। उन्होने मुझे आचार्य कहना शुरू किया, यहाँतक कि वह मेरे नामका एक अग बन गया है। सबसे वह मेरी प्रशसा करते रहते थे। यद्यपि मेरा परिचय जवाहरलालजीसे होमरूल आन्दोलनके समयसे था, तथापि श्रीप्रकाशजी द्वारा उनसे तथा गणेशजीसे मेरी घनिष्ठता हुई। मै उनके घरमे महीनो रहा हूँ। वह मेरी सदा फिक्र उस तरह करते है, जैसे माता अपने बालककी। मेरे बारेमे उनकी राय है कि मै अपनी फिक्र नही करता हूँ। शरीरके प्रति बड़ा लापरवाह हूँ। मेरे विचार चाहे उनसे मिले या न मिले उनका स्नेह घटता नही। सियासतकी दोस्ती पायदार नही होती, किन्तु विचारोमे अन्तर होते हुए भी हमलोगोके स्नेहमे फर्क नही पडा है। पुराने मित्रोसे वियोग दुखदायी है। किन्तु यदि शिष्टता बनी रहे तो सम्बन्धमे बहुत अन्तर नहीं पड़ता। ऐसी मिसाले है, किन्तु बहुत कम।

नेताके मुझमे कोई भी गुण नही है। महत्त्वाकाक्षा भी नही है। यह बड़ी कमी है। मेरी बनावट कुछ ऐसी हुई है कि मै न नेता हो सकता हूँ और न अन्धभक्त अनुयायी। इसका यह अर्थ नही है कि मैं अनुशासनमे नही रहना चाहता। मै व्यक्तिवादी नही हूँ। नेताओकी दूरसे आराधना करता रहा हूँ। उनके पास बहुत कम जाता रहा हूँ। यह मेरा स्वाभाविक संकोच है। आत्म-प्रशंसा सुनकर कौन खुश नही होता, अच्छा पद पाकर किसको प्रसन्नता नहीं होती, किन्तु मैंने कभी इसके लिए प्रयत्न नही किया। प्रान्तीय कांग्रेस कमेटीके सभापति होनेके लिए मैने अनिच्छा प्रकट की। किन्तु अपने मान्य नेताओके अनुरोधपर खडा होना पड़ा। इसी प्रकार जब पण्डित जवाहरलाल नेहरूने मुझसे वर्किंग कमेटीमे आनेको कहा मैंने इनकार कर दिया। किन्तु उनके आग्रह करनेपर मुझे निमन्त्रण स्वीकार करना पड़ा।

मैं ऊपर कह चुका हूँ कि मैं नेता नही हूँ। इसलिए किसी नये आन्दोलन या पार्टीका आरम्भ नही कर सकता। सन् १९३४ में जब जयप्रकाशजीने समाजवादी पार्टी बनानेका प्रस्ताव रखा और मुझे सम्मेलनका सभापति बनाना चाहा तो मैंने इनकार कर दिया। इसलिए नही कि समाजवादको नही मानता था। किन्तु इसलिए कि मैं किसी बड़ी जिम्मेदारीको उठाना नही चाहता था। उनसे मेरा काफी स्नेह था और इसी कारण मुझे अन्तमे उनकी बात माननी पड़ी। सम्मेलन पटनेमे मई सन् १९३४ मे हुआ था। बिहारमे भूकम्प हो गया था। उसी सिलसिलेमे विद्यार्थियोको लेकर काम करने गया था। वहाँ पहली बार डाक्टर लोहियासे परिचय हुआ। मुझे यह कहनेमे प्रसन्नता है कि जब पार्टीका विधान बना तो केवल डाक्टर लोहिया और हम इस पक्षमे थे कि उद्देश्यके अन्तर्गत पूर्ण स्वाधीनता भी होनी चाहिये। अन्तमे हम लोगोकी विजय हुई। श्री मेहरअलीसे एक बार सन् १९२८ मे मुलाकात हुई थी। बम्बईके और मित्रोको मै उस समयतक नही जानता था। अपरिचित व्यक्तियोके साथ काम करते मुझको घबराहट होती है, किन्तु प्रसन्नताकी बात है कि सोशलिस्ट पार्टीके सभी प्रमुख कार्यकर्ता शीघ्र ही एक कुटुम्बके सदस्यकी तरह हो गये।

यो तो मैं अपने सूबेमे बराबर भाषण किया करता था, किन्तु अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटीमे मैं पहली बार पटनेमें बोला। मौलाना मुहम्मद अलीने एक बार कहा था कि बंगाली और मद्रासी कांग्रेसमे बहुत बोला करते है, बिहारके लोग जब औरोको बोलते देखते है तो खिसककर राजेन्द्रबाबूके पास जाते है और कहते है कि 'रौवाँ बोली न," और यू० पी० के लोग खुद नही बोलते और जब कोई बोलता है तो कहते हैं, "क्या बेवकूफ बोलता है!" हमारे प्रान्तके बड़े-बड़े नेताओके आगे हमलोगोको कभी बोलनेकी जरूरत नही पड़ती थी। एक समय पण्डित जवाहरलाल भी बहुत कम बोलते थे। किन्तु सन् १९३४ मे मुझे पार्टीकी ओरसे बोलना पड़ा। यदि पार्टी बनी न होती तो शायद मैं कांग्रेसमे बोलनेका साहस भी नही करता।

पण्डित जवाहरलालजीसे मेरी विचारधारा बहुत मिलती-जुलती थी। इस कारण तथा उनके ऊँचे व्यक्तित्वके कारण मेरा उनके प्रति सदा आकर्षण रहा है। उनके सम्बन्धमे

कई कोमल स्मृतियाँ है । यहाँ केवल एक वातका उल्लेख करता हूँ । हमलोग अहमदनगर-के किलेमे एक साथ थे । एकवार टहलते हुए कुछ पुरानी वातोकी चर्चा चल पड़ी । उन्होने कहा—'नरेन्द्र देव ! यदि मैं काग्रेसके आन्दोलनमे न आता और उसके लिए कई वार जेलकी यात्रा न करता तो मैं इन्सान न वनता ।' उनकी वहन कृष्णाने अपनी पुस्तकमें जवाहरलालजीका एक पत्र उद्धृत किया है जिससे उनके व्यक्तित्वपर प्रकाश पडता है । पं० मोतीलालजीकी मृत्युके पश्चात् उन्होने अपनी वहनोको लिखा कि पिताकी सम्पत्ति मेरी नही है, मै तो सवके लिए उसका ट्रस्टीमात्र हूँ । उस पत्रको पढकर मेरी आँखोमे आँसू आ गये और मैंने जवाहरलालजीकी महानताको समझा । उनको अपने साथियोका वड़ा ख्याल रहता है और वीमार साथियोकी वडी शुश्रूषा करते है ।

महात्माजीके आश्रममें चार महीने रहनेका मौका मुझे सन् १९४२ मे मिला । मैंने देखा कि वे कैसे अपने प्रत्येक क्षणका उपयोग करते है । वह रोज आश्रमके प्रत्येक रोगीकी पूछताँछ करते थे । प्रत्येक छोटे-वड़े कार्यकर्ताका ख्याल रखते थे । आश्रमवासी अपनी छोटी-छोटी समस्याओको लेकर उनके पास जाते थे और वह सवका समाधान करते थे । आश्रममे रोग-शय्यापर पडे-पडे मैं विचार करता था कि वह पुरुष जो आजके हिन्दूधर्मके किसी नियमको नही मानता, वह क्यो असख्य सनातनी हिन्दुओका आराध्य देवता वना हुआ है । पण्डित-समाज चाहे उनका भले ही विरोध करे, किन्तु अपढ़ जनता उनकी पूजा करती है । इस रहस्यको हम तभी समझ सकते है, जव हम जाने कि भारतीय जनतापर श्रमण-संस्कृतिका कही अधिक प्रभाव पड़ा है । जो व्यक्ति घर-वार छोड़कर निस्वार्थ सेवा करता है, उसके आचारकी ओर हिन्दू-जनता ध्यान नही देती । पण्डित-जन भले ही उसकी निन्दा करे, किन्तु सामान्य जनता उसका सदा सम्मान करती है । अक्टूबर सन् १९४१ मे जव मै जेलसे छूटा तव महात्माजीने मेरे स्वास्थ्यके सम्वन्धमे मुझसे पूछा और प्राकृतिक चिकित्साके लिए आश्रममे वुलाया । मै महात्माजीपर वोझ नही डालना चाहता था । इसलिए कुछ वहाना कर दिया । पर जव मै ए० आई० सी० सी० की वैठकमे शरीक होने वर्धा गया और वहाँ वीमार पड गया, तव उन्होने रहनेके लिए आग्रह किया । मेरी चिकित्सा होने लगी । महात्माजी मेरी वडी फिक्र रखते थे । एक रात मेरी तवीयत वहुत खराव हो गयी । जो चिकित्सक नियुक्त थे वह घवरा गये, यद्यपि इसके लिए कोई कारण न था । रातको १ वजे विना मुझे वताये महात्माजी जगाये गये और वह मुझे देखने आये । वह उनका मौनका दिन था । उन्होने मेरे लिए मौन तोड़ा । उसी समय मोटर भेजकर वर्धासे डाक्टर वुलाये गये । सुवहतक तवीयत सँभल गयी थी । दिल्लीमे स्टैफर्ड क्रिप्स वार्तालापके लिए आये थे । महात्माजी दिल्ली जाना नही चाहते थे, किन्तु आग्रह होनेपर गये । जानेके पहले मुझसे कहा कि वह हिन्दुस्तानके वँटवारेका सवाल किसी-न-किसी रूपमे लेंगे । इसलिए उनकी दिल्ली जानेकी इच्छा न थी । दिल्लीसे वरावर फोनसे मेरी तवीयतका हाल पूछा करते थे । वा भी उस समय वीमार थी । इस कारण वह जल्दी लौट आये । जिनके विचार उनसे नही मिलते थे, यदि वह

ईमानदार होते थे तो वह उनको अपने निकट लानेकी चेष्टा करते थे । उस समय महात्माजी सोच रहे थे कि जेलमे वह इस बार भोजन नही करेगे । उनके इस विचारको जानकर महादेव भाई वड़े चिन्तित हुए । उन्होने मुझसे कहा कि तुम भी इस सम्वन्धमे महात्माजीसे बाते करो । डाक्टर लोहिया भी सेवाग्राम उसी दिन आ गये थे । उनसे भी यही प्रार्थना की गयी । हम दोनोने बहुत देरतक बाते की । महात्माजीने हमारी बात शान्तिपूर्वक सुनी, किन्तु उस दिन अन्तिम निर्णय न कर सके । वम्बईमें जब हमलोग ९ अगस्तको गिरफ्तार हो गये तो स्पेशल ट्रेनमे अहमदनगर ले जाये गये । उसमे महात्माजी, उनकी पार्टी और वम्बईके कई प्रमुख लोग थे । नेताओने उस समय भी महात्माजीसे अन्तिम बार प्रार्थना की कि वह ऐसा काम न करे । किलेमें भी हमलोगोको सदा इसका भय लगा रहता था ।

सन् ४५ मे हमलोग छूटे । मै जवाहरलालजीके साथ अलमोडा जेलसे १४ जूनको रिहा हुआ । कुछ दिनोंके वाद मै पूनामे महात्माजीसे मिला । उन्होंने पूछा कि सत्य और अहिंसाके बारेमे अब तुम्हारे क्या विचार है ? मैंने उत्तर दिया कि मैं सत्यकी तो सदासे आराधना किया करता हूँ, किन्तु इसमे मुझको सन्देह है कि विना कुछ हिंसाके राज्यकी शक्ति हम अंग्रेजोसे छीन सकेगे । महात्माजीके सम्बन्धमे अनेक संस्मरण है, किन्तु समयाभावसे हम इससे अधिक कुछ नही कहते ।

इधर कई वर्षसे काग्रेसमे यह चर्चा चल रही थी कि काग्रेसमें कोई पार्टी नही रहनी चाहिये । महात्माजी इसके विरुद्ध थे । देशके स्वतन्त्र होनेके वाद भी मेरी यह राय थी कि अभी कांग्रेससे अलग होनेका समय नही है, क्योकि देश सकटसे गुजर रहा है । सोशलिस्ट पार्टीमें इस सम्वन्धमे मतभेद था । किन्तु मेरे मित्रोने मेरी सलाह मानकर निर्णयको टाल दिया । मैने यह भी साफ कर दिया था कि यदि कांग्रेसने कोई नियम ऐसा बना दिया जिससे हमलोगोका काग्रेसमे रहना असम्भव हो गया तो मै सवसे पहले काग्रेस छोड दूंगा । कोई भी व्यक्ति जिसको आत्मसम्मान का ख्याल है, ऐसा नियम बननेपर नही रह सकता । यदि ऐसा नियम न बनता और पार्टी काग्रेस छोडनेका निर्णय करती तो यह तो ठीक है कि मैं आदेशका पालन करता, किन्तु मै यह नही कह सकता कि मै कहाँतक उसके पक्षमे होता । काग्रेसके निर्णयके वाद मेरे सब सन्देह मिट गये और अपना निर्णय करनेमे मुझे एक क्षण भी न लगा । मेरे जीवनके कठिन अवसर जिनका मेरे भविष्यपर गहरा असर पडा है, ऐसे ही हुए है । इन मौकोंपर, घटनाएँ, ऐसी हुईं कि मुझे अपना फैसला करनेमे कुछ देर न लगी । इसे मैं अपना सौभाग्य समझता हूँ ।

मेरे जीवनके कुछ ही वर्ष रह गये है । शरीर-सम्पत्ति अच्छी नही है । किन्तु मनमे अब भी उत्साह है । सदा अन्यायसे लडते ही बीता । यह कोई छोटा काम नही है । स्वतन्त्र भारतमें इसकी और भी आवश्यकता है । अपनी जिन्दगीपर एक निगाह डालनेसे मालूम होता है कि जब मेरी आँखे मुदेगी, मुझे एक परितोष होगा कि जो काम

मैंने विद्यापीठमे किया है, वह स्थायी है। मै कहा करता हूँ कि यही मेरी पूंजी है और इसीके आधारपर मेरा राजनीतिक कारोबार चलता है। यह सर्वथा सत्य है।[1]

जनसाधारण और सरकारके आदर्श

पंजाबकी एक मार्मिक घटना

थोड़े दिन हुए कि पजाबकी व्यवस्थापिका सभामे माननीय रायजादा भगतरामजीने नजरवन्दीके सम्बन्धमें कुछ प्रश्न किये थे। एक नजर वन्दकी माता मृतप्राय थी। नियमानुसार वह राज-कर्मचारियोकी आज्ञाके बिना नियमित सीमाके वाहर नही जा सकता था, परन्तु मातृ-प्रेमसे प्रेरित होकर उसने इस नियमका तिरस्कार किया और अपनी माताकी रक्षाके हेतु औषधि खरीदनेके लिए निर्दिष्ट सीमाका उल्लंघन किया। यह कार्य यद्यपि साधारण दृष्टिसे प्रशसनीय था, तथापि अधिकारी-वर्गके विचारमे यह एक अपराध था और अपराधीका शासन केवल उचित तथा न्याय ही नही, वरच प्रजामे शान्ति रखनेके लिए आवश्यक भी था, अत. उसको कारावासका दण्ड दिया गया। यह प्रश्न स्वभावतः उठता है कि जिसको सर्वसाधारण प्रशसनीय तथा अनुकरणीय मानते हैं उसको अधिकारी-वर्ग अन्याय तथा दण्डनीय क्यो मानता है। इन दोनो दृष्टियोमे विभिन्नता क्यो पायी जाती है? इस प्रश्नकी विवेचना करना कठिन है, तथापि हम इसका उत्तर देनेकी चेष्टा करेंगे।

प्रत्येक स्टेट राज्यका एक-न-एक आदर्श होता है और जो कार्य उस आदर्शका समर्थन करता है वह स्टेटकी दृष्टिमे श्रेयस्कर समझा जाता है। परन्तु जो कार्य उस आदर्शका विरोध करता है अथवा उस आदर्शकी प्राप्तिमे कुछ सहायता नही देता वह कार्य स्टेटके मन्तव्यके अनुसार प्रशसनीय नही है और स्टेट उसकी उपेक्षा करता है। वर्तमान युगमें जिन स्टेटोका संगठन हुआ है उनका ढग वहुत-कुछ एक ही प्रकारका है। एक ही प्रकारके विचार लेकर उनका जन्म हुआ है और उनके उद्देश्य तथा कार्य-प्रणालीमे न्यूनाधिक समता पायी जाती है। अतः जो बात एक स्टेटके सम्बन्धमे लागू है वह अन्य स्टेटोके सम्बन्धमे भी कही जा सकती है।

आधुनिक स्टेटका एक आदर्श यह भी है कि किसी-न-किसी प्रकार अपने राष्ट्रकी वृद्धि करनी चाहिये और इस उद्देश्यकी सिद्धिमे यदि परकीय राष्ट्रोको पददलित करना पडे अथवा विजातियोके जन्मसिद्धतत्व छीनने हो तो कोई हानि नही है। अपने राज्यका विस्तार हो, अपना राज्य धर्मसम्पन्न हो औरअपने राज्यकी सभ्यताका प्रचार हो, चाहे इस कार्यकी सफलतामे अन्य राज्योका अनिष्ट ही सम्पादन क्यो न हो, यही वर्तमान युगके प्राय. स्टेटोका आदर्श हो रहा है।

---

१. 'जनवाणी' मई, सन् १९४७ ई०

सर्वसाधारणका आदर्श इसके विपरीत कुछ और ही है। यदि विचारपूर्वक देखा जाय तो यही सत्य प्रतीत होगा कि साधारण जन बहुधा शान्तिपूर्वक सुख भोगते हुए अपना जीवन व्यतीत करना चाहते है। उनको राज्य-विस्तारसे क्या प्रयोजन? उनको दूसरोंकी स्वतन्त्रता स्वार्थके लिए छीन लेनेसे क्या लाभ? हाँ, यदि कोई राष्ट्र उनपर आक्रमण करे तो अवश्य आत्म-रक्षाके लिए वह प्रतिकार करेगे, परन्तु अन्यथा नही। जो लोग श्रमजीवी है वह केवल यही चाहते है कि निर्विघ्न होकर अपने श्रमके फलोका उपभोग करे और एक दूसरेकी सहायता करते हुए समाजकी उन्नति करे। सर्वसाधारणमे से जो स्टेटसे सम्बद्ध होते है केवल वही जन-समुदायके आदर्शका विरोध करते है और जिन्होने स्टेटद्वारा शिक्षा प्राप्त की है वही स्टेटके उपदेशकका कार्य करते है और स्टेटके विचारोका सर्वसाधारणमे प्रचार करते है। इस आन्दोलनका प्रभाव विशेषकर हमारे सुशिक्षित भाइयोपर पडता है जो शारीरिक परिश्रम नही कर सकते है अथवा जो धन तथा सम्मानके लोभसे स्टेटकी सेवा करना स्वीकार करते है। परन्तु हमारे किसान तथा मजदूर ऐसे विचारोसे बहुत कम प्रभावित होते है। स्टेट अपने आदेशकी सफलताके लिए निरन्तर चेष्टा करता है और एक सुसगठित सस्था होनेके कारण सर्वसाधारणके लिए इसका विरोध करना दुष्कर हो जाता है। सर्वसाधारण अपनी शक्तियोको बहुधा संगठित नही करते। यही कारण है कि स्टेट अपने लक्ष्यकी ओर बढ़े चले जाते है, परन्तु सर्वसाधारण उदासीनता तथा निर्बलताके कारण अपने आदर्शकी रक्षा करनेमे असफल रहते है। कुछ कालसे सर्वसाधारणका आत्म-ज्ञान बढता जाता है और वह अपनी उदासीनताका परित्याग कर अपनी शक्तियोका सगठन करने लग गये है। कितने ही विद्वान आशा करते है कि एक दिन अवश्य आवेगा कि जब किसी स्टेटका अस्तित्व न रह जायगा और मनुष्य बिना किसी शासनके प्रेमपूर्वक एक दूसरेके साथ व्यवहार करेगे और परस्पर सहानुभूति दिखाते हुए आत्मिक तथा सामाजिक उन्नति करेंगे।

आदर्शोमे भेद होनेके कारण ही स्टेट केवल उसी प्रकारकी वीरताका आदर तथा सम्मान करता है जिससे वह अपने आदर्शकी पुष्टि समझता है। राज्य-विस्तारके लिए स्टेटद्वारा रचे हुए युद्धमे जो सिपाही पराक्रम दिखाता है स्टेट उसका आदर करता है, परन्तु जो व्यक्ति अपने प्राणोकी कुछ भी परवाह न कर किसी डूबते हुएको बचानेके लिए समुद्रमे कूद पड़ता है और उसके प्राणोकी रक्षा करता है स्टेट उसकी वीरताकी उपेक्षा करता है। सिपाही युद्धमे यदि पराक्रम न दिखलावे और प्रणपणसे युद्ध न करे तो स्टेटकी बड़ी क्षति हो और उसका उद्देश्य सफल न हो परन्तु एक साधारण व्यक्तिकी रक्षा करनेवालेसे स्टेटको अपने उद्देश्यमे कुछ भी सहायता नही मिलती। हमारे पढे-लिखे लोग भी जिनकी शिक्षा स्टेटद्वारा हुई है बहुधा स्टेटकी नाई पहले प्रकारकी वीरताका आदर तथा दूसरे प्रकारकी वीरताकी उपेक्षा करते है। हमारे अशिक्षित भाई आये दिन कितने ही वीरोचित कार्य किया करते है जो हमारे कानोतक भी नही पहुँचते और यदि पहुँचते भी है तो उनका उल्लेख समाचार-पत्रो तथा ग्रन्थोमे बहुत कम हुआ करता है। परन्तु यदि कोई सिपाही स्टेटके लिए युद्धमें वीरताके साथ लड़ता है तो उसके पराक्रमका उल्लेख स्वर्णाक्षरोमे होता है और

उसकी चर्चा घर-घर फैलायी जाती है। यही कारण है कि हमारे इतिहास जो बहुधा स्टेटसे सम्बन्ध रखनेवाले अथवा स्टेटसे प्रभावित मनुष्योद्वारा लिखे गये है अधिकतर युद्धोकी ही चर्चा करते हैं।

एक कथाका विवरण हमको महाशय क्रोपाटकिन (Kropotkin) के 'परस्पर साहाय्य' (Mutual Aid) नामक ग्रन्थमे मिलता है जिससे स्टेटोकी कार्य-प्रणालीका परिचय भलीभाँति हो जाता है। यह कथा सन् १८८४ या १८८५ ई० की है। एक मनुष्य फ्रान्स देशके किसी जेलखानेमे कैद था और यद्यपि फ्रान्सके जेलोसे भागना एक दुष्कर कार्य है, तथापि वह किसी-न-किसी प्रकार जेलसे भागा। वह दिनभर छिपा रहा और यद्यपि लोग उसकी ताकमे थे तथापि किसीकी दृष्टि उसपर नही पड़ी। दूसरे दिन प्रात काल वह एक खाईमे जा छिपा। यह खाई एक छोटेसे गाँवके समीप थी। उसका विचार कुछ कपडे चुरानेका था, जिसमे जेलकी वर्दी जो वह पहने हुए था उतार दे। उसी समय गाँवमे आग लगी। भागे हुए कैदीने एक जलते हुए मकानसे दौडकर बाहर आती हुई एक स्त्रीको देखा। स्त्री चिल्ला-चिल्लाकर लोगोसे प्रार्थना कर रही थी कि 'अरे कोई मेरे जलते हुए बच्चेकी रक्षा करो।' बच्चा जलते हुए मकानके कोठेपर था। परन्तु किसीने उसकी विनीत प्रार्थनापर ध्यान न दिया। स्त्रीकी प्रार्थना कैदीके कानो तक पहुँची और वह एकाएक खाईसे निकला और आगको चीरता हुआ उस मकानतक पहुँचा। बच्चेको आगसे सुरक्षित निकाल लाया और उसको उसकी माताको सौप दिया। इस उद्योगमे उसके कपडे जलने लगे और उसका चेहरा झुलस गया, पर उसने अपने कष्टकी कुछ भी चिन्ता न की। गाँवके चौकीदारने तुरन्त ही उसको पकड लिया और वह जेलखाने लाया गया। फ्रान्सके सब पत्रोमे यह घटना प्रकाशित हुई, परन्तु उस अभागेको छुडानेके लिए किसीने भी प्रयत्न नही किया। इसपर क्रोपाटकिन महाशय टीका करते हुए लिखते हैं कि यदि जेलके भीतर कोई कैदी वार्डर (warder) को मारना चाहता और यदि हमारा कैदी वार्डरसे उसकी रक्षा करता तो उसकी अवश्य प्रशसा होती, क्योकि वह स्टेटके शासनमे योग देनेवाला होता। परन्तु हमारे कैदीका कार्य केवल मनुष्योचित था और स्टेटके आदर्शके फलीभूत होनेमे सहायक नही था और इसीलिए यह इस बातके लिए पर्याप्त था कि वह भुला दिया जाय।

कौन ऐसा सहृदय मनुष्य है जो इस फ्रासके कैदीके साथ सहानुभूति न दिखावे और इसकी वीरताकी प्रशसा न करे। इसी प्रकार कौन ऐसा मनुष्य है जो इस भारतीय नजरबन्दके मातृप्रेमकी प्रशसा न करे और उसको वीरकी पदवी न प्रदान करे। क्रोपाटकिन-के शब्दोमे इस नजरबन्दका कार्य केवल मनुष्योचित था और इसी कारणसे गवर्नमेण्टने सहानुभूति प्रदर्शित करनेके स्थानमे उसको दण्डका पात्र समझा। परन्तु हम साधारणजन जिनकी बुद्धि—सौभाग्यसे अथवा दुर्भाग्यसे—उस उन्नत अवस्थाको नही प्राप्त हुई, इस नजरबन्दके साथ अवश्य अपनी हार्दिक सहानुभूति प्रकट करेगे और उसके वीरोचित गुणोका गान कर अपनी आत्माको उन्नत तथा पवित्र बनावेगे।[1]

---

१. 'मर्यादा' अप्रैल, सन् १९१८ ई०

पूँजीवादी समाज और प्रेस

लोकतन्त्रकी रक्षा और उन्नतिके लिए प्रेसकी स्वतन्त्रता आवश्यक है । प्रेसका मुख्य कार्य नागरिकोको राजनीतिक शिक्षा देना है जिससे वह अपने वोटका उचित उपयोग कर सके । सार्वजनकि प्रश्नोपर अपना मत निश्चित करनेके लिए प्रत्येक व्यक्तिको अधिकतर प्रेसपर ही निर्भर करना पड़ता है, क्योकि प्रेसके द्वारा ही उसको उन घटनाओका ज्ञान होता है, जिनके जाने विना कोई मत स्थिर नही किया जा सकता । किन्तु यह मानना पडेगा कि किसी एक समाचार-पत्रके लिए सव घटनाओका उल्लेख करना सम्भव नही है, क्योकि घटनाएँ अनगिनत है, इसलिए यह आवश्यक है कि पत्र-पत्रिकाएँ वहुत वडी सख्यामे प्रकाशित हो, जिसमे एक विचारशील नागरिक कई पत्र पढकर घटनाओका सग्रह करे और इस प्रकार वस्तुस्थितिकी अच्छी तरह जानकारी प्राप्त करे । आरम्भमे राजनीतिक शिक्षा देनेके लिए ही प्राय. राजनीतिक प्रश्नोका प्रकाशन हुआ करता था । प्रकाशकोमे व्यापार-बुद्धि नही थी । यदि कोई आर्थिक लाभ होता था तो यह आनुषंगिक था । विविध राजनीतिक दल अपने विचारोका प्रचार करनेके लिए पत्रोका प्रकाशन करते थे । इनके सम्पादक सार्वजनिक नेता या विचारक होते थे और सम्पादकीय लेखोमें एक विशेष राजनीतिक दृष्टिका प्रतिपादन करते थे । किन्तु ऐसे पत्रोके पढनेवाले वहुत कम होते थे । जनतापर इनका प्रत्यक्ष प्रभाव नही पडता था । एक तो अधिकाश जनता साक्षर न थी, दूसरे कम पढे-लिखे लोगोमे विचार-शक्ति नही होती । इसका परिणाम यह होता था कि स्वतन्त्र देशोमे शासक-वर्ग और परतन्त्र देशोमें शिक्षित-वर्ग ही इन पत्रोको पढ़ा करते थे ।

अपने देशमे श्री मोतीलाल घोष, लोकमान्य तिलक, श्री अरविन्द घोष, श्री सुरेन्द्रनाथ वनर्जी, श्री विपिनचन्द्र पाल, लाला लाजपतराय, श्री गणेशशंकर विद्यार्थी आदि सभी पत्रोके सम्पादक थे । जो नेता स्वयं सम्पादक न थे, उनके भी अपने पत्र थे । इन पत्रोको सदा घाटा रहा करता था । सार्वजनिक चन्देसे ही इनका काम चलता था । इनमेसे यदि किसीकी लिमिटेड कम्पनी वनी भी तो उनमे हिस्सा लेनेवाले मुनाफेकी आशासे हिस्सा नही लेते थे । वे यही समझते थे कि हम दान दे रहे है । किन्तु धीरे-धीरे देशमें उद्योग-व्यवसायकी वृद्धि होने लगी । इन विविध कारणोसे प्रेस भी धीरे-धीरे व्यापारकी दृष्टिसे चलाया जाने लगा । यह स्पष्ट है कि इस काममे पूँजीपतियोको वड़ी सुविधा है । पूँजीके वढनेसे उद्योग-व्यवसायके मालिकोकी शक्ति वढ जाती है और जव प्रजाके हाथमें राजनीतिक शक्तिके आनेका सुयोग प्राप्त होता है, तव स्वभावत· यह वर्ग उस शक्तिको अपने अधीन करने, कमसे कम नये शासकवर्गको प्रभावित करनेकी चेष्टा करने लगता है । लोकमतको प्रभावित करनेका सवसे अच्छा साधन प्रेस है । इसलिए पूँजीपतियोकी दृष्टि प्रेसपर पड़ती है और अनेक प्रकारसे वह उसपर अपना नियन्त्रण प्राप्त करना चाहते है । गत महायुद्धमे भारतीय पूँजीकी वृद्धि अति मात्रामें हुई है और युद्धके कारण ससारके समाचार जाननेकी उत्सुकता भी सर्वसाधारणमे वढ़ गयी है । इस परिस्थितिसे लाभ उठाना

पूँजीपतियोके लिए स्वाभाविक था। इसीका फल यह हुआ कि आज कई दैनिक पत्र पूँजीपतियोने खरीद लिये हैं। इनके लिए नये पत्रोकी स्थापना कठिन होती है, क्योकि जनतामे इनकी साख नही है। जनता तो राष्ट्रीय विचारोका ही स्वागत करती है। इसलिए ये पुराने पत्रोको, जिनकी प्रतिष्ठा कायम हो चुकी है, खरीद लेते हैं और ऐसे ही सम्पादकोको नियुक्त करते हैं, जो राष्ट्रीय विचारके माने जाते हैं। इनकी नीति भी राष्ट्रीय होती है, क्योकि यदि वे ऐसा न करें तो उनका पत्र लोकप्रिय न हो। पुन राष्ट्रीय नीतिको अपनानेमे इनका हर तरहसे लाभ ही है, क्योकि उसके सफल होनेसे भारतीय उद्योग-व्यवसाय ब्रिटिश पूँजीसे स्वतन्त्र होता है और उसको प्रसारके लिए अवकाश मिलता है तथा वे जनताका सद्भाव भी प्राप्त करते हैं। किन्तु वे अपने पत्रोद्वारा अपने वर्गके हितोका अनेक प्रकारसे समर्थन भी करते रहते हैं। उग्र राजनीतिसे वे सदा घबराते रहते हैं और ब्रिटिश साम्राज्यसे समझौतेके अवसरोको कभी नही खोते। नेताओका आशीर्वाद प्राप्त करनेकी इनकी सदा चेष्टा रहती है और उनपर समय-समयपर ये अपना प्रभाव भी डालते रहते हैं। आजकल अपने देशमे कुछ प्रमुख पूँजीपतियोके अनेक पत्र हैं। इनको एक पत्रसे सन्तोप नही है। एक-एकके पास तीन-तीन चार-चार पत्रोकी लडी है। विडलाजी 'हिन्दुस्तान टाइम्स', 'लीडर' और 'सर्चलाइट' के मालिक हैं, हिन्दीमे 'हिन्दुस्तान' और 'भारत' इनके पत्र हैं। डालमिया साहव धीरे-धीरे पत्रोके मालिक होते जा रहे है। वम्वईका 'टाइम्स आव इण्डिया' और दिल्लीका 'नेशनल काल' इन्होने खरीद लिया है। दक्षिणमे गोयनकाजीका 'इण्डियन एक्सप्रेस' और 'दिनमणि' (तामिल) है। कलकत्तासे भी 'इण्डियन एक्सप्रेस' का एक सस्करण निकलता है। दूसरे दर्जेके व्यवसायी भी, जो राजनीतिमे कुछ रस लेते हैं, इस ओर अग्रसर हो रहे हैं। सिद्दीकी साहवका मुसलिम लीगी पत्र, 'मौर्निंग न्यूज' कलकत्तेसे निकलता है। उनके पास यदि पत्रोकी लड़ी नही है तो वह कमसे-कम एक पत्र तो अपना अवश्य रखना चाहते हैं। आजकल विना अच्छी पूँजीके दैनिक पत्र नही चल सकते। पूँजीपतियोने दैनिक-पत्रोका स्टेण्डर्ड काफी ऊँचा कर दिया है। उसमे समाचार और लेख पर्याप्त सख्यामे रहते हैं, मैगजीन-सेक्शन भी रहता है। यदि पुराने पत्र अपने स्टैण्डर्डको ऊँचा न करे और इन विशेषताओको न अपनावे तो वे चल नही सकते। पूँजीकी कमीसे वह ऐसा प्राय. कर नही पाते हैं और इसलिए वे पूँजीपतियोके हाथमे चले जाते हैं।

यह तो आजकी अवस्था है। अभी वहुत कम पत्र पूँजीपतियोके अधीन हुए हैं। पर ज्यो-ज्यो शिक्षाका प्रसार होता जायगा, त्यो-त्यो अधिकाधिक पत्र पूँजीपतियोके हाथमे चले जायँगे और जव देशको राजनीतिक स्वतन्त्रता प्राप्त हो जायगी, तव हमारे देशमे भी 'प्रेस मैगनेट' तैयार हो जायँगे। उस समय पत्रोका रूप और उद्देश्य एकदम वदल जायगा। स्वतन्त्र होनेकी प्रेरणा तो रहेगी नही। नये आधारपर दलोकी सृष्टि होगी और नये प्रश्न सर्वसाधारणके सामने होगे। आर्थिक प्रश्नोका महत्त्व वढ जायगा। पूँजीपतियोके गुट अपने स्वार्थोकी पूर्तिके लिए लोकमतको तथा देशकी गवर्नमेण्टको प्रभावित करेंगे। शिक्षाके प्रसारके कारण पाठकोकी सख्या नित्य वढ़ती जायगी और उनकी पिपासाकी

तृप्ति करनेके लिए समाचारपत्रोकी संख्या भी बढेगी। अनिवार्य शिक्षाके फलस्वरूप जनतामे समाचार जाननेकी उत्सुकता तो बढेगी, किन्तु अपने स्वल्प ज्ञानके कारण वह उन समाचारोके महत्त्वको आँक न सकेगी। उस समय विचारकों और राजनीतिज्ञोके पत्रोके ग्राहक अपेक्षाकृत कम होगे। व्यापारियोको अच्छा मौका मिलेगा और व्यापारियोके पत्र अधिकाधिक प्रकाशित होने लगेगे, जिनका एकमात्र ध्येय जनताको अपनी ओर आकृष्ट करना होगा। जनताको राजनीतिमे केवल समाचारसे ही रुचि होती है। उनकी विशेष अभिरुचि युद्धके समाचार, पुरुष स्त्रीके सम्बन्धके किस्से, खेलकूद तथा अपराधके समाचारोमे होती है। इसलिए ऐसे पत्रोमें समाचार काफी रहते हैं। सस्ती कहानी और कविता भी लोकप्रिय होती है। अतः जनताको सुरुचिपूर्ण साहित्य देना तथा सार्वजनिक प्रश्नोपर मत निश्चित करनेमे उनकी सहायता करना इन पत्रोका लक्ष्य नही होगा। हमारे देशमें ऐसा समय शीघ्र आनेवाला है।

इगलैण्डका उदाहरण हमारे सामने है। वहाँ सन् १८८० मे पहला कानून पास हुआ था, जिसके द्वारा शिक्षा सर्वसाधारणके लिए अनिवार्य की गयी थी। इस कानूनके प्रयोगमें आनेसे कुछ वर्षोके अनन्तर समाचारपत्र पढनेवालोकी सख्यामे वृद्धि हुई और लार्ड नार्थक्लिफने इस नये वर्गकी मनोवृत्तिका अध्ययन कर उसकी अभिरुचिके अनुकूल पत्र निकाला। उन्हीके अनुसार उनका उद्देश्य शुद्ध व्यापारी था। अपने मालिकोको (वोटरो-को) शिक्षित करनेके लिए सन् १८७० का कानून पास हुआ था, किन्तु शासकवर्ग इतना ही चाहता था कि मतदाता लिखपढ सकें और कुशल मजदूर बन सके। अपना 'मालिक' बनाना तो उनके विचारोसे बहुत दूर था। वह कहते थे कि मतदाता हमारे मालिक हैं, जिस प्रकार हम किसानको अन्नदाता कहते है।

नार्थक्लिफके विचारके पत्र-मालिक अपने बचावमें कहते हैं कि सर्वसाधारण जो चाहते हैं वही हम उनको देते है। हम सर्वसाधारणके लिए राजनीतिक शिक्षाकी व्यवस्था करनेके लिए नही है। इन पत्र -मालिकोका गठबन्धन विज्ञापन देनेवाली फर्मोसे हुआ और आपसके सहयोगसे दोनो फलने-फूलने लगे।

इस परिवर्तनसे पत्र-जगत्मे बडी हलचल मची। 'टाइम्स' और 'मैन्चेस्टर गार्जियन' अपना स्वरूप बदलनेके लिए विवश हुए, किन्तु उन्होने अपने मूल ध्येयका परित्याग नही किया। अनेक पत्र बन्द हो गये या नये पत्र व्यापारियोद्वारा खरीद लिये गये। पुराने स्वतन्त्र विचारके सम्पादक धीरे-धीरे लुप्त होने लगे, पत्रोपर व्यवस्थापकोका अधिकार हो गया। आज सम्पादककी अपेक्षा व्यवस्थापकका स्थान ऊँचा है, उसीका अधिक मान और उसीका अधिक पुरस्कार है। कुछ पत्रोको जीवित रहनेके लिए अपने ढगको बदलना पड़ा। उनको आदर्श और व्यापारके बीच समझौता करना पडा। आज उन्ही पत्रोकी अधिक बिक्री है जिनमे अपराध, स्त्री-पुरुषका सम्बन्ध और खेलके समाचार अधिक रहते है। यद्यपि ये पत्र शुद्ध व्यापारकी दृष्टिसे चलाये जाते हैं तथापि इनकी सहानुभति पूँजीपतियोके साथ होती है। अपने मालिकोके विशेष राजनीतिक विचारोको भी यह परिलक्षित करते हैं। धीरे-धीरे इनमे शक्तिके लिए प्रबल इच्छा उत्पन्न होती है और यह राजनीतिक

क्षेत्रमे प्रवेश करते है। इङ्गितोसे जनताके विचार कैसे मोड़े जा सकते है और उनके भावोका उद्रेक कैसे हो सकता है इस शास्त्रमे वे व्युत्पन्न होते है और राजनीतिमे वह अपने मानव-ज्ञानका उपयोग करते है। अपने विज्ञापनदाताओका भी इनको लिहाज करना पडता है, क्योंकि इनकी आयका मुख्य स्रोत विज्ञापन ही है।

समाचार-पत्नोके क्षेत्रमे भी एकाधिकार होता जाता है। आजका युग पूंजीके एकाधिकारका है, फिर पत्रोका व्यवसाय इससे कैसे बच सकता था? इगलैण्डके 'प्रेस मैगनेट' कुछ थोडेसे पत्रोसे सन्तुष्ट नही है। उन्होने स्थानीय पत्रोपर भी धावा वोल दिया है। पत्र-व्यवसायियोके गुटोने स्थानीय पत्रोमेसे वहुतोंको खरीद लिया है। सबकी नीति लन्दनसे निर्धारित होती है। आज केम्जले (Kemsley) प्रेसका वोलवाला है। जहाँ जाइये वही आपको इसका पत्र मिलेगा। यही अवस्था अमेरिकामे होती जाती हैं। अभी हालमे वहाँकी सिनेटने एक कमेटी नियुक्त की थी। उसकी रिपोर्ट है कि १९४१-१९४४ मे केवल २ प्रतिशत फर्मोमे मजदूरोकी पूर्ण संख्याका ६२ प्रतिशत काम करता रहा है और बड़े-बड़े व्यवसायियोका प्रेसपर अधिकार वढता जाता है।

रिपोर्टमे कहा है कि "स्वतन्त्र रूपसे आलोचना तथा अनुसन्धानका होना तथा विविध दृष्टियोका स्वच्छन्द रूपसे व्यक्त होना लोकतन्त्रके लिए आवश्यक है। अत· हमको इस वातसे चिन्ता है कि (१) हमारे नागरिक प्राय एक ही दैनिकपत्र खरीद सकते है और (२) वहुतोके लिए यह पत्र ही पत्र-लड़ीकी दृष्टि पाठकोके सम्मुख उपस्थित करते है। यद्यपि समाचार-पत्नोकी विक्री क्रमश वढी है तथापि अमेरिकामे पत्नोकी संख्या विगत ३० वर्षोमे तेजीसे घटी है। अव हुत कम समुदाय ऐसे है जिनके समाचारोका एकसे अधिक विवरण प्राप्त हो।

"अन्तत· समाचारोके संग्रह करनेका काम केवल तीन प्रेस-सर्विसोके हाथ मे है और पत्र-प्रकाशकोने रेडियो-क्षेत्रपर भी आक्रमण कर दिया है। सन् १९०९ मे लगभग २६०० दैनिक पत्र थे और २ करोड़ ४२ लाख प्रतियोकी बिक्री थी। सन् १९३२ मे दैनिक पत्रोकी संख्या घटकर १७८६ हो गयी, किन्तु उनकी विक्रीकी सख्या लगभग दुगुनी अर्थात् ४ करोड़ ३४ लाख हो गयी। आजतक इसी प्रकार पत्रोकी सख्याका ह्रास तथा विक्रीकी सख्यामे वृद्धि होती गयी है।" रिपोर्टमे आगे चलकर यह भी कहा गया है कि पत्र-लडियो द्वारा नियन्त्रित पत्रोकी सख्याका अनुपात तेजीसे बढ रहा है। सन् १९४० मे इनके नियन्त्रणमे समस्त विक्रीका ४० प्रतिशत था और केवल १८१ ऐसे नगर थे जहाँ एकसे अधिक पत्र पाये जाते थे जिनकी आपसमे होड़ थी; तथा ८८ प्रतिशत अमेरिकनोकी वस्तियोको केवल एक ही पत्र नसीव होता था और इस प्रकार एक ही दृष्टि उनके सामने उपस्थित की जाती थी।

एकाधिकारके युगमे प्रवल पूँजीवादी राष्ट्रोंका यही हाल है। किन्तु ये राष्ट्र लोकतन्त्र-के भी समर्थक है, चाहे यह लोकतन्त्र पूंजीवादी ही क्यो न हो। अत. इन देशोके विचारशील व्यक्ति इस अवस्थाको देखकर लोकतन्त्रके भविष्यके सम्वन्धमे वहुत चिन्तित हो गये है। उनका कहना है कि यदि लोकतन्त्रको विकृत होनेसे वचाना है तो प्रेसके सम्वन्धमे

कुछ करना चाहिये। इसलिए इंगलैण्डमे पार्लमेण्टके कई सदस्योने प्रेसकी जांच करनेके लिए एक कमीशनकी माँग की है। कोई भी समाजवादी यह नही चाहेगा कि राज्यका प्रेसपर नियन्त्रण हो। किन्तु आजकी वहाँकी अवस्था भयावह है। जबतक इसमे परिवर्तन नही होता तबतक लोकतन्त्र खतरेमे है। हमारी समस्या यह है कि हम किस प्रकार प्रेसकी स्वतन्त्रताको सुरक्षित रखते हुए समाचारपत्रोंका सदुपयोग जनताकी शिक्षाके लिए कर सकते है। हमको प्रेसको जनताकी शिक्षाके लिए उत्तरदायी बनाना है और साथ-साथ प्रेसकी स्वतन्त्रताकी भी रक्षा करनी है। हमको मनुष्यके उत्तम 'स्व' को जगाना है और जो व्यापारी पत्र मनुष्यकी अधम मनोवृत्तिको जागरूक करते है और उसकी कुरुचिको व्यापारके लाभके लिए उत्तेजित करते है, उनको हमे रोकना है। हमको इसकी भी व्यवस्था करनी है कि जनताके सामने उभयपक्ष उपस्थित किया जा सके जिसमे वह विचार कर उचित निर्णयपर पहुँच सके, ऐसा नही कि केवल पूँजीपतिका ही पक्ष उनके सम्मुख हो।

लार्ड नार्थक्लिफने इंगलैण्डके पत्र-जगत्मे क्रान्ति उपस्थित कर दी थी, किन्तु इधर सर्वसाधारणके लिए शिक्षाका मापदण्ड ऊँचा कर देनेसे तथा नागरिको और सैनिकोमे प्रौढ शिक्षाकी व्यवस्था कर देनेसे एक नवीन युगका आरम्भ हो रहा है, जहाँ जनतामें उच्च शिक्षाके प्रचारमे वृद्धि होनेसे पाठकोका एक नया वर्ग उत्पन्न हो गया है, जो केवल समाचारोसे सन्तुष्ट नही है और जिसे सनसनीदार खबरे पसन्द नहीं है। वह देश-विदेशकी समस्याओ और उलझनोको समझना चाहता है। उसमे छिछलापन नही है। वह युगकी समस्याओका गम्भीर अध्ययन करना चाहता है। वह ऐसे ही पत्र पसन्द करता है जो इस कार्यमे उसकी सहायता करनेकी क्षमता रखते हो। किन्तु अभी व्यापारी पत्रोका प्रभाव कम नही हुआ है और नये प्रकारके पत्रोको प्रतिष्ठा प्राप्त करनेमे अभी समय लगेगा।

हमारे देशमे नार्थक्लिफके युगकी अभी सूचना ही मिली है, किन्तु प्राथमिक शिक्षाके प्रसारके साथ-साथ हमारे यहाँ भी वही अवस्था उत्पन्न हो जायगी जो इंगलैण्डमे उन्नीसवी शताब्दीके अन्तमे हुई थी। वहाँकी अवस्था नित्य बिगड़ती जाती है और आज इंगलैण्ड-निवासी इस विषयमे चिन्ता प्रकट कर रहे है। क्या हमारा यह कर्त्तव्य नही है कि हम इगलैण्डके अनुभवसे शिक्षा ले और अपने समाजको उन बुराइयोंसे बचानेका आजसे ही प्रयत्न करे?

केवल प्राथमिक शिक्षासे हमारा काम नही चलेगा। मौलिक शिक्षा (Basic Education)की पद्धतिको कार्यान्वित करनेसे ही हम मतदाताओको इस योग्य बना सकते है कि वे प्रश्नोपर सूक्ष्म विचार करना सीखे। सच्ची लोकतन्त्रकी स्थापनाके लिए शिक्षित और सतत् जागरूक जनताका होना आवश्यक है और यह उद्देश्य केवल लिखना-पढना सिखा देनेसे नही होगा। जनताके सुसंस्कृत बनानेका महान् उद्योग ही लोकतन्त्रकी स्थापनामे सच्चा सहायक हो सकता है। अभी हमको बहुमतका आदर करना सीखना है और सीखना है शान्तिके साथ वाद-विवाद करना और अपने निर्णयोमे तर्क और युक्तिको ऊँचा स्थान देना। जो राष्ट्र जात-पाँतके भेदोसे जर्जरित हो रहा है और जिसका समाज ऊँच-नीचके भेदभावपर आश्रित है, उसके लिए जो कार्यक्रम बनाया जाय उसमे शिक्षाको

उत्तम स्थान देना चाहिये। अब समय आ गया है जब हमारी आँखें अतीतसे हटकर भविष्यकी ओर होनी चाहिये। अतीतके बोझसे तो हम दबे जाते हैं। बुद्धिमान पुरुष मुर्दोंके लिए नहीं लड़ता। अब हम ऐसे कमजोर भी नहीं हैं जो हमको अतीतके गौरवके बलपर दुनियाकी आँखोंमे अपनेको ऊँचा उठानेकी आवश्यकता हो। इस सम्बन्धमें कार्लमार्क्स ने लिखा था:—

"क्या वह प्रेस, जिसका व्यापारिक लाभके लिए संचालन होता है और जिसका इस प्रकार नैतिक पतन हो जाता है, वह स्वतन्त्र है? इसमे सन्देह नहीं कि लेखकको जिन्दा रहने और लिखनेके लिए धन कमाना जरूरी है, किन्तु उसको धन कमानेके लिए ही जिन्दा रहना और लिखना नहीं चाहिये। प्रेसकी पहली स्वतन्त्रता इसमे है कि व्यापारसे उसका छुटकारा हो। जो लेखक प्रेसके पतनके लिए जिम्मेदार हो और जो उसको अर्थका दास बना देता है, वह दण्ड पानेके योग्य है और इस आरम्भिक दासताके लिए दण्ड वह बाह्य दासता है जिसे प्रेसका नियन्त्रण (Censorship) कहते हैं अथवा कदाचित् उसका जिन्दा रहना ही उसका दण्ड है।"

पूंजीवादके आजके युगमे पूंजीवादी राष्ट्रोंमे प्रेसकी ऐसी ही दुर्दशा होगी। एकमात्र समाजवाद ही प्रेसकी वर्तमान दासताको दूर कर सकता है। समाजवादी समाजमे ही व्यक्तित्वके पूर्ण विकासकी सम्भावना है। आजके समाजमे रुपयेका बड़ा जोर है। मनुष्यकी माप रुपयेसे ही होती है। यह सब बदलना है। समाजमे जीवनके सच्चे सामाजिक और आध्यात्मिक मूल्योंको प्रतिष्ठित करना है। जो लोग इष्टत्व-अनिष्टत्वकी छान-बीन कर सद्बुद्धिसे प्रेरित हो कल्याणकारी कार्योंमे अग्रसर हैं वही पूंजीवादके अभिशाप से समाजका परित्राण कर सकते हैं।[1]

विचारकोंके सम्मुख एक नयी समस्या

विश्व-समाजमे आज केवल सामाजिक क्रान्ति ही नहीं हो रही है, किन्तु विश्वके विचारकोंमे भी एक आध्यात्मिक उथल-पुथल मची है। ऐटम बमके आविष्कारने इन विचारकोंको भविष्यके सम्बन्धमे गम्भीरताके साथ विचार करनेके लिए विवश कर दिया है फासिटीवाद और नाजीवादके मौलिक आधारके अध्ययनने भी भविष्यके सम्बन्धमे सन्देह उत्पन्न कर दिया है। समाजवादसे जिनको बडी आशा थी, जिन्होंने रूसके समाजवादमें अपने स्वप्नोंको स्थूल रूप धारण करते देखा था और जो इस कारण स्वय कम्युनिस्ट पार्टीके आदरणीय सदस्य हो गये थे, उनमेसे कई विचारक रूसके समाजवादका विकृत रूप देखकर इतने क्षुब्ध और निराश हुए कि वह रूसके कट्टर विरोधी बन गये और धीरे-धीरे उनमेसे कुछकी यह धारणा हो गयी कि मार्क्सवादमे ही कोई ऐसा मौलिक दोष है, जिसके कारण यह विकार उत्पन्न हुआ है। महायुद्धके बादसे एक निश्चित योजनाके अनुसार अपने

---

१ 'जनवाणी' सितम्बर, सन् १९४६ ई०

आर्थिक जीवनका संगठन करना प्रत्येक राज्यके लिए प्रायः अनिवार्य-सा हो रहा है। इस अर्थनीतिका परिणाम क्या होता है, इसको भी इन विचारकोंने रूस तथा जर्मनीमे देखा है। उनका कहना है कि इस प्रकारकी अर्थनीतिका एक परिणाम यह होता है कि नौकरशाही-का बाहुल्य हो जाता है तथा सामाजिक जीवनके प्रत्येक विभागपर राज्यका नियन्त्रण हो जाता है, जो लोकतन्त्र तथा मानव-स्वतन्त्रताके लिए अत्यन्त भयावह है। इन विचारकोंका कहना है कि यह अर्थनीति ही अधिनायकत्वको जन्म देती है।

आजका युग बहुजनका युग है। इस युगमे समाज प्रसुप्त और निश्चेष्ट नही है। पूँजीवादने जनताके महत्त्वको बढा दिया है। पूँजीवादको अपने मुनाफेके लिए असंख्य मजदूरोको कल-कारखानोमे लगाना पड़ा। धीरे-धीरे यह मजदूर अपनी संस्थाओमे संगठित होने लगे तथा अपनी माँगोको पूरा करनेके लिए हड़ताल करने लगे। धीरे-धीरे क्रान्तिकारी बुद्धिजीवियोने उनको समाजवादकी विचारधारा दी और मजदूर वर्गको ही इस नयी विचार-पद्धतिकी मूलभित्ति बनायी। पूँजीवादके गर्भसे एक नये समाजकी सृष्टि होने लगी। मजदूर-समाज मजबूत होने लगा। रूसमे मजदूरोकी पहली सफल क्रान्ति हुई और इंगलैण्डमे मजदूरोका राज्य स्थापित हुआ। इन विशेष कारणोसे यह स्पष्ट इङ्गित होता है कि एक युगकी परिसमाप्ति और दूसरे युगका उपक्रम हो रहा है। अत. यह शती समान्य जनकी शती कहलाती है। आज बहुजनके हितोकी उपेक्षा नही की जा सकती। आज जो कोई शासक हो उसे जनताके नामपर ही शासन करना होगा। ऐसी परिस्थितिमे जनताके विचारोसे अवगत रहना तथा उनका नियन्त्रण करना राज्यके लिए आवश्यक है। इसलिए जिस तरह कारखानोमे बड़े पैमानेपर विविध वस्तुएँ तैयार होती है, उसी तरह राज्यकी ओरसे विचार भी तैयार किये जाते है। ब्राडकास्टिंगपर राज्यका नियन्त्रण इसीलिए होता है। आज सामाजिक नियन्त्रणके लिए नये उपकरणोका प्रयोग करनेके लिए राज्य बाध्य है। विज्ञानने इन नये उपकरणों और साधनोको हमारे लिए उपलब्ध किया है। कई सामाजिक प्रणालियाँ प्रचलित हो गयी है। यदि लोक-कल्याणके लिए इनका उपयोग किया जाय, तो समाजका मगल हो सकता है। किन्तु यह भी स्पष्ट है कि यह राज्यमे असीम शक्तिको केन्द्रित कर देती है और यदि इनका दुरुपयोग हो तो अमंगल ही अमंगल है।

उदाहरणके लिए रण-पद्धतिमे क्रान्तिकारी परिवर्तन हो गये है। नूतन अस्त्रोंका आविष्कार हो गया है और नर-संहार अत्यन्त सुलभ हो गया है। इन आविष्कारोंने मुट्ठीभर लोगोके हाथमे शक्ति केन्द्रित कर दी है। जहाँ यह विदेशी आक्रमणसे देशकी रक्षा करनेमे अधिक समर्थ है, वहाँ इन्ही साधनोसे जनताके विप्लवको अधिक सुगमतासे दबा सकते है।

कुछ विचारकोंका कहना है कि यह सामाजिक प्रणालियाँ स्वतः न कल्याण करनेवाली है और न अमंगल करनेवाली है। जिनके हाथोंमे इन नवीन अस्त्रोका प्रयोग है, उनकी इच्छा-पर यह निर्भर करता है कि इनका सदुपयोग होगा अथवा दुरुपयोग। किन्तु यह निश्चित नही है कि शासकोकी इच्छा कैसी होगी। इस अनिश्चितताके कारण वह इन सामाजिक

प्रणालियोके पक्षमे नही है। इनका दुरुपयोग होते उन्होने देखा है। वह देखते है कि निश्चित योजनाके अनुसार जो अर्थनीति निर्मित होती है उसकी दिशा अधिनायकत्वकी ओर होती है। वह दोनोको कार्य-कारणके रूपमे देखते है। अत॰ वह इसको स्वीकार नही करते कि ऐसे उपाय भी हो सकते है, जिनका आश्रय लेकर हम इस अर्थनीतिसे लाभ उठाते हुए समाजकी रक्षा उसके दोपोसे कर सकते हैं। फासिटीवादकी वर्वरता वह अपनी आँखो देख चुके है। ससारने लोकतन्त्रकी रक्षाके लिए एक महान् युद्ध रचा और नाजी-शक्तिका अन्त किया। अव वह यह चाहते है कि समाजका एक ऐसा रूप हो जिसमे पुन: फासिटीवादका जन्म न हो सके। उनका विचार है कि जबतक यह अर्थनीति रहेगी उसका भय पुन-पुन उपस्थित होता रहेगा।

यह विचारक इसलिए किसी निश्चित योजनाके आधारपर किसी अर्थनीतिका निर्माण नही चाहते। यह सवसे अधिक महत्त्व लोकतन्त्र, मानव-स्वतन्त्रता तथा व्यक्तित्त्वकी परिपूर्णताको देते है और क्योकि इनके मतमे ऐसी अर्थनीति इन सिद्धान्तोकी पोषक नही है, वरन्च उसके द्वारा इनको क्षति पहुँचती है, अत वह ऐसी अर्थनीतिके विरोधी है। वह जानते है कि पूँजीवादी समाजमें विपमता और अस्त-व्यस्तता रहती है, किन्तु इनके मतमे यह सव वर्दाश्त किया जा सकता है यदि मानव-स्वतन्त्रताकी रक्षा हो सके। इसी कारण कुछ विचारक स्वच्छन्द व्यवसायके पक्षपाती है। अमेरिकाका उदाहरण देकर वह यह सिद्ध करना चाहते है कि साधारण जनकी आर्थिक अवस्था पूँजीवादी समाजमे भी उन्नत हो सकती है। उनका विचार है कि गैरसरकारी व्यवस्था अच्छी और सस्ती होती है और उससे स्वतन्त्रताकी भी रक्षा होती है। इनका कथन है कि लोकतन्त्रका आधार आर्थिक क्षेत्रकी स्वतन्त्रता ही है और यदि राज्यका नियन्त्रण आर्थिक क्षेत्रपर होता है तो उससे लोकतन्त्रका ह्रास होता है।

थोडेसे ऐसे विचारकोकी दलीलोका खण्डन करना कुछ कठिन नही है। यह अवश्य सच है कि निश्चित योजनाके आधारपर निर्मित अर्थनीतिसे लोकतन्त्रको भय है, किन्तु ऐसा नही है कि इस भयके निराकरणका कोई उपाय नही है। पुन जव यह स्पप्ट है कि आजके युगमे ऐसी अर्थनीतिको अपनाना अनिवार्य हो गया है, तो उसके दोपोके निरसनका उपाय सोचना ही पडेगा। हमारे मतमे ऐसी अर्थनीति और लोकतन्त्र तथा मानव-स्वतन्त्रताके बीच सामञ्जस्य स्थापित हो सकता है। इस सम्वन्धमे कई सुझाव रखे गये है। कुछ व्यवसाय ऐसे है जिनका केन्द्रीकरण नितान्त आवश्यक है। किन्तु अन्य व्यवसायोका विकेन्द्रीकरण होनेसे लोकतन्त्रको व्याघात नही पहुँचता। पुन कार्पोरेशन तथा स्थानीय जन-सस्थाओके अधीन व्यवसायोको लेकर लोकतन्त्रकी रक्षा हो सकती है। सहयोग समितियोद्वारा विविध छोटे व्यवसायोको सचालित करनेसे भी अधिनायकत्व-का दोप वचाया जा सकता है।

पुन. सामान्य जनता लोकतन्त्रके महत्त्वको तभी समझ सकती है जब उसके रोटी-कपडेका प्रश्न हल हो। अमेरिकाका उदाहरण सर्वत्र लागू नही होता। वह लोकतन्त्र अधूरा है जो समाजकी आर्थिक विपमताको दूर करनेमे असमर्थ है। जो तृप्त है, जिनके

आगे कोई ऐसी कठिन आर्थिक समस्या नही है, वह अवश्य मानव-अधिकारोकी स्वतन्त्रताका महत्व समझते हैं। किन्तु जो वेकार हैं अथवा आर्थिक कष्टमे है वह केवल भाषणकी स्वतन्त्रतासे सन्तुष्ट नही हो सकते। सामान्य जनकी सास्कृतिक उन्नतिके लिए उसकी आर्थिक स्थितिकी उन्नति आवश्यक है।

कुछ ऐसे भी विचारक हैं जिनका विश्वास मनुष्यपरसे उठ गया है। नैतिकताका ह्रास देखकर ही उनकी आस्था उठ गयी है। पहले ईश्वरमे 'लोगो' का अटल विश्वास था। विज्ञानने इस विश्वासको खोखला वना दिया और १६ वी शतीमे मानवकी प्रतिष्ठा हुई तथा जीवनमें नये मूल्योकी स्थापना और जीवनके नये मूल्योकी सृष्टि हुई। इनमें ही मानव-स्वतन्त्रता और लोकतन्त्र है। किन्तु संहारके नये साधनोके प्रयोगसे तथा सत्यकी अप्रतिष्ठा होनेसे हमारे आदर्श भी नष्ट हो रहे हैं। आज लोग यथार्थवादकी पूजा करते हैं और आदर्शवादियोको मूर्ख और पागल समझते हैं। परिस्थितिके अनुसार आचरण करना ही सवसे वडी वुद्धिमत्ता समझी जाती है; मानो जीवनका कोई गम्भीर उद्देश्य ही नही रह गया है! मानव-वुद्धिपरसे इन विचारकोका विश्वास उठ-सा गया है और वह लोकतन्त्रको उचित प्रेरणा देनेमे अपनेको असमर्थ पाते हैं। इससे भी गम्भीर किसी आदर्शकी उनको तलाश है। वह पुन· धर्ममे शरण लेते हैं। यूरोपके विचारक ईसाई धर्मकी पुन: स्थापना करना चाहते है ? उनका विचार है कि ईसाई धर्मसे ही लोकतन्त्र तथा समताके सिद्धान्त निकले हैं। अत स्वभावत· उनकी दृष्टि ईसाई धर्मकी ओर जाती है। पोपके शासनमे शान्ति भी थी और विविध राज्योके वीच मैत्री भी। आज वह देखते हैं कि विविध राज्य एक-दूसरेके वैरी हैं और वह यह भी समझते हैं कि किसी एक राज्यका समस्त संसारपर आधिपत्य कायम करके विश्व-शान्ति नही हो सकती। अतः वह पोपका शासन फिरसे प्रतिष्ठित करना चाहते हैं। कुछ विचारक अध्यात्मवादमे ही शान्ति पाते हैं।

हमारे मतमे मानवके ऊपर इतना अविश्वास करनेका कोई कारण नही है। जीवनके नये सामाजिक और आध्यात्मिक मूल्य प्रेरणा देनेके लिए पर्याप्त हैं। इन मूल्योपर जिनका अटल विश्वास है वह उनपर उसी प्रकार दृढ रह सकते हैं, जिस प्रकार धार्मिक व्यक्ति दु ख-यातना भोगते हुए भी अपने धार्मिक विश्वासपर अटल रहता है। आजके युगमे सामाजिक अवस्थाका पूर्ण परिचय प्राप्त कर रचनात्मक क्रान्तिकारी योजनाओको कार्यान्वित करनेकी क्षमता रखनेवाला व्यक्ति ही कुछ कर सकता है। सामाजिक सगठनमे विना महान् परिवर्तन किये हमारा जिन्दा रहना भी कठिन है। समाजके प्रश्न धर्मके दामनमें मे मुँह छिपानेसे हल नही होगे। समाजकी उन्नति करनेका एक वैज्ञानिक तरीका है। उसको अपनाना होगा। पोपका शासन फिरसे प्रतिष्ठित नही हो सकता। हाँ! उसके प्रभावका दुरुपयोग प्रतिक्रियावादी शक्तियाँ आज भी कर रही हैं। इस विज्ञानके युगमे रहस्यवादकी प्रतिष्ठा करना कठिन है। विज्ञानका सदुपयोग कीजिये; समाजमे आदर्शोकी प्रतिष्ठा कीजिये; मनुष्यके चारित्र्यकी ओर ध्यान दीजिये; न कि विज्ञानको छोड़ कपोल-कल्पित वातोको फिरसे जिन्दा कीजिये। मनुष्यके चारित्र्यपर उसकी परिस्थितिका प्रभाव अवश्य पडता है, किन्तु व्यक्तिगत चरित्रके गठनकी ओर भी ध्यान देना चाहिये।

विद्याचरण-सम्पन्न व्यक्ति ही समाजका सच्चा नेतृत्व कर सकते हैं। सामाजिक प्रणालियाँ स्वतः कुछ नही कर सकती, जबतक उनको कार्यान्वित करनेवाले सर्व-भूत हित रत नही होते, सामाजिक परिस्थितिके अनुकूल प्राणी होनेसे ऐसे व्यक्तियोंकी समाजमे वृद्धि होगी। जब समाजिक स्थिति जटिल होती है तभी उसको सुलझानेके लिए महापुरुष जन्म लेते हैं और आर्त-जनता उनका स्वागत करनेके लिए तैयार होती है। आजका विचार-विमर्श तथा स्थितिको सुधारनेके लिए बताये गये अनेक सुझाव इस बातको दिखाते हैं कि समाजके हृदयका मन्थन हो रहा है। समस्या उत्पन्न हो गयी है, उसका हल भी हमको प्राप्त होगा। हम आज अन्धकारमे टटोल रहे है किन्तु प्रकाश भी अवश्य दिखायी देगा और समाजका अन्तमे निस्तार होगा। किन्तु आजतक जो उन्नति हुई है, उसको ताकपर रखकर नहीं, वरंच उसका उत्तम उपयोग करके ही हमारा अभीष्ट सिद्ध होगा।"[1]

फासिज्मका वास्तविक रूप

पूँजीवादके ह्रासका युग

पूँजीवादके लिए ह्रास और अवनतिका युग है। यो तो पूँजी-प्रथामे संकटका काल समय-समयपर बराबर उपस्थित होता आया है, क्योकि ऐसा होना पूँजी-प्रथाके लिए अनिवार्य है, पर जो सकट संन् १९२९ मे आरम्भ हुआ, वह जल्द टलता नजर नही आता। हो सकता है कि भगीरथ प्रयत्न करनेपर सम्पत्की अवस्था कुछ दिनोके लिए फिर लौट आये, पर अन्तमे इसका फल यही होना है कि निकट भविष्यमे यह सकट और भी भीषण रूप धारण करेगा। उस समय यदि पूँजी-प्रथाके आन्तरिक विरोधोको मिटानेका प्रयत्न न किया गया तो वर्तमान सभ्यताका निश्चय ही अन्त हो जायगा और संसारका एक बड़ा हिस्सा अनिश्चित कालके लिए अन्धकार और वर्बरताके खड्डेमे जा गिरेगा।

नयी मशीनोकी सहायतासे पैदावारको अपरिमित रूपसे बढानेका खूब मौका मिला। आपसकी प्रतिस्पर्धाके कारण मुनाफा कमानेके लिए पूंजीपतियोने आवश्यकतासे अधिक माल तैयार कर दिया। इसका फल यह हुआ कि मशीनका माल नही बिक सका और व्यापारमे सकट उपस्थित हो गया। कारखानोको वन्द कर देना पड़ा, कारखानेदारोका दिवाला निकल गया और मजदूरोकी वेकारी बढने लगी। कुछ दिनोमे गोदामोका भरा माल बिक गया, धीरे-धीरे वन्द कारखाने फिर खुलने लगे, मजदूरी बढी और व्यापार फिर तेजीसे चलने लगा। किन्तु यह अवस्था वहुत दिनोतक कायम न रही। फिर वही रफ्तार वेढंगी शुरू हुई। प्रत्येक कारखानेमे अपरिमित मात्रामे माल तैयार होने लगा। बाजारमे मन्दी हो गयी। खरीददारोकी कमीसे माल फिर गोदाममे इकट्ठा होने लगा। यह दौर बराबर चलता रहा। सम्पत् और विपत्की अवस्थाएँ ५-७ वर्षका अन्तर देकर बरावर उपस्थित होती रही।

---

१. 'जनवाणी' सितम्बर १९४७ ई०

आर्थिक सङ्कटकी दवा समाजवाद

यद्यपि आरम्भमें बड़े पैमानेके व्यवसायने ही अवाधित स्पर्धाको जन्म दिया था, तथापि अब उसकी आवश्यकता नही रह गयी है। व्यवसायकी आवश्यकताओंको विना विचारे, उत्पादनकी क्रियाको वढाते चले जानेका यही फल है। उत्पादन-शक्ति अब इस दर्जेतक वढ गयी है कि पूँजी-प्रथाका उसके साथ सामंजस्य नही रह गया है। पूँजीप्रथामे उत्पादन-शक्तिकी अब और उन्नति नहीं हो सकती। जवतक वड़े पैमानेका व्यवसाय वर्तमान पद्धतिके अनुसार संचालित होता रहेगा तवतक मानव-सभ्यताको भय वना रहेगा, मजदूरोंका कष्ट वढता रहेगा तथा साथ-साथ पूँजीपति भी वरवादीसे न वच सकेगे। दो ही उपाय है, या तो व्यवसायकी इस नयी पद्धतिका अन्त कर दिया जाय या समाजकी एक नयी व्यवस्था की जाय जिसमे वडे पैमानेका व्यवसाय फल-फूल सके और अपने आन्तरिक विरोधोंसे छुटकारा पा सके। जो नयी सामाजिक व्यवस्था होगी, उसमें कारखानेदार न होगे जो आपसमे प्रतिद्वन्द्विता करे। उस नयी व्यवस्थामे एक निश्चित योजनाके अनुसार तथा समाजके सव सदस्योंकी आवश्यकताके अनुसार औद्योगिक उत्पादन होगा। प्रतिद्वन्द्विताके स्थानमे सहयोग होगा। विना विचारे व्यक्तिगत लाभके लिए जो काम दैवाधीन हो रहा है, उसके स्थानमे वुद्धि-पूर्वक तैयार की हुई एक योजनाके अनुसार कार्य होगा। यह व्यवस्था समाजवादकी व्यवस्था है। मानव-समाजको दारुण परिणामसे वचानेका यही एकमात्र उपाय है। पूँजी प्रथा विकासकी उस चरम सीमाको पहुँच गयी है जहाँ वह उत्पादनकी वृद्धिमे रुकावट डालती है। पूँजीप्रथा अपना काम समाप्त कर चुकी है। समाजकी भावी उन्नतिके लिए इस प्रथाका लोप आवश्यक है। पूँजीप्रथाकी मर्यादित सीमाके भीतर उन्नतिकी अव कोई गुंजाइश वाकी नही है।

पूँजी और पूँजीपति

अवतक यही समझा जाता रहा है कि यह व्यापार-संकट तथा औद्योगिक शक्तियोंका यह प्रपञ्च और अपव्यय अनिवार्य है, क्योंकि वाजारोंके हेर-फेरसे तथा अचिन्त्य कारणोंके वश अथवा युद्ध, दुष्काल या आर्थिक आपदासे ऐसा होता है। किन्तु अव यह वात स्पष्ट हो गयी है कि व्यवसाय, कृषि, व्यापार, गमनागमनके साधन तथा यन्त्रोंमे जो असाधारण उन्नति हुई है उसके कारण उत्पादनकी शक्तियोंमे इतनी अधिक वृद्धि हो गयी है कि जितना माल तैयार किया जा सकता है उतना इसलिए नही तैयार होता कि वह ऐसी कीमतपर नही वेचा जा सकता, जिसमे लागत भी निकल आवे और मुनाफा भी वना रहे। इसलिए आज अनेक कृत्रिम उपायोंसे वस्तुओंकी कीमत वढानेका उद्योग किया जाता है; कारखाने वन्द कर दिये जाते है, मजदूरोंको छुट्टी देदी जाती है, अन्न आदि वस्तुएँ नष्ट कर दी जाती है और उत्पादनको नियन्त्रित करनेके लिए प्रयत्न किये जाते है।

इसमे सन्देह नही कि कुछ राजनीतिज्ञ और अर्थशास्त्री इस गम्भीर अवस्थाके लिए उन राजनीतिक तथा आर्थिक कठिनाइयोंको जिम्मेदार ठहराते है, जो युद्धके वाद पैदा हो गयी है। कर्जका वोझ, टेरिफ-युद्ध, पुराने सुप्रतिष्ठित वाजारोंका वन्द हो जाना तथा

आत्मनिर्भरताके भावका प्रावल्य यह सब वाते पूँजीप्रथाके संहारके मुख्य कारण नही है, किन्तु एक अनिवार्य रोगके ऐसे लक्षण हैं, जो रोगका उद्दीपन करते हैं।

पूँजीपतियोमे जो दूरदर्शी है वह साफ देखते है कि यदि वह अपने मुनाफेको सुरक्षित रखना चाहते है, तो उनके लिए सिवाय इसके दूसरा चारा नही है कि वह स्वयं योजनाके अनुसार राष्ट्रके आर्थिक जीवनका सघटन करे, कमसे कम, व्यापारके प्रत्येक क्षेत्र-मे प्रभावशाली व्यापारियोने इस वातको मान लिया है कि यदि रोजगारमें मुनाफा कमाना है तो उत्पादनकी शक्तियोको सीमित और नियन्त्रित करना पडेगा। विना इस सिद्धान्तको सामान्य रूपसे स्वीकार किये हुए ही कई व्यवसायोमे स्पर्धाको रोकनेका प्रवन्ध किया गया। व्यवसायियोने आपसमे पैदावार तथा कीमत निर्धारित करनेके लिए समझौते किये और एक समझौतेके आधारपर वाजारोका वँटवारा कर लिया। कभी एक देशके भीतर एक व्यवसायके विविध कारखानेदार आपसमे तसफिया कर लेते थे और कभी अन्तर्राष्ट्रीय समझौते भी होते थे। अपने वर्गके स्वार्थोकी रक्षाके लिए एक सामान्य नीतिका अनुसरण करना पूँजीपतियोके लिए आवश्यक हो गया है, किन्तु ऐसा होना सम्भव नही है क्योकि वडे-वड़े व्यापारियोके लिए अपने व्यापारपर अपना अक्षुण्ण अधिकार छोडना दुष्कर है और सवके लिए राष्ट्रीय आधारपर व्यवसाय-योजनाकी आवश्यकता समझना भी असम्भव है।

अन्तर्राष्ट्रीय व्यापारिक स्पर्द्धा

पूँजीपद्धतिके अनुसार सगठित राष्ट्रोके लिए व्यवसायका क्षेत्र दिनपर-दिन संकुचित होता जाता है। दुनियाका वँटवारा हो गया है। उपनिवेशोमे भी व्यवसायकी उन्नति होती जाती है। इससे ससारका वाजार इन औद्योगिक राष्ट्रोके लिए संकुचित होता जाता है। इसलिए जवतक इन राष्ट्रोकी स्पर्धा पूर्णरूपसे जारी रहती है, तवतक व्यवसायमें मुनाफेपर पूँजी लगानेके लिए अवसर कम होते जाते है। यह अवस्था तभी सुधर सकती है, जव एक नये आधारपर प्रमुख पूँजीवादी राष्ट्र ससारके व्यवसाय और वाजारका वँटवारा कर ले। किन्तु पूँजीप्रथामे यह सम्भव नही है। अवस्था इसके सर्वथा प्रतिकूल है। संसारका व्यापार जितनाही अधिक सिकुडता है, अन्तर्राष्ट्रीय सम्वन्ध जितने ही अधिक अव्यवस्थित होते है, उतना ही अधिक विविध राष्ट्र एक आर्थिक युद्धके लिए अपनेको शस्त्रोसे सुसज्जित करते जाते हैं। प्रत्येक राष्ट्र अपने आर्थिक जीवनकी रक्षाके लिए तैयारी कर रहा है। प्रत्येक राष्ट्र अपनेको आत्मनिर्भर करना चाहता है। वह नये वाजार और नये प्रदेशकी तलाशमे है। वह अपने देशसे दूसरोके व्यवसायको निकालना चाहता है। जिन क्षेत्रोमे वह स्वय पिछड़ा हुआ है उनमे वह उन्नति करना चाहता है। इससे राष्ट्रीयताकी भावनाको उत्तेजना मिलती है। पूँजीप्रथाकी वर्तमान आवश्यकताओंके कारण इस भावनाको उत्तेजना देनेकी जरूरत है। किन्तु यदि प्रत्येक राष्ट्र इस नीतिका अनुसरण करे तो अन्तर्राष्ट्रीय अव्यवस्था और अस्तव्यस्तता और भी वढ जावेगी।

फासिज्म क्या है

वास्तवमे पूंजी-प्रथाका कार्य समाप्त हो चुका है। इसने संसारका वाजार और संसारव्यापी एक आर्थिक पद्धति कायम कर दी है। उसके आन्तरिक विरोध विकसित हो गये है, अव वह केवल प्रतिक्रियाकी पद्धति होकर ही रह सकती है। यही प्रतिक्रिया फासिज्म है।

संसारकी आर्थिक पद्धतिका विघटन हो रहा है। राष्ट्र अव आर्थिक युद्धकी तैयारीमें लगे है। राजनीतिक रूपमे उसीका प्रतिफल फासिज्म है। जवसे पूंजीप्रथाका ह्रास होने लगा है, तभीसे प्रत्येक पूंजीवादी राष्ट्रमे फासिस्ट आन्दोलनके विकासके लिए कमोवेश अनुकूल-अवस्था रही है।

फासिस्ट राज्य आर्थिक राष्ट्रीयताकी ओर झुक रहे है। वह व्यवसायकी दृष्टिसे स्वतन्त्र होना चाहते है। इस मामलेमे आत्म-निर्भरता प्राप्त करनेकी उनकी चेष्टा रहती है। इस प्रकार वह ससारकी आर्थिक पद्धतिको विघटित कर देते है। साथ-साथ अन्तर्राष्ट्रीय सम्वन्ध भी विघटित हो जाते है और संसारका व्यापार ठप हो जाता है।

इस पद्धतिके द्वारा ही पूंजीवादी देशोका उत्थान हुआ है। इस पद्धतिके विनाशसे, उनके जीवनका परम आवश्यक आधार नष्ट हो जाता है। इसलिए उनकी प्रतिद्वन्द्विता और भी भीषण हो जाती है। फासिज्मके वढनेसे राष्ट्रोके पासके विरोध और भी तीव्र हो जायेंगे। जो राष्ट्र आज फासिस्ट नही है, उनको भी युद्धकी नीति अपनानी पड़ेगी तथा फासिज्मकी ओर अग्रसर होना पडेगा। फासिज्ममे उन्नतिके लक्षण नही है। यह पूंजी-प्रथाके ह्रास और अवनतिको और भी वढाता है। पूंजीप्रथाको जीवित रखनेकी यह अन्तिम चेष्टा है।

इटलीमे फासिस्ट पार्टीको अपना अधिनायकत्व जमानेमे कुछ साल लग गये थे, पर जर्मनीके नाजीदलने वही काम चन्द महीनोमे ही कर डाला। जर्मनीके सामने इटलीका नमूना तैयार था। जर्मनीमे जहाँ समाजवादी तथा कम्युनिस्ट दल सुसंगठित थे फासिज्मकी स्थापनाका एक प्रधान कारण यह रहा है कि वहाँके पूंजीपतियोने इस वातकी आवश्यकताको महसूस किया कि यदि पूंजीप्रथाको जीवित रखना है तो पूर्व इसके कि समाजवादी समाजकी स्थापना करे, उन्हे व्यवसाय-योजनाका काम अपने हाथमे लेना चाहिये। उनको इसका वास्तविक भय था कि यदि वह ऐसा नही करेंगे तो रूसकी तरह ही हाल होगा। फासिस्ट आन्दोलनके मूल आधार मध्यम वर्गकी निम्नश्रेणीके वह लोग है जो कंगाल हो गये है। युद्धके वाद जो मार्क-(जर्मन सिक्का) का भाव गिर गया था, उससे यह लोग तवाह हो गये थे। सन् १९२९ की मन्दीने इनको और वरवाद कर दिया। यही समुदाय फासिस्ट आन्दोलनका मूल आधार वना।

फासिज्मका वास्तविक रूप

जिन राष्ट्रोमे अभी फासिज्म स्थापित नही हुआ है, वहाँ भी फासिज्म प्रवृत्तिको उत्तेजना मिली है। इगलैण्डमे मास्लेका गिरोह है। स्विट्जर लैण्डमे 'डाइफ्राटेन' दल है।

फ्रांस, वेलजियम, स्वीडन आदि देशोमे भी इसी प्रकारके संगठन पाये जाते हैं। सयुक्तराष्ट्र अमेरिकामे रूजवेल्टकी योजना धीरे-धीरे फासिज्मके लिए जमीन तैयार कर रही है।

जर्मनीका नात्सी दल

इन नवीन विचारोकी सफलता देश और कालपर निर्भर करती है। यह छोटे-छोटे समुदाय वहुत दिनोतक इसी अवस्थामे रह सकते हैं, पर यदि आर्थिक और सामाजिक अवस्था फासिज्मके अनुकूल हुई, समाजवादी जनताके विश्वासपात्र न रहे तथा जनता मे एक राष्ट्रवादी अधिनायककी चाह पैदा हुई तो यह छोटे-छोटे समुदाय एक वृहत् दलके प्रारम्भ बन सकेगे।

यह प्रतिक्रिया वहुत दिनोतक चल सकती है, यद्यपि यह भी असन्दिग्ध है कि इसका अन्त समाजवाद करेगा। जर्मनीके फासिस्ट वहुत मजवूत है। उनके पास केवल राज-शक्तिके ही सव साधन नही है, किन्तु प्रचारके भी सव साधन हैं—छापाखाना, कला, विज्ञान, सब तरहके क्लव, एसोसियेशन, आर्थिक और सामाजिक संगठन, चर्च इत्यादि। सक्षेपमे, समस्त राजनीतिक तथा बौद्धिक जीवनके संगठित रूप, फासिस्ट पार्टीको मजवूत वनानेके काममे जान-वूझकर वेदर्दी से लगाये जाते है। अन्य दलोका अन्त कर दिया गया है। जनताके पास सगठनके जो साधन थे वह भी छीन लिये गये है। उनका सामूहिक जीवन छिन्न-भिन्न कर दिया गया है। फासिस्ट स्टेटमे मजदूरोको संभ्रम समुत्थानका अधिकार नही है। मजदूरोका कोई स्वतन्त्र सगठन नही है। जिन मजदूर सगठनोको इजाजत दे रखी है उनमे मजदूरोंको फासिस्टोने परस्पर सलाह करनेकी स्वतन्त्रता नही दी है और यह संगठन मजदूरोके नियन्त्रण या प्रभावमे नही है। मजदूरोको केवल चन्दा देना पडता है। फासिस्ट पूंजीपतियोसे कामके वारेमे शर्तें तय करते है और पीछे यह घोपणा करते हैं कि यह तसफिया मजदूरोके हितमे किया गया है। ऐसी हालतमे जवतक एक काफी सुदृढ और अनुभवी सगठन प्रस्तुत न होगा तवतक फासिस्ट शासनका सफल विरोध जर्मनीमें नही हो सकेगा।

इसके अतिरिक्त आक्रमणका सुअवसर तभी प्राप्त होगा जव फासिस्ट शासन आन्तरिक तथा वाह्य कठिनाइयोके कारण काफी दुर्वल हो जायगा और जनता उसके विरुद्ध हो जायगी। संकटके समय अवश्य आवेगे, वेकारीके घटानेकी जो चेप्टा फासिस्ट कर रहे है उससे स्थायी रूपसे वेकारी दूर हो सकती है। यदि विदेशी मामलोमे फासिस्ट स्टेटको दिक्कते पड़े तो एक महान् सकट उपस्थित हो सकता है। किन्तु इसका उपयोग तभी हो सकता है जव जर्मनीके समाजवादी और कम्युनिस्ट कार्यकुशलताका परिचय दे और अपनी एक नीति निर्धारित्त कर समवेत रूपसे कार्य करना आरम्भ कर दे।

फासिज्मका विकास

फासिस्ट आन्दोलनके अभ्युत्थानके लिए परिस्थिति अनुकूल थी। ससारके सव भागोमे आर्थिक जीवन अस्तव्यस्त था, राजनीतिक तथा आर्थिक गुटोका सघर्प तीव्र हो रहा था। राजनीति और व्यापारमे पाप-वुद्धि वहुत वढ़ गयी थी। मजदूरी गिरती जाती थी।

वेकारी वढती जाती थी । नगरोमे रहनेवाले मध्यम श्रेणीके लोगोका जीवन भी संशयापन्न था । किसानोकी भी मुसीवत कुछ कम न थी, क्योकि खेतीमें सकटकी अवस्था भी उपस्थित हो गयी थी । इस सामाजिक सकटके कारण दलवन्दी वढ गयी थी । विविध दल राजनीतिक अधिकार और प्रभावके लिए संघर्ष करते थे, पर इस मुसीवतसे छुटकारा पानेका रास्ता कोई भी नही वताता था ।

जो शासन-पद्धति लोगोको मुसीवतसे वचा नहीं सकती, उसके प्रति उनका विद्वेष वढ जाता है । भिन्न-भिन्न दलोकी आपसकी लडाईसे वह तंग आ जाते है । लोकतन्त्र शासन उनके विद्वेपका पात्र वन जाता है और वह एक मजवूत आदमीकी जरूरत महसूस करने लगते है, जो राष्ट्रकी ठीक-ठीक व्यवस्था करे । लोगोका यह ख्याल होने लगता है कि व्यवसाय, व्यापार, राजस्वकी हीन अवस्था, वढती हुई वेकारी, आर्थिक और राजनीतिक *गड़वड़, यह सव लोकतन्त्र शासनकी दुर्वलताओके परिणाम है । वास्तवमे पूंजी-पद्धतिका* जो सकट है, वही लोकतन्त्र शासनके लिए जिम्मेदार है ।

जव वह देखते है कि पूंजी-प्रथाके सूत्र धीरे-धीरे थोड़ेसे गुटोमें केन्द्रीभूत होते जाते है और पूंजीप्रथामे स्वाधिकार वढता जाता है, जव वह देखते है कि वडे-वडे ट्रस्ट और व्यवसायके डाइरेक्टरोका व्यक्तिगत प्रभाव वास्तविक है तव व्यवसाय तथा वैकोके वादशाहोके गुटसे उनमे यह भ्रम फैलता है कि अधिनायको (डिक्टेटर्स) के द्वारा शायद त्राण सम्भव हो, शायद उनके नेतृत्वमे वह संकटकी अवस्थाको पार कर सके । यही कारण है कि नात्सियोकी पाशविक वर्वरता और अत्याचारको जनताने उपेक्षाकी दृष्टिके साथ देखा ।

समाजवादी तथा कम्युनिस्टोकी भूलसे भी नात्सी दलने लाभ उठाया । जव जर्मनीमें समाजवादकी उन्नति हुई थी, तव समाजवादियोने अपने शत्रुओको पूर्णरूपसे पदच्युत नही किया था । सेनापर पुराने फौजी लोगोका आधिपत्य था । व्यापार-व्यवसाय पूंजीपतियोके हाथमे था । इसके अतिरिक्त समाजवादी तथा कम्युनिस्ट दल वरावर आपसमे लड़ते रहे । इन्होने एक साथ मिलकर नात्सियोका मुकावला नही किया ।

असली और नकली समाजवाद

जव डाक्टर अन्सारी ऐसे महानुभाव नव्वे फीसदी समाजवादी होनेका दावा करते है और साथ-साथ इस विषयपर खुशी भी जाहिर करते है कि काग्रेसको समाजवादसे कोई भी खतरा नही है तो मैं इसकी जरूरत महसूस करता हूँ कि खरे और खोटेका फर्क साफ कर दिया जाय, जिसमे असली वस्तुकी पहचानमे कोई दिक्कत न हो । मै डाक्टर महोदय तथा किसी दूसरे सज्जनकी नेकनीयती और ईमानदारीपर किसी प्रकारका हमला नही करता । मैं मानता हूँ कि अपने देशमे वहुतसे ऐसे सज्जन है, जो निहायत ईमानदारीके साथ सच्चे दिलसे यह सरल विश्वास रखते है कि समाजवादके स्वरूपके सम्वन्धमे जो धारणा

उन्होने बना ली है, वह ठीक है । इनमे बहुतसे ऐसे सज्जन है जो समाजवादके वास्तविक स्वरूपसे अपरिचित हैं, उन्होने वैज्ञानिक समाजवादका अध्ययनतक नही किया है । वैज्ञानिक समाजवाद गम्भीर चिन्तन और अध्ययनका विषय अवश्य है, तिसपर भी उसके स्थूल सिद्धान्तोके समझनेमे कोई कठिनाई नही प्रतीत होती । बहुतसे हमारे ऐसे भाई भी है, जो वैज्ञानिक समाजवादके मौलिक सिद्धान्तोको जानते हुए भी अपनी एक भिन्न कल्पना-को ही सच्चा समाजवाद मानते है ।

पहले तो हमे ऐसे लोगोका विचार करना है जो कल्पनाके साम्राज्यमे विचरण करते है और तरह-तरहके हवाई महल बनाया करते है । जो देश वर्तमानकालमे हीन दशाको प्राप्त हो गया है और जो अतीतके गौरवकी कथासे विशेष रूपसे प्रभावित है, वह अतीतमें ही स्वर्णयुगकी स्थापना करता है और जब कभी वह अपनी उन्नतिकी बात सोचता है, तो वह उसी स्वर्ण-युगको फिरसे वापिस लानेकी चेष्टा करता है । ऐसे देशमे एक ऐसे समुदायका पैदा हो जाना अत्यन्त स्वाभाविक है, जो विश्वास करता है कि अतीतका समाज ही एक आदर्श समाज था जिसमे गरीब और अमीरका फर्क नही था और जिसमे सारी प्रजा सुखी और समृद्ध थी, वह एक क्षणके लिए भी नही सोचता कि अतीतका वापिस आना कितना असम्भव है । वह इस बातको माननेको भी तैयार नही है कि अतीत उतना सुन्दर और मनोरम नही था जितना कि वह सोचता है । हम यह मानते है कि पूँजीवादी पद्धतिकी बुराइयाँ प्राचीन सामाजमे नही पायी जाती थी, पर इसमे भी सन्देह नही है कि उसकी निजकी बुराइयाँ कुछ कम न थी । प्राचीन समाजमे इस बातकी भी आशा नही की जा सकती थी कि श्रमजीवियोका कोई सगठन बन सकेगा, जो उनको अत्याचारोसे छुटकारा दिलावे ।

इस विचारके लोग समाजवादके प्रभावको बढते देखकर अपनी कल्पना तथा समाजवादके सिद्धान्तोमे सामञ्जस्य स्थापित करनेकी चेष्टा करते है । जिस प्रकार विज्ञानके इस युगमे प्रत्येक मजहब, जो इस नये वातावरणमे जीवित रहना चाहता है, इस बातको साबित करनेकी कोशिश करता है कि उसके सिद्धान्त विज्ञानसम्मत है, उसी प्रकार प्रत्येक समुदाय, जो राजनीतिक क्षेत्रमे अग्रसर होना चाहता है, उसे विवश होकर यह दिखलाना पड़ता है कि उसकी कल्पनाएँ समाजवादके सिद्धान्तके विरुद्ध नही हैं । जो लोग अतीतमे ही स्वर्ण-युगकी कल्पना करते हैं, वह इस बातको दिखलानेकी चेष्टा करते है कि अतीतका समाज ही समाजवादके सच्चे सिद्धान्तोपर आश्रित था । पाश्चात्य देशोमे तो इसाइयोने इस प्रकारके प्रयत्न किये है । इसीके फलस्वरूप वहाँ क्रिश्चियन सोशलिज्म, (Christian Socialism) पाया जाता है । इसके अनुयायियोका कहना है कि क्रिश्चियन धर्म और समाजवाद एक-दूसरेके लिए नितान्त आवश्यक है और क्रिश्चियन धर्म ही समाजवादका नैतिक आधार है । उनका यह भी विश्वास है कि समाजवादकी विचार-पद्धतिका जन्म ही इसी धर्मसे हुआ है । यदि अपने देशमे भी इस प्रकारके प्रयत्न किये जाये, तो मुझको आश्चर्य न होगा ।

हिन्दू चाय और मुसलिम चायकी तरह हिन्दू समाजवाद और मुसलिम समाजवादके पैदा होनेमे देर न लगेगी।

वैज्ञानिक समाजवादको ऐसे विचारोका विरोध करना पडेगा, क्योकि ये विचार निराधार और कल्पित है और इसलिए इनके सफल होनेकी कोई सम्भावना नही है। अतीतके पुनरुज्जीवनका प्रयत्न बालूसे तेल निकालनेके प्रयत्नकी तरह सर्वथा विफल होगा। ऐसे विचारोका प्रचार कर हम देशको गलत रास्तेपर ही ले जायेगे। केवल कल्पनाके बलपर हम अपना अभीष्ट सिद्ध नही कर सकते। यदि हम मशीन-युगकी बुराइयोसे बचना चाहते है, तो उसका यह तरीका नही है कि हम पीछे कदम रखें और सारी औद्योगिक उन्नतिका खातमा करके ससारकी गरीबी और मुसीबतको और भी बढा दें। इन बुराइयोके अन्त करनेका तरीका एकमात्र वैज्ञानिक समाजवाद है। इस तरीकेके बर्तनेसे हम पूंजीवादी प्रथाके लाभको सुरक्षित रखते हुए उसके दोषोंको दूर कर सकेंगे, अन्यथा नही।

इतिहाससे पता चलता है कि प्राचीनकालमे कई देशोमे भूमि व्यक्तिकी सम्पत्ति न होकर समाजकी सम्पत्ति मानी जाती थी। रूसमे ऐसी ग्राम-संस्थाएँ १९ वी शताब्दीतक पायी जाती थी। भारतवर्षके साहित्यसे भी ऐसी सस्थाओंकी सत्ताका पता चलता है। यद्यपि समाजवादकी व्याख्याके अनुसार समाजवादका लक्षण यही है कि उत्पादनके साधन व्यक्ति विशेषकी मिलकियत न होकर समाजकी मिलकियत हो, तथापि हमको इस भूलमे न पड़ना चाहिये कि यह प्राचीन ग्रामसस्थाएँ वैज्ञानिक समाजवादके सिद्धान्तपर आश्रित थी। उत्पादनके जो तरीके उस समय काममे आते थे, उनसे सम्पत्ति इतनी प्रचुरतामें नही उत्पन्न हो सकती थी कि समाजवादके उद्देश्योकी पूर्ति हो सके। हमको यह ध्यानमें रखना चाहिये कि समाजवादका उद्देश्य समाजके धनको सबमें बराबर-बराबर बाँटना नही है। यदि यही उद्देश्य हो, तो अत्यन्त निर्धन देशोमे इस बँटवारेका फल यही होता कि अमीर लोग तो गरीब हो जाते, पर गरीबोकी गरीबी दूर नही होती। वैज्ञानिक समाजवाद गरीबोकी गरीबी दूर करना चाहता है, न कि कुछ अमीरोसे कुढकर उनको तबाह करना। इसलिए वैज्ञानिक समाजवादकी कल्पना भी मशीन-युगके पहले नही हो सकती थी। मशीन-युग तथा उसमे पैदा होनेवाला वर्तमान पूंजीवाद ही वैज्ञानिक समाजवादका जन्मदाता है। मशीनके द्वारा जो औद्योगिक उन्नति हुई है, उसने यह प्रमाणित कर दिया है कि प्रचुरताके इस युगमे जब लोग इसलिए मुसीबत नही उठाते कि संसारमे भोजन तथा सुखकी सामग्रीकी स्वल्पता है बल्कि इसलिए कि उत्पादनके साधनोके मालिक अपने स्वार्थके लिए, न कि समाजके हितके लिए वस्तुओका उत्पादन करते है, समाजवादकी प्रतिष्ठा करना सम्भव हो गया है। मशीनयुगके पहले सम्पत्तिकी वृद्धिका कोई ऐसा बड़ा जरिया नही था और इसलिए उस जमानेमे चाहे भूमिपर समाजका ही क्यो न अधिकार रहा हो, समाजवादके द्वारा समाजकी गरीबी नही दूर की जा सकती थी।

इसका जिक्र करना यो आवश्यक प्रतीत हुआ कि रूसके इतिहासमे हमको एक राजनीतिक दलका (Narodnik) उल्लेख मिलता है जिसकी विचार-पद्धति इसी प्रकारकी थी। यह दल रूसमें ऐसी ग्राम-सस्थाओको कायम करना चाहता था, जिनमे

भूमिका स्वत्व व्यक्तियोके हाथमे न होकर सारे समाजके हाथमे हो । इन लोगोका विचार था कि ऐसा करनेसे हम समाजवादकी प्रतिष्ठा भी कर सकेंगे और मशीन-युगके दोषोसे भी मुक्त रह सकेंगे । रूसके वैज्ञानिक समाजवादियोंको इनका घोर विरोध करना पड़ा था और वे इसके मुकावलेमे तभी सफल हो सके थे, जब वारम्वार विफल होनेके कारण लोगोको इनकी नीतिपरसे विश्वास उठ गया था । रूसके इतिहाससे यह भी पता चलता है कि रूसी-क्रान्तिके समय Narodnik ने समाजवादियोका विरोध किया था और क्रान्तिके दवानेमे श्रम-जीवियोके विरुद्ध पूँजीपतियोकी सहायता की थी ।

अपने देशमे अभी कोई ऐसा दल पैदा नही हुआ है, पर जो लोग अतीतकालमे स्वर्णयुग-की तलाश करते है, वह इन्ही ग्राम-सस्थाओका आश्रय लेकर इसी प्रकारके समाजवादकी कल्पना कर सकते है ।

यह एक आश्चर्यकी वात है कि अपने देशमे जो लोग मशीन-युगके विरोधी है और जिनकी आँख भविष्यपर न होकर अतीतपर है, वह Narodnik की तरह कौसिलोमे न जानेके भी सिद्धान्ततः विरोधी है । दोनोमे विचार साम्य होनेसे कार्यमे भी समानता पायी जाती है और इसी विचारके लोगोमेसे Narodniks के भाई भी निकल सकते है ।

अपने देशमे एक और वर्ग है, जो समाजकी वर्तमान अवस्थाको कायम रखना चाहता है, पर देखता है कि उस व्यवस्थासे जो दोष उत्पन्न हुए है यदि वह दूर नही किये जायेंगे तो वर्तमान समाजका नाश हो जायगा । इसलिए यह वर्ग वर्तमान व्यवस्थामे विना किसी प्रकारका मौलिक परिवर्तन किये उसके दोषोको दूर करनेकी चेष्टा करता है । अधिकतर लोग इसी वर्गके है । यह वास्तवमे समाजसुधारक है । इन्हे समाजवादी न कहना चाहिये, पर यह लोग भी अपनेको समाजवादी कहनेकी हिम्मत दिखाते है । ये नाना प्रकारके सुधारकी योजनाएँ उपस्थित करते है और वर्तमान समाजके सकटको टालनेका प्रयत्न करते है । इस वर्गमे ऐसे वहुतसे लोग शामिल है, जो सद्भावसे प्रेरित होकर गरीवीको दूर करते है । हम उनके त्यागका आदर करते है, पर इसका यह अर्थ नही है कि जिस नीतिका वह अनुसरण करते है उसका हम भी समर्थन करे । सुधारकी इस नीतिसे समाजवादीका अभीष्ट सिद्ध नही हो सकता । इस नीतिका वरावर विरोध करना चाहिये; क्योकि खुले विरोधियोकी अपेक्षा इस नीतिके समर्थकोसे वैज्ञानिक समाजवादको अधिक नुकसान पहुँचता है ।

एक और भी वर्ग हो सकता है जो समाजवादियोकी उन माँगोमेसे कुछ माँगोंको स्वीकार कर ले, जो परिवर्तनकी अवस्थाको दृष्टिमे रखकर तैयार की गयी है और इसी नाते समाजवादी होनेका दावा पेश करे । इन माँगोमे कई ऐसी माँगे है, जो व्यक्तिगत सम्पत्तिका अन्त तो नही करती, किन्तु उनको मर्यादित अवश्य कर देती है । वड़े-वडे टैक्स तथा वारिसोपर टैक्स ऐसे उपाय है जिनसे व्यक्तियोकी सम्पत्तिका नियन्त्रण हो सकता है ; पर इससे गरीवीका अन्त निश्चय नही होता । इस वर्गकी भूल यही है कि कि यह समझता है कि ये सव उपाय गरीवी तथा समाजकी अन्य प्रचिलत वुराइयोको दूर करनेके लिए पर्याप्त है । इसके प्रतिकूल एक समाजवादी ऐसी माँगोका समर्थन केवल

इसलिए करता है कि वह जानता है कि व्यक्तिगत सम्पत्तिका लोप एकबारगी नही हो सकता ।

मेरी छोटी बुद्धिमे यही आता है कि कांग्रेस धीरे-धीरे इसी विचार-पद्धतिका समर्थन करने लगेगी । कांग्रेससे वैज्ञानिक समाजवादियोको सचेत रहना चाहिये और उन्हें सुलह और समझौतेके नामपर अपने आदर्शसे नही गिरना चाहिये ।

समाजवादके कितने मुख्य-मुख्य विकृत रूप है या हो सकते है, उनकी चर्चा थोड़ेमे मैंने ऊपर की है । पाश्चात्य देशोमे भी ये सब रूप और प्रकार पाये जाते है ।

वैज्ञानिक समाजवाद न तो सुधारवाद है और न काल्पनिक समाजवाद । यह तर्ककी कसौटीपर कसा जा सकता है और यह समाजकी एक ऐसी नवीन आर्थिक व्यवस्था प्रतिष्ठित करना चाहता है, जिसमे उत्पादनके साधन तथा उत्पन्न वस्तुओका वितरण और विनिमय समाजके हाथमें हो ।

वर्तमान औद्योगिक पद्धतिके युगके पहले वैज्ञानिक समाजवादकी प्रतिष्ठा करना सर्वथा असम्भव था । यूरोपकी औद्योगिक क्रान्तिके फलस्वरूप ही वैज्ञानिक समाजवादका जन्म हुआ है ।

मशीनके युगमे ही बड़े पैमानेपर उद्योगका होना सम्भव हो सका है और वस्तुओंकी पैदावार असीमित मात्रामे बढायी जा सकती है, पर आपसकी स्पर्द्धाके कारण पूंजीपतियोंमे मुनाफेके लिए होड़-सी लग गयी और माल खपतसे कही ज्यादा तैयार होने लगा । इसीलिए समय-समयपर व्यापारमे संकटकी अवस्था उपस्थित होती रहती है । आजकल जो विश्व-व्यापी अर्थ-सकट है, उससे छुटकारा पाना कठिन-सा मालूम पडता है । लोगोका कष्ट बढ़ता ही जाता है । एक तरफ बेकारी बढ़ती जाती है, दूसरी ओर पूंजीपतियोको कीमत बढानेके लिए पैदावारको कम करना पड़ता है । जिस प्रकारसे आजका व्यवसाय पूंजी-पतियोंद्वारा संचालित होता है, उससे पैदावारकी वृद्धिमें भारी रुकावट होती है । यह संकटकी अवस्था तभी दूर हो सकती है, जब एक सर्वथा विभिन्न सामाजिक व्यवस्थाका आयोजन किया जावे । नये समाजमे स्पर्द्धाको कोई स्थान नही रहेगा और एक निश्चित आयोजनाके अनुसार तथा समाजके सब सदस्योकी आवश्यकताओको पूरा करनेके लिए समाजके औद्योगिक जीवनका संचालन किया जायेगा । जब समाजके हितके लिए उद्योग-व्यवसायका संगठन होगा और उत्पादनके सारे साधन व्यक्तियोकी मिलकियत न होकर समाजकी मिलकियत बन जायेगे, तो अपने साधनोके अनुसार समाज जीवनकी आवश्यकताओको पूरा करनेके लिए इतने परिमाणमे वस्तुओका उत्पादन करेगा कि समाजके प्रत्येक सदस्यको पूरी स्वतन्त्राके साथ अपनी शक्तियोके विकासका अवसर मिलेगा । समाजके हाथमे जब उत्पन्न वस्तुओका वितरण और विनिमय रहेगा, तो समाजमे दरिद्रता और अशान्तिके स्थानमे तुष्टि, पुष्टि और शान्ति आ विराजेगी । आज जो पैदावारको कम करनेकी कोशिश की जा रही है उसके कम करनेका कोई कारण नही रह

जायगा। पैदावार तेज रफ्तारसे बढेगी। देहातोकी आज जो खराव हालत है, वह दूर हो जायेगी और अर्थ-शोपणकी नीतिका अन्त होगा।

महात्मा गांधीको श्रद्धाञ्जलि

कल हमारे राष्ट्रपिता महात्मा गान्धीने, जो आजके इस युगके सबसे बडे महापुरुष थे, अपने जीवनकी अन्तिम लीलाको समाप्त किया। आज दिल्ली शहरमे शामके ४ बजे यमुना नदीके तटपर उनका महाप्रस्थान होनेवाला है। वह हमारे मार्ग-प्रदर्शक थे। उन्होंने हमको जीवनके आध्यात्मिक और समाजिक मूल्योकी शिक्षा दी। भारतवर्षकी प्राचीन संस्कृतिको परिष्कृत कर उस पुरानी ज्योतिको फिरसे जगाया। भारतीय समाजके करोडो निश्चेष्ट और निष्प्राण मानवोके हृदयोमें जीवनकी एक नयी ज्योति जगायी, जिसने हमको स्वतन्त्रता प्रदान की। वह मशाल जिसको कि प्राचीन कालके ऋषियोने इस पुण्य-भूमिमे प्रज्वलित किया था, जिसको भगवान् बुद्धने फिरसे जगाया, जिसको समय-समयपर महापुरुषोने आकर, जगाकर भारतवर्षकी अखण्ड सम्पत्तिकी रक्षा की, उसी मशालको फिरसे जलाकर और हमारे जीवनमे एक नयी ज्योति, एक नयी स्फर्ति, एक नया चैतन्य प्रदानकर वही मशाल हमारे कमजोर हाथोमे सौपी थी और जव उन्होने अपने सामने उस मशालको हमारे कमजोर हाथोसे जमीनपर गिरते देखा तो हमारे हाथोको वल देनेके लिए अपना सहारा दिया। वह महापुरुष, हमारे राष्ट्रकी सबसे बडी सम्पत्ति आज उठ गयी, आज हमसे छिन गयी है। हम आज अपनेको निराश्रित निस्पाय और निरवलम्ब पा रहे है। वह हमारा दीपक आज बुझ गया। चारो ओर अन्धकार है। सारा भारतीय समाज शोकमे निमग्न है। ऐसे अवसरपर हममे कातरताका आना स्वाभाविक है।

इस रंजकी घडीमे मुझे अपने देशके इतिहासका वह अवसर स्मरण हो आता है जब हमारे देशका एक महापुरुष, नही-नही सारे ससारका महापुरुष, अर्थात् भगवान् बुद्धने—जब वह अपना शरीर छोड रहे थे—भारतीयोको एक अनुपम शिक्षा दी थी। उस अवसरपर हमारे प्रान्तके कुशीनगरमे जब भगवान् बुद्ध मृत्युशय्यापर पडे थे तो अपने पास अपने प्रिय शिष्य आनन्दको न देखकर उन्होने भिक्षुओसे पूछा कि आनन्द कहाँ है? भिक्षुओने कहा—"भगवान् आनन्द बाहर खड़ा रो रहा है।" उन्होने कहा—"उसको बुलाओ"। वह भगवान्के सम्मुख आया। भगवान्‌ने कहा—"हे आनन्द, क्यो रोते हो?" उसने कहा, "ससारका दीपक बुझ रहा है, ससार अन्धकारसे आच्छन्न होनेवाला है। आपकी अनुपस्थितिमे हम निरवलम्ब हो जायँगे। हमे उपदेश देनेवाला, हमको ससार-चक्रसे उबारनेवाला कौन होगा?" भगवान्‌ने कहा— "हे आनन्द, तुम हमारी उस शिक्षा-को क्यो भूल गये? क्या हमने तुम्हे बार-बार यह नही सिखाया कि जो उत्पन्न होता है उसकी मृत्यु अवश्यम्भावी है? हमने तुम्हे क्या यह नही बताया कि तुम अपने पैरोपर

खडे हो, स्वयं अपने दीपक हो, किसी दूसरे दीपकका सहारा मत लो ? हमारे महानिर्वाणके अनन्तर हमारे निर्वाणकी शिक्षा ही तुम्हारे लिए दीपकका काम करेगी। जाओ, रोओ मत, यह रोनेका समय नही है। निर्वाणके लिए सदा प्रयत्नशील होते रहो।" यदि हमारा राष्ट्रपिता, ससारका महापुरुष अपनी मृत्युशय्यापर पडा हुआ कुछ वात कर सकता तो मुझे पूरा विश्वास है कि उसका भी उपदेश इन्ही सारगर्भित शब्दोमे होता। यद्यपि उस समय वह हमको कुछ उपदेश अपनी अन्तिम घड़ियोंमें न दे सके, किन्तु हम जानते है कि अपने जीवनमे उन्होने वार-वार यह कहा कि तुम हमारा सहारा मत ढूंढो।

इसीलिए सन् ३५ मे उन्होने काग्रेसकी सदस्यता छोड़ी और इस वातके समझनेके लिए कि वड़े-से-वडा महापुरुष क्यो न हो, आखिर उसके जीवनकी अवधि भी निश्चत है। यदि तुम इसी प्रकारसे उसके ऊपर आश्रित होगे तो उसके उठ जानेके अनन्तर तुम अवश्य खिन्न होगे, और अवसादसे भर जाओगे। इसी प्रकार समय-समयपर हमको अपने पैरोपर खड़े होनेका उपदेश देकर महात्माजीने हमको यह वताया कि तुम अपने पैरोंपर खडा होना सीखो ! भगवान् बुद्धके वह शब्द आज हमारे कानोमे गूंज रहे है। यह दुखका समय है। ज्यो-ज्यो दिन वीतते जायेंगे हम महात्माज़ीके अभावको अधिकाधिक अनुभव करते जायँगे। किन्तु यदि हम उनके सच्चे अनुयायी है, यदि हम उनके उपदेशो और आदेशोपर दृढ रहना चाहते है, तो हमारा कर्तव्य है कि वीर पुरुषोकी तरह उनकी शिक्षाको शिरोधार्य करे। हम स्वयं अपने पैरोपर खडे हो। आत्मदीपक वने। भारतवर्षका प्रत्येक व्यक्ति, जो गाधीजीका अनुयायी कहलाता है, उसका आज यह परम पुनीत कर्त्तव्य है कि अपने हृदयमे उस ज्योतिको जगाकर दूसरोका मार्ग-प्रदर्शन करे। आज वह हाड़-मासकी कैदसे मुक्त होकर और भी विशाल रूपसे, और भी प्रभावशाली प्रकारसे हमारे हृदयोपर राज्य करेंगे। उनकी शिक्षाके प्रसारमे कठिनाई होनेके स्थानमे अव सुगमता होगी और आज जव वह राजनीतिके क्षेत्रसे उठे तो भारत ही नही सारा संसार उनकी शान्तिप्रेमकी शिक्षाको अपनानेके लिए तैयार होगा। इसके लिए आज मैं यही कहना चाहता हूँ कि हम भारतीय, जो कि अभागे है, जिनको कि इस आजादीके साथ जिन्दगीका पैगाम मिलनेकी जगह मौतका पैगाम मिला, यदि हम अब भी सँभलना चाहते है तो हमे चाहिये कि वह मशाल जिसको गांधीजीने हमारे हाथोको सौपा, वह पुरानी भारतवर्षकी मशाल जो पुरानी भी है और आजके लिए नयी भी, उस मशालको अपने मजवूत हाथोसे पकडे और इस वातकी चेष्टा करे कि हमारे हाथमेसे इस मशालको कोई छीन न ले। जवतक हम उस मशालके नम्वरदार है, तवतक भारतवर्षका वाल कोई वॉका नही कर सकता। जो आज यह दावा करते है कि गाधीजी भारतीय संस्कृति और हिन्दू-धर्मके विनाशक है और विरोधी है, उन्होने भारतीय सस्कृति और धर्मके मर्म और हृदयको नही पहचाना। भारतीय इतिहास पुकारकर कहता है कि ससारमे एकता होनी चाहिये। सर्वत्र एक ही भाव, एक ही आत्माका सचरण होता है। सारा ससार एक सूत्रमे वँधा हुआ है। मानव-जातिसे प्रेम करो। अत्याचार, अनाचारसे घृणा करो।

जीवनका मार्ग शान्तिमे है, प्रेममे है, धर्ममे है, जीवनके सामाजिक और आध्यात्मिक

मूल्योकी रक्षामें है, अत्याचारमे नही, अनाचारमे नही, घृणामे नही, विद्वेषमे नही। मैं पूछना चाहता हूँ इस पतित भारतको उठानेवाला, उसका उद्धार करनेवाला, सारे समाजमें उसको आदर-सम्मान दिलानेवाला, भारतका नाम जो अवतक अपमानित था, तिरस्कृत था, कलंकित था, उसको गौरव प्रदान करनेवाला, भारतीय जिसका नाम लेकर समस्त संसारमे मस्तक ऊँचा करके भ्रमण कर सकते थे यह काम किसका है? किसने इस भारतीय हिन्दू समाजको, जो कि पतित हो गया था, जो कि घोर वर्ण-व्यवस्थासे पिसा जा रहा था, जिसने स्पृश्यताको इतना उत्तेजन देकर अपने सामाजिक बन्धनोको शिथिल कर दिया था, जिसमे सुदृढता नही थी उसमे वह सुदृढता लानेवाला, इस भारतीय समाज, हिन्दू समाजके अनाचार अत्याचारको नाश करनेवाला, पतितोका उद्धार, स्त्रियोको समाजमे अपना उचित स्थान दिलानेवाला कौन है? वह गाधी है। भारतको स्वतन्त्र वनानेवाला कौन है? वह गाधी है। इसलिए जो चाहते है कि भारतका भविष्यमे उत्थान हो, जो चाहते हैं स्वतन्त्रताका उचित उपभोग हो, जो चाहते हैं कि भारतवर्ष केवल अपनी स्वतन्त्रताका भोग न करे, किन्तु समस्त एशियाका मार्ग-प्रदर्शक वने, उसका नेतृत्व करे—नही-नही सारा ससार, जिसका हृदय आज व्यथित हो रहा है, जो 'वास्तविकता' के भूतसे पिसा जा रहा है, जो जीवनके मूल्योको भूल रहा है, जिसके सामने सामाजिक नीतिका कोई मूल्य नही, जिसके सामने सत्यका कोई मूल्य नही, उस समाजको यदि कोई शान्ति दिला सकता है उस व्यथित हृदयको शान्त कर सकता है, ससारमे फिरसे शान्ति, सुख और वैभवकी स्थापना कर सकता है तो वह भारतवर्ष कर सकता है। किन्तु तभी कर सकता है जब वह महात्मा गाधीके मार्गके ऊपर चले। हममे वह शक्ति हो कि हम उनके पद-चिह्नोका अनुसरण करें। आज हमे महात्माजीके लिए प्रार्थना नही करनी है। वह हुतात्मा जीवनभर सारे समाजकी सेवा करते रहे, मरकर भी उन्होने अपने समाजका उद्धार किया। हमको आज प्रार्थना करनी है कि 'भगवन्, हमको सद्बुद्धि दो, भगवन् हममे सात्विक वुद्धि दो, भगवन् हम जिस मार्गपर चले वह जीवन प्रदान करनेवाला मार्ग हो, उत्तिष्ठ मार्ग हो। वह हमको पतित वनानेवाला न हो, हमको मृत्युकी घाटीमे उतारनेवाला मार्ग न हो और यदि इस सन्देशको किसीने लिया है तो महात्मा गाधीने। महात्मा गाधी सदा जीवित रहेंगे और वह तभी जीवित रह सकते हैं जब भारतीयोमे थोडेसे भी लोग ऐसे हो जो उनके पद-चिह्नोका अनुसरण करे। गुरु गोविन्दसिंहने जव अपने शिष्योकी परीक्षा की तो उनको पाँच ही शिष्य पूरे मिले, सच्चे मिले, जिनकी उनमे निष्ठा थी, जो उनका पूरी तरहसे अनुसरण करनेको तैयार थे। यही गुरुके पच प्यारे थे, इन्हीको सवसे पहले उन्होने अमृत चखाया। अगर मुष्ठिमेय लोग भारतवर्षमे पैदा हो, और जीवित हो, जो उनमे आस्था रखते हो, जो उनमे श्रद्धा रखते हो, जो उनके वताये हुए मार्ग पर चले तो मै यह कहना चाहता हूँ कि इस देशका कोई वाल वॉका नही कर सकता। इस देशका भविष्य गौरवमय है और उसके लिए हमे उचित गर्व होगा।

मुझे इस अवसरपर कुछ और कहना नही है। मेरा गला दु खसे भरा हुआ रुँधा जाता है। यह वहुतसे शव्दोका अवसर नही। यह काम करनेका अवसर है। जो भारतवर्षके

भविष्यके लिए सचेष्ट है, जो चाहते हैं कि उसकी उन्नत अवस्था हो, जो उसको आज पतनकी अवस्थासे बचाना चाहते हैं, उनका यह कर्त्तव्य है कि वे सघबद्ध होकर, इस राजनीतिके पचडेको छोडना हो तो उसको भी छोड़कर, इस देशमें एक ऐसे जीते-जागते सांस्कृतिक आन्दोलनका प्रचार करे, जिस आन्दोलके बलपर उनकी शिक्षा इस देशमें टिक सके। प्रार्थी हूँ कि भारतवर्षमे ऐसे विशाल देशमे, जहाँ अनगिनत लोग बसते हो, यहाँके नर-नारियोमे थोडेसे लोग अवश्य होगे जो आजकी परिस्थितियोसे उठकर साम्प्रदायिक शान्तिके लिए चेष्टा करेगे। और यदि ऐसा हुआ तो हमारा भविष्य उज्ज्वल है, इस देशका कल्याण होनेवाला है।'[1]

युक्तप्रान्तकी असेम्बलीमें दिया भाषण

संसारके सर्वश्रेष्ठ मानव तथा भारतके राष्ट्रपिता महात्मा गाधीके प्रति उनके निधनपर अपनी श्रद्धाञ्जलि अर्पित करनेका अवसर इस व्यवस्थापिका सभाको आज ही प्राप्त हुआ है। अपने देशकी प्रथाके अनुसार तथा लोकाचारके अनुसार हमने १२ दिनतक शोक मनाया। यह शोक महात्माजीके लिए नहीं था, क्योंकि जो सर्व-भूत-हितमे रत है और जो मानव-जातिकी एकताका अनुभव अपने जीवनमे करता रहा हो उसको शोक कहाँ, मोह कहाँ ? यदि हम रोते हैं, बिलखते हैं तो अपने स्वार्थके लिए बिलखते हैं, क्योंकि आज हम इस बातका अनुभव कर रहे हैं कि हमने अपनी अक्षय निधि खो दी है, अपनी चल सम्पत्तिको गँवा दिया है।

महात्माजी इस देशके सर्वश्रेष्ठ मानव थे, इसीलिए हम उनको राष्ट्रपिता कहते हैं। हमारे देशमे समय-समयपर महापुरुषोने जन्म लिया है और इस जातिको पुनरुज्जीवित करनेके लिए नूतन सन्देशका सचार किया है। इसमें तनिक भी सन्देह नही है कि अन्य देशोमे महापुरुष उत्पन्न हुए है, लेकिन मेरी अल्प बुद्धिमे महात्मा गांधी ऐसा अद्वितीय बेजोड महापुरुष केवल भारतवर्षमे ही जन्म ले सकता था और वह भी बीसवी शताब्दीमे, अन्यत्र कही नही। क्योकि महात्मागांधीने भारतवर्षकी प्राचीन सस्कृतिको, उसकी पुरातन शिक्षाको परिष्कृत कर युग धर्मके अनुरूप उसको नवीन रूप प्रदान कर, उसमें वर्तमान युगके नवीन सामाजिक एवं आध्यात्मिक मूल्यका पुट देकर एक अद्भुत एव अनन्यतम सामञ्जस्य स्थापित किया। उन्होने इस नवयुगकी जो अभिलाषाएँ है, जो आकाक्षाएँ है, जो उसके महान् उद्देश्य है, उनका सच्चा प्रतिनिधित्व किया है। इसीलिए वे भारतवर्षके ही महापुरुष नही थे अपितु समस्त संसारके महापुरुष थे। यदि कोई यह कहे कि उनकी राष्ट्रीयता सकुचित थी, तो वह गलत कहेगा। यद्यपि महात्मा गाधी स्वदेशीके व्रती थे, भारतीय संस्कृतिके पुजारी थे तथा भारतीय राष्ट्रीयताके प्रबल समर्थक थे, किन्तु उनकी

---

१. 'लखनऊ रेडियो' ३१ जनवरी, सन् १९४७ ई०

राष्ट्रीयता उदारतासे पूर्ण थी, ओतप्रोत थी । वह सकुचित नही थी । संकुचित राष्ट्रीयता वर्तमान समाजका एक वडा अभिशाप है, किन्तु महात्माजीका हृदय विशाल था । जिस प्रकार भूकम्प-मापक यन्त्र पृथ्वीके मृदुसे मृदु कम्पको भी अपनेमे अकित कर लेता है उसी प्रकार मानव-जातिकी पीडाकी क्षीण-से-क्षीण रेखा भी उनके हृदय-पटलपर अकित हो जाती थी । हमारा देश समय-समयपर महापुरुषोको जन्म देता रहा है और मै समझता हूँ कि इस व्यवसायमे भारत सदासे कुशल रहा है, अग्रणी रहा है । पतित अवस्थामे भी, गुलामीकी हालतमे भी भारतवर्ष ही अकेला ऐसा देश रहा है, जो जगद्वन्द्य महापुरुषोको जन्म दे सका है । मैं समझता हूँ कि इस व्यवसायमे भारत सदासे कुशल रहा है । हमारे देशमे भगवान् बुद्ध हुए तथा अन्य धर्मोके प्रवर्तक हुए, किन्तु सामान्य जनताके जीवनके स्तरको ऊँचा करनेमे कोई भी समर्थ नही हो सका । यह यथार्थ है कि कि पीडित मानवताके उद्धारके लिए नूतन धार्मिक सन्देश उन्होने दिये थे, समाजके कठोर भारको वहन करनेकी समर्थता प्रदान करनेके लिए उन्होने नये-नये आश्वासन दिये थे, उनके विक्षुब्ध हृदयोको शान्त करनेके लिए पारलौकिक सुखोकी आशाएँ दिलायी थी, लेकिन सामान्य जीवनके जो कठोर सामाजिक वन्धन है, जो जनताके ऊपर कठोर शासन चल रहा है, जो सामाजिक और आर्थिक विषमताएँ है, जो दीनो और अकिंचन-जनोको भाँतिभाँतिके तिरस्कार और अवहेलनाएँ सहनी पड़ती है, इन सव समस्याओको हल करनेवाला यदि कोई व्यक्ति हुआ तो वह महात्मा गाधी है । उन्होने ही सामान्य जनोके जीवनके स्तरको ऊँचा किया । उन्होने जनतामे मानवोचित स्वाभिमानको उत्पन्न किया । उन्होने ही भारतीय जनताको इस बातके लिए सन्मत प्रदान किया कि वह साम्राज्यशाहीके भी विरुद्ध विरोध करे और यह भी पाशविक शक्तियोका प्रयोग करके नही, किन्तु आध्यात्मिक वलका प्रयोग करके हुआ । उनकी अहिसा बेजोड थी । भगवान् बुद्धने कहा था 'अक्रोधेन जयेत् क्रोधम्' अर्थात् अक्रोधसे क्रोधको जीतना चाहिये । उनकी अहिसाका सिद्धान्त भी केवल व्यक्तिगत आचरणका उपदेशमात्र न था, किन्तु सामाजिक समस्याओको हल करनेके लिए अहिंसाको एक उपकरण वनाया और राजनीतिक क्षेत्रमे अपने महान् ध्येयकी प्राप्तिके लिए उसका सफल प्रयोग करना महात्मा गाधीका ही काम था और चूंकि वह ससारमे अहिंसाको प्रतिष्ठित करना चाहते थे, इसलिए उनकी अहिंसाकी व्याख्या भी अद्भुत, वेजोड़ और निराली थी । उनकी अहिसाकी शिक्षा केवल व्यक्तिगत आचरणकी शिक्षा नही है । उनकी अहिसाकी व्याख्या वह महान् अस्त्र है जो समाजकी आजकी विषमताओका, जो वैमनस्य और विद्वेपके कारण है, उन्मूलन करना चाहती है । अहिसाके ऐसे व्यापक प्रयोगसे ही अहिंसा प्रतिष्ठित हो सकती है ।

सामाजिक और आर्थिक विषमताको दूर कर, मनुष्यको मानवतासे विभूपित कर, आत्मोन्नतिके लिए सवको ऊँचा उठाकर जाति-पाँति और सम्प्रदायोके वन्धनोको तोड़कर ही हम अहिसाकी सच्चे अर्थोमे प्रतिष्ठा कर सकते है । यदि किसीने यह शिक्षा दी तो गांधीजीने शिक्षा दी । इसलिए यदि हम उनके सच्चे अनुयायी होना चाहते है तो समाजसे इस विषमताको, इस ऊँच-नीचके भेदभाव को, इस अस्पृश्यताको, समाजके नीचे-से-नीचेके

स्तरके लोगोंकी दरिद्रताको और आर्थिक विषमताको समाजसे सदाके लिए उन्मूलित करके ही हम सच्चे अहिंसक कहला सकते है। यह महात्मा गांधीजीकी विशेषता ही थी।

हमारे देशकी यह प्रथा रही है कि महापुरुषके जन्म निधनके बाद हमने उसको देवताकी पदवीसे विभूषित किया। समाधि और मन्दिर बनाये। उसकी मूर्तिको मन्दिरोमें प्रतिष्ठित किया या मजार बनाकर उसकी समाधि या मजारपर प्रेम और श्रद्धाके फूल चढाकर हम सन्तुष्ट हो गये। इसी प्रकारसे भारतवासियोने अनेक महापुरुषोंकी केवल उपासना और आराधना करके उनके मूल उपदेशोंको भुला दिया। मैं चाहता हूँ कि हम आज महात्मा गाधीको देवत्वकी उपाधि न दे, क्योकि देवत्वसे भी ऊँचा स्थान मानवताका है। मानवकी आराधना और उपासना समाधि-गृह और मजार बनाकर, उनपर फूल चढ़ाकर नही होती। दीपक, नैवेद्यसे उसकी पूजा नही होती, मानवकी आराधना और उपासनाका प्रकार भिन्न है। अपने हृदयोंको निर्मल बनाकर और उनके बताये हुए मार्गपर चलकर ही उसकी सच्ची उपासना होती है। यदि हम चाहते है कि हम महात्मा गाधीके अनुयायी कहलाये तो हमारा यह पुनीत कर्त्तव्य है कि जनतामे अपने प्रेम और श्रद्धाके भावोका प्रदर्शन करनेके साथ-साथ हम उनका जो अमर सन्देश है, उसपर अमल करे। उनका सन्देश केवल भारतवर्षके लिए नही, वरन् वर्तमान संसारके लिए है, क्योकि आज संसारका हृदय व्यथित है, दुखी है। एक नये महायुद्धकी रचना होने जा रही है। उसकी पूर्व सूचनाएँ मिल चुकी हैं। ऐसे अवसरपर संसारको एक नूतन आदेश और उपदेशकी आवश्यकता है। महात्माजीका बताया हुआ उपदेश जीवनका उपदेश है, मृत्युका सन्देश नही है। और जो पश्चिमके राष्ट्र आज सकुचित राष्ट्रीयताके नामपर मानव-जातिका बलिदान करना चाहते है, जो सभ्यता और स्वाधीनताका विनाश करना चाहते है, वे मृत्युके पथपर अग्रसर हो रहे है, वे मृत्युके अग्रदूत हैं। यदि वास्तवमे हम समझते है कि हम महात्माजीके अनुयायी है तो हमारी सबकी सच्ची श्रद्धाञ्जलि यही हो सकती है कि हम इस अवसरपर शपथ लें, प्रतिज्ञा करे कि हम आजीवन उनके बनाये हुए मार्गपर चलेगे, जो जनतन्त्रका मार्ग, समाजमे समता लानेका मार्ग, विविध धर्मो और सम्प्रदायोमे सामञ्जस्य स्थापित करनेका मार्ग है, जो छोटे-छोटे मानवको भी समान अधिकार देता है, जो किसी मानवका पक्ष नही करता, जो सबको समान रूपसे उठाना चाहता है। यदि महात्माजीके बताये हुए मार्गका हम अनुसरण करते तो एशियाका नेतृत्व हमारे हाथोमें होता और हमारा देश भी दो भूखण्डोमे विभाजित नही हुआ होता। हम एशियाका नेतृत्व करेगे, किन्तु इस गृह-कलहके कारण हमारा आदर विदेशोमे बहुत घट गया है। इसलिए यदि हम उस नेतृत्वको ग्रहण करना चाहते है तो हमको अपने देशमे उस सन्देशको कार्यान्वित करना होगा। भारतवर्षमे बसनेवाली विविध जातियोमे एकताकी स्थापना करके हमको ससारको दिखा देना चाहिये कि हम सच्चे मार्गपर चल रहे हैं। तभी सारा ससार हमारा अनुसरण करेगा।

महात्माजीके लिए जो सोचते है कि वह अन्तर्राष्ट्रीय व्यक्ति नही थे, उनका काम भारतवर्षतक ही सीमित था, यह उनकी भूल है। भारतवर्ष तो उनकी प्रयोगशालामात्र

था। वह समझते थे कि यदि सत्य और अहिंसासे वह देशमे सफलता प्राप्त कर सकेंगे, तो उनका सन्देश ससारमे फैलेगा।

मैं अपनी श्रद्धाञ्जलि महात्माजीको अर्पित करता हूँ और प्रार्थना करता हूँ कि मुझमें शक्ति पैदा हो कि मैं उनके बताये हुए मार्गका अनुसरण किसी-न-किसी अंशमे कर सकूं।

गांधीजी

गांधी इस युगके एक अद्वितीय पुरुष थे। वे क्या थे, यह किसी लक्षणसे लक्षित नही कराया जा सकता, न उन्हें किसी विशिष्ट वर्गमे बैठाया जा सकता है। उनके राजनीतिक तत्वज्ञानमे एक प्रकारका अराजकतावाद था, क्योकि राज्य-सस्थामे उनको विश्वास नही था, पर अन्य किसी बातमे पश्चिमके अराजकतावादियोके साथ उनका कोई साम्य नही था। वे समाजवादी थे, पर वैज्ञानिक समाजवादके मानदण्डसे जाँचनेपर उनके विचार समाजवादकी मान्यताओके साथ न विचारमे मिलते थे न आचारमे ही। सामान्यत: व धार्मिक प्रवृत्तिके पुरुष माने जाते थे पर न तो उन्हे धार्मिक सस्थाओपर विश्वास था न हिन्दूधर्मके आचारोका ही वे पालन करते थे।

यदि आजसे दो शताब्दी पहले उनका जन्म हुआ होता तो या तो वे कोई बहुत बड़े महात्मा और किसी धर्ममतके सस्थापक हुए होते अथवा कल्पना-साम्राज्यमे विचरनेवाले कोई समाजवादी होते। पर वे ऐसे समयमे हुए जो अति क्षिप्र सामाजिक परिवर्त्तनोका समय रहा और उन्होने यह देखा कि समतायुक्त समाजका स्वप्न इस समय सच्चा हो सकता है।

मुख्यत. वे मानवहित-साधनके व्रती थे। मनुष्यकी अन्तस्थ सद्वृत्तिपर उनका अटल विश्वास था। मानव-जातिसे प्रेम उनके जीवनका विधान और नियम था। सेवा विशेषत. पीड़ितोकी, सत्य और अहिसा; ये ही उनके सामाजिक तत्त्वज्ञानके घटक थे; पर उनकी यह तत्त्वनिष्ठा केवल भावुक और तात्त्विक नही, बल्कि अत्यन्त व्यावहारिक थी। वे सत तो थे ही, पर इससे भी अधिक वे द्रष्टा थे और निरन्तर नि स्वार्थ कर्ममें उनकी श्रद्धा थी। सासारिक जीवनसे विरक्त होनेके बजाय वे समाजके जीवनमे वैयक्तिक जीवनकी परिपूर्णता ढूंढते थे। उनका हृदय कोमल था और थे वे बड़े सूक्ष्मदर्शी। उनकी कथनी और करनीमे कोई विरोध नही था। अपने जीवनकी प्रयोगशालामे वे सत्यके प्रयोग किया करते थे। समाजकी हिंसावृत्तिके मूल कारणोका उन्होने जो अनुसन्धान किया उससे वे इस नतीजेपर पहुँचे कि जबतक मनुष्यके द्वारा मनुष्यका शोषण होता रहेगा तबतक अहिंसाका विधान स्थापित नही हो सकता। अहिंसाका व्रत उनके अपने वैयक्तिक जीवनका ही नियम नही था, प्रत्युत वे इसे सम्पूर्ण समाजके जीवनका भी नियम बनाना चाहते थे। साध्यकी अपेक्षा साधनके विषयमे उनका विशेष आग्रह था। नित्य-नैमित्तिक जीवनकी विभिन्न परिस्थितियोमे वे अहिंसाके अपने सिद्धान्तका प्रयोग करते थे। बुराईका

प्रतिकार अहिंसाके द्वारा करनेके हेतु उन्होने सत्याग्रहका मार्ग निकाला। बुराईसे वे घृणा करते थे, पर बुराई करनेवालेसे नही। कई लड़ाइयोके वे नायक रहे। उनकी सभी लड़ाइयाँ पीडितोके परित्राणके लिए थी। सत्याग्रहके तारक शस्त्रकी ओर आज संसारका विशेष ध्यान है, क्योकि संसार आज नवीन सहारक शस्त्रोके भयसे ग्रस्त है।

गांधीजीका जीवन अहिंसाका एक उपदेश था। वे असलमे सच्ची शान्ति चाहनेवाले परम सात्विक पुरुष थे। उन्होने आत्यन्तिक और अति कठोर आत्मसंयम साधा था और सबके लिए करुणा और मैत्रीके दिव्य भाव उन्होने प्राप्त किये थे। मनुष्य-मात्रसे प्रेम करना उनके जीवनका परम विधान था। मानवोचित गुणोके वे आदर्श थे और अपने आपको राष्ट्रका प्रथम सेवक कहा करते थे। उन्हे किसीका कोई भय नही था। सत्यकी सेवामे वे अपने जीवनकी बाजी लगा देते थे। समाजहित-साधन और अध्यात्मनिष्ठाको वे मनुष्यकी सबसे श्रेष्ठ निधि मानते थे और इन्हे अन्य सब चीजोके ऊपर रखते थे। पर फिर भी वे बड़े व्यवहारज्ञ थे, क्योकि किसी भी कार्यका आरम्भ करनेके पूर्व वे अपने भौतिक और नैतिक साधनोका पूर्ण विचार कर लिया करते थे। समझौतेकी कोई बातचीत वे इतनी नही तानते थे कि उसका तार टूट जाय और यह कहा करते थे कि सच्चा सत्याग्रही समझौतेके लिए सदा प्रस्तुत रहता है। पर कोई सत्याग्रही कभी सत्यसे विमुख नही हो सकता, न कभी बुराईसे मेल कर सकता है। अन्ततक वे अपने पुराने विचारो और आचारोको बदलते और नये विचार ग्रहण और विकसित करते रहे। पर उनकी विचार-पद्धतिकी आधार शिला कभी नही बदली।

उनके अहिंसा-दर्शनके अनुसार वे किसी स्वतन्त्र राज्यके प्रधान होकर नही रह सकते थे, कारण सभी राज्य दमन और हिंसापर अवलम्बित होते है। उन्हींके शब्द है कि 'मैं अधिकारको स्पर्श कर सकता हूँ, पर ग्रहण नही कर सकता।' यदि वे आज जीते होते तो राज्यकी भूलोको सुधारने, त्रुटियोको दूर करनेका काम करते होते और न्याय और सदाचार-के पक्षमे ही अपने प्रचण्ड प्रभावका उपयोग करते। उनके विश्वासकी परीक्षाका जब-जब समय आया, तब-तब वे पर्वतके समान अटल-अचल देख पडे, विरोधमें खड़े अत्यन्त विषम शत्रुदलबल उन्हे विचलित नही कर सके। बडे-बडे दावानलोको बुझाने और तूफानोको शान्त करनेके प्रचण्ड प्रयास उन्होने किये और अपना जीवन लगा दिया उन सद्वस्तुओको पानेके लिए जिनके लिए उनके जीवनका सारा प्रयास था। साम्प्रदायिक पागलपनका बढता हुआ चढाव जब अन्य किसी प्रकारसे रोके नही रुका, तब उन्होने अपने जीवनोत्सर्गकी अन्तिम आहुति दे दी जिसकी अद्भुत करामातसे हिंसा और प्रतिक्रियाकी अन्ध शक्तियाँ तत्कालके लिए तो बिखर ही गयी। इस आत्म-बलिदानने उस महान् पुरुषका सच्चा व्यक्तित्व अविश्वासियो और राजनीतिक विरोधियोपर भी प्रकट कर दिया और उनकी शंकाएँ दूर की। जो मुसलिम-समाज उन्हे अपना परम शत्रु मानता था वह अब उन्हे अपना अचूक मार्ग-दर्शक और सुहृद् मानने लगा।

आत्म-बलिदानके इस अन्तिम कर्मसे उनकी लोकप्रियता इस देशमे तथा बाहर भी शतगुण हो गयी। अपने देशवासियोके हृदयोमे वे सदा पूजित रहेगे और उनका उदाहरण

उन सबको प्रेरणा देगा जो चाहते है कि ससार समझदारी और सद्बुद्धिके रास्तेपर लौट आये। उनका ध्यान बहुत-कुछ अपने ही देशके प्रश्नोमे लगा हुआ था, इससे कुछ लोग उन्हे सकुचित हृदयका एक राष्ट्रवादीमात्र समझ बैठनेकी गलती करते है। परन्तु गाधीजी-को ऐसा समझना केवल अज्ञानमूलक है। गाधीजी यह जानते थे कि जगत् मूलत एक है और इसलिए अहिसा यदि किसी एक ही देशमे सीमित रही तो वह सफल नही हो सकती। पर वे अपनी मर्यादा देखते थे और यह जानते थे कि मेरा कर्मक्षेत्र मूलत· भारतवर्ष ही है। उनका शान्ति और सद्भावनाका सन्देश सबके लिए था, किसी विशिष्ट वर्ग या दलके लिए नही। लोकतन्त्र, सामाजिक न्याय और सार्वराष्ट्रीयताके वे अनन्य साधक थे।

सब द्रष्टाओके समान उन्होने भी अपने विचारोको कोई दार्शनिक रूप नही दिया और मार्क्सके समान वे भी अपनी शिक्षाओका 'गाधीवाद' नाम सुननेपर उसका निषेध किया करते थे। वे हठधर्मी नही थे, किसी भी नये विचारको परखनेके लिए वे सदा तैयार रहते थे।

गांधीवाद कोई निगूढ दर्शन नही, बल्कि आचार-विचारकी एक पद्धति है। उसमे कोई पारभौतिकता नही है। उसके सदाचार-सम्बन्धी कुछ नियम है जो व्यक्ति और संस्था दोनोके लिए है। उसकी कार्य-पद्धति अहिंसाकी है, पर यह अहिसा किसी तरह मेल करके चुप और शान्त हो जानेकी वृत्ति नही है। बुराईके साथ इसका मेल नही होता, उसके साथ इसका असहयोग ही रहता है। इसके द्वारा उसका प्रत्यक्ष प्रतिकार होता है, पर अहिंसात्मक उपायोसे। सब मानव-समस्याओको इस प्रकार हल करनेका इसका दावा है और यह विश्वास है कि अन्तमे इसीकी विजय होगी। कारण, मनुष्यकी अन्तस्थ सद्वृत्ति और विश्वमे नैतिक अधिकारका परम प्रभुत्व होनेका इसे भरोसा है। अहिंसा-व्रतके अपने अनुसन्धानसे इसे यह तथ्य मिला है कि वर्गभेदो और सामाजिक तथा आर्थिक विषमताओको मिटाये बिना समाजमेसे हिंसाका उन्मूलन नही हो सकता। अत· वर्गहीन समाज इसका ध्येय है और समत्वयुक्त समाजकी एक ऐसी आर्थिक व्यवस्था इसे करनी है जिससे जनतन्त्रताका भाव नष्ट न हो और मनुष्यकी सर्वश्रेष्ठता स्थापित हो। विज्ञानसे इसे इसी हदतक मदद लेना है कि उसके द्वारा मानवताको चोट पहुँचाये बिना उपकारी कार्योमे जो कुछ सहायता मिल सकती है वह प्राप्त की जाय। पर गाधीवाद वैज्ञानिक मनोवृत्ति नही है, जीवनके प्रति इसकी नैतिक मनोवृत्ति है।

साम्प्रदायिक और राष्ट्रीय द्वेष और लोभके इस जमानेमे गाधीके सन्देशका विशिष्ट महत्व है। वर्गो-वर्गो और राष्ट्रो-राष्ट्रोके पारस्परिक सघर्षोसे ससार छिन्न-भिन्न हो रहा है। सर्वत्र लोग शान्तिके लिए तरस रहे है, पर वे मूक है या उनके मुँह बन्द किये गये है। गाधीने शान्तिका मार्ग दिखा दिया है। सार्वराष्ट्रीय सहानुभूति और सहयोगके लिए सचेष्ट सद्भावसम्पन्न लोगोका यह काम है कि गाधीके आदर्शोको ग्रहण करे और जगत्की दुष्प्रवृत्तियोके विरुद्ध सघर्ष करनेकी उनकी पद्धतिका अनुसरण करे।[१]

---

१. 'दि मार्च आफ इडिया' मार्च-अप्रैल, सन् १९४९ ई०